श्री राम चरित मानस

भगवान शंकर जी के मन द्वारा रचित श्रीराम जी के परमपवित्र चरित्र

सबके स्वामी श्री राम

सेवक डॉ. स्वामी ज्ञान प्रकाश

डॉ. रवि शंकर पाण्डेय (संसारिक नाम)

परिचय

जय श्री राम

श्रीरामचरितमानस १५वीं शताब्दी के कवि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा लिखा गया महाकाव्य है। वास्तव में यह भगवान शंकर जी के मन द्वारा रचित श्रीराम जी के परमपवित्र चरित्र की रचना है, जिसे बुद्धि की देवी माता सरस्वती जी स्वतः श्री तुलसीदास जी के स्थूल शरीर का सदुपयोग करके श्रीरामचरितमानस को जनपरमकल्याण के लिए पृथ्वी पर लाई हैं। इस रचना का एक शब्द भी अशुद्ध नही है, जब तक पृथ्वी पर यह शरीर जीवित है, समस्त भक्तों एवं बुद्धवर्गीय लोगों (सभी धर्म गुरु, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, दार्शनिक, नोवेल वैज्ञानिक, साधु, साधक, विमुक्त, सिद्ध, उदासीन, संत, महंत, शंकराचार्य, कवि, कोविद, योगी, वैरागी, ज्ञानी, ऋषि, मुनि एवं धर्म परायाण पंडितों एवं मिडिया) से विनम्र अनुरोध है कि अपने -अपने भ्रांतियों को दूर करें। चित्त को स्थिर कर जान लें, श्री रामचंद्र के भजन (**मन, कर्म और वाणी का शुद्धिकरण**) बिना जो मोक्ष पद चाहता है, वह मनुष्य ज्ञानवान होने पर भी बिना पूँछ और सींग का पशु है। सभी तारागणों के साथ सोलह कलाओं से पूर्ण चंद्रमा उदय हो और जितने पर्वत हैं उन सब में दावाग्नि लगा दी जाए, तो भी रवि (सूर्य) के उदय हुए बिना रात्रि नहीं जा सकती।

जैसा तुलसीदास ने रामचरित मानस के बालकाण्ड में स्वयं लिखा है कि उन्होंने रामचरित मानस की रचना का आरम्भ अयोध्या में विक्रम संवत १६३१ (१५७४ ईस्वी) को रामनवमी के दिन (मंगलवार) किया था। गीताप्रेस गोरखपुर के श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार के अनुसार रामचरितमानस को लिखने में गोस्वामी तुलसीदास जी को २ वर्ष ७ माह २६ दिन का समय लगा था और उन्होंने इसे संवत् १६३३ (१५७६ ईस्वी) के मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में राम विवाह के दिन पूर्ण किया था। इस महाकाव्य की भाषा अवधी है जो हिंन्दी की ही एक शाखा है।रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने श्री रामचन्द्र के निर्मल एवं विशद चरित्र का वर्णन किया है। महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित संस्कृत रामायण को रामचरितमानस का आधार माना जाता है। यद्यपि रामायण और रामचरितमानस दोनों में ही रामके चरित्र का वर्णन है परंतु दोनों ही महाकाव्यों के रचने वाले कवियों की वर्णन शैली में उल्लेखनीय अन्तर है। जहाँ वाल्मीकि ने रामायण में राम को केवल एक सांसारिक व्यक्ति के रूप में दर्शाया है वहीं तुलसीदास ने रामचरितमानस में श्री राम जी को भगवान परम विष्णु का अवतार माना है। रामचरितमानस को तुलसीदास ने सात काण्डों में विभक्त किया है। इन सात काण्डों के नाम हैं - बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड,अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड। छन्दों की संख्या के अनुसार अयोध्याकाण्ड औरसुन्दरकाण्ड क्रमशः सबसे बड़े और छोटे काण्ड हैं। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में हिन्दी के अलंकारों का बहुत सुन्दर प्रयोग किया है विशेषकर अनुप्रास अलंकार का। रामचरितमानस पर प्रत्येक हिंदू की अनन्य आस्था है और इसे हिन्दुओं का पवित्र ग्रन्थ माना जाता है। संसार जगत के परमकल्याण हेतु संपूर्ण श्री राम चरित मानस को एक साथ संकलित कर रहा हूँ।

आप सभी का अपना श्रद्धा एवं विश्वास

जीवन मुक्त डॉ. स्वामी ज्ञान प्रकाश [डॉ. रवि शंकर पाण्डेय (संसारिक नाम)]

संक्षिप्त मानस कथा

श्री तुलसीदास जी द्वारा रचित रामचरित मानस की कुछ चौपाइयों को लेते हैं। बात उस समय की है जब मनु और सतरूपा परमब्रह्म की तपस्या कर रहे थे। कई वर्ष तपस्या करने के बाद शंकरजी ने स्वयं पार्वती से कहा कि मैं, ब्रह्मा और विष्णु कई बार मनु सतरूपा के पास वर देने के लिये आये, जिसका उल्लेख तुलसी दास जी द्वारा रचित रामचरितमानस में इस प्रकार मिलता है- "बिधि हरि हर तप देखि अपारा, मनु समीप आये बहु बारा"। जैसा की उपरोक्त चौपाई से पता चलता है कि ये लोग तो कई बार आये यह कहने कि जो वर तुम माँगना चाहते हो माँग लो; पर मनु सतरूपा को तो पुत्र रूप में स्वयं परमब्रह्म को ही माँगना था फिर ये कैसे उनसे यानी शंकर, ब्रह्मा और विष्णु से वर माँगते? हमारे प्रभु श्रीराम तो सर्वज्ञ हैं। वे भक्त के हृदय की अभिलाषा को स्वत: ही जान लेते हैं।

जब २३ हजार वर्ष और बीत गये तो प्रभु श्रीराम के द्वारा आकाश वाणी होती है- "प्रभु सर्बग्य दास निज जानी, गति अनन्य तापस नृप रानी। माँगु माँगु बरु भइ नभ बानी, परम गँभीर कृपामृत सानी।।" इस आकाश वाणी को जब मनु सतरूपा सुनते हैं तो उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। और जब स्वयं परमब्रह्म राम प्रकट होते हैं तो उनकी स्तुति करते हुए मनु और सतरूपा कहते हैं- "सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू, बिधि हरि हर बंदित पद रेनू। सेवत सुलभ सकल सुखदायक, प्रणतपाल सचराचर नायक॥" अर्थात् जिनके चरणों की वन्दना विधि, हरि और हर यानी ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों ही करते है, तथा जिनके स्वरूप की प्रशंसा सगुण और निर्गुण दोनों करते हैं: उनसे वे क्या वर माँगें? इस बात का उल्लेख करके तुलसी बाबा ने उन लोगों को भी राम की ही आराधना करने की सलाह दी है जो केवल निराकार को ही परमब्रह्म मानते हैं। आज आवश्यकता है कि जन -जन इस पवित्र चरित्र को जाने।

आप सभी का अपना श्रद्धा एवं विश्वास

जीवन मुक्त डॉ. स्वामी ज्ञान प्रकाश [डॉ. रवि शंकर पाण्डेय (संसारिक नाम)]

परमपवित्र-अध्याय

अध्याय -1 बालकाण्ड [05-385]

भगवान शंकर जी के मन द्वारा रचित श्रीराम जी के परमपवित्र चरित्र

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वंदे वाणीविनायकौ॥ 1॥

वाणीं को उत्पन्न करने वाले और सभी मंगलों के करने वाले श्री गणेश जी एवं अक्षरों, शब्दों, अर्थ समूहों, रसों, छंदों और मंगलों की कर्तिनी माता सरस्वती जी की मैं वंदना करता हूँ॥ 1॥

भवानीशंकरौ वंदे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः स्वांत:स्थमीश्वरम्॥ 2॥

श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप पार्वती और शंकर की मैं वंदना करता हूँ, जिनके बिना सिद्धजन अपने अंत:करण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते॥ 2॥

वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चंद्र: सर्वत्र वंद्यते॥ 3॥

ज्ञानमय, नित्य, शंकररूपी गुरु की मैं वंदना करता हूँ, जिनके आश्रित होने से ही टेढ़ा चंद्रमा भी सर्वत्र होता है॥ 3॥

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वंदे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥ 4॥

सीताराम के गुणसमूहरूपी पवित्र वन में विहार करनेवाले, विशुद्ध विज्ञान संपन्न कवीश्वर वाल्मीकि और कपीश्वर हनुमान की मैं वंदना

करता हूँ॥ 4॥

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥ 5॥

उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और संहार करनेवाली, क्लेशों को हरनेवाली तथा संपूर्ण कल्याणों

को करनेवाली राम की प्रियतमा सीता को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 5॥

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवांभोधेस्तितीर्षावतां
वंदेऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥ 6॥

जिनकी माया के वशीभूत संपूर्ण विश्व, ब्रह्मादि देवता और असुर हैं, जिनकी सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भाँति यह सारा दृश्य जगत सत्य ही प्रतीत होता है और जिनके केवल चरण ही भवसागर से तरने की इच्छा वालों के लिए एकमात्र नौका हैं, उन समस्त कारणों से परे राम कहानेवाले भगवान हरि की मैं वंदना करता हूँ॥ 6॥

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वांत:सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति॥ 7॥

अनेक पुराण, वेद और शास्त्र से सम्मत तथा जो रामायण में वर्णित है और कुछ अन्यत्र से भी उपलब्ध रघुनाथ की कथा को तुलसीदास अपने अंत:करण के सुख के लिए अत्यंत मनोहर भाषा रचना में निबद्ध करता है॥ 7॥

सो० - जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥ 1॥

जिन्हें स्मरण करने से सब कार्य सिद्ध होते हैं, जो गणों के स्वामी और सुंदर हाथी के मुखवाले हैं, वे ही बुद्धि के राशि और शुभ गुणों के धाम (गणेश) मुझ पर कृपा करें॥ 1॥

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन॥ 2॥

जिनकी कृपा से गूँगा बहुत सुंदर बोलनेवाला हो जाता है और लँगड़ा-लूला दुर्गम पहाड़ पर चढ़ जाता है, वे कलियुग के सब पापों को जला डालनेवाले दयालु (भगवान) मुझ पर द्रवित हों॥ 2॥

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन॥ 3॥

जो नीलकमल के समान श्यामवर्ण हैं, जिनके पूर्ण खिले हुए लाल कमल के समान नेत्र हैं और जो सदा क्षीरसागर पर शयन करते हैं, वे (नारायण) मेरे हृदय में निवास करें॥ 3॥

कुंद इंदु सम देह उमा रमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन॥ 4॥

जिनका कुंद के पुष्प और चंद्रमा के समान (गौर) शरीर है, जो पार्वती के प्रियतम और दया के धाम हैं और जिनका दीनों पर स्नेह है, वे कामदेव का मर्दन करनेवाले (शंकर) मुझ पर कृपा करें॥ 4॥

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर॥ 5॥

मैं उन गुरु के चरणकमल की वंदना करता हूँ, जो कृपा के समुद्र और नर रूप में हरि ही हैं और जिनके वचन महामोहरूपी घने अंधकार का नाश करने के लिए सूर्य किरणों के समूह हैं॥ 5॥

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥

मैं गुरु के चरण कमलों की रज की वंदना करता हूँ, जो सुरुचि, सुगंध तथा अनुरागरूपी रस से पूर्ण है। वह अमर मूल (संजीवनी जड़ी) का सुंदर चूर्ण है, जो संपूर्ण भव रोगों के परिवार को नाश करनेवाला है।

सुकृति संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किएँ तिलक गुन गन बस करनी॥

वह रज सुकृति (पुण्यवान पुरुष) रूपी शिव के शरीर पर सुशोभित निर्मल विभूति है और सुंदर कल्याण और आनंद की जननी है, भक्त के मनरूपी सुंदर दर्पण के मैल को दूर करनेवाली और तिलक करने से गुणों के समूह को वश में करनेवाली है।

श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती॥

दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू॥

श्री गुरु के चरण-नखों की ज्योति मणियों के प्रकाश के समान है, जिसके स्मरण करते ही हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। वह प्रकाश अज्ञानरूपी अंधकार का नाश करनेवाला है, वह जिसके हृदय में आ जाता है, उसके बड़े भाग्य हैं।

उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥
सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥

उसके हृदय में आते ही हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसाररूपी रात्रि के दोष-दुःख मिट जाते हैं एवं रामचरित्ररूपी मणि और माणिक्य, गुप्त और प्रकट जहाँ जो जिस खान में है, सब दिखाई पड़ने लगते हैं।

दो॰ - जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान॥ 1॥

जैसे सु-अंजन को नेत्रों में लगाकर साधक, सिद्ध और सुजान पर्वतों, वनों और पृथ्वी के अंदर कौतुक से ही बहुत-सी खानें देखते हैं॥ 1॥

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन॥
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनउँ राम चरित भव मोचन॥

गुरु के चरणों की रज कोमल और सुंदर नयनामृत अंजन है, जो नेत्रों के दोषों का नाश करनेवाला है। उस अंजन से विवेकरूपी नेत्रों को निर्मल करके मैं संसाररूपी बंधन से छुड़ानेवाले राम के चरित्र का वर्णन करता हूँ।

बंदउँ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना॥
सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी॥

पहले पृथ्वी के देवता ब्राह्मणों के चरणों की वंदना करता हूँ, जो अज्ञान से उत्पन्न सब संदेहों को हरनेवाले हैं। फिर सब गुणों की खान संत समाज को प्रेम सहित सुंदर वाणी से प्रणाम करता हूँ।

साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥

जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा॥

संतों का चरित्र कपास के चरित्र के समान शुभ है, जिसका फल नीरस, विशद और गुणमय होता है। संत स्वयं दुःख सहकर दूसरों के छिद्रों को ढँकता है, जिसके कारण उसने जगत में वंदनीय यश प्राप्त किया है।

मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू॥
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥

संतों का समाज आनंद और कल्याणमय है, जो जगत में चलता-फिरता तीर्थराज है, जहाँ राम भक्तिरूपी गंगा की धारा हैं और ब्रह्मविचार का प्रचार सरस्वती हैं।

बिधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रबिनंदनि बरनी॥
हरि हर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥

विधि और निषेध (यह करो और यह न करो) रूपी कर्मों की कथा कलियुग के पापों को हरनेवाली सूर्यतनया यमुना हैं और भगवान विष्णु और शंकर की कथाएँ त्रिवेणी रूप से सुशोभित हैं, जो सुनते ही सब आनंद और कल्याणों को देनेवाली हैं।

बटु बिस्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥

अपने धर्म में जो अटल विश्वास है, वह अक्षयवट है और शुभ कर्म ही उस तीर्थराज का समाज है। वह सब देशों में, सब समय सभी को सहज ही में प्राप्त हो सकता है और आदरपूर्वक सेवन करने से क्लेशों को नष्ट करनेवाला है।

अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देह सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

वह तीर्थराज अलौकिक और अकथनीय है एवं तत्काल फल देनेवाला है, उसका प्रभाव प्रत्यक्ष है।

दो० - सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग॥ 2॥

जो मनुष्य इस संत समाजरूपी तीर्थराज का प्रभाव प्रसन्न मन से सुनते और समझते हैं

और फिर अत्यंत प्रेमपूर्वक इसमें गोते लगाते हैं, वे इस शरीर के रहते ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष - चारों फल पा जाते हैं॥ 2॥

मज्जन फल पेखिअ ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला॥
सुनि आचरज करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहिं गोई॥

इस तीर्थराज में स्नान का फल तत्काल ऐसा देखने में आता है कि कौए कोयल बन जाते हैं और बगुले हंस। यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे, क्योंकि सत्संग की महिमा छिपी नहीं है।

बालमीक नारद घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी॥
जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना॥

वाल्मीकि, नारद और अगस्त्य ने अपने-अपने मुखों से अपनी होनी (जीवन का वृत्तांत) कही है। जल में रहनेवाले, जमीन पर चलनेवाले और आकाश में विचरनेवाले नाना प्रकार के जड़-चेतन जितने जीव इस जगत में हैं -

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥

उनमें से जिसने जिस समय जहाँ कहीं भी जिस किसी यत्न से बुद्धि, कीर्ति, सद्‌गति, विभूति और भलाई पाई है, सो सब सत्संग का ही प्रभाव समझना चाहिए। वेदों में और लोक में इनकी प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है।

बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सतसंगत मुद मंगल मूला। सोई फल सिधि सब साधन फूला॥

सत्संग के बिना विवेक नहीं होता और राम की कृपा के बिना वह सत्संग सहज में मिलता नहीं। सत्संगति आनंद और कल्याण की जड़ है। सत्संग की सिद्धि ही फल है और सब साधन तो फूल है।

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई॥
बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥

दुष्ट भी सत्संगति पाकर सुधर जाते हैं, जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सुहावना हो जाता है,

किंतु दैवयोग से यदि कभी सज्जन कुसंगति में पड़ जाते हैं, तो वे वहाँ भी साँप की मणि के समान अपने गुणों का ही अनुसरण करते हैं।

बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सो मो सन कहि जात न कैसें। साक बनिक मनि गुन गन जैसें॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कवि और पंडितों की वाणी भी संत-महिमा का वर्णन करने में सकुचाती है, वह मुझसे किस प्रकार नहीं कही जाती, जैसे साग-तरकारी बेचनेवाले से मणियों के गुणसमूह नहीं कहे जा सकते।

दो॰ - बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ॥ 3 (क)॥

मैं संतों को प्रणाम करता हूँ, जिनके चित्त में समता है, जिनका न कोई मित्र है और न शत्रु! जैसे अंजलि में रखे हुए सुंदर फूल (जिस हाथ ने फूलों को तोड़ा और जिसने उनको रखा उन) दोनों ही हाथों को समान रूप से सुगंधित करते हैं (वैसे ही संत शत्रु और मित्र दोनों का ही समान रूप से कल्याण करते हैं।)॥ 3 (क)॥

संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु।
बालबिनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु॥ 3 (ख)॥

संत सरल हृदय और जगत के हितकारी होते हैं, उनके ऐसे स्वभाव और स्नेह को जानकर मैं विनय करता हूँ, मेरी इस बाल-विनय को सुनकर कृपा करके राम के चरणों में मुझे प्रीति दें॥ 3 (ख)॥

बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ॥
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरें। उजरें हरष बिषाद बसेरें॥

अब मैं सच्चे भाव से दुष्टों को प्रणाम करता हूँ, जो बिना ही प्रयोजन, अपना हित करनेवाले के भी प्रतिकूल आचरण करते हैं। दूसरों के हित की हानि ही जिनकी दृष्टि में लाभ है, जिनको दूसरों के उजड़ने में हर्ष और बसने में विषाद होता है।

हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से॥
जे पर दोष लखहिं सहसाखी। पर हित घृत जिन्ह के मन माखी॥

जो हरि और हर के यशरूपी पूर्णिमा के चंद्रमा के लिए राहु के समान हैं (अर्थात जहाँ कहीं भगवान विष्णु या शंकर के यश का वर्णन होता है, उसी में वे बाधा देते हैं) और दूसरों की बुराई करने में सहस्रबाहु के समान वीर हैं। जो दूसरों के दोषों को हजार आँखों से देखते हैं और दूसरों के हितरूपी घी के लिए जिनका मन मक्खी के समान है (अर्थात जिस प्रकार मक्खी घी में गिरकर उसे खराब कर देती है और स्वयं भी मर जाती है, उसी प्रकार दुष्ट लोग दूसरों के बने-बनाए काम को अपनी हानि करके भी बिगाड़ देते हैं),

तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा॥
उदय केत सम हित सबही के। कुंभकरन सम सोवत नीके॥

जो तेज (दूसरों को जलानेवाले ताप) में अग्नि और क्रोध में यमराज के समान हैं, पाप और अवगुणरूपी धन में कुबेर के समान धनी हैं, जिनकी बढ़ती सभी के हित का नाश करने के लिए केतु (पुच्छल तारे) के समान है, और जिनके कुंभकर्ण की तरह सोते रहने में ही भलाई है,

पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं॥
बंदउँ खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनइ पर दोषा॥

जैसे ओले खेती का नाश करके आप भी गल जाते हैं, वैसे ही वे दूसरों का काम बिगाड़ने के लिए अपना शरीर तक छोड़ देते हैं। मैं दुष्टों को (हजार मुखवाले) शेष के समान समझकर प्रणाम करता हूँ, जो पराए दोषों का हजार मुखों से बड़े रोष के साथ वर्णन करते हैं।

पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना॥
बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥

पुनः उनको राजा पृथु (जिन्होंने भगवान का यश सुनने के लिए दस हजार कान माँगे थे) के समान जानकर प्रणाम करता हूँ, जो दस हजार कानों से दूसरों के पापों को सुनते हैं। फिर इंद्र के समान मानकर उनकी विनय करता हूँ, जिनको सुरा (मदिरा) अच्छी और हितकारी मालूम देती है (इंद्र के लिए भी सुरानीक अर्थात देवताओं की सेना हितकारी है)।

बचन बज्र जेहि सदा पिआरा। सहस नयन पर दोष निहारा॥

जिनको कठोर वचनरूपी वज्र सदा प्यारा लगता है और जो हजार आँखों से दूसरों के दोषों

को देखते हैं।

दो॰ - उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति।
जानि पानि जुग जोरि जन बिनती करइ सप्रीति॥ 4॥

दुष्टों की यह रीति है कि वे उदासीन, शत्रु अथवा मित्र, किसी का भी हित सुनकर जलते हैं। यह जानकर दोनों हाथ जोड़कर यह जन प्रेमपूर्वक उनसे विनय करता है॥ 4॥

मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा॥
बायस पलिअहिं अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा॥

मैंने अपनी ओर से विनती की है, परंतु वे अपनी ओर से कभी नहीं चूकेंगे। कौओं को बड़े प्रेम से पालिए, परंतु वे क्या कभी मांस के त्यागी हो सकते हैं?

बंदउँ संत असज्जन चरना। दुःखप्रद उभय बीच कछु बरना॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं॥

अब मैं संत और असंत दोनों के चरणों की वंदना करता हूँ, दोनों ही दुःख देनेवाले हैं, परंतु उनमें कुछ अंतर कहा गया है। वह अंतर यह है कि एक (संत) तो बिछुड़ते समय प्राण हर लेते हैं और दूसरे (असंत) मिलते हैं, तब दारुण दुःख देते हैं।

उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥

दोनों (संत और असंत) जगत में एक साथ पैदा होते हैं, पर साधु अमृत के समान (मृत्युरूपी संसार से उबारनेवाला) और असाधु मदिरा के समान (मोह, प्रमाद और जड़ता उत्पन्न करनेवाला) है, दोनों को उत्पन्न करनेवाला जगतरूपी अगाध समुद्र एक ही है। (शास्त्रों में समुद्रमंथन से ही अमृत और मदिरा दोनों की उत्पत्ति बताई गई है।)

भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि ब्याधू॥
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥

भले और बुरे अपनी-अपनी करनी के अनुसार सुंदर यश और अपयश की संपत्ति पाते हैं। अमृत, चंद्रमा, गंगा और साधु एवं विष, अग्नि, कलियुग के पापों की नदी अर्थात कर्मनाशा

और हिंसा करनेवाला व्याध, इनके गुण-अवगुण सब कोई जानते हैं, किंतु जिसे जो भाता है, उसे वही अच्छा लगता है।

दो० - भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु॥ 5॥

भला भलाई ही ग्रहण करता है और नीच नीचता को ही ग्रहण किए रहता है। अमृत की सराहना अमर करने में होती है और विष की मारने में॥ 5॥

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥
तेहि तें कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥

दुष्टों के पापों और अवगुणों की और साधुओं के गुणों की कथाएँ - दोनों ही अपार और अथाह समुद्र हैं। इसी से कुछ गुण और दोषों का वर्णन किया गया है, क्योंकि बिना पहचाने उनका ग्रहण या त्याग नहीं हो सकता।

भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन दोष बेद बिलगाए॥
कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना॥

भले-बुरे सभी ब्रह्मा के पैदा किए हुए हैं, पर गुण और दोषों को विचार कर वेदों ने उनको अलग-अलग कर दिया है। वेद, इतिहास और पुराण कहते हैं कि ब्रह्मा की यह सृष्टि गुण-अवगुणों से सनी हुई है।

दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू॥
माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा॥
कासी मग सुरसरि क्रमनासा। मरु मारव महिदेव गवासा॥
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगमागम गुन दोष बिभागा॥

दुःख-सुख, पाप-पुण्य, दिन-रात, साधु-असाधु, सुजाति-कुजाति, दानव-देवता, ऊँच-नीच, अमृत-विष, सुजीवन (सुंदर जीवन) - मृत्यु, माया-ब्रह्म, जीव-ईश्वर, संपत्ति-दरिद्रता, रंक-राजा, काशी-मगध, गंगा-कर्मनाशा, मारवाड़-मालवा, ब्राह्मण-कसाई, स्वर्ग-नरक, अनुराग-वैराग्य (ये सभी पदार्थ ब्रह्मा की सृष्टि में हैं।) वेद-शास्त्रों ने उनके गुण-दोषों का विभाग कर दिया

है।

दो॰ - जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥ 6॥

विधाता ने इस जड़-चेतन विश्व को गुण-दोषमय रचा है, किंतु संतरूपी हंस दोषरूपी जल को छोड़कर गुणरूपी दूध को ही ग्रहण करते हैं॥ 6॥

अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता॥
काल सुभाउ करम बरिआईं। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाईं॥

विधाता जब इस प्रकार का (हंस का-सा) विवेक देते हैं, तब दोषों को छोड़कर मन गुणों में अनुरक्त होता है। काल स्वभाव और कर्म की प्रबलता से भले लोग भी माया के वश में होकर कभी-कभी भलाई से चूक जाते हैं।

सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं॥
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू॥

भगवान के भक्त जैसे उस चूक को सुधार लेते हैं और दुःख-दोषों को मिटाकर निर्मल यश देते हैं, वैसे ही दुष्ट भी कभी-कभी उत्तम संग पाकर भलाई करते हैं, परंतु उनका कभी भंग न होनेवाला मलिन स्वभाव नहीं मिटता।

लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ॥
उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥

जो (वेषधारी) ठग हैं, उन्हें भी अच्छा वेष बनाए देखकर वेष के प्रताप से जगत पूजता है, परंतु एक न एक दिन वे चौड़े आ ही जाते हैं, अंत तक उनका कपट नहीं निभता, जैसे कालनेमि, रावण और राहु का हाल हुआ।

किएहुँ कुबेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहुँ बेद बिदित सब काहू॥

बुरा वेष बना लेने पर भी साधु का सम्मान ही होता है, जैसे जगत में जाम्बवान और हनुमान का हुआ। बुरे संग से हानि और अच्छे संग से लाभ होता है, यह बात लोक और

वेद में है और सभी लोग इसको जानते हैं।

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जल संगा॥
साधु असाधु सदन सुक सारीं। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारीं॥

पवन के संग से धूल आकाश पर चढ़ जाती है और वही नीच (नीचे की ओर बहनेवाले) जल के संग से कीचड़ में मिल जाती है। साधु के घर के तोता-मैना राम-राम सुमिरते हैं और असाधु के घर के तोता-मैना गिन-गिनकर गालियाँ देते हैं।

धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन दाता॥

कुसंग के कारण धुआँ कालिख कहलाता है, वही धुआँ (सुसंग से) सुंदर स्याही होकर पुराण लिखने के काम में आता है और वही धुआँ जल, अग्नि और पवन के संग से बादल होकर जगत को जीवन देनेवाला बन जाता है।

दो० - ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग॥ 7(क)॥

ग्रह, औषधि, जल, वायु और वस्त्र - ये सब भी कुसंग और सुसंग पाकर संसार में बुरे और भले पदार्थ हो जाते हैं। चतुर एवं विचारशील पुरुष ही इस बात को जान पाते हैं॥ 7(क)॥

सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह॥ 7(ख)॥

महीने के दोनों पखवाड़ों में उजियाला और अँधेरा समान ही रहता है, परंतु विधाता ने इनके नाम में भेद कर दिया है (एक का नाम शुक्ल और दूसरे का नाम कृष्ण रख दिया)। एक को चंद्रमा का बढ़ानेवाला और दूसरे को उसका घटानेवाला समझकर जगत ने एक को सुयश और दूसरे को अपयश दे दिया॥ 7(ख)॥

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥ 7(ग)॥

जगत में जितने जड़ और चेतन जीव हैं, सबको राममय जानकर मैं उन सबके

चरणकमलों की सदा दोनों हाथ जोड़कर वंदना करता हूँ॥ 7(ग)॥

देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्ब।
बंदउँ किंनर रजनिचर कृपा करहु अब सर्ब॥ 7(घ)॥

देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, प्रेत, पितर, गंधर्व, किन्नर और निशाचर सबको मैं प्रणाम करता हूँ। अब सब मुझ पर कृपा कीजिए॥ 7(घ)॥

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी॥
सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

चौरासी लाख योनियों में चार प्रकार के (स्वेदज, अंडज, उद्भिज्ज, जरायुज) जीव जल, पृथ्वी और आकाश में रहते हैं, उन सबसे भरे हुए इस सारे जगत को सीताराममय जानकर मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

जानि कृपाकर किंकर मोहू। सब मिलि करहु छाड़ि छल छोहू॥
निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। तातें बिनय करउँ सब पाहीं॥

मुझको अपना दास जानकर कृपा की खान आप सब लोग मिलकर छल छोड़कर कृपा कीजिए। मुझे अपने बुद्धि-बल का भरोसा नहीं है, इसीलिए मैं सबसे विनती करता हूँ।

करन चहउँ रघुपति गुन गाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा॥
सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राउ॥

मैं रघुनाथ के गुणों का वर्णन करना चाहता हूँ, परंतु मेरी बुद्धि छोटी है और राम का चरित्र अथाह है। इसके लिए मुझे उपाय का एक भी अंग अर्थात कुछ (लेशमात्र) भी उपाय नहीं सूझता। मेरे मन और बुद्धि कंगाल हैं, किंतु मनोरथ राजा है।

मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी। चहिअ अमिअ जग जुरइ न छाछी॥
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालबचन मन लाई॥

मेरी बुद्धि तो अत्यंत नीची है और चाह बड़ी ऊँची है, चाह तो अमृत पाने की है, पर जगत में जुड़ती छाछ भी नहीं। सज्जन मेरी ढिठाई को क्षमा करेंगे और मेरे बाल वचनों को मन लगाकर (प्रेमपूर्वक) सुनेंगे।

जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥
हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी। जे पर दूषन भूषनधारी॥

जैसे बालक जब तोतले वचन बोलता है, तो उसके माता-पिता उन्हें प्रसन्न मन से सुनते हैं, किंतु क्रूर, कुटिल और बुरे विचारवाले लोग जो दूसरों के दोषों को ही भूषण रूप से धारण किए रहते हैं (अर्थात जिन्हें पराए दोष ही प्यारे लगते हैं), हँसेंगे।

निज कबित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका॥
जे पर भनिति सुनत हरषाहीं। ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं॥

रसीली हो या अत्यंत फीकी, अपनी कविता किसे अच्छी नहीं लगती? किंतु जो दूसरे की रचना को सुनकर हर्षित होते हैं, ऐसे उत्तम पुरुष जगत में बहुत नहीं हैं।

जग बहु नर सर सरि सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई॥
सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई॥

हे भाई! जगत में तालाबों और नदियों के समान मनुष्य ही अधिक हैं, जो जल पाकर अपनी ही बाढ़ से बढ़ते हैं (अर्थात अपनी ही उन्नति से प्रसन्न होते हैं)। समुद्र-सा तो कोई एक विरला ही सज्जन होता है, जो चंद्रमा को पूर्ण देखकर (दूसरों का उत्कर्ष देखकर) उमड़ पड़ता है।

दो० - भाग छोट अभिलाषु बड़ करउँ एक बिस्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास॥ 8॥

मेरा भाग्य छोटा है और इच्छा बहुत बड़ी है, परंतु मुझे एक विश्वास है कि इसे सुनकर सज्जन सभी सुख पायेंगे और दुष्ट हँसी उड़ायेंगे॥ 8॥

खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा॥
हंसहिं बक दादुर चातकही। हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही॥

किंतु दुष्टों के हँसने से मेरा हित ही होगा। मधुर कंठवाली कोयल को कौए तो कठोर ही कहा करते हैं। जैसे बगुले हंस को और मेढक पपीहे को हँसते हैं, वैसे ही मलिन मनवाले दुष्ट निर्मल वाणी को हँसते हैं।

कबित रसिक न राम पद नेहू। तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू॥

भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जो हँसें नहिं खोरी॥

जो न तो कविता के रसिक हैं और न जिनका राम के चरणों में प्रेम है, उनके लिए भी यह कविता सुखद हास्यरस का काम देगी। प्रथम तो यह भाषा की रचना है, दूसरे मेरी बुद्धि भोली है, इससे यह हँसने के योग्य ही है, हँसने में उन्हें कोई दोष नहीं।

प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी॥
हरि हर पद रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहुं मधुर कथा रघुबर की॥

जिन्हें न तो प्रभु के चरणों में प्रेम है और न अच्छी समझ ही है, उनको यह कथा सुनने में फीकी लगेगी। जिनकी हरि (भगवान विष्णु) और हर (भगवान शिव) के चरणों में प्रीति है और जिनकी बुद्धि कुतर्क करनेवाली नहीं है (जो हरि-हर में भेद की या ऊँच-नीच की कल्पना नहीं करते), उन्हें रघुनाथ की यह कथा मीठी लगेगी।

राम भगति भूषित जियँ जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी॥
कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू॥

सज्जनगण इस कथा को अपने जी में राम की भक्ति से भूषित जानकर सुंदर वाणी से सराहना करते हुए सुनेंगे। मैं न तो कवि हूँ, न वाक्य रचना में ही कुशल हूँ, मैं तो सब कलाओं तथा सब विद्याओं से रहित हूँ।

आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक बिधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा॥

नाना प्रकार के अक्षर, अर्थ और अलंकार, अनेक प्रकार की छंद रचना, भावों और रसों के अपार भेद और कविता के भाँति-भाँति के गुण-दोष होते हैं।

कबित बिबेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें॥

इनमें से काव्य संबंधी एक भी बात का ज्ञान मुझमें नहीं है, यह मैं कोरे कागज पर लिखकर (शपथपूर्वक) सत्य-सत्य कहता हूँ।

दो० - भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति जिन्ह कें बिमल बिबेक॥ 9॥

मेरी रचना सब गुणों से रहित है, इसमें बस, जगत्प्रसिद्ध एक गुण है। उसे विचार कर अच्छी बुद्धिवाले पुरुष, जिनके निर्मल ज्ञान है, इसको सुनेंगे॥9॥

एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा॥
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥

इसमें रघुनाथ का उदार नाम है, जो अत्यंत पवित्र है, वेद-पुराणों का सार है, कल्याण का भवन है और अमंगलों को हरनेवाला है, जिसे पार्वती सहित भगवान शिव सदा जपा करते हैं।

भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोउ॥
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥

जो अच्छे कवि के द्वारा रची हुई बड़ी अनूठी कविता है, वह भी राम नाम के बिना शोभा नहीं पाती। जैसे चंद्रमा के समान मुखवाली सुंदर स्त्री सब प्रकार से सुसज्जित होने पर भी वस्त्र के बिना शोभा नहीं देती।

सब गुन रहित कुकबि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही॥

इसके विपरीत, कुकवि की रची हुई सब गुणों से रहित कविता को भी, राम के नाम एवं यश से अंकित जानकर, बुद्धिमान लोग आदरपूर्वक कहते और सुनते हैं, क्योंकि संतजन भौंरे की भाँति गुण ही को ग्रहण करनेवाले होते हैं।

जदपि कबित रस एकउ नाहीं। राम प्रताप प्रगट एहि माहीं॥
सोइ भरोस मोरें मन आवा। केहिं न सुसंग बड़प्पनु पावा॥

यद्यपि मेरी इस रचना में कविता का एक भी रस नहीं है, तथापि इसमें राम का प्रताप प्रकट है। मेरे मन में यही एक भरोसा है। भले संग से भला, किसने बड़प्पन नहीं पाया?

धूमउ तजइ सहज करुआई। अगरु प्रसंग सुगंध बसाई॥
भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। राम कथा जग मंगल करनी॥

धुआँ भी अगर के संग से सुगंधित होकर अपने स्वाभाविक कड़ुवेपन को छोड़ देता है। मेरी कविता अवश्य भद्दी है, परंतु इसमें जगत का कल्याण करनेवाली रामकथारूपी उत्तम

वस्तु का वर्णन किया गया है। (इससे यह भी अच्छी ही समझी जाएगी।)

छं० - मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥

तुलसीदास कहते हैं कि रघुनाथ की कथा कल्याण करनेवाली और कलियुग के पापों को हरनेवाली है। मेरी इस भद्दी कवितारूपी नदी की चाल पवित्र जलवाली नदी (गंगा) की चाल की भाँति टेढ़ी है। प्रभु रघुनाथ के सुंदर यश के संग से यह कविता सुंदर तथा सज्जनों के मन को भानेवाली हो जाएगी। श्मशान की अपवित्र राख भी महादेव के अंग के संग से सुहावनी लगती है और स्मरण करते ही पवित्र करनेवाली होती है।

दो० - प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम जस संग।
दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलय प्रसंग॥ 10(क)॥

राम के यश के संग से मेरी कविता सभी को अत्यंत प्रिय लगेगी। जैसे मलय पर्वत के संग से काष्ठमात्र (चंदन बनकर) वंदनीय हो जाता है, फिर क्या कोई काठ (की तुच्छता) का विचार करता है?॥ 10(क)॥

स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान॥ 10(ख)॥

श्यामा गौ काली होने पर भी उसका दूध उज्ज्वल और बहुत गुणकारी होता है। यही समझकर सब लोग उसे पीते हैं। इसी तरह गँवारू भाषा में होने पर भी सीताराम के यश को बुद्धिमान लोग बड़े चाव से गाते और सुनते हैं॥ 10(ख)॥

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥

मणि, माणिक और मोती की जैसी सुंदर छवि है, वह साँप, पर्वत और हाथी के मस्तक पर वैसी शोभा नहीं पाती। राजा के मुकुट और नवयुवती स्त्री के शरीर को पाकर ही ये सब अधिक शोभा को प्राप्त होते हैं।

तैसेहिं सुकबि कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं॥
भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई॥

इसी तरह, बुद्धिमान लोग कहते हैं कि सुकवि की कविता भी उत्पन्न और कहीं होती है और शोभा अन्यत्र कहीं पाती है (अर्थात कवि की वाणी से उत्पन्न हुई कविता वहाँ शोभा पाती है, जहाँ उसका विचार, प्रचार तथा उसमें कथित आदर्श का ग्रहण और अनुसरण होता है)। कवि के स्मरण करते ही उसकी भक्ति के कारण सरस्वती ब्रह्मलोक को छोड़कर दौड़ी आती हैं।

राम चरित सर बिनु अन्हवाएँ। सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ॥
कबि कोबिद अस हृदयँ बिचारी। गावहिं हरि जस कलि मल हारी॥

सरस्वती की दौड़ी आने की वह थकावट रामचरितरूपी सरोवर में उन्हें नहलाए बिना दूसरे करोड़ों उपायों से भी दूर नहीं होती। कवि और पंडित अपने हृदय में ऐसा विचार कर कलियुग के पापों को हरनेवाले हरि के यश का ही गान करते हैं।

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना॥
हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना॥

संसारी मनुष्यों का गुणगान करने से सरस्वती सिर धुनकर पछताने लगती हैं (कि मैं क्यों इसके बुलाने पर आई)। बुद्धिमान लोग हृदय को समुद्र, बुद्धि को सीप और सरस्वती को स्वाति नक्षत्र के समान कहते हैं।

जौं बरषइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू॥

इसमें यदि श्रेष्ठ विचाररूपी जल बरसता है तो मुक्तामणि के समान सुंदर कविता होती है।

दो० - जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग॥ 11॥

उन कवितारूपी मुक्तामणियों को युक्ति से बेधकर फिर रामचरित्ररूपी सुंदर तागे में पिरोकर सज्जन लोग अपने निर्मल हृदय में धारण करते हैं, जिससे अत्यंत अनुरागरूपी शोभा होती है (वे आत्यंतिक प्रेम को प्राप्त होते हैं)॥ 1 ॥

जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस बेष मराला॥
चलत कुपंथ बेद मग छाँड़े। कपट कलेवर कलि मल भाँड़े॥

जो कराल कलियुग में जन्मे हैं, जिनकी करनी कौए के समान है और वेष हंस का-सा है, जो वेदमार्ग को छोड़कर कुमार्ग पर चलते हैं, जो कपट की मूर्ति और कलियुग के पापों के भाँड़ें हैं।

बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के॥
तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरमध्वज धंधक धोरी॥

जो राम के भक्त कहलाकर लोगों को ठगते हैं, जो धन (लोभ), क्रोध और काम के गुलाम हैं और जो धींगाधींगी करनेवाले, धर्मध्व (धर्म की झूठी ध्वजा फहरानेवाले दंभी) और कपट के धंधों का बोझ ढोनेवाले हैं, संसार के ऐसे लोगों में सबसे पहले मेरी गिनती है।

जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ॥
ताते मैं अति अलप बखाने। थोरे महुँ जानिहहिं सयाने॥

यदि मैं अपने सब अवगुणों को कहने लगूँ तो कथा बहुत बढ़ जाएगी और मैं पार नहीं पाऊँगा। इससे मैंने बहुत कम अवगुणों का वर्णन किया है। बुद्धिमान लोग थोड़े ही में समझ लेंगे।

समुझि बिबिधि बिधि बिनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी॥
एतेहु पर करिहहिं जे असंका। मोहि ते अधिक ते जड़ मति रंका॥

मेरी अनेकों प्रकार की विनती को समझकर, कोई भी इस कथा को सुनकर दोष नहीं देगा। इतने पर भी जो शंका करेंगे, वे तो मुझसे भी अधिक मूर्ख और बुद्धि के कंगाल हैं।

कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ॥
कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा॥

मैं न तो कवि हूँ, न चतुर कहलाता हूँ, अपनी बुद्धि के अनुसार राम के गुण गाता हूँ। कहाँ तो रघुनाथ के अपार चरित्र, कहाँ संसार में आसक्त मेरी बुद्धि!

जेहिं मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥

समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई॥

जिस हवा से सुमेरु जैसे पहाड़ उड़ जाते हैं, कहिए तो, उसके सामने रूई किस गिनती में है। राम की असीम प्रभुता को समझकर कथा रचने में मेरा मन बहुत हिचकता है।

दो॰ - सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥ 12॥

सरस्वती, शेष, शिव, ब्रह्मा, शास्त्र, वेद और पुराण - ये सब 'नेति-नेति' कहकर (पार नहीं पाकर 'ऐसा नहीं', 'ऐसा नहीं' कहते हुए) सदा जिनका गुणगान किया करते हैं॥ 12॥

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहें बिनु रहा न कोई॥
तहाँ बेद अस कारन राखा। भजन प्रभाउ भाँति बहु भाषा॥

यद्यपि प्रभु राम की प्रभुता को सब ऐसी (अकथनीय) ही जानते हैं, तथापि कहे बिना कोई नहीं रहा। इसमें वेद ने ऐसा कारण बताया है कि भजन का प्रभाव बहुत तरह से कहा गया है।

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥

जो परमेश्वर एक है, जिनके कोई इच्छा नहीं है, जिनका कोई रूप और नाम नहीं है, जो अजन्मा, सच्चिदानंद और परमधाम है और जो सबमें व्यापक एवं विश्व रूप है, उसी भगवान ने दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकार की लीला की है।

सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥
जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू॥

वह लीला केवल भक्तों के हित के लिए ही है, क्योंकि भगवान परम कृपालु हैं और शरणागत के बड़े प्रेमी हैं। जिनकी भक्तों पर बड़ी ममता और कृपा है, जिन्होंने एक बार जिस पर कृपा कर दी, उस पर फिर कभी क्रोध नहीं किया।

गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥
बुध बरनहिं हरि जस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी॥

वे प्रभु रघुनाथ गई हुई वस्तु को फिर प्राप्त करानेवाले, गरीबनवाज, सरल स्वभाव, सर्वशक्तिमान और सबके स्वामी हैं। यही समझकर बुद्धिमान लोग उन हरि का यश वर्णन करके अपनी वाणी को पवित्र और उत्तम फल देनेवाली बनाते हैं।

तेहिं बल मैं रघुपति गुन गाथा। कहिहउँ नाइ राम पद माथा॥
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई॥

उसी बल से मैं राम के चरणों में सिर नवाकर रघुनाथ के गुणों की कथा कहूँगा। इसी विचार से मुनियों ने पहले हरि की कीर्ति गाई है। भाई! उसी मार्ग पर चलना मेरे लिए सुगम होगा।

दो॰ - अति अपार जे सरित बर जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं॥ 13॥

जो अत्यंत बड़ी श्रेष्ठ नदियाँ हैं, यदि राजा उन पर पुल बँधा देता है, तो अत्यंत छोटी चींटियाँ भी उन पर चढ़कर बिना ही परिश्रम के पार चली जाती हैं। (इसी प्रकार मुनियों के वर्णन के सहारे मैं भी रामचरित्र का वर्णन सहज ही कर सकूँगा)॥ 13॥

एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहउँ रघुपति कथा सुहाई॥
ब्यास आदि कबि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना॥

इस प्रकार मन को बल दिखलाकर मैं रघुनाथ की सुहावनी कथा की रचना करूँगा। व्यास आदि जो अनेकों श्रेष्ठ कवि हो गए हैं, जिन्होंने बड़े आदर से हरि का सुयश वर्णन किया है।

चरन कमल बंदउँ तिन्ह केरे। पुरवहुँ सकल मनोरथ मेरे॥
कलि के कबिन्ह करउँ परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा॥

मैं उन सब (श्रेष्ठ कवियों) के चरणकमलों में प्रणाम करता हूँ, वे मेरे सब मनोरथों को पूरा करें। कलियुग के भी उन कवियों को मैं प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने रघुनाथ के गुणसमूहों का वर्णन किया है।

जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषाँ जिन्ह हरि चरित बखाने॥
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगें। प्रनवउँ सबहि कपट सब त्यागें॥

जो बड़े बुद्धिमान प्राकृत कवि हैं, जिन्होंने भाषा में हरि चरित्र का वर्णन किया है, जो ऐसे कवि पहले हो चुके हैं, जो इस समय वर्तमान हैं और जो आगे होंगे, उन सबको मैं सारा कपट त्यागकर प्रणाम करता हूँ।

होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू॥
जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कबि करहीं॥

आप सब प्रसन्न होकर यह वरदान दीजिए कि साधु समाज में मेरी कविता का सम्मान हो, क्योंकि बुद्धिमान लोग जिस कविता का आदर नहीं करते, बाल कवि ही उसकी रचना का व्यर्थ परिश्रम करते हैं।

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥
राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अँदेसा॥

कीर्ति, कविता और संपत्ति वही उत्तम है, जो गंगा की तरह सबका हित करनेवाली हो। राम की कीर्ति तो बड़ी सुंदर है, परंतु मेरी कविता भद्दी है। मुझे यह असामंजस्य होने का अंदेशा है।

तुम्हरी कृपाँ सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सुहावनि टाट पटोरे॥

परंतु हे कवियो! आपकी कृपा से यह बात भी मेरे लिए सुलभ है। रेशम की सिलाई टाट पर भी सुहावनी लगती है।

दो० - सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान॥ 14(क)॥

चतुर पुरुष उसी कविता का आदर करते हैं, जो सरल हो और जिसमें निर्मल चरित्र का वर्णन हो तथा जिसे सुनकर शत्रु भी स्वाभाविक बैर को भूलकर सराहना करने लगें॥ 14(क)॥

सो न होई बिनु बिमल मति मोहि मति बल अति थोर।
करहु कृपा हरि जस कहउँ पुनि पुनि करउँ निहोर॥ 14(ख)॥

ऐसी कविता बिना निर्मल बुद्धि के होती नहीं और मेरी बुद्धि का बल बहुत ही थोड़ा है, इसलिए बार-बार निहोरा करता हूँ कि हे कवियो! आप कृपा करें जिससे मैं हरियश का

वर्णन कर सकूँ॥ 14(ख)॥

कबि कोबिद रघुबर चरित मानस मंजु मराल।
बालबिनय सुनि सुरुचि लखि मो पर होहु कृपाल॥ 14(ग)॥

कवि और पंडितगण! आप जो रामचरित्ररूपी मानसरोवर के सुंदर हंस हैं, मुझ बालक की विनती सुनकर और सुंदर रुचि देखकर मुझपर कृपा करें॥ 14(ग)॥

सो॰ - बंदउँ मुनि पद कंजु रामायन जेहिं निरमयउ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित॥ 14(घ)॥

मैं उन वाल्मीकि मुनि के चरण कमलों की वंदना करता हूँ, जिन्होंने रामायण की रचना की है, जो खर सहित होने पर भी खर से विपरीत बड़ी कोमल और सुंदर है तथा जो दूषणसहित होने पर भी दूषण अर्थात दोष से रहित है॥ 14(घ)॥

बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जसु॥ 14(ङ)॥

मैं चारों वेदों की वंदना करता हूँ, जो संसार समुद्र के पार होने के लिए जहाज के समान हैं तथा जिन्हें रघुनाथ का निर्मल यश वर्णन करते स्वप्न में भी खेद (थकावट) नहीं होता॥ 14(ङ)॥

बंदउँ बिधि पद रेनु भव सागर जेहिं कीन्ह जहँ।
संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल बिष बारुनी॥ 14(च)॥

मैं ब्रह्मा के चरण रज की वंदना करता हूँ, जिन्होंने भवसागर बनाया है, जहाँ से एक ओर संतरूपी अमृत, चंद्रमा और कामधेनु निकले और दूसरी ओर दुष्ट मनुष्यरूपी विष और मदिरा उत्पन्न हुए॥ 14(च)॥

दो॰ - बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन बंदि कहउँ कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि॥ 14(छ)॥

देवता, ब्राह्मण, पंडित, ग्रह - इन सबके चरणों की वंदना करके हाथ जोड़कर कहता हूँ कि आप प्रसन्न होकर मेरे सारे सुंदर मनोरथों को पूरा करें॥ 14(छ)॥

पुनि बंदउँ सारद सुरसरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता॥
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका॥

फिर मैं सरस्वती और देवनदी गंगा की वंदना करता हूँ। दोनों पवित्र और मनोहर चरित्रवाली हैं। एक (गंगा) स्नान करने और जल पीने से पापों को हरती है और दूसरी (सरस्वती) गुण और यश कहने और सुनने से अज्ञान का नाश कर देती है।

गुर पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी॥
सेवक स्वामि सखा सिय पी के। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के॥

महेश और पार्वती को मैं प्रणाम करता हूँ, जो मेरे गुरु और माता-पिता हैं, जो दीनबंधु और नित्य दान करनेवाले हैं, जो सीतापति राम के सेवक, स्वामी और सखा हैं तथा मुझ तुलसी का सब प्रकार से कपटरहित (सच्चा) हित करनेवाले हैं।

कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा। साबर मंत्र जाल जिन्ह सिरिजा॥
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू॥

जिन शिव-पार्वती ने कलियुग को देखकर, जगत के हित के लिए, शाबर मंत्र समूह की रचना की, जिन मंत्रों के अक्षर बेमेल हैं, जिनका न कोई ठीक अर्थ होता है और न जप ही होता है, तथापि शिव के प्रताप से जिनका प्रभाव प्रत्यक्ष है।

सो उमेस मोहि पर अनुकूला। करिहिं कथा मुद मंगल मूला॥
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ रामचरित चित चाऊ॥

वे उमापति शिव मुझ पर प्रसन्न होकर (राम की) इस कथा को आनंद और मंगल का मूल बनाएँगे। इस प्रकार पार्वती और शिव दोनों का स्मरण करके और उनका प्रसाद पाकर मैं चाव भरे चित्त से राम चरित्र का वर्णन करता हूँ।

भनिति मोरि सिव कृपाँ बिभाती। ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती॥
जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिं राम चरन अनुरागी। कलि मल रहित सुमंगल भागी॥

मेरी कविता शिव की कृपा से ऐसी सुशोभित होगी, जैसी तारागण के सहित चंद्रमा के साथ रात्रि शोभित होती है। जो इस कथा को प्रेम सहित एवं सावधानी के साथ समझ-

बूझकर कहें-सुनेंगे, वे कलियुग के पापों से रहित और सुंदर कल्याण के भागी होकर राम के चरणों के प्रेमी बन जाएँगे।

दो० - सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ॥ 15॥

यदि मुझ पर शिव और पार्वती की स्वप्न में भी सचमुच प्रसन्नता हो, तो मैंने इस भाषा कविता का जो प्रभाव कहा है, वह सब सच हो॥ 15॥

बंदउँ अवध पुरी अति पावनि। सरजू सरि कलि कलुष नसावनि॥
प्रनवउँ पुर नर नारि बहोरी। ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी॥

मैं अति पवित्र अयोध्यापुरी और कलियुग के पापों का नाश करनेवाली सरयू नदी की वंदना करता हूँ। फिर अवधपुरी के उन नर-नारियों को प्रणाम करता हूँ, जिन पर प्रभु राम की ममता थोड़ी नहीं है (अर्थात बहुत है)।

सिय निंदक अघ ओघ नसाए। लोक बिसोक बनाइ बसाए॥
बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची॥

उन्होंने (अपनी पुरी में रहनेवाले) सीता की निंदा करनेवाले (धोबी और उसके समर्थक पुर-नर-नारियों) के पाप समूह को नाश कर उनको शोकरहित बनाकर अपने लोक (धाम) में बसा दिया। मैं कौशल्यारूपी पूर्व दिशा की वंदना करता हूँ, जिसकी कीर्ति समस्त संसार में फैल रही है।

प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुसारू॥
दसरथ राउ सहित सब रानी। सुकृत सुमंगल मूरति मानी॥
करउँ प्रनाम करम मन बानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी॥
जिन्हहि बिरचि बड़ भयउ बिधाता। महिमा अवधि राम पितु माता॥

जहाँ (कौशल्यारूपी पूर्व दिशा) से विश्व को सुख देनेवाले और दुष्टरूपी कमलों के लिए पाले के समान रामरूपी सुंदर चंद्रमा प्रकट हुए। सब रानियों सहित राजा दशरथ को पुण्य और सुंदर कल्याण की मूर्ति मानकर मैं मन, वचन और कर्म से प्रणाम करता हूँ। अपने पुत्र का सेवक जानकर वे मुझ पर कृपा करें, जिनको रचकर ब्रह्मा ने भी बड़ाई पाई तथा जो राम के माता और पिता होने के कारण महिमा की सीमा हैं।

सो० - बंदउँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ॥ 16॥

मैं अवध के राजा दशरथ की वंदना करता हूँ, जिनका राम के चरणों में सच्चा प्रेम था, जिन्होंने दीनदयालु प्रभु के बिछुड़ते ही अपने प्यारे शरीर को मामूली तिनके की तरह त्याग दिया॥ 16॥

प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहू॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥

मैं परिवार सहित राजा जनक को प्रणाम करता हूँ, जिनका राम के चरणों में गूढ़ प्रेम था, जिसको उन्होंने योग और भोग में छिपा रखा था, परंतु राम को देखते ही वह प्रकट हो गया।

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना॥
राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥

सबसे पहले मैं भरत के चरणों को प्रणाम करता हूँ, जिनका नियम और व्रत वर्णित नहीं किया जा सकता तथा जिनका मन राम के चरणकमलों में भौंरे की तरह लुभाया हुआ है, कभी उनका पास नहीं छोड़ता।

बंदउँ लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुख दाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका॥

मैं लक्ष्मण के चरण कमलों को प्रणाम करता हूँ, जो शीतल, सुंदर और भक्तों को सुख देनेवाले हैं। रघुनाथ की कीर्तिरूपी विमल पताका में जिनका यश (पताका को ऊँचा करके फहरानेवाले) दंड के समान हुआ।

सेष सहस्रसीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन॥
सदा सो सानुकूल रह मो पर। कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर॥

जो हजार सिरवाले और जगत के कारण (हजार सिरों पर जगत को धारण कर रखनेवाले) शेष हैं, जिन्होंने पृथ्वी का भय दूर करने के लिए अवतार लिया, वे गुणों की खान कृपासिंधु सुमित्रानंदन लक्ष्मण मुझ पर सदा प्रसन्न रहें।

रिपुसूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी॥
महाबीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना॥

मैं शत्रुघ्न के चरणकमलों को प्रणाम करता हूँ, जो बड़े वीर, सुशील और भरत के पीछे चलनेवाले हैं। मैं महावीर हनुमान की विनती करता हूँ, जिनके यश का राम ने स्वयं वर्णन किया है॥

सो० - प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥ 17॥

मैं पवनकुमार हनुमान को प्रणाम करता हूँ, जो दुष्टरूपी वन को भस्म करने के लिए अग्निरूप हैं, जो ज्ञान की घनमूर्ति हैं और जिनके हृदयरूपी भवन में धनुष-बाण धारण किए राम निवास करते हैं॥ 17॥

कपिपति रीछ निसाचर राजा। अंगदादि जे कीस समाजा॥
बंदउँ सब के चरन सुहाए। अधम सरीर राम जिन्ह पाए॥

वानरों के राजा सुग्रीव, रीछों के राजा जाम्बवान, राक्षसों के राजा विभीषण और अंगद आदि जितना वानरों का समाज है, सबके सुंदर चरणों की मैं वदना करता हूँ, जिन्होंने अधम शरीर में भी राम को प्राप्त कर लिया।

रघुपति चरन उपासक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते॥
बंदउँ पद सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे॥

पशु, पक्षी, देवता, मनुष्य, असुर समेत जितने राम के चरणों के उपासक हैं, मैं उन सबके चरणकमलों की वंदना करता हूँ, जो राम के निष्काम सेवक हैं।

सुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिबर बिग्यान बिसारद॥
प्रनवउँ सबहि धरनि धरि सीसा। करहु कृपा जन जानि मुनीसा॥

शुकदेव, सनकादि, नारद मुनि आदि जितने भक्त और परम ज्ञानी श्रेष्ठ मुनि हैं, मैं धरती पर सिर टेककर उन सबको प्रणाम करता हूँ, हे मुनीश्वरो! आप सब मुझको अपना दास जानकर कृपा कीजिए।

जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की॥

ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ॥

राजा जनक की पुत्री, जगत की माता और करुणानिधान राम की प्रियतमा जानकी के दोनों चरण कमलों को मैं मनाता हूँ, जिनकी कृपा से निर्मल बुद्धि पाऊँ।

पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बंदउँ सब लायक॥
राजीवनयन धरें धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक॥

फिर मैं मन, वचन और कर्म से कमलनयन, धनुष-बाणधारी, भक्तों की विपत्ति का नाश करने और उन्हें सुख देनेवाले भगवान रघुनाथ के सर्व समर्थ चरण कमलों की वंदना करता हूँ।

दो० - गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥ 18॥

जो वाणी और उसके अर्थ तथा जल और जल की लहर के समान कहने में अलग-अलग हैं, परंतु वास्तव में अभिन्न हैं, उन सीताराम के चरणों की मैं वंदना करता हूँ, जिन्हें दीन-दुःखी बहुत ही प्रिय हैं॥ 18॥

बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥
बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो॥

मैं रघुनाथ के नाम 'राम' की वंदना करता हूँ, जो कृशानु (अग्नि), भानु (सूर्य) और हिमकर (चंद्रमा) का हेतु अर्थात 'र' 'आ' और 'म' रूप से बीज है। वह 'राम' नाम ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप है। वह वेदों का प्राण है, निर्गुण, उपमा रहित और गुणों का भंडार है।

महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥

जो महामंत्र है, जिसे महेश्वर शिव जपते हैं और उनके द्वारा जिसका उपदेश काशी में मुक्ति का कारण है तथा जिसकी महिमा को गणेश जानते हैं, जो इस 'राम' नाम के प्रभाव से ही सबसे पहले पूजे जाते हैं।

जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥

सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी॥

आदिकवि वाल्मीकि राम नाम के प्रताप को जानते हैं, जो उलटा नाम ('मरा', 'मरा') जपकर पवित्र हो गए। शिव के इस वचन को सुनकर कि एक राम-नाम सहस्र नाम के समान है, पार्वती सदा अपने पति (शिव) के साथ राम-नाम का जप करती रहती हैं।

हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को॥
नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥

नाम के प्रति पार्वती के हृदय की ऐसी प्रीति देखकर शिव हर्षित हो गए और उन्होंने स्त्रियों में भूषण रूप पार्वती को अपना भूषण बना लिया। (अर्थात उन्हें अपने अंग में धारण करके अर्धांगिनी बना लिया)। नाम के प्रभाव को शिव भली-भाँति जानते हैं, जिस (प्रभाव) के कारण कालकूट जहर ने उनको अमृत का फल दिया।

दो० - बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास॥ 19॥

रघुनाथ की भक्ति वर्षा ऋतु है, तुलसीदास कहते हैं कि उत्तम सेवकगण धान हैं और 'राम' नाम के दो सुंदर अक्षर सावन-भादो के महीने हैं॥ 19॥

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ॥
ससुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥

दोनों अक्षर मधुर और मनोहर हैं, जो वर्णमालारूपी शरीर के नेत्र हैं, भक्तों के जीवन हैं तथा स्मरण करने में सबके लिए सुलभ और सुख देनेवाले हैं और जो इस लोक में लाभ और परलोक में निर्वाह करते हैं।

कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती॥

ये कहने, सुनने और स्मरण करने में बहुत ही अच्छे हैं, तुलसीदास को तो राम-लक्ष्मण के समान प्यारे हैं। इनका ('र' और 'म' का) अलग-अलग वर्णन करने में प्रीति बिलगाती है (अर्थात बीज मंत्र की दृष्टि से इनके उच्चारण, अर्थ और फल में भिन्नता दिख पड़ती है), परंतु हैं ये जीव और ब्रह्म के समान स्वभाव से ही साथ रहनेवाले।

नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता॥
भगति सुतिय कल करन बिभूषन। जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन॥

ये दोनों अक्षर नर-नारायण के समान सुंदर भाई हैं, ये जगत का पालन और विशेष रूप से भक्तों की रक्षा करनेवाले हैं। ये भक्ति रूपिणी सुंदर स्त्री के कानों के सुंदर आभूषण (कर्णफूल) हैं और जगत के हित के लिए निर्मल चंद्रमा और सूर्य हैं।

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर बसुधा के॥
जन मन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से॥

ये सुंदर गति (मोक्ष) रूपी अमृत के स्वाद और तृप्ति के समान हैं, कच्छप और शेष के समान पृथ्वी के धारण करनेवाले हैं, भक्तों के मनरूपी सुंदर कमल में विहार करनेवाले भौंरे के समान हैं और जीभरूपी यशोदा के लिए कृष्ण और बलराम के समान हैं।

दो० - एकु छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥ 20॥

तुलसीदास कहते हैं - रघुनाथ के नाम के दोनों अक्षर बड़ी शोभा देते हैं, जिनमें से एक (रकार) छत्ररूप (रेफ) से और दूसरा (मकार) मुकुटमणि (अनुस्वार -) रूप से सब अक्षरों के ऊपर हैं॥ 20॥

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥

समझने में नाम और नामी दोनों एक-से हैं, किंतु दोनों में परस्पर स्वामी और सेवक के समान प्रीति है (अर्थात नाम और नामी में पूर्ण एकता होने पर भी जैसे स्वामी के पीछे सेवक चलता है, उसी प्रकार नाम के पीछे नामी चलते हैं। प्रभु राम अपने 'राम' नाम का ही अनुगमन करते हैं (नाम लेते ही वहाँ आ जाते हैं)। नाम और रूप दोनों ईश्वर की उपाधि हैं; ये (भगवान के नाम और रूप) दोनों अनिर्वचनीय हैं, अनादि हैं और सुंदर बुद्धि से ही इनका स्वरूप जानने में आता है।

को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू॥
देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥

इन (नाम और रूप) में कौन बड़ा है, कौन छोटा, यह कहना तो अपराध है। इनके गुणों का तारतम्य (कमी-ज्यादा) सुनकर साधु पुरुष स्वयं ही समझ लेंगे। रूप नाम के अधीन देखे जाते हैं, नाम के बिना रूप का ज्ञान नहीं हो सकता।

रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

कोई-सा विशेष रूप बिना उसका नाम जाने हथेली पर रखा हुआ भी पहचाना नहीं जा सकता और रूप के बिना देखे भी नाम का स्मरण किया जाए तो विशेष प्रेम के साथ वह रूप हृदय में आ जाता है।

नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥

नाम और रूप की गति की कहानी (विशेषता की कथा) अकथनीय है। वह समझने में सुखदायक है, परंतु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। निर्गुण और सगुण के बीच में नाम सुंदर साक्षी है और दोनों का यथार्थ ज्ञान करानेवाला चतुर दुभाषिया है।

दो० - राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥ 21॥

तुलसीदास कहते हैं, यदि तू भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला चाहता है, तो मुखरूपी द्वार की जीभरूपी देहली पर रामनामरूपी मणि-दीपक को रख॥ 21॥

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥

ब्रह्मा के बनाए हुए इस प्रपंच (दृश्य जगत) से भली-भाँति छूटे हुए वैराग्यवान मुक्त योगी पुरुष इस नाम को ही जीभ से जपते हुए जागते हैं और नाम तथा रूप से रहित अनुपम, अनिर्वचनीय, अनामय ब्रह्मसुख का अनुभव करते हैं।

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥

जो परमात्मा के गूढ़ रहस्य को (यथार्थ महिमा को) जानना चाहते हैं, वे (जिज्ञासु) भी नाम

को जीभ से जपकर उसे जान लेते हैं। (लौकिक सिद्धियों के चाहनेवाले अर्थार्थी) साधक लौ लगाकर नाम का जप करते हैं और अणिमादि (आठों) सिद्धियों को पाकर सिद्ध हो जाते हैं।

जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥

(संकट से घबराए हुए) आर्त भक्त नाम जप करते हैं, तो उनके बड़े भारी बुरे-बुरे संकट मिट जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं। जगत में चार प्रकार के (1-अर्थार्थी - धनादि की चाह से भजनेवाले, 2-आर्त - संकट की निवृत्ति के लिए भजनेवाले, 3-जिज्ञासु - भगवान को जानने की इच्छा से भजनेवाले, 4-ज्ञानी - भगवान को तत्त्व से जानकर स्वाभाविक ही प्रेम से भजनेवाले) रामभक्त हैं और चारों ही पुण्यात्मा, पापरहित और उदार हैं।

चहू चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥

चारों ही चतुर भक्तों को नाम का ही आधार है, इनमें ज्ञानी भक्त प्रभु को विशेष रूप से प्रिय हैं। यों तो चारों युगों में और चारों ही वेदों में नाम का प्रभाव है, परंतु कलियुग में विशेष रूप से है। इसमें तो (नाम को छोड़कर) दूसरा कोई उपाय ही नहीं है।

दो० - सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन॥ 22॥

जो सब प्रकार की कामनाओं से रहित और रामभक्ति के रस में लीन हैं, उन्होंने भी नाम के सुंदर प्रेमरूपी अमृत के सरोवर में अपने मन को मछली बना रखा है (अर्थात वे नामरूपी सुधा का निरंतर आस्वादन करते रहते हैं, क्षण भर भी उससे अलग होना नहीं चाहते)॥ 22॥

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरें मत बड़ नामु दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥

निर्गुण और सगुण ब्रह्म के दो स्वरूप हैं। ये दोनों ही अकथनीय, अथाह, अनादि और अनुपम हैं। मेरी सम्मति में नाम इन दोनों से बड़ा है, जिसने अपने बल से दोनों को अपने वश में कर रखा है।

प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की॥
एकु दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥
उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें॥
ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी॥

सज्जनगण इस बात को मुझ दास की ढिठाई या केवल काव्योक्ति न समझें। मैं अपने मन के विश्वास, प्रेम और रुचि की बात कहता हूँ। (निर्गुण और सगुण) दोनों प्रकार के ब्रह्म का ज्ञान अग्नि के समान है। निर्गुण उस अप्रकट अग्नि के समान है, जो काठ के अंदर है, परंतु दिखती नहीं; और सगुण उस प्रकट अग्नि के समान है, जो प्रत्यक्ष दिखती है।

अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥
नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥

ऐसे विकार रहित प्रभु के हृदय में रहते भी जगत के सब जीव दीन और दुःखी हैं। नाम का निरूपण करके (नाम के यथार्थ स्वरूप, महिमा, रहस्य और प्रभाव को जानकर) नाम का जतन करने से (श्रद्धापूर्वक नाम जपरूपी साधन करने से) वही ब्रह्म ऐसे प्रकट हो जाता है जैसे रत्न के जानने से उसका मूल्य।

दो० - निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥ 23॥

इस प्रकार निर्गुण से नाम का प्रभाव अत्यंत बड़ा है। अब अपने विचार के अनुसार कहता हूँ, कि नाम राम से भी बड़ा है॥ 23॥

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा॥

राम ने भक्तों के हित के लिए मनुष्य शरीर धारण करके स्वयं कष्ट सहकर साधुओं को सुखी किया, परंतु भक्तगण प्रेम के साथ नाम का जप करते हुए सहज ही में आनंद और कल्याण के घर हो जाते हैं।

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥

रिषि हित राम सुकेतुसुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी॥
सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू॥

राम ने एक तपस्वी की स्त्री (अहिल्या) को ही तारा, परंतु नाम ने करोड़ों दुष्टों की बिगड़ी बुद्धि को सुधार दिया। राम ने ऋषि विश्वामित्र के हित के लिए एक सुकेतु यक्ष की कन्या ताड़का की सेना और पुत्र (सुबाहु) सहित समाप्ति की; परंतु नाम अपने भक्तों के दोष, दुःख और दुराशाओं का इस तरह नाश कर देता है जैसे सूर्य रात्रि का। राम ने तो स्वयं शिव के धनुष को तोड़ा, परंतु नाम का प्रताप ही संसार के सब भयों का नाश करनेवाला है।

दंडक बन प्रभु कीन्ह सुहावन। जन मन अमित नाम किए पावन॥
निसिचर निकर दले रघुनंदन। नामु सकल कलि कलुष निकंदन॥

प्रभु राम ने दंडक वन को सुहावना बनाया, परंतु नाम ने असंख्य मनुष्यों के मनों को पवित्र कर दिया। रघुनाथ ने राक्षसों के समूह को मारा, परंतु नाम तो कलियुग के सारे पापों की जड़ उखाड़नेवाला है।

दो० - सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ॥ 24॥

रघुनाथ ने तो शबरी, जटायु आदि उत्तम सेवकों को ही मुक्ति दी; परंतु नाम ने अगनित दुष्टों का उद्धार किया। नाम के गुणों की कथा वेदों में प्रसिद्ध है॥ 24॥

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ। राखे सरन जान सबु कोऊ ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक बेद बर बिरिद बिराजे॥

राम ने सुग्रीव और विभीषण दोनों को ही अपनी शरण में रखा, यह सब कोई जानते हैं, परंतु नाम ने अनेक गरीबों पर कृपा की है। नाम का यह सुंदर विरद लोक और वेद में विशेष रूप से प्रकाशित है।

राम भालु कपि कटकु बटोरा। सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥
नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥

राम ने तो भालू और बंदरों की सेना बटोरी और समुद्र पर पुल बाँधने के लिए थोड़ा परिश्रम नहीं किया; परंतु नाम लेते ही संसार समुद्र सूख जाता है। सज्जनगण! मन में विचार कीजिए (कि दोनों में कौन बड़ा है)।

राम सकुल रन रावनु मारा। सीय सहित निज पुर पगु धारा॥
राजा रामु अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी॥
सेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती॥
फिरत सनेहँ मगन सुख अपनें। नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें॥

राम ने कुटुंब सहित रावण को युद्ध में मारा, तब सीता सहित उन्होंने अपने नगर (अयोध्या) में प्रवेश किया। राम राजा हुए, अवध उनकी राजधानी हुई, देवता और मुनि सुंदर वाणी से जिनके गुण गाते हैं। परंतु सेवक प्रेमपूर्वक नाम के स्मरण मात्र से बिना परिश्रम मोह की प्रबल सेना को जीतकर प्रेम में मग्न हुए अपने ही सुख में विचरते हैं, नाम के प्रसाद से उन्हें सपने में भी कोई चिंता नहीं सताती।

दो० - ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥ 25॥

इस प्रकार नाम ब्रह्म और राम दोनों से बड़ा है। यह वरदान देने वालों को भी वर देनेवाला है। शिव ने अपने हृदय में यह जानकर ही सौ करोड़ राम चरित्र में से इस 'राम' नाम को ग्रहण किया है॥ 25॥

नाम प्रसाद संभु अबिनासी। साजु अमंगल मंगल रासी॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥

नाम ही के प्रसाद से शिव अविनाशी हैं और अमंगल वेषवाले होने पर भी मंगल की राशि हैं। शुकदेव और सनकादि सिद्ध, मुनि, योगी गण नाम के ही प्रसाद से ब्रह्मानंद को भोगते हैं।

नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥

नारद ने नाम के प्रताप को जाना है। हरि सारे संसार को प्यारे हैं, (हरि को हर प्यारे हैं) और आप (नारद) हरि और हर दोनों को प्रिय हैं। नाम के जपने से प्रभु ने कृपा की,

जिससे प्रहलाद भक्त शिरोमणि हो गए।

ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥

ध्रुव ने ग्लानि से हरि नाम को जपा और उसके प्रताप से अचल अनुपम स्थान प्राप्त किया। हनुमान ने पवित्र नाम का स्मरण करके राम को अपने वश में कर रखा है।

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

नीच अजामिल, गज और गणिका भी हरि के नाम के प्रभाव से मुक्त हो गए। मैं नाम की बड़ाई कहाँ तक कहूँ, राम भी नाम के गुणों को नहीं गा सकते।

दो० - नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु॥ 26॥

कलियुग में राम का नाम कल्पतरु और कल्याण का निवास है, जिसको स्मरण करने से भाँग-सा (निकृष्ट) तुलसीदास तुलसी के समान (पवित्र) हो गया॥ 26॥

चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका॥
बेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू॥

(केवल कलियुग की ही बात नहीं है,) चारों युगों में, तीनों काल में और तीनों लोकों में नाम को जपकर जीव शोकरहित हुए हैं। वेद, पुराण और संतों का मत यही है कि समस्त पुण्यों का फल राम में (या राम नाम में) प्रेम होना है।

ध्यानु प्रथम जुग मख बिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥

पहले (सत्य) युग में ध्यान से, दूसरे (त्रेता) युग में यज्ञ से और द्वापर में पूजन से भगवान प्रसन्न होते हैं, परंतु कलियुग केवल पाप की जड़ और मलिन है, इसमें मनुष्यों का मन पापरूपी समुद्र में मछली बना हुआ है

नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥

राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥

ऐसे कराल (कलियुग के) काल में तो नाम ही कल्पवृक्ष है, जो स्मरण करते ही संसार के सब जंजालों को नाश कर देनेवाला है। कलियुग में यह राम नाम मनोवांछित फल देनेवाला है, परलोक का परम हितैषी और इस लोक का माता-पिता है

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥
कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू॥

कलियुग में न कर्म है, न भक्ति है और न ज्ञान ही है, राम नाम ही एक आधार है। कपट की खान कलियुगरूपी कालनेमि के लिए राम नाम ही बुद्धिमान और समर्थ हनुमान हैं।

दो० - राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल॥ 27॥

राम नाम नृसिंह भगवान है, कलियुग हिरण्यकशिपु है और जप करनेवाले जन प्रह्लाद के समान हैं, यह राम नाम देवताओं के शत्रु को मारकर जप करने वालों की रक्षा करेगा॥ 27॥

भायँ कुभायँ अनख आलस हूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥
सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा। करउँ नाइ रघुनाथहि माथा॥

अच्छे भाव (प्रेम) से, बुरे भाव (बैर) से, क्रोध से या आलस्य से, किसी तरह से भी नाम जपने से दसों दिशाओं में कल्याण होता है। उसी राम नाम का स्मरण करके और रघुनाथ को मस्तक नवाकर मैं राम के गुणों का वर्णन करता हूँ।

मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती॥
राम सुस्वामि कुसेवकु मोसो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो॥

वे मेरा सब तरह से सुधार लेंगे, जिनकी कृपा कृपा करने से नहीं अघाती। राम से उत्तम स्वामी और मुझ सरीखा बुरा सेवक! इतने पर भी उन दयानिधि ने अपनी ओर देखकर मेरा पालन किया है।

लोकहुँ बेद सुसाहिब रीती। बिनय सुनत पहिचानत प्रीती॥
गनी गरीब ग्राम नर नागर। पंडित मूढ़ मलीन उजागर॥

लोक और वेद में भी अच्छे स्वामी की यही रीति प्रसिद्ध है कि वह विनय सुनते ही प्रेम को पहचान लेता है। अमीर-गरीब, गँवार-नगर निवासी, पंडित-मूर्ख, बदनाम-यशस्वी...

सुकबि कुकबि निज मति अनुहारी। नृपहि सराहत सब नर नारी॥
साधु सुजान सुसील नृपाला। ईस अंस भव परम कृपाला॥

सुकवि-कुकवि, सभी नर-नारी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार राजा की सराहना करते हैं और साधु, बुद्धिमान, सुशील, ईश्वर के अंश से उत्पन्न कृपालु राजा - ।

सुनि सनमानहिं सबहि सुबानी। भनिति भगति नति गति पहिचानी॥
यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जान सिरोमनि कोसलराऊ॥

सबकी सुनकर और उनकी वाणी, भक्ति, विनय और चाल को पहचानकर सुंदर वाणी से सबका यथायोग्य सम्मान करते हैं। यह स्वभाव तो संसारी राजाओं का है, कोसलनाथ राम तो चतुरशिरोमणि हैं।

रीझत राम सनेह निसोतें। को जग मंद मलिनमति मोतें॥

राम तो विशुद्ध प्रेम से ही रीझते हैं, पर जगत में मुझसे बढ़कर मूर्ख और मलिन बुद्धि और कौन होगा?

दो० - सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किए जलजान जेहिं सचिव सुमति कपि भालु॥ 28(क)॥

तथापि कृपालु राम मुझ दुष्ट सेवक की प्रीति और रुचि को अवश्य रखेंगे, जिन्होंने पत्थरों को जहाज और बंदर-भालुओं को बुद्धिमान मंत्री बना लिया॥ 28(क)॥

हौंहु कहावत सबु कहत राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास॥ 28(ख)॥

सब लोग मुझे राम का सेवक कहते हैं और मैं भी कहलाता हूँ (कहने वालों का विरोध नहीं करता), कृपालु राम इस निंदा को सहते हैं कि सीतानाथ - जैसे स्वामी का तुलसीदास-सा सेवक है॥ 28(ख)॥

अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी॥

समुझि सहम मोहि अपडर अपनें। सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपनें॥

यह मेरी बहुत बड़ी ढिठाई और दोष है, मेरे पाप को सुनकर नरक ने भी नाक सिकोड़ ली है (अर्थात नरक में भी मेरे लिए ठौर नहीं है)। यह समझकर मुझे अपने ही कल्पित डर से डर हो रहा है, किंतु भगवान राम ने तो स्वप्न में भी इस पर (मेरी इस ढिठाई और दोष पर) ध्यान नहीं दिया।

सुनि अवलोकि सुचित चख चाही। भगति मोरि मति स्वामि सराही॥
कहत नसाइ होइ हियँ नीकी। रीझत राम जानि जन जी की॥

वरन मेरे प्रभु राम ने तो इस बात को सुनकर, देखकर और अपने सुचित्तरूपी चक्षु से निरीक्षण कर मेरी भक्ति और बुद्धि की सराहना की। क्योंकि कहने में चाहे बिगड़ जाए (अर्थात मैं चाहे अपने को भगवान का सेवक कहता-कहलाता रहूँ), परंतु हृदय में अच्छापन होना चाहिए। राम भी दास के हृदय की स्थिति जानकर रीझ जाते हैं।

रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥
जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली॥

प्रभु के चित्त में अपने भक्तों की हुई भूल-चूक याद नहीं रहती और उनके हृदय को सौ-सौ बार याद करते रहते हैं। जिस पाप के कारण उन्होंने बालि को व्याध की तरह मारा था, वैसी ही कुचाल फिर सुग्रीव ने चली।

सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहूँ सो न राम हियँ हेरी॥
ते भरतहि भेंटत सनमाने। राजसभाँ रघुबीर बखाने॥

वही करनी विभीषण की थी, परंतु राम ने स्वप्न में भी उसका मन में विचार नहीं किया। उलटे भरत से मिलने के समय रघुनाथ ने उनका सम्मान किया और राजसभा में भी उनके गुणों का बखान किया।

दो० - प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान॥ 29(क)॥

प्रभु तो वृक्ष के नीचे और बंदर डाली पर परंतु ऐसे बंदरों को भी उन्होंने अपने समान बना लिया। तुलसीदास कहते हैं कि राम-सरीखे शीलनिधान स्वामी कहीं भी नहीं हैं॥ 29(क)॥

राम निकाईं रावरी है सबही को नीक।
जौं यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक॥ 29(ख)॥

हे राम! आपकी अच्छाई से सभी का भला है। यदि यह बात सच है तो तुलसीदास का भी सदा कल्याण ही होगा॥ 29(ख)॥

एहि बिधि निज गुन दोष कहि सबहि बहुरि सिरु नाइ।
बरनउँ रघुबर बिसद जसु सुनि कलि कलुष नसाइ॥ 29(ग)॥

इस प्रकार अपने गुण-दोषों को कहकर और सबको फिर सिर नवाकर मैं रघुनाथ का निर्मल यश वर्णन करता हूँ, जिसके सुनने से कलियुग के पाप नष्ट हो जाते हैं॥ 29(ग)॥

जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई॥
कहिहउँ सोइ संबाद बखानी। सुनहुँ सकल सज्जन सुखु मानी॥

मुनि याज्ञवल्क्यजी ने जो सुहावनी कथा मुनिश्रेष्ठ भरद्वाज को सुनाई थी, उसी संवाद को मैं बखानकर कहूँगा; सब सज्जन सुख का अनुभव करते हुए उसे सुनें।

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा॥

शिव ने पहले इस सुहावने चरित्र को रचा, फिर कृपा करके पार्वती को सुनाया। वही चरित्र शिव ने काकभुशुंडि को रामभक्त और अधिकारी पहचानकर दिया।

तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥
ते श्रोता बकता समसीला। सवँदरसी जानहिं हरिलीला॥

उन काकभुशुंडि से फिर याज्ञवल्क्य ने पाया और उन्होंने फिर उसे भरद्वाज को गाकर सुनाया। वे दोनों वक्ता और श्रोता (याज्ञवल्क्य और भरद्वाज) समान शीलवाले और समदर्शी हैं और हरि की लीला को जानते हैं।

जानहिं तीनि काल निज ग्याना। करतल गत आमलक समाना॥
औरउ जे हरिभगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना॥

वे अपने ज्ञान से तीनों कालों की बातों को हथेली पर रखे हुए आँवले के समान (प्रत्यक्ष)

जानते हैं। और भी जो सुजान हरि भक्त हैं, वे इस चरित्र को नाना प्रकार से कहते, सुनते और समझते हैं।

दो॰ - मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥ 30(क)॥

फिर वही कथा मैंने वाराह क्षेत्र में अपने गुरु से सुनी, परंतु उस समय मैं लड़कपन के कारण बहुत बेसमझ था, इससे उसको समझा नहीं॥ 30(क)॥

श्रोता बकता ग्याननिधि कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझौं मैं जीव जड़ कलि मल ग्रसित बिमूढ़॥ 30(ख)॥

श्री राम की गूढ़ कथा के वक्ता और श्रोता ज्ञान के खजाने होते हैं। मैं कलियुग के पापों से ग्रसा हुआ महामूढ़ जड़ जीव भला उसको कैसे समझ सकता था?॥ 30(ख)॥

तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा॥
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरें मन प्रबोध जेहिं होई॥

तो भी गुरु ने जब बार-बार कथा कही, तब बुद्धि के अनुसार कुछ समझ में आई। वही अब मेरे द्वारा भाषा में रची जाएगी, जिससे मेरे मन को संतोष हो।

जस कछु बुधि बिबेक बल मेरें। तस कहिहउँ हियँ हरि के प्रेरें॥
निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥

जैसा कुछ मुझमें बुद्धि और विवेक का बल है, मैं हृदय में हरि की प्रेरणा से उसी के अनुसार कहूँगा। मैं अपने संदेह, अज्ञान और भ्रम को हरनेवाली कथा रचता हूँ, जो संसाररूपी नदी के पार करने के लिए नाव है।

बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष बिभंजनि॥
रामकथा कलि पंनग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी॥

रामकथा पंडितों को विश्राम देनेवाली, सब मनुष्यों को प्रसन्न करनेवाली और कलियुग के पापों का नाश करनेवाली है। रामकथा कलियुगरूपी साँप के लिए मोरनी है और विवेकरूपी अग्नि के प्रकट करने के लिए अरणि (मंथन की जानेवाली लकड़ी) है।

रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई॥
सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि॥

रामकथा कलियुग में सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाली कामधेनु गौ है और सज्जनों के लिए सुंदर संजीवनी जड़ी है। पृथ्वी पर यही अमृत की नदी है, जन्म-मरणरूपी भय का नाश करनेवाली और भ्रमरूपी मेढ़कों को खाने के लिए सर्पिणी है।

असुर सेन सम नरक निकंदिनि। साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि॥
संत समाज पयोधि रमा सी। बिस्व भार भर अचल छमा सी॥

यह रामकथा असुरों की सेना के समान नरकों का नाश करनेवाली और साधु- रूप देवताओं के कुल का हित करनेवाली पार्वत है। यह संत-समाजरूपी क्षीर समुद्र के लिए लक्ष्मी के समान है और संपूर्ण विश्व का भार उठाने में अचल पृथ्वी के समान है।

जम गन मुहँ मसि जग जमुना सी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी॥

यमदूतों के मुख पर कालिख लगाने के लिए यह जगत में यमुना के समान है और जीवों को मुक्ति देने के लिए मानो काशी ही है। यह राम को पवित्र तुलसी के समान प्रिय है और तुलसीदास के लिए हुलसी (तुलसीदास की माता) के समान हृदय से हित करनेवाली है।

सिवप्रिय मेकल सैल सुता सी। सकल सिद्धि सुख संपति रासी॥
सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। रघुबर भगति प्रेम परमिति सी॥

यह रामकथा शिव को नर्मदा के समान प्यारी है, यह सब सिद्धियों की तथा सुख-संपत्ति की राशि है। सद्‌गुणरूपी देवताओं के उत्पन्न और पालन-पोषण करने के लिए माता अदिति के समान है। रघुनाथ की भक्ति और प्रेम की परम सीमा-सी है।

दो० - रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु॥ 31॥

तुलसीदास कहते हैं कि रामकथा मंदाकिनी नदी है, सुंदर (निर्मल) चित्त चित्रकूट है, और सुंदर स्नेह ही वन है, जिसमें सीताराम विहार करते हैं॥ 31॥

रामचरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू॥
जग मंगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥

राम का चरित्र सुंदर चिंतामणि है और संतों की सुबुद्धिरूपी स्त्री का सुंदर श्रंगार है। राम के गुण-समूह जगत का कल्याण करनेवाले और मुक्ति, धन, धर्म और परमधाम के देनेवाले हैं।

सदगुर ग्यान बिराग जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के॥
जननि जनक सिय राम प्रेम के। बीज सकल ब्रत धरम नेम के॥

ज्ञान, वैराग्य और योग के लिए सद्गुरु हैं और संसाररूपी भयंकर रोग का नाश करने के लिए देवताओं के वैद्य (अश्विनीकुमार) के समान हैं। ये सीताराम के प्रेम के उत्पन्न करने के लिए माता-पिता हैं और संपूर्ण व्रत, धर्म और नियमों के बीज हैं।

समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के॥
सचिव सुभट भूपति बिचार के। कुंभज लोभ उदधि अपार के॥

पाप, संताप और शोक का नाश करनेवाले तथा इस लोक और परलोक के प्रिय पालन करनेवाले हैं। विचार रूपी राजा के शूरवीर मंत्री और लोभरूपी अपार समुद्र के सोखने के लिए अगस्त्य मुनि हैं।

काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जन मन बन के॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के॥

भक्तों के मनरूपी वन में बसनेवाले काम, क्रोध और कलियुग के पापरूपी हाथियों को मारने के लिए सिंह के बच्चे हैं। शिव के पूज्य और प्रियतम अतिथि हैं और दरिद्रतारूपी दावानल के बुझाने के लिए कामना पूर्ण करनेवाले मेघ हैं।

मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥
हरन मोह तम दिनकर कर से। सेवक सालि पाल जलधर से॥

विषयरूपी साँप का जहर उतारने के लिए मंत्र और महामणि हैं। ये ललाट पर लिखे हुए कठिनता से मिटनेवाले बुरे लेखों (मंद प्रारब्ध) को मिटा देनेवाले हैं। अज्ञानरूपी अंधकार को हरण करने के लिए सूर्य किरणों के समान और सेवकरूपी धान के पालन करने में मेघ

के समान हैं।

अभिमत दानि देवतरु बर से। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से॥
सुकबि सरद नभ मन उडगन से। रामभगत जन जीवन धन से॥

मनोवांछित वस्तु देने में श्रेष्ठ कल्पवृक्ष के समान हैं और सेवा करने में हरि-हर के समान सुलभ और सुख देनेवाले हैं। सुकविरूपी शरद् ऋतु के मनरूपी आकाश को सुशोभित करने के लिए तारागण के समान और राम के भक्तों के तो जीवन धन ही हैं।

सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जग हित निरुपधि साधु लोग से॥
सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से॥

संपूर्ण पुण्यों के फल महान भोगों के समान हैं। जगत का छलरहित हित करने में साधु-संतों के समान हैं। सेवकों के मनरूपी मानसरोवर के लिए हंस के समान और पवित्र करने में गंगा की तरंगमालाओं के समान हैं।

दो० - कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाषंड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड॥ 32(क)॥

राम के गुणों के समूह कुमार्ग, कुतर्क, कुचाल और कलियुग के कपट, दंभ और पाखंड को जलाने के लिए वैसे ही हैं, जैसे ईंधन के लिए प्रचंड अग्नि॥ 32(क)॥

रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु॥ 32(ख)॥

रामचरित्र पूर्णिमा के चंद्रमा की किरणों के समान सभी को सुख देनेवाले हैं, परंतु सज्जनरूपी कुमुदिनी और चकोर के चित्त के लिए तो विशेष हितकारी और महान लाभदायक हैं॥ 32(ख)॥

कीन्हि प्रस्न जेहि भाँति भवानी। जेहि बिधि संकर कहा बखानी॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबंध बिचित्र बनाई॥

जिस प्रकार पार्वती ने शिव से प्रश्न किया और जिस प्रकार से शिव ने विस्तार से उसका उत्तर कहा, वह सब कारण मैं विचित्र कथा की रचना करके गाकर कहूँगा।

जेहिं यह कथा सुनी नहिं होई। जनि आचरजु करै सुनि सोई॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। नहिं आचरजु करहिं अस जानी॥
रामकथा कै मिति जग नाहीं। असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं॥
नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥

जिसने यह कथा पहले न सुनी हो, वह इसे सुनकर आश्चर्य न करे। जो ज्ञानी इस विचित्र कथा को सुनते हैं, वे यह जानकर आश्चर्य नहीं करते कि संसार में रामकथा की कोई सीमा नहीं है। उनके मन में ऐसा विश्वास रहता है। नाना प्रकार से राम के अवतार हुए हैं और सौ करोड़ तथा अपार रामायणें हैं।

कलपभेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥
करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिअ कथा सादर रति मानी॥

कल्पभेद के अनुसार हरि के सुंदर चरित्रों को मुनीश्वरों ने अनेकों प्रकार से गाया है। हृदय में ऐसा विचार कर संदेह न कीजिए और आदर सहित प्रेम से इस कथा को सुनिए।

दो० - राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल बिचार॥ 33॥

श्री राम अनंत हैं, उनके गुण भी अनंत हैं और उनकी कथाओं का विस्तार भी असीम है। अतएव जिनके विचार निर्मल हैं, वे इस कथा को सुनकर आश्चर्य नहीं मानेंगे॥ 33॥

एहि बिधि सब संसय करि दूरी। सिर धरि गुर पद पंकज धूरी॥
पुनि सबही बिनवउँ कर जोरी। करत कथा जेहिं लाग न खोरी॥

इस प्रकार सब संदेहों को दूर करके और गुरु के चरणकमलों की रज को सिर पर धारण करके मैं पुनः हाथ जोड़कर सबकी विनती करता हूँ, जिससे कथा की रचना में कोई दोष स्पर्श न करने पावे।

सादर सिवहि नाइ अब माथा। बरनउँ बिसद राम गुन गाथा॥
संबत सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥

अब मैं आदरपूर्वक शिव को सिर नवाकर राम के गुणों की निर्मल कथा कहता हूँ। हरि के चरणों पर सिर रखकर संवत 1631 में इस कथा का आरंभ करता हूँ।

नौमी भौम बार मधुमासा। अवधपुरीं यह चरित प्रकासा॥
जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल जहाँ चलि आवहिं॥

चैत्र मास की नवमी तिथि मंगलवार को अयोध्या में यह चरित्र प्रकाशित हुआ। जिस दिन राम का जन्म होता है, वेद कहते हैं कि उस दिन सारे तीर्थ वहाँ (अयोध्या में) चले आते हैं।

असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं रघुनायक सेवा॥
जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम कल कीरति गाना॥

असुर-नाग, पक्षी, मनुष्य, मुनि और देवता सब अयोध्या में आकर रघुनाथ की सेवा करते हैं। बुद्धिमान लोग जन्म का महोत्सव मनाते हैं और राम की सुंदर कीर्ति का गान करते हैं।

दो० - मज्जहिं सज्जन बृंद बहु पावन सरजू नीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर सुंदर स्याम सरीर॥ 34॥

सज्जनों के बहुत-से समूह उस दिन सरयू के पवित्र जल में स्नान करते हैं और हृदय में सुंदर श्याम शरीर रघुनाथ का ध्यान करके उनके नाम का जप करते हैं॥ 34॥

दरस परस मज्जन अरु पाना। हरइ पाप कह बेद पुराना॥
नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकइ सारदा बिमल मति॥

वेद-पुराण कहते हैं कि सरयू का दर्शन, स्पर्श, स्नान और जलपान पापों को हरता है। यह नदी बड़ी ही पवित्र है, इसकी महिमा अनंत है, जिसे विमल बुद्धिवाली सरस्वती भी नहीं कह सकतीं।

राम धामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त बिदित अति पावनि॥
चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजें तनु नहिं संसारा॥

यह शोभायमान अयोध्यापुरी राम के परमधाम की देनेवाली है, सब लोकों में प्रसिद्ध है और अत्यंत पवित्र है। जगत में चार प्रकार के अनंत जीव हैं, इनमें से जो कोई भी अयोध्या में शरीर छोड़ते हैं, वे फिर संसार में नहीं आते।

सब बिधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी॥

बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥

इस अयोध्यापुरी को सब प्रकार से मनोहर, सब सिद्धियों की देनेवाली और कल्याण की खान समझकर मैंने इस निर्मल कथा का आरंभ किया, जिसके सुनने से काम, मद और दंभ नष्ट हो जाते हैं।

रामचरितमानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा॥
मन करि बिषय अनल बन जरई। होई सुखी जौं एहिं सर परई॥

इसका नाम रामचरितमानस है, जिसके सुनते ही कानों को शांति मिलती है। मनरूपी हाथी विषयरूपी दावानल में जल रहा है, वह यदि इस रामचरितमानस रूपी सरोवर में आ पड़े तो सुखी हो जाए।

रामचरितमानस मुनि भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥
त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन॥

यह रामचरितमानस मुनियों का प्रिय है, इस सुहावने और पवित्र मानस की शिव ने रचना की। यह तीनों प्रकार के दोषों, दुःखों और दरिद्रता को तथा कलियुग की कुचालों और सब पापों का नाश करनेवाला है।

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥
तातें रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर॥

महादेव ने इसको रचकर अपने मन में रखा था और सुअवसर पाकर पार्वती से कहा। इसी से शिव ने इसको अपने हृदय में देखकर और प्रसन्न होकर इसका सुंदर 'रामचरितमानस' नाम रखा।

कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई॥

मैं उसी सुख देनेवाली सुहावनी रामकथा को कहता हूँ, हे सज्जनो! आदरपूर्वक मन लगाकर इसे सुनिए।

दो॰ - जस मानस जेहि बिधि भयउ जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहउँ प्रसंग सब सुमिरि उमा बृषकेतु॥ 35॥

यह रामचरितमानस जैसा है, जिस प्रकार बना है और जिस हेतु से जगत में इसका प्रचार हुआ, अब वही सब कथा मैं उमा-महेश्वर का स्मरण करके कहता हूँ॥ 35॥

संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी॥

शिव की कृपा से उसके हृदय में सुंदर बुद्धि का विकास हुआ, जिससे यह तुलसीदास रामचरितमानस का कवि हुआ। अपनी बुद्धि के अनुसार तो वह इसे मनोहर ही बनाता है, किंतु फिर भी हे सज्जनो! सुंदर चित्त से सुनकर इसे आप सुधार लीजिए।

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥

सुंदर बुद्धि भूमि है, हृदय ही उसमें गहरा स्थान है, वेद-पुराण समुद्र हैं और साधु-संत मेघ हैं। वे (साधुरूपी मेघ) राम के सुयशरूपी सुंदर, मधुर, मनोहर और मंगलकारी जल की वर्षा करते हैं।

लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई॥

सगुण लीला का जो विस्तार से वर्णन करते हैं, वही राम-सुयशरूपी जल की निर्मलता है, जो मल का नाश करती है और जिस प्रेमाभक्ति का वर्णन नहीं किया जा सकता, वही इस जल की मधुरता और सुंदर शीतलता है।

सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भगत जन जीवन सोई॥
मेधा महि गत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥

वह (राम-सुयशरूपी) जल सत्कर्मरूपी धान के लिए हितकर है और राम के भक्तों का तो जीवन ही है। वह पवित्र जल बुद्धिरूपी पृथ्वी पर गिरा और सिमटकर सुहावने कानरूपी मार्ग से चला और मानस रूपी श्रेष्ठ स्थान में भरकर वहीं स्थिर हो गया। वही पुराना होकर सुंदर, रुचिकर, शीतल और सुखदायी हो गया।

दो० - सुठि सुंदर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि।

तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥ 36॥

इस कथा में बुद्धि से विचारकर जो चार अत्यंत सुंदर और उत्तम संवाद (भुशुंडि-गरुड़, शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज और तुलसीदास और संत) रचे हैं, वही इस पवित्र और सुंदर सरोवर के चार मनोहर घाट हैं॥ 36॥

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा॥

सात कांड ही इस मानस सरोवर की सुंदर सात सीढ़ियाँ हैं, जिनको ज्ञानरूपी नेत्रों से देखते ही मन प्रसन्न हो जाता है। रघुनाथ की निर्गुण और निर्बाध महिमा का जो वर्णन किया जाएगा, वही इस सुंदर जल की अथाह गहराई है।

राम सीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई॥

राम और सीता का यश अमृत के समान जल है। इसमें जो उपमाएँ दी गई हैं, वही तरंगों का मनोहर विलास है। सुंदर चौपाइयाँ ही इसमें घनी फैली हुई पुरइन (कमलिनी) हैं और कविता की युक्तियाँ सुंदर मणि उत्पन्न करनेवाली सुहावनी सीपियाँ हैं।

छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा॥

जो सुंदर छंद, सोरठे और दोहे हैं, वही इसमें बहुरंगे कमलों के समूह सुशोभित हैं। अनुपम अर्थ, ऊँचे भाव और सुंदर भाषा ही पराग (पुष्परज), मकरंद (पुष्परस) और सुगंध हैं।

सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ग्यान बिराग बिचार मराला॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहुभाँती॥

सत्कर्मों (पुण्यों) के पुंज भौंरों की सुंदर पंक्तियाँ हैं, ज्ञान, वैराग्य और विचार हंस हैं। कविता की ध्वनि वक्रोक्ति, गुण और जाति ही अनेकों प्रकार की मनोहर मछलियाँ हैं।

अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी॥
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा॥

अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष - ये चारों, ज्ञान-विज्ञान का विचार के कहना, काव्य के नौ रस, जप, तप, योग और वैराग्य के प्रसंग - ये सब इस सरोवर के सुंदर जलचर जीव हैं।

सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जलबिहग समाना॥
संतसभा चहुँ दिसि अवँराई। श्रद्धा रितु बसंत सम गाई॥

सुकृती जनों के, साधुओं के और रामनाम के गुणों का गान ही विचित्र जल पक्षियों के समान है। संतों की सभा ही इस सरोवर के चारों ओर की अमराई हैं और श्रद्धा वसंत ऋतु के समान कही गई है।

भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा दया दम लता बिताना॥
सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरि पद रति रस बेद बखाना॥

नाना प्रकार से भक्ति का निरूपण और क्षमा, दया तथा दम (इंद्रिय निग्रह) लताओं के मंडप हैं। मन का निग्रह, यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह), नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान) ही उनके फूल हैं, ज्ञान फल है और हरि के चरणों में प्रेम ही इस ज्ञानरूपी फल का रस है। ऐसा वेदों ने कहा है।

औरउ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहुबरन बिहंगा॥

इस (रामचरितमानस) में और भी जो अनेक प्रसंगों की कथाएँ हैं, वे ही इसमें तोते, कोयल आदि रंग-बिरंगे पक्षी हैं।

दो॰ - पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग बिहारु।
माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु॥ 37॥

कथा में जो रोमांच होता है, वही वाटिका, बाग और वन हैं और जो सुख होता है, वही सुंदर पक्षियों का विहार है। निर्मल मन ही माली है, जो प्रेमरूपी जल से सुंदर नेत्रों द्वारा उनको सींचता है॥ 37॥

जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुरबर मानस अधिकारी॥

जो लोग इस चरित्र को सावधानी से गाते हैं, वे ही इस तालाब के चतुर रखवाले हैं और जो स्त्री-पुरुष सदा आदरपूर्वक इसे सुनते हैं, वे ही इस सुंदर मानस के अधिकारी उत्तम देवता

हैं।

अति खल जे बिषई बग कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा॥
संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न बिषय कथा रस नाना॥

जो अति दुष्ट और विषयी हैं, वे अभागे बगुले और कौए हैं, जो इस सरोवर के समीप नहीं जाते, क्योंकि यहाँ (इस मानस सरोवर में) घोंघे, मेंढ़क और सेवार के समान विषय-रस की नाना कथाएँ नहीं हैं।

तेहि कारन आवत हियँ हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥
आवत ऐहिं सर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई॥

इसी कारण बेचारे कौवे और बगुलेरूपी विषयी लोग यहाँ आते हुए हृदय में हार मान जाते हैं। क्योंकि इस सरोवर तक आने में कठिनाइयाँ बहुत हैं। राम की कृपा बिना यहाँ नहीं आया जाता।

कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला॥
गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला॥

घोर कुसंग ही भयानक बुरा रास्ता है; उन कुसंगियों के वचन ही बाघ, सिंह और साँप हैं। घर के कामकाज और गृहस्थी के भाँति-भाँति के जंजाल ही अत्यंत दुर्गम बड़े-बड़े पहाड़ हैं।

बन बहु बिषम मोह मद माना। नदीं कुतर्क भयंकर नाना॥

मोह, मद और मान ही बहुत-से बीहड़ वन हैं और नाना प्रकार के कुतर्क ही भयानक नदियाँ हैं।

दो॰ - जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ॥ 38॥

जिनके पास श्रद्धारूपी राह खर्च नहीं है और संतों का साथ नहीं है और जिनको रघुनाथ प्रिय नहीं हैं, उनके लिए यह मानस अत्यंत ही अगम है। 38॥

जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नीद जुड़ाई होई॥

जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। गएहुँ न मज्जन पाव अभागा॥

यदि कोई मनुष्य कष्ट उठाकर वहाँ तक पहुँच भी जाए, तो वहाँ जाते ही उसे नींदरूपी जूड़ी आ जाती है। हृदय में मूर्खतारूपी बड़ा कड़ा जाड़ा लगने लगता है, जिससे वहाँ जाकर भी वह अभागा स्नान नहीं कर पाता।

करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवइ समेत अभिमाना।
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निंदा करि ताहि बुझावा॥

उससे उस सरोवर में स्नान और उसका जलपान तो किया नहीं जाता, वह अभिमान सहित लौट आता है। फिर यदि कोई उससे (वहाँ का हाल) पूछने आता है, तो वह (अपने अभाग्य की बात न कहकर) सरोवर की निंदा करके उसे समझाता है।

सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही॥
सोइ सादर सर मज्जनु करई। महा घोर त्रयताप न जरई॥

ये सारे विघ्न उसको नहीं व्यापते (बाधा नहीं देते) जिसे राम सुंदर कृपा की दृष्टि से देखते हैं। वही आदरपूर्वक इस सरोवर में स्नान करता है और महान भयानक त्रिताप से (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तापों से) नहीं जलता।

ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह कें राम चरन भल भाऊ॥
जो नहाइ चह एहिं सर भाई। सो सतसंग करउ मन लाई॥

जिनके मन में राम के चरणों में सुंदर प्रेम है, वे इस सरोवर को कभी नहीं छोड़ते। हे भाई! जो इस सरोवर में स्नान करना चाहे, वह मन लगाकर सत्संग करे।

अस मानस मानस चख चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही॥
भयउ हृदयँ आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥

ऐसे मानस-सरोवर को हृदय के नेत्रों से देखकर और उसमें गोता लगाकर कवि की बुद्धि निर्मल हो गई, हृदय में आनंद और उत्साह भर गया और प्रेम तथा आनंद का प्रवाह उमड़ आया।

चली सुभग कबिता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो॥

सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक बेद मत मंजुल कूला॥

उससे वह सुंदर कवितारूपी नदी बह निकली, जिसमें राम का निर्मल यशरूपी जल भरा है। इस (कवितारूपिणी नदी) का नाम सरयू है, जो संपूर्ण सुंदर मंगलों की जड़ है। लोकमत और वेदमत इसके दो सुंदर किनारे हैं।

नदी पुनीत सुमानस नंदिनि। कलिमल तृन तरु मूल निकंदिनि॥

यह सुंदर-मानस सरोवर की कन्या सरयू नदी बड़ी पवित्र है और कलियुग के पापरूपी तिनकों और वृक्षों को जड़ से उखाड़ फेंकनेवाली है।

दो० - श्रोता त्रिबिध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल।
संतसभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल॥ 39॥

तीनों प्रकार के श्रोताओं का समाज ही इस नदी के दोनों किनारों पर बसे हुए पुरवे, गाँव और नगर हैं और संतों की सभा ही सब सुंदर मंगलों की जड़ अनुपम अयोध्या है॥ 39॥

रामभगति सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानदु सोन सुहावन॥

सुंदर कीर्तिरूपी सुहावनी सरयू रामभक्तिरूपी गंगा में जा मिलीं। छोटे भाई लक्ष्मण सहित राम के युद्ध का पवित्र यशरूपी सुहावना महानद सोन उसमें आ मिला।

जुग बिच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा॥
त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी॥

दोनों के बीच में भक्तिरूपी गंगा की धारा ज्ञान और वैराग्य के सहित शोभित हो रही है। ऐसी तीनों तापों को डरानेवाली यह तिमुहानी नदी रामस्वरूप रूपी समुद्र की ओर जा रही है।

मानस मूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन मन पावन करिही॥
बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर तीर बन बागा॥

इसका मूल मानस है और यह गंगा में मिली है, इसलिए यह सुननेवाले सज्जनों के मन को पवित्र कर देगी। इसके बीच-बीच में जो भिन्न-भिन्न प्रकार की विचित्र कथाएँ हैं, वे ही

मानो नदी तट के आस-पास के वन और बाग हैं।

उमा महेस बिबाह बराती। ते जलचर अगनित बहुभाँती॥
रघुबर जनम अनंद बधाई। भवँर तरंग मनोहरताई॥

पार्वती और शिव के विवाह के बाराती इस नदी में बहुत प्रकार के असंख्य जलचर जीव हैं। रघुनाथ के जन्म की आनंद-बधाइयाँ ही इस नदी के भँवर और तरंगों की मनोहरता है।

दो० - बालचरित चहु बंधु के बनज बिपुल बहुरंग।
नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारि बिहंग॥ 40॥

चारों भाइयों के जो बालचरित हैं, वे ही इसमें खिले हुए रंग-बिरंगे बहुत-से कमल हैं। महाराज दशरथ तथा उनकी रानियों और कुटुंबियों के सत्कर्म ही भ्रमर और जल-पक्षी हैं॥ 40॥

सीय स्वयंबर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई॥
नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिबेका॥

सीता के स्वयंवर की जो सुंदर कथा है, वह इस नदी में सुहावनी छवि छा रही है। अनेकों सुंदर विचारपूर्ण प्रश्न ही इस नदी की नावें हैं और उनके विवेकयुक्त उत्तर ही चतुर केवट हैं।

सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम बर बानी॥

इस कथा को सुनकर पीछे जो आपस में चर्चा होती है, वही इस नदी के सहारे-सहारे चलनेवाले यात्रियों का समाज शोभा पा रहा है। परशुराम का क्रोध इस नदी की भयानक धारा है और राम के श्रेष्ठ वचन ही सुंदर बँधे हुए घाट हैं।

सानुज राम बिबाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू॥
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं॥

भाइयों सहित राम के विवाह का उत्साह ही इस कथा नदी की कल्याणकारिणी बाढ़ है, जो सभी को सुख देनेवाली है। इसके कहने-सुनने में जो हर्षित और पुलकित होते हैं, वे ही

पुण्यात्मा पुरुष हैं, जो प्रसन्न मन से इस नदी में नहाते हैं।

राम तिलक हित मंगल साजा। परब जोग जनु जुरे समाजा।
काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी॥

राम के राजतिलक के लिए जो मंगल-साज सजाया गया, वही मानो पर्व के समय इस नदी पर यात्रियों के समूह इकट्ठे हुए हैं। कैकेयी की कुबुद्धि ही इस नदी में काई है, जिसके फलस्वरूप बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ी।

दो० - समन अमित उतपात सब भरत चरित जपजाग।
कलि अघ खल अवगुन कथन ते जलमल बग काग॥ 41॥

संपूर्ण अनगिनत उत्पातों को शांत करनेवाला भरत का चरित्र नदी-तट पर किया जानेवाला जपयज्ञ है। कलियुग के पापों और दुष्टों के अवगुणों के जो वर्णन हैं, वे ही इस नदी के जल का कीचड़ और बगुले-कौए हैं॥ 41॥

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी॥
हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू॥

यह कीर्तिरूपिणी नदी छहों ऋतुओं में सुंदर है। सभी समय यह परम सुहावनी और अत्यंत पवित्र है। इसमें शिव-पार्वती का विवाह हेमंत ऋतु है। राम के जन्म का उत्सव सुखदायी शिशिर ऋतु है।

बरनब राम बिबाह समाजू। सो मुद मंगलमय रितुराजू॥
ग्रीषम दुसह राम बनगवनू। पंथकथा खर आतप पवनू॥

राम के विवाह समाज का वर्णन ही आनंद-मंगलमय ऋतुराज वसंत है। राम का वनगमन दुःसह ग्रीष्म ऋतु है और मार्ग की कथा ही कड़ी धूप और लू है।

बरषा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमंगलकारी॥
राम राज सुख बिनय बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई॥

राक्षसों के साथ घोर युद्ध ही वर्षा ऋतु है, जो देवकुलरूपी धान के लिए सुंदर कल्याण करनेवाली है। राम के राज्यकाल का जो सुख, विनम्रता और बड़ाई है, वही निर्मल सुख

देनेवाली सुहावनी शरद् ऋतु है।

सती सिरोमनि सिय गुन गाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा॥
भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई॥

सती-शिरोमणि सीता के गुणों की जो कथा है, वही इस जल का निर्मल और अनुपम गुण है। भरत का स्वभाव इस नदी की सुंदर शीतलता है, जो सदा एक-सी रहती है और जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

दो॰ - अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास।
भायप भलि चहु बंधु की जल माधुरी सुबास॥ 42॥

चारों भाइयों का परस्पर देखना, बोलना, मिलना, एक-दूसरे से प्रेम करना, हँसना और सुंदर भाईपना इस जल की मधुरता और सुगंध है॥ 42॥

आरति बिनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारि न थोरी॥
अदभुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पिआस मनोमल हारी॥

मेरा आर्तभाव, विनय और दीनता इस सुंदर और निर्मल जल का कम हलकापन नहीं है। यह जल बड़ा ही अनोखा है, जो सुनने से ही गुण करता है और आशारूपी प्यास को और मन के मैल को दूर कर देता है।

राम सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी॥
भव श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा॥

यह जल राम के सुंदर प्रेम को पुष्ट करता है, कलियुग के समस्त पापों और उनसे होनेवाली ग्लानि को हर लेता है। संसार क श्रम को सोख लेता है, संतोष को भी संतुष्ट करता है और पाप, ताप, दरिद्रता और दोषों को नष्ट कर देता है।

काम कोह मद मोह नसावन। बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन॥
सादर मज्जन पान किए तें। मिटहिं पाप परिताप हिए तें॥

यह जल काम, क्रोध, मद और मोह का नाश करनेवाला और निर्मल ज्ञान और वैराग्य को बढ़ानेवाला है। इसमें आदरपूर्वक स्नान करने से और इसे पीने से हृदय में रहनेवाले सब

पाप-ताप मिट जाते हैं।

जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल बिगोए॥
तृषित निरखि रबि कर भव बारी। फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी॥

जिन्होंने इस जल से अपने हृदय को नहीं धोया, वे कायर कलिकाल के द्वारा ठगे गए। जैसे प्यासा हिरन सूर्य की किरणों के रेत पर पड़ने से उत्पन्न हुए जल के भ्रम को वास्तविक जल समझकर पीने को दौड़ता है और जल न पाकर दुःखी होता है, वैसे ही वे जीव भी दुःखी होंगे।

दो॰ - मति अनुहारि सुबारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी संकरहि कह कबि कथा सुहाइ॥ 43(क)॥

अपनी बुद्धि के अनुसार इस सुंदर जल के गुणों को विचार कर, उसमें अपने मन को स्नान कराकर और भवानी-शंकर को स्मरण करके कवि (तुलसीदास) सुंदर कथा कहता है॥ 43(क)॥

अब रघुपति पद पंकरुह हियँ धरि पाइ प्रसाद।
कहउँ जुगल मुनिबर्य कर मिलन सुभग संबाद॥ 43(ख)॥

मैं अब रघुनाथ के चरण कमलों को हृदय में धारण कर और उनका प्रसाद पाकर दोनों श्रेष्ठ मुनियों के मिलन का सुंदर संवाद वर्णन करता हूँ॥ 43(ख)॥

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहि राम पद अति अनुरागा॥
तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना॥

भरद्वाज मुनि प्रयाग में बसते हैं, उनका राम के चरणों में अत्यंत प्रेम है। वे तपस्वी, निगृहीत चित्त, जितेंद्रिय, दया के निधान और परमार्थ के मार्ग में बड़े ही चतुर हैं।

माघ मकरगत रबि जब होई। तीरथपतिहिं आव सब कोई॥
देव दनुज किंनर नर श्रेनीं। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं॥

माघ में जब सूर्य मकर राशि पर जाते हैं तब सब लोग तीर्थराज प्रयाग को आते हैं। देवता, दैत्य, किन्नर और मनुष्यों के समूह सब आदरपूर्वक त्रिवेणी में स्नान करते हैं।

पूजहिं माधव पद जलजाता। परसि अखय बटु हरषहिं गाता॥
भरद्वाज आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिबर मन भावन॥

वेणीमाधव के चरणकमलों को पूजते हैं और अक्षयवट का स्पर्श कर उनके शरीर पुलकित होते हैं। भरद्वाज का आश्रम बहुत ही पवित्र, परम रमणीय और श्रेष्ठ मुनियों के मन को भानेवाला है।

तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथराजा॥
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परसपर हरि गुन गाहा॥

तीर्थराज प्रयाग में जो स्नान करने जाते हैं, उन ऋषि-मुनियों का समाज वहाँ (भरद्वाज के आश्रम में) जुटता है। प्रातःकाल सब उत्साहपूर्वक स्नान करते हैं और फिर परस्पर भगवान के गुणों की कथाएँ कहते हैं।

दो० - ब्रह्म निरूपन धरम बिधि बरनहिं तत्त्व बिभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ग्यान बिराग॥ 44॥

ब्रह्म का निरूपण, धर्म का विधान और तत्त्वों के विभाग का वर्णन करते हैं तथा ज्ञान-वैराग्य से युक्त भगवान की भक्ति का कथन करते हैं॥ 44॥

एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं॥
प्रति संबत अति होइ अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृंदा॥

इसी प्रकार माघ के महीनेभर स्नान करते हैं और फिर सब अपने-अपने आश्रमों को चले जाते हैं। हर साल वहाँ इसी तरह बड़ा आनंद होता है। मकर में स्नान करके मुनिगण चले जाते हैं।

एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए॥
जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी॥

एक बार पूरे मकर भर स्नान करके सब मुनीश्वर अपने-अपने आश्रमों को लौट गए। परम ज्ञानी याज्ञवल्क्य मुनि को चरण पकड़कर भरद्वाज ने रख लिया।

सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे॥
करि पूजा मुनि सुजसु बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी॥

आदरपूर्वक उनके चरण कमल धोए और बड़े ही पवित्र आसन पर उन्हें बैठाया। पूजा करके मुनि याज्ञवल्क्य के सुयश का वर्णन किया और फिर अत्यंत पवित्र और कोमल वाणी से बोले -

नाथ एक संसउ बड़ मोरें। करगत बेदतत्त्व सबु तोरें॥
कहत सो मोहि लागत भय लाजा। जौं न कहउँ बड़ होइ अकाजा॥

हे नाथ! मेरे मन में एक बड़ा संदेह है; वेदों का तत्त्व सब आपकी मुट्ठी में है पर उस संदेह को कहते मुझे भय और लाज आती है और यदि नहीं कहता तो बड़ी हानि होती है।

दो० - संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न बिमल बिबेक उर गुर सन किएँ दुराव॥ 45॥

हे प्रभो! संत लोग ऐसी नीति कहते हैं और वेद, पुराण तथा मुनिजन भी यही बतलाते हैं कि गुरु के साथ छिपाव करने से हृदय में निर्मल ज्ञान नहीं होता॥ 45॥

अस बिचारि प्रगटउँ निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू॥
राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा॥

यही सोचकर मैं अपना अज्ञान प्रकट करता हूँ। हे नाथ! सेवक पर कृपा करके इस अज्ञान का नाश कीजिए। संतों, पुराणों और उपनिषदों ने राम नाम के असीम प्रभाव का गान किया है।

संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ग्यान गुन रासी॥
आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत परम पद लहहीं॥

कल्याण-स्वरूप, ज्ञान और गुणों की राशि, अविनाशी भगवान शंभु निरंतर राम नाम का जप करते रहते हैं। संसार में चार जाति के जीव हैं, काशी में मरने से सभी परम पद को प्राप्त करते हैं।

सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेसु करत करि दाया॥
रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही॥

हे मुनिराज! वह भी राम (नाम) की ही महिमा है, क्योंकि शिव दया करके (काशी में मरनेवाले जीव को) राम नाम का ही उपदेश करते हैं। हे प्रभो! मैं आपसे पूछता हूँ कि वे

राम कौन हैं? हे कृपानिधान! मुझे समझाकर कहिए।

एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा॥
नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावनु मारा॥

एक राम तो अवध नरेश दशरथ के कुमार हैं, उनका चरित्र सारा संसार जानता है। उन्होंने स्त्री के विरह में अपार दुःख उठाया और क्रोध आने पर युद्ध में रावण को मार डाला।॥4॥

दो० - प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि॥ 46॥

हे प्रभो! वही राम हैं या और कोई दूसरे हैं, जिनको शिव जपते हैं? आप सत्य के धाम हैं और सब कुछ जानते हैं, ज्ञान विचार कर कहिए॥ 46॥

जैसें मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी॥
जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई॥

हे नाथ! जिस प्रकार से मेरा यह भारी भ्रम मिट जाए, आप वही कथा विस्तारपूर्वक कहिए। इस पर याज्ञवल्क्य मुसकराकर बोले, रघुनाथ की प्रभुता को तुम जानते हो।

रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी॥
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा। कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा॥

तुम मन, वचन और कर्म से राम के भक्त हो। तुम्हारी चतुराई को मैं जान गया। तुम राम के रहस्यमय गुणों को सुनना चाहते हो, इसी से तुमने ऐसा प्रश्न किया है मानो बड़े ही मूढ़ हो।

तात सुनहु सादर मनु लाई। कहउँ राम कै कथा सुहाई॥
महामोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥

हे तात! तुम आदरपूर्वक मन लगाकर सुनो; मैं राम की सुंदर कथा कहता हूँ। बड़ा भारी अज्ञान विशाल महिषासुर है और राम की कथा (उसे नष्ट कर देनेवाली) भयंकर काली हैं।

रामकथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना॥
ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥

राम की कथा चंद्रमा की किरणों के समान है, जिसे संतरूपी चकोर सदा पान करते हैं। ऐसा ही संदेह पार्वती ने किया था, तब महादेव ने विस्तार से उसका उत्तर दिया था।

दो० - कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संबाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद॥ 47॥

अब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार वही उमा और शिव का संवाद कहता हूँ। वह जिस समय और जिस हेतु से हुआ, उसे हे मुनि! तुम सुनो, तुम्हारा विषाद मिट जाएगा॥ 47॥

एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं॥
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी॥

एक बार त्रेता युग में शिव अगस्त्य ऋषि के पास गए। उनके साथ जगज्जननी भवानी सती भी थीं। ऋषि ने संपूर्ण जगत के ईश्वर जानकर उनका पूजन किया।

रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी॥
रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई॥

मुनिवर अगस्त्य ने रामकथा विस्तार से कही, जिसको महेश्वर ने परम सुख मानकर सुना। फिर ऋषि ने शिव से सुंदर हरिभक्ति पूछी और शिव ने उनको अधिकारी पाकर (रहस्य सहित) भक्ति का निरूपण किया।

कहत सुनत रघुपति गुन गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥
मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छकुमारी॥

रघुनाथ के गुणों की कथाएँ कहते-सुनते कुछ दिनों तक शिव वहाँ रहे। फिर मुनि से विदा माँगकर शिव दक्षकुमारी सती के साथ घर (कैलास) को चले।

तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा॥
पिता बचन तजि राजु उदासी। दंडक बन बिचरत अबिनासी॥

उन्हीं दिनों पृथ्वी का भार उतारने के लिए हरि ने रघुवंश में अवतार लिया था। वे अविनाशी भगवान उस समय पिता के वचन से राज्य का त्याग करके तपस्वी या साधु वेश में दंडकवन में विचर रहे थे।

दो॰ - हृदयँ बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ॥ 48(क)॥

शिव हृदय में विचारते जा रहे थे कि भगवान के दर्शन मुझे किस प्रकार हों। प्रभु ने गुप्त रूप से अवतार लिया है, मेरे जाने से सब लोग जान जाएँगे॥ 48(क)॥

सो॰ - संकर उर अति छोभु सती न जानहिं मरमु सोइ।
तुलसी दरसन लोभु मन डरु लोचन लालची॥ 48(ख)॥

शंकर के हृदय में इस बात को लेकर बड़ी खलबली उत्पन्न हो गई, परंतु सती इस भेद को नहीं जानती थीं। तुलसीदास कहते हैं कि शिव के मन में डर था, परंतु दर्शन के लोभ से उनके नेत्र ललचा रहे थे॥ 48(ख)॥

रावन मरन मनुज कर जाचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा॥
जौं नहिं जाउँ रहइ पछितावा। करत बिचारु न बनत बनावा॥

रावण ने (ब्रह्मा से) अपनी मृत्यु मनुष्य के हाथ से माँगी थी। ब्रह्मा के वचनों को प्रभु सत्य करना चाहते हैं। मैं जो पास नहीं जाता हूँ तो बड़ा पछतावा रह जाएगा। इस प्रकार शिव विचार करते थे, परंतु कोई भी युक्ति ठीक नहीं बैठती थी।

ऐहि बिधि भए सोचबस ईसा। तेही समय जाइ दससीसा॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरउ सोइ कपट कुरंगा॥

इस प्रकार महादेव चिंता के वश हो गए। उसी समय नीच रावण ने जाकर मारीच को साथ लिया और वह (मारीच) तुरंत कपट मृग बन गया।

करि छलु मूढ़ हरी बैदेही। प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही॥
मृग बधि बंधु सहित हरि आए। आश्रमु देखि नयन जल छाए॥

मूर्ख (रावण) ने छल करके सीता को हर लिया। उसे राम के वास्तविक प्रभाव का कुछ भी पता न था। मृग को मारकर भाई लक्ष्मण सहित हरि आश्रम में आए और उसे खाली देखकर (अर्थात वहाँ सीता को न पाकर) उनके नेत्रों में आँसू भर आए।

बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥
कबहूँ जोग बियोग न जाकें। देखा प्रगट बिरह दुखु ताकें॥

रघुनाथ मनुष्यों की भाँति विरह से व्याकुल हैं और दोनों भाई वन में सीता को खोजते हुए फिर रहे हैं। जिनके कभी कोई संयोग-वियोग नहीं है, उनमें प्रत्यक्ष विरह का दुःख देखा गया।

दो० - अति बिचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद बिमोह बस हृदयँ धरहिं कछु आन॥ 49॥

रघुनाथ का चरित्र बड़ा ही विचित्र है, उसको पहुँचे हुए ज्ञानीजन ही जानते हैं। जो मंदबुद्धि हैं, वे तो विशेष रूप से मोह के वश होकर हृदय में कुछ दूसरी ही बात समझ बैठते हैं॥ 49॥

संभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा॥
भरि लोचन छबिसिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी॥

शिव ने उसी अवसर पर राम को देखा और उनके हृदय में बहुत भारी आनंद उत्पन्न हुआ। शोभा के उस समुद्र को शिव ने नेत्र भरकर देखा, परंतु अवसर ठीक न जानकर परिचय नहीं किया।

जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन॥
चले जात सिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता॥

जगत को पवित्र करनेवाले सच्चिदानंद की जय हो, इस प्रकार कहकर कामदेव का नाश करनेवाले शिव चल पड़े। कृपानिधान शिव बार-बार आनंद से पुलकित होते हुए सती के साथ चले जा रहे थे।

सतीं सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेहु बिसेषी॥
संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥

सती ने शंकर की वह दशा देखी तो उनके मन में बड़ा संदेह उत्पन्न हो गया। (वे मन-ही-मन कहने लगीं कि) शंकर की सारा जगत वंदना करता है, वे जगत के ईश्वर हैं; देवता, मनुष्य, मुनि सब उनके प्रति सिर नवाते हैं।

तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा॥
भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी॥

उन्होंने एक राजपुत्र को सच्चिदानंद परधाम कहकर प्रणाम किया और उसकी शोभा देखकर वे इतने प्रेममग्न हो गए कि अब तक उनके हृदय में प्रीति रोकने से भी नहीं रुकती।

दो० - ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥ 50॥

जो ब्रह्म सर्वव्यापक, मायारहित, अजन्मा, अगोचर, इच्छारहित और भेदरहित है और जिसे वेद भी नहीं जानते, क्या वह देह धारण करके मनुष्य हो सकता है?॥ 50॥

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधामपति असुरारी॥

देवताओं के हित के लिए मनुष्य शरीर धारण करनेवाले जो विष्णु भगवान हैं, वे भी शिव की ही भाँति सर्वज्ञ हैं। वे ज्ञान के भंडार, लक्ष्मीपति और असुरों के शत्रु भगवान विष्णु क्या अज्ञानी की तरह स्त्री को खोजेंगे?

संभुगिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्बग्य जान सबु कोई॥
अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा॥

फिर शिव के वचन भी झूठे नहीं हो सकते। सब कोई जानते हैं कि शिव सर्वज्ञ हैं। सती के मन में इस प्रकार का अपार संदेह उठ खड़ा हुआ, किसी तरह भी उनके हृदय में ज्ञान का प्रादुर्भाव नहीं होता था।

जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी॥
सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिअ उर काऊ॥

यद्यपि भवानी ने प्रकट कुछ नहीं कहा, पर अंतर्यामी शिव सब जान गए। वे बोले - हे सती! सुनो, तुम्हारा स्त्री स्वभाव है। ऐसा संदेह मन में कभी न रखना चाहिए।

जासु कथा कुंभज रिषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥

जिनकी कथा का अगस्त्य ऋषि ने गान किया और जिनकी भक्ति मैंने मुनि को सुनाई, ये वही मेरे इष्टदेव रघुवीर हैं, जिनकी सेवा ज्ञानी मुनि सदा किया करते हैं।

छं० - मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोइ रामु ब्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी॥

ज्ञानी मुनि, योगी और सिद्ध निरंतर निर्मल चित्त से जिनका ध्यान करते हैं तथा वेद, पुराण और शास्त्र 'नेति-नेति' कहकर जिनकी कीर्ति गाते हैं, उन्हीं सर्वव्यापक, समस्त ब्रह्मांडों के स्वामी, मायापति, नित्य परम स्वतंत्र, ब्रह्मरूप भगवान राम ने अपने भक्तों के हित के लिए रघुकुल के मणिरूप में अवतार लिया है।

सो० - लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवँ बार बहु।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियँ॥ 51॥

यद्यपि शिव ने बहुत बार समझाया, फिर भी सती के हृदय में उनका उपदेश नहीं बैठा। तब महादेव मन में भगवान की माया का बल जानकर मुस्कुराते हुए बोले - ॥ 51॥

जौं तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू॥
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं॥

जो तुम्हारे मन में बहुत संदेह है तो तुम जाकर परीक्षा क्यों नहीं लेती? जब तक तुम मेरे पास लौट आओगी तब तक मैं इसी बड़ की छाँह में बैठा हूँ।

जैसें जाइ मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी॥
चलीं सती सिव आयसु पाई। करहिं बिचारु करौं का भाई॥

जिस प्रकार तुम्हारा यह अज्ञानजनित भारी भ्रम दूर हो, विवेक के द्वारा सोच-समझकर तुम वही करना। शिव की आज्ञा पाकर सती चलीं और मन में सोचने लगीं कि भाई! क्या करूँ?

इहाँ संभु अस मन अनुमाना। दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना॥
मोरेहु कहें न संसय जाहीं। बिधि बिपरीत भलाई नाहीं॥

इधर शिव ने मन में ऐसा अनुमान किया कि दक्षकन्या सती का कल्याण नहीं है। जब मेरे समझाने से भी संदेह दूर नहीं होता तब विधाता ही उलटे हैं, अब सती का कुशल नहीं

है।

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा॥

जो कुछ राम ने रच रखा है, वही होगा। तर्क करके कौन शाखा (विस्तार) बढ़ावे। (मन में) ऐसा कहकर शिव भगवान हरि का नाम जपने लगे और सती वहाँ गईं जहाँ सुख के धाम प्रभु राम थे।

दो० - पुनि पुनि हृदयँ बिचारु करि धरि सीता कर रूप।
आगें होइ चलि पंथ तेहिं जेहिं आवत नरभूप॥ 52॥

सती बार-बार मन में विचार कर सीता का रूप धारण करके उस मार्ग की ओर आगे होकर चलीं, जिससे मनुष्यों के राजा राम आ रहे थे॥ 52॥

लछिमन दीख उमाकृत बेषा। चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेषा॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा॥

सती के बनावटी वेष को देखकर लक्ष्मण चकित हो गए और उनके हृदय में बड़ा भ्रम हो गया। वे बहुत गंभीर हो गए, कुछ कह नहीं सके। धीर- बुद्धि लक्ष्मण प्रभु रघुनाथ के प्रभाव को जानते थे।

सती कपटु जानेउ सुरस्वामी। सबदरसी सब अंतरजामी॥
सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना। सोइ सरबग्य रामु भगवाना॥

सब कुछ देखनेवाले और सबके हृदय की जाननेवाले देवताओं के स्वामी राम सती के कपट को जान गए, जिनके स्मरण मात्र से अज्ञान का नाश हो जाता है, वही सर्वज्ञ भगवान राम हैं।

सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ॥
निज माया बलु हृदयँ बखानी। बोले बिहसि रामु मृदु बानी॥

स्त्री स्वभाव का असर तो देखो कि वहाँ भी सती छिपाव करना चाहती हैं। अपनी माया के बल को हृदय में बखानकर, राम हँसकर कोमल वाणी से बोले।

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

पहले प्रभु ने हाथ जोड़कर सती को प्रणाम किया और पिता सहित अपना नाम बताया। फिर कहा कि वृषकेतु शिव कहाँ हैं? आप यहाँ वन में अकेली किसलिए फिर रही हैं?

दो० - राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोचु।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदयँ बड़ सोचु॥ 53॥

राम के कोमल और रहस्य भरे वचन सुनकर सती को बड़ा संकोच हुआ। वे डरती हुई शिव के पास चलीं, उनके हृदय में बड़ी चिंता हो गई॥ 53॥

मैं संकर कर कहा न माना। निज अग्यानु राम पर आना॥
जाइ उतरु अब देहउँ काहा। उर उपजा अति दारुन दाहा॥

कि मैंने शंकर का कहना न माना और अपने अज्ञान का राम पर आरोप किया। अब जाकर मैं शिव को क्या उत्तर दूँगी? (यों सोचते-सोचते) सती के हृदय में अत्यंत भयानक जलन पैदा हो गई।

जाना राम सतीं दुखु पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा॥
सतीं दीख कौतुकु मग जाता। आगें रामु सहित श्राता॥

राम ने जान लिया कि सती को दुःख हुआ, तब उन्होंने अपना कुछ प्रभाव प्रकट करके उन्हें दिखलाया। सती ने मार्ग में जाते हुए यह कौतुक देखा कि राम सीता और लक्ष्मण सहित आगे चले जा रहे हैं।

फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर बेषा॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना॥

उन्होंने पीछे की ओर फिरकर देखा, तो वहाँ भी भाई लक्ष्मण और सीता के साथ राम सुंदर वेष में दिखाई दिए। वे जिधर देखती हैं, उधर ही प्रभु राम विराजमान हैं और सुचतुर सिद्ध मुनीश्वर उनकी सेवा कर रहे हैं।

देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा॥

सती ने अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु देखे, जो एक-से-एक बढ़कर असीम प्रभाववाले थे। भाँति-भाँति के वेष धारण किए सभी देवता राम की चरणवंदना और सेवा कर रहे हैं।

दो॰ - सती बिधात्री इंदिरा देखीं अमित अनूप।
जेहिं जेहिं बेष अजादि सुर तेहि तेहि तन अनुरूप॥ 54॥

उन्होंने अनगिनत अनुपम सती, ब्रह्माणी और लक्ष्मी देखीं। जिस-जिस रूप में ब्रह्मा आदि देवता थे, उसी के अनुकूल रूप में ये सब भी थीं॥ 54॥

देखे जहँ जहँ रघुपति जेते। सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते॥
जीव चराचर जो संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा॥

सती ने जहाँ-जहाँ जितने रघुनाथ देखे, शक्तियों सहित वहाँ उतने ही सारे देवताओं को भी देखा। संसार में जो चराचर जीव हैं, वे भी अनेक प्रकार के सब देखे।

पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा। राम रूप दूसर नहिं देखा॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न बेष घनेरे॥

अनेकों वेष धारण करके देवता प्रभु राम की पूजा कर रहे हैं, परंतु राम का दूसरा रूप कहीं नहीं देखा। सीता सहित रघुनाथ बहुत-से देखे, परंतु उनके वेष अनेक नहीं थे।

सोइ रघुबर सोइ लछिमनु सीता। देखि सती अति भईं सभीता॥
हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूदि बैठीं मग माहीं॥

वही रघुनाथ, वही लक्ष्मण और वही सीता - सती ऐसा देखकर बहुत ही डर गईं। उनका हृदय काँपने लगा और देह की सारी सुध-बुध जाती रही। वे आँख मूँदकर मार्ग में बैठ गईं।

बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी। कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी॥
पुनि पुनि नाइ राम पद सीसा। चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीसा॥

फिर आँख खोलकर देखा, तो वहाँ दक्षकुमारी को कुछ भी न दिख पड़ा। तब वे बार-बार राम के चरणों में सिर नवाकर वहाँ चलीं, जहाँ शिव थे।

दो॰ - गईं समीप महेस तब हँसि पूछी कुसलात।

लीन्हि परीछा कवन बिधि कहहु सत्य सब बात॥ 55॥

जब पास पहुँचीं, तब शिव ने हँसकर कुशल प्रश्न करके कहा कि तुमने राम की किस प्रकार परीक्षा ली, सारी बात सच-सच कहो॥ 55॥

सतीं समुझि रघुबीर प्रभाऊ। भय बस सिव सन कीन्ह दुराऊ॥
कछु न परीछा लीन्हि गोसाईं। कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं॥

सती ने रघुनाथ के प्रभाव को समझकर डर के मारे शिव से छिपाव किया और कहा - हे स्वामिन्! मैंने कुछ भी परीक्षा नहीं ली, (वहाँ जाकर) आपकी ही तरह प्रणाम किया।

जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई। मोरें मन प्रतीति अति सोई॥
तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना॥

आपने जो कहा वह झूठ नहीं हो सकता, मेरे मन में यह बड़ा विश्वास है। तब शिव ने ध्यान करके देखा और सती ने जो चरित्र किया था, सब जान लिया।

बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा॥
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ बिचारत संभु सुजाना॥

फिर राम की माया को सिर नवाया, जिसने प्रेरणा करके सती के मुँह से भी झूठ कहला दिया। सुजान शिव ने मन में विचार किया कि हरि की इच्छारूपी भावी प्रबल है।

सतीं कीन्ह सीता कर बेषा। सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती॥

सती ने सीता का वेष धारण किया, यह जानकर शिव के हृदय में बड़ा विषाद हुआ। उन्होंने सोचा कि यदि मैं अब सती से प्रीति करता हूँ तो भक्तिमार्ग लुप्त हो जाता है और बड़ा अन्याय होता है।

दो० - परम पुनीत न जाइ तजि किएँ प्रेम बड़ पापु।
प्रगटि न कहत महेसु कछु हृदयँ अधिक संतापु॥ 56॥

सती परम पवित्र हैं, इसलिए इन्हें छोड़ते भी नहीं बनता और प्रेम करने में बड़ा पाप है।

प्रकट करके महादेव कुछ भी नहीं कहते, परंतु उनके हृदय में बड़ा संताप है॥ 56॥

तब संकर प्रभु पद सिरु नावा। सुमिरत रामु हृदयँ अस आवा॥
एहिं तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं। सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं॥

तब शिव ने प्रभु राम के चरण कमलों में सिर नवाया और राम का स्मरण करते ही उनके मन में यह आया कि सती के इस शरीर से मेरी भेंट नहीं हो सकती और शिव ने अपने मन में यह संकल्प कर लिया।

अस बिचारि संकरु मतिधीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा॥
चलत गगन भै गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दृढ़ाई॥

स्थिर-बुद्धि शंकर ऐसा विचार कर रघुनाथ का स्मरण करते हुए अपने घर (कैलास) को चले। चलते समय सुंदर आकाशवाणी हुई कि हे महेश! आपकी जय हो। आपने भक्ति की अच्छी दृढ़ता की।

अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। रामभगत समरथ भगवाना॥
सुनि नभगिरा सती उर सोचा। पूछा सिवहि समेत सकोचा॥

आपको छोड़कर दूसरा कौन ऐसी प्रतिज्ञा कर सकता है। आप राम के भक्त हैं, समर्थ हैं और भगवान हैं। इस आकाशवाणी को सुनकर सती के मन में चिंता हुई और उन्होंने सकुचाते हुए शिव से पूछा - ।

कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्यधाम प्रभु दीनदयाला॥
जदपि सतीं पूछा बहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती॥

हे कृपालु! कहिए, आपने कौन-सी प्रतिज्ञा की है? हे प्रभो! आप सत्य के धाम और दीनदयालु हैं। यद्यपि सती ने बहुत प्रकार से पूछा, परंतु त्रिपुरारि शिव ने कुछ न कहा।

दो० - सतीं हृदयँ अनुमान किय सबु जानेउ सर्बग्य।
कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य॥ 57(क)॥

सती ने हृदय में अनुमान किया कि सर्वज्ञ शिव सब जान गए। मैंने शिव से कपट किया। स्त्री स्वभाव से ही मूर्ख और बेसमझ होती है॥ 57(क)॥

सो॰ - जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि।
बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि॥ 57(ख)॥

प्रीति की सुंदर रीति देखिए कि जल भी (दूध के साथ मिलकर) दूध के समान भाव बिकता है, परंतु फिर कपटरूपी खटाई पड़ते ही पानी अलग हो जाता है (दूध फट जाता है) और स्वाद (प्रेम) जाता रहता है॥ 57(ख)॥

हृदयँ सोचु समुझत निज करनी। चिंता अमित जाइ नहिं बरनी॥
कृपासिंधु सिव परम अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा॥

अपनी करनी को याद करके सती के हृदय में इतना सोच है और इतनी अपार चिंता है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। शिव कृपा के परम अथाह सागर हैं। इससे प्रकट में उन्होंने मेरा अपराध नहीं कहा।

संकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदयँ अकुलानी॥
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपइ अवाँ इव उर अधिकाई॥

शिव का रुख देखकर सती ने जान लिया कि स्वामी ने मेरा त्याग कर दिया और वे हृदय में व्याकुल हो उठीं। अपना पाप समझकर कुछ कहते नहीं बनता, परंतु हृदय कुम्हार के आँवे के समान अत्यंत तपे रहा है।

सतिहि ससोच जानि बृषकेतू। कहीं कथा सुंदर सुख हेतू॥
बरनत पंथ बिबिध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा॥

वृषकेतु शिव ने सती को चिंतायुक्त जानकर उन्हें सुख देने के लिए सुंदर कथाएँ कहीं। इस प्रकार मार्ग में विविध प्रकार के इतिहासों को कहते हुए विश्वनाथ कैलास जा पहुँचे।

तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन। बैठे बट तर करि कमलासन॥
संकर सहज सरूपु सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा॥

वहाँ फिर शिव अपनी प्रतिज्ञा को याद करके बड़ के पेड़ के नीचे पद्मासन लगाकर बैठ गए। शिव ने अपना स्वाभाविक रूप संभाला। उनकी अखंड और अपार समाधि लग गई।

दो॰ - सती बसहिं कैलास तब अधिक सोचु मन माहिं।
मरमु न कोऊ जान कछु जुग सम दिवस सिराहिं॥ 58॥

तब सती कैलास पर रहने लगीं। उनके मन में बड़ा दुःख था। इस रहस्य को कोई कुछ भी नहीं जानता था। उनका एक-एक दिन युग के समान बीत रहा था॥ 58॥

नित नव सोचु सती उर भारा। कब जैहउँ दुख सागर पारा॥
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पतिबचनु मृषा करि जाना॥

सती के हृदय में नित्य नया और भारी सोच हो रहा था कि मैं इस दुःख-समुद्र के पार कब जाऊँगी। मैंने जो रघुनाथ का अपमान किया और फिर पति के वचनों को झूठ जाना - ।

सो फलु मोहि बिधाताँ दीन्हा। जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा॥
अब बिधि अस बूझिअ नहिं तोही। संकर बिमुख जिआवसि मोही॥

उसका फल विधाता ने मुझको दिया, जो उचित था वही किया; परंतु हे विधाता! अब तुझे यह उचित नहीं है, जो शंकर से विमुख होने पर भी मुझे जिला रहा है।

कहि न जाइ कछु हृदय गलानी। मन महुँ रामहि सुमिर सयानी॥
जौं प्रभु दीनदयालु कहावा। आरति हरन बेद जसु गावा॥

सती के हृदय की ग्लानि कुछ कही नहीं जाती। बुद्धिमती सती ने मन में राम का स्मरण किया और कहा - हे प्रभो! यदि आप दीनदयालु कहलाते हैं और वेदों ने आपका यह यश गाया है कि आप दुःख को हरनेवाले हैं,

तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी। छूटउ बेगि देह यह मोरी॥
जौं मोरें सिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू॥

तो मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि मेरी यह देह जल्दी छूट जाए। यदि मेरा शिव के चरणों में प्रेम है और मेरा यह व्रत मन, वचन और कर्म से सत्य है,

दो० - तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ।
होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ॥ 59॥

तो हे सर्वदर्शी प्रभो! सुनिए और शीघ्र वह उपाय कीजिए, जिससे मेरा मरण हो और बिना ही परिश्रम यह (पति-परित्यागरूपी) असह्य विपत्ति दूर हो जाए॥ 59॥

एहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी। अकथनीय दारुन दुखु भारी॥
बीतें संबत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अबिनासी॥

दक्षसुता सती इस प्रकार बहुत दुःखित थीं, उनको इतना दारुण दुःख था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सत्तासी हजार वर्ष बीत जाने पर अविनाशी शिव ने समाधि खोली।

राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सतीं जगतपति जागे॥
जाइ संभु पद बंदनु कीन्हा। सनमुख संकर आसनु दीन्हा॥

शिव रामनाम का स्मरण करने लगे, तब सती ने जाना कि अब जगत के स्वामी (शिव) जागे। उन्होंने जाकर शिव के चरणों में प्रणाम किया। शिव ने उनको बैठने के लिए सामने आसन दिया।

लगे कहन हरि कथा रसाला। दच्छ प्रजेस भए तेहि काला॥
देखा बिधि बिचारि सब लायक। दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक॥

शिव भगवान हरि की रसमयी कथाएँ कहने लगे। उसी समय दक्ष प्रजापति हुए। ब्रह्मा ने सब प्रकार से योग्य देख-समझकर दक्ष को प्रजापतियों का नायक बना दिया।

बड़ अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिनामु हृदयँ तब आवा॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥

जब दक्ष ने इतना बड़ा अधिकार पाया, तब उनके हृदय में अत्यंत अभिमान आ गया। जगत में ऐसा कोई नहीं पैदा हुआ जिसको प्रभुता पाकर मद न हो।

दो॰ - दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग॥ 60॥

दक्ष ने सब मुनियों को बुला लिया और वे बड़ा यज्ञ करने लगे। जो देवता यज्ञ का भाग पाते हैं, दक्ष ने उन सबको आदर सहित निमंत्रित किया॥ 60॥

किंनर नाग सिद्ध गंधर्बा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा॥
बिष्नु बिरंचि महेसु बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई॥

(दक्ष का निमंत्रण पाकर) किन्नर, नाग, सिद्ध, गंधर्व और सब देवता अपनी-अपनी स्त्रियों सहित चले। विष्णु, ब्रह्मा और महादेव को छोड़कर सभी देवता अपना-अपना विमान सजाकर चले।

सतीं बिलोके ब्योम बिमाना। जात चले सुंदर बिधि नाना॥
सुर सुंदरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना॥

सती ने देखा, अनेकों प्रकार के सुंदर विमान आकाश में चले जा रहे हैं, देव-सुंदरियाँ मधुर गान कर रही हैं, जिन्हें सुनकर मुनियों का ध्यान छूट जाता है।

पूछेउ तब सिवँ कहेउ बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी॥
जौं महेसु मोहि आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं॥

सती ने (विमानों में देवताओं के जाने का कारण) पूछा, तब शिव ने सब बातें बतलाईं। पिता के यज्ञ की बात सुनकर सती कुछ प्रसन्न हुईं और सोचने लगीं कि यदि महादेव मुझे आज्ञा दें, तो इसी बहाने कुछ दिन पिता के घर जाकर रहूँ।

पति परित्याग हृदयँ दुखु भारी। कहइ न निज अपराध बिचारी॥
बोली सती मनोहर बानी। भय संकोच प्रेम रस सानी॥

क्योंकि उनके हृदय में पति द्वारा त्यागी जाने का बड़ा भारी दुःख था, पर अपना अपराध समझकर वे कुछ कहती न थीं। आखिर सती भय, संकोच और प्रेमरस में सनी हुई मनोहर वाणी से बोलीं - ।

दो० - पिता भवन उत्सव परम जौं प्रभु आयसु होइ।
तौ मैं जाउँ कृपायतन सादर देखन सोइ॥ 61॥

हे प्रभो! मेरे पिता के घर बहुत बड़ा उत्सव है। यदि आपकी आज्ञा हो तो हे कृपाधाम! मैं आदर सहित उसे देखने जाऊँ॥ 61॥

कहेहु नीक मोरेहूँ मन भावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा॥
दच्छ सकल निज सुता बोलाईं। हमरें बयर तुम्हउ बिसराईं॥

शिव ने कहा - तुमने बात तो अच्छी कही, यह मेरे मन को भी पसंद आई, पर उन्होंने न्योता नहीं भेजा, यह अनुचित है। दक्ष ने अपनी सब लड़कियों को बुलाया है; किंतु हमारे

बैर के कारण उन्होंने तुमको भी भुला दिया।

ब्रह्मसभाँ हम सन दुखु माना। तेहि तें अजहुँ करहिं अपमाना॥
जौं बिनु बोलें जाहु भवानी। रहइ न सीलु सनेहु न कानी॥

एक बार ब्रह्मा की सभा में हमसे अप्रसन्न हो गए थे, उसी से वे अब भी हमारा अपमान करते हैं। हे भवानी! जो तुम बिना बुलाए जाओगी तो न शील-स्नेह ही रहेगा और न मान-मर्यादा ही रहेगी।

जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गएँ कल्यानु न होई॥

यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बुलाए भी जाना चाहिए तो भी जहाँ कोई विरोध मानता हो, उसके घर जाने से कल्याण नहीं होता।

भाँति अनेक संभु समुझावा। भावी बस न ग्यानु उर आवा॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलाएँ। नहिं भलि बात हमारे भाएँ॥

शिव ने बहुत प्रकार से समझाया, पर होनहारवश सती के हृदय में बोध नहीं हुआ। फिर शिव ने कहा कि यदि बिना बुलाए जाओगी, तो हमारी समझ में अच्छी बात न होगी।

दो॰ - कहि देखा हर जतन बहु रहइ न दच्छकुमारि।
दिए मुख्य गन संग तब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि॥ 62॥

शिव ने बहुत प्रकार से कहकर देख लिया, किंतु जब सती किसी प्रकार भी नहीं रुकीं, तब त्रिपुरारि महादेव ने अपने मुख्य गणों को साथ देकर उनको बिदा कर दिया॥ 62॥

पिता भवन जब गईं भवानी। दच्छ त्रास काहुँ न सनमानी॥
सादर भलेहिं मिली एक माता। भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता॥

भवानी जब पिता (दक्ष) के घर पहुँची, तब दक्ष के डर के मारे किसी ने उनकी आवभगत नहीं की, केवल एक माता भले ही आदर से मिली। बहनें बहुत मुस्कुराती हुई मिलीं।

दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकी जरे सब गाता॥
सतीं जाइ देखेउ तब जागा। कतहूँ न दीख संभु कर भागा॥

दक्ष ने तो उनकी कुछ कुशल तक नहीं पूछी, सती को देखकर उलटे उनके सारे अंग जल उठे। तब सती ने जाकर यज्ञ देखा तो वहाँ कहीं शिव का भाग दिखाई नहीं दिया।

तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ। प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ॥
पाछिल दुखु न हृदयँ अस ब्यापा। जस यह भयउ महा परितापा॥

तब शिव ने जो कहा था, वह उनकी समझ में आया। स्वामी का अपमान समझकर सती का हृदय जल उठा। पिछला (पति परित्याग का) दुःख उनके हृदय में उतना नहीं व्यापा था, जितना महान दुःख इस समय (पति अपमान के कारण) हुआ।

जद्यपि जग दारुन दुख नाना। सब तें कठिन जाति अवमाना॥
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा। बहु बिधि जननीं कीन्ह प्रबोधा॥

यद्यपि जगत में अनेक प्रकार के दारुण दुःख हैं, तथापि जाति-अपमान सबसे बढ़कर कठिन है। यह समझकर सती को बड़ा क्रोध हो आया। माता ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया-बुझाया।

दो० - सिव अपमानु न जाइ सहि हृदयँ न होइ प्रबोध।
सकल सभहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सक्रोध॥ 63॥

परंतु उनसे शिव का अपमान सहा नहीं गया, इससे उनके हृदय में कुछ भी प्रबोध नहीं हुआ। तब वे सारी सभा को हठपूर्वक डाँटकर क्रोधभरे वचन बोलीं - ॥ 63॥

सुनहु सभासद सकल मुनिंदा। कही सुनी जिन्ह संकर निंदा॥
सो फलु तुरत लहब सब काहूँ। भली भाँति पछिताब पिताहूँ॥

हे सभासदो और सब मुनीश्वरो! सुनो। जिन लोगों ने यहाँ शिव की निंदा की या सुनी है, उन सबको उसका फल तुरंत ही मिलेगा और मेरे पिता दक्ष भी भली भाँति पछताएँगे।

संत संभुपति अपबादा। सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा॥
काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूदि न त चलिअ पराई॥

जहाँ संत, शिव और लक्ष्मीपति विष्णु भगवान की निंदा सुनी जाए, वहाँ ऐसी मर्यादा है कि यदि अपना वश चले तो उस (निंदा करनेवाले) की जीभ काट ले और नहीं तो कान मूँदकर वहाँ से भाग जाए।

जगदातमा महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी॥
पिता मंदमति निंदत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही॥

त्रिपुर दैत्य को मारनेवाले भगवान महेश्वर संपूर्ण जगत के आत्मा हैं, वे जगत्पिता और सबका हित करनेवाले हैं। मेरा मंदबुद्धि पिता उनकी निंदा करता है और मेरा यह शरीर दक्ष ही के वीर्य से उत्पन्न है।

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥

इसलिए चंद्रमा को ललाट पर धारण करनेवाले वृषकेतु शिव को हृदय में धारण करके मैं इस शरीर को तुरंत ही त्याग दूँगी। ऐसा कहकर सती ने योगाग्नि में अपना शरीर भस्म कर डाला। सारी यज्ञशाला में हाहाकार मच गया।

दो० - सती मरनु सुनि संभु गन लगे करन मख खीस।
जग्य बिधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्हि मुनीस॥ 64॥

सती का मरण सुनकर शिव के गण यज्ञ विध्वंस करने लगे। यज्ञ विध्वंस होते देखकर मुनीश्वर भृगु ने उसकी रक्षा की॥ 64॥

समाचार सब संकर पाए। बीरभद्रु करि कोप पठाए॥
जग्य बिधंस जाइ तिन्ह कीन्हा। सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा॥

ये सब समाचार शिव को मिले, तब उन्होंने क्रोध करके वीरभद्र को भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर यज्ञ विध्वंस कर डाला और सब देवताओं को यथोचित फल (दंड) दिया।

भै जगबिदित दच्छ गति सोई। जसि कछु संभु बिमुख कै होई॥
यह इतिहास सकल जग जानी। ताते मैं संछेप बखानी॥

दक्ष की जगत्प्रसिद्ध वही गति हुई, जो शिवद्रोही की हुआ करती है। यह इतिहास सारा संसार जानता है, इसलिए मैंने संक्षेप में वर्णन किया।

सतीं मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा॥
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई। जनमीं पारबती तनु पाई॥

सती ने मरते समय भगवान हरि से यह वर माँगा कि मेरा जन्म-जन्म में शिव के चरणों में अनुराग रहे। इसी कारण उन्होंने हिमाचल के घर जाकर पार्वती के शरीर से जन्म लिया।

जब तें उमा सैल गृह जाईं। सकल सिद्धि संपति तहँ छाईं॥
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हे। उचित बास हिम भूधर दीन्हे॥

जब से उमा हिमाचल के घर जनमीं, तब से वहाँ सारी सिद्धियाँ और संपत्तियाँ छा गईं। मुनियों ने जहाँ-तहाँ सुंदर आश्रम बना लिए और हिमाचल ने उनको उचित स्थान दिए।

दो० - सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति।
प्रगटीं सुंदर सैल पर मनि आकर बहु भाँति॥ 65॥

उस सुंदर पर्वत पर बहुत प्रकार के सब नए-नए वृक्ष सदा पुष्प-फलयुक्त हो गए और वहाँ बहुत तरह की मणियों की खानें प्रकट हो गईं॥ 65॥

सरिता सब पुनीत जलु बहहीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं॥
सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा॥

सारी नदियों में पवित्र जल बहता है और पक्षी, पशु, भ्रमर सभी सुखी रहते हैं। सब जीवों ने अपना स्वाभाविक बैर छोड़ दिया है और पर्वत पर सभी परस्पर प्रेम करते हैं।

सोह सैल गिरिजा गृह आएँ। जिमि जनु रामभगति के पाएँ॥
नित नूतन मंगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू॥

पार्वती के घर आ जाने से पर्वत ऐसा शोभायमान हो रहा है जैसा रामभक्ति को पाकर भक्त शोभायमान होता है। उस (पर्वतराज) के घर नित्य नए-नए मंगलोत्सव होते हैं, जिसका ब्रह्मादि यश गाते हैं।

नारद समाचार सब पाए। कौतुकहीं गिरि गेह सिधाए॥
सैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि बर आसनु दीन्हा॥

जब नारदजी ने ये सब समाचार सुने तो वे कौतुक ही से हिमाचल के घर पधारे। पर्वतराज ने उनका बड़ा आदर किया और चरण धोकर उन्हें उत्तम आसन दिया।

नारि सहित मुनि पद सिरु नावा। चरन सलिल सबु भवनु सिंचावा॥
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना॥

फिर अपनी स्त्री सहित मुनि के चरणों में सिर नवाया और उनके चरणोदक को सारे घर में छिड़काया। हिमाचल ने अपने सौभाग्य का बहुत बखान किया और पुत्री को बुलाकर मुनि के चरणों पर डाल दिया।

दो॰ - त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह गति सर्बत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुन मुनिबर हृदयँ बिचारि॥ 66॥

(और कहा -) हे मुनिवर! आप त्रिकालज्ञ और सर्वज्ञ हैं, आपकी सर्वत्र पहुँच है। अतः आप हृदय में विचार कर कन्या के दोष-गुण कहिए॥ 66॥

कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुन खानी॥
सुंदर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी॥

नारद मुनि ने हँसकर रहस्ययुक्त कोमल वाणी से कहा - तुम्हारी कन्या सब गुणों की खान है। यह स्वभाव से ही सुंदर, सुशील और समझदार है। उमा, अंबिका और भवानी इसके नाम हैं।

सब लच्छन संपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहि पिआरी॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि तें जसु पैहहिं पितु माता॥

कन्या सब सुलक्षणों से संपन्न है, यह अपने पति को सदा प्यारी होगी। इसका सुहाग सदा अचल रहेगा और इससे इसके माता-पिता यश पाएँगे।

होइहि पूज्य सकल जग माहीं। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं॥
एहि कर नामु सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा॥

यह सारे जगत में पूज्य होगी और इसकी सेवा करने से कुछ भी दुर्लभ न होगा। संसार में स्त्रियाँ इसका नाम स्मरण करके पतिव्रतारूपी तलवार की धार पर चढ़ जाएँगी।

सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी॥
अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना॥

हे पर्वतराज! तुम्हारी कन्या सुलच्छनी है। अब इसमें जो दो-चार अवगुण हैं, उन्हें भी सुन लो। गुणहीन, मानहीन, माता-पिता-विहीन, उदासीन, संशयहीन (लापरवाह)।

दो० - जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख॥ 67॥

योगी, जटाधारी, निष्काम हृदय, नंगा और अमंगल वेषवाला, ऐसा पति इसको मिलेगा। इसके हाथ में ऐसी ही रेखा पड़ी है॥ 67॥

सुनि मुनि गिरा सत्य जियँ जानी। दुख दंपतिहि उमा हरषानी॥
नारदहूँ यह भेदु न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना॥

नारद मुनि की वाणी सुनकर और उसको हृदय में सत्य जानकर पति-पत्नी (हिमवान और मैना) को दुःख हुआ, किंतु पार्वती प्रसन्न हुईं। नारद ने भी इस रहस्य को नहीं जाना, क्योंकि सबकी बाहरी दशा एक-सी होने पर भी भीतरी समझ भिन्न-भिन्न थी।

सकल सखीं गिरिजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना॥
होइ न मृषा देवरिषि भाषा। उमा सो बचनु हृदयँ धरि राखा॥

सारी सखियाँ, पार्वती, पर्वतराज हिमवान और मैना सभी के शरीर पुलकित थे और सभी के नेत्रों में जल भरा था। देवर्षि के वचन असत्य नहीं हो सकते, (यह विचारकर) पार्वती ने उन वचनों को हृदय में धारण कर लिया।

उपजेउ सिव पद कमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेहू॥
जानि कुअवसरु प्रीति दुराई। सखी उछँग बैठी पुनि जाई॥

उन्हें शिव के चरण कमलों में स्नेह उत्पन्न हो आया, परंतु मन में यह संदेह हुआ कि उनका मिलना कठिन है। अवसर ठीक न जानकर उमा ने अपने प्रेम को छिपा लिया और फिर वे सखी की गोद में जाकर बैठ गईं।

झूठि न होइ देवरिषि बानी। सोचहिं दंपति सखीं सयानी॥
उर धरि धीर कहइ गिरिराऊ। कहहु नाथ का करिअ उपाऊ॥

देवर्षि की वाणी झूठी न होगी, यह विचार कर हिमवान, मैना और सारी चतुर सखियाँ चिंता करने लगीं। फिर हृदय में धीरज धरकर पर्वतराज ने कहा - हे नाथ! कहिए, अब

क्या उपाय किया जाए?

दो॰ - कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार॥ 68॥

मुनीश्वर ने कहा - हे हिमवान! सुनो, विधाता ने ललाट पर जो कुछ लिख दिया है, उसे देवता, दानव, मनुष्य, नाग और मुनि कोई भी नहीं मिटा सकते॥ 68॥

तदपि एक मैं कहउँ उपाई। होइ करै जौं दैउ सहाई॥
जस बरु मैं बरनेउँ तुम्ह पाहीं। मिलिहि उमहि तस संसय नाहीं॥

तो भी एक उपाय मैं बताता हूँ। यदि दैव सहायता करें तो वह सिद्ध हो सकता है। उमा को वर तो निःसंदेह वैसा ही मिलेगा, जैसा मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया है।

जे जे बर के दोष बखाने। ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने॥
जौं बिबाहु संकर सन होई। दोषउ गुन सम कह सबु कोई॥

परंतु मैंने वर के जो-जो दोष बतलाए हैं, मेरे अनुमान से वे सभी शिव में हैं। यदि शिव के साथ विवाह हो जाए तो दोषों को भी सब लोग गुणों के समान ही कहेंगे।

जौं अहि सेज सयन हरि करहीं। बुध कछु तिन्ह कर दोषु न धरहीं॥
भानु कृसानु सर्ब रस खाहीं। तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं॥

जैसे विष्णु भगवान शेषनाग की शय्या पर सोते हैं, तो भी पंडित लोग उनको कोई दोष नहीं लगाते। सूर्य और अग्निदेव अच्छे-बुरे सभी रसों का भक्षण करते हैं, परंतु उनको कोई बुरा नहीं कहता।

सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई॥
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं॥

गंगा में शुभ और अशुभ सभी जल बहता है, पर कोई उन्हें अपवित्र नहीं कहता। सूर्य, अग्नि और गंगा की भाँति समर्थ को कुछ दोष नहीं लगता।

दो॰ - जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ बिबेक अभिमान।
परहिं कलप भरि नरक महुँ जीव कि ईस समान॥ 69॥

यदि मूर्ख मनुष्य ज्ञान के अभिमान से इस प्रकार होड़ करते हैं, तो वे कल्पभर के लिए नरक में पड़ते हैं। भला कहीं जीव भी ईश्वर के समान (सर्वथा स्वतंत्र) हो सकता है?॥ 69॥

सुरसरि जल कृत बारुनि जाना। कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना॥
सुरसरि मिलें सो पावन जैसें। ईस अनीसहि अंतरु तैसें॥

गंगा जल से भी बनाई हुई मदिरा को जानकर संत लोग कभी उसका पान नहीं करते। पर वही गंगा में मिल जाने पर जैसे पवित्र हो जाती है, ईश्वर और जीव में भी वैसा ही भेद है।

संभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना॥
दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएँ कलेसू॥

शिव सहज ही समर्थ हैं, क्योंकि वे भगवान हैं, इसलिए इस विवाह में सब प्रकार कल्याण है, परंतु महादेव की आराधना बड़ी कठिन है, फिर भी क्लेश (तप) करने से वे बहुत जल्द संतुष्ट हो जाते हैं।

जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥
जद्यपि बर अनेक जग माहीं। एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं॥

यदि तुम्हारी कन्या तप करे, तो त्रिपुरारि महादेव होनहार को मिटा सकते हैं। यद्यपि संसार में वर अनेक हैं, पर इसके लिए शिव को छोड़कर दूसरा वर नहीं है।

बर दायक प्रनतारति भंजन। कृपासिंधु सेवक मन रंजन॥
इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें॥

शिव वर देनेवाले, शरणागतों के दुःखों का नाश करनेवाले, कृपा के समुद्र और सेवकों के मन को प्रसन्न करनेवाले हैं। शिव की आराधना किए बिना करोड़ों योग और जप करने पर भी वांछित फल नहीं मिलता।

दो० - अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्हि असीस।
होइहि यह कल्यान अब संसय तजहु गिरीस॥ 70॥

ऐसा कहकर भगवान का स्मरण करके नारद ने पार्वती को आशीर्वाद दिया। (और कहा -)

हे पर्वतराज! तुम संदेह का त्याग कर दो, अब यह कल्याण ही होगा॥ 70॥

कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ। आगिल चरित सुनहु जस भयऊ॥
पतिहि एकांत पाइ कह मैना। नाथ न मैं समुझे मुनि बैना॥

यों कहकर नारद मुनि ब्रह्मलोक को चले गए। अब आगे जो चरित्र हुआ उसे सुनो। पति को एकांत में पाकर मैना ने कहा - हे नाथ! मैंने मुनि के वचनों का अर्थ नहीं समझा।

जौं घरु बरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा॥
न त कन्या बरु रहउ कुआरी। कंत उमा मम प्रानपिआरी॥

जो हमारी कन्या के अनुकूल घर, वर और कुल उत्तम हो तो विवाह कीजिए। नहीं तो लड़की चाहे कुमारी ही रहे (मैं अयोग्य वर के साथ उसका विवाह नहीं करना चाहती); क्योंकि हे स्वामिन्! पार्वती मुझको प्राणों के समान प्यारी है।

जौं न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू। गिरि जड़ सहज कहिहि सबु लोगू॥
सोइ बिचारि पति करेहु बिबाहू। जेहिं न बहोरि होइ उर दाहू॥

यदि पार्वती के योग्य वर न मिला तो सब लोग कहेंगे कि पर्वत स्वभाव से ही जड़ (मूर्ख) होते हैं। हे स्वामी! इस बात को विचारकर ही विवाह कीजिएगा, जिसमें फिर पीछे हृदय में संताप न हो।

अस कहि परी चरन धरि सीसा। बोले सहित सनेह गिरीसा॥
बरु पावक प्रगटै ससि माहीं। नारद बचनु अन्यथा नाहीं॥

इस प्रकार कहकर मैना पति के चरणों पर मस्तक रखकर गिर पड़ीं। तब हिमवान ने प्रेम से कहा - चाहे चंद्रमा में अग्नि प्रकट हो जाए, पर नारद के वचन झूठे नहीं हो सकते।

दो॰ - प्रिया सोचु परिहरहु सबु सुमिरहुभगवान।
पारबतिहि निरमयउ जेहिं सोइ करिहि कल्यान॥ 71॥

हे प्रिये! सब सोच छोड़कर भगवान का स्मरण करो, जिन्होंने पार्वती को रचा है, वे ही कल्याण करेंगे॥ 71॥

अब जौं तुम्हहि सुता पर नेहू। तौ अस जाइ सिखावनु देहू॥

करै सो तपु जेहिं मिलहिं महेसू। आन उपायँ न मिटिहि कलेसू॥

अब यदि तुम्हें कन्या पर प्रेम है, तो जाकर उसे यह शिक्षा दो कि वह ऐसा तप करे, जिससे शिव मिल जाएँ। दूसरे उपाय से यह क्लेश नहीं मिटेगा।

नारद बचन सगर्भ सहेतू। सुंदर सब गुन निधि बृषकेतू॥
अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका। सबहि भाँति संकरु अकलंका॥

नारद के वचन रहस्य से युक्त और सकारण हैं और शिव समस्त सुंदर गुणों के भंडार हैं। यह विचारकर तुम संदेह का त्याग कर दो। शिव सभी तरह से निष्कलंक हैं।

सुनि पति बचन हरषि मन माहीं। गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं॥
उमहि बिलोकि नयन भरे बारी। सहित सनेह गोद बैठारी॥

पति के वचन सुन मन में प्रसन्न होकर मैना उठकर तुरंत पार्वती के पास गईं। पार्वती को देखकर उनकी आँखों में आँसू भर आए। उसे स्नेह के साथ गोद में बैठा लिया।

बारहिं बार लेति उर लाई। गदगद कंठ न कछु कहि जाई॥
जगत मातु सर्बग्य भवानी। मातु सुखद बोलीं मृदु बानी॥

फिर बार-बार उसे हृदय से लगाने लगीं। प्रेम से मैना का गला भर आया, कुछ कहा नहीं जाता। जगज्जननी भवानी तो सर्वज्ञ ठहरीं। (माता के मन की दशा को जानकर) वे माता को सुख देनेवाली कोमल वाणी से बोलीं -।

दो० - सुनहि मातु मैं दीख अस सपन सुनावउँ तोहि।
सुंदर गौर सुबिप्रबर अस उपदेसेउ मोहि॥ 72॥

माँ! सुन, मैं तुझे सुनाती हूँ; मैंने ऐसा स्वप्न देखा है कि मुझे एक सुंदर गौरवर्ण श्रेष्ठ ब्राह्मण ने ऐसा उपदेश दिया है - ॥ 72॥

करहि जाइ तपु सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी॥
मातु पितहि पुनि यह मत भावा। तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा॥

हे पार्वती! नारद ने जो कहा है, उसे सत्य समझकर तू जाकर तप कर। फिर यह बात तेरे माता-पिता को भी अच्छी लगी है। तप सुख देनेवाला और दुःख-दोष का नाश करनेवाला

है।

तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता। तपबल बिष्नु सकल जग त्राता॥
तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरइ महिभारा॥

तप के बल से ही ब्रह्मा संसार को रचते हैं और तप के बल से ही विष्णु सारे जगत का पालन करते हैं। तप के बल से ही शंभु (रुद्र रूप से) जगत का संहार करते हैं और तप के बल से ही शेष पृथ्वी का भार धारण करते हैं।

तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तपु अस जियँ जानी॥
सुनत बचन बिसमित महतारी। सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी॥

हे भवानी! सारी सृष्टि तप के ही आधार पर है। ऐसा जी में जानकर तू जाकर तप कर। यह बात सुनकर माता को बड़ा अचरज हुआ और उसने हिमवान को बुलाकर वह स्वप्न सुनाया।

मातु पितहि बहुबिधि समुझाई। चलीं उमा तप हित हरषाई॥
प्रिय परिवार पिता अरु माता। भए बिकल मुख आव न बाता॥

माता-पिता को बहुत तरह से समझाकर बड़े हर्ष के साथ पार्वती तप करने के लिए चलीं। प्यारे कुटुंबी, पिता और माता सब व्याकुल हो गए। किसी के मुँह से बात नहीं निकलती।

दो० - बेदसिरा मुनि आइ तब सबहि कहा समुझाइ।
पारबती महिमा सुनत रहे प्रबोधहि पाइ॥ 73॥

तब वेदशिरा मुनि ने आकर सबको समझाकर कहा। पार्वती की महिमा सुनकर सबको समाधान हो गया॥ 73॥

उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तपु करना॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू॥

प्राणपति (शिव) के चरणों को हृदय में धारण करके पार्वती वन में जाकर तप करने लगीं। पार्वती का अत्यंत सुकुमार शरीर तप के योग्य नहीं था, तो भी पति के चरणों का स्मरण करके उन्होंने सब भोगों को तज दिया।

नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मनु लागा॥
संबत सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सत बरष गवाँए॥

स्वामी के चरणों में नित्य नया अनुराग उत्पन्न होने लगा और तप में ऐसा मन लगा कि शरीर की सारी सुध बिसर गई। एक हजार वर्ष तक उन्होंने मूल और फल खाए, फिर सौ वर्ष साग खाकर बिताए।

कछु दिन भोजनु बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपबासा॥
बेल पाती महि परइ सुखाई। तीनि सहस संबत सोइ खाई॥

कुछ दिन जल और वायु का भोजन किया और फिर कुछ दिन कठोर उपवास किया - जो बेल पत्र सूखकर पृथ्वी पर गिरते थे, तीन हजार वर्ष तक उन्हीं को खाया।

पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नामु तब भयउ अपरना॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा। ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा॥

फिर सूखे पर्ण (पत्ते) भी छोड़ दिए, तभी पार्वती का नाम 'अपर्णा' हुआ। तप से उमा का शरीर क्षीण देखकर आकाश से गंभीर ब्रह्मवाणी हुई - ।

दो० - भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारि॥ 74॥

हे पर्वतराज की कुमारी! सुन, तेरा मनोरथ सफल हुआ। तू अब सारे असह्य क्लेशों को (कठिन तप को) त्याग दे। अब तुझे शिव मिलेंगे॥ 74॥

अस तपु काहुँ न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ग्यानी॥
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी। सत्य सदा संतत सुचि जानी॥

हे भवानी! धीर, मुनि और ज्ञानी बहुत हुए हैं, पर ऐसा (कठोर) तप किसी ने नहीं किया। अब तू इस श्रेष्ठ ब्रह्मा की वाणी को सदा सत्य और निरंतर पवित्र जानकर अपने हृदय में धारण कर।

आवै पिता बोलावन जबहीं। हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं॥
मिलहिं तुम्हहि जब सप्त रिषीसा। जानेहु तब प्रमान बागीसा॥

जब तेरे पिता बुलाने आएँ, तब हठ छोड़कर घर चली जाना और जब तुम्हें सप्तर्षि मिलें तब इस वाणी को ठीक समझना।

सुनत गिरा बिधि गगन बखानी। पुलक गात गिरिजा हरषानी॥
उमा चरित सुंदर मैं गावा। सुनहु संभु कर चरित सुहावा॥

(इस प्रकार) आकाश से कही हुई ब्रह्मा की वाणी को सुनते ही पार्वती प्रसन्न हो गईं और (हर्ष के मारे) उनका शरीर पुलकित हो गया। (याज्ञवल्क्य भरद्वाज से बोले कि) मैंने पार्वती का सुंदर चरित्र सुनाया, अब शिव का सुहावना चरित्र सुनो।

जब तें सतीं जाइ तनु त्यागा। तब तें सिव मन भयउ बिरागा॥
जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा॥

जब से सती ने जाकर शरीर त्याग किया, तब से शिव के मन में वैराग्य हो गया। वे सदा रघुनाथ का नाम जपने लगे और जहाँ-तहाँ राम के गुणों की कथाएँ सुनने लगे।

दो० - चिदानंद सुखधाम सिव बिगत मोह मद काम।
बिचरहिं महि धरि हृदयँ हरि सकल लोक अभिराम॥ 75॥

चिदानंद, सुख के धाम, मोह, मद और काम से रहित शिव संपूर्ण लोकों को आनंद देनेवाले भगवान हरि (राम) को हृदय में धारण कर पृथ्वी पर विचरने लगे॥ 75॥

कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना। कतहुँ राम गुन करहिं बखाना॥
जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना॥

वे कहीं मुनियों को ज्ञान का उपदेश करते और कहीं राम के गुणों का वर्णन करते थे। यद्यपि सुजान शिव निष्काम हैं, तो भी वे भगवान अपने भक्त (सती) के वियोग के दुःख से दुःखी हैं।

एहि बिधि गयउ कालु बहु बीती। नित नै होइ राम पद प्रीती॥
नेमु प्रेमु संकर कर देखा। अबिचल हृदयँ भगति कै रेखा॥

इस प्रकार बहुत समय बीत गया। राम के चरणों में नित नई प्रीति हो रही है। शिव के (कठोर) नियम, (अनन्य) प्रेम और उनके हृदय में भक्ति की अटल टेक को (जब राम ने) देखा।

प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला॥
बहु प्रकार संकरहि सराहा। तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा॥

तब कृतज्ञ (उपकार माननेवाले), कृपालु, रूप और शील के भंडार, महान तेजपुंज भगवान राम प्रकट हुए। उन्होंने बहुत तरह से शिव की सराहना की और कहा कि आप के बिना ऐसा (कठिन) व्रत कौन निबाह सकता है।

बहुबिधि राम सिवहि समुझावा। पारबती कर जन्मु सुनावा॥
अति पुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी॥

राम ने बहुत प्रकार से शिव को समझाया और पार्वती का जन्म सुनाया। कृपानिधान राम ने विस्तारपूर्वक पार्वती की अत्यंत पवित्र करनी का वर्णन किया।

दो० - अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागें देहु॥ 76॥

(फिर उन्होंने शिव से कहा -) हे शिव! यदि मुझ पर आपका स्नेह है, तो अब आप मेरी विनती सुनिए। मुझे यह माँगने दीजिए कि आप जाकर पार्वती के साथ विवाह कर लें॥ 76॥

कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा॥

शिव ने कहा - यद्यपि ऐसा उचित नहीं है, परंतु स्वामी की बात भी मेटी नहीं जा सकती। हे नाथ! मेरा यही परम धर्म है कि मैं आपकी आज्ञा को सिर पर रखकर उसका पालन करूँ।

मातु पिता गुर प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी॥
तुम्ह सब भाँति परम हितकारी। अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी॥

माता, पिता, गुरु और स्वामी की बात को बिना विचारे ही शुभ समझकर करना (मानना) चाहिए। फिर आप तो सब प्रकार से मेरे परम हितकारी हैं। हे नाथ! आपकी आज्ञा मेरे सिर-माथे है।

प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भक्ति बिबेक धर्म जुत रचना॥

कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखेहु जो हम कहेऊ॥

शिव की भक्ति, ज्ञान और धर्म से युक्त वचन रचना सुनकर प्रभु राम संतुष्ट हो गए। प्रभु ने कहा - हे हर! आपकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई। अब हमने जो कहा है, उसे हृदय में रखना।

अंतरधान भए अस भाषी। संकर सोइ मूरति उर राखी॥
तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए। बोले प्रभु अति बचन सुहाए॥

इस प्रकार कहकर राम अंतर्धान हो गए। शिव ने उनकी वह मूर्ति अपने हृदय में रख ली। उसी समय सप्तर्षि शिव के पास आए। प्रभु महादेव ने उनसे अत्यंत सुहावने वचन कहे - ।

दो० - पारबती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परिच्छा लेहु।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूरि करेहु संदेहु॥ 77॥

आप लोग पार्वती के पास जाकर उनके प्रेम की परीक्षा लीजिए और हिमाचल को कहकर (उन्हें पार्वती को लिवा लाने के लिए भेजिए तथा) पार्वती को घर भिजवाइए और उनके संदेह को दूर कीजिए॥ 77॥

रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी। मूरतिमंत तपस्या जैसी॥
बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। करहु कवन कारन तपु भारी॥

ऋषियों ने (वहाँ जाकर) पार्वती को कैसी देखा, मानो मूर्तिमान तपस्या ही हो। मुनि बोले - हे शैलकुमारी! सुनो, तुम किसलिए इतना कठोर तप कर रही हो?

केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरमु किन कहहू॥
कहत बचन मनु अति सकुचाई। हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई॥

तुम किसकी आराधना करती हो और क्या चाहती हो? हमसे अपना सच्चा भेद क्यों नहीं कहतीं? (पार्वती ने कहा -) बात कहते मन बहुत सकुचाता है। आप लोग मेरी मूर्खता सुनकर हँसेंगे।

मनु हठ परा न सुनइ सिखावा। चहत बारि पर भीति उठावा॥
नारद कहा सत्य सोइ जाना। बिनु पंखन्ह हम चहहिं उड़ाना॥

मन ने हठ पकड़ लिया है, वह उपदेश नहीं सुनता और जल पर दीवाल उठाना चाहता है। नारद ने जो कह दिया उसे सत्य जानकर मैं बिना पंख के ही उड़ना चाहती हूँ।

देखहु मुनि अबिबेकु हमारा। चाहिअ सदा सिवहि भरतारा॥

हे मुनियो! आप मेरा अज्ञान तो देखिए कि मैं सदा शिव को ही पति बनाना चाहती हूँ।

दो० - सुनत बचन बिहसे रिषय गिरिसंभव तव देह।
नारद कर उपदेसु सुनि कहहु बसेउ किसु गेह॥ 78॥

पार्वती की बात सुनते ही ऋषि लोग हँस पड़े और बोले - तुम्हारा शरीर पर्वत से ही तो उत्पन्न हुआ है! भला, कहो तो नारद का उपदेश सुनकर आज तक किसका घर बसा है?॥ 78॥

दच्छसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई। तिन्ह फिरि भवनु न देखा आई॥
चित्रकेतु कर घरु उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला॥

उन्होंने जाकर दक्ष के पुत्रों को उपदेश दिया था, जिससे उन्होंने फिर लौटकर घर का मुँह भी नहीं देखा। चित्रकेतु के घर को नारद ने ही चौपट किया। फिर यही हाल हिरण्यकशिपु का हुआ।

नारद सिख जे सुनहिं नर नारी। अवसि होहिं तजि भवनु भिखारी॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा॥

जो स्त्री-पुरुष नारद की सीख सुनते हैं, वे घर-बार छोड़कर अवश्य ही भिखारी हो जाते हैं। उनका मन तो कपटी है, शरीर पर सज्जनों के चिह्न हैं। वे सभी को अपने समान बनाना चाहते हैं।

तेहि कें बचन मानि बिस्वासा। तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा॥
निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली॥

उनके वचनों पर विश्वास मानकर तुम ऐसा पति चाहती हो जो स्वभाव से ही उदासीन, गुणहीन, निर्लज्ज, बुरे वेषवाला, नर-कपालों की माला पहननेवाला, कुलहीन, बिना घर-बार का, नंगा और शरीर पर साँपों को लपेटे रखनेवाला है।

कहहु कवन सुखु अस बरु पाएँ। भल भूलिहु ठग के बौराएँ॥
पंच कहें सिवँ सती बिबाही। पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही॥

ऐसे वर के मिलने से कहो, तुम्हें क्या सुख होगा? तुम उस ठग (नारद) के बहकावे में आकर खूब भूलीं। पहले पंचों के कहने से शिव ने सती से विवाह किया, परंतु फिर उसे त्यागकर मरवा डाला।

दो॰ - अब सुख सोवत सोचु नहिं भीख मागि भव खाहिं।
सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं॥ 79॥

अब शिव को कोई चिंता नहीं रही, भीख माँगकर खा लेते हैं और सुख से सोते हैं। ऐसे स्वभाव से ही अकेले रहने वालों के घर भी भला क्या कभी स्त्रियाँ टिक सकती हैं?॥ 79॥

अजहूँ मानहु कहा हमारा। हम तुम्ह कहुँ बरु नीक बिचारा॥
अति सुंदर सुचि सुखद सुसीला। गावहिं बेद जासु जस लीला॥

अब भी हमारा कहा मानो, हमने तुम्हारे लिए अच्छा वर विचारा है। वह बहुत ही सुंदर, पवित्र, सुखदायक और सुशील है, जिसका यश और लीला वेद गाते हैं।

दूषन रहित सकल गुन रासी।पति पुर बैकुंठ निवासी॥
अस बरु तुम्हहि मिलाउब आनी। सुनत बिहसि कह बचन भवानी॥

वह दोषों से रहित, सारे सद्‌गुणों की राशि, लक्ष्मी का स्वामी और बैकुंठपुरी का रहनेवाला है। हम ऐसे वर को लाकर तुमसे मिला देंगे। यह सुनते ही पार्वती हँसकर बोलीं - ।

सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा। हठ न छूट छूटै बरु देहा॥
कनकउ पुनि पषान तें होई। जारेहुँ सहजु न परिहर सोई॥

आपने यह सत्य ही कहा कि मेरा यह शरीर पर्वत से उत्पन्न हुआ है, इसलिए हठ नहीं छूटेगा, शरीर भले ही छूट जाए। सोना भी पत्थर से ही उत्पन्न होता है, सो वह जलाए जाने पर भी अपने स्वभाव (सुवर्णत्व) को नहीं छोड़ता।

नारद बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवनु उजरउ नहिं डरउँ॥
गुर कें बचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही॥

अतः मैं नारद के वचनों को नहीं छोड़ूँगी, चाहे घर बसे या उजड़े, इससे मैं नहीं डरती। जिसको गुरु के वचनों में विश्वास नहीं है, उसको सुख और सिद्धि स्वप्न में भी सुगम नहीं होती।

दो० - महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम॥ 80॥

माना कि महादेव अवगुणों के भवन हैं और विष्णु समस्त सद्‌गुणों के धाम हैं, पर जिसका मन जिसमें रम गया, उसको तो उसी से काम है॥ 80॥

जौं तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा। सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा॥
अब मैं जन्मु संभु हित हारा। को गुन दूषन करै बिचारा॥

हे मुनीश्वरे! यदि आप पहले मिलते, तो मैं आपका उपदेश सिर-माथे रखकर सुनती, परंतु अब तो मैं अपना जन्म शिव के लिए हार चुकी! फिर गुण-दोषों का विचार कौन करे?

जौं तुम्हरे हठ हृदयँ बिसेषी। रहि न जाइ बिनु किएँ बरेषी॥
तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं। बर कन्या अनेक जग माहीं॥

यदि आपके हृदय में बहुत ही हठ है और विवाह की बातचीत (बरेखी) किए बिना आपसे रहा ही नहीं जाता, तो संसार में वर-कन्या बहुत हैं। खिलवाड़ करने वालों को आलस्य तो होता नहीं (और कहीं जाकर कीजिए)।

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू॥

मेरा तो करोड़ जन्मों तक यही हठ रहेगा कि या तो शिव को वरूँगी, नहीं तो कुमारी ही रहूँगी। स्वयं शिव सौ बार कहें, तो भी नारद के उपदेश को न छोड़ूँगी।

मैं पा परउँ कहइ जगदंबा। तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलंबा॥
देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी। जय जय जगदंबिके भवानी॥

जगज्जननी पार्वती ने फिर कहा कि मैं आपके पैरों पड़ती हूँ। आप अपने घर जाइए, बहुत देर हो गई। (शिव में पार्वती का ऐसा) प्रेम देखकर ज्ञानी मुनि बोले - हे जगज्जननी! हे भवानी! आपकी जय हो! जय हो!!

दो॰ - तुम्ह माया भगवान सिव सकल गजत पितु मातु।
नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गातु॥ 81॥

आप माया हैं और शिव भगवान हैं। आप दोनों समस्त जगत के माता-पिता हैं। (यह कहकर) मुनि पार्वती के चरणों में सिर नवाकर चल दिए। उनके शरीर बार-बार पुलकित हो रहे थे॥ 81॥

जाइ मुनिन्ह हिमवंतु पठाए। करि बिनती गिरजहिं गृह ल्याए॥
बहुरि सप्तरिषि सिव पहिं जाई। कथा उमा कै सकल सुनाई॥

मुनियों ने जाकर हिमवान को पार्वती के पास भेजा और वे विनती करके उनको घर ले आए, फिर सप्तर्षियों ने शिव के पास जाकर उनको पार्वती की सारी कथा सुनाई।

भए मगन सिव सुनत सनेहा। हरषि सप्तरिषि गवने गेहा॥
मनु थिर करि तब संभु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना॥

पार्वती का प्रेम सुनते ही शिव आनंदमग्न हो गए। सप्तर्षि प्रसन्न होकर अपने घर (ब्रह्मलोक) को चले गए। तब सुजान शिव मन को स्थिर करके रघुनाथ का ध्यान करने लगे।

तारकु असुर भयउ तेहि काला। भुज प्रताप बल तेज बिसाला॥
तेहिं सब लोक लोकपति जीते। भए देव सुख संपति रीते॥

उसी समय तारक नाम का असुर हुआ, जिसकी भुजाओं का बल, प्रताप और तेज बहुत बड़ा था। उसने सब लोक और लोकपालों को जीत लिया, सब देवता सुख और संपत्ति से रहित हो गए।

अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि बिबिध लराई॥
तब बिरंचि सन जाइ पुकारे। देखे बिधि सब देव दुखारे॥

वह अजर-अमर था, इसलिए किसी से जीता नहीं जाता था। देवता उसके साथ बहुत तरह की लड़ाइयाँ लड़कर हार गए। तब उन्होंने ब्रह्मा के पास जाकर गुहार की। ब्रह्मा ने सब देवताओं को दुःखी देखा।

दो॰ - सब सन कहा बुझाइ बिधि दनुज निधन तब होइ।

संभु सुक्र संभूत सुत एहि जीतइ रन सोइ॥ 82॥

ब्रह्मा ने सबको समझाकर कहा - इस दैत्य की मृत्यु तब होगी जब शिव के वीर्य से पुत्र उत्पन्न हो, इसको युद्ध में वही जीतेगा॥ 82॥

मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईस्वर करिहि सहाई॥
सतीं जो तजी दच्छ मख देहा। जनमी जाइ हिमाचल गेहा॥

मेरी बात सुनकर उपाय करो। ईश्वर सहायता करेंगे और काम हो जाएगा। सती ने जो दक्ष के यज्ञ में देह का त्याग किया था, उन्होंने अब हिमाचल के घर जाकर जन्म लिया है।

तेहिं तपु कीन्ह संभु पति लागी। सिव समाधि बैठे सबु त्यागी॥
जदपि अहइ असमंजस भारी। तदपि बात एक सुनहु हमारी॥

उन्होंने शिव को पति बनाने के लिए तप किया है, इधर शिव सब छोड़-छाड़कर समाधि लगा बैठे हैं। यद्यपि है तो बड़े असमंजस की बात, तथापि मेरी एक बात सुनो।

पठवहु कामु जाइ सिव पाहीं। करै छोभु संकर मन माहीं॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई। करवाउब बिबाहु बरिआई॥

तुम जाकर कामदेव को शिव के पास भेजो, वह शिव के मन में क्षोभ उत्पन्न करे (उनकी समाधि भंग करे)। तब हम जाकर शिव के चरणों में सिर रख देंगे और जबरदस्ती (उन्हें राजी करके) विवाह करा देंगे।

एहि बिधि भलेहिं देवहित होई। मत अति नीक कहइ सबु कोई॥
अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू। प्रगटेउ बिषमबान झषकेतू॥

इस प्रकार से भले ही देवताओं का हित हो (और तो कोई उपाय नहीं है) सबने कहा - यह सम्मति बहुत अच्छी है। फिर देवताओं ने बड़े प्रेम से स्तुति की। तब विषम (पाँच) बाण धारण करनेवाला और मछली के चिह्नयुक्त ध्वजावाला कामदेव प्रकट हुआ।

दो० - सुरन्ह कही निज बिपति सब सुनि मन कीन्ह बिचार।
संभु बिरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ अस मार॥ 83॥

देवताओं ने कामदेव से अपनी सारी विपत्ति कही। सुनकर कामदेव ने मन में विचार किया और हँसकर देवताओं से यों कहा कि शिव के साथ विरोध करने में मेरी कुशल नहीं है॥ 83॥

तदपि करब मैं काजु तुम्हारा। श्रुति कह परम धरम उपकारा॥
पर हित लागि तजइ जो देही। संतत संत प्रसंसहिं तेही॥

तथापि मैं तुम्हारा काम तो करूँगा, क्योंकि वेद दूसरे के उपकार को परम धर्म कहते हैं। जो दूसरे के हित के लिए अपना शरीर त्याग देता है, संत सदा उसकी बड़ाई करते हैं।

अस कहि चलेउ सबहि सिरु नाई। सुमन धनुष कर सहित सहाई॥
चलत मार अस हृदयँ बिचारा। सिव बिरोध ध्रुब मरनु हमारा॥

यों कह और सबको सिर नवाकर कामदेव अपने पुष्प के धनुष को हाथ में लेकर (वसंतादि) सहायकों के साथ चला। चलते समय कामदेव ने हृदय में ऐसा विचार किया कि शिव के साथ विरोध करने से मेरा मरण निश्चित है।

तब आपन प्रभाउ बिस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा॥
कोपेउ जबहिं बारिचरकेतू। छन महुँ मिटे सकल श्रुति सेतू॥

तब उसने अपना प्रभाव फैलाया और समस्त संसार को अपने वश में कर लिया। जिस समय उस मछली के चिह्न की ध्वजावाले कामदेव ने कोप किया, उस समय क्षणभर में ही वेदों की सारी मर्यादा मिट गई।

ब्रह्मचर्ज ब्रत संजम नाना। धीरज धरम ग्यान बिग्याना॥
सदाचार जप जोग बिरागा। सभय बिबेक कटकु सबु भागा॥

ब्रह्मचर्य, नियम, नाना प्रकार के संयम, धीरज, धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सदाचार, जप, योग, वैराग्य आदि विवेक की सारी सेना डरकर भाग गई।

छं० - भागेउ बिबेकु सहाय सहित सो सुभट संजुग महि मुरे।
सदग्रंथ पर्बत कंदरन्हि महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे॥
होनिहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा।
दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपि कर धनु सरु धरा॥

विवेक अपने सहायकों सहित भाग गया, उसके योद्धा रणभूमि से पीठ दिखा गए। उस समय वे सब सद्ग्रंथरूपी पर्वत की कंदराओं में जा छिपे (अर्थात ज्ञान, वैराग्य, संयम, नियम, सदाचारादि ग्रंथों में ही लिखे रह गए, उनका आचरण छूट गया)। सारे जगत में खलबली मच गई (और सब कहने लगे -) हे विधाता! अब क्या होनेवाला है? हमारी रक्षा कौन करेगा? ऐसा दो सिरवाला कौन है, जिसके लिए रति के पति कामदेव ने कोप करके हाथ में धनुष-बाण उठाया है?

दो॰ - जे सजीव जग अचर चर नारि पुरुष अस नाम।
ते निज निज मरजाद तजि भए सकल बस काम॥ 84॥

जगत में स्त्री-पुरुष संज्ञावाले जितने चर-अचर प्राणी थे, वे सब अपनी-अपनी मर्यादा छोड़कर काम के वश में हो गए॥ 84॥

सब के हृदयँ मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहिं तरु साखा॥
नदीं उमगि अंबुधि कहुँ धाईं। संगम करहिं तलाव तलाईं॥

सबके हृदय में काम की इच्छा हो गई। लताओं (बेलों) को देखकर वृक्षों की डालियाँ झुकने लगीं। नदियाँ उमड़-उमड़कर समुद्र की ओर दौड़ीं और ताल-तलैयाँ भी आपस में संगम करने (मिलने-जुलने) लगीं।

जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी। को कहि सकइ सचेतन करनी॥
पसु पच्छी नभ जल थल चारी। भए काम बस समय बिसारी॥

जब जड़ (वृक्ष, नदी आदि) की यह दशा कही गई, तब चेतन जीवों की करनी कौन कह सकता है? आकाश, जल और पृथ्वी पर विचरनेवाले सारे पशु-पक्षी (अपने संयोग का) समय भुलाकर काम के वश में हो गए।

मदन अंध ब्याकुल सब लोका। निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका॥
देव दनुज नर किंनर ब्याला। प्रेत पिसाच भूत बेताला॥

सब लोक कामांध होकर व्याकुल हो गए। चकवा-चकवी रात-दिन नहीं देखते। देव, दैत्य, मनुष्य, किन्नर, सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत, बेताल - ।

इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी॥

सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी। तेपि कामबस भए बियोगी॥

ये तो सदा ही काम के गुलाम हैं, यह समझकर मैंने इनकी दशा का वर्णन नहीं किया। सिद्ध, विरक्त, महामुनि और महान योगी भी काम के वश होकर योगरहित या स्त्री के विरही हो गए।

छं० - भए कामबस जोगीस तापस पावँरन्हि की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं॥

जब योगीश्वर और तपस्वी भी काम के वश हो गए, तब पामर मनुष्यों की कौन कहे? जो समस्त चराचर जगत को ब्रह्ममय देखते थे, वे अब उसे स्त्रीमय देखने लगे। स्त्रियाँ सारे संसार को पुरुषमय देखने लगीं और पुरुष उसे स्त्रीमय देखने लगे। दो घड़ी तक सारे ब्रह्मांड के अंदर कामदेव का रचा हुआ यह कौतुक (तमाशा) रहा।

सो० - धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ॥ 85॥

किसी ने भी हृदय में धैर्य नहीं धारण किया, कामदेव ने सबके मन हर लिए। रघुनाथ ने जिनकी रक्षा की, केवल वे ही उस समय बचे रहे॥ 85॥

उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जौ लगि कामु संभु पहिं गयऊ॥
सिवहि बिलोकि ससंकेउ मारू। भयउ जथाथिति सबु संसारू॥

दो घड़ी तक ऐसा तमाशा हुआ, जब तक कामदेव शिव के पास पहुँच गया। शिव को देखकर कामदेव डर गया, तब सारा संसार फिर जैसा-का- तैसा स्थिर हो गया।

भए तुरत सब जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गएँ मतवारे॥
रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधरष दुर्गम भगवाना॥

तुरंत ही सब जीव वैसे ही सुखी हो गए, जैसे मतवाले (नशा पिए हुए) लोग मद (नशा) उतर जाने पर सुखी होते हैं। दुर्धर्ष (जिनको पराजित करना अत्यंत ही कठिन है) और दुर्गम (जिनका पार पाना कठिन है) भगवान (संपूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश,, ज्ञान और वैराग्य

रूप छह ईश्वरीय गुणों से युक्त) रुद्र (महाभयंकर) शिव को देखकर कामदेव भयभीत हो गया।

फिरत लाज कछु करि नहिं जाई। मरनु ठानि मन रचेसि उपाई॥
प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसुमित नव तरु राजि बिराजा॥

लौट जाने में लज्जा मालूम होती है और करते कुछ बनता नहीं। आखिर मन में मरने का निश्चय करके उसने उपाय रचा। तुरंत ही सुंदर ऋतुराज वसंत को प्रकट किया। फूले हुए नए-नए वृक्षों की कतारें सुशोभित हो गईं।

बन उपबन बापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसा बिभागा॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहुँ मन मनसिज जागा॥

वन-उपवन, बावली-तालाब और सब दिशाओं के विभाग परम सुंदर हो गए। जहाँ-तहाँ मानो प्रेम उमड़ रहा है, जिसे देखकर मरे मनों में भी कामदेव जाग उठा।

छं० - जागइ मनोभव मुएहुँ मन बन सुभगता न परै कही।
सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही॥
बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा।
कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा॥

मरे हुए मन में भी कामदेव जागने लगा। वन की सुंदरता कही नहीं जा सकती। कामरूपी अग्नि का सच्चा मित्र शीतल-मंद-सुगंधित पवन चलने लगा। सरोवरों में अनेकों कमल खिल गए, जिन पर सुंदर भौंरों के समूह गुंजार करने लगे। राजहंस, कोयल और तोते रसीली बोली बोलने लगे और अप्सराएँ गा-गाकर नाचने लगीं॥

दो० - सकल कला करि कोटि बिधि हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि सिव कोपेउ हृदयनिकेत॥ 86॥

कामदेव अपनी सेना समेत करोड़ों प्रकार की सब कलाएँ (उपाय) करके हार गया, पर शिव की अचल समाधि न डिगी। तब कामदेव क्रोधित हो उठा॥ 86॥

देखि रसाल बिटप बर साखा। तेहि पर चढ़ेउ मदनु मन माखा॥
सुमन चाप निज सर संधाने। अति रिस ताकि श्रवन लगि ताने॥

आम के वृक्ष की एक सुंदर डाली देखकर मन में क्रोध से भरा हुआ कामदेव उस पर चढ़ गया। उसने पुष्प-धनुष पर अपने (पाँचों) बाण चढ़ाए और अत्यंत क्रोध से (लक्ष्य की ओर) ताककर उन्हें कान तक तान लिया।

छाड़े बिषम बिसिख उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे॥
भयउ ईस मन छोभु बिसेषी। नयन उघारि सकल दिसि देखी॥

कामदेव ने तीक्ष्ण पाँच बाण छोड़े, जो शिव के हृदय में लगे। तब उनकी समाधि टूट गई और वे जाग गए। ईश्वर (शिव) के मन में बहुत क्षोभ हुआ। उन्होंने आँखें खोलकर सब ओर देखा।

सौरभ पल्लव मदनु बिलोका। भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोका॥
तब सिवँ तीसर नयन उघारा। चितवन कामु भयउ जरि छारा॥

जब आम के पत्तों में (छिपे हुए) कामदेव को देखा तो उन्हें बड़ा क्रोध हुआ, जिससे तीनों लोक काँप उठे। तब शिव ने तीसरा नेत्र खोला, उनके देखते ही कामदेव जलकर भस्म हो गया।

हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुर भए असुर सुखारी॥
समुझि कामसुख सोचहिं भोगी। भए अकंटक साधक जोगी॥

जगत में बड़ा हाहाकर मच गया। देवता डर गए, दैत्य सुखी हुए। भोगी लोग कामसुख को याद करके चिंता करने लगे और साधक योगी निष्कंटक हो गए।

छं० - जोगी अकंटक भए पति गति सुनत रति मुरुछित भई।
रोदति बदति बहु भाँति करुना करति संकर पहिं गई॥
अति प्रेम करि बिनती बिबिध बिधि जोरि कर सन्मुख रही।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही॥

योगी निष्कंटक हो गए, कामदेव की स्त्री रति अपने पति की यह दशा सुनते ही मूर्च्छित हो गई। रोती-चिल्लाती और भाँति-भाँति से करुणा करती हुई वह शिव के पास गई। अत्यंत प्रेम के साथ अनेकों प्रकार से विनती करके हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो गई। शीघ्र प्रसन्न होनेवाले कृपालु शिव अबला (असहाय स्त्री) को देखकर सुंदर (उसको सांत्वना देनेवाले) वचन बोले -

दो॰ - अब तें रति तव नाथ कर होइहि नामु अनंगु।
बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंगु॥ 87॥

हे रति! अब से तेरे स्वामी का नाम अनंग होगा। वह बिना शरीर के ही सबको व्यापेगा। अब तू अपने पति से मिलने की बात सुन॥ 87॥

जब जदुबंस कृष्न अवतारा। होइहि हरन महा महिभारा॥
कृष्न तनय होइहि पति तोरा। बचनु अन्यथा होइ न मोरा॥

जब पृथ्वी के बड़े भारी भार को उतारने के लिए यदुवंश में कृष्ण का अवतार होगा, तब तेरा पति उनके पुत्र (प्रद्युम्न) के रूप में उत्पन्न होगा। मेरा यह वचन अन्यथा नहीं होगा।

रति गवनी सुनि संकर बानी। कथा अपर अब कहउँ बखानी॥
देवन्ह समाचार सब पाए। ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाए॥

शिव के वचन सुनकर रति चली गई। अब दूसरी कथा बखानकर कहता हूँ। ब्रह्मादि देवताओं ने ये सब समाचार सुने तो वे बैकुंठ को चले।

सब सुर बिष्नु बिरंचि समेता। गए जहाँ सिव कृपानिकेता॥
पृथक-पृथक तिन्ह कीन्हि प्रसंसा। भए प्रसन्न चंद्र अवतंसा॥

फिर वहाँ से विष्णु और ब्रह्मा सहित सब देवता वहाँ गए, जहाँ कृपा के धाम शिव थे। उन सबने शिव की अलग-अलग स्तुति की, तब शशिभूषण शिव प्रसन्न हो गए।

बोले कृपासिंधु बृषकेतू। कहहु अमर आए केहि हेतू॥
कह बिधि तुम्ह प्रभु अंतरजामी। तदपि भगति बस बिनवउँ स्वामी॥

कृपा के समुद्र शिव बोले - हे देवताओ! कहिए, आप किसलिए आए हैं? ब्रह्मा ने कहा - हे प्रभो! आप अंतर्यामी हैं, तथापि हे स्वामी! भक्तिवश मैं आपसे विनती करता हूँ।

दो॰ - सकल सुरन्ह के हृदयँ अस संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहहिं नाथ तुम्हार बिबाहु॥ 88॥

हे शंकर! सब देवताओं के मन में ऐसा परम उत्साह है कि हे नाथ! वे अपनी आँखों से

आपका विवाह देखना चाहते हैं॥ 88॥

यह उत्सव देखिअ भरि लोचन। सोइ कछु करहु मदन मद मोचन॥
कामु जारि रति कहुँ बरु दीन्हा। कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा॥

हे कामदेव के मद को चूर करनेवाले! आप ऐसा कुछ कीजिए, जिससे सब लोग इस उत्सव को नेत्र भरकर देखें। हे कृपा के सागर! कामदेव को भस्म करके आपने रति को जो वरदान दिया, सो बहुत ही अच्छा किया।

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ॥
पारबतीं तपु कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अंगीकारा॥

हे नाथ! श्रेष्ठ स्वामियों का यह सहज स्वभाव ही है कि वे पहले दंड देकर फिर कृपा किया करते हैं। पार्वती ने अपार तप किया है, अब उन्हें अंगीकार कीजिए।

सुनि बिधि बिनय समुझि प्रभु बानी। ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी॥
तब देवन्ह दुंदुभीं बजाईं। बरषि सुमन जय जय सुर साईं॥

ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर और प्रभु राम के वचनों को याद कर शिव ने प्रसन्नतापूर्वक कहा - 'ऐसा ही हो।' तब देवताओं ने नगाड़े बजाए और फूलों की वर्षा करके 'जय हो! देवताओं के स्वामी जय हो' ऐसा कहने लगे।

अवसरु जानि सप्तरिषि आए। तुरतहिं बिधि गिरिभवन पठाए॥
प्रथम गए जहँ रहीं भवानी। बोले मधुर बचन छल सानी॥

उचित अवसर जानकर सप्तर्षि आए और ब्रह्मा ने तुरंत ही उन्हें हिमाचल के घर भेज दिया। वे पहले वहाँ गए जहाँ पार्वती थीं और उनसे छल से भरे मीठे (विनोदयुक्त, आनंद पहुँचानेवाले) वचन बोले - ।

दो० - कहा हमार न सुनेहु तब नारद कें उपदेस॥
अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ कामु महेस॥ 89॥

नारद के उपदेश से तुमने उस समय हमारी बात नहीं सुनी। अब तो तुम्हारा प्रण झूठा हो गया, क्योंकि महादेव ने काम को ही भस्म कर डाला॥ 89॥

सुनि बोलीं मुसुकाइ भवानी। उचित कहेहु मुनिबर बिग्यानी॥
तुम्हरें जान कामु अब जारा। अब लगि संभु रहे सबिकारा॥

यह सुनकर पार्वती मुसकराकर बोलीं - हे विज्ञानी मुनिवरो! आपने उचित ही कहा। आपकी समझ में शिव ने कामदेव को अब जलाया है, अब तक तो वे विकारयुक्त (कामी) ही रहे!

हमरें जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी॥
जौं मैं सिव सेये अस जानी। प्रीति समेत कर्म मन बानी॥

किंतु हमारी समझ से तो शिव सदा से ही योगी, अजन्मे, अनिंद्य, कामरहित और भोगहीन हैं और यदि मैंने शिव को ऐसा समझकर ही मन, वचन और कर्म से प्रेम सहित उनकी सेवा की है।

तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा॥
तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा। सोइ अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा॥

तो हे मुनीश्वरो! सुनिए, वे कृपानिधान भगवान मेरी प्रतिज्ञा को सत्य करेंगे। आपने जो यह कहा कि शिव ने कामदेव को भस्म कर दिया, यही आपका बड़ा भारी अविवेक है।

तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ॥
गएँ समीप सो अवसि नसाई। असि मन्मथ महेस की नाई॥

हे तात! अग्नि का तो यह सहज स्वभाव ही है कि पाला उसके समीप कभी जा ही नहीं सकता और जाने पर वह अवश्य नष्ट हो जाएगा। महादेव और कामदेव के संबंध में भी यही न्याय (बात) समझना चाहिए।

दो॰ - हियँ हरषे मुनि बचन सुनि देखि प्रीति बिस्वास।
चले भवानिहि नाइ सिर गए हिमाचल पास॥ 90॥

पार्वती के वचन सुनकर और उनका प्रेम तथा विश्वास देखकर मुनि हृदय में बड़े प्रसन्न हुए। वे भवानी को सिर नवाकर चल दिए और हिमाचल के पास पहुँचे॥ 90॥

सबु प्रसंगु गिरिपतिहि सुनावा। मदन दहन सुनि अति दुखु पावा॥
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना। सुनि हिमवंत बहुत सुखु माना॥

उन्होंने पर्वतराज हिमाचल को सब हाल सुनाया। कामदेव का भस्म होना सुनकर हिमाचल बहुत दुःखी हुए। फिर मुनियों ने रति के वरदान की बात कही, उसे सुनकर हिमवान ने बहुत सुख माना।

हृदयँ बिचारि संभु प्रभुताई। सादर मुनिबर लिए बोलाई।
सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई। बेगि बेदबिधि लगन धराई॥

शिव के प्रभाव को मन में विचार कर हिमाचल ने श्रेष्ठ मुनियों को आदरपूर्वक बुला लिया और उनसे शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और शुभ घड़ी शोधवाकर वेद की विधि के अनुसार शीघ्र ही लग्न निश्चय कराकर लिखवा लिया।

पत्री सप्तरिषिन्ह सोइ दीन्ही। गहि पद बिनय हिमाचल कीन्ही॥
जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती। बाचत प्रीति न हृदयँ समाती॥

फिर हिमाचल ने वह लग्नपत्रिका सप्तर्षियों को दे दी और चरण पकड़कर उनकी विनती की। उन्होंने जाकर वह लग्न पत्रिका ब्रह्मा को दी। उसको पढ़ते समय उनके हृदय में प्रेम समाता न था।

लगन बाचि अज सबहि सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई॥
सुमन बृष्टि नभ बाजन बाजे। मंगल कलस दसहुँ दिसि साजे॥

ब्रह्मा ने लग्न पढ़कर सबको सुनाया, उसे सुनकर सब मुनि और देवताओं का सारा समाज हर्षित हो गया। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी, बाजे बजने लगे और दसों दिशाओं में मंगल-कलश सजा दिए गए।

दो० - लगे सँवारन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान।
होहिं सगुन मंगल सुभद करहिं अपछरा गान॥ 91॥

सब देवता अपने भाँति-भाँति के वाहन और विमान सजाने लगे, कल्याणप्रद मंगल शकुन होने लगे और अप्सराएँ गाने लगीं॥ 91॥

सिवहि संभु गन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा॥
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला॥

शिव के गण शिव का श्रृंगार करने लगे। जटाओं का मुकुट बनाकर उस पर साँपों का मौर

सजाया गया। शिव ने साँपों के ही कुंडल और कंकण पहने, शरीर पर विभूति रमाई और वस्त्र की जगह बाघंबर लपेट लिया।

ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा॥
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिवधाम कृपाला॥

शिव के सुंदर मस्तक पर चंद्रमा, सिर पर गंगा, तीन नेत्र, साँपों का जनेऊ, गले में विष और छाती पर नरमुंडों की माला थी। इस प्रकार उनका वेष अशुभ होने पर भी वे कल्याण के धाम और कृपालु हैं।

कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा॥
देखि सिवहि सुरत्रिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं॥

एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में डमरू सुशोभित है। शिव बैल पर चढ़कर चले। बाजे बज रहे हैं। शिव को देखकर देवांगनाएँ मुस्कुरा रही हैं (और कहती हैं कि) इस वर के योग्य दुलहिन संसार में नहीं मिलेगी।

बिष्नु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता॥
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा॥

विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओं के समूह अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर बारात में चले। देवताओं का समाज सब प्रकार से अनुपम (परम सुंदर) था, पर दूल्हे के योग्य बारात न थी।

दो० - बिष्नु कहा अस बिहसि तब बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज॥ 92॥

तब विष्णु भगवान ने सब दिग्पालों को बुलाकर हँसते हुए ऐसा कहा - सब लोग अपने-अपने दल समेत अलग-अलग होकर चलो॥ 92॥

बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई॥
बिष्नु बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने॥

हे भाई! हम लोगों की यह बारात वर के योग्य नहीं है। क्या पराए नगर में जाकर हँसी कराओगे? विष्णु भगवान की बात सुनकर देवता मुसकराए और वे अपनी-अपनी सेना

सहित अलग हो गए।

मनहीं मन महेसु मुसुकाहीं। हरि के बिंग्य बचन नहिं जाहीं॥
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे॥

महादेव (यह देखकर) मन-ही-मन मुस्कुराते हैं कि विष्णु भगवान के व्यंग्य-वचन (दिल्लगी) नहीं छूटते! अपने प्यारे (विष्णु भगवान) के इन अति प्रिय वचनों को सुनकर शिव ने भी भृंगी को भेजकर अपने सब गणों को बुलवा लिया।

सिव अनुसासन सुनि सब आए। प्रभु पद जलज सीस तिन्ह नाए॥
नाना बाहन नाना बेषा। बिहसे सिव समाज निज देखा॥

शिव की आज्ञा सुनते ही सब चले आए और उन्होंने स्वामी के चरण कमलों में सिर नवाया। तरह-तरह की सवारियों और तरह-तरह के वेषवाले अपने समाज को देखकर शिव हँसे।

कोउ मुख हीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू॥
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्टपुष्ट कोउ अति तनखीना॥

कोई बिना मुख का है, किसी के बहुत-से मुख हैं, कोई बिना हाथ-पैर का है तो किसी के कई हाथ-पैर हैं। किसी के बहुत आँखें हैं तो किसी के एक भी आँख नहीं है। कोई बहुत मोटा-ताजा है, तो कोई बहुत ही दुबला-पतला है।

छं० - तन कीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें॥
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन बेष अगनित को गनै।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै॥

कोई बहुत दुबला, कोई बहुत मोटा, कोई पवित्र और कोई अपवित्र वेष धारण किए हुए है। भयंकर गहने पहने हाथ में कपाल लिए हैं और सब के सब शरीर में ताजा खून लपेटे हुए हैं। गधे, कुत्ते, सूअर और सियार के-से उनके मुख हैं। गणों के अनगिनत वेषों को कौन गिने? बहुत प्रकार के प्रेत, पिशाच और योगिनियों की जमाते हैं। उनका वर्णन करते नहीं बनता।

सो० - नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब।
देखत अति बिपरीत बोलहिं बचन बिचित्र बिधि॥ 93॥

भूत-प्रेत नाचते और गाते हैं, वे सब बड़े मौजी हैं। देखने में बहुत ही बेढंगे जान पड़ते हैं और बड़े ही विचित्र ढंग से बोलते हैं॥ 93॥

जस दूलहु तसि बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिं मग जाता॥
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना॥

जैसा दूल्हा है, अब वैसी ही बारात बन गई है। मार्ग में चलते हुए भाँति-भाँति के कौतुक होते जाते हैं। इधर हिमाचल ने ऐसा विचित्र मंडप बनाया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

सैल सकल जहँ लगि जग माहीं। लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं॥
बन सागर सब नदी तलावा। हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा॥

जगत में जितने छोटे-बड़े पर्वत थे, जिनका वर्णन करके पार नहीं मिलता तथा जितने वन, समुद्र, नदियाँ और तालाब थे, हिमाचल ने सबको नेवता भेजा।

कामरूप सुंदर तन धारी। सहित समाज सहित बर नारी॥
गए सकल तुहिमाचल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा॥

वे सब अपनी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सुंदर शरीर धारण कर सुंदरी स्त्रियों और समाजों के साथ हिमाचल के घर गए। सभी स्नेह सहित मंगल गीत गा रहे हैं।

प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराए। जथाजोगु तहँ तहँ सब छाए॥
पुर सोभा अवलोकि सुहाई। लागइ लघु बिरंचि निपुनाई॥

हिमाचल ने पहले ही से बहुत-से घर सजवा रखे थे। यथायोग्य उन-उन स्थानों में सब लोग उतर गए। नगर की सुंदर शोभा देखकर ब्रह्मा की रचना चातुरी भी तुच्छ लगती थी।

छं० - लघु लाग बिधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही।
बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही॥
मंगल बिपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं।

बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं॥

नगर की शोभा देखकर ब्रह्मा की निपुणता सचमुच तुच्छ लगती है। वन, बाग, कुएँ, तालाब, नदियाँ सभी सुंदर हैं, उनका वर्णन कौन कर सकता है? घर-घर बहुत-से मंगलसूचक तोरण और ध्वजा-पताकाएँ सुशोभित हो रही हैं। वहाँ के सुंदर और चतुर स्त्री-पुरुषों की छवि देखकर मुनियों के भी मन मोहित हो जाते हैं।

दो० - जगदंबा जहँ अवतरी सो पुरु बरनि कि जाइ।
रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख नित नूतन अधिकाइ॥ 94॥

जिस नगर में स्वयं जगदंबा ने अवतार लिया, क्या उसका वर्णन हो सकता है? वहाँ ऋद्धि, सिद्धि, संपत्ति और सुख नित-नए बढ़ते जाते हैं॥ 94॥

नगर निकट बरात सुनि आई। पुर खरभरु सोभा अधिकाई॥
करि बनाव सजि बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना॥

बारात को नगर के निकट आई सुनकर नगर में चहल-पहल मच गई, जिससे उसकी शोभा बढ़ गई। अगवानी करनेवाले लोग बनाव-श्रृंगार करके तथा नाना प्रकार की सवारियों को सजाकर आदर सहित बारात को लेने चले।

हियँ हरषे सुर सेन निहारी। हरिहि देखि अति भए सुखारी॥
सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बाहन सब भागे॥

देवताओं के समाज को देखकर सब मन में प्रसन्न हुए और विष्णु भगवान को देखकर तो बहुत ही सुखी हुए, किंतु जब शिव के दल को देखने लगे तब तो उनके सब वाहन (सवारियों के हाथी, घोड़े, रथ के बैल आदि) डरकर भाग चले।

धरि धीरजु तहँ रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने॥
गएँ भवन पूछहिं पितु माता। कहहिं बचन भय कंपित गाता॥

कुछ बड़ी उम्र के समझदार लोग धीरज धरकर वहाँ डटे रहे। लड़के तो सब अपने प्राण लेकर भागे। घर पहुँचने पर जब माता-पिता पूछते हैं, तब वे भय से काँपते हुए शरीर से ऐसा वचन कहते हैं -

कहिअ काह कहि जाइ न बाता। जम कर धार किधौं बरिआता॥

बरु बौराह बसहँ असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा॥

क्या कहें, कोई बात कही नहीं जाती। यह बारात है या यमराज की सेना? दूल्हा पागल है और बैल पर सवार है। साँप, कपाल और राख ही उसके गहने हैं।

छं० - तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा।
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा॥
जो जिअत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही।
देखिहि सो उमा बिबाहु घर घर बात असि लरिकन्ह कही॥

दूल्हे के शरीर पर राख लगी है, साँप और कपाल के गहने हैं, वह नंगा, जटाधारी और भयंकर है। उसके साथ भयानक मुखवाले भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनियाँ और राक्षस हैं, जो बारात को देखकर जीता बचेगा, सचमुच उसके बड़े ही पुण्य हैं और वही पार्वती का विवाह देखेगा। लड़कों ने घर-घर यही बात कही।

दो० - समुझि महेस समाज सब जननि जनक मुसुकाहिं।
बाल बुझाए बिबिध बिधि निडर होहु डरु नाहिं॥ 95॥

महेश्वर (शिव) का समाज समझकर सब लड़कों के माता-पिता मुस्कुराते हैं। उन्होंने बहुत तरह से लड़कों को समझाया कि निडर हो जाओ, डर की कोई बात नहीं है॥ 95॥

लै अगवान बरातहि आए। दिए सबहि जनवास सुहाए॥
मैनाँ सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी॥

अगवान लोग बारात को लिवा लाए, उन्होंने सबको सुंदर जनवासे ठहरने को दिए। मैना (पार्वती की माता) ने शुभ आरती सजाई और उनके साथ की स्त्रियाँ उत्तम मंगलगीत गाने लगीं।

कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी॥
बिकट बेष रुद्रहि जब देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा॥

सुंदर हाथों में सोने का थाल शोभित है, इस प्रकार मैना हर्ष के साथ शिव का परछन करने चलीं। जब महादेव को भयानक वेष में देखा तब तो स्त्रियों के मन में बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया।

भागि भवन पैठीं अति त्रासा। गए महेसु जहाँ जनवासा॥
मैना हृदयँ भयउ दुखु भारी। लीन्ही बोली गिरीसकुमारी॥

बहुत ही डर के मारे भागकर वे घर में घुस गईं और शिव जहाँ जनवासा था, वहाँ चले गए। मैना के हृदय में बड़ा दुःख हुआ, उन्होंने पार्वती को अपने पास बुला लिया।

अधिक सनेहँ गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे बारी॥
जेहिं बिधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा॥

और अत्यंत स्नेह से गोद में बैठाकर अपने नीलकमल के समान नेत्रों में आँसू भरकर कहा - जिस विधाता ने तुमको ऐसा सुंदर रूप दिया, उस मूर्ख ने तुम्हारे दूल्हे को बावला कैसे बनाया?

छं० - कस कीन्ह बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई।
जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं।
घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं॥

जिस विधाता ने तुमको सुंदरता दी, उसने तुम्हारे लिए वर बावला कैसे बनाया? जो फल कल्पवृक्ष में लगना चाहिए, वह जबरदस्ती बबूल में लग रहा है। मैं तुम्हें लेकर पहाड़ से गिर पड़ूँगी, आग में जल जाऊँगी या समुद्र में कूद पड़ूँगी। चाहे घर उजड़ जाए और संसार भर में अपकीर्ति फैल जाए, पर जीते जी मैं इस बावले वर से तुम्हारा विवाह न करूँगी।

दो० - भईं बिकल अबला सकल दुखित देखि गिरिनारि।
करि बिलापु रोदति बदति सुता सनेहु सँभारि॥ 96॥

हिमाचल की स्त्री (मैना) को दुःखी देखकर सारी स्त्रियाँ व्याकुल हो गईं। मैना अपनी कन्या के स्नेह को याद करके विलाप करती, रोती और कहती थीं - ॥ 96॥

नारद कर मैं काह बिगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा॥
अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा। बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा॥

मैंने नारद का क्या बिगाड़ा था, जिन्होंने मेरा बसता हुआ घर उजाड़ दिया और जिन्होंने पार्वती को ऐसा उपदेश दिया कि जिससे उसने बावले वर के लिए तप किया।

साचेहुँ उन्ह कें मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया॥
पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा॥

सचमुच उनके न किसी का मोह है, न माया, न उनके धन है, न घर है और न स्त्री ही है, वे सबसे उदासीन हैं। इसी से वे दूसरे का घर उजाड़नेवाले हैं। उन्हें न किसी की लाज है, न डर है। भला, बाँझ स्त्री प्रसव की पीड़ा को क्या जाने।

जननिहि बिकल बिलोकि भवानी। बोली जुत बिबेक मृदु बानी॥
अस बिचारि सोचहि मति माता। सो न टरइ जो रचइ बिधाता॥

माता को विकल देखकर पार्वती विवेकयुक्त कोमल वाणी बोलीं - हे माता! जो विधाता रच देते हैं, वह टलता नहीं; ऐसा विचार कर तुम सोच मत करो!

करम लिखा जौं बाउर नाहू। तौ कत दोसु लगाइअ काहू॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका॥

जो मेरे भाग्य में बावला ही पति लिखा है, तो किसी को क्यों दोष लगाया जाए? हे माता! क्या विधाता के अंक तुमसे मिट सकते हैं? वृथा कलंक का टीका मत लो।

छं० - जनि लेहु मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पाउब तहीं॥
सुनि उमा बचन बिनीत कोमल सकल अबला सोचहीं।
बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचहीं॥

हे माता! कलंक मत लो, रोना छोड़ो, यह अवसर विषाद करने का नहीं है। मेरे भाग्य में जो दुःख-सुख लिखा है, उसे मैं जहाँ जाऊँगी, वहीं पाऊँगी! पार्वती के ऐसे विनय भरे कोमल वचन सुनकर सारी स्त्रियाँ सोच करने लगीं और भाँति-भाँति से विधाता को दोष देकर आँखों से आँसू बहाने लगीं।

दो० - तेहि अवसर नारद सहित अरु रिषि सप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिनगिरि गवने तुरत निकेत॥ 97॥

इस समाचार को सुनते ही हिमाचल उसी समय नारद और सप्त ऋषियों को साथ लेकर अपने घर गए॥ 97॥

तब नारद सबही समुझावा। पूरुब कथा प्रसंगु सुनावा॥
मयना सत्य सुनहु मम बानी। जगदंबा तव सुता भवानी॥

तब नारद ने पूर्वजन्म की कथा सुनाकर सबको समझाया (और कहा) कि हे मैना! तुम मेरी सच्ची बात सुनो, तुम्हारी यह लड़की साक्षात जगज्जनी भवानी है।

अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि॥
जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला बपु धारिनि॥

ये अजन्मा, अनादि और अविनाशिनी शक्ति हैं। सदा शिव के अर्द्धांग में रहती हैं। ये जगत की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली हैं; और अपनी इच्छा से ही लीला शरीर धारण करती हैं।

जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाई। नामु सती सुंदर तनु पाई॥
तहँहुँ सती संकरहि बिबाहीं। कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं॥

पहले ये दक्ष के घर जाकर जन्मी थीं, तब इनका सती नाम था, बहुत सुंदर शरीर पाया था। वहाँ भी सती शंकर से ही ब्याही गई थीं। यह कथा सारे जगत में प्रसिद्ध है।

एक बार आवत सिव संगा। देखेउ रघुकुल कमल पतंगा॥
भयउ मोहु सिव कहा न कीन्हा। भ्रम बस बेषु सीय कर लीन्हा॥

एक बार इन्होंने शिव के साथ आते हुए (राह में) रघुकुलरूपी कमल के सूर्य राम को देखा, तब इन्हें मोह हो गया और इन्होंने शिव का कहना न मानकर भ्रमवश सीता का वेष धारण कर लिया।

छं० - सिय बेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं।
हर बिरहँ जाइ बहोरि पितु कें जग्य जोगानल जरीं॥
अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया।
अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्बदा संकरप्रिया॥

सती ने जो सीता का वेष धारण किया, उसी अपराध के कारण शंकर ने उनको त्याग दिया। फिर शिव के वियोग में ये अपने पिता के यज्ञ में जाकर वहीं योगाग्नि से भस्म हो गईं। अब इन्होंने तुम्हारे घर जन्म लेकर अपने पति के लिए कठिन तप किया है ऐसा

जानकर संदेह छोड़ दो, पार्वती तो सदा ही शिव की प्रिया हैं।

दो॰ - सुनि नारद के बचन तब सब कर मिटा बिषाद।
छन महुँ ब्यापेउ सकल पुर घर घर यह संबाद॥ 98॥

तब नारद के वचन सुनकर सबका विषाद मिट गया और क्षणभर में यह समाचार सारे नगर में घर-घर फैल गया॥ 98॥

तब मयना हिमवंतु अनंदे। पुनि पुनि पारबती पद बंदे॥
नारि पुरुष सिसु जुबा सयाने। नगर लोग सब अति हरषाने॥

तब मैना और हिमवान आनंद में मग्न हो गए और उन्होंने बार-बार पार्वती के चरणों की वंदना की। स्त्री, पुरुष, बालक, युवा और वृद्ध नगर के सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए।

लगे होन पुर मंगल गाना। सजे सबहिं हाटक घट नाना॥
भाँति अनेक भई जेवनारा। सूपसास्त्र जस कछु ब्यवहारा॥

नगर में मंगल गीत गाए जाने लगे और सबने भाँति-भाँति के सुवर्ण के कलश सजाए। पाक-शास्त्र में जैसी रीति है, उसके अनुसार अनेक भाँति की ज्योनार हुई (रसोई बनी)।

सो जेवनार कि जाइ बखानी। बसहिं भवन जेहिं मातु भवानी॥
सादर बोले सकल बराती। बिष्नु बिरंचि देव सब जाती॥

जिस घर में स्वयं माता भवानी रहती हों, वहाँ की ज्योनार (भोजन सामग्री) का वर्णन कैसे किया जा सकता है? हिमाचल ने आदरपूर्वक सब बारातियों, विष्णु, ब्रह्मा और सब जाति के देवताओं को बुलवाया।

बिबिधि पाँति बैठी जेवनारा। लागे परुसन निपुन सुआरा॥
नारिबृंद सुर जेवँत जानी। लगीं देन गारीं मृदु बानी॥

भोजन (करनेवालों) की बहुत-सी पंगतें बैठीं। चतुर रसोइए परोसने लगे। स्त्रियों की मंडलियाँ देवताओं को भोजन करते जानकर कोमल वाणी से गालियाँ देने लगीं।

छं॰ - गारीं मधुर स्वर देहिं सुंदरि बिंग्य बचन सुनावहीं।
भोजनु करहिं सुर अति बिलंबु बिनोदु सुनि सचु पावहीं॥

जेवँत जो बढ़्यो अनंदु सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यो।
अचवाँइ दीन्हें पान गवने बास जहँ जाको रह्यो॥

सब सुंदरी स्त्रियाँ मीठे स्वर में गालियाँ देने लगीं और व्यंग्य भरे वचन सुनाने लगीं। देवगण विनोद सुनकर बहुत सुख अनुभव करते हैं, इसलिए भोजन करने में बड़ी देर लगा रहे हैं। भोजन के समय जो आनंद बढ़ा वह करोड़ों मुँह से भी नहीं कहा जा सकता। (भोजन कर चुकने पर) सबके हाथ-मुँह धुलवाकर पान दिए गए। फिर सब लोग, जो जहाँ ठहरे थे, वहाँ चले गए।

दो० - बहुरि मुनिन्ह हिमवंत कहुँ लगन सुनाई आइ।
समय बिलोकि बिबाह कर पठए देव बोलाइ॥ 99॥

फिर मुनियों ने लौटकर हिमवान को लगन (लग्न पत्रिका) सुनाई और विवाह का समय देखकर देवताओं को बुला भेजा॥ 99॥

बोलि सकल सुर सादर लीन्हे। सबहि जथोचित आसन दीन्हे॥
बेदी बेद बिधान सँवारी। सुभग सुमंगल गावहिं नारी॥

सब देवताओं को आदर सहित बुलवा लिया और सबको यथायोग्य आसन दिए। वेद की रीति से वेदी सजाई गई और स्त्रियाँ सुंदर श्रेष्ठ मंगल गीत गाने लगीं।

सिंघासनु अति दिब्य सुहावा। जाइ न बरनि बिरंचि बनावा॥
बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई। हृदयँ सुमिरि निज प्रभु रघुराई॥

वेदिका पर एक अत्यंत सुंदर दिव्य सिंहासन था, जिस (की सुंदरता) का वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह स्वयं ब्रह्मा का बनाया हुआ था। ब्राह्मणों को सिर नवाकर और हृदय में अपने स्वामी रघुनाथ का स्मरण करके शिव उस सिंहासन पर बैठ गए।

बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाईं। करि सिंगारु सखीं लै आईं॥
देखत रूपु सकल सुर मोहे। बरनै छबि अस जग कबि को है॥

फिर मुनीश्वरों ने पार्वती को बुलाया। सखियाँ श्रृंगार करके उन्हें ले आईं। पार्वती के रूप को देखते ही सब देवता मोहित हो गए। संसार में ऐसा कवि कौन है, जो उस सुंदरता का वर्णन कर सके?

जगदंबिका जानि भव भामा। सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा॥
सुंदरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी॥

पार्वती को जगदंबा और शिव की पत्नी समझकर देवताओं ने मन-ही-मन प्रणाम किया। भवानी सुंदरता की सीमा हैं। करोड़ों मुखों से भी उनकी शोभा नहीं कही जा सकती।

छं० - कोटिहुँ बदन नहिं बनै बरनत जग जननि सोभा महा।
सकुचहिं कहत श्रुति सेष सारद मंदमति तुलसीकहा॥
छबिखानि मातु भवानि गवनीं मध्य मंडप सिव जहाँ।
अवलोकि सकहिं न सकुच पति पद कमल मनु मधुकरु तहाँ॥

जगज्जननी पार्वती की महान शोभा का वर्णन करोड़ों मुखों से भी करते नहीं बनता। वेद, शेष और सरस्वती तक उसे कहते हुए सकुचा जाते हैं, तब मंदबुद्धि तुलसी किस गिनती में है? सुंदरता और शोभा की खान माता भवानी मंडप के बीच में, जहाँ शिव थे, वहाँ गईं। वे संकोच के मारे पति (शिव) के चरणकमलों को देख नहीं सकतीं, परंतु उनका मनरूपी भौंरा तो वहीं (रस-पान कर रहा) था।

दो० - मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥ 100॥

मुनियों की आज्ञा से शिव और पार्वती ने गणेश का पूजन किया। मन में देवताओं को अनादि समझकर कोई इस बात को सुनकर शंका न करे (कि गणेश तो शिव-पार्वती की संतान हैं, अभी विवाह से पूर्व ही वे कहाँ से आ गए?)॥ 100॥

जसि बिबाह कै बिधि श्रुति गाई। महामुनिन्ह सो सब करवाई॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी। भवहि समरपीं जानि भवानी॥

वेदों में विवाह की जैसी रीति कही गई है, महामुनियों ने वह सभी रीति करवाई। पर्वतराज हिमाचल ने हाथ में कुश लेकर तथा कन्या का हाथ पकड़कर उन्हें भवानी (शिवपत्नी) जानकर शिव को समर्पण किया।

पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। हियँ हरषे तब सकल सुरेसा॥
बेदमंत्र मुनिबर उच्चरहीं। जय जय जय संकर सुर करहीं॥

जब महेश्वर (शिव) ने पार्वती का पाणिग्रहण किया, तब (इंद्रादि) सब देवता हृदय में बड़े ही हर्षित हुए। श्रेष्ठ मुनिगण वेदमंत्रों का उच्चारण करने लगे और देवगण शिव का जय-जयकार करने लगे।

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। सुमनबृष्टि नभ भै बिधि नाना॥
हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू॥

अनेकों प्रकार के बाजे बजने लगे। आकाश से नाना प्रकार के फूलों की वर्षा हुई। शिव-पार्वती का विवाह हो गया। सारे ब्रह्मांड में आनंद भर गया।

दासीं दास तुरग रथ नागा। धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा॥
अन्न कनकभाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना॥

दासी, दास, रथ, घोड़े, हाथी, गायें, वस्त्र और मणि आदि अनेक प्रकार की चीजें, अन्न तथा सोने के बर्तन गाड़ियों में लदवाकर दहेज में दिए, जिनका वर्णन नहीं हो सकता।

छं० - दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो।
का देउँ पूरनकाम संकर चरन पंकज गहि रह्यो॥
सिवँ कृपासागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहिं कियो।
पुनि गहे पद पाथोज मयनाँ प्रेम परिपूरन हियो॥

बहुत प्रकार का दहेज देकर, फिर हाथ जोड़कर हिमाचल ने कहा - हे शंकर! आप पूर्णकाम हैं, मैं आपको क्या दे सकता हूँ? (इतना कहकर) वे शिव के चरणकमल पकड़कर रह गए। तब कृपा के सागर शिव ने अपने ससुर का सभी प्रकार से समाधान किया। फिर प्रेम से परिपूर्ण हृदय मैना ने शिव के चरण कमल पकड़े (और कहा -)

दो० - नाथ उमा मम प्रान सम गृहकिंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु॥ 101॥

हे नाथ! यह उमा मुझे मेरे प्राणों के समान (प्यारी) है। आप इसे अपने घर की टहलनी बनाइएगा और इसके सब अपराधों को क्षमा करते रहिएगा। अब प्रसन्न होकर मुझे यही वर दीजिए॥ 101॥

बहु बिधि संभु सासु समुझाई। गवनी भवन चरन सिरु नाई॥

जननीं उमा बोलि तब लीन्ही। लै उछंग सुंदर सिख दीन्ही॥

शिव ने बहुत तरह से अपनी सास को समझाया। तब वे शिव के चरणों में सिर नवाकर घर गईं। फिर माता ने पार्वती को बुला लिया और गोद में बिठाकर यह सुंदर सीख दी -

करेहु सदा संकर पद पूजा। नारिधरमु पति देउ न दूजा॥
बचन कहत भरे लोचन बारी। बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी॥

हे पार्वती! तू सदाशिव के चरणों की पूजा करना, नारियों का यही धर्म है। उनके लिए पति ही देवता है और कोई देवता नहीं है। इस प्रकार की बातें कहते-कहते उनकी आँखों में आँसू भर आए और उन्होंने कन्या को छाती से चिपटा लिया।

कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं॥
भै अति प्रेम बिकल महतारी। धीरजु कीन्ह कुसमय बिचारी॥

(फिर बोलीं कि) विधाता ने जगत में स्त्री जाति को क्यों पैदा किया? पराधीन को सपने में भी सुख नहीं मिलता। यों कहती हुई माता प्रेम में अत्यंत विकल हो गईं, परंतु कुसमय जानकर (दुःख करने का अवसर न जानकर) उन्होंने धीरज धरा।

पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रेमु कछु जाइ न बरना॥
सब नारिन्ह मिलि भेटि भवानी। जाइ जननि उर पुनि लपटानी॥

मैना बार-बार मिलती हैं और (पार्वती के) चरणों को पकड़कर गिर पड़ती हैं। बड़ा ही प्रेम है, कुछ वर्णन नहीं किया जाता। भवानी सब स्त्रियों से मिल-भेंटकर फिर अपनी माता के हृदय से जा लिपटीं।

छं० - जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहूँ दईं।
फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखीं लै सिव पहिं गईं॥
जाचक सकल संतोषि संकरु उमा सहित भवन चले।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले॥

पार्वती माता से फिर मिलकर चलीं, सब किसी ने उन्हें योग्य आशीर्वाद दिए। पार्वती फिर-फिरकर माता की ओर देखती जाती थीं। तब सखियाँ उन्हें शिव के पास ले गईं। महादेव सब याचकों को संतुष्ट कर पार्वती के साथ घर (कैलास) को चले। सब देवता प्रसन्न

होकर फूलों की वर्षा करने लगे और आकाश में सुंदर नगाड़े बजाने लगे।

दो० - चले संग हिमवंतु तब पहुँचावन अति हेतु।
बिबिध भाँति परितोषु करि बिदा कीन्ह बृषकेतु॥ 102॥

तब हिमवान अत्यंत प्रेम से शिव को पहुँचाने के लिए साथ चले। वृषकेतु (शिव) ने बहुत तरह से उन्हें संतोष कराकर विदा किया॥ 102॥

तुरत भवन आए गिरिराई। सकल सैल सर लिए बोलाई॥
आदर दान बिनय बहुमाना। सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना॥

पर्वतराज हिमाचल तुरंत घर आए और उन्होंने सब पर्वतों और सरोवरों को बुलाया। हिमवान ने आदर, दान, विनय और बहुत सम्मानपूर्वक सबकी विदाई की।

जबहिं संभु कैलासहिं आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए॥
जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहिं सिंगारु न कहउँ बखानी॥

जब शिव कैलास पर्वत पर पहुँचे, तब सब देवता अपने-अपने लोकों को चले गए। (तुलसीदास कहते हैं कि) पार्वती और शिव जगत के माता-पिता हैं, इसलिए मैं उनके श्रृंगार का वर्णन नहीं करता।

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा॥
हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ॥

शिव-पार्वती विविध प्रकार के भोग-विलास करते हुए अपने गणों सहित कैलास पर रहने लगे। वे नित्य नए विहार करते थे। इस प्रकार बहुत समय बीत गया।

तब जनमेउ षटबदन कुमारा। तारकु असुरु समर जेहिं मारा॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षन्मुख जन्मु सकल जग जाना॥

तब छह मुखवाले पुत्र (स्वामिकार्तिक) का जन्म हुआ, जिन्होंने (बड़े होने पर) युद्ध में तारकासुर को मारा। वेद, शास्त्र और पुराणों में स्वामिकार्तिक के जन्म की कथा प्रसिद्ध है और सारा जगत उसे जानता है।

छं० - जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा।

तेहि हेतु मैं बृषकेतु सुत कर चरित संछेपहिं कहा॥
यह उमा संभु बिबाहु जे नर नारि कहहिं जे गावहीं।
कल्यान काज बिबाह मंगल सर्बदा सुखु पावहीं॥

षडानन (स्वामिकार्तिक) के जन्म, कर्म, प्रताप और महान पुरुषार्थ को सारा जगत जानता है। इसलिए मैंने वृषकेतु (शिव) के पुत्र का चरित्र संक्षेप में ही कहा है। शिव-पार्वती के विवाह की इस कथा को जो स्त्री-पुरुष कहेंगे और गाएँगे, वे कल्याण के कार्यों और विवाहादि मंगलों में सदा सुख पाएँगे।

दो० - चरित सिंधु गिरिजा रमन बेद न पावहिं पारु।
बरनै तुलसीदासु किमि अति मतिमंद गवाँरु॥ 103॥

गिरिजापति महादेव का चरित्र समुद्र के समान (अपार) है, उसका पार वेद भी नहीं पाते। तब अत्यंत मंदबुद्धि और गँवार तुलसीदास उसका वर्णन कैसे कर सकता है!॥ 103॥

संभु चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुखु पावा॥
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी॥

शिव के रसीले और सुहावने चरित्र को सुनकर मुनि भरद्वाज ने बहुत ही सुख पाया। कथा सुनने की उनकी लालसा बहुत बढ़ गई। नेत्रों में जल भर आया तथा रोमावली खड़ी हो गई।

प्रेम बिबस मुख आव न बानी। दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी॥
अहो धन्य तब जन्मु मुनीसा। तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा॥

वे प्रेम में मुग्ध हो गए, मुख से वाणी नहीं निकल रही थी। उनकी यह दशा देखकर ज्ञानी मुनि याज्ञवल्क्य बहुत प्रसन्न हुए (और बोले -) हे मुनीश! अहा! तुम्हारा जन्म धन्य है, तुमको गौरीपति शिव प्राणों के समान प्रिय हैं।

सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं॥
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू॥

शिव के चरण कमलों में जिनकी प्रीति नहीं है, वे राम को स्वप्न में भी अच्छे नहीं लगते। विश्वनाथ शिव के चरणों में निष्कपट (विशुद्ध) प्रेम होना यही रामभक्त का लक्षण

है।

सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी॥
पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहि प्रिय भाई॥

शिव के समान रघुनाथ (की भक्ति) का व्रत धारण करनेवाला कौन है? जिन्होंने बिना ही पाप के सती जैसी स्त्री को त्याग दिया और प्रतिज्ञा करके रघुनाथ की भक्ति को दिखा दिया। हे भाई! राम को शिव के समान और कौन प्यारा है?

दो० - प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित बूझा मरमु तुम्हार।
सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त बिकार॥ 104॥

मैंने पहले ही शिव का चरित्र कहकर तुम्हारा भेद समझ लिया। तुम राम के पवित्र सेवक हो और समस्त दोषों से रहित हो॥ 104॥

मैं जाना तुम्हार गुन सीला। कहउँ सुनहु अब रघुपति लीला॥
सुनु मुनि आजु समागम तोरें। कहि न जाइ जस सुखु मन मोरें॥

मैंने तुम्हारा गुण और शील जान लिया। अब मैं रघुनाथ की लीला कहता हूँ, सुनो। हे मुनि! सुनो, आज तुम्हारे मिलने से मेरे मन में जो आनंद हुआ है, वह कहा नहीं जा सकता।

राम चरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा॥
तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी॥

हे मुनीश्वर! रामचरित्र अत्यंत अपार है। सौ करोड़ शेष भी उसे नहीं कह सकते। तथापि जैसा मैंने सुना है, वैसा वाणी के स्वामी (प्रेरक) और हाथ में धनुष लिए हुए प्रभु राम का स्मरण करके कहता हूँ।

सारद दारुनारि सम स्वामी। रामु सूत्रधर अंतरजामी॥
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥

सरस्वती कठपुतली के समान हैं और अंतर्यामी स्वामी राम (सूत पकड़कर कठपुतली को नचानेवाले) सूत्रधार हैं। अपना भक्त जानकर जिस कवि पर वे कृपा करते हैं, उसके हृदयरूपी आँगन में सरस्वती को वे नचाया करते हैं।

प्रनवउँ सोइ कृपाल रघुनाथा। बरनउँ बिसद तासु गुन गाथा॥
परम रम्य गिरिबरु कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू॥

उन्हीं कृपालु रघुनाथ को मैं प्रणाम करता हूँ और उन्हीं के निर्मल गुणों की कथा कहता हूँ। कैलास पर्वतों में श्रेष्ठ और बहुत ही रमणीय है, जहाँ शिव-पार्वती सदा निवास करते हैं।

दो॰ - सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनिबृंद।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुखकंद॥ 105॥

सिद्ध, तपस्वी, योगीगण, देवता, किन्नर और मुनियों के समूह उस पर्वत पर रहते हैं। वे सब बड़े पुण्यात्मा हैं और आनंदकंद महादेव की सेवा करते हैं॥ 105॥

हरि हर बिमुख धर्म रति नाहीं। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं॥
तेहि गिरि पर बट बिटप बिसाला। नित नूतन सुंदर सब काला॥

जो भगवान विष्णु और महादेव से विमुख हैं और जिनकी धर्म में प्रीति नहीं है, वे लोग स्वप्न में भी वहाँ नहीं जा सकते। उस पर्वत पर एक विशाल बरगद का पेड़ है, जो नित्य नवीन और सब काल (छहों ऋतुओं) में सुंदर रहता है।

त्रिबिध समीर सुसीतलि छाया। सिव बिश्राम बिटप श्रुति गाया॥
एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। तरु बिलोकि उर अति सुखु भयऊ॥

वहाँ तीनों प्रकार की (शीतल, मंद और सुगंध) वायु बहती रहती है और उसकी छाया बड़ी ठंडी रहती है। वह शिव के विश्राम करने का वृक्ष है, जिसे वेदों ने गाया है। एक बार प्रभु शिव उस वृक्ष के नीचे गए और उसे देखकर उनके हृदय में बहुत आनंद हुआ।

निज कर डासि नागरिपु छाला। बैठे सहजहिं संभु कृपाला॥
कुंद इंदु दर गौर सरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा॥

अपने हाथ से बाघंबर बिछाकर कृपालु शिव स्वभाव से ही (बिना किसी खास प्रयोजन के) वहाँ बैठ गए। कुंद के पुष्प, चंद्रमा और शंख के समान उनका गौर शरीर था। बड़ी लंबी भुजाएँ थीं और वे मुनियों के-से (वल्कल) वस्त्र धारण किए हुए थे।

तरुन अरुन अंबुज सम चरना। नख दुति भगत हृदय तम हरना॥

भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी। आननु सरद चंद छबि हारी॥

उनके चरण नए (पूर्ण रूप से खिले हुए) लाल कमल के समान थे, नखों की ज्योति भक्तों के हृदय का अंधकार हरनेवाली थी। साँप और भस्म ही उनके भूषण थे और उन त्रिपुरासुर के शत्रु शिव का मुख शरद (पूर्णिमा) के चंद्रमा की शोभा को भी हरनेवाला (फीकी करनेवाला) था।

दो॰ - जटा मुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन बिसाल।
नीलकंठ लावन्यनिधि सोह बालबिधु भाल॥ 106॥

उनके सिर पर जटाओं का मुकुट और गंगा (शोभायमान) थीं। कमल के समान बड़े-बड़े नेत्र थे। उनका नील कंठ था और वे सुंदरता के भंडार थे। उनके मस्तक पर द्वितीया का चंद्रमा शोभित था॥ 106॥

बैठे सोह कामरिपु कैसें। धरें सरीरु सांतरसु जैसें॥
पारबती भल अवसरु जानी। गईं संभु पहिं मातु भवानी॥

कामदेव के शत्रु शिव वहाँ बैठे हुए ऐसे शोभित हो रहे थे, मानो शांत रस ही शरीर धारण किए बैठा हो। अच्छा मौका जानकर शिवपत्नी माता पार्वती उनके पास गईं।

जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। बाम भाग आसनु हर दीन्हा॥
बैठीं सिव समीप हरषाई। पूरुब जन्म कथा चित आई॥

अपनी प्यारी पत्नी जानकार शिव ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया और अपनी बाईं ओर बैठने के लिए आसन दिया। पार्वती प्रसन्न होकर शिव के पास बैठ गईं। उन्हें पिछले जन्म की कथा स्मरण हो आई।

पति हियँ हेतु अधिक अनुमानी। बिहसि उमा बोलीं प्रिय बानी॥
कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैल कुमारी॥

स्वामी के हृदय में (अपने ऊपर पहले की अपेक्षा) अधिक प्रेम समझकर पार्वती हँसकर प्रिय वचन बोलीं। (याज्ञवल्क्य कहते हैं कि) जो कथा सब लोगों का हित करनेवाली है, उसे ही पार्वती पूछना चाहती हैं।

बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी॥

चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद पंकज सेवा॥

(पार्वती ने कहा -) हे संसार के स्वामी! हे मेरे नाथ! हे त्रिपुरासुर का वध करनेवाले! आपकी महिमा तीनों लोकों में विख्यात है। चर, अचर, नाग, मनुष्य और देवता सभी आपके चरण कमलों की सेवा करते हैं।

दो० - प्रभु समरथ सर्बग्य सिव सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान बैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम॥ 107॥

हे प्रभो! आप समर्थ, सर्वज्ञ और कल्याणस्वरूप हैं। सब कलाओं और गुणों के निधान हैं और योग, ज्ञान तथा वैराग्य के भंडार हैं। आपका नाम शरणागतों के लिए कल्पवृक्ष है॥ 107॥

जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिअ सत्य मोहि निज दासी॥
तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना॥

हे सुख की राशि ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और सचमुच मुझे अपनी दासी (या अपनी सच्ची दासी) जानते हैं, तो हे प्रभो! आप रघुनाथ की नाना प्रकार की कथा कहकर मेरा अज्ञान दूर कीजिए।

जासु भवनु सुरतरु तर होई। सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई॥
ससिभूषन अस हृदयँ बिचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी॥

जिसका घर कल्पवृक्ष के नीचे हो, वह भला दरिद्रता से उत्पन्न दुःख को क्यों सहेगा? हे शशिभूषण! हे नाथ! हृदय में ऐसा विचार कर मेरी बुद्धि के भारी भ्रम को दूर कीजिए।

प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी॥
सेस सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना॥

हे प्रभो! जो परमार्थतत्त्व (ब्रह्म) के ज्ञाता और वक्ता मुनि हैं, वे राम को अनादि ब्रह्म कहते हैं और शेष, सरस्वती, वेद और पुराण सभी रघुनाथ का गुण गाते हैं।

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई॥

और हे कामदेव के शत्रु! आप भी दिन-रात आदरपूर्वक राम-राम जपा करते हैं - ये राम वही अयोध्या के राजा के पुत्र हैं? या अजन्मे, निर्गुण और अगोचर कोई और राम हैं?

दो० - जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥ 108॥

यदि वे राजपुत्र हैं तो ब्रह्म कैसे? (और यदि ब्रह्म हैं तो) स्त्री के विरह में उनकी मति बावली कैसे हो गई? इधर उनके ऐसे चरित्र देखकर और उधर उनकी महिमा सुनकर मेरी बुद्धि अत्यंत चकरा रही है॥ 108॥

जौं अनीह ब्यापक बिभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ॥
अग्य जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू॥

यदि इच्छारहित, व्यापक, समर्थ ब्रह्म कोई और है, तो हे नाथ! मुझे उसे समझाकर कहिए। मुझे नादान समझकर मन में क्रोध न लाइए। जिस तरह मेरा मोह दूर हो, वही कीजिए।

मैं बन दीखि राम प्रभुताई। अति भय बिकल न तुम्हहि सुनाई॥
तदपि मलिन मन बोधु न आवा। सो फलु भली भाँति हम पावा॥

मैंने (पिछले जन्म में) वन में राम की प्रभुता देखी थी, परंतु अत्यंत भयभीत होने के कारण मैंने वह बात आपको सुनाई नहीं। तो भी मेरे मलिन मन को बोध न हुआ। उसका फल भी मैंने अच्छी तरह पा लिया।

अजहूँ कछु संसउ मन मोरें। करहु कृपा बिनवउँ कर जोरें॥
प्रभु तब मोहि बहु भाँति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा॥

अब भी मेरे मन में कुछ संदेह है। आप कृपा कीजिए, मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ। हे प्रभो! आपने उस समय मुझे बहुत तरह से समझाया था (फिर भी मेरा संदेह नहीं गया), हे नाथ! यह सोचकर मुझ पर क्रोध न कीजिए।

तब कर अस बिमोह अब नाहीं। रामकथा पर रुचि मन माहीं॥
कहहु पुनीत राम गुन गाथा। भुजगराज भूषन सुरनाथा॥

मुझे अब पहले जैसा मोह नहीं है, अब तो मेरे मन में रामकथा सुनने की रुचि है। हे शेषनाग को अलंकार रूप में धारण करनेवाले देवताओं के नाथ! आप राम के गुणों की

पवित्र कथा कहिए।

दो० - बंदउँ पद धरि धरनि सिरु बिनय करउँ कर जोरि।
बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि॥ 109॥

मैं पृथ्वी पर सिर टेककर आपके चरणों की वंदना करती हूँ और हाथ जोड़कर विनती करती हूँ। आप वेदों के सिद्धांत को निचोड़कर रघुनाथ का निर्मल यश वर्णन कीजिए॥ 109॥

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी॥
गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥

यद्यपि स्त्री होने के कारण मैं उसे सुनने की अधिकारिणी नहीं हूँ, तथापि मैं मन, वचन और कर्म से आपकी दासी हूँ। संत लोग जहाँ आर्त अधिकारी पाते हैं, वहाँ गूढ़ तत्त्व भी उससे नहीं छिपाते।

अति आरति पूछउँ सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी॥

हे देवताओं के स्वामी! मैं बहुत ही आर्तभाव (दीनता) से पूछती हूँ, आप मुझ पर दया करके रघुनाथ की कथा कहिए। पहले तो वह कारण विचारकर बतलाइए, जिससे निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करता है॥

पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिबाहीं। राज तजा सो दूषन काहीं॥

फिर हे प्रभु! राम के अवतार (जन्म) की कथा कहिए तथा उनका उदार बाल चरित्र कहिए। फिर जिस प्रकार उन्होंने जानकी से विवाह किया, वह कथा कहिए और फिर यह बतलाइए कि उन्होंने जो राज्य छोड़ा सो किस दोष से।

बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥
राज बैठि कीन्हीं बहु लीला। सकल कहहु संकर सुखसीला॥

हे नाथ! फिर उन्होंने वन में रहकर जो अपार चरित्र किए तथा जिस तरह रावण को मारा, वह कहिए। हे सुखस्वरूप शंकर! फिर आप उन सारी लीलाओं को कहिए जो उन्होंने

राज्य (सिंहासन) पर बैठकर की थीं।

दो० - बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम॥ 110॥

हे कृपाधाम! फिर वह अद्भुत चरित्र कहिए जो राम ने किया - वे रघुकुल शिरोमणि प्रजा सहित किस प्रकार अपने धाम को गए?॥ 110॥

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहिं बिग्यान मगन मुनि ग्यानी॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा॥

हे प्रभु! फिर आप उस तत्त्व को समझाकर कहिए, जिसकी अनुभूति में ज्ञानी मुनिगण सदा मग्न रहते हैं और फिर भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य का विभाग सहित वर्णन कीजिए।

औरउ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका॥
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखहु जनि गोई॥

(इसके सिवा) राम के और भी जो अनेक रहस्य (छिपे हुए भाव अथवा चरित्र) हैं, उनको कहिए। हे नाथ! आपका ज्ञान अत्यंत निर्मल है। हे प्रभो! जो बात मैंने न भी पूछी हो, हे दयालु! उसे भी आप छिपा न रखिएगा।

तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना। आन जीव पाँवर का जाना॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई॥

वेदों ने आपको तीनों लोकों का गुरु कहा है। दूसरे पामर जीव इस रहस्य को क्या जानें! पार्वती के सहज सुंदर और छलरहित (सरल) प्रश्न सुनकर शिव के मन को बहुत अच्छे लगे।

हर हियँ रामचरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए॥
श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा॥

महादेव के हृदय में सारे रामचरित्र आ गए। प्रेम के मारे उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में जल भर आया। रघुनाथ का रूप उनके हृदय में आ गया, जिससे स्वयं परमानंदस्वरूप शिव ने भी अपार सुख पाया।

दो० - मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥ 111।

शिव दो घड़ी तक ध्यान के रस (आनंद) में डूबे रहे, फिर उन्होंने मन को बाहर खींचा और तब वे प्रसन्न होकर रघुनाथ का चरित्र वर्णन करने लगे॥ 111॥

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें॥
जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागें जथा सपन भ्रम जाई॥

जिसके बिना जाने झूठ भी सत्य मालूम होता है, जैसे बिना पहचाने रस्सी में साँप का भ्रम हो जाता है; और जिसके जान लेने पर जगत का उसी तरह लोप हो जाता है, जैसे जागने पर स्वप्न का भ्रम जाता रहता है।

बंदउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥

मैं उन्हीं राम के बाल रूप की वंदना करता हूँ, जिनका नाम जपने से सब सिद्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं। मंगल के धाम, अमंगल के हरनेवाले और दशरथ के आँगन में खेलनेवाले (बालरूप) राम मुझ पर कृपा करें।

करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी॥
धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥

त्रिपुरासुर का वध करनेवाले शिव राम को प्रणाम करके आनंद में भरकर अमृत के समान वाणी बोले - हे गिरिराजकुमारी पार्वती! तुम धन्य हो! धन्य हो!! तुम्हारे समान कोई उपकारी नहीं है।

पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी॥

जो तुमने रघुनाथ की कथा का प्रसंग पूछा है, जो कथा समस्त लोकों के लिए जगत को पवित्र करनेवाली गंगा के समान है। तुमने जगत के कल्याण के लिए ही प्रश्न पूछे हैं। तुम रघुनाथ के चरणों में प्रेम रखनेवाली हो।

दो० - राम कृपा तें पारबति सपनेहुँ तव मन माहिं।

सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं॥ 112॥

हे पार्वती! मेरे विचार में तो राम की कृपा से तुम्हारे मन में स्वप्न में भी शोक, मोह, संदेह और भ्रम कुछ भी नहीं है॥ 112॥

तदपि असंका कीन्हिहु सोई। कहत सुनत सब कर हित होई॥
जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहिभवन समाना॥

फिर भी तुमने इसीलिए वही (पुरानी) शंका की है कि इस प्रसंग के कहने-सुनने से सबका कल्याण होगा। जिन्होंने अपने कानों से भगवान की कथा नहीं सुनी, उनके कानों के छिद्र साँप के बिल के समान हैं।

नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा॥
ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला॥

जिन्होंने अपने नेत्रों से संतों के दर्शन नहीं किए, उनके वे नेत्र मोर के पंखों पर दिखनेवाली नकली आँखों की गिनती में हैं। वे सिर कड़वी तूँबी के समान हैं, जो हरि और गुरु के चरणतल पर नहीं झुकते।

जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी॥
जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥

जिन्होंने भगवान की भक्ति को अपने हृदय में स्थान नहीं दिया, वे प्राणी जीते हुए ही मुर्दे के समान हैं। जो जीभ राम के गुणों का गान नहीं करती, वह मेढ़क की जीभ के समान है।

कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज बिमोहनसीला॥

वह हृदय वज्र के समान कड़ा और निष्ठुर है, जो भगवान के चरित्र सुनकर हर्षित नहीं होता। हे पार्वती! राम की लीला सुनो, यह देवताओं का कल्याण करनेवाली और दैत्यों को विशेष रूप से मोहित करनेवाली है।

दो० - रामकथा सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि।
सतसमाज सुरलोक सब को न सुनै अस जानि॥ 113॥

राम की कथा कामधेनु के समान सेवा करने से सब सुखों को देनेवाली है, और सत्पुरुषों के समाज ही सब देवताओं के लोक हैं, ऐसा जानकर इसे कौन न सुनेगा!॥ 113॥

रामकथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी॥
रामकथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी॥

राम की कथा हाथ की सुंदर ताली है, जो संदेहरूपी पक्षियों को उड़ा देती है। फिर रामकथा कलियुगरूपी वृक्ष को काटने के लिए कुल्हाड़ी है। हे गिरिराजकुमारी! तुम इसे आदरपूर्वक सुनो।

राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए॥
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना॥

वेदों ने राम के सुंदर नाम, गुण, चरित्र, जन्म और कर्म सभी अनगिनत कहे हैं। जिस प्रकार भगवान राम अनंत हैं, उसी तरह उनकी कथा, कीर्ति और गुण भी अनंत हैं।

तदपि जथा श्रुत जसि मति मोरी। कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी॥
उमा प्रस्न तव सहज सुहाई। सुखद संतसंमत मोहि भाई॥

तो भी तुम्हारी अत्यंत प्रीति देखकर, जैसा कुछ मैंने सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है, उसी के अनुसार मैं कहूँगा। हे पार्वती! तुम्हारा प्रश्न स्वाभाविक ही सुंदर, सुखदायक और संतसम्मत है और मुझे तो बहुत ही अच्छा लगा है।

एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥

परंतु हे पार्वती! एक बात मुझे अच्छी नहीं लगी, यद्यपि वह तुमने मोह के वश होकर ही कही है। तुमने जो यह कहा कि वे राम कोई और हैं, जिन्हें वेद गाते और मुनिजन जिनका ध्यान धरते हैं - ।

दो० - कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच॥ 114॥

जो मोहरूपी पिशाच के द्वारा ग्रस्त हैं, पाखंडी हैं, भगवान के चरणों से विमुख हैं और जो झूठ-सच कुछ भी नहीं जानते, ऐसे अधम मनुष्य ही इस तरह कहते-सुनते हैं॥ 114॥

अग्य अकोबिद अंध अभागी। काई बिषय मुकुर मन लागी॥
लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। सपनेहुँ संतसभा नहिं देखी॥

जो अज्ञानी, मूर्ख, अंधे और भाग्यहीन हैं और जिनके मनरूपी दर्पण पर विषयरूपी काई जमी हुई है, जो व्यभिचारी, छली और बड़े कुटिल हैं और जिन्होंने कभी स्वप्न में भी संत समाज के दर्शन नहीं किए;

कहहिं ते बेद असंमत बानी। जिन्ह कें सूझ लाभु नहिं हानी॥
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना॥

और जिन्हें अपने लाभ-हानि नहीं सूझती, वे ही ऐसी वेदविरुद्ध बातें कहा करते हैं, जिनका हृदयरूपी दर्पण मैला है और जो नेत्रों से हीन हैं, वे बेचारे राम का रूप कैसे देखें!

जिन्ह कें अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका॥
हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहि कहत कछु अघटित नाहीं॥

जिनको निर्गुण-सगुण का कुछ भी विवेक नहीं है, जो अनेक मनगढ़ंत बातें बका करते हैं, जो हरि की माया के वश में होकर जगत में (जन्म-मृत्यु के चक्र में) भ्रमते फिरते हैं, उनके लिए कुछ भी कह डालना असंभव नहीं है।

बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना॥

जिन्हें वायु का रोग (सन्निपात, उन्माद आदि) हो गया हो, जो भूत के वश हो गए हैं और जो नशे में चूर हैं, ऐसे लोग विचारकर वचन नहीं बोलते। जिन्होंने महामोहरूपी मदिरा पी रखी है, उनके कहने पर कान नहीं देना चाहिए।

सो० - अस निज हृदयँ बिचारि तजु संसय भजु राम पद।
सुनु गिरिराज कुमारि भ्रम तम रबि कर बचन मम॥ 115॥

अपने हृदय में ऐसा विचार कर संदेह छोड़ दो और राम के चरणों को भजो। हे पार्वती! भ्रमरूपी अंधकार के नाश करने के लिए सूर्य की किरणों के समान मेरे वचनों को सुनो!॥ 115॥

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥

सगुण और निर्गुण में कुछ भी भेद नहीं है - मुनि, पुराण, पंडित और वेद सभी ऐसा कहते हैं। जो निर्गुण, अरूप (निराकार), अलख (अव्यक्त) और अजन्मा है, वही भक्तों के प्रेमवश सगुण हो जाता है।

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा॥

जो निर्गुण है वही सगुण कैसे है? जैसे जल और ओले में भेद नहीं। (दोनों जल ही हैं, ऐसे ही निर्गुण और सगुण एक ही हैं।) जिसका नाम भ्रमरूपी अंधकार के मिटाने के लिए सूर्य है, उसके लिए मोह का प्रसंग भी कैसे कहा जा सकता है?

राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥
सहज प्रकासरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना॥

राम सच्चिदानंदस्वरूप सूर्य हैं। वहाँ मोहरूपी रात्रि का लवलेश भी नहीं है। वे स्वभाव से ही प्रकाश रूप और (षडैश्वर्ययुक्त) भगवान है, वहाँ तो विज्ञानरूपी प्रातःकाल भी नहीं होता (अज्ञानरूपी रात्रि हो तब तो विज्ञानरूपी प्रातःकाल हो; भगवान तो नित्य ज्ञानस्वरूप हैं)।

हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥

हर्ष, शोक, ज्ञान, अज्ञान, अहंता और अभिमान - ये सब जीव के धर्म हैं। राम तो व्यापक ब्रह्म, परमानंदस्वरूप, परात्पर प्रभु और पुराण पुरुष हैं। इस बात को सारा जगत जानता है।

दो॰ - पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ॥ 116॥

जो (पुराण) पुरुष प्रसिद्ध हैं, प्रकाश के भंडार हैं, सब रूपों में प्रकट हैं, जीव, माया और जगत सबके स्वामी हैं, वे ही रघुकुल मणि राम मेरे स्वामी हैं - ऐसा कहकर शिव ने उनको मस्तक नवाया॥ 116॥

निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी॥

जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी॥

अज्ञानी मनुष्य अपने भ्रम को तो समझते नहीं और वे मूर्ख प्रभु राम पर उसका आरोप करते हैं, जैसे आकाश में बादलों का परदा देखकर कुविचारी (अज्ञानी) लोग कहते हैं कि बादलों ने सूर्य को ढँक लिया।

चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ॥
उमा राम बिषइक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा॥

जो मनुष्य आँख में उँगली लगाकर देखता है, उसके लिए तो दो चंद्रमा प्रकट (प्रत्यक्ष) हैं। हे पार्वती! राम के विषय में इस प्रकार मोह की कल्पना करना वैसा ही है, जैसा आकाश में अंधकार, धुएँ और धूल का सोहना (दिखना)। (आकाश जैसे निर्मल और निर्लेप है, उसको कोई मलिन या स्पर्श नहीं कर सकता, इसी प्रकार भगवान राम नित्य निर्मल और निर्लेप हैं।)

बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

विषय, इंद्रियाँ, इंद्रियों के देवता और जीवात्मा - ये सब एक की सहायता से एक चेतन होते हैं। (अर्थात विषयों का प्रकाश इंद्रियों से, इंद्रियों का इंद्रियों के देवताओं से और इंद्रिय-देवताओं का चेतन जीवात्मा से प्रकाश होता है।) इन सबका जो परम प्रकाशक है (अर्थात जिससे इन सबका प्रकाश होता है), वही अनादि ब्रह्म अयोध्या नरेश राम हैं।

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥

यह जगत प्रकाश्य है और राम इसके प्रकाशक हैं। वे माया के स्वामी और ज्ञान तथा गुणों के धाम हैं। जिनकी सत्ता से, मोह की सहायता पाकर जड़ माया भी सत्य-सी भासित होती है।

दो० - रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि॥ 117॥

जैसे सीप में चाँदी की और सूर्य की किरणों में पानी की (बिना हुए भी) प्रतीति होती है।

यद्‌यपि यह प्रतीति तीनों कालों में झूठ है, तथापि इस भ्रम को कोई हटा नहीं सकता॥ 117॥

एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥
जौं सपनें सिर काटै कोई। बिनु जागें न दूरि दुख होई॥

इसी तरह यह संसार भगवान के आश्रित रहता है। यद्‌यपि यह असत्य है, तो भी दुःख तो देता ही है, जिस तरह स्वप्न में कोई सिर काट ले तो बिना जागे वह दुःख दूर नहीं होता।

जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥

हे पार्वती! जिनकी कृपा से इस प्रकार का भ्रम मिट जाता है, वही कृपालु रघुनाथ हैं। जिनका आदि और अंत किसी ने नहीं (जान) पाया। वेदों ने अपनी बुद्धि से अनुमान करके इस प्रकार (नीचे लिखे अनुसार) गाया है -

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥

वह (ब्रह्म) बिना ही पैर के चलता है, बिना ही कान के सुनता है, बिना ही हाथ के नाना प्रकार के काम करता है, बिना मुँह (जिह्वा) के ही सारे (छहों) रसों का आनंद लेता है और बिना वाणी के बहुत योग्य वक्ता है।

तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

वह बिना शरीर (त्वचा) के ही स्पर्श करता है, आँखों के बिना ही देखता है और बिना नाक के सब गंधों को ग्रहण करता है (सूँघता है)। उस ब्रह्म की करनी सभी प्रकार से ऐसी अलौकिक है कि जिसकी महिमा कही नहीं जा सकती।

दो० - जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥ 118॥

जिसका वेद और पंडित इस प्रकार वर्णन करते हैं और मुनि जिसका ध्यान धरते हैं, वही दशरथनंदन, भक्तों के हितकारी, अयोध्या के स्वामी भगवान राम हैं॥ 118॥

कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी॥

(हे पार्वती!) जिनके नाम के बल से काशी में मरते हुए प्राणी को देखकर मैं उसे (राम मंत्र देकर) शोकरहित कर देता हूँ (मुक्त कर देता हूँ), वही मेरे प्रभु रघुश्रेष्ठ राम जड़-चेतन के स्वामी और सबके हृदय के भीतर की जाननेवाले हैं।

बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥

विवश होकर (बिना इच्छा के) भी जिनका नाम लेने से मनुष्यों के अनेक जन्मों में किए हुए पाप जल जाते हैं। फिर जो मनुष्य आदरपूर्वक उनका स्मरण करते हैं, वे तो संसाररूपी (दुस्तर) समुद्र को गाय के खुर से बने हुए गड्ढे के समान (अर्थात बिना किसी परिश्रम के) पार कर जाते हैं।

राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अबिहित तव बानी॥
अस संसय आनत उर माहीं। ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं॥

हे पार्वती! वही परमात्मा राम हैं। उनमें भ्रम (देखने में आता) है, तुम्हारा ऐसा कहना अत्यंत ही अनुचित है। इस प्रकार का संदेह मन में लाते ही मनुष्य के ज्ञान, वैराग्य आदि सारे सद्गुण नष्ट हो जाते हैं।

सुनि सिव के भ्रम भंजन बचना। मिटि गै सब कुतरक कै रचना॥
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती। दारुन असंभावना बीती॥

शिव के भ्रमनाशक वचनों को सुनकर पार्वती के सब कुतर्कों की रचना मिट गई। रघुनाथ के चरणों में उनका प्रेम और विश्वास हो गया और कठिन असंभावना (जिसका होना सम्भव नहीं, ऐसी मिथ्या कल्पना) जाती रही!

दो० - पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि जोरि पंकरुह पानि।
बोलीं गिरिजा बचन बर मनहुँ प्रेम रस सानि॥ 119॥

बार- बार स्वामी (शिव) के चरणकमलों को पकड़कर और अपने कमल के समान हाथों को जोड़कर पार्वती मानो प्रेमरस में सानकर सुंदर वचन बोलीं॥ 119॥

ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी॥
तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेऊ। राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ॥

आपकी चंद्रमा की किरणों के समान शीतल वाणी सुनकर मेरा अज्ञानरूपी शरद-ऋतु (क्वार) की धूप का भारी ताप मिट गया। हे कृपालु! आपने मेरा सब संदेह हर लिया, अब राम का यथार्थ स्वरूप मेरी समझ में आ गया।

नाथ कृपाँ अब गयउ बिषादा। सुखी भयउँ प्रभु चरन प्रसादा॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी॥

हे नाथ! आपकी कृपा से अब मेरा विषाद जाता रहा और आपके चरणों के अनुग्रह से मैं सुखी हो गई। यद्यपि मैं स्त्री होने के कारण स्वभाव से ही मूर्ख और ज्ञानहीन हूँ, तो भी अब आप मुझे अपनी दासी जानकर -

प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। जौं मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू॥
राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर पुर बासी॥

हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो जो बात मैंने पहले आपसे पूछी थी, वही कहिए। (यह सत्य है कि) राम ब्रह्म हैं, चिन्मय (ज्ञानस्वरूप) हैं, अविनाशी हैं, सबसे रहित और सबके हृदयरूपी नगरी में निवास करनेवाले हैं।

नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू॥
उमा बचन सुनि परम बिनीता। रामकथा पर प्रीति पुनीता॥

फिर हे नाथ! उन्होंने मनुष्य का शरीर किस कारण से धारण किया? हे धर्म की ध्वजा धारण करनेवाले प्रभो! यह मुझे समझाकर कहिए। पार्वती के अत्यंत नम्र वचन सुनकर और राम की कथा में उनका विशुद्ध प्रेम देखकर -

दो॰ - हियँ हरषे कामारि तब संकर सहज सुजान।
बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान॥ 120(क)॥

तब कामदेव के शत्रु, स्वाभाविक ही सुजान, कृपा-निधान शिव मन में बहुत ही हर्षित हुए और बहुत प्रकार से पार्वती की बड़ाई करके फिर बोले - ॥ 120(क)॥

सो॰ - सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल।

कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़॥ 120(ख)॥

हे पार्वती! निर्मल रामचरितमानस की वह मंगलमयी कथा सुनो जिसे काकभुशुंडि ने विस्तार से कहा और पक्षियों के राजा गरुड़ ने सुना था॥ 120(ख)॥

सो संबाद उदार जेहि बिधि भा आगें कहब।
सुनहु राम अवतार चरति परम सुंदर अनघ॥ 120(ग)॥

वह श्रेष्ठ संवाद जिस प्रकार हुआ, वह मैं आगे कहूँगा। अभी तुम राम के अवतार का परम सुंदर और पवित्र (पापनाशक) चरित्र सुनो॥ 120(ग)॥

हरि गुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित।
मैं निज मति अनुसार कहउँ उमा सादर सुनहु॥ 120(घ)॥

हरि के गुण, मान, कथा और रूप सभी अपार, अगणित और असीम हैं। फिर भी हे पार्वती! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ, तुम आदरपूर्वक सुनो॥ 120(घ)॥

सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए। बिपुल बिसद निगमागम गाए॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥

हे पार्वती! सुनो, वेद-शास्त्रों ने हरि के सुंदर, विस्तृत और निर्मल चरित्रों का गान किया है। हरि का अवतार जिस कारण से होता है, वह कारण 'बस यही है' ऐसा नहीं कहा जा सकता (अनेकों कारण हो सकते हैं और ऐसे भी हो सकते हैं, जिन्हें कोई जान ही नहीं सकता)।

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥
तदपि संत मुनि बेद पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना॥

हे सयानी! सुनो, हमारा मत तो यह है कि बुद्धि, मन और वाणी से राम की तर्कना नहीं की जा सकती। तथापि संत, मुनि, वेद और पुराण अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा कुछ कहते हैं।

तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही। समुझि परइ जस कारन मोही॥
जब जब होई धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥

और जैसा कुछ मेरी समझ में आता है, हे सुमुखि! वही कारण मैं तुमको सुनाता हूँ। जब-

जब धर्म का ह्रास होता है और नीच अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं।

करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

और वे ऐसा अन्याय करते हैं कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता तथा ब्राह्मण, गो, देवता और पृथ्वी कष्ट पाते हैं, तब-तब वे कृपानिधान प्रभु भाँति-भाँति के (दिव्य) शरीर धारण कर सज्जनों की पीड़ा हरते हैं।

दो॰ - असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥ 121॥

वे असुरों को मारकर देवताओं को स्थापित करते हैं, अपने (श्वास रूप) वेदों की मर्यादा की रक्षा करते हैं और जगत में अपना निर्मल यश फैलाते हैं। राम के अवतार का यह कारण है॥ 121॥

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥
राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका॥

उसी यश को गा-गाकर भक्तजन भवसागर से तर जाते हैं। कृपासागर भगवान भक्तों के हित के लिए शरीर धारण करते हैं। राम के जन्म लेने के अनेक कारण हैं, जो एक-से-एक बढ़कर विचित्र हैं।

जनम एक दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥

हे सुंदर बुद्धिवाली भवानी! मैं उनके दो-एक जन्मों का विस्तार से वर्णन करता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। हरि के जय और विजय दो प्यारे द्वारपाल हैं, जिनको सब कोई जानते हैं।

बिप्र श्राप तें दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई॥
कनककसिपु अरु हाटकलोचन। जगत बिदित सुरपति मद मोचन॥

उन दोनों भाइयों ने ब्राह्मण (सनकादि) के शाप से असुरों का तामसी शरीर पाया। एक का नाम था हिरण्यकशिपु और दूसरे का हिरण्याक्ष। ये देवराज इंद्र के गर्व को छुड़ानेवाले

सारे जगत में प्रसिद्ध हुए।

बिजई समर बीर बिख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा॥

वे युद्ध में विजय पानेवाले विख्यात वीर थे। इनमें से एक (हिरण्याक्ष) को भगवान ने वराह (सूअर) का शरीर धारण करके मारा, फिर दूसरे (हिरण्यकशिपु) का नरसिंह रूप धारण करके वध किया और अपने भक्त प्रह्लाद का सुंदर यश फैलाया।

दो॰ - भए निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान।
कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान॥ 122॥

वे ही (दोनों) जाकर देवताओं को जीतनेवाले तथा बड़े योद्धा, रावण और कुंभकर्ण नामक बड़े बलवान और महावीर राक्षस हुए, जिन्हें सारा जगत जानता है॥ 122॥

मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना॥
एक बार तिन्ह के हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥

भगवान के द्वारा मारे जाने पर भी वे (हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु) इसीलिए मुक्त नहीं हुए कि ब्राह्मण के वचन (शाप) का प्रमाण तीन जन्म के लिए था। अतः एक बार उनके कल्याण के लिए भक्तप्रेमी भगवान ने फिर अवतार लिया।

कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता॥
एक कलप एहि बिधि अवतारा। चरित पवित्र किए संसारा॥

वहाँ (उस अवतार में) कश्यप और अदिति उनके माता-पिता हुए, जो दशरथ और कौसल्या के नाम से प्रसिद्ध थे। एक कल्प में इस प्रकार अवतार लेकर उन्होंने संसार में पवित्र लीलाएँ कीं।

एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे॥
संभु कीन्ह संग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा॥

एक कल्प में सब देवताओं को जलंधर दैत्य से युद्ध में हार जाने के कारण दुःखी देखकर शिव ने उसके साथ बड़ा घोर युद्ध किया, पर वह महाबली दैत्य मारे नहीं मरता था।

परम सती असुराधिप नारी। तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी॥

उस दैत्यराज की स्त्री परम सती (बड़ी ही पतिव्रता) थी। उसी के प्रताप से त्रिपुरासुर (जैसे अजेय शत्रु) का विनाश करनेवाले शिव भी उस दैत्य को नहीं जीत सके।

दो० - छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह॥ 123॥

प्रभु ने छल से उस स्त्री का व्रत भंग कर देवताओं का काम किया। जब उस स्त्री ने यह भेद जाना, तब उसने क्रोध करके भगवान को शाप दिया॥ 123॥

तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना॥
तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ॥

लीलाओं के भंडार कृपालु हरि ने उस स्त्री के शाप को प्रामाण्य दिया (स्वीकार किया)। वही जलंधर उस कल्प में रावण हुआ, जिसे राम ने युद्ध में मारकर परमपद दिया।

एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नरदेहा॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी॥

एक जन्म का कारण यह था, जिससे राम ने मनुष्य देह धारण किया। हे भरद्वाज मुनि! सुनो, प्रभु के प्रत्येक अवतार की कथा का कवियों ने नाना प्रकार से वर्णन किया है।

नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा॥
गिरिजा चकित भईं सुनि बानी। नारद बिष्नुभगत पुनि ग्यानी॥

एक बार नारद ने शाप दिया, अतः एक कल्प में उसके लिए अवतार हुआ। यह बात सुनकर पार्वती बड़ी चकित हुईं (और बोलीं कि) नारद तो विष्णु भक्त और ज्ञानी हैं।

कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी॥

मुनि ने भगवान को शाप किस कारण से दिया। लक्ष्मीपति भगवान ने उनका क्या अपराध किया था? हे पुरारि (शंकर)! यह कथा मुझसे कहिए। मुनि नारद के मन में मोह होना बड़े आश्चर्य की बात है।

दो० - बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ॥ 124(क)॥

तब महादेव ने हँसकर कहा - न कोई ज्ञानी है न मूर्ख। रघुनाथ जब जिसको जैसा करते हैं, वह उसी क्षण वैसा ही हो जाता है॥ 124(क)॥

सो० - कहउँ राम गुन गाथ भरद्वाज सादर सुनहु।
भव भंजन रघुनाथ भजु तुलसी तजि मान मद॥ 124(ख)॥

(याज्ञवल्क्य कहते हैं -) हे भरद्वाज! मैं राम के गुणों की कथा कहता हूँ, तुम आदर से सुनो। तुलसीदास कहते हैं - मान और मद को छोड़कर आवागमन का नाश करनेवाले रघुनाथ को भजो॥ 124(ख)॥

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि॥
आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा॥

हिमालय पर्वत में एक बड़ी पवित्र गुफा थी। उसके समीप ही सुंदर गंगा बहती थीं। वह परम पवित्र सुंदर आश्रम देखने पर नारद के मन को बहुत ही सुहावना लगा।

निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा॥
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी॥

पर्वत, नदी और वन के (सुंदर) विभागों को देखकर नादर का लक्ष्मीकांत भगवान के चरणों में प्रेम हो गया। भगवान का स्मरण करते ही उन (नारद मुनि) के शाप की (जो शाप उन्हें दक्ष प्रजापति ने दिया था और जिसके कारण वे एक स्थान पर नहीं ठहर सकते थे) गति रुक गई और मन के स्वाभाविक ही निर्मल होने से उनकी समाधि लग गई।

मुनि गति देखि सुरेस डेराना। कामहि बोलि कीन्ह सनमाना॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हियँ जलचरकेतू॥

नारद मुनि की (यह तपोमयी) स्थिति देखकर देवराज इंद्र डर गया। उसने कामदेव को बुलाकर उसका आदर-सत्कार किया (और कहा कि) मेरे (हित के) लिए तुम अपने सहायकों सहित (नारद की समाधि भंग करने को) जाओ। (यह सुनकर) मीनध्वज कामदेव

मन में प्रसन्न होकर चला।

सुनासीर मन महुँ असि त्रासा। चहत देवरिषि मम पुर बासा॥
जे कामी लोलुप जग माहीं। कुटिल काक इव सबहि डेराहीं॥

इंद्र के मन में यह डर हुआ कि देवर्षि नारद मेरी पुरी (अमरावती) का निवास (राज्य) चाहते हैं। जगत में जो कामी और लोभी होते हैं, वे कुटिल कौए की तरह सबसे डरते हैं।

दो० - सूख हाड़ लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जान जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज॥ 125॥

जैसे मूर्ख कुत्ता सिंह को देखकर सूखी हड्डी लेकर भागे और वह मूर्ख यह समझे कि कहीं उस हड्डी को सिंह छीन न ले, वैसे ही इंद्र को (नारद मेरा राज्य छीन लेंगे, ऐसा सोचते) लाज नहीं आई॥ 125॥

तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ। निज मायाँ बसंत निरमयऊ॥
कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा॥

जब कामदेव उस आश्रम में गया, तब उसने अपनी माया से वहाँ वसंत ऋतु को उत्पन्न किया। तरह-तरह के वृक्षों पर रंग-बिरंगे फूल खिल गए, उन पर कोयलें कूकने लगीं और भौंरे गुंजार करने लगे।

चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम कृसानु बढ़ावनिहारी॥
रंभादिक सुर नारि नबीना। सकल असमसर कला प्रबीना॥

कामाग्नि को भड़कानेवाली तीन प्रकार की (शीतल, मंद और सुगंध) सुहावनी हवा चलने लगी। रंभा आदि नवयुवती देवांगनाएँ, जो सब की सब कामकला में निपुण थीं,

करहिं गान बहु तान तरंगा। बहुबिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा॥
देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना॥

बहुत प्रकार की तानों की तरंग के साथ गाने लगीं और हाथ में गेंद लेकर नाना प्रकार के खेल खेलने लगीं। कामदेव अपने इन सहायकों को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और फिर उसने नाना प्रकार के मायाजाल किए।

काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी। निज भयँ डरेउ मनोभव पापी॥
सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥

परंतु कामदेव की कोई भी कला मुनि पर असर न कर सकी। तब तो पापी कामदेव अपने ही (नाश के) भय से डर गया। लक्ष्मीपति भगवान जिसके बड़े रक्षक हों, भला, उसकी सीमा (मर्यादा) को कोई दबा सकता है?

दो॰ - सहित सहाय सभीत अति मानि हारि मन मैन।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब कहि सुठि आरत बैन॥ 126॥

तब अपने सहायकों समेत कामदेव ने बहुत डरकर और अपने मन में हार मानकर बहुत ही आर्त (दीन) वचन कहते हुए मुनि के चरणों को जा पकड़ा॥ 126॥

भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय बचन काम परितोषा॥
नाइ चरन सिरु आयसु पाई। गयउ मदन तब सहित सहाई॥

नारद के मन में कुछ भी क्रोध न आया। उन्होंने प्रिय वचन कहकर कामदेव का समाधान किया। तब मुनि के चरणों में सिर नवाकर और उनकी आज्ञा पाकर कामदेव अपने सहायकों सहित लौट गया।

मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभाँ जाइ सब बरनी॥
सुनि सब कें मन अचरजु आवा। मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिरु नावा॥

देवराज इंद्र की सभा में जाकर उसने मुनि की सुशीलता और अपनी करतूत सब कही, जिसे सुनकर सबके मन में आश्चर्य हुआ और उन्होंने मुनि की बड़ाई करके हरि को सिर नवाया।

तब नारद गवने सिव पाहीं। जिता काम अहमिति मन माहीं॥
मार चरति संकरहि सुनाए। अतिप्रिय जानि महेस सिखाए॥

तब नारद शिव के पास गए। उनके मन में इस बात का अहंकार हो गया कि हमने कामदेव को जीत लिया। उन्होंने कामदेव के चरित्र शिव को सुनाए और महादेव ने उन (नारद) को अत्यंत प्रिय जानकर (इस प्रकार) शिक्षा दी -

बार बार बिनवउँ मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही॥

तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूँ। चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ॥

हे मुनि! मैं तुमसे बार-बार विनती करता हूँ कि जिस तरह यह कथा तुमने मुझे सुनाई है, उस तरह भगवान हरि को कभी मत सुनाना। चर्चा चले तब भी इसको छिपा जाना।

दो० - संभु दीन्ह उपदेस हित नहिं नारदहि सोहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान॥ 127॥

यद्यपि शिव ने यह हित की शिक्षा दी, पर नारद को वह अच्छी न लगी। हे भरद्वाज! अब कौतुक (तमाशा) सुनो। हरि की इच्छा बड़ी बलवान है॥ 127॥

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥
संभु बचन मुनि मन नहिं भाए। तब बिरंचि के लोक सिधाए॥

राम जो करना चाहते हैं, वही होता है, ऐसा कोई नहीं जो उसके विरुद्ध कर सके। शिव के वचन नारद के मन को अच्छे नहीं लगे, तब वे वहाँ से ब्रह्मलोक को चल दिए।

एक बार करतल बर बीना। गावत हरि गुन गान प्रबीना॥
छीरसिंधु गवने मुनिनाथा। जहँ बसनिवास श्रुतिमाथा॥

एक बार गानविद्या में निपुण मुनिनाथ नारद हाथ में सुंदर वीणा लिए, हरिगुण गाते हुए क्षीरसागर को गए, जहाँ वेदों के मस्तकस्वरूप (मूर्तिमान वेदांतत्त्व) लक्ष्मी निवास भगवान नारायण रहते हैं।

हरषि मिले उठि रमानिकेता। बैठे आसन रिषिहि समेता॥
बोले बिहसि चराचर राया। बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया॥

रमानिवास भगवान उठकर बड़े आनंद से उनसे मिले और ऋषि (नारद) के साथ आसन पर बैठ गए। चराचर के स्वामी भगवान हँसकर बोले - हे मुनि! आज आपने बहुत दिनों पर दया की।

काम चरित नारद सब भाषे। जद्यपि प्रथम बरजि सिवँ राखे॥
अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया॥

यद्यपि शिव ने उन्हें पहले से ही बरज रखा था, तो भी नारद ने कामदेव का सारा चरित्र

भगवान को कह सुनाया। रघुनाथ की माया बड़ी ही प्रबल है। जगत में ऐसा कौन जन्मा है, जिसे वे मोहित न कर दें।

दो० - रूख बदन करि बचन मृदु बोलेभगवान।
तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं मोह मार मद मान॥ 128॥

भगवान रूखा मुँह करके कोमल वचन बोले - हे मुनिराज! आपका स्मरण करने से दूसरों के मोह, काम, मद और अभिमान मिट जाते हैं (फिर आपके लिए तो कहना ही क्या है?)॥ 128॥

सुनु मुनि मोह होइ मन ताकें। ग्यान बिराग हृदय नहिं जाकें॥
ब्रह्मचरज ब्रत रत मतिधीरा। तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा॥

हे मुनि! सुनिए, मोह तो उसके मन में होता है, जिसके हृदय में ज्ञान-वैराग्य नहीं है। आप तो ब्रह्मचर्य व्रत में तत्पर और बड़े धीर बुद्धि हैं। भला, कहीं आपको भी कामदेव सता सकता है?

नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥
करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गरब तरु भारी॥

नारद ने अभिमान के साथ कहा - भगवन! यह सब आपकी कृपा है। करुणानिधान भगवान ने मन में विचारकर देखा कि इनके मन में गर्व के भारी वृक्ष का अंकुर पैदा हो गया है।

बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। पन हमार सेवक हितकारी॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करबि मैं सोई॥

मैं उसे तुरंत ही उखाड़ फेंकूँगा, क्योंकि सेवकों का हित करना हमारा प्रण है। मैं अवश्य ही वह उपाय करूँगा, जिससे मुनि का कल्याण और मेरा खेल हो।

तब नारद हरि पद सिर नाई। चले हृदयँ अहमिति अधिकाई॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी॥

तब नारद भगवान के चरणों में सिर नवाकर चले। उनके हृदय में अभिमान और भी बढ़ गया। तब लक्ष्मीपति भगवान ने अपनी माया को प्रेरित किया। अब उसकी कठिन करनी

सुनो।

दो० - बिरचेउ मग महुँ नगर तेहिं सत जोजन बिस्तार।
श्रीनिवासपुर तें अधिक रचना बिबिध प्रकार॥ 129॥

उस (हरिमाया) ने रास्ते में सौ योजन (चार सौ कोस) का एक नगर रचा। उस नगर की भाँति-भाँति की रचनाएँ लक्ष्मीनिवास भगवान विष्णु के नगर (बैकुंठ) से भी अधिक सुंदर थीं॥ 129॥

बसहिं नगर सुंदर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनुधारी॥
तेहिं पुर बसइ सीलनिधि राजा। अगनित हय गय सेन समाजा॥

उस नगर में ऐसे सुंदर नर-नारी बसते थे, मानो बहुत-से कामदेव और (उसकी स्त्री) रति ही मनुष्य शरीर धारण किए हुए हों। उस नगर में शीलनिधि नाम का राजा रहता था, जिसके यहाँ असंख्य घोड़े, हाथी और सेना के समूह (टुकड़ियाँ) थे।

सत सुरेस सम बिभव बिलासा। रूप तेज बल नीति निवासा॥
बिस्वमोहनी तासु कुमारी। बिमोह जिसु रूपु निहारी॥

उसका वैभव और विलास सौ इंद्रों के समान था। वह रूप, तेज, बल और नीति का घर था। उसके विश्वमोहिनी नाम की एक (ऐसी रूपवती) कन्या थी, जिसके रूप को देखकर लक्ष्मी भी मोहित हो जाएँ।

सोइ हरिमाया सब गुन खानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी॥
करइ स्वयंबर सो नृपबाला। आए तहँ अगनित महिपाला॥

वह सब गुणों की खान भगवान की माया ही थी। उसकी शोभा का वर्णन कैसे किया जा सकता है। वह राजकुमारी स्वयंवर करना चाहती थी, इससे वहाँ अगणित राजा आए हुए थे।

मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। पुरबासिन्ह सब पूछत भयऊ॥
सुनि सब चरित भूपगृहँ आए। करि पूजा नृप मुनि बैठाए॥

खिलवाड़ी मुनि नारद उस नगर में गए और नगरवासियों से उन्होंने सब हाल पूछा। सब समाचार सुनकर वे राजा के महल में आए। राजा ने पूजा करके मुनि को (आसन पर)

बैठाया।

दो॰ - आनि देखाई नारदहि भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुन दोष सब एहि के हृदयँ बिचारि॥ 130॥

(फिर) राजा ने राजकुमारी को लाकर नारद को दिखलाया (और पूछा कि -) हे नाथ! आप अपने हृदय में विचार कर इसके सब गुण-दोष कहिए॥ 130॥

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी॥
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदयँ हरष नहिं प्रगट बखाने॥

उसके रूप को देखकर मुनि वैराग्य भूल गए और बड़ी देर तक उसकी ओर देखते ही रह गए। उसके लक्षण देखकर मुनि अपने आपको भी भूल गए और हृदय में हर्षित हुए, पर प्रकट रूप में उन लक्षणों को नहीं कहा।

जो एहि बरइ अमर सोइ होई। समरभूमि तेहि जीत न कोई॥
सेवहिं सकल चराचर ताही। बरइ सीलनिधि कन्या जाही॥

(लक्षणों को सोचकर वे मन में कहने लगे कि) जो इसे ब्याहेगा, वह अमर हो जाएगा और रणभूमि में कोई उसे जीत न सकेगा। यह शीलनिधि की कन्या जिसको वरेगी, सब चर-अचर जीव उसकी सेवा करेंगे।

लच्छन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूप सन भाषे॥
सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं। नारद चले सोच मन माहीं॥

सब लक्षणों को विचारकर मुनि ने अपने हृदय में रख लिया और राजा से कुछ अपनी ओर से बनाकर कह दिए। राजा से लड़की के सुलक्षण कहकर नारद चल दिए। पर उनके मन में यह चिंता थी कि -

करौं जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी॥
जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला॥

मैं जाकर सोच-विचारकर अब वही उपाय करूँ, जिससे यह कन्या मुझे ही वरे। इस समय जप-तप से तो कुछ हो नहीं सकता। हे विधाता! मुझे यह कन्या किस तरह मिलेगी?

दो॰ - एहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझै कुअँरि तब मेलै जयमाल॥ 131॥

इस समय तो बड़ी भारी शोभा और विशाल (सुंदर) रूप चाहिए, जिसे देखकर राजकुमारी मुझ पर रीझ जाए और तब जयमाल (मेरे गले में) डाल दे॥ 131॥

हरि सन मागौं सुंदरताई। होइहि जात गहरु अति भाई॥
मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ॥

(एक काम करूँ कि) भगवान से सुंदरता माँगूँ; पर भाई! उनके पास जाने में तो बहुत देर हो जाएगी। किंतु हरि के समान मेरा हितू भी कोई नहीं है, इसलिए इस समय वे ही मेरे सहायक हों।

बहुबिधि बिनय कीन्हि तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला॥
प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने। होइहि काजु हिएँ हरषाने॥

उस समय नारद ने भगवान की बहुत प्रकार से विनती की। तब लीलामय कृपालु प्रभु (वहीं) प्रकट हो गए। स्वामी को देखकर नारद के नेत्र शीतल हो गए और वे मन में बड़े ही हर्षित हुए कि अब तो काम बन ही जाएगा।

अति आरति कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई॥
आपन रूप देहु प्रभु मोहीं। आन भाँति नहिं पावौं ओही॥

नारद ने बहुत आर्त (दीन) होकर सब कथा कह सुनाई (और प्रार्थना की कि) कृपा कीजिए और कृपा करके मेरे सहायक बनिए। हे प्रभो! आप अपना रूप मुझको दीजिए, अन्य किसी प्रकार से मैं उस (राजकन्या) को नहीं पा सकता।

जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा॥
निज माया बल देखि बिसाला। हियँ हँसि बोले दीनदयाला॥

हे नाथ! जिस तरह मेरा हित हो, आप वही शीघ्र कीजिए। मैं आपका दास हूँ। अपनी माया का विशाल बल देख दीनदयालु भगवान मन-ही-मन हँसकर बोले -

दो॰ - जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥ 132॥

हे नारद! सुनो, जिस प्रकार आपका परम हित होगा, हम वही करेंगे, दूसरा कुछ नहीं। हमारा वचन असत्य नहीं होता॥ 132॥

कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी॥
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ॥

हे योगी मुनि! सुनिए, रोग से व्याकुल रोगी कुपथ्य माँगे तो वैद्य उसे नहीं देता। इसी प्रकार मैंने भी तुम्हारा हित करने की ठान ली है। ऐसा कहकर भगवान अंतर्धान हो गए।

माया बिबस भए मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा॥
गवने तुरत तहाँ रिषिराई। जहाँ स्वयंबर भूमि बनाई॥

(भगवान की) माया के वशीभूत हुए मुनि ऐसे मूढ़ हो गए कि वे भगवान की अगूढ़ (स्पष्ट) वाणी को भी न समझ सके। ऋषिराज नारद तुरंत वहाँ गए जहाँ स्वयंवर की भूमि बनाई गई थी।

निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा॥
मुनि मन हरष रूप अति मोरें। मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें॥

राजा लोग खूब सज-धजकर समाज सहित अपने-अपने आसन पर बैठे थे। मुनि (नारद) मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे कि मेरा रूप बड़ा सुंदर है, मुझे छोड़ कन्या भूलकर भी दूसरे को न वरेगी।

मुनि हित कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना॥
सो चरित्र लखि काहुँ न पावा। नारद जानि सबहिं सिर नावा॥

कृपानिधान भगवान ने मुनि के कल्याण के लिए उन्हें ऐसा कुरूप बना दिया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता, पर यह चरित कोई भी न जान सका। सबने उन्हें नारद ही जानकर प्रणाम किया।

दो० - रहे तहाँ दुइ रुद्र गन ते जानहिं सब भेउ।
बिप्रबेष देखत फिरहिं परम कौतुकी तेउ॥ 133॥

वहाँ शिव के दो गण भी थे। वे सब भेद जानते थे और ब्राह्मण का वेष बनाकर सारी लीला देखते-फिरते थे। वे भी बड़े मौजी थे॥ 133॥

जेहिं समाज बैठे मुनि जाई। हृदयँ रूप अहमिति अधिकाई॥
तहँ बैठे महेस गन दोऊ। बिप्रबेष गति लखइ न कोऊ॥

नारद अपने हृदय में रूप का बड़ा अभिमान लेकर जिस समाज (पंक्ति) में जाकर बैठे थे, ये शिव के दोनों गण भी वहीं बैठ गए। ब्राह्मण के वेष में होने के कारण उनकी इस चाल को कोई न जान सका।

करहिं कूटि नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई॥
रीझिहि राजकुअँरि छबि देखी। इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी॥

वे नारद को सुना-सुनाकर, व्यंग्य वचन कहते थे - भगवान ने इनको अच्छी 'सुंदरता' दी है। इनकी शोभा देखकर राजकुमारी रीझ ही जाएगी और 'हरि' (वानर) जानकर इन्हीं को खास तौर से वरेगी।

मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ। हँसहिं संभु गन अति सचु पाएँ॥
जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी। समुझि न परइ बुद्धि भ्रम सानी॥

नारद मुनि को मोह हो रहा था, क्योंकि उनका मन दूसरे के हाथ (माया के वश) में था। शिव के गण बहुत प्रसन्न होकर हँस रहे थे। यद्यपि मुनि उनकी अटपटी बातें सुन रहे थे, पर बुद्धि भ्रम में सनी हुई होने के कारण वे बातें उनकी समझ में नहीं आती थीं (उनकी बातों को वे अपनी प्रशंसा समझ रहे थे)।

काहुँ न लखा सो चरित बिसेषा। सो सरूप नृपकन्याँ देखा॥
मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदयँ क्रोध भा तेही॥

इस विशेष चरित को और किसी ने नहीं जाना, केवल राजकन्या ने (नारद का) वह रूप देखा। उनका बंदर का-सा मुँह और भयंकर शरीर देखते ही कन्या के हृदय में क्रोध उत्पन्न हो गया।

दो० - सखीं संग लै कुअँरि तब चलि जनु राजमराल।
देखत फिरइ महीप सब कर सरोज जयमाल॥ 134॥

तब राजकुमारी सखियों को साथ लेकर इस तरह चली मानो राजहंसिनी चल रही है। वह अपने कमल जैसे हाथों में जयमाला लिए सब राजाओं को देखती हुई घूमने लगी॥ 134॥

जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली॥
पुनि-पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर गन मुसुकाहीं॥

जिस ओर नारद (रूप के गर्व में) फूले बैठे थे, उस ओर उसने भूलकर भी नहीं ताका। नारद मुनि बार-बार उचकते और छटपटाते हैं। उनकी दशा देखकर शिव के गण मुसकराते हैं।

धरि नृपतनु तहँ गयउ कृपाला। कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला॥
दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासा। नृपसमाज सब भयउ निरासा॥

कृपालु भगवान भी राजा का शरीर धारण कर वहाँ जा पहुँचे। राजकुमारी ने हर्षित होकर उनके गले में जयमाला डाल दी। लक्ष्मीनिवास भगवान दुलहिन को ले गए। सारी राजमंडली निराश हो गई।

मुनि अति बिकल मोहँ मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी॥
तब हर गन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई॥

मोह के कारण मुनि की बुद्धि नष्ट हो गई थी, इससे वे (राजकुमारी को गई देख) बहुत ही विकल हो गए। मानो गाँठ से छूटकर मणि गिर गई हो। तब शिव के गणों ने मुसकराकर कहा - जाकर दर्पण में अपना मुँह तो देखिए!

अस कहि दोउ भागे भयँ भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी॥
बेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा॥

ऐसा कहकर वे दोनों बहुत भयभीत होकर भागे। मुनि ने जल में झाँककर अपना मुँह देखा। अपना रूप देखकर उनका क्रोध बहुत बढ़ गया। उन्होंने शिव के उन गणों को अत्यंत कठोर शाप दिया -

दो० - होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हँसेहु मुनि कोउ॥ 135॥

तुम दोनों कपटी और पापी जाकर राक्षस हो जाओ। तुमने हमारी हँसी की, उसका फल चखो। अब फिर किसी मुनि की हँसी करना॥ 135॥

पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदयँ संतोष न आवा॥

फरकत अधर कोप मन माहीं। सपदि चले कमलापति पाहीं॥

मुनि ने फिर जल में देखा, तो उन्हें अपना (असली) रूप प्राप्त हो गया, तब भी उन्हें संतोष नहीं हुआ। उनके होठ फड़क रहे थे और मन में क्रोध (भरा) था। तुरंत ही वे भगवान कमलापति के पास चले।

देहउँ श्राप कि मरिहउँ जाई। जगत मोरि उपहास कराई॥
बीचहिं पंथ मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी॥

(मन में सोचते जाते थे -) जाकर या तो शाप दूँगा या प्राण दे दूँगा। उन्होंने जगत में मेरी हँसी कराई। दैत्यों के शत्रु भगवान हरि उन्हें बीच रास्ते में ही मिल गए। साथ में लक्ष्मी और वही राजकुमारी थीं।

बोले मधुर बचन सुरसाईं। मुनि कहँ चले बिकल की नाईं॥
सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। माया बस न रहा मन बोधा॥

देवताओं के स्वामी भगवान ने मीठी वाणी में कहा - हे मुनि! व्याकुल की तरह कहाँ चले? ये शब्द सुनते ही नारद को बड़ा क्रोध आया, माया के वशीभूत होने के कारण मन में चेत नहीं रहा।

पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरें इरिषा कपट बिसेषी॥
मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु। सुरन्ह प्रेरि बिष पान करायहु॥

(मुनि ने कहा -) तुम दूसरों की संपदा नहीं देख सकते, तुममें ईर्ष्या और कपट बहुत है। समुद्र मथते समय तुमने शिव को बावला बना दिया और देवताओं को प्रेरित करके उन्हें विषपान कराया।

दो॰ - असुर सुरा बिष संकरहि आपु रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट ब्यवहारु॥ 136॥

असुरों को मदिरा और शिव को विष देकर तुमने स्वयं लक्ष्मी और सुंदर (कौस्तुभ) मणि ले ली। तुम बड़े धोखेबाज और मतलबी हो। सदा कपट का व्यवहार करते हो॥ 136॥

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई॥
भलेहि मंद मंदेहि भल करहू। बिसमय हरष न हियँ कछु धरहू॥

तुम परम स्वतंत्र हो, सिर पर तो कोई है नहीं, इससे जब जो मन को भाता है, (स्वच्छंदता से) वही करते हो। भले को बुरा और बुरे को भला कर देते हो। हृदय में हर्ष-विषाद कुछ भी नहीं लाते।

डहकि डहकि परिचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू॥
करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा। अब लगि तुम्हहि न काहूँ साधा॥

सबको ठग-ठगकर परक गए हो और अत्यंत निडर हो गए हो, इसी से (ठगने के काम में) मन में सदा उत्साह रहता है। शुभ-अशुभ कर्म तुम्हें बाधा नहीं देते। अब तक तुम्हें किसी ने ठीक नहीं किया था।

भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा॥

अबकी तुमने अच्छे घर बैना दिया है (मेरे जैसे जबरदस्त आदमी से छेड़खानी की है)। अतः अपने किए का फल अवश्य पाओगे। जिस शरीर को धारण करके तुमने मुझे ठगा है, तुम भी वही शरीर धारण करो, यह मेरा शाप है।

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी॥

तुमने हमारा रूप बंदर का-सा बना दिया था, इससे बंदर ही तुम्हारी सहायता करेंगे। (मैं जिस स्त्री को चाहता था, उससे मेरा वियोग कराकर) तुमने मेरा बड़ा अहित किया है, इससे तुम भी स्त्री के वियोग में दुःखी होगे।

दो० - श्राप सीस धरि हरषि हियँ प्रभु बहु बिनती कीन्हि॥
निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्हि॥ 137॥

शाप को सिर पर चढ़ाकर, हृदय में हर्षित होते हुए प्रभु ने नारद से बहुत विनती की और कृपानिधान भगवान ने अपनी माया की प्रबलता खींच ली॥ 137॥

जब हरि माया दूरि निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी॥
तब मुनि अति सभीत हरि चरना। गहे पाहि प्रनतारति हरना॥

जब भगवान ने अपनी माया को हटा लिया, तब वहाँ न लक्ष्मी ही रह गईं, न राजकुमारी

ही। तब मुनि ने अत्यंत भयभीत होकर हरि के चरण पकड़ लिए और कहा - हे शरणागत के दुःखों को हरनेवाले! मेरी रक्षा कीजिए।

मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला॥
मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे॥

हे कृपालु! मेरा शाप मिथ्या हो जाए। तब दीनों पर दया करनेवाले भगवान ने कहा कि यह सब मेरी ही इच्छा (से हुआ) है। मुनि ने कहा - मैंने आप को अनेक खोटे वचन कहे हैं। मेरे पाप कैसे मिटेंगे?

जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा॥
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें॥

(भगवान ने कहा -) जाकर शंकर के शतनाम का जप करो, इससे हृदय में तुरंत शांति होगी। शिव के समान मुझे कोई प्रिय नहीं है, इस विश्वास को भूलकर भी न छोड़ना।

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥
अस उर धरि महि बिचरहु जाई। अब न तुम्हहि माया निअराई॥

हे मुनि ! पुरारि (शिव) जिस पर कृपा नहीं करते, वह मेरी भक्ति नहीं पाता। हृदय में ऐसा निश्चय करके जाकर पृथ्वी पर विचरो। अब मेरी माया तुम्हारे निकट नहीं आएगी।

दो० - बहुबिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तब भए अंतरधान।
सत्यलोक नारद चले करत राम गुन गान॥ 138॥

बहुत प्रकार से मुनि को समझा-बुझाकर (ढाढ़स देकर) तब प्रभु अंतर्धान हो गए और नारद राम के गुणों का गान करते हुए सत्य लोक (ब्रहमलोक) को चले॥ 138॥

हर गन मुनिहि जात पथ देखी। बिगत मोह मन हरष बिसेषी॥
अति सभीत नारद पहिं आए। गहि पद आरत बचन सुनाए॥

शिव के गणों ने जब मुनि को मोहरहित और मन में बहुत प्रसन्न होकर मार्ग में जाते हुए देखा तब वे अत्यंत भयभीत होकर नारद के पास आए और उनके चरण पकड़कर दीन वचन बोले -

हर गन हम न बिप्र मुनिराया। बड़ अपराध कीन्ह फल पाया॥
श्राप अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीनदयाला॥

हे मुनिराज! हम ब्राह्मण नहीं हैं, शिव के गण हैं। हमने बड़ा अपराध किया, जिसका फल हमने पा लिया। हे कृपालु! अब शाप दूर करने की कृपा कीजिए। दीनों पर दया करनेवाले नारद ने कहा -

निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। बैभव बिपुल तेज बल होऊ॥
भुज बल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ। धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ॥

तुम दोनों जाकर राक्षस होओ; तुम्हें महान ऐश्वर्य, तेज और बल की प्राप्ति हो। तुम अपनी भुजाओं के बल से जब सारे विश्व को जीत लोगे, तब भगवान विष्णु मनुष्य का शरीर धारण करेंगे।

समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि संसारा॥
चले जुगल मुनि पद सिर नाई। भए निसाचर कालहि पाई॥

युद्ध में हरि के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी, जिससे तुम मुक्त हो जाओगे और फिर संसार में जन्म नहीं लोगे। वे दोनों मुनि के चरणों में सिर नवाकर चले और समय पाकर राक्षस हुए।

दो० - एक कलप एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार।
सुर रंजन सज्जन सुखद हरि भंजन भुबि भार॥ 139॥

देवताओं को प्रसन्न करनेवाले, सज्जनों को सुख देनेवाले और पृथ्वी का भार हरण करनेवाले भगवान ने एक कल्प में इसी कारण मनुष्य का अवतार लिया था॥ 139॥

एहि बिधि जनम करम हरि केरे। सुंदर सुखद बिचित्र घनेरे॥
कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नानाबिधि करहीं॥

इस प्रकार भगवान के अनेक सुंदर, सुखदायक और अलौकिक जन्म और कर्म हैं। प्रत्येक कल्प में जब-जब भगवान अवतार लेते हैं और नाना प्रकार की सुंदर लीलाएँ करते हैं,

तब-तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबंध बनाई॥
बिबिध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरजु सयाने॥

तब-तब मुनीश्वरों ने परम पवित्र काव्य रचना करके उनकी कथाओं का गान किया है और भाँति-भाँति के अनुपम प्रसंगों का वर्णन किया है, जिनको सुनकर समझदार (विवेकी) लोग आश्चर्य नहीं करते।

हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता॥
रामचंद्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए॥

हरि अनंत हैं (उनका कोई पार नहीं पा सकता) और उनकी कथा भी अनंत है। सब संत लोग उसे बहुत प्रकार से कहते-सुनते हैं। रामचंद्र के सुंदर चरित्र करोड़ों कल्पों में भी गाए नहीं जा सकते।

यह प्रसंग मैं कहा भवानी। हरिमायाँ मोहहिं मुनि ग्यानी॥
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी। सेवत सुलभ सकल दुखहारी॥

(शिव कहते हैं कि) हे पार्वती! मैंने यह बताने के लिए इस प्रसंग को कहा कि ज्ञानी मुनि भी भगवान की माया से मोहित हो जाते हैं। प्रभु कौतुकी (लीलामय) हैं और शरणागत का हित करनेवाले हैं। वे सेवा करने में बहुत सुलभ और सब दुःखों के हरनेवाले हैं।

सो० - सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहिं भजिअ महामाया पतिहि॥ 140॥

देवता, मनुष्य और मुनियों में ऐसा कोई नहीं है, जिसे भगवान की महान बलवती माया मोहित न कर दे। मन में ऐसा विचारकर उस महामाया के स्वामी (प्रेरक) भगवान का भजन करना चाहिए॥ 140॥

अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहउँ बिचित्र कथा बिस्तारी॥
जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा॥

हे गिरिराजकुमारी! अब भगवान के अवतार का वह दूसरा कारण सुनो - मैं उसकी विचित्र कथा विस्तार करके कहता हूँ - जिस कारण से जन्मरहित, निर्गुण और रूपरहित ब्रह्म अयोध्यापुरी के राजा हुए।

जो प्रभु बिपिन फिरत तुम्ह देखा। बंधु समेत धरें मुनिबेषा॥
जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी॥

जिन प्रभु राम को तुमने भाई लक्ष्मण के साथ मुनियों का-सा वेष धारण किए वन में फिरते देखा था और हे भवानी! जिनके चरित्र देखकर सती के शरीर में तुम ऐसी बावली हो गई थीं कि -

अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी॥
लीला कीन्हि जो तेहिं अवतारा। सो सब कहिहउँ मति अनुसारा॥

अब भी तुम्हारे उस बावलेपन की छाया नहीं मिटती, उन्हीं के भ्रमरूपी रोग के हरण करनेवाले चरित्र सुनो। उस अवतार में भगवान ने जो-जो लीला की, वह सब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हें कहूँगा।

भरद्वाज सुनि संकर बानी। सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी॥
लगे बहुरि बरनै बृषकेतू। सो अवतार भयउ जेहि हेतू॥

(याज्ञवल्क्य ने कहा -) हे भरद्वाज! शंकर के वचन सुनकर पार्वती सकुचाकर प्रेमसहित मुसकराईं। फिर वृषकेतु शिव जिस कारण से भगवान का वह अवतार हुआ था, उसका वर्णन करने लगे।

दो० - सो मैं तुम्ह सन कहउँ सबु सुनु मुनीस मन लाइ।
रामकथा कलि मल हरनि मंगल करनि सुहाइ॥ 141॥

हे मुनीश्वर भरद्वाज! मैं वह सब तुमसे कहता हूँ, मन लगाकर सुनो। राम की कथा कलियुग के पापों को हरनेवाली, कल्याण करनेवाली और बड़ी सुंदर है॥ 141॥

स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा॥
दंपति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका॥

स्वायंभुव मनु और (उनकी पत्नी) शतरूपा, जिनसे मनुष्यों की यह अनुपम सृष्टि हुई, इन दोनों पति-पत्नी के धर्म और आचरण बहुत अच्छे थे। आज भी वेद जिनकी मर्यादा का गान करते हैं।

नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरिभगत भयउ सुत जासू॥
लघु सुत नाम प्रियब्रत ताही। बेद पुरान प्रसंसहिं जाही॥

राजा उत्तानपाद उनके पुत्र थे, जिनके पुत्र (प्रसिद्ध) हरिभक्त ध्रुव हुए। उन (मनु) के छोटे

लड़के का नाम प्रियव्रत था, जिनकी प्रशंसा वेद और पुराण करते हैं।

देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी॥
आदि देव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला॥

पुनः देवहूति उनकी कन्या थी, जो कर्दम मुनि की प्यारी पत्नी हुई और जिन्होंने आदि देव, दीनों पर दया करनेवाले समर्थ एवं कृपालु भगवान कपिल को गर्भ में धारण किया।

सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्त्व बिचार निपुन भगवाना॥
तेहिं मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला॥

तत्त्वों का विचार करने में अत्यंत निपुण जिन (कपिल) भगवान ने सांख्य शास्त्र का प्रकट रूप में वर्णन किया, उन (स्वायंभुव) मनु ने बहुत समय तक राज्य किया और सब प्रकार से भगवान की आज्ञा का पालन किया।

सो० - होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन॥
हृदयँ बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु॥ 142॥

घर में रहते बुढ़ापा आ गया, परंतु विषयों से वैराग्य नहीं होता (इस बात को सोचकर) उनके मन में बड़ा दुःख हुआ कि हरि की भक्ति बिना जन्म यों ही चला गया॥ 142॥

बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥
तीरथ बर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता॥

तब मनु ने अपने पुत्र को जबरदस्ती राज्य देकर स्वयं स्त्री सहित वन को गमन किया। अत्यंत पवित्र और साधकों को सिद्धि देनेवाला तीर्थों में श्रेष्ठ नैमिषारण्य प्रसिद्ध है।

बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा। तहँ हियँ हरषि चलेउ मनु राजा॥
पंथ जात सोहहिं मतिधीरा। ग्यान भगति जनु धरें सरीरा॥

वहाँ मुनियों और सिद्धों के समूह बसते हैं। राजा मनु हृदय में हर्षित होकर वहीं चले। वे धीर बुद्धिवाले राजा-रानी मार्ग में जाते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों ज्ञान और भक्ति ही शरीर धारण किए जा रहे हों।

पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। हरषि नहाने निरमल नीरा॥

आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी। धरम धुरंधर नृपरिषि जानी॥

(चलते-चलते) वे गोमती के किनारे जा पहुँचे। हर्षित होकर उन्होंने निर्मल जल में स्नान किया। उनको धर्मधुरंधर राजर्षि जानकर सिद्ध और ज्ञानी मुनि उनसे मिलने आए।

जहँ जहँ तीरथ रहे सुहाए। मुनिन्ह सकल सादर करवाए॥
कृस सरीर मुनिपट परिधाना। सत समाज नित सुनहिं पुराना॥

जहाँ-जहाँ सुंदर तीर्थ थे, मुनियों ने आदरपूर्वक सभी तीर्थ उनको करा दिए। उनका शरीर दुर्बल हो गया था। वे मुनियों के-से (वल्कल) वस्त्र धारण करते थे और संतों के समाज में नित्य पुराण सुनते थे।

दो० - द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग।
बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग॥ 143॥

और द्वादशाक्षर मंत्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का प्रेम सहित जप करते थे। भगवान वासुदेव के चरणकमलों में उन राजा-रानी का मन बहुत ही लग गया॥ 143॥

करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा॥
पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अधार मूल फल त्यागे॥

वे साग, फल और कंद का आहार करते थे और सच्चिदानंद ब्रह्म का स्मरण करते थे। फिर वे हरि के लिए तप करने लगे और मूल-फल को त्यागकर केवल जल के आधार पर रहने लगे।

उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथबादी॥

हृदय में निरंतर यही अभिलाषा हुआ करती कि हम (कैसे) उन परम प्रभु को आँखों से देखें, जो निर्गुण, अखंड, अनंत और अनादि हैं और परमार्थवादी (ब्रह्मज्ञानी, तत्त्ववेत्ता) लोग जिनका चिंतन किया करते हैं।

नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा॥
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥

जिन्हें वेद 'नेति-नेति' (यह भी नहीं, यह भी नहीं) कहकर निरूपण करते हैं। जो आनंदस्वरूप, उपाधिरहित और अनुपम हैं एवं जिनके अंश से अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु भगवान प्रकट होते हैं।

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई॥
जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा॥

ऐसे (महान) प्रभु भी सेवक के वश में हैं और भक्तों के लिए (दिव्य) लीला विग्रह धारण करते हैं। यदि वेदों में यह वचन सत्य कहा है, तो हमारी अभिलाषा भी अवश्य पूरी होगी।

दो० - एहि बिधि बीते बरष षट सहस बारि आहार।
संबत सप्त सहस्र पुनि रहे समीर अधार॥ 144॥

इस प्रकार जल का आहार (करके तप) करते छह हजार वर्ष बीत गए। फिर सात हजार वर्ष वे वायु के आधार पर रहे॥ 144॥

बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एक पद दोऊ ॥
बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा॥

दस हजार वर्ष तक उन्होंने वायु का आधार भी छोड़ दिया। दोनों एक पैर से खड़े रहे। उनका अपार तप देखकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव कई बार मनु के पास आए।

मागहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए॥
अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा। तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा॥

उन्होंने इन्हें अनेक प्रकार से ललचाया और कहा कि कुछ वर माँगो। पर ये परम धैर्यवान (राजा-रानी अपने तप से किसी के) डिगाए नहीं डिगे। यद्यपि उनका शरीर हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया था, फिर भी उनके मन में जरा भी पीड़ा नहीं थी।

प्रभु सर्बग्य दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी॥
मागु मागु बरु भै नभ बानी। परम गभीर कृपामृत सानी॥

सर्वज्ञ प्रभु ने अनन्य गति (आश्रय)वाले तपस्वी राजा-रानी को 'निज दास' जाना। तब परम गंभीर और कृपारूपी अमृत से सनी हुई यह आकाशवाणी हुई कि 'वर माँगो'।

मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। श्रवन रंध्र होइ उर जब आई॥
हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए। मानहुँ अबहिं भवन ते आए॥

मुर्दे को भी जिला देनेवाली यह सुंदर वाणी कानों के छेदों से होकर जब हृदय में आई, तब राजा-रानी के शरीर ऐसे सुंदर और हृष्ट-पुष्ट हो गए, मानो अभी घर से आए हैं।

दो॰ - श्रवन सुधा सम बचन सुनि पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दंडवत प्रेम न हृदयँ समात॥ 145॥

कानों में अमृत के समान लगनेवाले वचन सुनते ही उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। तब मनु दंडवत करके बोले, प्रेम हृदय में समाता न था - ॥ 145॥

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। बिधि हरि हर बंदित पद रेनू॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रनतपाल सचराचर नायक॥

हे प्रभो! सुनिए, आप सेवकों के लिए कल्पवृक्ष और कामधेनु हैं। आपके चरण रज की ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी वंदना करते हैं। आप सेवा करने में सुलभ हैं तथा सब सुखों के देनेवाले हैं। आप शरणागत के रक्षक और जड़-चेतन के स्वामी हैं।

जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होई यह बर देहू॥
जोसरूप बस सिव मन माहीं। जेहिं कारन मुनि जतन कराहीं॥

हे अनाथों का कल्याण करनेवाले! यदि हम लोगों पर आपका स्नेह है, तो प्रसन्न होकर यह वर दीजिए कि आपका जो स्वरूप शिव के मन में बसता है और जिस (की प्राप्ति) के लिए मुनि लोग यत्न करते हैं।

जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥

जो काकभुशुंडि के मनरूपी मान सरोवर में विहार करनेवाला हंस है, सगुण और निर्गुण कहकर वेद जिसकी प्रशंसा करते हैं, हे शरणागत के दुःख मिटानेवाले प्रभो! ऐसी कृपा कीजिए कि हम उसी रूप को नेत्र भरकर देखें।

दंपति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे॥
भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥

राजा-रानी के कोमल, विनययुक्त और प्रेमरस में पगे हुए वचन भगवान को बहुत ही प्रिय लगे। भक्तवत्सल, कृपानिधान, संपूर्ण विश्व के निवास स्थान (या समस्त विश्व में व्यापक), सर्वसमर्थ भगवान प्रकट हो गए।

दो० - नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥ 146॥

भगवान के नीले कमल, नीलमणि और नीले (जलयुक्त) मेघ के समान (कोमल, प्रकाशमय और सरस) श्यामवर्ण शरीर की शोभा देखकर करोड़ों कामदेव भी लजा जाते हैं॥ 146॥

सरद मयंक बदन छबि सींवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा॥
अधर अरुन रद सुंदर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा॥

उनका मुख शरद (पूर्णिमा) के चंद्रमा के समान छवि की सीमास्वरूप था। गाल और ठोड़ी बहुत सुंदर थे, गला शंख के समान (त्रिरेखायुक्त, चढ़ाव-उतारवाला) था। लाल होठ, दाँत और नाक अत्यंत सुंदर थे। हँसी चंद्रमा की किरणावली को नीचा दिखानेवाली थी।

नव अंबुज अंबक छबि नीकी। चितवनि ललित भावँतीजी की॥
भृकुटि मनोज चाप छबि हारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी॥

नेत्रों की छवि नए (खिले हुए) कमल के समान बड़ी सुंदर थी। मनोहर चितवन जी को बहुत प्यारी लगती थी। टेढ़ी भौंहें कामदेव के धनुष की शोभा को हरनेवाली थीं। ललाट पटल पर प्रकाशमय तिलक था।

कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा॥
उरबत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषन मनिजाला॥

कानों में मकराकृत (मछली के आकार के) कुंडल और सिर पर मुकुट सुशोभित था। टेढ़े (घुँघराले) काले बाल ऐसे सघन थे, मानो भौंरों के झुंड हों। हृदय परवत्स, सुंदर वनमाला, रत्नजड़ित हार और मणियों के आभूषण सुशोभित थे।

केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषन सुंदर तेऊ॥
मकरि कर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर सर कोदंडा॥

सिंह की-सी गर्दन थी, सुंदर जनेऊ था। भुजाओं में जो गहने थे, वे भी सुंदर थे। हाथी की

सूँड़ के समान (उतार-चढ़ाववाले) सुंदर भुजदंड थे। कमर में तरकस और हाथ में बाण और धनुष (शोभा पा रहे) थे।

दो० - तड़ित बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भँवर छबि छीनि॥ 147॥

(स्वर्ण-वर्ण का प्रकाशमय) पीतांबर बिजली को लजानेवाला था। पेट पर सुंदर तीन रेखाएँ (त्रिवली) थीं। नाभि ऐसी मनोहर थी, मानो यमुना के भँवरों की छवि को छीने लेती हो॥ 147॥

पद राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जेन्ह माहीं॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला॥

जिनमें मुनियों के मनरूपी भौंरे बसते हैं, भगवान के उन चरणकमलों का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। भगवान के बाएँ भाग में सदा अनुकूल रहनेवाली, शोभा की राशि जगत की मूलकारणरूपा आदि शक्ति जानकी सुशोभित हैं।

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥

जिनके अंश से गुणों की खान अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी (त्रिदेवों की शक्तियाँ) उत्पन्न होती हैं तथा जिनकी भौंह के इशारे से ही जगत की रचना हो जाती है, वही (भगवान की स्वरूपा-शक्ति) सीता राम की बाईं ओर स्थित हैं।

छबिसमुद्र हरि रूप बिलोकी। एकटक रहे नयन पट रोकी॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा॥

शोभा के समुद्र हरि के रूप को देखकर मनु-शतरूपा नेत्रों के पट (पलकें) रोके हुए एकटक (स्तब्ध) रह गए। उस अनुपम रूप को वे आदर सहित देख रहे थे और देखते-देखते अघाते ही न थे।

हरष बिबस तन दसा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी॥
सिर परसे प्रभु निज कर कंजा। तुरत उठाए करुनापुंजा॥

आनंद के अधिक वश में हो जाने के कारण उन्हें अपने देह की सुधि भूल गई। वे हाथों

से भगवान के चरण पकड़कर दंड की तरह (सीधे) भूमि पर गिर पड़े। कृपा की राशि प्रभु ने अपने करकमलों से उनके मस्तकों का स्पर्श किया और उन्हें तुरंत ही उठा लिया।

दो॰ - बोले कृपानिधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि।
मागहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि॥ 148॥

फिर कृपानिधान भगवान बोले - मुझे अत्यंत प्रसन्न जानकर और बड़ा भारी दानी मानकर, जो मन को भाए वही वर माँग लो॥ 148॥

सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरजु बोली मृदु बानी॥
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे॥

प्रभु के वचन सुनकर, दोनों हाथ जोड़कर और धीरज धरकर राजा ने कोमल वाणी कही - हे नाथ! आपके चरणकमलों को देखकर अब हमारी सारी मनःकामनाएँ पूरी हो गईं।

एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं॥
तुम्हहि देत अति सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहि निज कृपनाईं॥

फिर भी मन में एक बड़ी लालसा है। उसका पूरा होना सहज भी है और अत्यंत कठिन भी, इसी से उसे कहते नहीं बनता। हे स्वामी! आपके लिए तो उसका पूरा करना बहुत सहज है, पर मुझे अपनी कृपणता (दीनता) के कारण वह अत्यंत कठिन मालूम होता है।

जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई। बहु संपति मागत सकुचाई॥
तासु प्रभाउ जान नहिं सोई। तथा हृदयँ मम संसय होई॥

जैसे कोई दरिद्र कल्पवृक्ष को पाकर भी अधिक द्रव्य माँगने में संकोच करता है, क्योंकि वह उसके प्रभाव को नहीं जानता, वैसे ही मेरे हृदय में संशय हो रहा है।

सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी॥
सकुच बिहाइ मागु नृप मोही। मोरें नहिं अदेय कछु तोही॥

हे स्वामी! आप अंतर्यामी हैं, इसलिए उसे जानते ही हैं। मेरा वह मनोरथ पूरा कीजिए। (भगवान ने कहा -) हे राजन! संकोच छोड़कर मुझसे माँगो। तुम्हें न दे सकूँ ऐसा मेरे पास कुछ भी नहीं है।

दो॰ - दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥ 149॥

(राजा ने कहा -) हे दानियों के शिरोमणि! हे कृपानिधान! हे नाथ! मैं अपने मन का सच्चा भाव कहता हूँ कि मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ। प्रभु से भला क्या छिपाना!॥ 149॥

देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥

राजा की प्रीति देखकर और उनके अमूल्य वचन सुनकर करुणानिधान भगवान बोले - ऐसा ही हो। हे राजन! मैं अपने समान (दूसरा) कहाँ जाकर खोजूँ! अतः स्वयं ही आकर तुम्हारा पुत्र बनूँगा।

सतरूपहि बिलोकि कर जोरें। देबि मागु बरु जो रुचि तोरें॥
जो बरु नाथ चतुर नृप मागा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा॥

शतरूपा को हाथ जोड़े देखकर भगवान ने कहा - हे देवी! तुम्हारी जो इच्छा हो, सो वर माँग लो। (शतरूपा ने कहा -) हे नाथ! चतुर राजा ने जो वर माँगा, हे कृपालु! वह मुझे बहुत ही प्रिय लगा।

प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगत हित तुम्हहि सोहाई॥
तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतरजामी॥

परंतु हे प्रभु! बहुत ढिठाई हो रही है, यद्यपि हे भक्तों का हित करनेवाले! वह ढिठाई भी आपको अच्छी ही लगती है। आप ब्रह्मा आदि के भी पिता (उत्पन्न करनेवाले), जगत के स्वामी और सबके हृदय के भीतर की जाननेवाले ब्रह्म हैं।

अस समुझत मन संसय होई। कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई॥
जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥

ऐसा समझने पर मन में संदेह होता है, फिर भी प्रभु ने जो कहा वही प्रमाण (सत्य) है। (मैं तो यह माँगती हूँ कि) हे नाथ! आपके जो निज जन हैं, वे जो (अलौकिक, अखंड) सुख पाते हैं और जिस परम गति को प्राप्त होते हैं।

दो॰ - सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु॥ 150॥

हे प्रभो! वही सुख, वही गति, वही भक्ति, वही अपने चरणों में प्रेम, वही ज्ञान और वही रहन-सहन कृपा करके हमें दीजिए॥ 150॥

सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बर रचना। कृपासिंधु बोले मृदु बचना॥
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं। मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं॥

(रानी की) कोमल, गूढ़ और मनोहर श्रेष्ठ वाक्य रचना सुनकर कृपा के समुद्र भगवान कोमल वचन बोले - तुम्हारे मन में जो कुछ इच्छा है, वह सब मैंने तुमको दिया, इसमें कोई संदेह न समझना।

मातु बिबेक अलौकिक तोरें। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें॥
बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी। अवर एक बिनती प्रभु मोरी॥

हे माता! मेरी कृपा से तुम्हारा अलौकिक ज्ञान कभी नष्ट न होगा। तब मनु ने भगवान के चरणों की वंदना करके फिर कहा - हे प्रभु! मेरी एक विनती और है -

सुत बिषइक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ॥
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना॥

आपके चरणों में मेरी वैसी ही प्रीति हो जैसी पुत्र के लिए पिता की होती है, चाहे मुझे कोई बड़ा भारी मूर्ख ही क्यों न कहे। जैसे मणि के बिना साँप और जल के बिना मछली (नहीं रह सकती), वैसे ही मेरा जीवन आपके अधीन रहे (आपके बिना न रह सके)।

अस बरु मागि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ॥
अब तुम्ह मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी॥

ऐसा वर माँगकर राजा भगवान के चरण पकड़े रह गए। तब दया के निधान भगवान ने कहा - ऐसा ही हो। अब तुम मेरी आज्ञा मानकर देवराज इंद्र की राजधानी (अमरावती) में जाकर वास करो।

दो॰ - तहँ करि भोग बिसाल तात गएँ कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत॥ 151॥

हे तात! वहाँ (स्वर्ग के) बहुत-से भोग भोगकर, कुछ काल बीत जाने पर, तुम अवध के राजा होगे। तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा॥ 151॥

इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥

इच्छानिर्मित मनुष्य रूप सजकर मैं तुम्हारे घर प्रकट होऊँगा। हे तात! मैं अपने अंशों सहित देह धारण करके भक्तों को सुख देनेवाले चरित्र करूँगा।

जे सुनि सादर नर बड़भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी॥
आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥

जिन (चरित्रों) को बड़े भाग्यशाली मनुष्य आदरसहित सुनकर, ममता और मद त्यागकर, भवसागर से तर जाएँगे। आदिशक्ति यह मेरी (स्वरूपभूता) माया भी, जिसने जगत को उत्पन्न किया है, अवतार लेगी।

पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य हमारा॥
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना। अंतरधान भए भगवाना॥

इस प्रकार मैं तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूँगा। मेरा प्रण सत्य है, सत्य है, सत्य है। कृपानिधान भगवान बार-बार ऐसा कहकर अंतर्धान हो गए।

दंपति उर धरि भगत कृपाला। तेहिं आश्रम निवसे कछु काला॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा। जाइ कीन्ह अमरावति बासा॥

वे स्त्री-पुरुष (राजा-रानी) भक्तों पर कृपा करनेवाले भगवान को हृदय में धारण करके कुछ काल तक उस आश्रम में रहे। फिर उन्होंने समय पाकर, सहज ही (बिना किसी कष्ट के) शरीर छोड़कर, अमरावती (इंद्र की पुरी) में जाकर वास किया।

दो० - यह इतिहास पुनीत अति उमहि कही बृषकेतु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि राम जनम कर हेतु॥ 152॥

(याज्ञवल्क्य कहते हैं -) हे भरद्वाज! इस अत्यंत पवित्र इतिहास को शिव ने पार्वती से कहा था। अब राम के अवतार लेने का दूसरा कारण सुनो॥ 152॥

सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति संभु बखानी॥
बिस्व बिदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू॥

हे मुनि! वह पवित्र और प्राचीन कथा सुनो, जो शिव ने पार्वती से कही थी। संसार में प्रसिद्ध एक कैकय देश है। वहाँ सत्यकेतु नाम का राजा रहता (राज्य करता) था।

धरम धुरंधर नीति निधाना। तेज प्रताप सील बलवाना॥
तेहि कें भए जुगल सुत बीरा। सब गुन धाम महा रनधीरा॥

वह धर्म की धुरी को धारण करनेवाला, नीति की खान, तेजस्वी, प्रतापी, सुशील और बलवान था, उसके दो वीर पुत्र हुए, जो सब गुणों के भंडार और बड़े ही रणधीर थे।

राज धनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुजबल अतुल अचल संग्रामा॥

राज्य का उत्तराधिकारी जो बड़ा लड़का था, उसका नाम प्रतापभानु था। दूसरे पुत्र का नाम अरिमर्दन था, जिसकी भुजाओं में अपार बल था और जो युद्ध में (पर्वत के समान) अटल रहता था।

भाइहि भाइहि परम समीती। सकल दोष छल बरजित प्रीती॥
जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा। हरि हित आपु गवन बन कीन्हा॥

भाई-भाई में बड़ा मेल और सब प्रकार के दोषों और छलों से रहित (सच्ची) प्रीति थी। राजा ने जेठ पुत्र को राज्य दे दिया और आप भगवान (के भजन) के लिए वन को चल दिया।

दो० - जब प्रतापरबि भयउ नृप फिरी दोहाई देस।
प्रजा पाल अति बेदबिधि कतहुँ नहीं अघ लेस॥ 153॥

जब प्रतापभानु राजा हुआ, देश में उसकी दुहाई फिर गई। वह वेद में बताई हुई विधि के अनुसार उत्तम रीति से प्रजा का पालन करने लगा। उसके राज्य में पाप का कहीं लेश भी नहीं रह गया॥ 153॥

नृप हितकारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि सुक्र समाना॥
सचिव सयान बंधु बलबीरा। आपु प्रतापपुंज रनधीरा॥

राजा का हित करनेवाला और शुक्राचार्य के समान बुद्धिमान धर्मरुचि नामक उसका मंत्री था। इस प्रकार बुद्धिमान मंत्री और बलवान तथा वीर भाई के साथ ही स्वयं राजा भी बड़ा प्रतापी और रणधीर था।

सेन संग चतुरंग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा॥
सेन बिलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गहगहे निसाना॥

साथ में अपार चतुरंगिणी सेना थी, जिसमें असंख्य योद्धा थे, जो सब के सब रण में जूझ मरनेवाले थे। अपनी सेना को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और घमाघम नगाड़े बजने लगे।

बिजय हेतु कटकई बनाई। सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई॥
जहँ तहँ परीं अनेक लराईं। जीते सकल भूप बरिआईं॥

दिग्विजय के लिए सेना सजाकर वह राजा शुभ दिन (मुहूर्त) साधकर और डंका बजाकर चला। जहाँ-तहाँ बहुत-सी लड़ाइयाँ हुईं। उसने सब राजाओं को बलपूर्वक जीत लिया।

सप्त दीप भुजबल बस कीन्हे। लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हे॥
सकल अवनि मंडल तेहि काला। एक प्रतापभानु महिपाला॥

अपनी भुजाओं के बल से उसने सातों द्वीपों (भूमिखंडों) को वश में कर लिया और राजाओं से दंड (कर) ले-लेकर उन्हें छोड़ दिया। संपूर्ण पृथ्वी मंडल का उस समय प्रतापभानु ही एकमात्र (चक्रवर्ती) राजा था।

दो॰ - स्वबस बिस्व करि बाहुबल निज पुर कीन्ह प्रबेसु।
अरथ धरम कामादि सुख सेवइ समयँ नरेसु॥ 154॥

संसार भर को अपनी भुजाओं के बल से वश में करके राजा ने अपने नगर में प्रवेश किया। राजा अर्थ, धर्म और काम आदि के सुखों का समयानुसार सेवन करता था॥ 154॥

भूप प्रतापभानु बल पाई। कामधेनु भै भूमि सुहाई॥
सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुंदर नर नारी॥

राजा प्रतापभानु का बल पाकर भूमि सुंदर कामधेनु (मनचाही वस्तु देनेवाली) हो गई। (उनके राज्य में) प्रजा सब (प्रकार के) दुःखों से रहित और सुखी थी और सभी स्त्री-पुरुष

सुंदर और धर्मात्मा थे।

सचिव धरमरुचि हरि पद प्रीती। नृप हित हेतु सिखव नित नीती॥
गुर सुर संत पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सब कै सेवा॥

धर्मरुचि मंत्री का हरि के चरणों में प्रेम था। वह राजा के हित के लिए सदा उसको नीति सिखाया करता था। राजा गुरु, देवता, संत, पितर और ब्राह्मण - इन सबकी सदा सेवा करता रहता था।

भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करइ सादर सुख माने॥
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनइ सास्त्र बर बेद पुराना॥

वेदों में राजाओं के जो धर्म बताए गए हैं, राजा सदा आदरपूर्वक और सुख मानकर उन सबका पालन करता था। प्रतिदिन अनेक प्रकार के दान देता और उत्तम शास्त्र, वेद और पुराण सुनता था।

नाना बापीं कूप तड़ागा। सुमन बाटिका सुंदर बागा॥
बिप्रभवन सुरभवन सुहाए। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए॥

उसने बहुत-सी बावलियाँ, कुएँ, तालाब, फुलवाड़ियाँ सुंदर बगीचे, ब्राह्मणों के लिए घर और देवताओं के सुंदर विचित्र मंदिर सब तीर्थों में बनवाए।

दो० - जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग॥ 155॥

वेद और पुराणों में जितने प्रकार के यज्ञ कहे गए हैं, राजा ने एक-एक करके उन सब यज्ञों को प्रेम सहित हजार-हजार बार किया॥ 155॥

हृदयँ न कछु फल अनुसंधाना। भूप बिबेकी परम सुजाना॥
करइ जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी॥

(राजा के) हृदय में किसी फल की टोह (कामना) न थी। राजा बड़ा ही बुद्धिमान और ज्ञानी था। वह ज्ञानी राजा कर्म, मन और वाणी से जो कुछ भी धर्म करता था, सब भगवान वासुदेव को अर्पित करते रहता था।

चढ़ि बर बाजि बार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा॥
बिंध्याचल गभीर बन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ॥

एक बार वह राजा एक अच्छे घोड़े पर सवार होकर, शिकार का सब सामान सजाकर विंध्याचल के घने जंगल में गया और वहाँ उसने बहुत-से उत्तम-उत्तम हिरन मारे।

फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू॥
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं। मनहुँ क्रोध बस उगिलत नाहीं॥

राजा ने वन में फिरते हुए एक सूअर को देखा। (दाँतों के कारण वह ऐसा दिख पड़ता था) मानो चंद्रमा को ग्रसकर (मुँह में पकड़कर) राहु वन में आ छिपा हो। चंद्रमा बड़ा होने से उसके मुँह में समाता नहीं है और मानो क्रोधवश वह भी उसे उगलता नहीं है।

कोल कराल दसन छबि गाई। तनु बिसाल पीवर अधिकाई॥
घुरुघुरात हय आरौ पाएँ। चकित बिलोकत कान उठाएँ॥

यह तो सूअर के भयानक दाँतों की शोभा कही गई। (इधर) उसका शरीर भी बहुत विशाल और मोटा था। घोड़े की आहट पाकर वह घुरघुराता हुआ कान उठाए चौकन्ना होकर देख रहा था।

दो० - नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराहु।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु॥ 156॥

नील पर्वत के शिखर के समान विशाल (शरीरवाले) उस सूअर को देखकर राजा घोड़े को चाबुक लगाकर तेजी से चला और उसने सूअर को ललकारा कि अब तेरा बचाव नहीं हो सकता॥ 156॥

आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ बराह मरुत गति भाजी॥
तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना॥

अधिक शब्द करते हुए घोड़े को (अपनी तरफ) आता देखकर सूअर पवन वेग से भाग चला। राजा ने तुरंत ही बाण को धनुष पर चढ़ाया। सूअर बाण को देखते ही धरती में दुबक गया।

तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा॥

प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिस बस भूप चलेउ सँग लागा॥

राजा तक-तककर तीर चलाता है, परंतु सूअर छल करके शरीर को बचाता जाता है। वह पशु कभी प्रकट होता और कभी छिपता हुआ भाग जाता था और राजा भी क्रोध के वश उसके साथ (पीछे) लगा चला जाता था।

गयउ दूरि घन गहन बराहू। जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू॥
अति अकेल बन बिपुल कलेसू। तदपि न मृग मग तजइ नरेसू॥

सूअर बहुत दूर ऐसे घने जंगल में चला गया, जहाँ हाथी-घोड़े का निबाह (गमन) नहीं था। राजा बिलकुल अकेला था और वन में क्लेश भी बहुत था, फिर भी राजा ने उस पशु का पीछा नहीं छोड़ा।

कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा। भागि पैठ गिरिगुहाँ गभीरा॥
अगम देखि नृप अति पछिताई। फिरेउ महाबन परेउ भुलाई॥

राजा को बड़ा धैर्यवान देखकर, सूअर भागकर पहाड़ की एक गहरी गुफा में जा घुसा। उसमें जाना कठिन देखकर राजा को बहुत पछताकर लौटना पड़ा, पर उस घोर वन में वह रास्ता भूल गया।

दो॰ - खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत।
खोजत ब्याकुल सरित सर जल बिनु भयउ अचेत॥ 157॥

बहुत परिश्रम करने से थका हुआ और घोड़े समेत भूख-प्यास से व्याकुल राजा नदी-तालाब खोजता-खोजता पानी बिना बेहाल हो गया॥ 157॥

फिरत बिपिन आश्रम एक देखा। तहँ बस नृपति कपट मुनिबेषा॥
जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई। समर सेन तजि गयउ पराई॥

वन में फिरते-फिरते उसने एक आश्रम देखा, वहाँ कपट से मुनि का वेष बनाए एक राजा रहता था, जिसका देश राजा प्रतापभानु ने छीन लिया था और जो सेना को छोड़कर युद्ध से भाग गया था।

समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी॥
गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी॥

प्रतापभानु का समय (अच्छे दिन) जानकर और अपना कुसमय (बुरे दिन) अनुमान कर उसके मन में बड़ी ग्लानि हुई। इससे वह न तो घर गया और न अभिमानी होने के कारण राजा प्रतापभानु से ही मिला (मेल किया)।

रिस उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसइ तापस कें साजा॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रतापरबि तेहिं तब चीन्हा॥

दरिद्र की भाँति मन ही में क्रोध को मारकर वह राजा तपस्वी के वेष में वन में रहता था। राजा (प्रतापभानु) उसी के पास गया। उसने तुरंत पहचान लिया कि यह प्रतापभानु है।

राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। देखि सुबेष महामुनि जाना॥
उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा॥

राजा प्यासा होने के कारण (व्याकुलता में) उसे पहचान न सका। सुंदर वेष देखकर राजा ने उसे महामुनि समझा और घोड़े से उतरकर उसे प्रणाम किया, परंतु बड़ा चतुर होने के कारण राजा ने उसे अपना नाम नहीं बताया।

दो॰ - भूपति तृषित बिलोकि तेहिं सरबरू दीन्ह देखाइ।
मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाइ॥ 158॥

राजा को प्यासा देखकर उसने सरोवर दिखला दिया। हर्षित होकर राजा ने घोड़े सहित उसमें स्नान और जलपान किया॥ 158॥

गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आश्रम तापस लै गयऊ॥
आसन दीन्ह अस्त रबि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी॥

सारी थकावट मिट गई, राजा सुखी हो गया। तब तपस्वी उसे अपने आश्रम में ले गया और सूर्यास्त का समय जानकर उसने (राजा को बैठने के लिए) आसन दिया। फिर वह तपस्वी कोमल वाणी से बोला -

को तुम्ह कस बन फिरहु अकेलें। सुंदर जुबा जीव परहेलें॥
चक्रबर्ति के लच्छन तोरें। देखत दया लागि अति मोरें॥

तुम कौन हो? सुंदर युवक होकर, जीवन की परवाह न करके वन में अकेले क्यों फिर रहे

हो? तुम्हारे चक्रवर्ती राजा के से लक्षण देखकर मुझे बड़ी दया आती है।

नाम प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा॥
फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। बड़ें भाग देखेउँ पद आई॥

(राजा ने कहा -) हे मुनीश्वर! सुनिए, प्रतापभानु नाम का एक राजा है, मैं उसका मंत्री हूँ। शिकार के लिए फिरते हुए राह भूल गया हूँ। बड़े भाग्य से यहाँ आकर मैंने आपके चरणों के दर्शन पाए हैं।

हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनिहारा॥
कह मुनि तात भयउ अँधिआरा। जोजन सत्तरि नगरु तुम्हारा॥

हमें आपका दर्शन दुर्लभ था, इससे जान पड़ता है कुछ भला होनेवाला है। मुनि ने कहा - हे तात! अँधेरा हो गया। तुम्हारा नगर यहाँ से सत्तर योजन पर है।

दो० - निसा घोर गंभीर बन पंथ न सुनहु सुजान।
बसहु आजु अस जानि तुम्ह जाएहु होत बिहान॥ 15 (क)॥

हे सुजान! सुनो, घोर अँधेरी रात है, घना जंगल है, रास्ता नहीं है, ऐसा समझकर तुम आज यहीं ठहर जाओ, सबेरा होते ही चले जाना॥ 159(क)॥

तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ।
आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ॥ 159(ख)॥

तुलसीदास कहते हैं - जैसी भवितव्यता (होनहार) होती है, वैसी ही सहायता मिल जाती है। या तो वह आप ही उसके पास आती है या उसको वहाँ ले जाती है॥ 159(ख)॥

भलेहिं नाथ आयसु धरि सीसा। बाँधि तुरग तरु बैठ महीसा॥
नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही। चरन बंदि निज भाग्य सराही॥

हे नाथ! बहुत अच्छा, ऐसा कहकर और उसकी आज्ञा सिर चढ़ाकर, घोड़े को वृक्ष से बाँधकर राजा बैठ गया। राजा ने उसकी बहुत प्रकार से प्रशंसा की और उसके चरणों की वंदना करके अपने भाग्य की सराहना की।

पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करउँ ढिठाई॥

मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी॥

फिर सुंदर कोमल वाणी से कहा - हे प्रभो! आपको पिता जानकर मैं ढिठाई करता हूँ। हे मुनीश्वर! मुझे अपना पुत्र और सेवक जानकर अपना नाम (धाम) विस्तार से बतलाइए।

तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा॥

राजा ने उसको नहीं पहचाना था, पर वह राजा को पहचान गया था। राजा तो शुद्ध-हृदय था और वह कपट करने में चतुर था। एक तो वैरी, फिर जाति का क्षत्रिय, फिर राजा। वह छल-बल से अपना काम बनाना चाहता था।

समुझि राजसुख दुखित अराती। अवाँ अनल इव सुलगइ छाती॥
ससरल बचन नृप के सुनि काना। बयर सँभारि हृदयँ हरषाना॥

वह शत्रु अपने राज्य सुख को समझ करके (स्मरण करके) दुःखी था। उसकी छाती (कुम्हार के) आँवे की आग की तरह (भीतर-ही-भीतर) सुलग रही थी। राजा के सरल वचन कान से सुनकर, अपने वैर को यादकर वह हृदय में हर्षित हुआ।

दो० - कपट बोरि बानी मृदल बोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत॥ 160॥

वह कपट में डुबोकर बड़ी युक्ति के साथ कोमल वाणी बोला - अब हमारा नाम भिखारी है, क्योंकि हम निर्धन और अनिकेत (घर-द्वारहीन) हैं॥ 160॥

कह नृप जे बिग्यान निधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना॥
सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ। सब बिधि कुसल कुबेष बनाएँ॥

राजा ने कहा - जो आपके सदृश विज्ञान के निधान और सर्वथा अभिमानरहित होते हैं, वे अपने स्वरूप को सदा छिपाए रहते हैं, क्योंकि कुवेष बनाकर रहने में ही सब तरह का कल्याण है (प्रकट संत वेश में मान होने की संभावना है और मान से पतन की)।

तेहि तें कहहिं संत श्रुति टेरें। परम अकिंचन प्रिय हरि केरें॥
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरंचि सिवहि संदेहा॥

इसी से तो संत और वेद पुकारकर कहते हैं कि परम अकिंचन (सर्वथा अहंकार, ममता और मानरहित) ही भगवान को प्रिय होते हैं। आप सरीखे निर्धन, भिखारी और गृहहीनों को देखकर ब्रह्मा और शिव को भी संदेह हो जाता है (कि वे वास्तविक संत हैं या भिखारी)।

जोसि सोसि तव चरन नमामी। मो पर कृपा करिअ अब स्वामी॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु बिषय बिस्वास बिसेषी॥

आप जो हों सो हों (अर्थात जो कोई भी हों), मैं आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ। हे स्वामी! अब मुझ पर कृपा कीजिए। अपने ऊपर राजा की स्वाभाविक प्रीति और अपने विषय में उसका अधिक विश्वास देखकर -

सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई॥
सुनु सतिभाउ कहउँ महिपाला। इहाँ बसत बीते बहु काला॥

सब प्रकार से राजा को अपने वश में करके, अधिक स्नेह दिखाता हुआ वह (कपट-तपस्वी) बोला - हे राजन! सुनो, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, मुझे यहाँ रहते बहुत समय बीत गया।

दो० - अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावउँ काहु।
लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु॥ 161(क)॥

अब तक न तो कोई मुझसे मिला और न मैं अपने को किसी पर प्रकट करता हूँ, क्योंकि लोक में प्रतिष्ठा अग्नि के समान है, जो तपरूपी वन को भस्म कर डालती है॥ 161(क)॥

सो० - तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुंदर केकिहि पेखु बचन सुधा सम असन अहि॥ 161(ख)॥

तुलसीदास कहते हैं - सुंदर वेष देखकर मूढ़ नहीं (मूढ़ तो मूढ़ ही हैं), चतुर मनुष्य भी धोखा खा जाते हैं। सुंदर मोर को देखो, उसका वचन तो अमृत के समान है और आहार साँप का है॥ 161(ख)॥

तातें गुपुत रहउँ जग माहीं। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं॥
प्रभु जानत सब बिनहिं जनाए। कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ॥

(कपट-तपस्वी ने कहा -) इसी से मैं जगत में छिपकर रहता हूँ। हरि को छोड़कर किसी

से कुछ भी प्रयोजन नहीं रखता। प्रभु तो बिना जनाए ही सब जानते हैं। फिर कहो संसार को रिझाने से क्या सिद्धि मिलेगी।

तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरें। प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरें॥
अब जौं तात दुरावउँ तोही। दारुन दोष घटइ अति मोही॥

तुम पवित्र और सुंदर बुद्धिवाले हो, इससे मुझे बहुत ही प्यारे हो और तुम्हारी भी मुझ पर प्रीति और विश्वास है। हे तात! अब यदि मैं तुमसे कुछ छिपाता हूँ, तो मुझे बहुत ही भयानक दोष लगेगा।

जिमि जिमि तापसु कथइ उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा॥
देखा स्वबस कर्म मन बानी। तब बोला तापस बगध्यानी॥

ज्यों-ज्यों वह तपस्वी उदासीनता की बातें कहता था, त्यों ही त्यों राजा को विश्वास उत्पन्न होता जाता था। जब उस बगुले की तरह ध्यान लगानेवाले (कपटी) मुनि ने राजा को कर्म, मन और वचन से अपने वश में जाना, तब वह बोला -

नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई॥
कहहु नाम कर अरथ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी॥

हे भाई! हमारा नाम एकतनु है। यह सुनकर राजा ने फिर सिर नवाकर कहा - मुझे अपना अत्यंत (अनुरागी) सेवक जानकर अपने नाम का अर्थ समझाकर कहिए।

दो० - आदिसृष्टि उपजी जबहिं तब उतपति भै मोरि।
नाम एकतनु हेतु तेहि देह न धरी बहोरि॥ 162॥

(कपटी मुनि ने कहा -) जब सबसे पहले सृष्टि उत्पन्न हुई थी, तभी मेरी उत्पत्ति हुई थी। तबसे मैंने फिर दूसरी देह नहीं धारण की, इसी से मेरा नाम एकतनु है॥ 162॥

जनि आचरजु करहु मन माहीं। सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं॥
तप बल तें जग सृजइ बिधाता। तप बल बिष्नु भए परित्राता॥

हे पुत्र! मन में आश्चर्य मत करो, तप से कुछ भी दुर्लभ नहीं है, तप के बल से ब्रह्मा जगत को रचते हैं। तप के ही बल से विष्णु संसार का पालन करनेवाले बने हैं।

तपबल संभु करहिं संघारा। तप तें अगम न कछु संसारा॥
भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहै सो लागा॥

तप ही के बल से रुद्र संहार करते हैं। संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं जो तप से न मिल सके। यह सुनकर राजा को बड़ा अनुराग हुआ। तब वह (तपस्वी) पुरानी कथाएँ कहने लगा।

करम धरम इतिहास अनेका। करइ निरूपन बिरति बिबेका॥
उदभव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आचरज बखानी॥

कर्म, धर्म और अनेकों प्रकार के इतिहास कहकर वह वैराग्य और ज्ञान का निरूपण करने लगा। सृष्टि की उत्पत्ति, पालन (स्थिति) और संहार (प्रलय) की अपार आश्चर्यभरी कथाएँ उसने विस्तार से कहीं।

सुनि महीप तापस बस भयऊ। आपन नाम कहन तब लयउ॥
कह तापस नृप जानउँ तोही। कीन्हेहु कपट लाग भल मोही॥

राजा सुनकर उस तपस्वी के वश में हो गया और तब वह उसे अपना नाम बताने लगा। तपस्वी ने कहा - राजन ! मैं तुमको जानता हूँ। तुमने कपट किया, वह मुझे अच्छा लगा।

सो॰ - सुनु महीस असि नीति जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि तव॥ 163॥

हे राजन! सुनो, ऐसी नीति है कि राजा लोग जहाँ-तहाँ अपना नाम नहीं कहते। तुम्हारी वही चतुराई समझकर तुम पर मेरा बड़ा प्रेम हो गया है॥ 163॥

नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा। सत्यकेतु तव पिता नरेसा॥
गुर प्रसाद सब जानिअ राजा। कहिअ न आपन जानि अकाजा॥

तुम्हारा नाम प्रतापभानु है, सत्यकेतु तुम्हारे पिता थे। हे राजन! गुरु की कृपा से मैं सब जानता हूँ, पर अपनी हानि समझकर कहता नहीं।

देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई॥
उपजि परी ममता मन मोरें। कहउँ कथा निज पूछे तोरें॥

हे तात! तुम्हारा स्वाभाविक सीधापन (सरलता), प्रेम, विश्वास और नीति में निपुणता देखकर मेरे मन में तुम्हारे ऊपर बड़ी ममता उत्पन्न हो गई है, इसीलिए मैं तुम्हारे पूछने पर अपनी कथा कहता हूँ।

अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं। मागु जो भूप भाव मन माहीं॥
सुनि सुबचन भूपति हरषाना। गहि पद बिनय कीन्हि बिधि नाना॥

अब मैं प्रसन्न हूँ, इसमें संदेह न करना। हे राजन! जो मन को भावे वही माँग लो। सुंदर (प्रिय) वचन सुनकर राजा हर्षित हो गया और (मुनि के) पैर पकड़कर उसने बहुत प्रकार से विनती की।

कृपासिंधु मुनि दरसन तोरें। चारि पदारथ करतल मोरें॥
प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी। मागि अगम बर होउँ असोकी॥

हे दयासागर मुनि! आपके दर्शन से ही चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) मेरी मुट्ठी में आ गए। तो भी स्वामी को प्रसन्न देखकर मैं यह दुर्लभ वर माँगकर (क्यों न) शोकरहित हो जाऊँ।

दो० - जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ।
एकछत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ॥ 164॥

मेरा शरीर वृद्धावस्था, मृत्यु और दुःख से रहित हो जाए, मुझे युद्ध में कोई जीत न सके और पृथ्वी पर मेरा सौ कल्प तक एकछत्र अकंटक राज्य हो॥ 164॥

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारन एक कठिन सुनु सोऊ॥
कालउ तुअ पद नाइहि सीसा। एक बिप्रकुल छाड़ि महीसा॥

तपस्वी ने कहा - हे राजन! ऐसा ही हो, पर एक बात कठिन है, उसे भी सुन लो। हे पृथ्वी के स्वामी! केवल ब्राह्मण कुल को छोड़ काल भी तुम्हारे चरणों पर सिर नवाएगा।

तपबल बिप्र सदा बरिआरा। तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा॥
जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा। तौ तुअ बस बिधि बिष्नु महेसा॥

तप के बल से ब्राह्मण सदा बलवान रहते हैं। उनके क्रोध से रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। हे नरपति! यदि तुम ब्राह्मणों को वश में कर लो, तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी तुम्हारे

अधीन हो जाएँगे।

चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई। सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई॥
बिप्र श्राप बिनु सुनु महिपाला। तोर नास नहिं कवनेहुँ काला॥

ब्राह्मण कुल से जोर-जबरदस्ती नहीं चल सकती, मैं दोनों भुजा उठाकर सत्य कहता हूँ। हे राजन! सुनो, ब्राह्मणों के शाप बिना तुम्हारा नाश किसी काल में नहीं होगा।

हरषेउ राउ बचन सुनि तासू। नाथ न होइ मोर अब नासू॥
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना। मो कहुँ सर्बकाल कल्याना॥

राजा उसके वचन सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा - हे स्वामी! मेरा नाश अब नहीं होगा। हे कृपानिधान प्रभु! आपकी कृपा से मेरा सब समय कल्याण होगा।

दो० - एवमस्तु कहि कपट मुनि बोला कुटिल बहोरि।
मिलब हमार भुलाब निज कहहु त हमहि न खोरि॥ 165॥

'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर वह कुटिल कपटी मुनि फिर बोला - (किंतु) तुम मेरे मिलने तथा अपने राह भूल जाने की बात किसी से (कहना नहीं, यदि) कह दोगे, तो हमारा दोष नहीं॥ 165॥

तातें मैं तोहि बरजउँ राजा। कहें कथा तव परम अकाजा॥
छठें श्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी॥

हे राजन! मैं तुमको इसलिए मना करता हूँ कि इस प्रसंग को कहने से तुम्हारी बड़ी हानि होगी। छठे कान में यह बात पड़ते ही तुम्हारा नाश हो जाएगा, मेरा यह वचन सत्य जानना।

यह प्रगटें अथवा द्विजश्रापा। नास तोर सुनु भानुप्रतापा॥
आन उपायँ निधन तव नाहीं। जौं हरि हर कोपहिं मन माहीं॥

हे प्रतापभानु! सुनो, इस बात के प्रकट करने से अथवा ब्राह्मणों के शाप से तुम्हारा नाश होगा और किसी उपाय से, चाहे ब्रह्मा और शंकर भी मन में क्रोध करें, तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी।

सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा। द्विज गुर कोप कहहु को राखा॥
राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता॥

राजा ने मुनि के चरण पकड़कर कहा - हे स्वामी! सत्य ही है। ब्राह्मण और गुरु के क्रोध से, कहिए, कौन रक्षा कर सकता है? यदि ब्रह्मा भी क्रोध करें, तो गुरु बचा लेते हैं, पर गुरु से विरोध करने पर जगत में कोई भी बचानेवाला नहीं है।

जौं न चलब हम कहे तुम्हारें। होउ नास नहिं सोच हमारें॥
एकहिं डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा॥

यदि मैं आपके कथन के अनुसार नहीं चलूँगा, तो (भले ही) मेरा नाश हो जाए। मुझे इसकी चिंता नहीं है। मेरा मन तो हे प्रभो! (केवल) एक ही डर से डर रहा है कि ब्राह्मणों का शाप बड़ा भयानक होता है।

दो॰ - होहिं बिप्र बस कवन बिधि कहहु कृपा करि सोउ।
तुम्ह तजि दीनदयाल निज हितू न देखउँ कोउ॥ 166॥

वे ब्राह्मण किस प्रकार से वश में हो सकते हैं, कृपा करके वह भी बताइए। हे दीनदयालु! आपको छोड़कर और किसी को मैं अपना हितू नहीं देखता॥ 166॥

सुनु नृप बिबिध जतन जग माहीं। कष्टसाध्य पुनि होहिं कि नाहीं॥
अहइ एक अति सुगम उपाई। तहाँ परंतु एक कठिनाई॥

(तपस्वी ने कहा -) हे राजन! सुनो, संसार में उपाय तो बहुत हैं; पर वे कष्ट-साध्य हैं (बड़ी कठिनता से बनने में आते हैं) और इस पर भी सिद्ध हों या न हों (उनकी सफलता निश्चित नहीं है) हाँ, एक उपाय बहुत सहज है; परंतु उसमें भी एक कठिनता है।

मम आधीन जुगुति नृप सोई। मोर जाब तव नगर न होई॥
आजु लगें अरु जब तें भयऊँ। काहू के गृह ग्राम न गयऊँ॥2॥

हे राजन! वह युक्ति तो मेरे हाथ है, पर मेरा जाना तुम्हारे नगर में हो नहीं सकता। जब से पैदा हुआ हूँ, तब से आज तक मैं किसी के घर अथवा गाँव नहीं गया।

जौं न जाउँ तव होइ अकाजू। बना आइ असमंजस आजू॥
सुनि महीस बोलेउ मृदु बानी। नाथ निगम असि नीति बखानी॥

परंतु यदि नहीं जाता हूँ, तो तुम्हारा काम बिगड़ता है। आज यह बड़ा असमंजस आ पड़ा है। यह सुनकर राजा कोमल वाणी से बोला, हे नाथ! वेदों में ऐसी नीति कही है कि -

बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं॥
जलधि अगाध मौलि बह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू॥

बड़े लोग छोटों पर स्नेह करते ही हैं। पर्वत अपने सिरों पर सदा तृण (घास) को धारण किए रहते हैं। अगाध समुद्र अपने मस्तक पर फेन को धारण करता है और धरती अपने सिर पर सदा धूलि को धारण किए रहती है।

दो॰ - अस कहि गहे नरेस पद स्वामी होहु कृपाल।
मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु सज्जन दीनदयाल॥ 167॥

ऐसा कहकर राजा ने मुनि के चरण पकड़ लिए। (और कहा -) हे स्वामी! कृपा कीजिए। आप संत हैं। दीनदयालु हैं। (अतः) हे प्रभो! मेरे लिए इतना कष्ट (अवश्य) सहिए॥ 167॥

जानि नृपहि आपन आधीना। बोला तापस कपट प्रबीना॥
सत्य कहउँ भूपति सुनु तोही। जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही॥

राजा को अपने अधीन जानकर कपट में प्रवीण तपस्वी बोला - हे राजन! सुनो, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, जगत में मुझे कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

अवसि काज मैं करिहउँ तोरा। मन तन बचन भगत तैं मोरा॥
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ। फलइ तबहिं जब करिअ दुराऊ॥

मैं तुम्हारा काम अवश्य करूँगा, (क्योंकि) तुम, मन, वाणी और शरीर (तीनों) से मेरे भक्त हो। पर योग, युक्ति, तप और मंत्रों का प्रभाव तभी फलीभूत होता है जब वे छिपाकर किए जाते हैं।

जौं नरेस मैं करौं रसोई। तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई॥

हे नरपति! मैं यदि रसोई बनाऊँ और तुम उसे परोसो और मुझे कोई जानने न पाए, तो उस अन्न को जो-जो खाएगा, सो-सो तुम्हारा आज्ञाकारी बन जाएगा।

पुनि तिन्ह के गृह जेवँइ जोऊ। तव बस होइ भूप सुनु सोऊ॥
जाइ उपाय रचहु नृप एहू। संबत भरि संकलप करेहू॥

यही नहीं, उन (भोजन करने वालों) के घर भी जो कोई भोजन करेगा, हे राजन! सुनो, वह भी तुम्हारे अधीन हो जाएगा। हे राजन! जाकर यही उपाय करो और वर्ष भर (भोजन कराने) का संकल्प कर लेना।

दो॰ - नित नूतन द्विज सहस सत बरेहु सहित परिवार।
मैं तुम्हरे संकलप लगि दिनहिं करबि जेवनार॥ 168॥

नित्य नए एक लाख ब्राह्मणों को कुटुंब सहित निमंत्रित करना। मैं तुम्हारे सकंल्प (के काल अर्थात एक वर्ष) तक प्रतिदिन भोजन बना दिया करूँगा॥ 168॥

एहि बिधि भूप कष्ट अति थोरें। होइहहिं सकल बिप्र बस तोरें॥
करिहहिं बिप्र होम मख सेवा। तेहिं प्रसंग सहजेहिं बस देवा॥

हे राजन! इस प्रकार बहुत ही थोड़े परिश्रम से सब ब्राह्मण तुम्हारे वश में हो जाएँगे। ब्राह्मण हवन, यज्ञ और सेवा-पूजा करेंगे, तो उस प्रसंग (संबंध) से देवता भी सहज ही वश में हो जाएँगे।

और एक तोहि कहउँ लखाऊ। मैं एहिं बेष न आउब काऊ॥
तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया। हरि आनब मैं करि निज माया॥

मैं एक और पहचान तुमको बताए देता हूँ कि मैं इस रूप में कभी न आऊँगा। हे राजन! मैं अपनी माया से तुम्हारे पुरोहित को हर लाऊँगा।

तपबल तेहि करि आपु समाना। रखिहउँ इहाँ बरष परवाना॥
मैं धरि तासु बेषु सुनु राजा। सब बिधि तोर सँवारब काजा॥

तप के बल से उसे अपने समान बनाकर एक वर्ष यहाँ रखूँगा और हे राजन! सुनो, मैं उसका रूप बनाकर सब प्रकार से तुम्हारा काम सिद्ध करूँगा।

गै निसि बहुत सयन अब कीजे। मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे॥
मैं तपबल तोहि तुरग समेता। पहुँचैहउँ सोवतहि निकेता॥

हे राजन! रात बहुत बीत गई, अब सो जाओ। आज से तीसरे दिन मुझसे तुम्हारी भेंट होगी। तप के बल से मैं घोड़े सहित तुमको सोते ही में घर पहुँचा दूँगा।

दो० - मैं आउब सोइ बेषु धरि पहिचानेहु तब मोहि।
जब एकांत बोलाइ सब कथा सुनावौं तोहि॥ 169॥

मैं वही (पुरोहित का) वेश धरकर आऊँगा। जब एकांत में तुमको बुलाकर सब कथा सुनाऊँगा, तब तुम मुझे पहचान लेना॥ 169॥

सयन कीन्ह नृप आयसु मानी। आसन जाइ बैठ छलग्यानी॥
श्रमित भूप निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई॥

राजा ने आज्ञा मानकर शयन किया और वह कपट-ज्ञानी आसन पर जा बैठा। राजा थका था, (उसे) खूब (गहरी) नींद आ गई। पर वह कपटी कैसे सोता। उसे तो बहुत चिंता हो रही थी।

कालकेतु निसिचर तहँ आवा। जेहिं सूकर होइ नृपहि भुलावा॥
परम मित्र तापस नृप केरा। जानइ सो अति कपट घनेरा॥

(उसी समय) वहाँ कालकेतु राक्षस आया, जिसने सूअर बनकर राजा को भटकाया था। वह तपस्वी राजा का बड़ा मित्र था और खूब छल-प्रपंच जानता था।

तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव दुखदाई॥
प्रथमहिं भूप समर सब मारे। बिप्र संत सुर देखि दुखारे॥

उसके सौ पुत्र और दस भाई थे, जो बड़े ही दुष्ट, किसी से न जीते जानेवाले और देवताओं को दुःख देनेवाले थे। ब्राह्मणों, संतों और देवताओं को दुःखी देखकर राजा ने उन सबको पहले ही युद्ध में मार डाला था।

तेहिं खल पाछिल बयरु सँभारा। तापस नृप मिलि मंत्र बिचारा॥
जेहिं रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ॥

उस दुष्ट ने पिछला बैर याद करके तपस्वी राजा से मिलकर सलाह की और जिस प्रकार शत्रु का नाश हो, वही उपाय रचा। भावीवश राजा (प्रतापभानु) कुछ भी न समझ सका।

दो० - रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु।
अजहुँ देत दुख रबि ससिहि सिर अवसेषित राहु॥ 170॥

तेजस्वी शत्रु अकेला भी हो तो भी उसे छोटा नहीं समझना चाहिए। जिसका सिर मात्र बचा था, वह राहु आज तक सूर्य-चंद्रमा को दुःख देता है॥ 170॥

तापस नृप निज सखहि निहारी। हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। जातुधान बोला सुख पाई॥

तपस्वी राजा अपने मित्र को देख प्रसन्न हो उठकर मिला और सुखी हुआ। उसने मित्र को सब कथा कह सुनाई, तब राक्षस आनंदित होकर बोला।

अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा। जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा॥
परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई। बिनु औषध बिआधि बिधि खोई॥

हे राजन! सुनो, जब तुमने मेरे कहने के अनुसार (इतना) काम कर लिया, तो अब मैंने शत्रु को काबू में कर ही लिया (समझो)। तुम अब चिंता त्याग सो रहो। विधाता ने बिना ही दवा के रोग दूर कर दिया।

कुल समेत रिपु मूल बहाई। चौथें दिवस मिलब मैं आई॥
तापस नृपहि बहुत परितोषी। चला महाकपटी अतिरोषी॥

कुल सहित शत्रु को जड़-मूल से उखाड़-बहाकर, (आज से) चौथे दिन मैं तुमसे आ मिलूँगा। (इस प्रकार) तपस्वी राजा को खूब दिलासा देकर वह महामायावी और अत्यंत क्रोधी राक्षस चला।

भानुप्रतापहि बाजि समेता। पहुँचाएसि छन माझ निकेता॥
नृपहि नारि पहिं सयन कराई। हयगृहँ बाँधेसि बाजि बनाई॥

उसने प्रतापभानु राजा को घोड़े सहित क्षणभर में घर पहुँचा दिया। राजा को रानी के पास सुलाकर घोड़े को अच्छी तरह से घुड़साल में बाँध दिया।

दो० - राजा के उपरोहितहि हरि लै गयउ बहोरि।
लै राखेसि गिरि खोह महुँ मायाँ करि मति भोरि॥ 171॥

फिर वह राजा के पुरोहित को उठा ले गया और माया से उसकी बुद्धि को भ्रम में डालकर उसे उसने पहाड़ की खोह में ला रखा॥ 171॥

आपु बिरचि उपरोहित रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा॥
जागेउ नृप अनभएँ बिहाना। देखि भवन अति अचरजु माना॥

वह आप पुरोहित का रूप बनाकर उसकी सुंदर सेज पर जा लेटा। राजा सबेरा होने से पहले ही जागा और अपना घर देखकर उसने बड़ा ही आश्चर्य माना।

मुनि महिमा मन महुँ अनुमानी। उठेउ गवँहिं जेहिं जान न रानी॥
कानन गयउ बाजि चढ़ि तेहीं। पुर नर नारि न जानेउ केहीं॥

मन में मुनि की महिमा का अनुमान करके वह धीरे से उठा, जिसमें रानी न जान पाए। फिर उसी घोड़े पर चढ़कर वन को चला गया। नगर के किसी भी स्त्री-पुरुष को पता नहीं चला।

गएँ जाम जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा॥
उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोक सुमिरि सोइ काजा॥

दो पहर बीत जाने पर राजा आया। घर-घर उत्सव होने लगे और बधावा बजने लगा। जब राजा ने पुरोहित को देखा, तब वह (अपने) उसी कार्य का स्मरण कर उसे आश्चर्य से देखने लगा।

जुग सम नृपहि गए दिन तीनी। कपटी मुनि पद रह मति लीनी॥
समय जान उपरोहित आवा। नृपहि मते सब कहि समुझावा॥

राजा को तीन दिन युग के समान बीते। उसकी बुद्धि कपटी मुनि के चरणों में लगी रही। निश्चित समय जानकर पुरोहित (बना हुआ राक्षस) आया और राजा के साथ की हुई गुप्त सलाह के अनुसार (उसने अपने) सब विचार उसे समझाकर कह दिए।

दो० - नृप हरषेउ पहिचानि गुरु भ्रम बस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस बर बिप्र कुटुंब समेत॥ 172॥

(संकेत के अनुसार) गुरु को (उस रूप में) पहचानकर राजा प्रसन्न हुआ। भ्रमवश उसे चेत न रहा (कि यह तापस मुनि है या कालकेतु राक्षस)। उसने तुरंत एक लाख उत्तम

ब्राह्मणों को कुटुंब सहित निमंत्रण दे दिया॥ 172॥

उपरोहित जेवनार बनाई। छरस चारि बिधि जसि श्रुति गाई॥
मायामय तेहिं कीन्हि रसोई। बिंजन बहु गनि सकइ न कोई॥

पुरोहित ने छह रस और चार प्रकार के भोजन, जैसा कि वेदों में वर्णन है, बनाए। उसने मायामयी रसोई तैयार की और इतने व्यंजन बनाए, जिन्हें कोई गिन नहीं सकता।

बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महुँ बिप्र माँसु खल साँधा॥
भोजन कहुँ सब बिप्र बोलाए। पद पखारि सादर बैठाए॥

अनेक प्रकार के पशुओं का मांस पकाया और उसमें उस दुष्ट ने ब्राह्मणों का मांस मिला दिया। सब ब्राह्मणों को भोजन के लिए बुलाया और चरण धोकर आदर सहित बैठाया।

परुसन जबहिं लाग महिपाला। भै अकासबानी तेहि काला॥
बिप्रबृंद उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥

ज्यों ही राजा परोसने लगा, उसी काल (कालकेतुकृत) आकाशवाणी हुई - हे ब्राह्मणो! उठ-उठकर अपने घर जाओ, यह अन्न मत खाओ। इस (के खाने) में बड़ी हानि है।

भयउ रसोईं भूसुर माँसू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू॥
भूप बिकल मति मोहँ भुलानी। भावी बस न आव मुख बानी॥

रसोई में ब्राह्मणों का मांस बना है। (आकाशवाणी का) विश्वास मानकर सब ब्राह्मण उठ खड़े हुए। राजा व्याकुल हो गया (परंतु), उसकी बुद्धि मोह में भूली हुई थी। होनहारवश उसके मुँह से (एक) बात (भी) न निकली।

दो० - बोले बिप्र सकोप तब नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार॥ 173॥

तब ब्राह्मण क्रोध सहित बोल उठे - उन्होंने कुछ भी विचार नहीं किया - अरे मूर्ख राजा! तू जाकर परिवार सहित राक्षस हो॥ 173॥

छत्रबंधु तैं बिप्र बोलाई। घालै लिए सहित समुदाई॥
ईश्वर राखा धरम हमारा। जैहसि तैं समेत परिवारा॥

रे नीच क्षत्रिय! तूने तो परिवार सहित ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें नष्ट करना चाहा था, ईश्वर ने हमारे धर्म की रक्षा की। अब तू परिवार सहित नष्ट होगा।

संबत मध्य नास तव होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ॥
नृप सुनि श्राप बिकल अति त्रासा। भै बहोरि बर गिरा अकासा॥

एक वर्ष के भीतर तेरा नाश हो जाए, तेरे कुल में कोई पानी देनेवाला तक न रहेगा। शाप सुनकर राजा भय के मारे अत्यंत व्याकुल हो गया। फिर सुंदर आकाशवाणी हुई -

बिप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा॥
चकित बिप्र सब सुनि नभबानी। भूप गयउ जहँ भोजन खानी॥

हे ब्राह्मणो! तुमने विचार कर शाप नहीं दिया। राजा ने कुछ भी अपराध नहीं किया। आकाशवाणी सुनकर सब ब्राह्मण चकित हो गए। तब राजा वहाँ गया, जहाँ भोजन बना था।

तहँ न असन नहिं बिप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा॥
सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अवनीं अकुलाई॥

(देखा तो) वहाँ न भोजन था, न रसोइया ब्राह्मण ही था। तब राजा मन में अपार चिंता करता हुआ लौटा। उसने ब्राह्मणों को सब वृत्तांत सुनाया और (बड़ा ही) भयभीत और व्याकुल होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा।

दो॰ - भूपति भावी मिटइ नहिं जदपि न दूषन तोर।
किएँ अन्यथा होइ नहिं बिप्रश्राप अति घोर॥ 174॥

हे राजन! यद्यपि तुम्हारा दोष नहीं है, तो भी होनहार नहीं मिटता। ब्राह्मणों का शाप बहुत ही भयानक होता है, यह किसी तरह भी टाले टल नहीं सकता॥ 174॥

अस कहि सब महिदेव सिधाए। समाचार पुरलोगन्ह पाए॥
सोचहिं दूषन दैवहि देहीं। बिरचत हंस काग किय जेहीं॥

ऐसा कहकर सब ब्राह्मण चले गए। नगरवासियों ने (जब) यह समाचार पाया, तो वे चिंता करने और विधाता को दोष देने लगे, जिसने हंस बनाते-बनाते कौआ कर दिया (ऐसे पुण्यात्मा राजा को देवता बनाना चाहिए था, पर राक्षस बना दिया)।

उपरोहितहि भवन पहुँचाई। असुर तापसहि खबरि जनाई॥
तेहिं खल जहँ तहँ पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब धाए॥

पुरोहित को उसके घर पहुँचाकर असुर (कालकेतु) ने (कपटी) तपस्वी को खबर दी। उस दुष्ट ने जहाँ-तहाँ पत्र भेजे, जिससे सब (बैरी) राजा सेना सजा-सजाकर (चढ़) दौड़े।

घेरेन्हि नगर निसान बजाई। बिबिध भाँति नित होइ लराई॥
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी॥

और उन्होंने डंका बजाकर नगर को घेर लिया। नित्य प्रति अनेक प्रकार से लड़ाई होने लगी। (प्रतापभानु के) सब योद्धा (शूरवीरों की) करनी करके रण में जूझ मरे। राजा भी भाई सहित खेत रहा।

सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा। बिप्रश्राप किमि होइ असाँचा॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय जसु पाई॥

सत्यकेतु के कुल में कोई नहीं बचा। ब्राह्मणों का शाप झूठा कैसे हो सकता था। शत्रु को जीतकर, नगर को (फिर से) बसाकर सब राजा विजय और यश पाकर अपने-अपने नगर को चले गए।

दो० - भरद्वाज सुनु जाहि जब होई बिधाता बाम।
धूरि मेरुसम जनक जम ताहि ब्यालसम दाम॥ 175॥

(याज्ञवल्क्य कहते हैं -) हे भरद्वाज! सुनो, विधाता जब जिसके विपरीत होते हैं, तब उसके लिए धूल सुमेरु पर्वत के समान (भारी और कुचल डालनेवाली), पिता यम के समान (कालरूप) और रस्सी साँप के समान (काट खानेवाली) हो जाती है॥ 175॥

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥

हे मुनि! सुनो, समय पाकर वही राजा परिवार सहित रावण नामक राक्षस हुआ। उसके दस सिर और बीस भुजाएँ थीं और वह बड़ा ही प्रचंड शूरवीर था।

भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलधामा॥

सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥

अरिमर्दन नामक जो राजा का छोटा भाई था, वह बल का धाम कुंभकर्ण हुआ। उसका जो मंत्री था, जिसका नाम धर्मरुचि था, वह रावण का सौतेला छोटा भाई हुआ।

नाम बिभीषन जेहि जग जाना। बिष्नुभगत बिग्यान निधाना॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे॥

उसका विभीषण नाम था, जिसे सारा जगत जानता है। वह विष्णुभक्त और ज्ञान-विज्ञान का भंडार था और जो राजा के पुत्र और सेवक थे, वे सभी बड़े भयानक राक्षस हुए।

कामरूप खल जिनस अनेका। कुटिल भयंकर बिगत बिबेका॥
कृपा रहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाहिं बिस्व परितापी॥

वे सब अनेकों जाति के, मनमाना रूप धारण करनेवाले, दुष्ट, कुटिल, भयंकर, विवेकरहित, निर्दयी, हिंसक, पापी और संसार भर को दुःख देनेवाले हुए, उनका वर्णन नहीं हो सकता।

दो० - उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर श्राप बस भए सकल अघरूप॥ 176॥

यद्यपि वे पुलस्त्य ऋषि के पवित्र, निर्मल और अनुपम कुल में उत्पन्न हुए, तथापि ब्राह्मणों के शाप के कारण वे सब पाप रूप हुए॥ 176॥

कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई। परम उग्र नहिं बरनि सो जाई॥
गयउ निकट तप देखि बिधाता। मागहु बर प्रसन्न मैं ताता॥

तीनों भाइयों ने अनेकों प्रकार की बड़ी ही कठिन तपस्या की, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। (उनका उग्र) तप देखकर ब्रह्मा उनके पास गए और बोले - हे तात! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो।

करि बिनती पद गहि दससीसा। बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा॥
हम काहू के मरहिं न मारें। बानर मनुज जाति दुइ बारें॥

रावण ने विनय करके और चरण पकड़कर कहा - हे जगदीश्वर! सुनिए, वानर और मनुष्य

- इन दो जातियों को छोड़कर हम और किसी के मारे न मरें। (यह वर दीजिए)।

एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रहमाँ मिलि तेहि बर दीन्हा॥
पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गयऊ। तेहि बिलोकि मन बिसमय भयऊ॥

(शिव कहते हैं कि -) मैंने और ब्रहमा ने मिलकर उसे वर दिया कि ऐसा ही हो, तुमने बड़ा तप किया है। फिर ब्रहमा कुंभकर्ण के पास गए। उसे देखकर उनके मन में बड़ा आश्चर्य हुआ।

जौं एहिं खल नित करब अहारू। होइहि सब उजारि संसारू॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी। मागेसि नीद मास षट केरी॥

जो यह दुष्ट नित्य आहार करेगा, तो सारा संसार ही उजाड़ हो जाएगा। (ऐसा विचारकर) ब्रहमा ने सरस्वती को प्रेरणा करके उसकी बुद्धि फेर दी। (जिससे) उसने छह महीने की नींद माँगी।

दो॰ - गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु।
तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु॥ 177॥

फिर ब्रहमा विभीषण के पास गए और बोले - हे पुत्र! वर माँगो। उसने भगवान के चरणकमलों में निर्मल (निष्काम और अनन्य) प्रेम माँगा॥ 177॥

तिन्हहि देइ बर ब्रहम सिधाए। हरषित ते अपने गृह आए॥
मय तनुजा मंदोदरि नामा। परम सुंदरी नारि ललामा॥

उनको वर देकर ब्रहमा चले गए और वे (तीनों भाई) हर्षित हेकर अपने घर लौट आए। मय दानव की मंदोदरी नाम की कन्या परम सुंदरी और स्त्रियों में शिरोमणि थी।

सोइ मयँ दीन्हि रावनहि आनी। होइहि जातुधानपति जानी॥
हरषित भयउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई॥

मय ने उसे लाकर रावण को दिया। उसने जान लिया कि यह राक्षसों का राजा होगा। अच्छी स्त्री पाकर रावण प्रसन्न हुआ और फिर उसने जाकर दोनों भाइयों का विवाह कर दिया।

गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी॥
सोइ मय दानवँ बहुरि सँवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा॥

समुद्र के बीच में त्रिकूट नामक पर्वत पर ब्रह्मा का बनाया हुआ एक बड़ा भारी किला था। (महान मायावी और निपुण कारीगर) मय दानव ने उसको फिर से सजा दिया। उसमें मणियों से जड़े हुए सोने के अनगिनत महल थे।

भोगावति जसि अहिकुल बासा। अमरावति जसि सक्रनिवासा॥
तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग बिख्यात नाम तेहि लंका॥

जैसी नागकुल के रहने की (पाताल लोक में) भोगावती पुरी है और इंद्र के रहने की (स्वर्गलोक में) अमरावती पुरी है, उनसे भी अधिक सुंदर और बाँका वह दुर्ग था। जगत में उसका नाम लंका प्रसिद्ध हुआ।

दो० - खाईं सिंधु गभीर अति चारिहुँ दिसि फिरि आव।
कनक कोट मनि खचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव॥ 178(क)॥

उसे चारों ओर से समुद्र की अत्यंत गहरी खाई घेरे हुए है। उस (दुर्ग) के मणियों से जड़ा हुआ सोने का मजबूत परकोटा है, जिसकी कारीगरी का वर्णन नहीं किया जा सकता॥ 178(क)॥

हरि प्रेरित जेहिं कलप जोइ जातुधानपति होइ।
सूर प्रतापी अतुलबल दल समेत बस सोइ॥ 178(ख)॥

भगवान की प्रेरणा से जिस कल्प में जो राक्षसों का राजा (रावण) होता है, वही शूर, प्रतापी, अतुलित बलवान अपनी सेना सहित उस पुरी में बसता है॥ 178(ख)॥

रहे तहाँ निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर संघारे॥
अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे॥

(पहले) वहाँ बड़े-बड़े योद्धा राक्षस रहते थे। देवताओं ने उन सबको युद्ध में मार डाला। अब इंद्र की प्रेरणा से वहाँ कुबेर के एक करोड़ रक्षक (यक्ष लोग) रहते हैं।

दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई॥

देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई॥

रावण को कहीं ऐसी खबर मिली, तब उसने सेना सजाकर किले को जा घेरा। उस बड़े विकट योद्धा और उसकी बड़ी सेना को देखकर यक्ष अपने प्राण लेकर भाग गए।

फिरि सब नगर दसानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिसेषा॥
सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी॥

तब रावण ने घूम-फिरकर सारा नगर देखा। उसकी (स्थान संबंधी) चिंता मिट गई और उसे बहुत ही सुख हुआ। उस पुरी को स्वाभाविक ही सुंदर और (बाहरवालों के लिए) दुर्गम अनुमान करके रावण ने वहाँ अपनी राजधानी कायम की।

जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हें॥
एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा॥

योग्यता के अनुसार घरों को बाँटकर रावण ने सब राक्षसों को सुखी किया। एक बार वह कुबेर पर चढ़ दौड़ा और उससे पुष्पक विमान को जीतकर ले आया।

दो॰ - कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहुबल चला बहुत सुख पाइ॥ 179॥

फिर उसने जाकर (एक बार) खिलवाड़ ही में कैलास पर्वत को उठा लिया और मानो अपनी भुजाओं का बल तौलकर, बहुत सुख पाकर वह वहाँ से चला आया॥ 179॥

सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई॥
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई॥

सुख, संपत्ति, पुत्र, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बड़ाई - ये सब उसके नित्य नए (वैसे ही) बढ़ते जाते थे, जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ता है।

अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता॥
करइ पान सोवइ षट मासा। जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा॥

अत्यंत बलवान कुंभकर्ण-सा उसका भाई था, जिसके जोड़ का योद्धा जगत में पैदा ही नहीं हुआ। वह मदिरा पीकर छह महीने सोया करता था। उसके जागते ही तीनों लोकों में

तहलका मच जाता था।

जौं दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई॥
समर धीर नहिं जाइ बखाना। तेहि सम अमित बीर बलवाना॥

यदि वह प्रतिदिन भोजन करता, तब तो संपूर्ण विश्व शीघ्र ही चौपट (खाली) हो जाता। रणधीर ऐसा था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। (लंका में) उसके ऐसे असंख्य बलवान वीर थे।

बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू॥
जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई॥

मेघनाद रावण का बड़ा लड़का था, जिसका जगत के योद्धाओं में पहला नंबर था। रण में कोई भी उसका सामना नहीं कर सकता था। स्वर्ग में तो (उसके भय से) नित्य भगदड़ मची रहती थी।

दो० - कुमुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय॥ 180॥

(इनके अतिरिक्त) दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदंत, धूमकेतु और अतिकाय आदि ऐसे अनेक योद्धा थे, जो अकेले ही सारे जगत को जीत सकते थे॥ 180॥

कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिन्ह कें धरम न दाया॥
दसमुख बैठ सभाँ एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा॥

सभी राक्षस मनमाना रूप बना सकते थे और (आसुरी) माया जानते थे। उनके दया-धर्म स्वप्न में भी नहीं था। एक बार सभा में बैठे हुए रावण ने अपने अगणित परिवार को देखा -

सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी॥

पुत्र-पौत्र, कुटुंबी और सेवक ढेर-के-ढेर थे। राक्षसों की (सारी) जातियों को तो गिन ही कौन सकता था! अपनी सेना को देखकर स्वभाव से ही अभिमानी रावण क्रोध और गर्व में

सनी हुई वाणी बोला -

सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई॥

हे समस्त राक्षसों के दलो! सुनो, देवतागण हमारे शत्रु हैं। वे सामने आकर युद्ध नहीं करते। बलवान शत्रु को देखकर भाग जाते हैं।

तेन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहउँ बुझाइ सुनहु अब सोई॥
द्विजभोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा॥

उनका मरण एक ही उपाय से हो सकता है, मैं समझाकर कहता हूँ। अब उसे सुनो। (उनके बल को बढ़ानेवाले) ब्राह्मण भोजन, यज्ञ, हवन और श्राद्ध - इन सबमें जाकर तुम बाधा डालो।

दो० - छुधा छीन बलहीन सुर सहजेहिं मिलिहहिं आइ।
तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ भली भाँति अपनाइ॥ 181॥

भूख से दुर्बल और बलहीन होकर देवता सहज ही में आ मिलेंगे। तब उनको मैं मार डालूँगा अथवा भली-भाँति अपने अधीन करके (सर्वथा पराधीन करके) छोड़ दूँगा॥ 181॥

मेघनाद कहूँ पुनि हँकरावा। दीन्हीं सिख बलु बयरु बढ़ावा॥
जे सुर समर धीर बलवाना। जिन्ह कें लरिबे कर अभिमाना॥

फिर उसने मेघनाद को बुलवाया और सिखा-पढ़ाकर उसके बल और देवताओं के प्रति बैरभाव को उत्तेजना दी। (फिर कहा -) हे पुत्र! जो देवता रण में धीर और बलवान हैं और जिन्हें लड़ने का अभिमान है,

तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुसासन काँधी॥
एहि बिधि सबही अग्या दीन्ही। आपुनु चलेउ गदा कर लीन्ही॥

उन्हें युद्ध में जीतकर बाँध लाना। बेटे ने उठकर पिता की आज्ञा को शिरोधार्य किया। इसी तरह उसने सबको आज्ञा दी और आप भी हाथ में गदा लेकर चल दिया।

चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी॥

रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा॥

रावण के चलने से पृथ्वी डगमगाने लगी और उसकी गर्जना से देवरमणियों के गर्भ गिरने लगे। रावण को क्रोध सहित आते हुए सुनकर देवताओं ने सुमेरु पर्वत की गुफाएँ तकीं (भागकर सुमेरु की गुफाओं का आश्रय लिया)।

दिगपालन्ह के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए॥
पुनि पुनि सिंघनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारी॥

दिग्पालों के सारे सुंदर लोकों को रावण ने सूना पाया। वह बार-बार भारी सिंहगर्जना करके देवताओं को ललकार-ललकारकर गालियाँ देता था।

रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा॥
रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी॥

रण के मद में मतवाला होकर वह अपनी जोड़ी का योद्धा खोजता हुआ जगत भर में दौड़ता फिरा, परंतु उसे ऐसा योद्धा कहीं नहीं मिला। सूर्य, चंद्रमा, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल और यम आदि सब अधिकारी,

किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहिं लागा॥
ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी॥

किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग - सभी के पीछे वह हठपूर्वक पड़ गया (किसी को भी उसने शांतिपूर्वक नहीं बैठने दिया)। ब्रह्मा की सृष्टि में जहाँ तक शरीरधारी स्त्री-पुरुष थे, सभी रावण के अधीन हो गए।

आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता॥

डर के मारे सभी उसकी आज्ञा का पालन करते थे और नित्य आकर नम्रतापूर्वक उसके चरणों में सिर नवाते थे।

दो० - भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र॥ 182(क)॥

उसने भुजाओं के बल से सारे विश्व को वश में कर लिया, किसी को स्वतंत्र नहीं रहने

दिया। (इस प्रकार) मंडलीक राजाओं का शिरोमणि (सार्वभौम सम्राट) रावण अपनी इच्छानुसार राज्य करने लगा॥ 182(क)॥

देव जच्छ गंधर्ब नर किंनर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुंदर बर नारि॥ 182(ख)॥

देवता, यक्ष, गंधर्व, मनुष्य, किन्नर और नागों की कन्याओं तथा बहुत-सी अन्य सुंदरी और उत्तम स्त्रियों को उसने अपनी भुजाओं के बल से जीतकर ब्याह लिया॥ 182 (ख)॥

इंद्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ॥
प्रथमहिं जिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा। तिन्ह कर चरित सुनहु जो कीन्हा॥

मेघनाद से उसने जो कुछ कहा, उसे उसने (मेघनाद ने) मानो पहले से ही कर रखा था (अर्थात रावण के कहने भर की देर थी, उसने आज्ञापालन में तनिक भी देर नहीं की।) जिनको (रावण ने मेघनाद से) पहले ही आज्ञा दे रखी थी, उन्होंने जो करतूतें की उन्हें सुनो।

देखत भीमरूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥

सब राक्षसों के समूह देखने में बड़े भयानक, पापी और देवताओं को दुःख देनेवाले थे। वे असुरों के समूह उपद्रव करते थे और माया से अनेकों प्रकार के रूप धरते थे।

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥

जिस प्रकार धर्म की जड़ कटे, वे वही सब वेदविरुद्ध काम करते थे। जिस-जिस स्थान में वे गो और ब्राह्मणों को पाते थे, उसी नगर, गाँव और पुरवे में आग लगा देते थे।

सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥
नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना। सपनेहु सुनिअ न बेद पुराना॥

(उनके डर से) कहीं भी शुभ आचरण (ब्राह्मण भोजन, यज्ञ, श्राद्ध आदि) नहीं होते थे। देवता, ब्राह्मण और गुरु को कोई नहीं मानता था। न हरिभक्ति थी, न यज्ञ, तप और ज्ञान

था। वेद और पुराण तो स्वप्न में भी सुनने को नहीं मिलते थे।

छं० - जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा।
आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना।
तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना॥

जप, योग, वैराग्य, तप तथा यज्ञ में (देवताओं के) भाग पाने की बात रावण कहीं कानों से सुन पाता, तो (उसी समय) स्वयं उठ दौड़ता। कुछ भी रहने नहीं पाता, वह सबको पकड़कर विध्वंस कर डालता था। संसार में ऐसा भ्रष्ट आचरण फैल गया कि धर्म तो कानों में सुनने में नहीं आता था, जो कोई वेद और पुराण कहता, उसको बहुत तरह से त्रास देता और देश से निकाल देता था।

सो० - बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥ 183॥

राक्षस लोग जो घोर अत्याचार करते थे, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। हिंसा पर ही जिनकी प्रीति है, उनके पापों का क्या ठिकाना॥ 183॥

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥

पराए धन और पराई स्त्री पर मन चलानेवाले, दुष्ट, चोर और जुआरी बहुत बढ़ गए। लोग माता-पिता और देवताओं को नहीं मानते थे और साधुओं (की सेवा करना तो दूर रहा, उल्टे उन) से सेवा करवाते थे।

जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥
अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥

(शिव कहते हैं कि -) हे भवानी! जिनके ऐसे आचरण हैं, उन सब प्राणियों को राक्षस ही समझना। इस प्रकार धर्म के प्रति (लोगों की) अतिशय ग्लानि (अरुचि, अनास्था) देखकर पृथ्वी अत्यंत भयभीत एवं व्याकुल हो गई।

गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही।

सकल धर्म देखइ बिपरीता। कहि न सकइ रावन भय भीता॥

(वह सोचने लगी कि) पर्वतों, नदियों और समुद्रों का बोझ मुझे इतना भारी नहीं जान पड़ता, जितना भारी मुझे एक परद्रोही (दूसरों का अनिष्ट करनेवाला) लगता है। पृथ्वी सारे धर्मों को विपरीत देख रही है, पर रावण से भयभीत हुई वह कुछ बोल नहीं सकती।

धेनु रूप धरि हृदयँ बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी॥
निज संताप सुनाएसि रोई। काहू तें कछु काज न होई॥

(अंत में) हृदय में सोच-विचारकर, गो का रूप धारण कर धरती वहाँ गई, जहाँ सब देवता और मुनि (छिपे) थे। पृथ्वी ने रोकर उनको अपना दुःख सुनाया, पर किसी से कुछ काम न बना।

छं० - सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका।
सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका॥
ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई॥

तब देवता, मुनि और गंधर्व सब मिलकर ब्रह्मा के लोक (सत्यलोक) को गए। भय और शोक से अत्यंत व्याकुल बेचारी पृथ्वी भी गो का शरीर धारण किए हुए उनके साथ थी। ब्रह्मा सब जान गए। उन्होंने मन में अनुमान किया कि इसमें मेरा कुछ भी वश नहीं चलने का। (तब उन्होंने पृथ्वी से कहा कि -) जिसकी तू दासी है, वही अविनाशी हमारा और तुम्हारा दोनों का सहायक है।

सो० - धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरि पद सुमिरु।
जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दारुन बिपति॥ 184॥

ब्रह्मा ने कहा - हे धरती! मन में धीरज धारण करके हरि के चरणों का स्मरण करो। प्रभु अपने दासों की पीड़ा को जानते हैं, ये तुम्हारी कठिन विपत्ति का नाश करेंगे॥ 184॥

बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई॥

सब देवता बैठकर विचार करने लगे कि प्रभु को कहाँ पाएँ ताकि उनके सामने पुकार

(फरियाद) करें। कोई बैकुंठपुरी जाने को कहता था और कोई कहता था कि वही प्रभु क्षीरसमुद्र में निवास करते हैं।

जाके हृदयँ भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती॥
तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन एक कहेउँ॥

जिसके हृदय में जैसी भक्ति और प्रीति होती है, प्रभु वहाँ (उसके लिए) सदा उसी रीति से प्रकट होते हैं। हे पार्वती! उस समाज में मैं भी था। अवसर पाकर मैंने एक बात कही -

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥

मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान सब जगह समान रूप से व्यापक हैं, प्रेम से वे प्रकट हो जाते हैं, देश, काल, दिशा, विदिशा में बताओ, ऐसी जगह कहाँ है, जहाँ प्रभु न हों।

अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥
मोर बचन सब के मन माना। साधु-साधु करि ब्रह्म बखाना॥

वे चराचरमय (चराचर में व्याप्त) होते हुए ही सबसे रहित हैं और विरक्त हैं (उनकी कहीं आसक्ति नहीं है); वे प्रेम से प्रकट होते हैं, जैसे अग्नि। (अग्नि अव्यक्त रूप से सर्वत्र व्याप्त है, परंतु जहाँ उसके लिए अरणिमंथनादि साधन किए जाते हैं, वहाँ वह प्रकट होती है। इसी प्रकार सर्वत्र व्याप्त भगवान भी प्रेम से प्रकट होते हैं।) मेरी बात सबको प्रिय लगी। ब्रह्मा ने 'साधु-साधु' कहकर बड़ाई की।

दो० - सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मतिधीर॥ 185॥

मेरी बात सुनकर ब्रह्मा के मन में बड़ा हर्ष हुआ, उनका तन पुलकित हो गया और नेत्रों से (प्रेम के) आँसू बहने लगे। तब वे धीरबुद्धि ब्रह्मा सावधान होकर हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे॥ 185॥

छं० - जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई।

जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई॥

हे देवताओं के स्वामी, सेवकों को सुख देनेवाले, शरणागत की रक्षा करनेवाले भगवान! आपकी जय हो! जय हो!! हे गो-ब्राह्मणों का हित करनेवाले, असुरों का विनाश करनेवाले, समुद्र की कन्या (लक्ष्मी) के प्रिय स्वामी! आपकी जय हो! हे देवता और पृथ्वी का पालन करनेवाले! आपकी लीला अद्भुत है, उसका भेद कोई नहीं जानता। ऐसे जो स्वभाव से ही कृपालु और दीनदयालु हैं, वे ही हम पर कृपा करें।

जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा।
अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा।
निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा॥

हे अविनाशी, सबके हृदय में निवास करनेवाले (अंतर्यामी), सर्वव्यापक, परम आनंदस्वरूप, अज्ञेय, इंद्रियों से परे, पवित्र चरित्र, माया से रहित मुकुंद (मोक्षदाता)! आपकी जय हो! जय हो!! (इस लोक और परलोक के सब भोगों से) विरक्त तथा मोह से सर्वथा छूटे हुए (ज्ञानी) मुनिवृंद भी अत्यंत अनुरागी (प्रेमी) बनकर जिनका रात-दिन ध्यान करते हैं और जिनके गुणों के समूह का गान करते हैं, उन सच्चिदानंद की जय हो।

जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा॥

जिन्होंने बिना किसी दूसरे संगी अथवा सहायक के अकेले ही (या स्वयं अपने को त्रिगुणरूप - ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप - बनाकर अथवा बिना किसी उपादान-कारण के अर्थात स्वयं ही सृष्टि का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण बनकर) तीन प्रकार की सृष्टि उत्पन्न की, वे पापों का नाश करनेवाले भगवान हमारी सुधि लें। हम न भक्ति जानते हैं, न पूजा, जो संसार के (जन्म-मृत्यु के) भय का नाश करनेवाले, मुनियों के मन को आनंद देनेवाले और विपत्तियों के समूह को नष्ट करनेवाली हैं। हम सब देवताओं के समूह, मन, वचन और कर्म से चतुराई करने की बान छोड़कर उन (भगवान) की शरण (आए) हैं।

सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना।

जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सोभगवाना॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा॥

सरस्वती, वेद, शेष और संपूर्ण ऋषि कोई भी जिनको नहीं जानते, जिन्हें दीन प्रिय हैं, ऐसा वेद पुकारकर कहते हैं, वे ही भगवान हम पर दया करें। हे संसाररूपी समुद्र के (मथने के) लिए मंदराचल रूप, सब प्रकार से सुंदर, गुणों के धाम और सुखों की राशि नाथ! आपके चरण कमलों में मुनि, सिद्ध और सारे देवता भय से अत्यंत व्याकुल होकर नमस्कार करते हैं।

दो॰ - जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह।
गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह॥ 186॥

देवताओं और पृथ्वी को भयभीत जानकर और उनके स्नेहयुक्त वचन सुनकर शोक और संदेह को हरनेवाली गंभीर आकाशवाणी हुई - ॥ 186॥

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥

हे मुनि, सिद्ध और देवताओं के स्वामियो! डरो मत। तुम्हारे लिए मैं मनुष्य का रूप धारण करूँगा और उदार (पवित्र) सूर्यवंश में अंशों सहित मनुष्य का अवतार लूँगा।

कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरीं प्रगट नर भूपा॥

कश्यप और अदिति ने बड़ा भारी तप किया था। मैं पहले ही उनको वर दे चुका हूँ। वे ही दशरथ और कौसल्या के रूप में मनुष्यों के राजा होकर अयोध्यापुरी में प्रकट हुए हैं।

तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥
नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ॥

उन्हीं के घर जाकर मैं रघुकुल में श्रेष्ठ चार भाइयों के रूप में अवतार लूँगा। नारद के सब वचन मैं सत्य करूँगा और अपनी पराशक्ति के सहित अवतार लूँगा।

हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥

गगन ब्रह्मबानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना॥

मैं पृथ्वी का सब भार हर लूँगा। हे देववृंद! तुम निर्भय हो जाओ। आकाश में ब्रह्म (भगवान) की वाणी को कान से सुनकर देवता तुरंत लौट गए। उनका हृदय शीतल हो गया।

तब ब्रह्माँ धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जियँ आवा॥

तब ब्रह्मा ने पृथ्वी को समझाया। वह भी निर्भय हुई और उसके जी में भरोसा (ढाढ़स) आ गया।

दो॰ - निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ॥ 187॥

देवताओं को यही सिखाकर कि वानरों का शरीर धर-धरकर तुम लोग पृथ्वी पर जाकर भगवान के चरणों की सेवा करो, ब्रह्मा अपने लोक को चले गए॥ 187॥

गए देव सब निज निज धामा। भूमि सहित मन कहुँ बिश्रामा॥
जो कछु आयसु ब्रह्माँ दीन्हा। हरषे देव बिलंब न कीन्हा॥

सब देवता अपने-अपने लोक को गए। पृथ्वी सहित सबके मन को शांति मिली। ब्रह्मा ने जो कुछ आज्ञा दी, उससे देवता बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने (वैसा करने में) देर नहीं की।

बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं॥
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मतिधीरा॥

पृथ्वी पर उन्होंने वानरदेह धारण की। उनमें अपार बल और प्रताप था। सभी शूरवीर थे, पर्वत, वृक्ष और नख ही उनके शस्त्र थे। वे धीर बुद्धिवाले (वानर रूप देवता) भगवान के आने की राह देखने लगे।

दो॰ - तेहि अवसर भाइन्ह सहित रामु भानु कुल केतु।
चले जनक मंदिर मुदित बिदा करावन हेतु॥ 334॥

उसी समय सूर्यवंश के पताका स्वरूप राम भाइयों स

गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी॥
यह सब रुचिर चरित मैं भाषा। अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा॥

वे (वानर) पर्वतों और जंगलों में जहाँ-तहाँ अपनी-अपनी सुंदर सेना बनाकर भरपूर छा गए। यह सब सुंदर चरित्र मैंने कहा। अब वह चरित्र सुनो जिसे बीच ही में छोड़ दिया था।

अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ॥
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी। हृदयँ भगति भति सारँगपानी॥

अवधपुरी में रघुकुल शिरोमणि दशरथ नाम के राजा हुए, जिनका नाम वेदों में विख्यात है। वे धर्मधुरंधर, गुणों के भंडार और ज्ञानी थे। उनके हृदय में शार्गंधनुष धारण करनेवाले भगवान की भक्ति थी, और उनकी बुद्धि भी उन्हीं में लगी रहती थी।

दो० - कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरि पद कमल बिनीत॥ 188॥

उनकी कौसल्या आदि प्रिय रानियाँ सभी पवित्र आचरणवाली थीं। वे (बड़ी) विनीत और पति के अनुकूल (चलनेवाली) थीं और हरि के चरणकमलों में उनका दृढ़ प्रेम था॥ 188॥

एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरें सुत नाहीं॥
गुर गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि बिनय बिसाला॥

एक बार राजा के मन में बड़ी ग्लानि हुई कि मेरे पुत्र नहीं है। राजा तुरंत ही गुरु के घर गए और चरणों में प्रणाम कर बहुत विनय की।

निज दुख सुख सब गुरहि सुनायउ। कहि बसिष्ठ बहुबिधि समुझायउ॥
धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी॥

राजा ने अपना सारा सुख-दुःख गुरु को सुनाया। गुरु वशिष्ठ ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया (और कहा -) धीरज धरो, तुम्हारे चार पुत्र होंगे, जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध और भक्तों के भय को हरनेवाले होंगे।

सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥

भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें॥

वशिष्ठ ने श्रृंगी ऋषि को बुलवाया और उनसे शुभ पुत्रकामेष्टि यज्ञ कराया। मुनि के भक्ति सहित आहुतियाँ देने पर अग्निदेव हाथ में चरु (हविष्यान्न खीर) लिए प्रकट हुए।

जो बसिष्ठ कछु हृदयँ बिचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥
यह हबि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥

(और दशरथ से बोले -) वशिष्ठ ने हृदय में जो कुछ विचारा था, तुम्हारा वह सब काम सिद्ध हो गया। हे राजन! (अब) तुम जाकर इस हविष्यान्न (पायस) को, जिसको जैसा उचित हो, वैसा भाग बनाकर बाँट दो।

दो० - तब अदृस्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ।
परमानंद मगन नृप हरष न हृदयँ समाइ॥ 189॥

तदनंतर अग्निदेव सारी सभा को समझाकर अंतर्धान हो गए। राजा परमानंद में मग्न हो गए, उनके हृदय में हर्ष समाता न था॥ 189॥

तबहिं रायँ प्रिय नारि बोलाईं। कौसल्यादि तहाँ चलि आईं॥
अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा॥

उसी समय राजा ने अपनी प्यारी पत्नियों को बुलाया। कौसल्या आदि सब (रानियाँ) वहाँ चली आईं। राजा ने (पायस का) आधा भाग कौसल्या को दिया, (और शेष) आधे के दो भाग किए।

कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ॥
कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि॥

वह (उनमें से एक भाग) राजा ने कैकेयी को दिया। शेष जो बच रहा उसके फिर दो भाग हुए और राजा ने उनको कौसल्या और कैकेयी के हाथ पर रखकर (अर्थात उनकी अनुमति लेकर) और इस प्रकार उनका मन प्रसन्न करके सुमित्रा को दिया।

एहि बिधि गर्भसहित सब नारी। भईं हृदयँ हरषित सुख भारी॥
जा दिन तें हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख संपति छाए॥

इस प्रकार सब स्त्रियाँ गर्भवती हुईं। वे हृदय में बहुत हर्षित हुईं। उन्हें बड़ा सुख मिला। जिस दिन से हरि (लीला से ही) गर्भ में आए, सब लोकों में सुख और संपत्ति छा गई।

मंदिर महँ सब राजहिं रानीं। सोभा सील तेज की खानीं॥
सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहिं प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ॥

शोभा, शील और तेज की खान (बनी हुई) सब रानियाँ महल में सुशोभित हुईं। इस प्रकार कुछ समय सुखपूर्वक बीता और वह अवसर आ गया, जिसमें प्रभु को प्रकट होना था।

दो० - जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल॥ 190॥

योग, लग्न, ग्रह, वार और तिथि सभी अनुकूल हो गए। जड़ और चेतन सब हर्ष से भर गए। (क्योंकि) राम का जन्म सुख का मूल है॥ 190॥

नौमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥
मध्यदिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा॥

पवित्र चैत्र का महीना था, नवमी तिथि थी। शुक्ल पक्ष और भगवान का प्रिय अभिजित मुहूर्त था। दोपहर का समय था। न बहुत सर्दी थी, न धूप (गरमी) थी। वह पवित्र समय सब लोकों को शांति देनेवाला था।

सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। हरषित सुर संतन मन चाऊ॥
बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा। स्रवहिं सकल सरिताऽमृतधारा॥

शीतल, मंद और सुगंधित पवन बह रहा था। देवता हर्षित थे और संतों के मन में (बड़ा) चाव था। वन फूले हुए थे, पर्वतों के समूह मणियों से जगमगा रहे थे और सारी नदियाँ अमृत की धारा बहा रही थीं।

सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि बिमाना॥
गगन बिमल संकुल सुर जूथा। गावहिं गुन गंधर्ब बरूथा॥

जब ब्रह्मा ने वह (भगवान के प्रकट होने का) अवसर जाना तब (उनके समेत) सारे

देवता विमान सजा-सजाकर चले। निर्मल आकाश देवताओं के समूहों से भर गया। गंधर्वों के दल गुणों का गान करने लगे।

बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी। गहगहि गगन दुंदुभी बाजी॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहुबिधि लावहिं निज निज सेवा॥

और सुंदर अंजलियों में सजा-सजाकर पुष्प बरसाने लगे। आकाश में घमाघम नगाड़े बजने लगे। नाग, मुनि और देवता स्तुति करने लगे और बहुत प्रकार से अपनी-अपनी सेवा (उपहार) भेंट करने लगे।

दो० - सुर समूह बिनती करि पहुँचे निज निज धाम।
जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम॥ 191॥

देवताओं के समूह विनती करके अपने-अपने लोक में जा पहुँचे। समस्त लोकों को शांति देनेवाले, जगदाधार प्रभु प्रकट हुए॥ 191॥

छं० - भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥

दीनों पर दया करनेवाले, कौसल्या के हितकारी कृपालु प्रभु प्रकट हुए। मुनियों के मन को हरनेवाले उनके अद्भुत रूप का विचार करके माता हर्ष से भर गई। नेत्रों को आनंद देनेवाला मेघ के समान श्याम शरीर था; चारों भुजाओं में अपने (खास) आयुध (धारण किए हुए) थे, (दिव्य) आभूषण और वनमाला पहने थे, बड़े-बड़े नेत्र थे। इस प्रकार शोभा के समुद्र तथा खर राक्षस को मारनेवाले भगवान प्रकट हुए।

कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता॥
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगटकंता॥

दोनों हाथ जोड़कर माता कहने लगी - हे अनंत! मैं किस प्रकार तुम्हारी स्तुति करूँ। वेद और पुराण तुम को माया, गुण और ज्ञान से परे और परिमाण रहित बतलाते हैं। श्रुतियाँ

और संतजन दया और सुख का समुद्र, सब गुणों का धाम कहकर जिनका गान करते हैं, वही भक्तों पर प्रेम करनेवाले लक्ष्मीपति भगवान मेरे कल्याण के लिए प्रकट हुए हैं।

ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥

वेद कहते हैं कि तुम्हारे प्रत्येक रोम में माया के रचे हुए अनेकों ब्रह्मांडों के समूह (भरे) हैं। वे तुम मेरे गर्भ में रहे - इस हँसी की बात के सुनने पर धीर (विवेकी) पुरुषों की बुद्धि भी स्थिर नहीं रहती (विचलित हो जाती है)। जब माता को ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब प्रभु मुसकराए। वे बहुत प्रकार के चरित्र करना चाहते हैं। अतः उन्होंने (पूर्व जन्म की) सुंदर कथा कहकर माता को समझाया, जिससे उन्हें पुत्र का (वात्सल्य) प्रेम प्राप्त हो।

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥

माता की वह बुद्धि बदल गई, तब वह फिर बोली - हे तात! यह रूप छोड़कर अत्यंत प्रिय बाललीला करो, (मेरे लिए) यह सुख परम अनुपम होगा। (माता का) यह वचन सुनकर देवताओं के स्वामी सुजान भगवान ने बालक (रूप) होकर रोना शुरू कर दिया। (तुलसीदास कहते हैं -) जो इस चरित्र का गान करते हैं, वे हरि का पद पाते हैं और (फिर) संसाररूपी कूप में नहीं गिरते।

दो० - बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥ 192॥

ब्राह्मण, गो, देवता और संतों के लिए भगवान ने मनुष्य का अवतार लिया। वे (अज्ञानमयी, मलिना) माया और उसके गुण (सत, रज, तम) और (बाहरी तथा भीतरी) इंद्रियों से परे हैं। उनका (दिव्य) शरीर अपनी इच्छा से ही बना है (किसी कर्म बंधन से परवश होकर त्रिगुणात्मक भौतिक पदार्थों के द्वारा नहीं)॥ 192॥

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी॥

हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनँद मगन सकल पुरबासी॥

बच्चे के रोने की बहुत ही प्यारी ध्वनि सुनकर सब रानियाँ उतावली होकर दौड़ी चली आईं। दासियाँ हर्षित होकर जहाँ-तहाँ दौड़ीं। सारे पुरवासी आनंद में मग्न हो गए।

दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना। मानहु ब्रह्मानंद समाना॥
परम प्रेम मन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा॥

राजा दशरथ पुत्र का जन्म कानों से सुनकर मानो ब्रह्मानंद में समा गए। मन में अतिशय प्रेम है, शरीर पुलकित हो गया। (आनंद में अधीर हुई) बुद्धि को धीरज देकर (और प्रेम में शिथिल हुए शरीर को सँभालकर) वे उठना चाहते हैं।

जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरें गृह आवा प्रभु सोई॥
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा॥

जिनका नाम सुनने से ही कल्याण होता है, वही प्रभु मेरे घर आए हैं। (यह सोचकर) राजा का मन परम आनंद से पूर्ण हो गया। उन्होंने बाजेवालों को बुलाकर कहा कि बाजा बजाओ।

गुर बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। आए द्विजन सहित नृपद्वारा॥
अनुपम बालक देखेन्हि जाई। रूप रासि गुन कहि न सिराई॥

गुरु वशिष्ठ के पास बुलावा गया। वे ब्राह्मणों को साथ लिए राजद्वार पर आए। उन्होंने जाकर अनुपम बालक को देखा, जो रूप की राशि है और जिसके गुण कहने से समाप्त नहीं होते।

दो० - नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह॥ 193॥

फिर राजा ने नांदीमुख श्राद्ध करके सब जातकर्म-संस्कार आदि किए और ब्राह्मणों को सोना, गो, वस्त्र और मणियों का दान दिया॥ 193॥

ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा॥
सुमनबृष्टि अकास तें होई। ब्रह्मानंद मगन सब लोई॥

ध्वजा, पताका और तोरणों से नगर छा गया। जिस प्रकार से वह सजाया गया, उसका तो वर्णन ही नहीं हो सकता। आकाश से फूलों की वर्षा हो रही है, सब लोग ब्रह्मानंद में मग्न हैं।

बृंद बृंद मिलि चलीं लोगाईं। सहज सिंगार किएँ उठि धाईं॥
कनक कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा॥

स्त्रियाँ झुंड-की-झुंड मिलकर चलीं। स्वाभाविक श्रृंगार किए ही वे उठ दौड़ीं। सोने का कलश लेकर और थालों में मंगल द्रव्य भरकर गाती हुई राजद्वार में प्रवेश करती हैं।

करि आरति नेवछावरि करहीं। बार बार सिसु चरनन्हि परहीं॥
मागध सूत बंदिगन गायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक॥

वे आरती करके निछावर करती हैं और बार-बार बच्चे के चरणों पर गिरती हैं। मागध, सूत, वंदीजन और गवैये रघुकुल के स्वामी के पवित्र गुणों का गान करते हैं।

सर्बस दान दीन्ह सब काहू। जेहिं पावा राखा नहिं ताहू॥
मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा॥

राजा ने सब किसी को भरपूर दान दिया। जिसने पाया उसने भी नहीं रखा (लुटा दिया)। (नगर की) सभी गलियों के बीच-बीच में कस्तूरी, चंदन और केसर की कीच मच गई।

दो० - गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटे सुषमा कंद।
हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर बृंद॥ 194॥

घर-घर मंगलमय बधावा बजने लगा, क्योंकि शोभा के मूल भगवान प्रकट हुए हैं। नगर के स्त्री-पुरुषों के झुंड-के-झुंड जहाँ-तहाँ आनंदमग्न हो रहे हैं॥ 194॥

कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत जनमत भैं ओऊ॥
वह सुख संपति समय समाजा। कहि न सकइ सारद अहिराजा॥

कैकेयी और सुमित्रा - इन दोनों ने भी सुंदर पुत्रों को जन्म दिया। उस सुख, संपत्ति, समय और समाज का वर्णन सरस्वती और सर्पों के राजा शेष भी नहीं कर सकते।

अवधपुरी सोहइ एहि भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती॥

देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी॥

अवधपुरी इस प्रकार सुशोभित हो रही है, मानो रात्रि प्रभु से मिलने आई हो और सूर्य को देखकर मानो मन में सकुचा गई हो, परंतु फिर भी मन में विचार कर वह मानो संध्या बन (कर रह) गई हो।

अगर धूप बहु जनु अँधिआरी। उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी॥
मंदिर मनि समूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इंदु उदारा॥

अगर की धूप का बहुत-सा धुआँ मानो (संध्या का) अंधकार है और जो अबीर उड़ रहा है, वह उसकी ललाई है। महलों में जो मणियों के समूह हैं, वे मानो तारागण हैं। राज महल का जो कलश है, वही मानो श्रेष्ठ चंद्रमा है।

भवन बेदधुनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समयँ जनु सानी॥
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइँ जात न जाना॥

राज भवन में जो अति कोमल वाणी से वेदध्वनि हो रही है, वही मानो समय से (समयानुकूल) सनी हुई पक्षियों की चहचहाहट है। यह कौतुक देखकर सूर्य भी (अपनी चाल) भूल गए। एक महीना उन्होंने जाता हुआ न जाना (अर्थात उन्हें एक महीना वहीं बीत गया)।

दो० - मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ॥ 195॥

महीने भर का दिन हो गया। इस रहस्य को कोई नहीं जानता। सूर्य अपने रथ सहित वहीं रुक गए, फिर रात किस तरह होती॥ 195॥

यह रहस्य काहूँ नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुनगाना॥
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरनत निज भागा॥

यह रहस्य किसी ने नहीं जाना। सूर्यदेव (भगवान राम का) गुणगान करते हुए चले। यह महोत्सव देखकर देवता, मुनि और नाग अपने भाग्य की सराहना करते हुए अपने-अपने घर चले।

औरउ एक कहउँ निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी॥

काकभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ॥

हे पार्वती! तुम्हारी बुद्धि (राम के चरणों में) बहुत दृढ़ है, इसलिए मैं और भी अपनी एक चोरी (छिपाव) की बात कहता हूँ, सुनो। काकभुशुंडि और मैं दोनों वहाँ साथ-साथ थे, परंतु मनुष्य रूप में होने के कारण हमें कोई जान न सका।

परमानंद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले॥
यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई॥

परम आनंद और प्रेम के सुख में फूले हुए हम दोनों मगन मन से गलियों में (तन-मन की सुधि) भूले हुए फिरते थे, परंतु यह शुभ चरित्र वही जान सकता है, जिस पर राम की कृपा हो।

तेहि अवसर जो जेहि बिधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा॥
गज रथ तुरग हेम गो हीरा। दीन्हे नृप नानाबिधि चीरा॥

उस अवसर पर जो जिस प्रकार आया और जिसके मन को जो अच्छा लगा, राजा ने उसे वही दिया। हाथी, रथ, घोड़े, सोना, गायें, हीरे और भाँति-भाँति के वस्त्र राजा ने दिए।

दो० - मन संतोषे सबन्हि के जहँ तहँ देहिं असीस।
सकल तनय चिर जीवहुँ तुलसिदास के ईस॥ 196॥

राजा ने सबके मन को संतुष्ट किया। (इसी से) सब लोग जहाँ-तहाँ आशीर्वाद दे रहे थे कि तुलसीदास के स्वामी सब पुत्र (चारों राजकुमार) चिरजीवी (दीर्घायु) हों॥ 196॥

कछुक दिवस बीते एहि भाँती। जात न जानिअ दिन अरु राती॥
नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी॥

इस प्रकार कुछ दिन बीत गए। दिन और रात जाते हुए जान नहीं पड़ते। तब नामकरण संस्कार का समय जानकर राजा ने ज्ञानी मुनि वशिष्ठ को बुला भेजा।

करि पूजा भूपति अस भाषा। धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा॥
इन्ह के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा॥

मुनि की पूजा करके राजा ने कहा - हे मुनि! आपने मन में जो विचार रखे हों, वे नाम

रखिए। (मुनि ने कहा -) हे राजन! इनके अनुपम नाम हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहूँगा।

जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा॥

ये जो आनंद के समुद्र और सुख की राशि हैं, जिस (आनंदसिंधु) के एक कण से तीनों लोक सुखी होते हैं, उन (आपके सबसे बड़े पुत्र) का नाम 'राम' है, जो सुख का भवन और संपूर्ण लोकों को शांति देनेवाला है।

बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥
जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥

जो संसार का भरण-पोषण करते हैं, उन (आपके दूसरे पुत्र) का नाम 'भरत' होगा। जिनके स्मरण मात्र से शत्रु का नाश होता है, उनका वेदों में प्रसिद्ध 'शत्रुघ्न' नाम है।

दो॰ - लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥ 197॥

जो शुभ लक्षणों के धाम, राम के प्यारे और सारे जगत के आधार हैं, गुरु वशिष्ठ ने उनका 'लक्ष्मण' ऐसा श्रेष्ठ नाम रखा॥ 197॥

धरे नाम गुर हृदयँ बिचारी। बेद तत्त्व नृप तव सुत चारी॥
मुनि धन जन सरबस सिव प्राना। बाल केलि रस तेहिं सुख माना॥

गुरु ने हृदय में विचार कर ये नाम रखे (और कहा -) हे राजन! तुम्हारे चारों पुत्र वेद के तत्त्व (साक्षात परात्पर भगवान) हैं। जो मुनियों के धन, भक्तों के सर्वस्व और शिव के प्राण हैं, उन्होंने (इस समय तुम लोगों के प्रेमवश) बाल लीला के रस में सुख माना है।

बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी॥
भरत सत्रुहन दूनउ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई॥

बचपन से ही राम को अपना परम हितैषी स्वामी जानकर लक्ष्मण ने उनके चरणों में प्रीति जोड़ ली। भरत और शत्रुघ्न दोनों भाइयों में स्वामी और सेवक की जिस प्रीति की

प्रशंसा है, वैसी प्रीति हो गई॥

स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी। निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी॥
चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा॥

श्याम और गौर शरीरवाली दोनों सुंदर जोड़ियों की शोभा को देखकर माताएँ तृण तोड़ती हैं (जिसमें दीठ न लग जाए)। यों तो चारों ही पुत्र शील, रूप और गुण के धाम हैं, तो भी सुख के समुद्र राम सबसे अधिक हैं।

हृदयँ अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा॥
कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना। मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना॥

उनके हृदय में कृपारूपी चंद्रमा प्रकाशित है। उनकी मन को हरनेवाली हँसी उस (कृपारूपी चंद्रमा) की किरणों को सूचित करती है। कभी गोद में (लेकर) और कभी उत्तम पालने में (लिटाकर) माता 'प्यारे ललना!' कहकर दुलार करती है।

दो० - ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥ 198॥

जो सर्वव्यापक, निरंजन (मायारहित), निर्गुण, विनोदरहित और अजन्मे ब्रह्म हैं, वही प्रेम और भक्ति के वश कौसल्या की गोद में (खेल रहे) हैं॥ 198॥

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥

उनके नीलकमल और गंभीर (जल से भरे हुए) मेघ के समान श्याम शरीर में करोड़ों कामदेवों की शोभा है। लाल-लाल चरण कमलों के नखों की (शुभ्र) ज्योति ऐसी मालूम होती है जैसे (लाल) कमल के पत्तों पर मोती स्थिर हो गए हों।

रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा॥

(चरणतलों में) वज्र, ध्वजा और अंकुश के चिह्न शोभित हैं। नूपुर (पैंजनी) की ध्वनि सुनकर मुनियों का भी मन मोहित हो जाता है। कमर में करधनी और पेट पर तीन

रेखाएँ (त्रिवली) हैं। नाभि की गंभीरता को तो वही जानते हैं, जिन्होंने उसे देखा है।

भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी॥
उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा॥

बहुत-से आभूषणों से सुशोभित विशाल भुजाएँ हैं। हृदय पर बाघ के नख की बहुत ही निराली छटा है। छाती पर रत्नों से युक्त मणियों के हार की शोभा और ब्राह्मण (भृगु) के चरण चिह्न को देखते ही मन लुभा जाता है।

कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे॥

कंठ शंख के समान (उतार-चढ़ाववाला, तीन रेखाओं से सुशोभित) है और ठोड़ी बहुत ही सुंदर है। मुख पर असंख्य कामदेवों की छटा छा रही है। दो-दो सुंदर दँतुलियाँ हैं, लाल-लाल ओठ हैं। नासिका और तिलक (के सौंदर्य) का तो वर्णन ही कौन कर सकता है।

सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥

सुंदर कान और बहुत ही सुंदर गाल हैं। मधुर तोतले शब्द बहुत ही प्यारे लगते हैं। जन्म के समय से रखे हुए चिकने और घुँघराले बाल हैं, जिनको माता ने बहुत प्रकार से बनाकर सँवार दिया है।

पीत झगुलिआ तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई॥
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा॥

शरीर पर पीली झँगुली पहनाई हुई है। उनका घुटनों और हाथों के बल चलना मुझे बहुत ही प्यारा लगता है। उनके रूप का वर्णन वेद और शेष भी नहीं कर सकते। उसे वही जानता है, जिसने कभी स्वप्न में भी देखा हो।

दो० - सुख संदोह मोहपर ग्यान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम बस कर सिसुचरित पुनीत॥ 199॥

जो सुख के पुंज, मोह से परे तथा ज्ञान, वाणी और इंद्रियों से अतीत हैं, वे भगवान दशरथ-

कौसल्या के अत्यंत प्रेम के वश होकर पवित्र बाललीला करते हैं॥ 199॥

एहि बिधि राम जगत पितु माता। कोसलपुर बासिन्ह सुखदाता॥
जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी। तिन्ह की यह गति प्रगट भवानी॥

इस प्रकार (संपूर्ण) जगत के माता-पिता राम अवधपुर के निवासियों को सुख देते हैं। जिन्होंने राम के चरणों में प्रीति जोड़ी है, हे भवानी! उनकी यह प्रत्यक्ष गति है (कि भगवान उनके प्रेमवश बाललीला करके उन्हें आनंद दे रहे हैं)।

रघुपति बिमुख जतन कर कोरी। कवन सकइ भव बंधन छोरी॥
जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सों भय भाखे॥

रघुनाथ से विमुख रहकर मनुष्य चाहे करोड़ों उपाय करे, परंतु उसका संसार बंधन कौन छुड़ा सकता है। जिसने सब चराचर जीवों को अपने वश में कर रखा है, वह माया भी प्रभु से भय खाती है।

भृकुटि बिलास नचावइ ताही। अस प्रभु छाड़ि भजिअ कहु काही॥
मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई॥

भगवान उस माया को भौंह के इशारे पर नचाते हैं। ऐसे प्रभु को छोड़कर कहो, (और) किसका भजन किया जाए। मन, वचन और कर्म से चतुराई छोड़कर भजते ही रघुनाथ कृपा करेंगे।

एहि बिधि सिसुबिनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगरबासिन्ह सुख दीन्हा॥
लै उछंग कबहुँक हलरावै। कबहुँ पालने घालि झुलावै॥

इस प्रकार से प्रभु राम ने बालक्रीड़ा की और समस्त नगर निवासियों को सुख दिया। कौसल्या कभी उन्हें गोद में लेकर हिलाती-डुलाती और कभी पालने में लिटाकर झुलाती थीं।

दो० - प्रेम मगन कौसल्या निसि दिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता बालचरित कर गान॥ 200॥

प्रेम में मग्न कौसल्या रात और दिन का बीतना नहीं जानती थीं। पुत्र के स्नेहवश माता

उनके बालचरित्रों का गान किया करतीं॥ 200॥

एक बार जननीं अन्हवाए। करि सिंगार पलनाँ पौढ़ाए॥
निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना॥

एक बार माता ने राम को स्नान कराया और श्रृंगार करके पालने पर पौढ़ा दिया। फिर अपने कुल के इष्टदेव भगवान की पूजा के लिए स्नान किया।

करि पूजा नैबेद्य चढ़ावा। आपु गई जहँ पाक बनावा॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई॥

पूजा करके नैवेद्य चढ़ाया और स्वयं वहाँ गईं, जहाँ रसोई बनाई गई थी। फिर माता वहीं (पूजा के स्थान में) लौट आई और वहाँ आने पर पुत्र को (इष्टदेव भगवान के लिए चढ़ाए हुए नैवेद्य का) भोजन करते देखा।

गै जननी सिसु पहिं भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदयँ कंप मन धीर न होई॥

माता भयभीत होकर (पालने में सोया था, यहाँ किसने लाकर बैठा दिया, इस बात से डरकर) पुत्र के पास गई, तो वहाँ बालक को सोया हुआ देखा। फिर (पूजा स्थान में लौटकर) देखा कि वही पुत्र वहाँ (भोजन कर रहा) है। उनके हृदय में कंप होने लगा और मन को धीरज नहीं होता।

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा॥
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी॥

(वह सोचने लगी कि) यहाँ और वहाँ मैंने दो बालक देखे। यह मेरी बुद्धि का भ्रम है या और कोई विशेष कारण है? प्रभु राम माता को घबड़ाई हुई देखकर मधुर मुस्कान से हँस दिए।

दो० - देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥ 201॥

फिर उन्होंने माता को अपना अखंड अद्भुत रूप दिखलाया, जिसके एक-एक रोम में करोड़ों

ब्रह्मांड लगे हुए हैं॥ 201॥

अगनित रबि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन॥
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ॥

अगणित सूर्य, चंद्रमा, शिव, ब्रह्मा, बहुत-से पर्वत, नदियाँ, समुद्र, पृथ्वी, वन, काल, कर्म, गुण, ज्ञान और स्वभाव देखे और वे पदार्थ भी देखे जो कभी सुने भी न थे।

देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी॥
देखा जीव नचावइ जाही। देखी भगति जो छोरइ ताही॥

सब प्रकार से बलवती माया को देखा कि वह (भगवान के सामने) अत्यंत भयभीत हाथ जोड़े खड़ी है। जीव को देखा, जिसे वह माया नचाती है और (फिर) भक्ति को देखा, जो उस जीव को (माया से) छुड़ा देती है।

तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूदि चरननि सिरु नावा॥
बिसमयवंत देखि महतारी। भए बहुरि सिसुरूप खरारी॥

(माता का) शरीर पुलकित हो गया, मुख से वचन नहीं निकलता। तब आँखें मूँदकर उसने राम के चरणों में सिर नवाया। माता को आश्चर्यचकित देखकर खर के शत्रु राम फिर बाल रूप हो गए।

अस्तुति करि न जाइ भय माना। जगत पिता मैं सुत करि जाना॥
हरि जननी बहुबिधि समुझाई। यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई॥

(माता से) स्तुति भी नहीं की जाती। वह डर गई कि मैंने जगत्पिता परमात्मा को पुत्र करके जाना। हरि ने माता को बहुत प्रकार से समझाया (और कहा -) हे माता! सुनो, यह बात कहीं पर कहना नहीं।

दो० - बार बार कौसल्या बिनय करइ कर जोरि।
अब जनि कबहूँ ब्यापै प्रभु मोहि माया तोरि॥ 202॥

कौसल्या बार-बार हाथ जोड़कर विनय करती हैं कि हे प्रभो! मुझे आपकी माया अब कभी न व्यापे॥ 202॥

बालचरित हरि बहुबिधि कीन्हा। अति अनंद दासन्ह कहँ दीन्हा॥
कछुक काल बीतें सब भाई। बड़े भए परिजन सुखदायी॥

भगवान ने बहुत प्रकार से बाललीलाएँ कीं और अपने सेवकों को अत्यंत आनंद दिया। कुछ समय बीतने पर चारों भाई बड़े होकर कुटुंबियों को सुख देनेवाले हुए।

चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई॥
परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा॥

तब गुरु ने जाकर चूड़ाकर्म-संस्कार किया। ब्राह्मणों ने फिर बहुत-सी दक्षिणा पाई। चारों सुंदर राजकुमार बड़े ही मनोहर अपार चरित्र करते फिरते हैं।

मन क्रम बचन अगोचर जोई। दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई॥
भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥

जो मन, वचन और कर्म से अगोचर हैं, वही प्रभु दशरथ के आँगन में विचर रहे हैं। भोजन करने के समय जब राजा बुलाते हैं, तब वे अपने बाल सखाओं के समाज को छोड़कर नहीं आते।

कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई॥
निगम नेति सिव अंत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा॥

कौसल्या जब बुलाने जाती हैं, तब प्रभु ठुमुक-ठुमुक भाग चलते हैं। जिनका वेद 'नेति' (इतना ही नहीं) कहकर निरूपण करते हैं और शिव ने जिनका अंत नहीं पाया, माता उन्हें हठपूर्वक पकड़ने के लिए दौड़ती हैं।

धूसर धूरि भरें तनु आए। भूपति बिहसि गोद बैठाए॥

वे शरीर में धूल लपेटे हुए आए और राजा ने हँसकर उन्हें गोद में बैठा लिया।

दो० - भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ॥ 203॥

भोजन करते हैं, पर चित्त चंचल है। अवसर पाकर मुँह में दही-भात लपटाए किलकारी

मारते हुए इधर-उधर भाग चले॥ 203॥

बालचरित अति सरल सुहाए। सारद सेष संभु श्रुति गाए॥
जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता। ते जन बंचित किए बिधाता॥

राम की बहुत ही सरल (भोली) और सुंदर (मनभावनी) बाललीलाओं का सरस्वती, शेष, शिव और वेदों ने गान किया है। जिनका मन इन लीलाओं में अनुरक्त नहीं हुआ, विधाता ने उन मनुष्यों को वंचित कर दिया (नितांत भाग्यहीन बनाया)।

भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥
गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

ज्यों ही सब भाई कुमारावस्था के हुए, त्यों ही गुरु, पिता और माता ने उनका यज्ञोपवीत संस्कार कर दिया। रघुनाथ (भाइयों सहित) गुरु के घर में विद्या पढ़ने गए और थोड़े ही समय में उनको सब विद्याएँ आ गईं।

जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥
बिद्या बिनय निपुन गुन सीला। खेलहिं खेल सकल नृप लीला॥

चारों वेद जिनके स्वाभाविक श्वास हैं, वे भगवान पढ़ें, यह बड़ा कौतुक (अचरज) है। चारों भाई विद्या, विनय, गुण और शील में (बड़े) निपुण हैं और सब राजाओं की लीलाओं के ही खेल खेलते हैं।

करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा॥
जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई॥

हाथों में बाण और धनुष बहुत ही शोभा देते हैं। रूप देखते ही चराचर (जड़-चेतन) मोहित हो जाते हैं। वे सब भाई जिन गलियों में खेलते (हुए निकलते) हैं, उन गलियों के सभी स्त्री-पुरुष उनको देखकर स्नेह से शिथिल हो जाते हैं अथवा ठिठककर रह जाते हैं।

दो० - कोसलपुर बासी नर नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहु ते प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल॥ 204॥

कोसलपुर के रहनेवाले स्त्री, पुरुष, बूढ़े और बालक सभी को कृपालु राम प्राणों से भी

बढ़कर प्रिय लगते हैं॥ 204॥

बंधु सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥
पावन मृग मारहिं जियँ जानी। दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी॥

राम भाइयों और इष्ट मित्रों को बुलाकर साथ ले लेते हैं और नित्य वन में जाकर शिकार खेलते हैं। मन में पवित्र समझकर मृगों को मारते हैं और प्रतिदिन लाकर राजा (दशरथ) को दिखलाते हैं।

जे मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे॥
अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता अग्या अनुसरहीं॥

जो मृग राम के बाण से मारे जाते थे, वे शरीर छोड़कर देवलोक को चले जाते थे। राम अपने छोटे भाइयों और सखाओं के साथ भोजन करते हैं और माता-पिता की आज्ञा का पालन करते हैं।

जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा॥
बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई॥

जिस प्रकार नगर के लोग सुखी हों, कृपानिधान राम वही संयोग (लीला) करते हैं। वे मन लगाकर वेद-पुराण सुनते हैं और फिर स्वयं छोटे भाइयों को समझाकर कहते हैं।

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥

रघुनाथ प्रातःकाल उठकर माता-पिता और गुरु को मस्तक नवाते हैं और आज्ञा लेकर नगर का काम करते हैं। उनके चरित्र देख-देखकर राजा मन में बड़े हर्षित होते हैं।

दो० - ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप॥ 205॥

जो व्यापक, अकल (निरवयव), इच्छारहित, अजन्मा और निर्गुण है तथा जिनका न नाम है न रूप, वही भगवान भक्तों के लिए नाना प्रकार के अनुपम चरित्र करते हैं॥ 205॥

यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिलि कथा सुनहु मन लाई॥

बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी॥

यह सब चरित्र मैंने गाकर (बखानकर) कहा। अब आगे की कथा मन लगाकर सुनो। ज्ञानी महामुनि विश्वामित्र वन में शुभ आश्रम (पवित्र स्थान) जानकर बसते थे,

जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहि डरहीं॥
देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं॥

जहाँ वे मुनि जप, यज्ञ और योग करते थे, परंतु मारीच और सुबाहु से बहुत डरते थे। यज्ञ देखते ही राक्षस दौड़ पड़ते थे और उपद्रव मचाते थे, जिससे मुनि (बहुत) दुःख पाते थे।

गाधितनय मन चिंता ब्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी॥
तब मुनिबर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा॥

गाधि के पुत्र विश्वामित्र के मन में चिंता छा गई कि ये पापी राक्षस भगवान के (मारे) बिना न मरेंगे। तब श्रेष्ठ मुनि ने मन में विचार किया कि प्रभु ने पृथ्वी का भार हरने के लिए अवतार लिया है।

एहूँ मिस देखौं पद जाई। करि बिनती आनौं दोउ भाई॥
ग्यान बिराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना॥

इसी बहाने जाकर मैं उनके चरणों का दर्शन करूँ और विनती करके दोनों भाइयों को ले आऊँ। (अहा!) जो ज्ञान, वैराग्य और सब गुणों के धाम हैं, उन प्रभु को मैं नेत्र भरकर देखूँगा।

दो॰ - बहुबिधि करत मनोरथ जात लागि नहिं बार।
करि मज्जन सरऊ जल गए भूप दरबार॥ 206॥

बहुत प्रकार से मनोरथ करते हुए जाने में देर नहीं लगी। सरयू के जल में स्नान करके वे राजा के दरवाजे पर पहुँचे॥ 206॥

मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै बिप्र समाजा॥
करि दंडवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी॥

राजा ने जब मुनि का आना सुना, तब वे ब्राह्मणों के समाज को साथ लेकर मिलने गए

और दंडवत करके मुनि का सम्मान करते हुए उन्हें लाकर अपने आसन पर बैठाया।

चरन पखारि कीन्हि अति पूजा। मो सम आजु धन्य नहिं दूजा॥
बिबिध भाँति भोजन करवावा। मुनिबर हृदयँ हरष अति पावा॥

चरणों को धोकर बहुत पूजा की और कहा - मेरे समान धन्य आज दूसरा कोई नहीं है। फिर अनेक प्रकार के भोजन करवाए, जिससे श्रेष्ठ मुनि ने अपने हृदय में बहुत ही हर्ष प्राप्त किया।

पुनि चरननि मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी॥
भए मगन देखत मुख सोभा। जनु चकोर पूरन ससि लोभा॥

फिर राजा ने चारों पुत्रों को मुनि के चरणों पर डाल दिया (उनसे प्रणाम कराया)। राम को देखकर मुनि अपनी देह की सुधि भूल गए। वे राम के मुख की शोभा देखते ही ऐसे मग्न हो गए, मानो चकोर पूर्ण चंद्रमा को देखकर लुभा गया हो।

तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावउँ बारा॥

तब राजा ने मन में हर्षित होकर ये वचन कहे - हे मुनि! इस प्रकार कृपा तो आपने कभी नहीं की। आज किस कारण से आपका शुभागमन हुआ? कहिए, मैं उसे पूरा करने में देर नहीं लगाऊँगा।

असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा॥

(मुनि ने कहा -) हे राजन! राक्षसों के समूह मुझे बहुत सताते हैं, इसीलिए मैं तुमसे कुछ माँगने आया हूँ। छोटे भाई सहित रघुनाथ को मुझे दो। राक्षसों के मारे जाने पर मैं सनाथ (सुरक्षित) हो जाऊँगा।

दो० - देहु भूप मन हरषित तजहु मोह अग्यान।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहँ अति कल्यान॥ 207॥

हे राजन! प्रसन्न मन से इनको दो, मोह और अज्ञान को छोड़ दो। हे स्वामी! इससे तुमको

धर्म और सुयश की प्राप्ति होगी और इनका परम कल्याण होगा॥ 207॥

सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी॥
चौथेंपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी॥

इस अत्यंत अप्रिय वाणी को सुनकर राजा का हृदय काँप उठा और उनके मुख की कांति फीकी पड़ गई। (उन्होंने कहा -) हे ब्राह्मण! मैंने चौथेपन में चार पुत्र पाए हैं, आपने विचार कर बात नहीं कही।

मागहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउँ आजु सहरोसा॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं॥

हे मुनि! आप पृथ्वी, गो, धन और खजाना माँग लीजिए, मैं आज बड़े हर्ष के साथ अपना सर्वस्व दे दूँगा। देह और प्राण से अधिक प्यारा कुछ भी नहीं होता, मैं उसे भी एक पल में दे दूँगा।

सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुंदर सुत परम किसोरा॥

सभी पुत्र मुझे प्राणों के समान प्यारे हैं, उनमें भी हे प्रभो! राम को तो (किसी प्रकार भी) देते नहीं बनता। कहाँ अत्यंत डरावने और क्रूर राक्षस और कहाँ परम किशोर अवस्था के (बिलकुल सुकुमार) मेरे सुंदर पुत्र!

सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी। हृदयँ हरष माना मुनि ग्यानी॥
तब बसिष्ट बहुबिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहँ पावा॥

प्रेम-रस में सनी हुई राजा की वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि विश्वामित्र ने हृदय में बड़ा हर्ष माना। तब वशिष्ठ ने राजा को बहुत प्रकार से समझाया, जिससे राजा का संदेह नाश को प्राप्त हुआ।

अति आदर दोउ तनय बोलाए। हृदयँ लाइ बहु भाँति सिखाए॥
मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥

राजा ने बड़े ही आदर से दोनों पुत्रों को बुलाया और हृदय से लगाकर बहुत प्रकार से उन्हें शिक्षा दी। (फिर कहा -) हे नाथ! ये दोनों पुत्र मेरे प्राण हैं। हे मुनि! (अब) आप ही इनके

पिता हैं, दूसरा कोई नहीं।

दो॰ - सौंपे भूप रिषिहि सुत बहुबिधि देइ असीस।
जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस॥ 208(क)॥

राजा ने बहुत प्रकार से आशीर्वाद देकर पुत्रों को ऋषि के हवाले कर दिया। फिर प्रभु माता के महल में गए और उनके चरणों में सिर नवाकर चले॥ 208(क)॥

सो॰ - पुरुष सिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिस्व कारन करन॥ 208(ख)॥

पुरुषों में सिंह रूप दोनों भाई (राम-लक्ष्मण) मुनि का भय हरने के लिए प्रसन्न होकर चले। वे कृपा के समुद्र, धीर बुद्धि और संपूर्ण विश्व के कारण के भी कारण हैं॥ 208(ख)॥

अरुन नयन उर बाहु बिसाला। नील जलज तनु स्याम तमाला॥
कटि पट पीत कसें बर भाथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा॥

भगवान के लाल नेत्र हैं, चौड़ी छाती और विशाल भुजाएँ हैं, नील कमल और तमाल के वृक्ष की तरह श्याम शरीर है, कमर में पीतांबर (पहने) और सुंदर तरकस कसे हुए हैं। दोनों हाथों में (क्रमशः) सुंदर धनुष और बाण हैं।

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। बिस्वामित्र महानिधि पाई॥
प्रभु ब्रह्मन्यदेव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना॥

श्याम और गौर वर्ण के दोनों भाई परम सुंदर हैं। विश्वामित्र को महान निधि प्राप्त हो गई। (वे सोचने लगे -) मैं जान गया कि प्रभु ब्रह्मण्यदेव (ब्राह्मणों के भक्त) हैं। मेरे लिए भगवान ने अपने पिता को भी छोड़ दिया।

चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥

मार्ग में चले जाते हुए मुनि ने ताड़का को दिखलाया। शब्द सुनते ही वह क्रोध करके दौड़ी। राम ने एक ही बाण से उसके प्राण हर लिए और दीन जानकर उसको निजपद (अपना दिव्य स्वरूप) दिया।

तब रिषि निज नाथहि जियँ चीन्ही। बिद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्ही॥
जाते लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तनु तेज प्रकासा॥

तब ऋषि विश्वामित्र ने प्रभु को मन में विद्या का भंडार समझते हुए भी (लीला को पूर्ण करने के लिए) ऐसी विद्या दी, जिससे भूख-प्यास न लगे और शरीर में अतुलित बल और तेज का प्रकाश हो।

दो० - आयुध सर्ब समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि।
कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि॥ 209॥

सब अस्त्र-शस्त्र समर्पण करके मुनि प्रभु राम को अपने आश्रम में ले आए और उन्हें परम हितू जानकर भक्तिपूर्वक कंद, मूल और फल का भोजन कराया॥ 209॥

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख कीं रखवारी॥

सबेरे रघुनाथ ने मुनि से कहा - आप जाकर निडर होकर यज्ञ कीजिए। यह सुनकर सब मुनि हवन करने लगे। आप (राम) यज्ञ की रखवाली पर रहे।

सुनि मारीच निसाचर क्रोही। लै सहाय धावा मुनिद्रोही॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा॥

यह समाचार सुनकर मुनियों का शत्रु क्रोधी राक्षस मारीच अपने सहायकों को लेकर दौड़ा। राम ने बिना फलवाला बाण उसको मारा, जिससे वह सौ योजन के विस्तारवाले समुद्र के पार जा गिरा।

पावक सर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटकु सँघारा॥
मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति करहिं देव मुनि झारी॥

फिर सुबाहु को अग्निबाण मारा। इधर छोटे भाई लक्ष्मण ने राक्षसों की सेना का संहार कर डाला। इस प्रकार राम ने राक्षसों को मारकर ब्राह्मणों को निर्भय कर दिया। तब सारे देवता और मुनि स्तुति करने लगे।

तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्हि बिप्रन्ह पर दाया॥

भगति हेतु बहुत कथा पुराना। कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना॥

रघुनाथ ने वहाँ कुछ दिन और रहकर ब्राह्मणों पर दया की। भक्ति के कारण ब्राह्मणों ने उन्हें पुराणों की बहुत-सी कथाएँ कहीं, यद्यपि प्रभु सब जानते थे।

तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिअ जाई॥
धनुषजग्य सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिबर के साथा॥

तदंतर मुनि ने आदरपूर्वक समझाकर कहा - हे प्रभो! चलकर एक चरित्र देखिए। रघुकुल के स्वामी राम धनुषयज्ञ (की बात) सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र के साथ प्रसन्न होकर चले।

आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कहा बिसेषी॥

मार्ग में एक आश्रम दिखाई पड़ा। वहाँ पशु-पक्षी, कोई भी जीव-जंतु नहीं था। पत्थर की एक शिला को देखकर प्रभु ने पूछा, तब मुनि ने विस्तारपूर्वक सब कथा कही।

दो० - गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर॥ 210॥

गौतम मुनि की स्त्री अहल्या शापवश पत्थर की देह धारण किए बड़े धीरज से आपके चरणकमलों की धूलि चाहती है। हे रघुवीर! इस पर कृपा कीजिए॥ 210॥

छं० - परसत पद पावन सोकनसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही॥

राम के पवित्र और शोक को नाश करनेवाले चरणों का स्पर्श पाते ही सचमुच वह तपोमूर्ति अहल्या प्रकट हो गई। भक्तों को सुख देनेवाले रघुनाथ को देखकर वह हाथ जोड़कर सामने खड़ी रह गई। अत्यंत प्रेम के कारण वह अधीर हो गई। उसका शरीर पुलकित हो उठा, मुख से वचन कहने में नहीं आते थे। वह अत्यंत बड़भागिनी अहल्या प्रभु के चरणों से लिपट गई और उसके दोनों नेत्रों से जल की धारा बहने लगी।

धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति कृपाँ भगति पाई।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई॥
मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपु जन सुखदायी।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई॥

फिर उसने मन में धीरज धरकर प्रभु को पहचाना और रघुनाथ की कृपा से भक्ति प्राप्त की। तब अत्यंत निर्मल वाणी से उसने (इस प्रकार) स्तुति प्रारंभ की - हे ज्ञान से जानने योग्य रघुनाथ! आपकी जय हो! मैं (सहज ही) अपवित्र स्त्री हूँ, और हे प्रभो! आप जगत को पवित्र करनेवाले, भक्तों को सुख देनेवाले और रावण के शत्रु हैं। हे कमलनयन! हे संसार (जन्म-मृत्यु) के भय से छुड़ानेवाले! मैं आपकी शरण आई हूँ, (मेरी) रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भव मोचन इहइ लाभ संकर जाना॥
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना॥

मुनि ने जो मुझे शाप दिया, सो बहुत ही अच्छा किया। मैं उसे अत्यंत अनुग्रह (करके) मानती हूँ कि जिसके कारण मैंने संसार से छुड़ानेवाले हरि (आप) को नेत्र भरकर देखा। इसी (आपके दर्शन) को शंकर सबसे बड़ा लाभ समझते हैं। हे प्रभो! मैं बुद्धि की बड़ी भोली हूँ, मेरी एक विनती है। हे नाथ ! मैं और कोई वर नहीं माँगती, केवल यही चाहती हूँ कि मेरा मनरूपी भौंरा आपके चरण-कमल की रज के प्रेमरूपी रस का सदा पान करता रहे।

जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी॥
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पति लोक अनंद भरी॥

जिन चरणों से परमपवित्र देवनदी गंगा प्रकट हुईं, जिन्हें शिव ने सिर पर धारण किया और जिन चरणकमलों को ब्रह्मा पूजते हैं, कृपालु हरि (आप) ने उन्हीं को मेरे सिर पर रखा। इस प्रकार (स्तुति करती हुई) बार-बार भगवान के चरणों में गिरकर, जो मन को बहुत ही अच्छा लगा, उस वर को पाकर गौतम की स्त्री अहल्या आनंद में भरी हुई पति

लोक को चली गई।

दो॰ - अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित दयाल।
तुलसिदास सठ तेहि भजु छाड़ि कपट जंजाल॥ 211॥

प्रभु राम ऐसे दीनबंधु और बिना ही कारण दया करनेवाले हैं। तुलसीदास कहते हैं, हे शठ (मन)! तू कपट-जंजाल छोड़कर उन्हीं का भजन कर॥ 211॥

चले राम लछिमन मुनि संगा। गए जहाँ जग पावनि गंगा॥
गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥

राम और लक्ष्मण मुनि के साथ चले। वे वहाँ गए, जहाँ जगत को पवित्र करनेवाली गंगा थीं। गाधि के पुत्र विश्वामित्र ने वह सब कथा कह सुनाई जिस प्रकार देवनदी गंगा पृथ्वी पर आई थीं।

तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाए। बिबिध दान महिदेवन्हि पाए॥
हरषि चले मुनि बृंद सहाया। बेगि बिदेह नगर निअराया॥

तब प्रभु ने ऋषियों सहित (गंगा में) स्नान किया। ब्राह्मणों ने भाँति-भाँति के दान पाए। फिर मुनिवृंद के साथ वे प्रसन्न होकर चले और शीघ्र ही जनकपुर के निकट पहुँच गए।

पुर रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत बिसेषी॥
बापीं कूप सरित सर नाना। सलिल सुधासम मनि सोपाना॥

राम ने जब जनकपुर की शोभा देखी, तब वे छोटे भाई लक्ष्मण सहित अत्यंत हर्षित हुए। वहाँ अनेकों बावलियाँ, कुएँ, नदी और तालाब हैं, जिनमें अमृत के समान जल है और मणियों की सीढ़ियाँ (बनी हुई) हैं।

गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा। कूजत कल बहुबरन बिहंगा॥
बरन बरन बिकसे बनजाता। त्रिबिध समीर सदा सुखदाता॥

मकरंद-रस से मतवाले होकर भौंरे सुंदर गुंजार कर रहे हैं। रंग-बिरंगे (बहुत- से) पक्षी मधुर शब्द कर रहे हैं। रंग-रंग के कमल खिले हैं। सदा (सब ऋतुओं में) सुख देनेवाला शीतल, मंद, सुगंध पवन बह रहा है।

दो० - सुमन बाटिका बाग बन बिपुल बिहंग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवत सोहत पुर चहुँ पास॥ 212।

पुष्प वाटिका (फुलवारी), बाग और वन, जिनमें बहुत-से पक्षियों का निवास है, फूलते, फलते और सुंदर पत्तों से लदे हुए नगर के चारों ओर सुशोभित हैं॥ 212॥

बनइ न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहँइँ लोभाई॥
चारु बजारु बिचित्र अँबारी। मनिमय बिधि जनु स्वकर सँवारी॥

नगर की सुंदरता का वर्णन करते नहीं बनता। मन जहाँ जाता है, वहीं लुभा जाता (रम जाता) है। सुंदर बाजार है, मणियों से बने हुए विचित्र छज्जे हैं, मानो ब्रह्मा ने उन्हें अपने हाथों से बनाया है।

धनिक बनिक बर धनद समाना। बैठे सकल बस्तु लै नाना।
चौहट सुंदर गलीं सुहाई। संतत रहहिं सुगंध सिंचाई॥

कुबेर के समान श्रेष्ठ धनी व्यापारी सब प्रकार की अनेक वस्तुएँ लेकर (दुकानों में) बैठे हैं। सुंदर चौराहे और सुहावनी गलियाँ सदा सुगंध से सिंची रहती हैं।

मंगलमय मंदिर सब केरें। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरें॥
पुर नर नारि सुभग सुचि संता। धरमसील ग्यानी गुनवंता॥

सबके घर मंगलमय हैं और उन पर चित्र कढ़े हुए हैं, जिन्हें मानो कामदेवरूपी चित्रकार ने अंकित किया है। नगर के (सभी) स्त्री-पुरुष सुंदर, पवित्र, साधु स्वभाववाले, धर्मात्मा, ज्ञानी और गुणवान हैं।

अति अनूप जहँ जनक निवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू॥
होत चकित चित कोट बिलोकी। सकल भुवन सोभा जनु रोकी॥

जहाँ जनक का अत्यंत अनुपम (सुंदर) निवास स्थान (महल) है, वहाँ के विलास (ऐश्वर्य) को देखकर देवता भी चकित (स्तंभित) हो जाते हैं (मनुष्यों की तो बात ही क्या!)। कोट (राजमहल के परकोटे) को देखकर चित्त चकित हो जाता है, (ऐसा मालूम होता है) मानो उसने समस्त लोकों की शोभा को रोक (घेर) रखा है।

दो० - धवल धाम मनि पुरट पट सुघटित नाना भाँति।

सिय निवास सुंदर सदन सोभा किमि कहि जाति॥ 213॥

उज्ज्वल महलों में अनेक प्रकार के सुंदर रीति से बने हुए मणि जटित सोने की जरी के परदे लगे हैं। सीता के रहने के सुंदर महल की शोभा का वर्णन किया ही कैसे जा सकता है॥ 213॥

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा॥
बनी बिसाल बाजि गज साला। हय गय रथ संकुल सब काला॥

राजमहल के सब दरवाजे (फाटक) सुंदर हैं, जिनमें वज्र के (मजबूत अथवा हीरों के चमकते हुए) किवाड़ लगे हैं। वहाँ (मातहत) राजाओं, नटों, मागधों और भाटों की भीड़ लगी रहती है। घोड़ों और हाथियों के लिए बहुत बड़ी-बड़ी घुड़सालें और गजशालाएँ (फीलखाने) बनी हुई हैं; जो सब समय घोड़े, हाथी और रथों से भरी रहती हैं।

सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृपगृह सरिस सदन सब केरे॥
पुर बाहेर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा॥

बहुत-से शूरवीर, मंत्री और सेनापति हैं। उन सबके घर भी राजमहल सरीखे ही हैं। नगर के बाहर तालाब और नदी के निकट जहाँ-तहाँ बहुत-से राजा लोग उतरे हुए (डेरा डाले हुए) हैं।

देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई।
कौसिक कहेउ मोर मनु माना। इहाँ रहिअ रघुबीर सुजाना॥

(वहीं) आमों का एक अनुपम बाग देखकर, जहाँ सब प्रकार के सुभीते थे और जो सब तरह से सुहावना था, विश्वामित्र ने कहा - हे सुजान रघुवीर! मेरा मन कहता है कि यहीं रहा जाए।

भलेहिं नाथ कहि कृपानिकेता। उतरे तहँ मुनि बृंद समेता॥
बिस्वामित्र महामुनि आए। समाचार मिथिलापति पाए॥

कृपा के धाम राम 'बहुत अच्छा स्वामिन्!' कहकर वहीं मुनियों के समूह के साथ ठहर गए। मिथिलापति जनक ने जब यह समाचार पाया कि महामुनि विश्वामित्र आए हैं,

दो० - संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बर गुर ग्याति।

चले मिलन मुनिनायकहि मुदित राउ एहि भाँति॥ 214॥

तब उन्होंने पवित्र हृदय के मंत्री बहुत-से योद्धा, श्रेष्ठ ब्राह्मण, गुरु (शतानंद) और अपनी जाति के श्रेष्ठ लोगों को साथ लिया और इस प्रकार प्रसन्नता के साथ राजा मुनियों के स्वामी विश्वामित्र से मिलने चले॥ 214॥

कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा। दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा॥
बिप्रबृंद सब सादर बंदे। जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे॥

राजा ने मुनि के चरणों पर मस्तक रखकर प्रणाम किया। मुनियों के स्वामी विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। फिर सारी ब्राह्मणमंडली को आदर सहित प्रणाम किया और अपना बड़ा भाग्य जानकर राजा आनंदित हुए।

कुसल प्रस्न कहि बारहिं बारा। बिस्वामित्र नृपहि बैठारा॥
तेहि अवसर आए दोउ भाई। गए रहे देखन फुलवाई॥

बार-बार कुशल प्रश्न करके विश्वामित्र ने राजा को बैठाया। उसी समय दोनों भाई आ पहुँचे, जो फुलवाड़ी देखने गए थे।

स्याम गौर मृदु बयस किसोरा। लोचन सुखद बिस्व चित चोरा॥
उठे सकल जब रघुपति आए। बिस्वामित्र निकट बैठाए॥

सुकुमार किशोर अवस्थावाले श्याम और गौर वर्ण के दोनों कुमार नेत्रों को सुख देनेवाले और सारे विश्व के चित्त को चुरानेवाले हैं। जब रघुनाथ आए तब सभी (उनके रूप एवं तेज से प्रभावित होकर) उठकर खड़े हो गए। विश्वामित्र ने उनको अपने पास बैठा लिया।

भए सब सुखी देखि दोउ भ्राता। बारि बिलोचन पुलकित गाता॥
मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥

दोनों भाइयों को देखकर सभी सुखी हुए। सबके नेत्रों में जल भर आया और शरीर रोमांचित हो उठे। राम की मधुर मनोहर मूर्ति को देखकर विदेह (जनक) विशेष रूप से विदेह (देह की सुध-बुध से रहित) हो गए।

दो० - प्रेम मगन मनु जानि नृपु करि बिबेकु धरि धीर।

बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु गदगद गिरा गभीर॥ 215॥

मन को प्रेम में मग्न जान राजा जनक ने विवेक का आश्रय लेकर धीरज धारण किया और मुनि के चरणों में सिर नवाकर गद्‌गद् (प्रेमभरी) गंभीर वाणी से कहा - ॥ 215॥

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥

हे नाथ! कहिए, ये दोनों सुंदर बालक मुनिकुल के आभूषण हैं या किसी राजवंश के पालक? अथवा जिसका वेदों ने 'नेति' कहकर गान किया है कहीं वह ब्रह्म तो युगल रूप धरकर नहीं आया है?

सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
ताते प्रभु पूछउँ सतिभाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥

मेरा मन जो स्वभाव से ही वैराग्य रूप (बना हुआ) है, (इन्हें देखकर) इस तरह मुग्ध हो रहा है, जैसे चंद्रमा को देखकर चकोर। हे प्रभो! इसलिए मैं आपसे सत्य (निश्छल) भाव से पूछता हूँ। हे नाथ! बताइए, छिपाव न कीजिए।

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥
कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका॥

इनको देखते ही अत्यंत प्रेम के वश होकर मेरे मन ने जबरदस्ती ब्रह्मसुख को त्याग दिया है। मुनि ने हँसकर कहा - हे राजन! आपने ठीक (यथार्थ ही) कहा। आपका वचन मिथ्या नहीं हो सकता।

ए प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। मन मुसुकाहिं रामु सुनि बानी॥
रघुकुल मनि दसरथ के जाए। मम हित लागि नरेस पठाए॥

जगत में जहाँ तक (जितने भी) प्राणी हैं, ये सभी को प्रिय हैं। मुनि की (रहस्य भरी) वाणी सुनकर राम मन-ही-मन मुसकराते हैं। (तब मुनि ने कहा -) ये रघुकुल मणि महाराज दशरथ के पुत्र हैं। मेरे हित के लिए राजा ने इन्हें मेरे साथ भेजा है।

दो॰ - रामु लखनु दोउ बंधुबर रूप सील बल धाम।

मख राखेउ सबु साखि जगु जिते असुर संग्राम॥ 216॥

ये राम और लक्ष्मण दोनों श्रेष्ठ भाई रूप, शील और बल के धाम हैं। सारा जगत (इस बात का) साक्षी है कि इन्होंने युद्ध में असुरों को जीतकर मेरे यज्ञ की रक्षा की है॥ 216॥

मुनि तव चरन देखि कह राऊ। कहि न सकउँ निज पुन्य प्रभाऊ॥
सुंदर स्याम गौर दोउ भ्राता। आनँदहू के आनँद दाता॥

राजा ने कहा - हे मुनि! आपके चरणों के दर्शन कर मैं अपना पुण्य प्रभाव कह नहीं सकता। ये सुंदर श्याम और गौर वर्ण के दोनों भाई आनंद को भी आनंद देनेवाले हैं।

इन्ह कै प्रीति परसपर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि॥
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू॥

इनकी आपस की प्रीति बड़ी पवित्र और सुहावनी है, वह मन को बहुत भाती है, पर (वाणी से) कही नहीं जा सकती। विदेह (जनक) आनंदित होकर कहते हैं - हे नाथ! सुनिए, ब्रह्म और जीव की तरह इनमें स्वाभाविक प्रेम है।

पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू॥
मुनिहि प्रसंसि नाइ पद सीसू। चलेउ लवाइ नगर अवनीसू॥

राजा बार-बार प्रभु को देखते हैं (दृष्टि वहाँ से हटना ही नहीं चाहती)। (प्रेम से) शरीर पुलकित हो रहा है और हृदय में बड़ा उत्साह है। (फिर) मुनि की प्रशंसा करके और उनके चरणों में सिर नवाकर राजा उन्हें नगर में लिवा चले।

सुंदर सदनु सुखद सब काला। तहाँ बासु लै दीन्ह भुआला॥
करि पूजा सब बिधि सेवकाई। गयउ राउ गृह बिदा कराई॥

एक सुंदर महल जो सब समय (सभी ऋतुओं में) सुखदायक था, वहाँ राजा ने उन्हें ले जाकर ठहराया। तदनंतर सब प्रकार से पूजा और सेवा करके राजा विदा माँगकर अपने घर गए।

दो० - रिषय संग रघुबंस मनि करि भोजनु बिश्रामु।
बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जामु॥ 217॥

रघुकुल के शिरोमणि प्रभु राम ऋषियों के साथ भोजन और विश्राम करके भाई लक्ष्मण समेत बैठे। उस समय पहरभर दिन रह गया था॥ 217॥

लखन हृदयँ लालसा बिसेषी। जाइ जनकपुर आइअ देखी॥
प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं। प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं॥

लक्ष्मण के हृदय में विशेष लालसा है कि जाकर जनकपुर देख आएँ, परंतु प्रभु राम का डर है और फिर मुनि से भी सकुचाते हैं, इसलिए प्रकट में कुछ नहीं कहते, मन-ही-मन मुसकरा रहे हैं।

राम अनुज मन की गति जानी। भगत बछलता हियँ हुलसानी॥
परम बिनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुर अनुसासन पाई॥

(अंतर्यामी) राम ने छोटे भाई के मन की दशा जान ली, (तब) उनके हृदय में भक्तवत्सलता उमड़ आई। वे गुरु की आज्ञा पाकर बहुत ही विनय के साथ सकुचाते हुए मुसकराकर बोले।

नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जौं राउर आयसु मैं पावौं। नगर देखाइ तुरत लै आवौं॥

हे नाथ! लक्ष्मण नगर देखना चाहते हैं, किंतु प्रभु (आप) के डर और संकोच के कारण स्पष्ट नहीं कहते। यदि आपकी आज्ञा पाऊँ, तो मैं इनको नगर दिखलाकर तुरंत ही (वापस) ले आऊँ।

सुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती। कस न राम तुम्ह राखहु नीती॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता। प्रेम बिबस सेवक सुखदाता॥

यह सुनकर मुनीश्वर विश्वामित्र ने प्रेम सहित वचन कहे - हे राम! तुम नीति की रक्षा कैसे न करोगे, हे तात! तुम धर्म की मर्यादा का पालन करनेवाले और प्रेम के वशीभूत होकर सेवकों को सुख देनेवाले हो।

दो० - जाइ देखि आवहु नगरु सुख निधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सब के नयन सुंदर बदन देखाइ॥ 218॥

सुख के निधान दोनों भाई जाकर नगर देख आओ। अपने सुंदर मुख दिखलाकर सब

(नगर निवासियों) के नेत्रों को सफल करो॥ 218॥

मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता। चले लोक लोचन सुख दाता॥
बालक बृंद देखि अति सोभा। लगे संग लोचन मनु लोभा॥

सब लोकों के नेत्रों को सुख देनेवाले दोनों भाई मुनि के चरणकमलों की वंदना करके चले। बालकों के झुंड इन (के सौंदर्य) की अत्यंत शोभा देखकर साथ लग गए। उनके नेत्र और मन (इनकी माधुरी पर) लुभा गए।

पीत बसन परिकर कटि भाथा। चारु चाप सर सोहत हाथा॥
तन अनुहरत सुचंदन खोरी। स्यामल गौर मनोहर जोरी॥

(दोनों भाइयों के) पीले रंग के वस्त्र हैं, कमर के (पीले) दुपट्टों में तरकस बँधे हैं। हाथों में सुंदर धनुष-बाण सुशोभित हैं। (श्याम और गौर वर्ण के) शरीरों के अनुकूल (अर्थात जिस पर जिस रंग का चंदन अधिक फबे उस पर उसी रंग के) सुंदर चंदन की खौर लगी है। साँवरे और गोरे (रंग) की मनोहर जोड़ी है।

केहरि कंधर बाहु बिसाला। उर अति रुचिर नागमनि माला॥
सुभग सोन सरसीरुह लोचन। बदन मयंक तापत्रय मोचन॥

सिंह के समान (पुष्ट) गर्दन (गले का पिछला भाग) है, विशाल भुजाएँ हैं। (चौड़ी) छाती पर अत्यंत सुंदर गजमुक्ता की माला है। सुंदर लाल कमल के समान नेत्र हैं। तीनों तापों से छुड़ानेवाला चंद्रमा के समान मुख है।

कानन्हि कनक फूल छबि देहीं। चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं॥
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी। तिलक रेख सोभा जनु चाँकी॥

कानों में सोने के कर्णफूल (अत्यंत) शोभा दे रहे हैं और देखते ही (देखनेवाले के) चित्त को मानो चुरा लेते हैं। उनकी चितवन (दृष्टि) बड़ी मनोहर है और भौंहें तिरछी एवं सुंदर हैं। (माथे पर) तिलक की रेखाएँ ऐसी सुंदर हैं, मानो (मूर्तिमती) शोभा पर मुहर लगा दी गई है।

दो० - रुचिर चौतनीं सुभग सिर मेचक कुंचित केस।
नख सिख सुंदर बंधु दोउ सोभा सकल सुदेस॥ 219॥

सिर पर सुंदर चौकोनी टोपियाँ (दिए) हैं, काले और घुँघराले बाल हैं। दोनों भाई नख से लेकर शिखा तक (एड़ी से चोटी तक) सुंदर हैं और सारी शोभा जहाँ जैसी चाहिए वैसी ही है॥ 219॥

देखन नगरु भूपसुत आए। समाचार पुरबासिन्ह पाए॥
धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी॥

जब पुरवासियों ने यह समाचार पाया कि दोनों राजकुमार नगर देखने के लिए आए हैं, तब वे सब घर-बार और सब काम-काज छोड़कर ऐसे दौड़े मानो दरिद्री (धन का) खजाना लूटने दौड़े हों।

निरखि सहज सुंदर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई॥
जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागीं॥

स्वभाव ही से सुंदर दोनों भाइयों को देखकर वे लोग नेत्रों का फल पाकर सुखी हो रहे हैं। युवती स्त्रियाँ घर के झरोखों से लगी हुई प्रेम सहित राम के रूप को देख रही हैं।

कहहिं परसपर बचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती॥
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुँ सुनिअति नाहीं॥

वे आपस में बड़े प्रेम से बातें कर रही हैं - हे सखी! इन्होंने करोड़ों कामदेवों की छवि को जीत लिया है। देवता, मनुष्य, असुर, नाग और मुनियों में ऐसी शोभा तो कहीं सुनने में भी नहीं आती।

बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी॥
अपर देउ अस कोउ ना आही। यह छबि सखी पटतरिअ जाही॥

भगवान विष्णु के चार भुजाएँ हैं, ब्रह्मा के चार मुख हैं, शिव का विकट (भयानक) वेष है और उनके पाँच मुँह हैं। हे सखी! दूसरा देवता भी कोई ऐसा नहीं है, जिसके साथ इस छवि की उपमा दी जाए।

दो० - बय किसोर सुषमा सदन स्याम गौर सुख धाम।
अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम॥ 220॥

इनकी किशोर अवस्था है, ये सुंदरता के घर, साँवले और गोरे रंग के तथा सुख के धाम हैं।

इनके अंग-अंग पर करोड़ों-अरबों कामदेवों को निछावर कर देना चाहिए॥ 220॥

कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह यह रूप निहारी॥
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी। जो मैं सुना सो सुनहु सयानी॥

हे सखी! (भला) कहो तो ऐसा कौन शरीरधारी होगा, जो इस रूप को देखकर मोहित न हो जाए (अर्थात यह रूप जड़-चेतन सबको मोहित करनेवाला है)। (तब) कोई दूसरी सखी प्रेम सहित कोमल वाणी से बोली - हे सयानी! मैंने जो सुना है उसे सुनो -

ए दोऊ दसरथ के ढोटा। बाल मरालन्हि के कल जोटा॥
मुनि कौसिक मख के रखवारे। जिन्ह रन अजिर निसाचर मारे॥

ये दोनों (राजकुमार) महाराज दशरथ के पुत्र हैं! बाल राजहंसों का-सा सुंदर जोड़ा है। ये मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करनेवाले हैं, इन्होंने युद्ध के मैदान में राक्षसों को मारा है।

स्याम गात कल कंज बिलोचन। जो मारीच सुभुज मदु मोचन॥
कौसल्या सुत सो सुख खानी। नामु रामु धनु सायक पानी॥

जिनका श्याम शरीर और सुंदर कमल जैसे नेत्र हैं, जो मारीच और सुबाहु के मद को चूर करनेवाले और सुख की खान हैं और जो हाथ में धनुष-बाण लिए हुए हैं, वे कौसल्या के पुत्र हैं, इनका नाम राम है।

गौर किसोर बेषु बर काछें। कर सर चाप राम के पाछें॥
लछिमनु नामु राम लघु भ्राता। सुनु सखि तासु सुमित्रा माता॥

जिनका रंग गोरा और किशोर अवस्था है और जो सुंदर वेष बनाए और हाथ में धनुष-बाण लिए राम के पीछे-पीछे चल रहे हैं, वे इनके छोटे भाई हैं, उनका नाम लक्ष्मण है। हे सखी! सुनो, उनकी माता सुमित्रा हैं।

दो॰ - बिप्रकाजु करि बंधु दोउ मग मुनिबधू उधारि।
आए देखन चापमख सुनि हरषीं सब नारि॥ 221॥

दोनों भाई ब्राह्मण विश्वामित्र का काम करके और रास्ते में मुनि गौतम की स्त्री अहल्या

का उद्धार करके यहाँ धनुषयज्ञ देखने आए हैं। यह सुनकर सब स्त्रियाँ प्रसन्न हुईं॥ 221॥

देखि राम छबि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि यह बरु अहई॥
जौं सखि इन्हहि देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करइ बिबाहू॥

राम की छवि देखकर कोई एक (दूसरी सखी) कहने लगी - यह वर जानकी के योग्य है। हे सखी! यदि कहीं राजा इन्हें देख ले, तो प्रतिज्ञा छोड़कर हठपूर्वक इन्हीं से विवाह कर देगा।

कोउ कह ए भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने॥
सखि परंतु पनु राउ न तजई। बिधि बस हठि अबिबेकहि भजई॥

किसी ने कहा - राजा ने इन्हें पहचान लिया है और मुनि के सहित इनका आदरपूर्वक सम्मान किया है, परंतु हे सखी! राजा अपना प्रण नहीं छोड़ता। वह होनहार के वशीभूत होकर हठपूर्वक अविवेक का ही आश्रय लिए हुए हैं (प्रण पर अड़े रहने की मूर्खता नहीं छोड़ता)।

कोउ कह जौं भल अहइ बिधाता। सब कहँ सुनिअ उचित फल दाता॥
तौ जानकिहि मिलिहि बरु एहू। नाहिन आलि इहाँ संदेहू॥

कोई कहती है - यदि विधाता भले हैं और सुना जाता है कि वे सबको उचित फल देते हैं, तो जानकी को यही वर मिलेगा। हे सखी! इसमें संदेह नहीं है।

जौं बिधि बस अस बनै सँजोगू। तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू॥
सखि हमरें आरति अति तातें। कबहुँक ए आवहिं एहि नातें॥

जो दैवयोग से ऐसा संयोग बन जाए, तो हम सब लोग कृतार्थ हो जाएँ। हे सखी! मेरे तो इसी से इतनी अधिक आतुरता हो रही है कि इसी नाते कभी ये यहाँ आएँगे।

दो॰ - नाहिं त हम कहुँ सुनहु सखि इन्ह कर दरसनु दूरि।
यह संघटु तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि॥ 222॥

नहीं तो (विवाह न हुआ तो) हे सखी! सुनो, हमको इनके दर्शन दुर्लभ हैं। यह संयोग तभी हो सकता है, जब हमारे पूर्वजन्मों के बहुत पुण्य हों॥ 222॥

बोली अपर कहेहु सखि नीका। एहिं बिआह अति हित सबही का।
कोउ कह संकर चाप कठोरा। ए स्यामल मृदु गात किसोरा॥

दूसरी ने कहा - हे सखी! तुमने बहुत अच्छा कहा। इस विवाह से सभी का परम हित है। किसी ने कहा - शंकर का धनुष कठोर है और ये साँवले राजकुमार कोमल शरीर के बालक हैं।

सबु असमंजस अहइ सयानी। यह सुनि अपर कहइ मृदु बानी॥
सखि इन्ह कहँ कोउ कोउ अस कहहीं। बड़ प्रभाउ देखत लघु अहहीं॥

हे सयानी! सब असमंजस ही है। यह सुनकर दूसरी सखी कोमल वाणी से कहने लगी - हे सखी! इनके संबंध में कोई-कोई ऐसा कहते हैं कि ये देखने में तो छोटे हैं, पर इनका प्रभाव बहुत बड़ा है।

परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी॥
सो कि रहिहि बिनु सिव धनु तोरें। यह प्रतीति परिहरिअ न भोरें॥

जिनके चरणकमलों की धूलि का स्पर्श पाकर अहल्या तर गई, जिसने बड़ा भारी पाप किया था, वे क्या शिव का धनुष बिना तोड़े रहेंगे? इस विश्वास को भूलकर भी नहीं छोड़ना चाहिए।

जेहिं बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहिं स्यामल बरु रचेउ बिचारी॥
तासु बचन सुनि सब हरषानीं। ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानीं॥

जिस ब्रह्मा ने सीता को सँवारकर रचा है, उसी ने विचार कर साँवला वर भी रच रखा है। उसके ये वचन सुनकर सब हर्षित हुईं और कोमल वाणी से कहने लगीं - ऐसा ही हो।

दो॰ - हियँ हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद।
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ तहँ तहँ परमानंद॥ 223॥

सुंदर मुख और सुंदर नेत्रोंवाली स्त्रियाँ समूह की समूह हृदय में हर्षित होकर फूल बरसा रही हैं। जहाँ-जहाँ दोनों भाई जाते हैं, वहाँ-वहाँ परम आनंद छा जाता है॥ 223॥

पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई। जहँ धनुमख हित भूमि बनाई॥

अति बिस्तार चारु गच ढारी। बिमल बेदिका रुचिर सँवारी॥

दोनों भाई नगर के पूरब ओर गए, जहाँ धनुष यज्ञ के लिए (रंग) भूमि बनाई गई थी। बहुत लंबा-चौड़ा सुंदर ढाला हुआ पक्का आँगन था, जिस पर सुंदर और निर्मल वेदी सजाई गई थी।

चहुँ दिसि कंचन मंच बिसाला। रचे जहाँ बैठहिं महिपाला॥
तेहि पाछें समीप चहुँ पासा। अपर मंच मंडली बिलासा॥

चारों ओर सोने के बड़े-बड़े मंच बने थे, जिन पर राजा लोग बैठेंगे। उनके पीछे समीप ही चारों ओर दूसरे मचानों का मंडलाकार घेरा सुशोभित था।

कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई। बैठहिं नगर लोग जहँ जाई॥
तिन्ह के निकट बिसाल सुहाए। धवल धाम बहुबरन बनाए॥

वह कुछ ऊँचा था और सब प्रकार से सुंदर था, जहाँ जाकर नगर के लोग बैठेंगे। उन्हीं के पास विशाल एवं सुंदर सफेद मकान अनेक रंगों के बनाए गए हैं,

जहँ बैठें देखहिं सब नारी। जथाजोगु निज कुल अनुहारी॥
पुर बालक कहि कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहि देखावहिं रचना॥

जहाँ अपने-अपने कुल के अनुसार सब स्त्रियाँ यथायोग्य (जिसको जहाँ बैठना उचित है) बैठकर देखेंगी। नगर के बालक कोमल वचन कह-कहकर आदरपूर्वक प्रभु राम को (यज्ञशाला की) रचना दिखला रहे हैं।

दो० - सब सिसु एहि मिस प्रेमबस परसि मनोहर गात।
तन पुलकहिं अति हरषु हियँ देखि देखि दोउ भ्रात॥ 224॥

सब बालक इसी बहाने प्रेम के वश में होकर राम के मनोहर अंगों को छूकर शरीर से पुलकित हो रहे हैं और दोनों भाइयों को देख-देखकर उनके हृदय में अत्यंत हर्ष हो रहा है॥ 224॥

सिसु सब राम प्रेमबस जाने। प्रीति समेत निकेत बखाने॥
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई॥

राम ने सब बालकों को प्रेम के वश जानकर (यज्ञभूमि के) स्थानों की प्रेमपूर्वक प्रशंसा की। (इससे बालकों का उत्साह, आनंद और प्रेम और भी बढ़ गया, जिससे) वे सब अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उन्हें बुला लेते हैं और (प्रत्येक के बुलाने पर) दोनों भाई प्रेम सहित उनके पास चले जाते हैं।

राम देखावहिं अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना॥
लव निमेष महुँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया॥

कोमल, मधुर और मनोहर वचन कहकर राम अपने छोटे भाई लक्ष्मण को (यज्ञभूमि की) रचना दिखलाते हैं। जिनकी आज्ञा पाकर माया लव निमेष (पलक गिरने के चौथाई समय) में ब्रह्मांडों के समूह रच डालती है,

भगति हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुष मखसाला॥
कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं॥

वही दीनों पर दया करनेवाले राम भक्ति के कारण धनुष यज्ञ शाला को चकित होकर (आश्चर्य के साथ) देख रहे हैं। इस प्रकार सब कौतुक देखकर वे गुरु के पास चले। देर हुई जानकर उनके मन में डर है।

जासु त्रास डर कहुँ डर होई। भजन प्रभाउ देखावत सोई॥
कहि बातें मृदु मधुर सुहाईं। किए बिदा बालक बरिआईं॥

जिनके भय से डर को भी डर लगता है, वही प्रभु भजन का प्रभाव (जिसके कारण ऐसे महान प्रभु भी भय का नाट्य करते हैं) दिखला रहे हैं। उन्होंने कोमल, मधुर और सुंदर बातें कहकर बालकों को जबरदस्ती विदा किया।

दो० - सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ।
गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ॥ 225॥

फिर भय, प्रेम, विनय और बड़े संकोच के साथ दोनों भाई गुरु के चरण कमलों में सिर नवाकर आज्ञा पाकर बैठे॥ 225॥

निसि प्रबेस मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं संध्याबंदनु कीन्हा॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥

रात्रि का प्रवेश होते ही (संध्या के समय) मुनि ने आज्ञा दी, तब सबने संध्यावंदन किया। फिर प्राचीन कथाएँ तथा इतिहास कहते-कहते सुंदर रात्रि दो पहर बीत गई।

मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी॥

तब श्रेष्ठ मुनि ने जाकर शयन किया। दोनों भाई उनके चरण दबाने लगे, जिनके चरण कमलों के (दर्शन एवं स्पर्श के) लिए वैराग्यवान पुरुष भी भाँति-भाँति के जप और योग करते हैं।

तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥

वे ही दोनों भाई मानो प्रेम से जीते हुए प्रेमपूर्वक गुरुजी के चरण कमलों को दबा रहे हैं। मुनि ने बार-बार आज्ञा दी, तब रघुनाथ ने जाकर शयन किया।

चापत चरन लखनु उर लाएँ। सभय सप्रेम परम सचु पाएँ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता॥

राम के चरणों को हृदय से लगाकर भय और प्रेम सहित परम सुख का अनुभव करते हुए लक्ष्मण उनको दबा रहे हैं। प्रभु राम ने बार-बार कहा - हे तात! (अब) सो जाओ। तब वे उन चरण कमलों को हृदय में धरकर लेट रहे।

दो॰ - उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥ 226॥

रात बीतने पर, मुर्गे का शब्द कानों से सुनकर लक्ष्मण उठे। जगत के स्वामी सुजान राम भी गुरु से पहले ही जाग गए॥ 226॥

सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए॥
समय जानि गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥

सब शौचक्रिया करके वे जाकर नहाए। फिर (संध्या-अग्निहोत्रादि) नित्यकर्म समाप्त करके उन्होंने मुनि को मस्तक नवाया। (पूजा का) समय जानकर, गुरु की आज्ञा पाकर दोनों

भाई फूल लेने चले।

भूप बागु बर देखेउ जाई। जहँ बसंत रितु रही लोभाई॥
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना॥

उन्होंने जाकर राजा का सुंदर बाग देखा, जहाँ वसंत ऋतु लुभाकर रह गई है। मन को लुभानेवाले अनेक वृक्ष लगे हैं। रंग-बिरंगी उत्तम लताओं के मंडप छाए हुए हैं।

नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपति सुर रूख लजाए॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल मोरा॥

नए पत्तों, फलों और फूलों से युक्त सुंदर वृक्ष अपनी संपत्ति से कल्पवृक्ष को भी लजा रहे हैं। पपीहे, कोयल, तोते, चकोर आदि पक्षी मीठी बोली बोल रहे हैं और मोर सुंदर नृत्य कर रहे हैं।

मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनि सोपान बिचित्र बनावा॥
बिमल सलिलु सरसिज बहुरंगा। जलखग कूजत गुंजत भृंगा॥

बाग के बीचोंबीच सुहावना सरोवर सुशोभित है, जिसमें मणियों की सीढ़ियाँ विचित्र ढंग से बनी हैं। उसका जल निर्मल है, जिसमें अनेक रंगों के कमल खिले हुए हैं, जल के पक्षी कलरव कर रहे हैं और भ्रमर गुंजार कर रहे हैं।

दो० - बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आरामु यहु जो रामहि सुख देत॥ 227॥

बाग और सरोवर को देखकर प्रभु राम भाई लक्ष्मण सहित हर्षित हुए। यह बाग (वास्तव में) परम रमणीय है, जो (जगत को सुख देनेवाले) राम को सुख दे रहा है॥ 227॥

चहुँ दिसि चितइ पूँछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई॥

चारों ओर दृष्टि डालकर और मालियों से पूछकर वे प्रसन्न मन से पत्र-पुष्प लेने लगे। उसी समय सीता वहाँ आईं। माता ने उन्हें गिरिजा (पार्वती) की पूजा करने के लिए भेजा था।

संग सखीं सब सुभग सयानीं। गावहिं गीत मनोहर बानीं॥
सर समीप गिरिजा गृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मनु मोहा॥

साथ में सब सुंदरी और सयानी सखियाँ हैं, जो मनोहर वाणी से गीत गा रही हैं। सरोवर के पास गिरिजा का मंदिर सुशोभित है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, देखकर मन मोहित हो जाता है।

मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौरि निकेता॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बरु मागा॥

सखियों सहित सरोवर में स्नान करके सीता प्रसन्न मन से गिरिजा के मंदिर में गईं। उन्होंने बड़े प्रेम से पूजा की और अपने योग्य सुंदर वर माँगा।

एक सखी सिय संगु बिहाई। गई रही देखन फुलवाई॥
तेहिं दोउ बंधु बिलोके जाई। प्रेम बिबस सीता पहिं आई॥

एक सखी सीता का साथ छोड़कर फुलवाड़ी देखने चली गई थी। उसने जाकर दोनों भाइयों को देखा और प्रेम में विह्वल होकर वह सीता के पास आई।

दो० - तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नैन।
कहु कारनु निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बैन॥ 228॥

सखियों ने उसकी दशा देखी कि उसका शरीर पुलकित है और नेत्रों में जल भरा है। सब कोमल वाणी से पूछने लगीं कि अपनी प्रसन्नता का कारण बता॥ 228॥

देखन बागु कुअँर दुइ आए। बय किसोर सब भाँति सुहाए॥
स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

(उसने कहा -) दो राजकुमार बाग देखने आए हैं। किशोर अवस्था के हैं और सब प्रकार से सुंदर हैं। वे साँवले और गोरे (रंग के) हैं, उनके सौंदर्य को मैं कैसे बखानकर कहूँ। वाणी बिना नेत्र की है और नेत्रों के वाणी नहीं है।

सुनि हरषीं सब सखीं सयानी। सिय हियँ अति उतकंठा जानी॥
एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आए काली॥

यह सुनकर और सीता के हृदय में बड़ी उत्कंठा जानकर सब सयानी सखियाँ प्रसन्न हुईं। तब एक सखी कहने लगी - हे सखी! ये वही राजकुमार हैं, जो सुना है कि कल विश्वामित्र मुनि के साथ आए हैं।

जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी॥
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहिं देखन जोगू॥

और जिन्होंने अपने रूप की मोहिनी डालकर नगर के स्त्री-पुरुषों को अपने वश में कर लिया है। जहाँ-तहाँ सब लोग उन्हीं की छवि का वर्णन कर रहे हैं। अवश्य (चलकर) उन्हें देखना चाहिए, वे देखने ही योग्य हैं।

तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई॥

उसके वचन सीता को अत्यंत ही प्रिय लगे और दर्शन के लिए उनके नेत्र अकुला उठे। उसी प्यारी सखी को आगे करके सीता चलीं। पुरानी प्रीति को कोई लख नहीं पाता।

दो॰ - सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत॥ 229॥

नारद के वचनों का स्मरण करके सीता के मन में पवित्र प्रीति उत्पन्न हुई। वे चकित होकर सब ओर इस तरह देख रही हैं, मानो डरी हुई मृगछौनी इधर-उधर देख रही हो॥ 229॥

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥

कंकण (हाथों के कड़े), करधनी और पायजेब के शब्द सुनकर राम हृदय में विचार कर लक्ष्मण से कहते हैं - (यह ध्वनि ऐसी आ रही है) मानो कामदेव ने विश्व को जीतने का संकल्प करके डंके पर चोट मारी है।

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल॥

ऐसा कहकर राम ने फिर कर उस ओर देखा। सीता के मुखरूपी चंद्रमा (को निहारने) के

लिए उनके नेत्र चकोर बन गए। सुंदर नेत्र स्थिर हो गए (टकटकी लग गई)। मानो निमि (जनक के पूर्वज) ने (जिनका सबकी पलकों में निवास माना गया है, लड़की-दामाद के मिलन-प्रसंग को देखना उचित नहीं, इस भाव से) सकुचाकर पलकें छोड़ दीं, (पलकों में रहना छोड़ दिया, जिससे पलकों का गिरना रुक गया)।

देखि सीय शोभा सुखु पावा। हृदयँ सराहत बचनु न आवा॥
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई॥

सीता की शोभा देखकर राम ने बड़ा सुख पाया। हृदय में वे उसकी सराहना करते हैं, किंतु मुख से वचन नहीं निकलते। मानो ब्रह्मा ने अपनी सारी निपुणता को मूर्तिमान कर संसार को प्रकट करके दिखा दिया हो।

सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई॥
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं बिदेहकुमारी॥

वह (सीता की शोभा) सुंदरता को भी सुंदर करनेवाली है। (वह ऐसी मालूम होती है) मानो सुंदरतारूपी घर में दीपक की लौ जल रही हो। (अब तक सुंदरतारूपी भवन में अँधेरा था, वह भवन मानो सीता की सुंदरतारूपी दीपशिखा को पाकर जगमगा उठा है, पहले से भी अधिक सुंदर हो गया है)। सारी उपमाओं को तो कवियों ने जूँठा कर रखा है। मैं जनकनंदिनी सीता की किससे उपमा दूँ।

दो॰ - सिय शोभा हियँ बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि॥
बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि॥ 230॥

(इस प्रकार) हृदय में सीता की शोभा का वर्णन करके और अपनी दशा को विचारकर प्रभु राम पवित्र मन से अपने छोटे भाई लक्ष्मण से समयानुकूल वचन बोले - ॥ 230॥

तात जनकतनया यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखीं लै आईं। करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं॥

हे तात! यह वही जनक की कन्या है, जिसके लिए धनुषयज्ञ हो रहा है। सखियाँ इसे गौरी पूजन के लिए ले आई हैं। यह फुलवारी में प्रकाश करती हुई फिर रही है।

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥

सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता॥

जिसकी अलौकिक सुंदरता देखकर स्वभाव से ही पवित्र मेरा मन क्षुब्ध हो गया है। वह सब कारण (अथवा उसका सब कारण) तो विधाता जानें। किंतु हे भाई! सुनो, मेरे मंगलदायक (दाहिने) अंग फड़क रहे हैं।

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥

रघुवंशियों का यह सहज (जन्मगत) स्वभाव है कि उनका मन कभी कुमार्ग पर पैर नहीं रखता। मुझे तो अपने मन का अत्यंत ही विश्वास है कि जिसने स्वप्न में भी पराई स्त्री पर दृष्टि नहीं डाली है।

जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी॥
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरबर थोरे जग माहीं॥

रण में शत्रु जिनकी पीठ नहीं देख पाते (अर्थात जो लड़ाई के मैदान से भागते नहीं), पराई स्त्रियाँ जिनके मन और दृष्टि को नहीं खींच पातीं और भिखारी जिनके यहाँ से 'नाहीं' नहीं पाते (खाली हाथ नहीं लौटते), ऐसे श्रेष्ठ पुरुष संसार में थोड़े हैं।

दो० - करत बतकही अनुज सन मन सिय रूप लोभान।
मुख सरोज मकरंद छबि करइ मधुप इव पान॥ 231॥

यों राम छोटे भाई से बातें कर रहे हैं, पर मन सीता के रूप में लुभाया हुआ उनके मुखरूपी कमल के छवि रूप मकरंद रस को भौंरे की तरह पी रहा है॥ 231॥

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृप किसोर मनु चिंता॥
जहँ बिलोक मृग सावक नैनी। जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी॥

सीता चकित होकर चारों ओर देख रही हैं। मन इस बात की चिंता कर रहा है कि राजकुमार कहाँ चले गए। बालमृग-नयनी (मृग के छौने की-सी आँखवाली) सीता जहाँ दृष्टि डालती हैं, वहाँ मानो श्वेत कमलों की कतार बरस जाती है।

लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए॥

देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥

तब सखियों ने लता की ओट में सुंदर श्याम और गौर कुमारों को दिखलाया। उनके रूप को देखकर नेत्र ललचा उठे, वे ऐसे प्रसन्न हुए मानो उन्होंने अपना खजाना पहचान लिया।

थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें॥
अधिक सनेहँ देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥

रघुनाथ की छवि देखकर नेत्र चकित (निश्चल) हो गए। पलकों ने भी गिरना छोड़ दिया। अधिक स्नेह के कारण शरीर विह्वल (बेकाबू) हो गया। मानो शरद ऋतु के चंद्रमा को चकोरी (बेसुध हुई) देख रही हो।

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी॥

नेत्रों के रास्ते राम को हृदय में लाकर चतुरशिरोमणि जानकी ने पलकों के किवाड़ लगा दिए (अर्थात नेत्र मूँदकर उनका ध्यान करने लगीं)। जब सखियों ने सीता को प्रेम के वश जाना, तब वे मन में सकुचा गईं, कुछ कह नहीं सकती थीं।

दो० - लताभवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ॥ 232॥

उसी समय दोनों भाई लता मंडप (कुंज) में से प्रकट हुए। मानो दो निर्मल चंद्रमा बादलों के परदे को हटाकर निकले हों॥ 232॥

सोभा सीवँ सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजाभ सरीरा॥
मोरपंख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के॥

दोनों सुंदर भाई शोभा की सीमा हैं। उनके शरीर की आभा नीले और पीले कमल की-सी है। सिर पर सुंदर मोरपंख सुशोभित हैं। उनके बीच-बीच में फूलों की कलियों के गुच्छे लगे हैं।

भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छबि छाए॥

बिकट भृकुटि कच घूघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे॥

माथे पर तिलक और पसीने की बूँदें शोभायमान हैं। कानों में सुंदर भूषणों की छवि छाई है। टेढ़ी भौंहें और घुँघराले बाल हैं। नए लाल कमल के समान रतनारे (लाल) नेत्र हैं।

चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मनु मोला॥
मुखछबि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं॥

ठोड़ी, नाक और गाल बड़े सुंदर हैं, और हँसी की शोभा मन को मोल लिए लेती है। मुख की छवि तो मुझसे कही ही नहीं जाती, जिसे देखकर बहुत- से कामदेव लजा जाते हैं।

उर मनि माल कंबु कल गीवा। काम कलभ कर भुज बलसींवा॥
सुमन समेत बाम कर दोना। सावँर कुअँर सखी सुठि लोना॥

वक्षःस्थल पर मणियों की माला है। शंख के सदृश सुंदर गला है। कामदेव के हाथी के बच्चे की सूँड़ के समान (उतार-चढ़ाववाली एवं कोमल) भुजाएँ हैं, जो बल की सीमा हैं। जिसके बाएँ हाथ में फूलों सहित दोना है, हे सखि! वह साँवला कुँअर तो बहुत ही सलोना है।

दो० - केहरि कटि पट पीत धर सुषमा सील निधान।
देखि भानुकुलभूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान॥ 233॥

सिंह की-सी (पतली, लचीली) कमरवाले, पीतांबर धारण किए हुए, शोभा और शील के भंडार, सूर्यकुल के भूषण राम को देखकर सखियाँ अपने आपको भूल गईं॥ 233॥

धरि धीरजु एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिसोर देखि किन लेहू॥

एक चतुर सखी धीरज धरकर, हाथ पकड़कर सीता से बोली - गिरिजा का ध्यान फिर कर लेना, इस समय राजकुमार को क्यों नहीं देख लेतीं।

सकुचि सीयँ तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंघ निहारे॥
नख सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा॥

तब सीता ने सकुचाकर नेत्र खोले और रघुकुल के दोनों सिंहों को अपने सामने (खड़े)

देखा। नख से शिखा तक राम की शोभा देखकर और फिर पिता का प्रण याद करके उनका मन बहुत क्षुब्ध हो गया।

परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भयउ गहरु सब कहहिं सभीता॥
पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। अस कहि मन बिहसी एक आली॥

जब सखियों ने सीता को परवश (प्रेम के वश) देखा, तब सब भयभीत होकर कहने लगीं - बड़ी देर हो गई (अब चलना चाहिए)। कल इसी समय फिर आएँगी, ऐसा कहकर एक सखी मन में हँसी।

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयउ बिलंबु मातु भय मानी॥
धरि बड़ि धीर रामु उर आने। फिरी अपनपउ पितुबस जाने॥

सखी की यह रहस्यभरी वाणी सुनकर सीता सकुचा गईं। देर हो गई जान उन्हें माता का भय लगा। बहुत धीरज धरकर वे राम को हृदय में ले आईं, और (उनका ध्यान करती हुई) अपने को पिता के अधीन जानकर लौट चलीं।

दो० - देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि॥ 234॥

मृग, पक्षी और वृक्षों को देखने के बहाने सीता बार-बार घूम जाती हैं और राम की छवि देख-देखकर उनका प्रेम कम नहीं बढ़ रहा है। (अर्थात बहुत ही बढ़ता जाता है)॥ 234॥

जानि कठिन सिवचाप बिसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति॥
प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी॥

शिव के धनुष को कठोर जानकर वे बिसूरती (मन में विलाप करती) हुई हृदय में राम की साँवली मूर्ति को रखकर चलीं। (शिव के धनुष की कठोरता का स्मरण आने से उन्हें चिंता होती थी कि ये सुकुमार रघुनाथ उसे कैसे तोड़ेंगे, पिता के प्रण की स्मृति से उनके हृदय में क्षोभ था ही, इसलिए मन में विलाप करने लगीं। प्रेमवश ऐश्वर्य की विस्मृति हो जाने से ही ऐसा हुआ, फिर भगवान के बल का स्मरण आते ही वे हर्षित हो गईं और साँवली छवि को हृदय में धारण करके चलीं।) प्रभु राम ने जब सुख, स्नेह, शोभा और गुणों की खान जानकी को जाती हुई जाना,

परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्ही॥
गई भवानी भवन बहोरी। बंदि चरन बोली कर जोरी॥

तब परमप्रेम की कोमल स्याही बनाकर उनके स्वरूप को अपने सुंदर चित्तरूपी भित्ति पर चित्रित कर लिया। सीता पुनः भवानी के मंदिर में गईं और उनके चरणों की वंदना करके हाथ जोड़कर बोलीं -

जय जय गिरिबरराज किसोरी। जय महेस मुख चंद चकोरी॥
जय गजबदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि दुति गाता॥

हे श्रेष्ठ पर्वतों के राजा हिमाचल की पुत्री पार्वती! आपकी जय हो, जय हो, हे महादेव के मुखरूपी चंद्रमा की (ओर टकटकी लगाकर देखनेवाली) चकोरी! आपकी जय हो, हे हाथी के मुखवाले गणेश और छह मुखवाले स्वामिकार्तिक की माता! हे जगज्जननी! हे बिजली की-सी कांतियुक्त शरीरवाली! आपकी जय हो!

नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना॥
भव भव बिभव पराभव कारिनि। बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि॥

आपका न आदि है, न मध्य है और न अंत है। आपके असीम प्रभाव को वेद भी नहीं जानते। आप संसार को उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाली हैं। विश्व को मोहित करनेवाली और स्वतंत्र रूप से विहार करनेवाली हैं।

दो० - पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष॥ 235॥

पति को इष्टदेव माननेवाली श्रेष्ठ नारियों में हे माता! आपकी प्रथम गणना है। आपकी अपार महिमा को हजारों सरस्वती और शेष भी नहीं कह सकते॥ 235॥

सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदायनी पुरारि पिआरी॥
देबि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे॥

हे (भक्तों को मुँहमाँगा) वर देनेवाली! हे त्रिपुर के शत्रु शिव की प्रिय पत्नी! आपकी सेवा करने से चारों फल सुलभ हो जाते हैं। हे देवी! आपके चरण कमलों की पूजा करके देवता, मनुष्य और मुनि सभी सुखी हो जाते हैं।

मोर मनोरथु जानहु नीकें। बसहु सदा उर पुर सबही कें॥
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं। अस कहि चरन गहे बैदेहीं॥

मेरे मनोरथ को आप भली-भाँति जानती हैं; क्योंकि आप सदा सबके हृदयरूपी नगरी में निवास करती हैं। इसी कारण मैंने उसको प्रकट नहीं किया। ऐसा कहकर जानकी ने उनके चरण पकड़ लिए।

बिनय प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी॥
सादर सियँ प्रसादु सिर धरेऊ। बोली गौरि हरषु हियँ भरेऊ॥

गिरिजा सीता के विनय और प्रेम के वश में हो गईं। उन (के गले) की माला खिसक पड़ी और मूर्ति मुसकराई। सीता ने आदरपूर्वक उस प्रसाद (माला) को सिर पर धारण किया। गौरी का हृदय हर्ष से भर गया और वे बोलीं -

सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी॥
नारद बचन सदा सुचि साचा। सो बरु मिलिहि जाहिं मनु राचा॥

हे सीता! हमारी सच्ची आसीस सुनो, तुम्हारी मनःकामना पूरी होगी। नारद का वचन सदा पवित्र (संशय, भ्रम आदि दोषों से रहित) और सत्य है। जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही वर तुमको मिलेगा।

छं० - मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर साँवरो।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो॥
एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियँ हरषीं अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली॥

जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही स्वभाव से ही सुंदर साँवला वर (राम) तुमको मिलेगा। वह दया का खजाना और सुजान (सर्वज्ञ) है, तुम्हारे शील और स्नेह को जानता है। इस प्रकार गौरी का आशीर्वाद सुनकर जानकी समेत सब सखियाँ हृदय में हर्षित हुईं। तुलसीदास कहते हैं - भवानी को बार-बार पूजकर सीता प्रसन्न मन से राजमहल को लौट चलीं।

सो० - जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।

मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे॥ 236॥

गौरी को अनुकूल जानकर सीता के हृदय को जो हर्ष हुआ, वह कहा नहीं जा सकता। सुंदर मंगलों के मूल उनके बाएँ अंग फड़कने लगे॥ 236॥

हृदयँ सराहत सीय लोनाई। गुर समीप गवने दोउ भाई॥
राम कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं॥

हृदय में सीता के सौंदर्य की सराहना करते हुए दोनों भाई गुरु के पास गए। राम ने विश्वामित्र से सब कुछ कह दिया, क्योंकि उनका सरल स्वभाव है, छल तो उसे छूता भी नहीं है।

सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्ही॥
सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे। रामु लखनु सुनि भय सुखारे॥

फूल पाकर मुनि ने पूजा की। फिर दोनों भाइयों को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे मनोरथ सफल हों। यह सुनकर राम-लक्ष्मण सुखी हुए।

करि भोजनु मुनिबर बिग्यानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी॥
बिगत दिवसु गुरु आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई॥

श्रेष्ठ विज्ञानी मुनि विश्वामित्र भोजन करके कुछ प्राचीन कथाएँ कहने लगे। (इतने में) दिन बीत गया और गुरु की आज्ञा पाकर दोनों भाई संध्या करने चले।

प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा॥
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं। सीय बदन सम हिमकर नाहीं॥

(उधर) पूर्व दिशा में सुंदर चंद्रमा उदय हुआ। राम ने उसे सीता के मुख के समान देखकर सुख पाया। फिर मन में विचार किया कि यह चंद्रमा सीता के मुख के समान नहीं है।

दो० - जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंक॥ 237॥

खारे समुद्र में तो इसका जन्म, फिर (उसी समुद्र से उत्पन्न होने के कारण) विष इसका भाई; दिन में यह मलिन (शोभाहीन, निस्तेज) रहता है, और कलंकी (काले दाग से युक्त)

है। बेचारा गरीब चंद्रमा सीता के मुख की बराबरी कैसे पा सकता है?॥ 237॥

घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई॥
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चंद्रमा तोही॥

फिर यह घटता-बढ़ता है और विरहिणी स्त्रियों को दुःख देनेवाला है; राहु अपनी संधि में पाकर इसे ग्रस लेता है। चकवे को (चकवी के वियोग का) शोक देनेवाला और कमल का बैरी (उसे मुरझा देनेवाला) है। हे चंद्रमा! तुझमें बहुत-से अवगुण हैं (जो सीता में नहीं हैं)।

बैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हे॥
सिय मुख छबि बिधु ब्याज बखानी। गुर पहिं चले निसा बड़ि जानी॥

अतः जानकी के मुख की तुझे उपमा देने में बड़ा अनुचित कर्म करने का दोष लगेगा। इस प्रकार चंद्रमा के बहाने सीता के मुख की छवि का वर्णन करके, बड़ी रात हो गई जान, वे गुरु के पास चले।

करि मुनि चरन सरोज प्रनामा। आयसु पाइ कीन्ह बिश्रामा॥
बिगत निसा रघुनायक जागे। बंधु बिलोकि कहन अस लागे॥

मुनि के चरण कमलों में प्रणाम करके, आज्ञा पाकर उन्होंने विश्राम किया, रात बीतने पर रघुनाथ जागे और भाई को देखकर ऐसा कहने लगे -

उयउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज कोक लोक सुखदाता॥
बोले लखनु जोरि जुग पानी। प्रभु प्रभाउ सूचक मृदु बानी॥

हे तात! देखो, कमल, चक्रवाक और समस्त संसार को सुख देनेवाला अरुणोदय हुआ है। लक्ष्मण दोनों हाथ जोड़कर प्रभु के प्रभाव को सूचित करनेवाली कोमल वाणी बोले -

दो॰ - अरुनोदयँ सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि भए नृपति बलहीन॥ 238॥

अरुणोदय होने से कुमुदिनी सकुचा गई और तारागणों का प्रकाश फीका पड़ गया, जिस प्रकार आपका आना सुनकर सब राजा बलहीन हो गए हैं॥ 238॥

नृप सब नखत करहिं उजिआरी। टारि न सकहिं चाप तम भारी॥

कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना॥

सब राजारूपी तारे उजाला (मंद प्रकाश) करते हैं, पर वे धनुषरूपी महान अंधकार को हटा नहीं सकते। रात्रि का अंत होने से जैसे कमल, चकवे, भौंरे और नाना प्रकार के पक्षी हर्षित हो रहे हैं।

ऐसेहिं प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहिं टूटें धनुष सुखारे॥
उयउ भानु बिनु श्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेजु प्रकासा॥

वैसे ही हे प्रभो! आपके सब भक्त धनुष टूटने पर सुखी होंगे। सूर्य उदय हुआ, बिना ही परिश्रम अंधकार नष्ट हो गया। तारे छिप गए, संसार में तेज का प्रकाश हो गया।

रबि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह दिखाया॥
तव भुज बल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी॥

हे रघुनाथ! सूर्य ने अपने उदय के बहाने सब राजाओं को प्रभु (आप) का प्रताप दिखलाया है। आपकी भुजाओं के बल की महिमा को उद्घाटित करने (खोलकर दिखाने) के लिए ही धनुष तोड़ने की यह पद्धति प्रकट हुई है।

बंधु बचन सुनि प्रभु मुसुकाने। होइ सुचि सहज पुनीत नहाने॥
नित्यक्रिया करि गुरु पहिं आए। चरन सरोज सुभग सिर नाए॥

भाई के वचन सुनकर प्रभु मुसकराए। फिर स्वभाव से ही पवित्र राम ने शौच से निवृत्त होकर स्नान किया और नित्यकर्म करके वे गुरु के पास आए। आकर उन्होंने गुरु के सुंदर चरण कमलों में सिर नवाया।

सतानंदु तब जनक बोलाए। कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाए॥
जनक बिनय तिन्ह आइ सुनाई। हरषे बोलि लिए दोउ भाई॥

तब जनक ने शतानंद को बुलाया और उन्हें तुरंत ही विश्वामित्र मुनि के पास भेजा। उन्होंने आकर जनक की विनती सुनाई। विश्वामित्र ने हर्षित होकर दोनों भाइयों को बुलाया।

दो॰ - सतानंद पद बंदि प्रभु बैठे गुर पहिं जाइ।

चलहु तात मुनि कहेउ तब पठवा जनक बोलाइ॥ 239॥

शतानंद के चरणों की वंदना करके प्रभु राम गुरु के पास जा बैठे। तब मुनि ने कहा - हे तात! चलो, जनक ने बुला भेजा है॥ 239॥

सीय स्वयंबरू देखिअ जाई। ईसु काहि धौं देइ बड़ाई॥
लखन कहा जस भाजनु सोई। नाथ कृपा तव जापर होई॥

चलकर सीता के स्वयंवर को देखना चाहिए। देखें ईश्वर किसको बड़ाई देते हैं। लक्ष्मण ने कहा - हे नाथ! जिस पर आपकी कृपा होगी, वही बड़ाई का पात्र होगा (धनुष तोड़ने का श्रेय उसी को प्राप्त होगा)।

हरषे मुनि सब सुनि बर बानी। दीन्हि असीस सबहिं सुखु मानी॥
पुनि मुनिबृंद समेत कृपाला। देखन चले धनुषमख साला॥

इस श्रेष्ठ वाणी को सुनकर सब मुनि प्रसन्न हुए। सभी ने सुख मानकर आशीर्वाद दिया। फिर मुनियों के समूह सहित कृपालु राम धनुष यज्ञशाला देखने चले।

रंगभूमि आए दोउ भाई। असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई॥
चले सकल गृह काज बिसारी। बाल जुबान जरठ नर नारी॥

दोनों भाई रंगभूमि में आए हैं, ऐसी खबर जब सब नगर निवासियों ने पाई, तब बालक, जवान, बूढ़े, स्त्री, पुरुष सभी घर और काम-काज को भुलाकर चल दिए।

देखी जनक भीर भै भारी। सुचि सेवक सब लिए हँकारी॥
तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाहू। आसन उचित देहु सब काहू॥

जब जनक ने देखा कि बड़ी भीड़ हो गई है, तब उन्होंने सब विश्वासपात्र सेवकों को बुलवा लिया और कहा - तुम लोग तुरंत सब लोगों के पास जाओ और सब किसी को यथायोग्य आसन दो।

दो० - कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल अनुहारि॥ 240॥

उन सेवकों ने कोमल और नम्र वचन कहकर उत्तम, मध्यम, नीच और लघु (सभी श्रेणी

के) स्त्री-पुरुषों को अपने-अपने योग्य स्थान पर बैठाया॥ 240॥

राजकुअँर तेहि अवसर आए। मनहुँ मनोहरता तन छाए॥
गुन सागर नागर बर बीरा। सुंदर स्यामल गौर सरीरा॥

उसी समय राजकुमार (राम और लक्ष्मण) वहाँ आए। (वे ऐसे सुंदर हैं) मानो साक्षात मनोहरता ही उनके शरीरों पर छा रही हो। सुंदर साँवला और गोरा उनका शरीर है। वे गुणों के समुद्र, चतुर और उत्तम वीर हैं।

राज समाज बिराजत रूरे। उडगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे॥
जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

वे राजाओं के समाज में ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो तारागणों के बीच दो पूर्ण चंद्रमा हों। जिनकी जैसी भावना थी, प्रभु की मूर्ति उन्होंने वैसी ही देखी।

देखहिं रूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर रसु धरें सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी॥

महान रणधीर (राजा लोग) राम के रूप को ऐसा देख रहे हैं, मानो स्वयं वीर रस शरीर धारण किए हुए हों। कुटिल राजा प्रभु को देखकर डर गए, मानो बड़ी भयानक मूर्ति हो।

रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा।
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नर भूषन लोचन सुखदायी॥

छल से जो राक्षस वहाँ राजाओं के वेष में (बैठे) थे, उन्होंने प्रभु को प्रत्यक्ष काल के समान देखा। नगर निवासियों ने दोनों भाइयों को मनुष्यों के भूषण रूप और नेत्रों को सुख देनेवाला देखा।

दो० - नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज-निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप॥ 241॥

स्त्रियाँ हृदय में हर्षित होकर अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उन्हें देख रही हैं। मानो श्रृंगार-रस ही परम अनुपम मूर्ति धारण किए सुशोभित हो रहा हो॥ 241॥

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥

जनक जाति अवलोकहिं कैसें। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें॥

विद्वानों को प्रभु विराट रूप में दिखाई दिए, जिसके बहुत-से मुँह, हाथ, पैर, नेत्र और सिर हैं। जनक के सजातीय (कुटुंबी) प्रभु को किस तरह (कैसे प्रिय रूप में) देख रहे हैं, जैसे सगे सजन (संबंधी) प्रिय लगते हैं।

सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥

जनक समेत रानियाँ उन्हें अपने बच्चे के समान देख रही हैं, उनकी प्रीति का वर्णन नहीं किया जा सकता। योगियों को वे शांत, शुद्ध, सम और स्वतः प्रकाश परम तत्त्व के रूप में दिखे।

हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख दाता॥
रामहि चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया॥

हरि भक्तों ने दोनों भाइयों को सब सुखों के देनेवाले इष्ट देव के समान देखा। सीता जिस भाव से राम को देख रही हैं, वह स्नेह और सुख तो कहने में ही नहीं आता।

उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कबि कोऊ॥
एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ॥

उस (स्नेह और सुख) का वे हृदय में अनुभव कर रही हैं, पर वे भी उसे कह नहीं सकतीं। फिर कोई कवि उसे किस प्रकार कह सकता है। इस प्रकार जिसका जैसा भाव था, उसने कोसलाधीश राम को वैसा ही देखा।

दो॰ - राजत राज समाज महुँ कोसलराज किसोर।
सुंदर स्यामल गौर तन बिस्व बिलोचन चोर॥ 242॥

सुंदर, साँवले और गोरे शरीरवाले तथा विश्वभर के नेत्रों को चुरानेवाले कोसलाधीश के कुमार राजसमाज में (इस प्रकार) सुशोभित हो रहे हैं॥ 242॥

सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ॥
सरद चंद निंदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के॥

दोनों मूर्तियाँ स्वभाव से ही (बिना किसी बनाव-श्रृंगार के) मन को हरनेवाली हैं। करोड़ों कामदेवों की उपमा भी उनके लिए तुच्छ है। उनके सुंदर मुख शरद (पूर्णिमा) के चंद्रमा की भी निंदा करनेवाले (उसे नीचा दिखानेवाले) हैं और कमल के समान नेत्र मन को बहुत ही भाते हैं।

चितवनि चारु मार मनु हरनी। भावति हृदय जाति नहिं बरनी॥
कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला॥

सुंदर चितवन (सारे संसार के मन को हरनेवाले) कामदेव के भी मन को हरनेवाली है। वह हृदय को बहुत ही प्यारी लगती है, पर उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुंदर गाल हैं, कानों में चंचल (झूमते हुए) कुंडल हैं। ठोड़ी और अधर (ओठ) सुंदर हैं, कोमल वाणी है।

कुमुदबंधु कर निंदक हाँसा। भृकुटी बिकट मनोहर नासा॥
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं॥

हँसी, चंद्रमा की किरणों का तिरस्कार करनेवाली है। भौंहें टेढ़ी और नासिका मनोहर है। (ऊँचे) चौड़े ललाट पर तिलक झलक रहे हैं (दीप्तिमान हो रहे हैं)। (काले घुँघराले) बालों को देखकर भौंरों की पंक्तियाँ भी लजा जाती हैं।

पीत चौतनीं सिरन्हि सुहाईं। कुसुम कलीं बिच बीच बनाईं॥
रेखें रुचिर कंबु कल गीवाँ। जनु त्रिभुवन सुषमा की सीवाँ॥

पीली चौकोनी टोपियाँ सिरों पर सुशोभित हैं, जिनके बीच-बीच में फूलों की कलियाँ बनाई (काढ़ी) हुई हैं। शंख के समान सुंदर (गोल) गले में मनोहर तीन रेखाएँ हैं, जो मानो तीनों लोकों की सुंदरता की सीमा (को बता रही) हैं।

दो० - कुंजर मनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिका माल।
बृषभ कंध केहरि ठवनि बल निधि बाहु बिसाल॥ 243॥

हृदयों पर गजमुक्ताओं के सुंदर कंठे और तुलसी की मालाएँ सुशोभित हैं। उनके कंधे बैलों के कंधे की तरह (ऊँचे तथा पुष्ट) हैं, ऐंड़ (खड़े होने की शान) सिंह की-सी है और भुजाएँ विशाल एवं बल की भंडार हैं॥ 243॥

कटि तूनीर पीत पट बाँधें। कर सर धनुष बाम बर काँधें॥

पीत जग्य उपबीत सुहाए। नख सिख मंजु महाछबि छाए॥

कमर में तरकस और पीतांबर बाँधे हैं। (दाहिने) हाथों में बाण और बाएँ सुंदर कंधों पर धनुष तथा पीले यज्ञोपवीत (जनेऊ) सुशोभित हैं। नख से लेकर शिखा तक सब अंग सुंदर हैं, उन पर महान शोभा छाई हुई है।

देखि लोग सब भए सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे॥
हरषे जनकु देखि दोउ भाई। मुनि पद कमल गहे तब जाई॥

उन्हें देखकर सब लोग सुखी हुए। नेत्र एकटक (निमेष शून्य) हैं और तारे (पुतलियाँ) भी नहीं चलते। जनक दोनों भाइयों को देखकर हर्षित हुए। तब उन्होंने जाकर मुनि के चरण कमल पकड़ लिए।

करि बिनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहि देखाई॥
जहँ जहँ जाहिं कुअँर बर दोऊ। तहँ तहँ चकित चितव सबु कोऊ॥

विनती करके अपनी कथा सुनाई और मुनि को सारी रंगभूमि (यज्ञशाला) दिखलाई। (मुनि के साथ) दोनों श्रेष्ठ राजकुमार जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ-वहाँ सब कोई आश्चर्यचकित हो देखने लगते हैं।

निज निज रुख रामहि सबु देखा। कोउ न जान कछु मरमु बिसेषा॥
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ। राजाँ मुदित महासुख लहेऊ॥

सबने राम को अपनी-अपनी ओर ही मुख किए हुए देखा, परंतु इसका कुछ भी विशेष रहस्य कोई नहीं जान सका। मुनि ने राजा से कहा - रंगभूमि की रचना बड़ी सुंदर है (विश्वामित्र - जैसे निःस्पृह, विरक्त और ज्ञानी मुनि से रचना की प्रशंसा सुनकर) राजा प्रसन्न हुए और उन्हें बड़ा सुख मिला।

दो० - सब मंचन्ह तें मंचु एक सुंदर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल॥ 244॥

सब मंचों से एक मंच अधिक सुंदर, उज्ज्वल और विशाल था। (स्वयं) राजा ने मुनि सहित दोनों भाइयों को उस पर बैठाया॥ 244॥

प्रभुहि देखि सब नृप हियँ हारे। जनु राकेश उदय भएँ तारे॥

असि प्रतीति सब के मन माहीं। राम चाप तोरब सक नाहीं॥

प्रभु को देखकर सब राजा हृदय में ऐसे हार गए (निराश एवं उत्साहहीन हो गए) जैसे पूर्ण चंद्रमा के उदय होने पर तारे प्रकाशहीन हो जाते हैं। (उनके तेज को देखकर) सबके मन में ऐसा विश्वास हो गया कि राम ही धनुष को तोड़ेंगे, इसमें संदेह नहीं।

बिनु भंजेहुँ भव धनुषु बिसाला। मेलिहि सीय राम उर माला॥
अस बिचारि गवनहु घर भाई। जसु प्रतापु बलु तेजु गवाँई॥

(इधर उनके रूप को देखकर सबके मन में यह निश्चय हो गया कि) शिव के विशाल धनुष को (जो संभव है न टूट सके) बिना तोड़े भी सीता राम के ही गले में जयमाल डालेंगी (अर्थात दोनों तरह से ही हमारी हार होगी और विजय राम के हाथ रहेगी)। (यों सोचकर वे कहने लगे -) हे भाई! ऐसा विचारकर यश, प्रताप, बल और तेज गँवाकर अपने-अपने घर चलो।

बिहसे अपर भूप सुनि बानी। जे अबिबेक अंध अभिमानी॥
तोरेहुँ धनुषु ब्याहु अवगाहा। बिनु तोरें को कुअँरि बिआहा॥

दूसरे राजा, जो अविवेक से अंधे हो रहे थे और अभिमानी थे, यह बात सुनकर बहुत हँसे। (उन्होंने कहा -) धनुष तोड़ने पर भी विवाह होना कठिन है (अर्थात सहज ही में हम जानकी को हाथ से जाने नहीं देंगे), फिर बिना तोड़े तो राजकुमारी को ब्याह ही कौन सकता है।

एक बार कालउ किन होऊ। सिय हित समर जितब हम सोऊ॥
यह सुनि अवर महिप मुसुकाने। धरमसील हरिभगत सयाने॥

काल ही क्यों न हो, एक बार तो सीता के लिए उसे भी हम युद्ध में जीत लेंगे। यह घमंड की बात सुनकर दूसरे राजा, जो धर्मात्मा, हरिभक्त और सयाने थे, मुसकराए।

सो० - सीय बिआहबि राम गरब दूरि करि नृपन्ह के।
जीति को सक संग्राम दसरथ के रन बाँकुरे॥ 245॥

(उन्होंने कहा -) राजाओं के गर्व दूर करके (जो धनुष किसी से नहीं टूट सकेगा उसे तोड़कर) राम सीता को ब्याहेंगे। (रही युद्ध की बात, सो) महाराज दशरथ के रण में बाँके

पुत्रों को युद्ध में तो जीत ही कौन सकता है॥ 245॥

ब्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई। मन मोदकन्हि कि भूख बुताई॥
सिख हमारि सुनि परम पुनीता। जगदंबा जानहु जियँ सीता॥

गाल बजाकर व्यर्थ ही मत मरो। मन के लड्डुओं से भी कहीं भूख बुझती है? हमारी परम पवित्र (निष्कपट) सीख को सुनकर सीता को अपने जी में साक्षात जगज्जननी समझो (उन्हें पत्नी रूप में पाने की आशा एवं लालसा छोड़ दो),

जगत पिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी॥
सुंदर सुखद सकल गुन रासी। ए दोउ बंधु संभु उर बासी॥

और रघुनाथ को जगत का पिता (परमेश्वर) विचारकर, नेत्र भरकर उनकी छवि देख लो (ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलेगा)। सुंदर, सुख देनेवाले और समस्त गुणों की राशि ये दोनों भाई शिव के हृदय में बसनेवाले हैं (स्वयं शिव भी जिन्हें सदा हृदय में छिपाए रखते हैं, वे तुम्हारे नेत्रों के सामने आ गए हैं)।

सुधा समुद्र समीप बिहाई। मृगजलु निरखि मरहु कत धाई॥
करहु जाइ जा कहुँ जोइ भावा। हम तौ आजु जनम फलु पावा॥

समीप आए हुए (भगवद्दर्शनरूप) अमृत के समुद्र को छोड़कर तुम (जगज्जननी जानकी को पत्नी रूप में पाने की दुराशा रूप मिथ्या) मृगजल को देखकर दौड़कर क्यों मरते हो? फिर (भाई!) जिसको जो अच्छा लगे वही जाकर करो। हमने तो (राम के दर्शन करके) आज जन्म लेने का फल पा लिया (जीवन और जन्म को सफल कर लिया)।

अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे॥
देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना। बरषहिं सुमन करहिं कल गाना॥

ऐसा कहकर अच्छे राजा प्रेम मग्न होकर राम का अनुपम रूप देखने लगे। (मनुष्यों की तो बात ही क्या) देवता लोग भी आकाश से विमानों पर चढ़े हुए दर्शन कर रहे हैं और सुंदर गान करते हुए फूल बरसा रहे हैं।

दो० - जानि सुअवसरु सीय तब पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखीं सुंदर सकल सादर चलीं लवाइ॥ 246॥

तब सुअवसर जानकर जनक ने सीता को बुला भेजा। सब चतुर और सुंदर सखियाँ आरदपूर्वक उन्हें लिवा चलीं॥ 246॥

सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागीं॥

रूप और गुणों की खान जगज्जननी जानकी की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता। उनके लिए मुझे (काव्य की) सब उपमाएँ तुच्छ लगती हैं, क्योंकि वे लौकिक स्त्रियों के अंगों से अनुराग रखनेवाली हैं (अर्थात वे जगत की स्त्रियों के अंगों को दी जाती हैं)। (काव्य की उपमाएँ सब त्रिगुणात्मक, मायिक जगत से ली गई हैं, उन्हें भगवान की स्वरूपा शक्ति जानकी के अप्राकृत, चिन्मय अंगों के लिए प्रयुक्त करना उनका अपमान करना और अपने को उपहासास्पद बनाना है)।

सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजसु को लेई॥
जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया॥

सीता के वर्णन में उन्हीं उपमाओं को देकर कौन कुकवि कहलाए और अपयश का भागी बने (अर्थात सीता के लिए उन उपमाओं का प्रयोग करना सुकवि के पद से च्युत होना और अपकीर्ति मोल लेना है, कोई भी सुकवि ऐसी नादानी एवं अनुचित कार्य नहीं करेगा।) यदि किसी स्त्री के साथ सीता की तुलना की जाए तो जगत में ऐसी सुंदर युवती है ही कहाँ (जिसकी उपमा उन्हें दी जाए)।

गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमासम किमि बैदेही॥

(पृथ्वी की स्त्रियों की तो बात ही क्या, देवताओं की स्त्रियों को भी यदि देखा जाए तो उनमें) सरस्वती तो बहुत बोलनेवाली हैं, पार्वती अर्धांगिनी हैं (अर्थात अर्ध-नारीनटेश्वर के रूप में उनका आधा ही अंग स्त्री का है, शेष आधा अंग पुरुष - शिव का है), कामदेव की स्त्री रति पति को बिना शरीर का (अनंग) जानकर बहुत दुःखी रहती है और जिनके विष और मद्य-जैसे (समुद्र से उत्पन्न होने के नाते) प्रिय भाई हैं, उन लक्ष्मी के समान तो जानकी को कहा ही कैसे जाए।

जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥

सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥

(जिन लक्ष्मी की बात ऊपर कही गई है, वे निकली थीं खारे समुद्र से, जिसको मथने के लिए भगवान ने अति कर्कश पीठवाले कच्छप का रूप धारण किया, रस्सी बनाई गई महान विषधर वासुकि नाग की, मथानी का कार्य किया अतिशय कठोर मंदराचल पर्वत ने और उसे मथा सारे देवताओं और दैत्यों ने मिलकर। जिन लक्ष्मी को अतिशय शोभा की खान और अनुपम सुंदरी कहते हैं, उनको प्रकट करने में हेतु बने ये सब असुंदर एवं स्वाभाविक ही कठोर उपकरण। ऐसे उपकरणों से प्रकट हुई लक्ष्मी जानकी की समता को कैसे पा सकती हैं। हाँ, इसके विपरीत) यदि छविरूपी अमृत का समुद्र हो, परम रूपमय कच्छप हो, शोभा रूप रस्सी हो, श्रृंगार (रस) पर्वत हो और (उस छवि के समुद्र को) स्वयं कामदेव अपने ही करकमल से मथे,

दो॰ - एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल॥ 247॥

इस प्रकार (का संयोग होने से) जब सुंदरता और सुख की मूल लक्ष्मी उत्पन्न हो, तो भी कवि लोग उसे (बहुत) संकोच के साथ सीता के समान कहेंगे॥ 247॥

चलीं संग लै सखीं सयानी। गावत गीत मनोहर बानी॥
सोह नवल तनु सुंदर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी॥

सयानी सखियाँ सीता को साथ लेकर मनोहर वाणी से गीत गाती हुई चलीं। सीता के नवल शरीर पर सुंदर साड़ी सुशोभित है। जगज्जननी की महान छवि अतुलनीय है।

भूषन सकल सुदेस सुहाए। अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए॥
रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी॥

सब आभूषण अपनी-अपनी जगह पर शोभित हैं, जिन्हें सखियों ने अंग-अंग में भली-भाँति सजाकर पहनाया है। जब सीता ने रंगभूमि में पैर रखा, तब उनका (दिव्य) रूप देखकर स्त्री, पुरुष सभी मोहित हो गए।

हरषि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं। बरषि प्रसून अपछरा गाईं॥
पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला॥

देवताओं ने हर्षित होकर नगाड़े बजाए और पुष्प बरसाकर अप्सराएँ गाने लगीं। सीता के करकमलों में जयमाला सुशोभित है। सब राजा चकित होकर अचानक उनकी ओर देखने लगे।

सीय चकित चित रामहि चाहा। भए मोहबस सब नरनाहा॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई॥

सीता चकित चित्त से राम को देखने लगीं, तब सब राजा लोग मोह के वश हो गए। सीता ने मुनि के पास (बैठे हुए) दोनों भाइयों को देखा तो उनके नेत्र अपना खजाना पाकर ललचाकर वहीं (राम में) जा लगे (स्थिर हो गए)।

दो॰ - गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि॥ 248॥

परंतु गुरुजनों की लाज से तथा बहुत बड़े समाज को देखकर सीता सकुचा गईं। वे राम को हृदय में लाकर सखियों की ओर देखने लगीं॥ 248॥

राम रूपु अरु सिय छबि देखें। नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें॥
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं। बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं॥

राम का रूप और सीता की छवि देखकर स्त्री-पुरुषों ने पलक झपकाना छोड़ दिया (सब एकटक उन्हीं को देखने लगे)। सभी अपने मन में सोचते हैं, पर कहते सकुचाते हैं। मन-ही-मन वे विधाता से विनय करते हैं-

हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई। मति हमारि असि देहि सुहाई॥
बिनु बिचार पनु तजि नरनाहू। सीय राम कर करै बिबाहू॥

हे विधाता! जनक की मूढ़ता को शीघ्र हर लीजिए और हमारी ही ऐसी सुंदर बुद्धि उन्हें दीजिए कि जिससे बिना ही विचार किए राजा अपना प्रण छोड़कर सीता का विवाह राम से कर दें।

जगु भल कहिहि भाव सब काहू। हठ कीन्हें अंतहुँ उर दाहू॥
एहिं लालसाँ मगन सब लोगू। बरु साँवरो जानकी जोगू॥

संसार उन्हें भला कहेगा, क्योंकि यह बात सब किसी को अच्छी लगती है। हठ करने से

अंत में भी हृदय जलेगा। सब लोग इसी लालसा में मग्न हो रहे हैं कि जानकी के योग्य वर तो यह साँवला ही है।

तब बंदीजन जनक बोलाए। बिरिदावली कहत चलि आए॥
कह नृपु जाइ कहहु पन मोरा। चले भाट हियँ हरषु न थोरा॥

तब राजा जनक ने वंदीजनों (भाटों) को बुलाया। वे विरुदावली (वंश की कीर्ति) गाते हुए चले आए। राजा ने कहा - जाकर मेरा प्रण सबसे कहो। भाट चले, उनके हृदय में कम आनंद न था।

दो० - बोले बंदी बचन बर सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल॥ 249॥

भाटों ने श्रेष्ठ वचन कहा - हे पृथ्वी की पालना करनेवाले सब राजागण! सुनिए। हम अपनी भुजा उठाकर जनक का विशाल प्रण कहते हैं - ॥ 249॥

नृप भुजबल बिधु सिवधनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू॥
रावनु बानु महाभट भारे। देखि सरासन गवँहिं सिधारे॥

राजाओं की भुजाओं का बल चंद्रमा है, शिव का धनुष राहु है, वह भारी है, कठोर है, यह सबको विदित है। बड़े भारी योद्धा रावण और बाणासुर भी इस धनुष को देखकर गौंसे (चुपके से) चलते बने (उसे उठाना तो दूर रहा, छूने तक की हिम्मत न हुई)।

सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा। राज समाज आजु जोइ तोरा॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही॥

उसी शिव के कठोर धनुष को आज इस राज समाज में जो भी तोड़ेगा, तीनों लोकों की विजय के साथ ही उसको जानकी बिना किसी विचार के हठपूर्वक वरण करेंगी।

सुनि पन सकल भूप अभिलाषे। भटमानी अतिसय मन माखे॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्ट देवन्ह सिर नाई॥

प्रण सुनकर सब राजा ललचा उठे। जो वीरता के अभिमानी थे, वे मन में बहुत ही तमतमाए। कमर कसकर अकुलाकर उठे और अपने इष्टदेवों को सिर नवाकर चले।

तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं। उठइ न कोटि भाँति बलु करहीं॥
जिन्ह के कछु बिचारु मन माहीं। चाप समीप महीप न जाहीं॥

वे तमककर (बड़े ताव से) शिव के धनुष की ओर देखते हैं और फिर निगाह जमाकर उसे पकड़ते हैं, करोड़ों भाँति से जोर लगाते हैं, पर वह उठता ही नहीं। जिन राजाओं के मन में कुछ विवेक है, वे तो धनुष के पास ही नहीं जाते।

दो० - तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठइ न चलहिं लजाइ॥
मनहुँ पाइ भट बाहुबलु अधिकु अधिकु गरुआइ॥ 250॥

वे मूर्ख राजा तमककर (किटकिटाकर) धनुष को पकड़ते हैं, परंतु जब नहीं उठता तो लजाकर चले जाते हैं, मानो वीरों की भुजाओं का बल पाकर वह धनुष अधिक-अधिक भारी होता जाता है॥ 250॥

भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा॥
डगइ न संभु सरासनु कैसें। कामी बचन सती मनु जैसें॥

तब दस हजार राजा एक ही बार धनुष को उठाने लगे, तो भी वह उनके टाले नहीं टलता। शिव का वह धनुष कैसे नहीं डिगता था, जैसे कामी पुरुष के वचनों से सती का मन (कभी) चलायमान नहीं होता।

सब नृप भए जोगु उपहासी। जैसें बिनु बिराग संन्यासी॥
कीरति बिजय बीरता भारी। चले चाप कर बरबस हारी॥

सब राजा उपहास के योग्य हो गए, जैसे वैराग्य के बिना संन्यासी उपहास के योग्य हो जाता है। कीर्ति, विजय, बड़ी वीरता - इन सबको वे धनुष के हाथों बरबस हारकर चले गए।

श्रीहत भए हारि हियँ राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा॥
नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने॥

राजा लोग हृदय से हारकर हीन (हतप्रभ) हो गए और अपने-अपने समाज में जा बैठे। राजाओं को (असफल) देखकर जनक अकुला उठे और ऐसे वचन बोले जो मानो क्रोध में सने हुए थे।

दीप दीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पनु ठाना॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा॥

मैंने जो प्रण ठाना था, उसे सुनकर द्वीप-द्वीप के अनेकों राजा आए। देवता और दैत्य भी मनुष्य का शरीर धारण करके आए तथा और भी बहुत-से रणधीर वीर आए।

दो० - कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय।
पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय॥ 251॥

परंतु धनुष को तोड़कर मनोहर कन्या, बड़ी विजय और अत्यंत सुंदर कीर्ति को पानेवाला मानो ब्रह्मा ने किसी को रचा ही नहीं॥ 251॥

कहहु काहि यहु लाभु न भावा। काहुँ न संकर चाप चढ़ावा॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई॥

कहिए, यह लाभ किसको अच्छा नहीं लगता, परंतु किसी ने भी शंकर का धनुष नहीं चढ़ाया। अरे भाई! चढ़ाना और तोड़ना तो दूर रहा, कोई तिल भर भूमि भी छुड़ा न सका।

अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥

अब कोई वीरता का अभिमानी नाराज न हो। मैंने जान लिया, पृथ्वी वीरों से खाली हो गई है। अब आशा छोड़कर अपने-अपने घर जाओ, ब्रह्मा ने सीता का विवाह लिखा ही नहीं।

सुकृतु जाइ जौं पनु परिहरऊँ। कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ॥
जौं जनतेउँ बिनु भट भुबि भाई। तौ पनु करि होतेउँ न हँसाई॥

यदि प्रण छोड़ता हूँ, तो पुण्य जाता है, इसलिए क्या करूँ, कन्या कुँआरी ही रहे। यदि मैं जानता कि पृथ्वी वीरों से शून्य है, तो प्रण करके उपहास का पात्र न बनता।

जनक बचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहि भए दुखारी॥
माखे लखनु कुटिल भइँ भौंहें। रदपट फरकत नयन रिसौंहें॥

जनक के वचन सुनकर सभी स्त्री-पुरुष जानकी की ओर देखकर दुःखी हुए, परंतु लक्ष्मण

तमतमा उठे, उनकी भौंहें टेढ़ी हो गईं, ओठ फड़कने लगे और नेत्र क्रोध से लाल हो गए।

दो० - कहि न सकत रघुबीर डर लगे बचन जनु बान।
नाइ राम पद कमल सिरु बोले गिरा प्रमान॥ 252॥

रघुवीर के डर से कुछ कह तो सकते नहीं, पर जनक के वचन उन्हें बाण-से लगे। (जब न रह सके तब) राम के चरण कमलों में सिर नवाकर वे यथार्थ वचन बोले - ॥ 252॥

रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहइ न कोई॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुलमनि जानी॥

रघुवंशियों में कोई भी जहाँ होता है, उस समाज में ऐसे वचन कोई नहीं कहता, जैसे अनुचित वचन रघुकुल शिरोमणि राम को उपस्थित जानते हुए भी जनक ने कहे हैं।

सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रहमांड उठावौं॥

हे सूर्य कुलरूपी कमल के सूर्य! सुनिए, मैं स्वभाव ही से कहता हूँ, कुछ अभिमान करके नहीं, यदि आपकी आज्ञा पाऊँ, तो मैं ब्रह्मांड को गेंद की तरह उठा लूँ।

काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। को बापुरो पिनाक पुराना॥

और उसे कच्चे घड़े की तरह फोड़ डालूँ। मैं सुमेरु पर्वत को मूली की तरह तोड़ सकता हूँ, हे भगवन! आपके प्रताप की महिमा से यह बेचारा पुराना धनुष तो कौन चीज है।

नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुकु करौं बिलोकिअ सोऊ॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥

ऐसा जानकर हे नाथ! आज्ञा हो तो कुछ खेल करूँ, उसे भी देखिए। धनुष को कमल की डंडी की तरह चढ़ाकर उसे सौ योजन तक दौड़ा लिए चला जाऊँ।

दो० - तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ॥ 253॥

हे नाथ! आपके प्रताप के बल से धनुष को कुकुरमुत्ते (बरसाती छत्ते) की तरह तोड़ दूँ। यदि ऐसा न करूँ तो प्रभु के चरणों की शपथ है, फिर मैं धनुष और तरकस को कभी हाथ में भी न लूँगा॥ 253॥

लखन सकोप बचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥
सकल लोग सब भूप डेराने। सिय हियँ हरषु जनकु सकुचाने॥

ज्यों ही लक्ष्मण क्रोध भरे वचन बोले कि पृथ्वी डगमगा उठी और दिशाओं के हाथी काँप गए। सभी लोग और सब राजा डर गए। सीता के हृदय में हर्ष हुआ और जनक सकुचा गए।

गुर रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भए पुनि पुनि पुलकाहीं॥
सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥

गुरु विश्वामित्र, रघुनाथ और सब मुनि मन में प्रसन्न हुए और बार-बार पुलकित होने लगे। राम ने इशारे से लक्ष्मण को मना किया और प्रेम सहित अपने पास बैठा लिया।

बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा॥

विश्वामित्र शुभ समय जानकर अत्यंत प्रेमभरी वाणी बोले - हे राम! उठो, शिव का धनुष तोड़ो और हे तात! जनक का संताप मिटाओ।

सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा। हरषु बिषादु न कछु उर आवा॥
ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ। ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ॥

गुरु के वचन सुनकर राम ने चरणों में सिर नवाया। उनके मन में न हर्ष हुआ, न विषाद और वे अपनी ऐंड़ (खड़े होने की शान) से जवान सिंह को भी लजाते हुए सहज स्वभाव से ही उठ खड़े हुए।

दो० - उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बालपतंग।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग॥ 254॥

मंचरूपी उदयाचल पर रघुनाथरूपी बाल सूर्य के उदय होते ही सब संतरूपी कमल खिल

उठे और नेत्ररूपी भौंरे हर्षित हो गए॥ 254॥

नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। बचन नखत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने॥

राजाओं की आशारूपी रात्रि नष्ट हो गई। उनके वचनरूपी तारों के समूह का चमकना बंद हो गया। (वे मौन हो गए)। अभिमानी राजारूपी कुमुद संकुचित हो गए और कपटी राजारूपी उल्लू छिप गए।

भए बिसोक कोक मुनि देवा। बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा॥
गुर पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु मागा॥

मुनि और देवतारूपी चकवे शोकरहित हो गए। वे फूल बरसाकर अपनी सेवा प्रकट कर रहे हैं। प्रेम सहित गुरु के चरणों की वंदना करके राम ने मुनियों से आज्ञा माँगी।

सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजु बर कुंजर गामी॥
चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरि तन भए सुखारी॥

समस्त जगत के स्वामी राम सुंदर मतवाले श्रेष्ठ हाथी की-सी चाल से स्वाभाविक ही चले। राम के चलते ही नगर भर के सब स्त्री-पुरुष सुखी हो गए और उनके शरीर रोमांच से भर गए।

बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे। जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे॥
तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरहुँ रामु गनेस गोसाईं॥

उन्होंने पितर और देवताओं की वंदना करके अपने पुण्यों का स्मरण किया। यदि हमारे पुण्यों का कुछ भी प्रभाव हो, तो हे गणेश गोसाईं! राम शिव के धनुष को कमल की डंडी की भाँति तोड़ डालें।

दो० - रामहि प्रेम समेत लखि सखिन्ह समीप बोलाइ।
सीता मातु सनेह बस बचन कहइ बिलखाइ॥ 255॥

राम को (वात्सल्य) प्रेम के साथ देखकर और सखियों को समीप बुलाकर सीता की माता स्नेहवश बिलखकर (विलाप करती हुई-सी) ये वचन बोलीं - ॥ 255॥

सखि सब कौतुक देखनिहारे। जेउ कहावत हितू हमारे॥
कोउ न बुझाइ कहइ गुर पाहीं। ए बालक असि हठ भलि नाहीं॥

हे सखी! ये जो हमारे हितू कहलाते हैं, वे भी सब तमाशा देखनेवाले हैं। कोई भी (इनके) गुरु विश्वामित्र को समझाकर नहीं कहता कि ये (राम) बालक हैं, इनके लिए ऐसा हठ अच्छा नहीं। (जो धनुष रावण और बाण - जैसे जगद्विजयी वीरों के हिलाए न हिल सका, उसे तोड़ने के लिए मुनि विश्वामित्र का राम को आज्ञा देना और राम का उसे तोड़ने के लिए चल देना रानी को हठ जान पड़ा, इसलिए वे कहने लगीं कि गुरु विश्वामित्र को कोई समझाता भी नहीं।)

रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा॥
सो धनु राजकुअँर कर देहीं। बाल मराल कि मंदर लेहीं॥

रावण और बाणासुर ने जिस धनुष को छुआ तक नहीं और सब राजा घमंड करके हार गए, वही धनुष इस सुकुमार राजकुमार के हाथ में दे रहे हैं। हंस के बच्चे भी कहीं मंदराचल पहाड़ उठा सकते हैं?

भूप सयानप सकल सिरानी। सखि बिधि गति कछु जाति न जानी॥
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवंत लघु गनिअ न रानी॥

(और तो कोई समझाकर कहे या नहीं, राजा तो बड़े समझदार और ज्ञानी हैं, उन्हें तो गुरु को समझाने की चेष्टा करनी चाहिए थी, परंतु मालूम होता है) राजा का भी सारा सयानापन समाप्त हो गया। हे सखी! विधाता की गति कुछ जानने में नहीं आती (यों कहकर रानी चुप हो रहीं)। तब एक चतुर (राम के महत्त्व को जाननेवाली) सखी कोमल वाणी से बोली - हे रानी! तेजवान को (देखने में छोटा होने पर भी) छोटा नहीं गिनना चाहिए।

कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा। सोषेउ सुजसु सकल संसारा॥
रबि मंडल देखत लघु लागा। उदयँ तासु तिभुवन तम भागा॥

कहाँ घड़े से उत्पन्न होनेवाले (छोटे-से) मुनि अगस्त्य और कहाँ समुद्र? किंतु उन्होंने उसे सोख लिया, जिसका सुयश सारे संसार में छाया हुआ है। सूर्यमंडल देखने में छोटा लगता है, पर उसके उदय होते ही तीनों लोकों का अंधकार भाग जाता है।

दो॰ - मंत्र परम लघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्ब।
महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्ब॥ 256॥

जिसके वश में ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सभी देवता हैं, वह मंत्र अत्यंत छोटा होता है। महान मतवाले गजराज को छोटा-सा अंकुश वश में कर लेता है॥ 256॥

काम कुसुम धनु सायक लीन्हे। सकल भुवन अपनें बस कीन्हे॥
देबि तजिअ संसउ अस जानी। भंजब धनुषु राम सुनु रानी॥

कामदेव ने फूलों का ही धनुष-बाण लेकर समस्त लोकों को अपने वश में कर रखा है। हे देवी! ऐसा जानकर संदेह त्याग दीजिए। हे रानी! सुनिए, राम धनुष को अवश्य ही तोड़ेंगे।

सखी बचन सुनि भै परतीती। मिटा बिषादु बढ़ी अति प्रीती॥
तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही॥

सखी के वचन सुनकर रानी को (राम के सामर्थ्य के संबंध में) विश्वास हो गया। उनकी उदासी मिट गई और राम के प्रति उनका प्रेम अत्यंत बढ़ गया। उस समय राम को देखकर सीता भयभीत हृदय से जिस-तिस (देवता) से विनती कर रही हैं।

मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥
करहु सफल आपनि सेवकाई। करि हितु हरहु चाप गरुआई॥

वे व्याकुल होकर मन-ही-मन मना रही हैं - हे महेश-भवानी! मुझ पर प्रसन्न होइए, मैंने आपकी जो सेवा की है, उसे सुफल कीजिए और मुझ पर स्नेह करके धनुष के भारीपन को हर लीजिए।

गननायक बर दायक देवा। आजु लगें कीन्हिउँ तुअ सेवा॥
बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी॥

हे गणों के नायक, वर देनेवाले देवता गणेश! मैंने आज ही के लिए तुम्हारी सेवा की थी। बार-बार मेरी विनती सुनकर धनुष का भारीपन बहुत ही कम कर दीजिए।

दो॰ - देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर॥ 257॥

रघुनाथ की ओर देख-देखकर सीता धीरज धरकर देवताओं को मना रही हैं। उनके नेत्रों में प्रेम के आँसू भरे हैं और शरीर में रोमांच हो रहा है॥ 257॥

नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा॥
अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभु न हानी॥

अच्छी तरह नेत्र भरकर राम की शोभा देखकर, फिर पिता के प्रण का स्मरण करके सीता का मन क्षुब्ध हो उठा। (वे मन-ही-मन कहने लगीं -) अहो! पिता ने बड़ा ही कठिन हठ ठाना है, वे लाभ-हानि कुछ भी नहीं समझ रहे हैं।

सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई॥
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा॥

मंत्री डर रहे हैं, इसलिए कोई उन्हें सीख भी नहीं देता, पंडितों की सभा में यह बड़ा अनुचित हो रहा है। कहाँ तो वज्र से भी बढ़कर कठोर धनुष और कहाँ ये कोमल शरीर किशोर श्यामसुंदर!

बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा॥
सकल सभा कै मति भै भोरी। अब मोहि संभुचाप गति तोरी॥

हे विधाता! मैं हृदय में किस तरह धीरज धरूँ, सिरस के फूल के कण से कहीं हीरा छेदा जाता है। सारी सभा की बुद्धि भोली (बावली) हो गई है, अतः हे शिव के धनुष! अब तो मुझे तुम्हारा ही आसरा है।

निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी॥
अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष जुग सय सम जाहीं॥

तुम अपनी जड़ता लोगों पर डालकर, रघुनाथ (के सुकुमार शरीर) को देखकर (उतने ही) हल्के हो जाओ। इस प्रकार सीता के मन में बड़ा ही संताप हो रहा है। निमेष का एक लव (अंश) भी सौ युगों के समान बीत रहा है।

दो० - प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल॥ 258॥

प्रभु राम को देखकर फिर पृथ्वी की ओर देखती हुई सीता के चंचल नेत्र इस प्रकार

शोभित हो रहे हैं, मानो चंद्रमंडलरूपी डोल में कामदेव की दो मछलियाँ खेल रही हों॥ 258॥

गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी॥
लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसें परम कृपन कर सोना॥

सीता की वाणीरूपी भ्रमरी को उनके मुखरूपी कमल ने रोक रखा है। लाजरूपी रात्रि को देखकर वह प्रकट नहीं हो रही है। नेत्रों का जल नेत्रों के कोने (कोये) में ही रह जाता है। जैसे बड़े भारी कंजूस का सोना कोने में ही गड़ा रह जाता है।

सकुची ब्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरजु प्रतीति उर आनी॥
तन मन बचन मोर पनु साचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा॥

अपनी बढ़ी हुई व्याकुलता जानकर सीता सकुचा गईं और धीरज धरकर हृदय में विश्वास ले आईं कि यदि तन, मन और वचन से मेरा प्रण सच्चा है और रघुनाथ के चरण कमलों में मेरा चित्त वास्तव में अनुरक्त है,

तौ भगवानु सकल उर बासी। करिहि मोहि रघुबर कै दासी॥
जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥

तो सबके हृदय में निवास करनेवाले भगवान मुझे रघुश्रेष्ठ राम की दासी अवश्य बनाएँगे। जिसका जिस पर सच्चा स्नेह होता है, वह उसे मिलता ही है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें। चितव गरुरु लघु ब्यालहि जैसें॥

प्रभु की ओर देखकर सीता ने शरीर के द्वारा प्रेम ठान लिया (अर्थात यह निश्चय कर लिया कि यह शरीर इन्हीं का होकर रहेगा या रहेगा ही नहीं) कृपानिधान राम सब जान गए। उन्होंने सीता को देखकर धनुष की ओर कैसे ताका, जैसे गरुड़ छोटे-से साँप की ओर देखते हैं।

दो० - लखन लखेउ रघुबंसमनि ताकेउ हर कोदंडु।
पुलकि गात बोले बचन चरन चापि ब्रह्मांडु॥ 259॥

इधर जब लक्ष्मण ने देखा कि रघुकुलमणि राम ने शिव के धनुष की ओर ताका है, तो वे

शरीर से पुलकित हो ब्रह्मांड को चरणों से दबाकर निम्नलिखित वचन बोले - ॥ 259॥

दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला॥
रामु चहहिं संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा॥

हे दिग्गजो! हे कच्छप! हे शेष! हे वाराह! धीरज धरकर पृथ्वी को थामे रहो, जिससे यह हिलने न पाए। राम शिव के धनुष को तोड़ना चाहते हैं। मेरी आज्ञा सुनकर सब सावधान हो जाओ।

चाप समीप रामु जब आए। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए॥
सब कर संसउ अरु अग्यानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू॥

राम जब धनुष के समीप आए, तब सब स्त्री-पुरुषों ने देवताओं और पुण्यों को मनाया। सबका संदेह और अज्ञान, नीच राजाओं का अभिमान,

भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा॥

परशुराम के गर्व की गुरुता, देवता और श्रेष्ठ मुनियों की कातरता (भय), सीता का सोच, जनक का पश्चात्ताप और रानियों के दारुण दुःख का दावानल,

संभुचाप बड़ बोहितु पाई। चढ़े जाइ सब संगु बनाई॥
राम बाहुबल सिंधु अपारू। चहत पारु नहिं कोउ कड़हारू॥

ये सब शिव के धनुषरूपी बड़े जहाज को पाकर, समाज बनाकर उस पर जा चढ़े। ये राम की भुजाओं के बलरूपी अपार समुद्र के पार जाना चाहते हैं, परंतु कोई केवट नहीं है।

दो॰ - राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि॥ 260॥

राम ने सब लोगों की ओर देखा और उन्हें चित्र में लिखे हुए-से देखकर फिर कृपाधाम राम ने सीता की ओर देखा और उन्हें विशेष व्याकुल जाना॥ 260॥

देखी बिपुल बिकल बैदेही। निमिष बिहात कलप सम तेही।

तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुएँ करइ का सुधा तड़ागा॥

उन्होंने जानकी को बहुत ही विकल देखा। उनका एक-एक क्षण कल्प के समान बीत रहा था। यदि प्यासा आदमी पानी के बिना शरीर छोड़ दे, तो उसके मर जाने पर अमृत का तालाब भी क्या करेगा?

का बरषा सब कृषी सुखानें। समय चुकें पुनि का पछितानें॥
अस जियँ जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेषी॥

सारी खेती के सूख जाने पर वर्षा किस काम की? समय बीत जाने पर फिर पछताने से क्या लाभ? जी में ऐसा समझकर राम ने जानकी की ओर देखा और उनका विशेष प्रेम लखकर वे पुलकित हो गए।

गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा। अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ॥

मन-ही-मन उन्होंने गुरु को प्रणाम किया और बड़ी फुर्ती से धनुष को उठा लिया। जब उसे (हाथ में) लिया, तब वह धनुष बिजली की तरह चमका और फिर आकाश में मंडल-जैसा (मंडलाकार) हो गया।

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें। काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥

लेते, चढ़ाते और जोर से खींचते हुए किसी ने नहीं लखा (अर्थात ये तीनों काम इतनी फुर्ती से हुए कि धनुष को कब उठाया, कब चढ़ाया और कब खींचा, इसका किसी को पता नहीं लगा); सबने राम को (धनुष खींचे) खड़े देखा। उसी क्षण राम ने धनुष को बीच से तोड़ डाला। भयंकर कठोर ध्वनि से (सब) लोक भर गए।

छं० - भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥

घोर, कठोर शब्द से (सब) लोक भर गए, सूर्य के घोड़े मार्ग छोड़कर चलने लगे। दिग्गज

चिग्घाड़ने लगे, धरती डोलने लगी, शेष, वाराह और कच्छप कलमला उठे। देवता, राक्षस और मुनि कानों पर हाथ रखकर सब व्याकुल होकर विचारने लगे। तुलसीदास कहते हैं; (जब सब को निश्चय हो गया कि) राम ने धनुष को तोड़ डाला, तब सब 'राम की जय' बोलने लगे।

सो० - संकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहुबलु।
बूड़ सो सकल समाजु चढ़ा जो प्रथमहिं मोह बस॥ 261॥

शिव का धनुष जहाज है और राम की भुजाओं का बल समुद्र है। (धनुष टूटने से) वह सारा समाज डूब गया, जो मोहवश पहले इस जहाज पर चढ़ा था। (जिसका वर्णन ऊपर आया है)॥ 261॥

प्रभु दोउ चापखंड महि डारे। देखि लोग सब भए सुखारे॥
कौसिकरूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाहु सुहावन॥

प्रभु ने धनुष के दोनों टुकड़े पृथ्वी पर डाल दिए। यह देखकर सब लोग सुखी हुए। विश्वामित्ररूपी पवित्र समुद्र में, जिसमें प्रेमरूपी सुंदर अथाह जल भरा है,

रामरूप राकेसु निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी॥
बाजे नभ गहगहे निसाना। देवबधू नाचहिं करि गाना॥

रामरूपी पूर्णचंद्र को देखकर पुलकावलीरूपी भारी लहरें बढ़ने लगीं। आकाश में बड़े जोर से नगाड़े बजने लगे और देवांगनाएँ गान करके नाचने लगीं।

ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहि प्रसंसहिं देहिं असीसा॥
बरिसहिं सुमन रंग बहु माला। गावहिं किंनर गीत रसाला॥

ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध और मुनीश्वर लोग प्रभु की प्रशंसा कर रहे हैं और आशीर्वाद दे रहे हैं। वे रंग-बिरंगे फूल और मालाएँ बरसा रहे हैं। किन्नर लोग रसीले गीत गा रहे हैं।

रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुष भंग धुनि जात न जानी॥
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी। भंजेउ राम संभुधनु भारी॥

सारे ब्रह्मांड में जय-जयकार की ध्वनि छा गई, जिसमें धनुष टूटने की ध्वनि जान ही नहीं पड़ती। जहाँ-तहाँ स्त्री-पुरुष प्रसन्न होकर कह रहे हैं कि राम ने शिव के भारी धनुष

को तोड़ डाला।

दो॰ - बंदी मागध सूतगन बिरुद बदहिं मतिधीर।
करहिं निछावरि लोग सब हय गय धन मनि चीर॥ 262॥

धीर बुद्धिवाले, भाट, मागध और सूत लोग विरुदावली (कीर्ति) का बखान कर रहे हैं। सब लोग घोड़े, हाथी, धन, मणि और वस्त्र निछावर कर रहे हैं॥ 262॥

झाँझि मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई॥
बाजहिं बहु बाजने सुहाए। जहँ तहँ जुबतिन्ह मंगल गाए॥

झाँझ, मृदंग, शंख, शहनाई, भेरी, ढोल और सुहावने नगाड़े आदि बहुत प्रकार के सुंदर बाजे बज रहे हैं। जहाँ-तहाँ युवतियाँ मंगल गीत गा रही हैं।

सखिन्ह सहित हरषी अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी॥
जनक लहेउ सुखु सोचु बिहाई। पैरत थकें थाह जनु पाई॥

सखियों सहित रानी अत्यंत हर्षित हुईं, मानो सूखते हुए धान पर पानी पड़ गया हो। जनक ने सोच त्याग कर सुख प्राप्त किया। मानो तैरते-तैरते थके हुए पुरुष ने थाह पा ली हो।

श्रीहत भए भूप धनु टूटे। जैसें दिवस दीप छबि छूटे॥
सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती॥

धनुष टूट जाने पर राजा लोग ऐसेहीन (निस्तेज) हो गए, जैसे दिन में दीपक की शोभा जाती रहती है। सीता का सुख किस प्रकार वर्णन किया जाए, जैसे चातकी स्वाती का जल पा गई हो।

रामहि लखनु बिलोकत कैसें। ससिहि चकोर किसोरकु जैसें॥
सतानंद तब आयसु दीन्हा। सीताँ गमनु राम पहिं कीन्हा॥

राम को लक्ष्मण किस प्रकार देख रहे हैं, जैसे चंद्रमा को चकोर का बच्चा देख रहा हो। तब शतानंद ने आज्ञा दी और सीता ने राम के पास गमन किया।

दो॰ - संग सखीं सुंदर चतुर गावहिं मंगलचार।

गवनी बाल मराल गति सुषमा अंग अपार॥ 263॥

साथ में सुंदर चतुर सखियाँ मंगलाचार के गीत गा रही हैं, सीता बालहंसिनी की चाल से चलीं। उनके अंगों में अपार शोभा है॥ 263॥

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें। छबिगन मध्य महाछबि जैसें॥
कर सरोज जयमाल सुहाई। बिस्व बिजय सोभा जेहिं छाई॥

सखियों के बीच में सीता कैसी शोभित हो रही हैं, जैसे बहुत-सी छवियों के बीच में महाछवि हो। करकमल में सुंदर जयमाला है, जिसमें विश्व विजय की शोभा छाई हुई है।

तन सकोचु मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेमु लखि परइ न काहू॥
जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी॥

सीता के शरीर में संकोच है, पर मन में परम उत्साह है। उनका यह गुप्त प्रेम किसी को जान नहीं पड़ रहा है। समीप जाकर, राम की शोभा देखकर राजकुमारी सीता जैसे चित्र में लिखी-सी रह गईं।

चतुर सखीं लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई॥
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई॥

चतुर सखी ने यह दशा देखकर समझाकर कहा - सुहावनी जयमाला पहनाओ। यह सुनकर सीता ने दोनों हाथों से माला उठाई, पर प्रेम में विवश होने से पहनाई नहीं जाती।

सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला॥
गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सियँ जयमाल राम उर मेली॥

(उस समय उनके हाथ ऐसे सुशोभित हो रहे हैं) मानो डंडियों सहित दो कमल चंद्रमा को डरते हुए जयमाला दे रहे हों। इस छवि को देखकर सखियाँ गाने लगीं। तब सीता ने राम के गले में जयमाला पहना दी।

सो० - रघुबर उर जयमाल देखि देव बरिसहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल जनु बिलोकि रबि कुमुदगन॥ 264॥

रघुनाथ के हृदय पर जयमाला देखकर देवता फूल बरसाने लगे। समस्त राजागण इस

प्रकार सकुचा गए मानो सूर्य को देखकर कुमुदों का समूह सिकुड़ गया हो॥ 264॥

पुर अरु ब्योम बाजने बाजे। खल भए मलिन साधु सब राजे॥
सुर किंनर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिं असीसा॥

नगर और आकाश में बाजे बजने लगे। दुष्ट लोग उदास हो गए और सज्जन लोग सब प्रसन्न हो गए। देवता, किन्नर, मनुष्य, नाग और मुनीश्वर जय-जयकार करके आशीर्वाद दे रहे हैं।

नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटीं। बार बार कुसुमांजलि छूटीं॥
जहँ तहँ बिप्र बेद धुनि करहीं। बंदी बिरिदावलि उच्चरहीं॥

देवताओं की स्त्रियाँ नाचती-गाती हैं। बार-बार हाथों से पुष्पों की अंजलियाँ छूट रही हैं। जहाँ-तहाँ ब्रह्म वेद ध्वनि कर रहे हैं और भाट लोग विरुदावली (कुलकीर्ति) बखान रहे हैं।

महिं पाताल नाक जसु ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा॥
करहिं आरती पुर नर नारी। देहिं निछावरि बित्त बिसारी॥

पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग तीनों लोकों में यश फैल गया कि राम ने धनुष तोड़ दिया और सीता का वरण कर लिया। नगर के नर-नारी आरती कर रहे हैं और अपनी पूँजी (हैसियत) को भुलाकर (सामर्थ्य से बहुत अधिक) निछावर कर रहे हैं।

सोहति सीय राम कै जोरी। छबि सिंगारु मनहुँ एक ठोरी॥
सखीं कहहिं प्रभु पद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता॥

सीताराम की जोड़ी ऐसी सुशोभित हो रही है मानो सुंदरता और श्रृंगार रस एकत्र हो गए हों। सखियाँ कह रही हैं - सीते! स्वामी के चरण छुओ; किंतु सीता अत्यंत भयभीत हुई उनके चरण नहीं छूतीं।

दो० - गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि॥ 265॥

गौतम की स्त्री अहल्या की गति का स्मरण करके सीता राम के चरणों को हाथों से स्पर्श नहीं कर रही हैं। सीता की अलौकिक प्रीति जानकर रघुकुल मणि राम मन में हँसे॥

265॥

तब सिय देखि भूप अभिलाषे। कूर कपूत मूढ़ मन माखे॥
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे॥

उस समय सीता को देखकर कुछ राजा लोग ललचा उठे। वे दुष्ट, कुपूत और मूढ़ राजा मन में बहुत तमतमाए। वे अभागे उठ-उठकर, कवच पहनकर, जहाँ-तहाँ गाल बजाने लगे।

लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ॥
तोरें धनुषु चाड़ नहिं सरई। जीवत हमहि कुअँरि को बरई॥

कोई कहते हैं, सीता को छीन लो और दोनों राजकुमारों को पकड़कर बाँध लो। धनुष तोड़ने से ही चाह नहीं सरेगी (पूरी होगी)। हमारे जीते-जी राजकुमारी को कौन ब्याह सकता है?

जौं बिदेहु कछु करै सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भाई॥
साधु भूप बोले सुनि बानी। राजसमाजहि लाज लजानी॥

यदि जनक कुछ सहायता करें, तो युद्ध में दोनों भाइयों सहित उसे भी जीत लो। ये वचन सुनकर साधु राजा बोले - इस (निर्लज्ज) राज समाज को देखकर तो लाज भी लजा गई।

बलु प्रतापु बीरता बड़ाई। नाक पिनाकहि संग सिधाई॥
सोइ सूरता कि अब कहुँ पाई। असि बुधि तौ बिधि मुँह मसि लाई॥

अरे! तुम्हारा बल, प्रताप, वीरता, बड़ाई और नाक (प्रतिष्ठा) तो धनुष के साथ ही चली गई। वही वीरता थी कि अब कहीं से मिली है? ऐसी दुष्ट बुद्धि है, तभी तो विधाता ने तुम्हारे मुखों पर कालिख लगा दी।

दो० - देखहु रामहि नयन भरि तजि इरिषा मदु कोहु।।
लखन रोषु पावकु प्रबल जानि सलभ जनि होहु॥ 266॥

ईर्ष्या, घमंड और क्रोध छोड़कर नेत्र भरकर राम (की छवि) को देख लो। लक्ष्मण के क्रोध को प्रबल अग्नि जानकर उसमें पतंगे मत बनो॥ 266॥

बैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि ससु चहै नाग अरि भागू॥

जिमि चह कुसल अकारन कोही। सब संपदा चहै सिवद्रोही॥

जैसे गरुड़ का भाग कौआ चाहे, सिंह का भाग खरगोश चाहे, बिना कारण ही क्रोध करनेवाला अपनी कुशल चाहे, शिव से विरोध करनेवाला सब प्रकार की संपत्ति चाहे,

लोभी लोलुप कल कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई॥
हरि पद बिमुख परम गति चाहा। तस तुम्हार लालचु नरनाहा॥

लोभी-लालची सुंदर कीर्ति चाहे, कामी मनुष्य निष्कलंकता (चाहे तो) क्या पा सकता है? और जैसे हरि के चरणों से विमुख मनुष्य परमगति (मोक्ष) चाहे, हे राजाओ! सीता के लिए तुम्हारा लालच भी वैसा ही व्यर्थ है।

कोलाहलु सुनि सीय सकानी। सखीं लवाइ गईं जहँ रानी॥
रामु सुभायँ चले गुरु पाहीं। सिय सनेहु बरनत मन माहीं॥

कोलाहल सुनकर सीता शंकित हो गईं। तब सखियाँ उन्हें वहाँ ले गईं, जहाँ रानी (सीता की माता) थीं। राम मन में सीता के प्रेम का बखान करते हुए स्वाभाविक चाल से गुरु के पास चले।

रानिन्ह सहित सोच बस सीया। अब धौं बिधिहि काह करनीया॥
भूप बचन सुनि इत उत तकहीं। लखनु राम डर बोलि न सकहीं॥

रानियों सहित सीता (दुष्ट राजाओं के दुर्वचन सुनकर) सोच के वश हैं कि न जाने विधाता अब क्या करनेवाले हैं। राजाओं के वचन सुनकर लक्ष्मण इधर-उधर ताकते हैं, किंतु राम के डर से कुछ बोल नहीं सकते।

दो० - अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहुँ मत्त गजगन निरखि सिंघकिसोरहि चोप॥ 267॥

उनके नेत्र लाल और भौंहें टेढ़ी हो गईं और वे क्रोध से राजाओं की ओर देखने लगे, मानो मतवाले हाथियों का झुंड देखकर सिंह के बच्चे को जोश आ गया हो॥ 267॥

खरभरु देखि बिकल पुर नारीं। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारीं॥
तेहिं अवसर सुनि सिवधनु भंगा। आयउ भृगुकुल कमल पतंगा॥

खलबली देखकर जनकपुरी की स्त्रियाँ व्याकुल हो गईं और सब मिलकर राजाओं को गालियाँ देने लगीं। उसी मौके पर शिव के धनुष का टूटना सुनकर भृगुकुलरूपी कमल के सूर्य परशुराम आए।

देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौरि सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥

इन्हें देखकर सब राजा सकुचा गए, मानो बाज के झपटने पर बटेर लुक (छिप) गए हों। गोरे शरीर पर विभूति (भस्म) बड़ी फब रही है और विशाल ललाट पर त्रिपुंड विशेष शोभा दे रहा है।

सीस जटा ससिबदनु सुहावा। रिस बस कछुक अरुन होइ आवा॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते॥

सिर पर जटा है, सुंदर मुखचंद्र क्रोध के कारण कुछ लाल हो आया है। भौंहें टेढ़ी और आँखें क्रोध से लाल हैं। सहज ही देखते हैं, तो भी ऐसा जान पड़ता है मानो क्रोध कर रहे हैं।

बृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधें। धनु सर कर कुठारु कल काँधें॥

बैल के समान (ऊँचे और पुष्ट) कंधे हैं; छाती और भुजाएँ विशाल हैं। सुंदर यज्ञोपवीत धारण किए, माला पहने और मृगचर्म लिए हैं। कमर में मुनियों का वस्त्र (वल्कल) और दो तरकस बाँधे हैं। हाथ में धनुष-बाण और सुंदर कंधे पर फरसा धारण किए हैं।

दो० - सांत बेषु करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनितनु जनु बीर रसु आयउ जहँ सब भूप॥ 268॥

शांत वेष है, परंतु करनी बहुत कठोर हैं; स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। मानो वीर रस ही मुनि का शरीर धारण करके, जहाँ सब राजा लोग हैं, वहाँ आ गया हो॥ 268॥

देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥
पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा॥

परशुराम का भयानक वेष देखकर सब राजा भय से व्याकुल हो उठ खड़े हुए और पिता

सहित अपना नाम कह-कहकर सब दंडवत प्रणाम करने लगे।

जेहि सुभायँ चितवहिं हितु जानी। सो जानइ जनु आइ खुटानी॥
जनक बहोरि आइ सिरु नावा। सीय बोलाइ प्रनामु करावा॥

परशुराम हित समझकर भी सहज ही जिसकी ओर देख लेते हैं, वह समझता है मानो मेरी आयु पूरी हो गई। फिर जनक ने आकर सिर नवाया और सीता को बुलाकर प्रणाम कराया।

आसिष दीन्हि सखीं हरषानीं। निज समाज लै गईं सयानीं॥
बिस्वामित्रु मिले पुनि आई। पद सरोज मेले दोउ भाई॥

परशुराम ने सीता को आशीर्वाद दिया। सखियाँ हर्षित हुईं और (वहाँ अब अधिक देर ठहरना ठीक न समझकर) वे सयानी सखियाँ उनको अपनी मंडली में ले गईं। फिर विश्वामित्र आकर मिले और उन्होंने दोनों भाइयों को उनके चरण कमलों पर गिराया।

रामु लखनु दसरथ के ढोटा। दीन्हि असीस देखि भल जोटा॥
रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन॥

(विश्वामित्र ने कहा -) ये राम और लक्ष्मण राजा दशरथ के पुत्र हैं। उनकी सुंदर जोड़ी देखकर परशुराम ने आशीर्वाद दिया। कामदेव के भी मद को छुड़ानेवाले राम के अपार रूप को देखकर उनके नेत्र चकित (स्तंभित) हो रहे।

दो० - बहुरि बिलोकि बिदेह सन कहहु काह अति भीर।
पूँछत जानि अजान जिमि ब्यापेउ कोपु सरीर॥ 269॥

फिर सब देखकर, जानते हुए भी अनजान की तरह जनक से पूछते हैं कि कहो, यह बड़ी भारी भीड़ कैसी है? उनके शरीर में क्रोध छा गया॥ 269॥

समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे। देखे चापखंड महि डारे॥

जिस कारण सब राजा आए थे, राजा जनक ने वे सब समाचार कह सुनाए। जनक के वचन सुनकर परशुराम ने फिरकर दूसरी ओर देखा तो धनुष के टुकड़े पृथ्वी पर पड़े हुए

दिखाई दिए।

अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू॥

अत्यंत क्रोध में भरकर वे कठोर वचन बोले - रे मूर्ख जनक! बता, धनुष किसने तोड़ा? उसे शीघ्र दिखा, नहीं तो अरे मूढ़! आज मैं जहाँ तक तेरा राज्य है, वहाँ तक की पृथ्वी उलट दूँगा।

अति डरु उतरु देत नृपु नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी॥

राजा को अत्यंत डर लगा, जिसके कारण वे उत्तर नहीं देते। यह देखकर कुटिल राजा मन में बड़े प्रसन्न हुए। देवता, मुनि, नाग और नगर के स्त्री-पुरुष सभी सोच करने लगे, सबके हृदय में बड़ा भय है।

मन पछिताति सीय महतारी। बिधि अब सँवरी बात बिगारी॥
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अरध निमेष कलप सम बीता॥

सीता की माता मन में पछता रही हैं कि हाय! विधाता ने अब बनी-बनाई बात बिगाड़ दी। परशुराम का स्वभाव सुनकर सीता को आधा क्षण भी कल्प के समान बीतने लगा।

दो॰ - सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु।
हृदयँ न हरषु बिषादु कछु बोलेरघुबीरु॥ 270॥

तब राम सब लोगों को भयभीत देखकर और सीता को डरी हुई जानकर बोले - उनके हृदय में न कुछ हर्ष था न विषाद - ॥ 270॥

नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा॥
आयसु काह कहिअ किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही॥

हे नाथ! शिव के धनुष को तोड़नेवाला आपका कोई एक दास ही होगा। क्या आज्ञा है, मुझसे क्यों नहीं कहते? यह सुनकर क्रोधी मुनि रिसाकर बोले -

सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई॥

सुनहु राम जेहिं सिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥

सेवक वह है जो सेवा का काम करे। शत्रु का काम करके तो लड़ाई ही करनी चाहिए। हे राम! सुनो, जिसने शिव के धनुष को तोड़ा है, वह सहस्रबाहु के समान मेरा शत्रु है।

सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहहिं सब राजा॥
सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने। बोले परसुधरहि अपमाने॥

वह इस समाज को छोड़कर अलग हो जाए, नहीं तो सभी राजा मारे जाएँगे। मुनि के वचन सुनकर लक्ष्मण मुसकराए और परशुराम का अपमान करते हुए बोले -

बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू॥

हे गोसाईं! लड़कपन में हमने बहुत-सी धनुहियाँ तोड़ डालीं। किंतु आपने ऐसा क्रोध कभी नहीं किया। इसी धनुष पर इतनी ममता किस कारण से है? यह सुनकर भृगुवंश की ध्वजा स्वरूप परशुराम कुपित होकर कहने लगे।

दो० - रे नृप बालक काल बस बोलत तोहि न सँभार।
धनुही सम तिपुरारि धनु बिदित सकल संसार॥ 271॥

अरे राजपुत्र! काल के वश होने से तुझे बोलने में कुछ भी होश नहीं है। सारे संसार में विख्यात शिव का यह धनुष क्या धनुही के समान है?॥ 271॥

लखन कहा हँसि हमरें जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना॥
का छति लाभु जून धनु तोरें। देखा राम नयन के भोरें॥

लक्ष्मण ने हँसकर कहा - हे देव! सुनिए, हमारे जान में तो सभी धनुष एक-से ही हैं। पुराने धनुष के तोड़ने में क्या हानि-लाभ! राम ने तो इसे नवीन के धोखे से देखा था।

छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू॥
बोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा॥

फिर यह तो छूते ही टूट गया, इसमें रघुनाथ का भी कोई दोष नहीं है। मुनि! आप बिना ही कारण किसलिए क्रोध करते हैं? परशुराम अपने फरसे की ओर देखकर बोले - अरे

दुष्ट! तूने मेरा स्वभाव नहीं सुना।

बालकु बोलि बधउँ नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानहि मोही॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित छत्रियकुल द्रोही॥

मैं तुझे बालक जानकर नहीं मारता हूँ। अरे मूर्ख! क्या तू मुझे निरा मुनि ही जानता है? मैं बालब्रह्मचारी और अत्यंत क्रोधी हूँ। क्षत्रियकुल का शत्रु तो विश्वभर में विख्यात हूँ।

भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही॥
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा॥

अपनी भुजाओं के बल से मैंने पृथ्वी को राजाओं से रहित कर दिया और बहुत बार उसे ब्राह्मणों को दे डाला। हे राजकुमार! सहस्रबाहु की भुजाओं को काटनेवाले मेरे इस फरसे को देख!

दो० - मातु पितहि जनि सोचबस करसि महीसकिसोर।
गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर॥ 272॥

अरे राजा के बालक! तू अपने माता-पिता को सोच के वश न कर। मेरा फरसा बड़ा भयानक है, यह गर्भों के बच्चों का भी नाश करनेवाला है॥ 272॥

बिहसि लखनु बोले मृदु बानी। अहो मुनीसु महा भटमानी॥
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू॥

लक्ष्मण हँसकर कोमल वाणी से बोले - अहो, मुनीश्वर तो अपने को बड़ा भारी योद्धा समझते हैं। बार-बार मुझे कुल्हाड़ी दिखाते हैं। फूँक से पहाड़ उड़ाना चाहते हैं।

इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं॥
देखि कुठारु सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना॥

यहाँ कोई कुम्हड़े की बतिया (छोटा कच्चा फल) नहीं है, जो तर्जनी (सबसे आगे की) अंगुली को देखते ही मर जाती हैं। कुठार और धनुष-बाण देखकर ही मैंने कुछ अभिमान सहित कहा था।

भृगुसुत समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहउँ रिस रोकी॥

सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरें कुल इन्ह पर न सुराई॥

भृगुवंशी समझकर और यज्ञोपवीत देखकर तो जो कुछ आप कहते हैं, उसे मैं क्रोध को रोककर सह लेता हूँ। देवता, ब्राह्मण, भगवान के भक्त और गौ - इन पर हमारे कुल में वीरता नहीं दिखाई जाती।

बधें पापु अपकीरति हारें। मारतहूँ पा परिअ तुम्हारें॥
कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा। ब्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥

क्योंकि इन्हें मारने से पाप लगता है और इनसे हार जाने पर अपकीर्ति होती है, इसलिए आप मारें तो भी आपके पैर ही पड़ना चाहिए। आपका एक-एक वचन ही करोड़ों वज्रों के समान है। धनुष-बाण और कुठार तो आप व्यर्थ ही धारण करते हैं।

दो० - जो बिलोकि अनुचित कहेउँ छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुबंसमनि बोले गिरा गभीर॥ 273॥

इन्हें (धनुष-बाण और कुठार को) देखकर मैंने कुछ अनुचित कहा हो, तो उसे हे धीर महामुनि! क्षमा कीजिए। यह सुनकर भृगुवंशमणि परशुराम क्रोध के साथ गंभीर वाणी बोले - ॥ 273॥

कौसिक सुनहु मंद यहु बालकु। कुटिल कालबस निज कुल घालकु॥
भानु बंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू॥

हे विश्वामित्र! सुनो, यह बालक बड़ा कुबुद्धि और कुटिल है, काल के वश होकर यह अपने कुल का घातक बन रहा है। यह सूर्यवंशरूपी पूर्णचंद्र का कलंक है। यह बिल्कुल उद्दंड, मूर्ख और निडर है।

काल कवलु होइहि छन माहीं। कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं॥
तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा॥

अभी क्षण भर में यह काल का ग्रास हो जाएगा। मैं पुकारकर कहे देता हूँ, फिर मुझे दोष नहीं है। यदि तुम इसे बचाना चाहते हो, तो हमारा प्रताप, बल और क्रोध बतलाकर इसे मना कर दो।

लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा॥

अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी॥

लक्ष्मण ने कहा - हे मुनि! आपका सुयश आपके रहते दूसरा कौन वर्णन कर सकता है? आपने अपने ही मुँह से अपनी करनी अनेकों बार बहुत प्रकार से वर्णन की है।

नहिं संतोषु त पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू॥
बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा॥

इतने पर भी संतोष न हुआ हो तो फिर कुछ कह डालिए। क्रोध रोककर असह्य दुःख मत सहिए। आप वीरता का व्रत धारण करनेवाले, धैर्यवान और क्षोभरहित हैं। गाली देते शोभा नहीं पाते।

दो० - सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।
बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु॥ 274॥

शूरवीर तो युद्ध में करनी (शूरवीरता का कार्य) करते हैं, कहकर अपने को नहीं जनाते। शत्रु को युद्ध में उपस्थित पाकर कायर ही अपने प्रताप की डींग मारा करते हैं॥ 274॥

तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा। बार बार मोहि लागि बोलावा॥
सुनत लखन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा॥

आप तो मानो काल को हाँक लगाकर बार-बार उसे मेरे लिए बुलाते हैं। लक्ष्मण के कठोर वचन सुनते ही परशुराम ने अपने भयानक फरसे को सुधारकर हाथ में ले लिया।

अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू। कटुबादी बालकु बधजोगू॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यहु मरनिहार भा साँचा॥

(और बोले -) अब लोग मुझे दोष न दें। यह कड़वा बोलनेवाला बालक मारे जाने के ही योग्य है। इसे बालक देखकर मैंने बहुत बचाया, पर अब यह सचमुच मरने को ही आ गया है।

कौसिक कहा छमिअ अपराधू। बाल दोष गुन गनहिं न साधू॥
खर कुठार मैं अकरुन कोही। आगें अपराधी गुरुद्रोही॥

विश्वामित्र ने कहा - अपराध क्षमा कीजिए। बालकों के दोष और गुण को साधु लोग नहीं

गिनते। (परशुराम बोले -) तीखी धार का कुठार, मैं दयारहित और क्रोधी, और यह गुरुद्रोही और अपराधी मेरे सामने।

उतर देत छोड़उँ बिनु मारें। केवल कौसिक सील तुम्हारें॥
न त एहि काटि कुठार कठोरें। गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरें॥

उत्तर दे रहा है। इतने पर भी मैं इसे बिना मारे छोड़ रहा हूँ, सो हे विश्वामित्र! केवल तुम्हारे शील (प्रेम) से। नहीं तो इसे इस कठोर कुठार से काटकर थोड़े ही परिश्रम से गुरु से उऋण हो जाता।

दो० - गाधिसूनु कह हृदयँ हँसि मुनिहि हरिअरइ सूझ।
अयमय खाँड़ न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ॥ 275॥

विश्वामित्र ने हृदय में हँसकर कहा - मुनि को हरा-ही-हरा सूझ रहा है (अर्थात सर्वत्र विजयी होने के कारण ये राम-लक्ष्मण को भी साधारण क्षत्रिय ही समझ रहे हैं), किंतु यह लौहमयी (केवल फौलाद की बनी हुई) खाँड़ (खाँड़ा - खड्‍ग) है, ऊख की (रस की) खाँड़ नहीं है (जो मुँह में लेते ही गल जाए। खेद है,) मुनि अब भी बेसमझ बने हुए हैं; इनके प्रभाव को नहीं समझ रहे हैं॥ 275॥

कहेउ लखन मुनि सीलु तुम्हारा। को नहिं जान बिदित संसारा॥
माता पितहि उरिन भए नीकें। गुर रिनु रहा सोचु बड़ जी कें॥

लक्ष्मण ने कहा - हे मुनि! आपके शील को कौन नहीं जानता? वह संसार भर में प्रसिद्ध है। आप माता-पिता से तो अच्छी तरह उऋण हो ही गए, अब गुरु का ऋण रहा, जिसका जी में बड़ा सोच लगा है।

सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गए ब्याज बड़ बाढ़ा॥
अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली॥

वह मानो हमारे ही मत्थे काढ़ा था। बहुत दिन बीत गए, इससे ब्याज भी बहुत बढ़ गया होगा। अब किसी हिसाब करनेवाले को बुला लाइए, तो मैं तुरंत थैली खोलकर दे दूँ।

सुनि कटु बचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा॥
भृगुबर परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचउँ नृपदोही॥

लक्ष्मण के कड़वे वचन सुनकर परशुराम ने कुठार सम्हाला। सारी सभा हाय-हाय! करके पुकार उठी। (लक्ष्मण ने कहा -) हे भृगुश्रेष्ठ! आप मुझे फरसा दिखा रहे हैं? पर हे राजाओं के शत्रु! मैं ब्राह्मण समझकर बचा रहा हूँ (तरह दे रहा हूँ)।

मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहि के बाढ़े॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सयनहिं लखनु नेवारे॥

आपको कभी रणधीर बलवान वीर नहीं मिले हैं। हे ब्राह्मण देवता ! आप घर ही में बड़े हैं। यह सुनकर 'अनुचित है, अनुचित है' कहकर सब लोग पुकार उठे। तब रघुनाथ ने इशारे से लक्ष्मण को रोक दिया।

दो० - लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कृसानु।
बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुलभानु॥ 276॥

लक्ष्मण के उत्तर से, जो आहुति के समान थे, परशुराम के क्रोधरूपी अग्नि को बढ़ते देखकर रघुकुल के सूर्य राम जल के समान (शांत करनेवाले) वचन बोले - ॥ 276॥

नाथ करहु बालक पर छोहु। सूध दूधमुख करिअ न कोहू॥
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तौ कि बराबरि करत अयाना॥

हे नाथ ! बालक पर कृपा कीजिए। इस सीधे और दुधमुँहे बच्चे पर क्रोध न कीजिए। यदि यह प्रभु का (आपका) कुछ भी प्रभाव जानता, तो क्या यह बेसमझ आपकी बराबरी करता?

जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुर पितु मातु मोद मन भरहीं॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी। तुम्ह सम सील धीर मुनि ग्यानी॥

बालक यदि कुछ चपलता भी करते हैं, तो गुरु, पिता और माता मन में आनंद से भर जाते हैं। अतः इसे छोटा बच्चा और सेवक जानकर कृपा कीजिए। आप तो समदर्शी, सुशील, धीर और ज्ञानी मुनि हैं।

राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लखनु बहुरि मुसुकाने॥
हँसत देखि नख सिख रिस ब्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी॥

राम के वचन सुनकर वे कुछ ठंडे पड़े। इतने में लक्ष्मण कुछ कहकर फिर मुसकरा दिए। उनको हँसते देखकर परशुराम के नख से शिखा तक (सारे शरीर में) क्रोध छा गया।

उन्होंने कहा - हे राम! तेरा भाई बड़ा पापी है।

गौर सरीर स्याम मन माहीं। कालकूटमुख पयमुख नाहीं॥
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। नीचु मीचु सम देख न मोही॥

यह शरीर से गोरा, पर हृदय का बड़ा काला है। यह विषमुख है, दुधमुँहा नहीं। स्वभाव ही टेढ़ा है, तेरा अनुसरण नहीं करता (तेरे-जैसा शीलवान नहीं है)। यह नीच मुझे काल के समान नहीं देखता।

दो० - लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल॥ 277॥

लक्ष्मण ने हँसकर कहा- हे मुनि! सुनिए, क्रोध पाप का मूल है, जिसके वश में होकर मनुष्य अनुचित कर्म कर बैठते हैं और विश्वभर के प्रतिकूल चलते (सबका अहित करते) हैं॥ 277॥

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। परिहरि कोपु करिअ अब दाया॥
टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने। बैठिअ होइहिं पाय पिराने॥

हे मुनिराज! मैं आपका दास हूँ। अब क्रोध त्यागकर दया कीजिए। टूटा हुआ धनुष क्रोध करने से जुड़ नहीं जाएगा। खड़े-खड़े पैर दुःखने लगे होंगे, बैठ जाइए।

जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई। जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई॥
बोलत लखनहिं जनकु डेराहीं। मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं॥

यदि धनुष अत्यंत ही प्रिय हो, तो कोई उपाय किया जाए और किसी बड़े गुणी (कारीगर) को बुलाकर जुड़वा दिया जाए। लक्ष्मण के बोलने से जनक डर जाते हैं और कहते हैं - बस, चुप रहिए, अनुचित बोलना अच्छा नहीं।

थर थर काँपहिं पुर नर नारी। छोट कुमार खोट बड़ भारी॥
भृगुपति सुनि सुनि निरभय बानी। रिस तन जरइ होई बल हानी॥

जनकपुर के स्त्री-पुरुष थर-थर काँप रहे हैं (और मन-ही-मन कह रहे हैं कि) छोटा कुमार बड़ा ही खोटा है। लक्ष्मण की निर्भय वाणी सुन-सुनकर परशुराम का शरीर क्रोध से जला

जा रहा है और उनके बल की हानि हो रही है (उनका बल घट रहा है)।

बोले रामहि देइ निहोरा। बचउँ बिचारि बंधु लघु तोरा॥
मनु मलीन तनु सुंदर कैसें। बिष रस भरा कनक घटु जैसें॥

तब राम पर एहसान जनाकर परशुराम बोले - तेरा छोटा भाई समझकर मैं इसे बचा रहा हूँ। यह मन का मैला और शरीर का कैसा सुंदर है, जैसे विष के रस से भरा हुआ सोने का घड़ा!

दो० - सुनि लछिमन बिहसे बहुरि नयन तरेरे राम।
गुर समीप गवने सकुचि परिहरि बानी बाम॥ 278॥

यह सुनकर लक्ष्मण फिर हँसे। तब राम ने तिरछी नजर से उनकी ओर देखा, जिससे लक्ष्मण सकुचाकर, विपरीत बोलना छोड़कर, गुरु के पास चले गए॥ 278॥

अति बिनीत मृदु सीतल बानी। बोले रामु जोरि जुग पानी॥
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचनु करिअ नहिं काना॥

राम दोनों हाथ जोड़कर अत्यंत विनय के साथ कोमल और शीतल वाणी बोले - हे नाथ! सुनिए, आप तो स्वभाव से ही सुजान हैं। आप बालक के वचन पर कान न कीजिए (उसे सुना-अनसुना कर दीजिए)।

बररै बालकु एकु सुभाऊ। इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ॥
तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा॥

बर्रै और बालक का एक स्वभाव है। संतजन इन्हें कभी दोष नहीं लगाते। फिर उसने (लक्ष्मण ने) तो कुछ काम भी नहीं बिगाड़ा है, हे नाथ! आपका अपराधी तो मैं हूँ।

कृपा कोपु बधु बँधब गोसाईं। मो पर करिअ दास की नाईं॥
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करौं उपाई॥

अतः हे स्वामी! कृपा, क्रोध, वध और बंधन, जो कुछ करना हो, दास की तरह (अर्थात दास समझकर) मुझ पर कीजिए। जिस प्रकार से शीघ्र आपका क्रोध दूर हो। हे मुनिराज! बताइए, मैं वही उपाय करूँ।

कह मुनि राम जाइ रिस कैसें। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसें॥
एहि कें कंठ कुठारु न दीन्हा। तौ मैं काह कोपु करि कीन्हा॥

मुनि ने कहा - हे राम! क्रोध कैसे जाए; अब भी तेरा छोटा भाई टेढ़ा ही ताक रहा है। इसकी गर्दन पर मैंने कुठार न चलाया, तो क्रोध करके किया ही क्या?

दो० - गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि सुनि कुठार गति घोर।
परसु अछत देखउँ जिअत बैरी भूपकिसोर॥ 279॥

मेरे जिस कुठार की घोर करनी सुनकर राजाओं की स्त्रियों के गर्भ गिर पड़ते हैं, उसी फरसे के रहते मैं इस शत्रु राजपुत्र को जीवित देख रहा हूँ॥ 279॥

बहइ न हाथु दहइ रिस छाती। भा कुठारु कुंठित नृपघाती॥
भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदयँ कृपा कसि काऊ॥

हाथ चलता नहीं, क्रोध से छाती जली जाती है। (हाय!) राजाओं का घातक यह कुठार भी कुंठित हो गया। विधाता विपरीत हो गया, इससे मेरा स्वभाव बदल गया, नहीं तो भला, मेरे हृदय में किसी समय भी कृपा कैसी?

आजु दया दुखु दुसह सहावा। सुनि सौमित्रि बिहसि सिरु नावा॥
बाउ कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला॥

आज दया मुझे यह दुःसह दुःख सहा रही है। यह सुनकर लक्ष्मण ने मुसकराकर सिर नवाया (और कहा -) आपकी कृपारूपी वायु भी आपकी मूर्ति के अनुकूल ही है, वचन बोलते हैं, मानो फूल झड़ रहे हैं।

जौं पै कृपाँ जरिहिं मुनि गाता। क्रोध भएँ तनु राख बिधाता॥
देखु जनक हठि बालकु एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू॥

हे मुनि! यदि कृपा करने से आपका शरीर जला जाता है, तो क्रोध होने पर तो शरीर की रक्षा विधाता ही करेंगे। (परशुराम ने कहा -) हे जनक! देख, यह मूर्ख बालक हठ करके यमपुरी में घर (निवास) करना चाहता है।

बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा। देखत छोट खोट नृपु ढोटा॥

बिहसे लखनु कहा मन माहीं। मूदें आँखि कतहुँ कोउ नाहीं॥

इसको शीघ्र ही आँखों की ओट क्यों नहीं करते? यह राजपुत्र देखने में छोटा है, पर है बड़ा खोटा। लक्ष्मण ने हँसकर मन-ही-मन कहा - आँख मूँद लेने पर कहीं कोई नहीं है।

दो॰ - परसुरामु तब राम प्रति बोले उर अति क्रोधु।
संभु सरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोधु॥ 280॥

तब परशुराम हृदय में अत्यंत क्रोध भरकर राम से बोले - अरे शठ! तू शिव का धनुष तोड़कर उलटा हमीं को ज्ञान सिखाता है॥ 280॥

बंधु कहइ कटु संमत तोरें। तू छल बिनय करसि कर जोरें॥
करु परितोषु मोर संग्रामा। नाहिं त छाड़ कहाउब रामा॥

तेरा यह भाई तेरी ही सम्मति से कटु वचन बोलता है और तू छल से हाथ जोड़कर विनय करता है। या तो युद्ध में मेरा संतोष कर, नहीं तो राम कहलाना छोड़ दे।

छलु तजि करहि समरु सिवद्रोही। बंधु सहित न त मारउँ तोही॥
भृगुपति बकहिं कुठार उठाएँ। मन मुसुकाहिं रामु सिर नाएँ॥

अरे शिवद्रोही! छल त्यागकर मुझसे युद्ध कर। नहीं तो भाई सहित तुझे मार डालूँगा। इस प्रकार परशुराम कुठार उठाए बक रहे हैं और राम सिर झुकाए मन-ही-मन मुसकरा रहे हैं।

गुनह लखन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू॥
टेढ़ जानि सब बंदइ काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू॥

(राम ने मन-ही-मन कहा -) गुनाह (दोष) तो लक्ष्मण का और क्रोध मुझ पर करते हैं। कहीं-कहीं सीधेपन में भी बड़ा दोष होता है। टेढ़ा जानकर सब लोग किसी की भी वंदना करते हैं; टेढ़े चंद्रमा को राहु भी नहीं ग्रसता।

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठारु आगें यह सीसा॥
जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपन अनुगामी॥

राम ने (प्रकट) कहा - हे मुनीश्वर! क्रोध छोड़िए। आपके हाथ में कुठार है और मेरा यह सिर आगे है, जिस प्रकार आपका क्रोध जाए, हे स्वामी! वही कीजिए। मुझे अपना अनुचर

(दास) जानिए।

दो० - प्रभुहि सेवकहि समरु कस तजहु बिप्रबर रोसु।
बेषु बिलोकें कहेसि कछु बालकहू नहिं दोसु॥ 281॥

स्वामी और सेवक में युद्ध कैसा? हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! क्रोध का त्याग कीजिए। आपका (वीरों का-सा) वेष देखकर ही बालक ने कुछ कह डाला था, वास्तव में उसका भी कोई दोष नहीं है॥ 281॥

देखि कुठार बान धनु धारी। भै लरिकहि रिस बीरु बिचारी॥
नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा। बंस सुभायँ उतरु तेहिं दीन्हा॥

आपको कुठार, बाण और धनुष धारण किए देखकर और वीर समझकर बालक को क्रोध आ गया। वह आपका नाम तो जानता था, पर उसने आपको पहचाना नहीं। अपने वंश (रघुवंश) के स्वभाव के अनुसार उसने उत्तर दिया।

जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं। पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं॥
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी॥

यदि आप मुनि की तरह आते, तो हे स्वामी! बालक आपके चरणों की धूलि सिर पर रखता। अनजाने की भूल को क्षमा कर दीजिए। ब्राह्मणों के हृदय में बहुत अधिक दया होनी चाहिए।

हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा॥

हे नाथ! हमारी और आपकी बराबरी कैसी? कहिए न, कहाँ चरण और कहाँ मस्तक! कहाँ मेरा राम मात्र छोटा-सा नाम और कहाँ आपका परशुसहित बड़ा नाम।

देव एकु गुनु धनुष हमारें। नव गुन परम पुनीत तुम्हारें॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे॥

हे देव! हमारे तो एक ही गुण धनुष है और आपके परम पवित्र (शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता - ये) नौ गुण हैं। हम तो सब प्रकार से आपसे हारे

हैं। हे विप्र! हमारे अपराधों को क्षमा कीजिए।

दो॰ - बार बार मुनि बिप्रबर कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष हसि तहूँ बंधू सम बाम॥ 282॥

राम ने परशुराम को बार-बार 'मुनि' और 'विप्रवर' कहा। तब भृगुपति (परशुराम) कुपित होकर (अथवा क्रोध की हँसी हँसकर) बोले - तू भी अपने भाई के समान ही टेढ़ा है॥ 282॥

निपटहिं द्विज करि जानहि मोही। मैं जस बिप्र सुनावउँ तोही॥
चाप स्त्रुवा सर आहुति जानू। कोपु मोर अति घोर कृसानू॥

तू मुझे निरा ब्राह्मण ही समझता है? मैं जैसा विप्र हूँ, तुझे सुनाता हूँ। धनुष को स्त्रुवा, बाण को आहुति और मेरे क्रोध को अत्यंत भयंकर अग्नि जान।

समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महा महीप भए पसु आई॥
मैं एहिं परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे॥

चतुरंगिणी सेना सुंदर समिधाएँ (यज्ञ में जलाई जानेवाली लकड़ियाँ) हैं। बड़े-बड़े राजा उसमें आकर बलि के पशु हुए हैं, जिनको मैंने इसी फरसे से काटकर बलि दिया है। ऐसे करोड़ों जपयुक्त रणयज्ञ मैंने किए हैं (अर्थात जैसे मंत्रोच्चारण पूर्वक 'स्वाहा' शब्द के साथ आहुति दी जाती है, उसी प्रकार मैंने पुकार-पुकार कर राजाओं की बलि दी है)।

मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरें। बोलसि निदरि बिप्र के भोरें॥
भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जीति जगु ठाढ़ा॥

मेरा प्रभाव तुझे मालूम नहीं है, इसी से तू ब्राह्मण के धोखे मेरा निरादर करके बोल रहा है। धनुष तोड़ डाला, इससे तेरा घमंड बहुत बढ़ गया है। ऐसा अहंकार है, मानो संसार को जीतकर खड़ा है।

राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी॥
छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना॥

राम ने कहा - हे मुनि! विचारकर बोलिए। आपका क्रोध बहुत बड़ा है और मेरी भूल बहुत

छोटी है। पुराना धनुष था, छूते ही टूट गया। मैं किस कारण अभिमान करूँ?

दो० - जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभटु जेहि भय बस नावहिं माथ॥ 283॥

हे भृगुनाथ! यदि हम सचमुच ब्राह्मण कहकर निरादर करते हैं, तो यह सत्य सुनिए, फिर संसार में ऐसा कौन योद्धा है, जिसे हम डर के मारे मस्तक नवाएँ?॥ 283॥

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना॥
जौं रन हमहि पचारै कोऊ। लरहिं सुखेन कालु किन होऊ॥

देवता, दैत्य, राजा या और बहुत-से योद्धा, वे चाहे बल में हमारे बराबर हों चाहे अधिक बलवान हों, यदि रण में हमें कोई भी ललकारे तो हम उससे सुखपूर्वक लड़ेंगे, चाहे काल ही क्यों न हो।

छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहिं पावँर आना॥
कहउँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी॥

क्षत्रिय का शरीर धरकर जो युद्ध में डर गया, उस नीच ने अपने कुल पर कलंक लगा दिया। मैं स्वभाव से ही कहता हूँ, कुल की प्रशंसा करके नहीं, कि रघुवंशी रण में काल से भी नहीं डरते।

बिप्रबंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई॥
सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के॥

ब्राह्मणवंश की ऐसी ही प्रभुता (महिमा) है कि जो आपसे डरता है, वह सबसे निर्भय हो जाता है (अथवा जो भयरहित होता है, वह भी आपसे डरता है) रघुनाथ के कोमल और रहस्यपूर्ण वचन सुनकर परशुराम की बुद्धि के परदे खुल गए।

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू॥
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ॥

(परशुराम ने कहा -) हे राम! हे लक्ष्मीपति! धनुष को हाथ में (अथवा लक्ष्मीपति विष्णु का धनुष) लीजिए और इसे खींचिए, जिससे मेरा संदेह मिट जाए। परशुराम धनुष देने

लगे, तब वह आप ही चला गया। तब परशुराम के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ।

दो० - जाना राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन हृदयँ न प्रेमु अमात॥ 284॥

तब उन्होंने राम का प्रभाव जाना, (जिसके कारण) उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। वे हाथ जोड़कर वचन बोले - प्रेम उनके हृदय में समाता न था - ॥ 284॥

जय रघुबंस बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू॥
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रम हारी॥

हे रघुकुलरूपी कमल वन के सूर्य! हे राक्षसों के कुलरूपी घने जंगल को जलानेवाले अग्नि! आपकी जय हो! हे देवता, ब्राह्मण और गौ का हित करनेवाले! आपकी जय हो। हे मद, मोह, क्रोध और भ्रम के हरनेवाले! आपकी जय हो।

बिनय सील करुना गुन सागर। जयति बचन रचना अति नागर॥
सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय सरीर छबि कोटि अनंगा॥

हे विनय, शील, कृपा आदि गुणों के समुद्र और वचनों की रचना में अत्यंत चतुर! आपकी जय हो। हे सेवकों को सुख देनेवाले, सब अंगों से सुंदर और शरीर में करोड़ों कामदेवों की छवि धारण करनेवाले! आपकी जय हो।

करौं काह मुख एक प्रसंसा। जय महेस मन मानस हंसा॥
अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता॥

मैं एक मुख से आपकी क्या प्रशंसा करूँ? हे महादेव के मनरूपी मानसरोवर के हंस! आपकी जय हो। मैंने अनजाने में आपको बहुत-से अनुचित वचन कहे। हे क्षमा के मंदिर दोनों भाई! मुझे क्षमा कीजिए।

कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गए बनहि तप हेतू॥
अपभयँ कुटिल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गवँहिं पराने॥

हे रघुकुल के पताका स्वरूप राम! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। ऐसा कहकर परशुराम तप के लिए वन को चले गए। (यह देखकर) दुष्ट राजा लोग बिना ही कारण के (मनःकल्पित) डर से (राम से तो परशुराम भी हार गए, हमने इनका अपमान किया था,

अब कहीं ये उसका बदला न लें, इस व्यर्थ के डर से डर गए) वे कायर चुपके से जहाँ-तहाँ भाग गए।

दो० - देवन्ह दीन्हीं दुंदुभीं प्रभु पर बरषहिं फूल।
हरषे पुर नर नारि सब मिटी मोहमय सूल॥ 285॥

देवताओं ने नगाड़े बजाए, वे प्रभु के ऊपर फूल बरसाने लगे। जनकपुर के स्त्री-पुरुष सब हर्षित हो गए। उनका मोहमय (अज्ञान से उत्पन्न) शूल मिट गया॥ 285॥

अति गहगहे बाजने बाजे। सबहिं मनोहर मंगल साजे॥
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनीं। करहिं गान कल कोकिलबयनीं॥

खूब जोर से बाजे बजने लगे। सभी ने मनोहर मंगल-साज साजे। सुंदर मुख और सुंदर नेत्रोंवाली तथा कोयल के समान मधुर बोलनेवाली स्त्रियाँ झुंड-की-झुंड मिलकर सुंदर गान करने लगीं।

सुखु बिदेह कर बरनि न जाई। जन्मदरिद्र मनहुँ निधि पाई॥
बिगत त्रास भइ सीय सुखारी। जनु बिधु उदयँ चकोरकुमारी॥

जनक के सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता, मानो जन्म का दरिद्री धन का खजाना पा गया हो! सीता का भय जाता रहा; वे ऐसी सुखी हुईं जैसे चंद्रमा के उदय होने से चकोर की कन्या सुखी होती है।

जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाईं। अब जो उचित सो कहिअ गोसाईं॥

जनक ने विश्वामित्र को प्रणाम किया (और कहा -) प्रभु ही की कृपा से राम ने धनुष तोड़ा है। दोनों भाइयों ने मुझे कृतार्थ कर दिया। हे स्वामी! अब जो उचित हो सो कहिए।

कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना। रहा बिबाहु चाप आधीना॥
टूटतहीं धनु भयउ बिबाहू। सुर नर नाग बिदित सब काहू॥

मुनि ने कहा - हे चतुर नरेश! सुनो यों तो विवाह धनुष के अधीन था; धनुष के टूटते ही विवाह हो गया। देवता, मनुष्य और नाग सब किसी को यह मालूम है।

दो० - तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु।
बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुर बेद बिदित आचारु॥ 286॥

तथापि तुम जाकर अपने कुल का जैसा व्यवहार हो, ब्राह्मणों, कुल के बूढ़ों और गुरुओं से पूछकर और वेदों में वर्णित जैसा आचार हो वैसा करो॥ 286॥

दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिं नृप दसरथहिं बोलाई॥
मुदित राउ कहि भलेहिं कृपाला। पठए दूत बोलि तेहि काला॥

जाकर अयोध्या को दूत भेजो, जो राजा दशरथ को बुला लाएँ। राजा ने प्रसन्न होकर कहा - हे कृपालु! बहुत अच्छा! और उसी समय दूतों को बुलाकर भेज दिया।

बहुरि महाजन सकल बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिर नाए॥
हाट बाट मंदिर सुरबासा। नगरु सँवारहु चारिहुँ पासा॥

फिर सब महाजनों को बुलाया और सबने आकर राजा को आदरपूर्वक सिर नवाया। (राजा ने कहा -) बाजार, रास्ते, घर, देवालय और सारे नगर को चारों ओर से सजाओ।

हरषि चले निज निज गृह आए। पुनि परिचारक बोलि पठाए॥
रचहु बिचित्र बितान बनाई। सिर धरि बचन चले सचु पाई॥

महाजन प्रसन्न होकर चले और अपने-अपने घर आए। फिर राजा ने नौकरों को बुला भेजा (और उन्हें आज्ञा दी कि) विचित्र मंडप सजाकर तैयार करो। यह सुनकर वे सब राजा के वचन सिर पर धरकर और सुख पाकर चले।

पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना। जे बितान बिधि कुसल सुजाना॥
बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा॥

उन्होंने अनेक कारीगरों को बुला भेजा, जो मंडप बनाने में कुशल और चतुर थे। उन्होंने ब्रह्मा की वंदना करके कार्य आरंभ किया और (पहले) सोने के केले के खंभे बनाए।

दो० - हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल॥ 287॥

हरी-हरी मणियों (पन्ने) के पत्ते और फल बनाए तथा पद्मराग मणियों (माणिक) के फूल

बनाए। मंडप की अत्यंत विचित्र रचना देखकर ब्रह्मा का मन भी भूल गया॥ 287॥

बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे॥
कनक कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहिं परइ सपरन सुहाई॥

बाँस सब हरी-हरी मणियों (पन्ने) के सीधे और गाँठों से युक्त ऐसे बनाए जो पहचाने नहीं जाते थे (कि मणियों के हैं या साधारण)। सोने की सुंदर नागबेली (पान की लता) बनाई, जो पत्तों सहित ऐसी भली मालूम होती थी कि पहचानी नहीं जाती थी।

तेहि के रचि पचि बंध बनाए। बिच बिच मुकुता दाम सुहाए॥
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥

उसी नागबेली के रचकर और पच्चीकारी करके बंधन (बाँधने की रस्सी) बनाए। बीच-बीच में मोतियों की सुंदर झालरें हैं। माणिक, पन्ने, हीरे और फिरोजे, इन रत्नों को चीरकर, कोरकर और पच्चीकारी करके, इनके (लाल, हरे, सफेद और फीरोजी रंग के) कमल बनाए।

किए भृंग बहुरंग बिहंगा। गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा॥
सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं। मंगल द्रब्य लिएँ सब ठाढ़ीं॥

भौंरे और बहुत रंगों के पक्षी बनाए, जो हवा के सहारे गूँजते और कूजते थे। खंभों पर देवताओं की मूर्तियाँ गढ़कर निकालीं, जो सब मंगल द्रव्य लिए खड़ी थीं।

चौकें भाँति अनेक पुराईं। सिंधुर मनिमय सहज सुहाईं॥

गजमुक्ताओं के सहज ही सुहावने अनेकों तरह के चौक पुराए।

दो० - सौरभ पल्लव सुभग सुठि किए नीलमनि कोरि।
हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि॥ 288॥

नील मणि को कोरकर अत्यंत सुंदर आम के पत्ते बनाए। सोने के बौर (आम के फूल) और रेशम की डोरी से बँधे हुए पन्ने के बने फलों के गुच्छे सुशोभित हैं॥ 288॥

रचे रुचिर बर बंदनिवारे। मनहुँ मनोभवँ फंद सँवारे॥
मंगल कलश अनेक बनाए। ध्वज पताक पट चमर सुहाए॥

ऐसे सुंदर और उत्तम बंदनवार बनाए मानो कामदेव ने फंदे सजाए हों। अनेकों मंगल-कलश और सुंदर ध्वजा, पताका, परदे और चँवर बनाए।

दीप मनोहर मनिमय नाना। जाइ न बरनि बिचित्र बिताना॥
जेहिं मंडप दुलहिनि बैदेही। सो बरनै असि मति कबि केही॥

जिसमें मणियों के अनेकों सुंदर दीपक हैं, उस विचित्र मंडप का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। जिस मंडप में जानकी दुलहिन होंगी, किस कवि की ऐसी बुद्धि है जो उसका वर्णन कर सके।

दूलहु रामु रूप गुन सागर। सो बितानु तिहुँ लोग उजागर॥
जनक भवन कै सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी॥

जिस मंडप में रूप और गुणों के समुद्र राम दूल्हे होंगे, वह मंडप तीनों लोकों में प्रसिद्ध होना ही चाहिए। जनक के महल की जैसी शोभा है, वैसी ही शोभा नगर के प्रत्येक घर की दिखाई देती है।

जेहिं तेरहुति तेहि समय निहारी। तेहि लघु लगहिं भुवन दस चारी॥
जो संपदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा॥

उस समय जिसने तिरहुत को देखा, उसे चौदह भुवन तुच्छ जान पड़े। जनकपुर में नीच के घर भी उस समय जो संपदा सुशोभित थी, उसे देखकर इंद्र भी मोहित हो जाता था।

दो० - बसइ नगर जेहिं लच्छि करि कपट नारि बर बेषु।
तेहि पुर कै सोभा कहत सकुचहिं सारद सेषु॥ 289॥

जिस नगर में साक्षात लक्ष्मी कपट से स्त्री का सुंदर वेष बनाकर बसती हैं, उस पुर की शोभा का वर्णन करने में सरस्वती और शेष भी सकुचाते हैं॥ 289॥

पहुँचे दूत राम पुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सुहावन॥
भूप द्वार तिन्ह खबरि जनाई। दसरथ नृप सुनि लिए बोलाई॥

जनक के दूत राम की पवित्र पुरी अयोध्या में पहुँचे। सुंदर नगर देखकर वे हर्षित हुए। राजद्वार पर जाकर उन्होंने खबर भेजी, राजा दशरथ ने सुनकर उन्हें बुला लिया।

करि प्रनामु तिन्ह पाती दीन्ही। मुदित महीप आपु उठि लीन्ही॥
बारि बिलोचन बाँचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती॥

दूतों ने प्रणाम करके चिट्ठी दी। प्रसन्न होकर राजा ने स्वयं उठकर उसे लिया। चिट्ठी बाँचते समय उनके नेत्रों में जल (प्रेम और आनंद के आँसू) छा गया, शरीर पुलकित हो गया और छाती भर आई।

रामु लखनु उर कर बर चीठी। रहि गए कहत न खाटी मीठी॥
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। हरषी सभा बात सुनि साँची॥

हृदय में राम और लक्ष्मण हैं, हाथ में सुंदर चिट्ठी है, राजा उसे हाथ में लिए ही रह गए, खट्टी-मीठी कुछ भी कह न सके। फिर धीरज धरकर उन्होंने पत्रिका पढ़ी। सारी सभा सच्ची बात सुनकर हर्षित हो गई।

खेलत रहे तहाँ सुधि पाई। आए भरतु सहित हित भाई॥
पूछत अति सनेहँ सकुचाई। तात कहाँ तें पाती आई॥

भरत अपने मित्रों और भाई शत्रुघ्न के साथ जहाँ खेलते थे, वहीं समाचार पाकर वे आ गए। बहुत प्रेम से सकुचाते हुए पूछते हैं - पिताजी! चिट्ठी कहाँ से आई है?

दो० - कुसल प्रानप्रिय बंधु दोउ अहहिं कहहु केहिं देस।
सुनि सनेह साने बचन बाची बहुरि नरेस॥ 290॥

हमारे प्राणों से प्यारे दोनों भाई, कहिए सकुशल तो हैं और वे किस देश में हैं? स्नेह से सने ये वचन सुनकर राजा ने फिर से चिट्ठी पढ़ी॥ 290॥

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता। अधिन सनेहु समात न गाता॥
प्रीति पुनीत भरत कै देखी। सकल सभाँ सुखु लहेउ बिसेषी॥

चिट्ठी सुनकर दोनों भाई पुलकित हो गए। स्नेह इतना अधिक हो गया कि वह शरीर में समाता नहीं। भरत का पवित्र प्रेम देखकर सारी सभा ने विशेष सुख पाया।

तब नृप दूत निकट बैठारे। मधुर मनोहर बचन उचारे॥
भैया कहहु कुसल दोउ बारे। तुम्ह नीकें निज नयन निहारे॥

तब राजा दूतों को पास बैठाकर मन को हरनेवाले मीठे वचन बाले - भैया! कहो, दोनों बच्चे कुशल से तो हैं? तुमने अपनी आँखों से उन्हें अच्छी तरह देखा है न?

स्यामल गौर धरें धनु भाथा। बय किसोर कौसिक मुनि साथा॥
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ। प्रेम बिबस पुनि पुनि कह राऊ॥

साँवले और गोरे शरीरवाले वे धनुष और तरकस धारण किए रहते हैं, किशोर अवस्था है, विश्वामित्र मुनि के साथ हैं। तुम उनको पहचानते हो तो उनका स्वभाव बताओ। राजा प्रेम के विशेष वश होने से बार-बार इस प्रकार कह (पूछ) रहे हैं।

जा दिन तें मुनि गए लवाई। तब तें आजु साँचि सुधि पाई॥
कहहु बिदेह कवन बिधि जाने। सुनि प्रिय बचन दूत मुसुकाने॥

(भैया!) जिस दिन से मुनि उन्हें लिवा ले गए, तब से आज ही हमने सच्ची खबर पाई है। कहो तो महाराज जनक ने उन्हें कैसे पहचाना? ये प्रिय (प्रेम भरे) वचन सुनकर दूत मुसकराए।

दो० - सुनहु महीपति मुकुट मनि तुम्ह सम धन्य न कोउ।
रामु लखनु जिन्ह के तनय बिस्व बिभूषन दोउ॥ 291॥

(दूतों ने कहा -) हे राजाओं के मुकुटमणि! सुनिए, आपके समान धन्य और कोई नहीं है, जिनके राम-लक्ष्मण जैसे पुत्र हैं, जो दोनों विश्व के विभूषण हैं॥ 291॥

पूछन जोगु न तनय तुम्हारे। पुरुषसिंघ तिहु पुर उजिआरे॥
जिन्ह के जस प्रताप कें आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे॥

आपके पुत्र पूछने योग्य नहीं हैं। वे पुरुषसिंह तीनों लोकों के प्रकाश स्वरूप हैं। जिनके यश के आगे चंद्रमा मलिन और प्रताप के आगे सूर्य शीतल लगता है।

तिन्ह कहँ कहिअ नाथ किमि चीन्हे। देखिअ रबि कि दीप कर लीन्हे॥
सीय स्वयंबर भूप अनेका। समिटे सुभट एक तें एका॥

हे नाथ! उनके लिए आप कहते हैं कि उन्हें कैसे पहचाना! क्या सूर्य को हाथ में दीपक लेकर देखा जाता है? सीता के स्वयंवर में अनेकों राजा और एक-से-एक बढ़कर योद्धा एकत्र

हुए थे।

संभु सरासनु काहुँ न टारा। हारे सकल बीर बरिआरा॥
तीनि लोक महँ जे भटमानी। सभ कै सकति संभु धनु भानी॥

परंतु शिव के धनुष को कोई भी नहीं हटा सका। सारे बलवान वीर हार गए। तीनों लोकों में जो वीरता के अभिमानी थे, शिव के धनुष ने सबकी शक्ति तोड़ दी।

सकइ उठाइ सरासुर मेरू। सोउ हियँ हारि गयउ करि फेरू॥
जेहिं कौतुक सिवसैलु उठावा। सोउ तेहि सभाँ पराभउ पावा॥

बाणासुर भी, जो सुमेरु को भी उठा सकता था, भी हृदय में हारकर परिक्रमा करके चला गया और जिसने खेल से ही कैलास को उठा लिया था, वह रावण भी उस सभा में पराजय को प्राप्त हुआ।

दो० - तहाँ राम रघुबंसमनि सुनिअ महा महिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु जिमि गज पंकज नाल॥ 292॥

हे महाराज! सुनिए, वहाँ (जहाँ ऐसे-ऐसे योद्धा हार मान गए) रघुवंशमणि राम ने बिना ही प्रयास शिव के धनुष को वैसे ही तोड़ डाला जैसे हाथी कमल की डंडी को तोड़ डालता है!॥ 292॥

सुनि सरोष भृगुनायकु आए। बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए॥
देखि राम बलु निज धनु दीन्हा। करि बहु बिनय गवनु बन कीन्हा॥

धनुष टूटने की बात सुनकर परशुराम क्रोध में भरे आए और उन्होंने बहुत प्रकार से आँखें दिखलाईं। अंत में उन्होंने भी राम का बल देखकर उन्हें अपना धनुष दे दिया और बहुत प्रकार विनती करके वन को गमन किया।

राजन रामु अतुलबल जैसें। तेज निधान लखनु पुनि तैसें॥
कंपहिं भूप बिलोकत जाकें। जिमि गज हरि किसोर के ताकें॥

हे राजन! जैसे राम अतुलनीय बली हैं, वैसे ही तेज निधान फिर लक्ष्मण भी हैं, जिनके देखने मात्र से राजा लोग ऐसे काँप उठते थे, जैसे हाथी सिंह के बच्चे के ताकने से काँप

उठते हैं।

देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ ॥
दूत बचन रचना प्रिय लागी। प्रेम प्रताप बीर रस पागी॥

हे देव! आपके दोनों बालकों को देखने के बाद अब आँखों के नीचे कोई आता ही नहीं (हमारी दृष्टि पर कोई चढ़ता ही नहीं)। प्रेम, प्रताप और वीर-रस में पगी हुई दूतों की वचन रचना सबको बहुत प्रिय लगी।

सभा समेत राउ अनुरागे। दूतन्ह देन निछावरि लागे॥
कहि अनीति ते मूदहिं काना। धरमु बिचारि सबहिं सुखु माना॥

सभा सहित राजा प्रेम में मग्न हो गए और दूतों को निछावर देने लगे। (उन्हें निछावर देते देखकर) यह नीति विरुद्ध है, ऐसा कहकर दूत अपने हाथों से कान मूँदने लगे। धर्म को विचारकर (उनका धर्मयुक्त बर्ताव देखकर) सभी ने सुख माना।

दो० - तब उठि भूप बसिष्ट कहुँ दीन्हि पत्रिका जाई।
कथा सुनाई गुरहि सब सादर दूत बोलाइ॥ 293॥

तब राजा ने उठकर वशिष्ठ के पास जाकर उन्हें पत्रिका दी और आदरपूर्वक दूतों को बुलाकर सारी कथा गुरुजी को सुना दी॥ 293॥

सुनि बोले गुर अति सुखु पाई। पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई॥
जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥

सब समाचार सुनकर और अत्यंत सुख पाकर गुरु बोले - पुण्यात्मा पुरुष के लिए पृथ्वी सुखों से छाई हुई है। जैसे नदियाँ समुद्र में जाती हैं, यद्यपि समुद्र को नदी की कामना नहीं होती।

तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥
तुम्ह गुर बिप्र धेनु सुर सेबी। तसि पुनीत कौसल्या देबी॥

वैसे ही सुख और संपत्ति बिना ही बुलाए स्वाभाविक ही धर्मात्मा पुरुष के पास जाती है। तुम जैसे गुरु, ब्राह्मण, गाय और देवता की सेवा करनेवाले हो, वैसी ही पवित्र कौसल्यादेवी

भी हैं।

सुकृती तुम्ह समान जग माहीं। भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं॥
तुम्ह ते अधिक पुन्य बड़ काकें। राजन राम सरिस सुत जाकें॥

तुम्हारे समान पुण्यात्मा जगत में न कोई हुआ, न है और न होने का ही है। हे राजन! तुमसे अधिक पुण्य और किसका होगा, जिसके राम-सरीखे पुत्र हैं।

बीर बिनीत धरम ब्रत धारी। गुन सागर बर बालक चारी॥
तुम्ह कहुँ सर्ब काल कल्याना। सजहु बरात बजाइ निसाना॥

और जिसके चारों बालक वीर, विनम्र, धर्म का व्रत धारण करनेवाले और गुणों के सुंदर समुद्र हैं। तुम्हारे लिए सभी कालों में कल्याण है। अतएव डंका बजवाकर बारात सजाओ।

दो० - चलहु बेगि सुनि गुर बचन भलेहिं नाथ सिरु नाई।
भूपति गवने भवन तब दूतन्ह बासु देवाइ॥ 294॥

और जल्दी चलो। गुरुजी के ऐसे वचन सुनकर, 'हे नाथ! बहुत अच्छा' कहकर और सिर नवाकर तथा दूतों को डेरा दिलवाकर राजा महल में गए॥ 294॥

राजा सबु रनिवास बोलाई। जनक पत्रिका बाचि सुनाई॥
सुनि संदेसु सकल हरषानीं। अपर कथा सब भूप बखानीं॥

राजा ने सारे रनिवास को बुलाकर जनक की पत्रिका बाँचकर सुनाई। समाचार सुनकर सब रानियाँ हर्ष से भर गईं। राजा ने फिर दूसरी सब बातों का (जो दूतों के मुख से सुनी थीं) वर्णन किया।

प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी। मनहुँ सिखिनि सुनि बारिद बानी॥
मुदित असीस देहिं गुर नारीं। अति आनंद मगन महतारीं॥

प्रेम में प्रफुल्लित हुई रानियाँ ऐसी सुशोभित हो रही हैं, जैसे मोरनी बादलों की गरज सुनकर प्रफुल्लित होती हैं। बड़ी-बूढ़ी (अथवा गुरुओं की) स्त्रियाँ प्रसन्न होकर आशीर्वाद दे रही हैं। माताएँ अत्यंत आनंद में मग्न हैं।

लेहिं परस्पर अति प्रिय पाती। हृदयँ लगाई जुड़ावहिं छाती॥

राम लखन कै कीरति करनी। बारहिं बार भूपबर बरनी॥

उस अत्यंत प्रिय पत्रिका को आपस में लेकर सब हृदय से लगाकर छाती शीतल करती हैं। राजाओं में श्रेष्ठ दशरथ ने राम-लक्ष्मण की कीर्ति और करनी का बारंबार वर्णन किया।

मुनि प्रसादु कहि द्वार सिधाए। रानिन्ह तब महिदेव बोलाए॥
दिए दान आनंद समेता। चले बिप्रबर आसिष देता॥

'यह सब मुनि की कृपा है' ऐसा कहकर वे बाहर चले आए। तब रानियों ने ब्राह्मणों को बुलाया और आनंद सहित उन्हें दान दिए। श्रेष्ठ ब्राह्मण आशीर्वाद देते हुए चले।

सो० - जाचक लिए हँकारि दीन्हि निछावरि कोटि बिधि।
चिरु जीवहुँ सुत चारि चक्रबर्ति दसरत्थ के॥ 295॥

फिर भिक्षुकों को बुलाकर करोड़ों प्रकार की निछावरें उनको दीं। 'चक्रवर्ती महाराज दशरथ के चारों पुत्र चिरंजीवी हों'॥ 295॥

कहत चले पहिरें पट नाना। हरषि हने गहगहे निसाना॥
समाचार सब लोगन्ह पाए। लागे घर-घर होन बधाए॥

यों कहते हुए वे अनेक प्रकार के सुंदर वस्त्र पहन-पहनकर चले। आनंदित होकर नगाड़ेवालों ने बड़े जोर से नगाड़ों पर चोट लगाई। सब लोगों ने जब यह समाचार पाया, तब घर-घर बधावे होने लगे।

भुवन चारिदस भरा उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू॥
सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गलीं सँवारन लागे॥

चौदहों लोकों में उत्साह भर गया कि जानकी और रघुनाथ का विवाह होगा। यह शुभ समाचार पाकर लोग प्रेममग्न हो गए और रास्ते, घर तथा गलियाँ सजाने लगे।

जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। राम पुरी मंगलमय पावनि॥
तदपि प्रीति कै प्रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई॥

यद्यपि अयोध्या सदा सुहावनी है, क्योंकि वह राम की मंगलमयी पवित्र पुरी है, तथापि

प्रीति-पर-प्रीति होने से वह सुंदर मंगल रचना से सजाई गई।

ध्वज पताक पट चामर चारू। छावा परम बिचित्र बजारू॥
कनक कलस तोरन मनि जाला। हरद दूब दधि अच्छत माला॥

ध्वजा, पताका, परदे और सुंदर चँवरों से सारा बाजा बहुत ही अनूठा छाया हुआ है। सोने के कलश, तोरण, मणियों की झालरें, हलदी, दूब, दही, अक्षत और मालाओं से -

दो० - मंगलमय निज निज भवन लोगन्ह रचे बनाइ।
बीथीं सींचीं चतुरसम चौकें चारु पुराइ॥ 296॥

लोगों ने अपने-अपने घरों को सजाकर मंगलमय बना लिया। गलियों को चतुरसम से सींचा और (द्वारों पर) सुंदर चौक पुराए। (चंदन, केशर, कस्तूरी और कपूर से बने हुए एक सुगंधित द्रव को चतुरसम कहते हैं)॥ 296॥

जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि। सजि नव सप्त सकल दुति दामिनि॥
बिधुबदनीं मृग सावक लोचनि। निज सरूप रति मानु बिमोचनि॥

बिजली की-सी कांतिवाली चंद्रमुखी, हरिन के बच्चे के-से नेत्रवाली और अपने सुंदर रूप से कामदेव की स्त्री रति के अभिमान को छुड़ानेवाली सुहागिनी स्त्रियाँ सभी सोलहों श्रृंगार सजकर, जहाँ-तहाँ झुंड-की-झुंड मिलकर,

गावहिं मंगल मंजुल बानीं। सुनि कल रव कलकंठि लजानीं॥
भूप भवन किमि जाइ बखाना। बिस्व बिमोहन रचेउ बिताना॥

मनोहर वाणी से मंगल गीत गा रही हैं, जिनके सुंदर स्वर को सुनकर कोयलें भी लजा जाती हैं। राजमहल का वर्णन कैसे किया जाए, जहाँ विश्व को विमोहित करनेवाला मंडप बनाया गया है।

मंगल द्रब्य मनोहर नाना। राजत बाजत बिपुल निसाना॥
कतहुँ बिरिद बंदी उच्चरहीं। कतहुँ बेद धुनि भूसुर करहीं॥

अनेकों प्रकार के मनोहर मांगलिक पदार्थ शोभित हो रहे हैं और बहुत-से नगाड़े बज रहे हैं। कहीं भाट विरुदावली (कुलकीर्ति) का उच्चारण कर रहे हैं और कहीं ब्राह्मण वेदध्वनि

कर रहे हैं।

गावहिं सुंदरि मंगल गीता। लै लै नामु रामु अरु सीता॥
बहुत उछाहु भवनु अति थोरा। मानहुँ उमगि चला चहु ओरा॥

सुंदरी स्त्रियाँ राम और सीता का नाम ले-लेकर मंगलगीत गा रही हैं। उत्साह बहुत है और महल अत्यंत ही छोटा है। इससे (उसमें न समाकर) मानो वह उत्साह (आनंद) चारों ओर उमड़ चला है।

दो॰ - सोभा दसरथ भवन कइ को कबि बरनै पार।
जहाँ सकल सुर सीस मनि राम लीन्ह अवतार॥ 297॥

दशरथ के महल की शोभा का वर्णन कौन कवि कर सकता है, जहाँ समस्त देवताओं के शिरोमणि राम ने अवतार लिया है॥ 297॥

भूप भरत पुनि लिए बोलाई। हय गय स्यंदन साजहु जाई॥
चलहु बेगि रघुबीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता॥

फिर राजा ने भरत को बुला लिया और कहा कि जाकर घोड़े, हाथी और रथ सजाओ, जल्दी राम की बारात में चलो। यह सुनते ही दोनों भाई (भरत और शत्रुघ्न) आनंदवश पुलक से भर गए।

भरत सकल साहनी बोलाए। आयसु दीन्ह मुदित उठि धाए॥
रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे॥

भरत ने सब साहनी (घुड़साल के अध्यक्ष) बुलाए और उन्हें (घोड़ों को सजाने की) आज्ञा दी, वे प्रसन्न होकर उठ दौड़े। उन्होंने रुचि के साथ (यथायोग्य) जीनें कसकर घोड़े सजाए। रंग-रंग के उत्तम घोड़े शोभित हो गए।

सुभग सकल सुठि चंचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी॥
नाना जाति न जाहिं बखाने। निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने॥

सब घोड़े बड़े ही सुंदर और चंचल करनी (चाल) के हैं। वे धरती पर ऐसे पैर रखते हैं जैसे जलते हुए लोहे पर रखते हों। अनेकों जाति के घोड़े हैं, जिनका वर्णन नहीं हो सकता।

(ऐसी तेज चाल के हैं) मानो हवा का निरादर करके उड़ना चाहते हैं।

तिन्ह सब छयल भए असवारा। भरत सरिस बय राजकुमारा॥
सब सुंदर सब भूषनधारी। कर सर चाप तून कटि भारी॥

उन सब घोड़ों पर भरत के समान अवस्थावाले सब छैल-छबीले राजकुमार सवार हुए। वे सभी सुंदर हैं और सब आभूषण धारण किए हुए हैं। उनके हाथों में बाण और धनुष हैं तथा कमर में भारी तरकस बँधे हैं।

दो० - छरे छबीले छयल सब सूर सुजान नबीन।
जुग पदचर असवार प्रति जे असिकला प्रबीन॥ 298॥

सभी चुने हुए छबीले छैल, शूरवीर, चतुर और नवयुवक हैं। प्रत्येक सवार के साथ दो पैदल सिपाही हैं, जो तलवार चलाने की कला में बड़े निपुण हैं॥ 298॥

बाँधें बिरद बीर रन गाढ़े। निकसि भए पुर बाहेर ठाढ़े॥
फेरहिं चतुर तुरग गति नाना। हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना॥

शूरता का बाना धारण किए हुए रणधीर वीर सब निकलकर नगर के बाहर आ खड़े हुए। वे चतुर अपने घोड़ों को तरह-तरह की चालों से फेर रहे हैं और भेरी तथा नगाड़े की आवाज सुन-सुनकर प्रसन्न हो रहे हैं।

रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए। ध्वज पताक मनि भूषन लाए॥
चवँर चारु किंकिनि धुनि करहीं। भानु जान सोभा अपहरहीं॥

सारथियों ने ध्वजा, पताका, मणि और आभूषणों को लगाकर रथों को बहुत विलक्षण बना दिया है। उनमें सुंदर चँवर लगे हैं और घंटियाँ सुंदर शब्द कर रही हैं। वे रथ इतने सुंदर हैं, मानो सूर्य के रथ की शोभा को छीने लेते हैं।

सावँकरन अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते॥
सुंदर सकल अलंकृत सोहे। जिन्हहि बिलोकत मुनि मन मोहे॥

अगणित श्यामवर्ण घोड़े थे। उनको सारथियों ने उन रथों में जोत दिया है, जो सभी देखने में सुंदर और गहनों से सजाए हुए सुशोभित हैं और जिन्हें देखकर मुनियों के मन भी

मोहित हो जाते हैं।

जे जल चलहिं थलहि की नाईं। टाप न बूड़ बेग अधिकाईं॥
अस्त्र सस्त्र सबु साजु बनाई। रथी सारथिन्ह लिए बोलाई॥

जो जल पर भी जमीन की तरह ही चलते हैं। वेग की अधिकता से उनकी टाप पानी में नहीं डूबती। अस्त्र-शस्त्र और सब साज सजाकर सारथियों ने रथियों को बुला लिया।

दो॰ - चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुंदर सबहि जो जेहि कारज जात॥ 299॥

रथों पर चढ़-चढ़कर बारात नगर के बाहर जुटने लगी, जो जिस काम के लिए जाता है, सभी को सुंदर शकुन होते हैं॥ 299॥

कलित करिबरन्हि परीं अँबारीं। कहि न जाहिं जेहि भाँति सँवारीं॥
चले मत्त गज घंट बिराजी। मनहुँ सुभग सावन घन राजी॥

श्रेष्ठ हाथियों पर सुंदर अंबारियाँ पड़ी हैं। वे जिस प्रकार सजाई गई थीं, सो कहा नहीं जा सकता। मतवाले हाथी घंटों से सुशोभित होकर (घंटे बजाते हुए) चले, मानो सावन के सुंदर बादलों के समूह (गरजते हुए) जा रहे हों।

बाहन अपर अनेक बिधाना। सिबिका सुभग सुखासन जाना॥
तिन्ह चढ़ि चले बिप्रबर बृंदा। जनु तनु धरें सकल श्रुति छंदा॥

सुंदर पालकियाँ, सुख से बैठने योग्य तामजान (जो कुर्सीनुमा होते हैं) और रथ आदि और भी अनेकों प्रकार की सवारियाँ हैं। उन पर श्रेष्ठ ब्राह्मणों के समूह चढ़कर चले, मानो सब वेदों के छंद ही शरीर धारण किए हुए हों।

मागध सूत बंदि गुनगायक। चले जान चढ़ि जो जेहि लायक॥
बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती। चले बस्तु भरि अगनित भाँती॥

मागध, सूत, भाट और गुण गानेवाले सब, जो जिस योग्य थे, वैसी सवारी पर चढ़कर चले। बहुत जातियों के खच्चर, ऊँट और बैल असंख्य प्रकार की वस्तुएँ लाद-लादकर चले।

कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। बिबिध बस्तु को बरनै पारा॥

चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साजु समाजु बनाई॥

कहार करोड़ों काँवरें लेकर चले। उनमें अनेकों प्रकार की इतनी वस्तुएँ थीं कि जिनका वर्णन कौन कर सकता है। सब सेवकों के समूह अपना-अपना साज-समाज बनाकर चले।

दो० - सब कें उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरीर।
कबहिं देखिबे नयन भरि रामु लखनु दोउ बीर॥ 300॥

सबके हृदय में अपार हर्ष है और शरीर पुलक से भरे हैं। (सबको एक ही लालसा लगी है कि) हम राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों को नेत्र भरकर कब देखेंगे॥ 300॥

गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा। रथ रव बाजि हिंस चहु ओरा॥
निदरि घनहि घुर्म्मरहिं निसाना। निज पराइ कछु सुनिअ न काना॥

हाथी गरज रहे हैं, उनके घंटों की भीषण ध्वनि हो रही है। चारों ओर रथों की घरघराहट और घोड़ों की हिनहिनाहट हो रही है। बादलों का निरादर करते हुए नगाड़े घोर शब्द कर रहे हैं। किसी को अपनी-पराई कोई बात कानों से सुनाई नहीं देती।

महा भीर भूपति के द्वारें। रज होइ जाइ पषान पबारें॥
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नारीं। लिएँ आरती मंगल थारीं॥

राजा दशरथ के दरवाजे पर इतनी भारी भीड़ हो रही है कि वहाँ पत्थर फेंका जाए तो वह भी पिसकर धूल हो जाए। अटारियों पर चढ़ी स्त्रियाँ मंगल-थालों में आरती लिए देख रही हैं।

गावहिं गीत मनोहर नाना। अति आनंदु न जाइ बखाना॥
तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी। जोते रबि हय निंदक बाजी॥

और नाना प्रकार के मनोहर गीत गा रही हैं। उनके अत्यंत आनंद का बखान नहीं हो सकता। तब सुमंत्र ने दो रथ सजाकर उनमें सूर्य के घोड़ों को भी मात करनेवाले घोड़े जोते।

दोउ रथ रुचिर भूप पहिं आने। नहिं सारद पहिं जाहिं बखाने॥
राज समाजु एक रथ साजा। दूसर तेज पुंज अति भ्राजा॥

दोनों सुंदर रथ वे राजा दशरथ के पास ले आए, जिनकी सुंदरता का वर्णन सरस्वती से भी नहीं हो सकता। एक रथ पर राजसी सामान सजाया गया और दूसरा जो तेज का पुंज और अत्यंत ही शोभायमान था,

दो० - तेहिं रथ रुचिर बसिष्ठ कहुँ हरषि चढ़ाई नरेसु।
आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु॥ 301॥

उस सुंदर रथ पर राजा वशिष्ठ को हर्षपूर्वक चढ़ाकर फिर स्वयं शिव, गुरु, गौरी (पार्वती) और गणेश का स्मरण करके (दूसरे) रथ पर चढ़े॥ 301॥

सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसें। सुर गुर संग पुरंदर जैसें॥
करि कुल रीति बेद बिधि राऊ। देखि सबहि सब भाँति बनाऊ॥

वशिष्ठ के साथ (जाते हुए) राजा दशरथ कैसे शोभित हो रहे हैं, जैसे देव गुरु बृहस्पति के साथ इंद्र हों। वेद की विधि से और कुल की रीति के अनुसार सब कार्य करके तथा सबको सब प्रकार से सजे देखकर,

सुमिरि रामु गुर आयसु पाई। चले महीपति संख बजाई॥
हरषे बिबुध बिलोकि बराता। बरषहिं सुमन सुमंगल दाता॥

राम का स्मरण करके, गुरु की आज्ञा पाकर पृथ्वी पति दशरथ शंख बजाकर चले। बारात देखकर देवता हर्षित हुए और सुंदर मंगलदायक फूलों की वर्षा करने लगे।

भयउ कोलाहल हय गय गाजे। ब्योम बरात बाजने बाजे॥
सुर नर नारि सुमंगल गाईं। सरस राग बाजहिं सहनाईं॥

बड़ा शोर मच गया, घोड़े और हाथी गरजने लगे। आकाश में और बारात में (दोनों जगह) बाजे बजने लगे। देवांगनाएँ और मनुष्यों की स्त्रियाँ सुंदर मंगलगान करने लगीं और रसीले राग से शहनाइयाँ बजने लगीं।

घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं। सरव करहिं पाइक फहराहीं॥
करहिं बिदूषक कौतुक नाना। हास कुसल कल गान सुजाना॥

घंटे-घंटियों की ध्वनि का वर्णन नहीं हो सकता। पैदल चलनेवाले सेवकगण अथवा पट्टेबाज कसरत के खेल कर रहे हैं और फहरा रहे हैं (आकाश में ऊँचे उछलते हुए जा रहे हैं।)

हँसी करने में निपुण और सुंदर गाने में चतुर विदूषक (मसखरे) तरह-तरह के तमाशे कर रहे हैं।

दो॰ - तुरग नचावहिं कुअँर बर अकनि मृदंग निसान।
नागर नट चितवहिं चकित डगहिं न ताल बँधान॥ 302॥

सुंदर राजकुमार मृदंग और नगाड़े के शब्द सुनकर घोड़ों को उन्हीं के अनुसार इस प्रकार नचा रहे हैं कि वे ताल के बंधान से जरा भी डिगते नहीं हैं। चतुर नट चकित होकर यह देख रहे हैं॥ 302॥

बनइ न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुंदर सुभदाता॥
चारा चाषु बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई॥

बारात ऐसी बनी है कि उसका वर्णन करते नहीं बनता। सुंदर शुभदायक शकुन हो रहे हैं। नीलकंठ पक्षी बाईं ओर चारा ले रहा है, मानो संपूर्ण मंगलों की सूचना दे रहा हो।

दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरसु सब काहूँ पावा॥
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। सघट सबाल आव बर नारी॥

दाहिनी ओर कौआ सुंदर खेत में शोभा पा रहा है। नेवले का दर्शन भी सब किसी ने पाया। तीनों प्रकार की (शीतल, मंद, सुगंधित) हवा अनुकूल दिशा में चल रही है। श्रेष्ठ (सुहागिनी) स्त्रियाँ भरे हुए घड़े और गोद में बालक लिए आ रही हैं।

लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा॥
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगल गन जनु दीन्हि देखाई॥

लोमड़ी फिर-फिरकर (बार-बार) दिखाई दे जाती है। गाएँ सामने खड़ी बछड़ों को दूध पिलाती हैं। हरिनों की टोली (बाईं ओर से) घूमकर दाहिनी ओर को आई, मानो सभी मंगलों का समूह दिखाई दिया।

छेमकरी कह छेम बिसेषी। स्यामा बाम सुतरु पर देखी॥
सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना॥

क्षेमकरी (सफेद सिरवाली चील) विशेष रूप से क्षेम (कल्याण) कह रही है। श्यामा बाईं ओर सुंदर पेड़ पर दिखाई पड़ी। दही, मछली और दो विद्वान ब्राह्मण हाथ में पुस्तक

लिए हुए सामने आए।

दो० - मंगलमय कल्यानमय अभिमत फल दातार।
जनु सब साचे होन हित भए सगुन एक बार॥ 303॥

सभी मंगलमय, कल्याणमय और मनोवांछित फल देनेवाले शकुन मानो सच्चे होने के लिए एक ही साथ हो गए॥ 303॥

मंगल सगुन सुगम सब ताकें। सगुन ब्रह्म सुंदर सुत जाकें॥
राम सरिस बरु दुलहिनि सीता। समधी दसरथु जनकु पुनीता॥

स्वयं सगुण ब्रह्म जिसके सुंदर पुत्र हैं, उसके लिए सब मंगल शकुन सुलभ हैं। जहाँ राम-सरीखे दूल्हा और सीता-जैसी दुलहिन हैं तथा दशरथ और जनक-जैसे पवित्र समधी हैं,

सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे॥
एहि बिधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहिं हने निसाना॥

ऐसा ब्याह सुनकर मानो सभी शकुन नाच उठे (और कहने लगे -) अब ब्रह्मा ने हमको सच्चा कर दिया। इस तरह बारात ने प्रस्थान किया। घोड़े, हाथी गरज रहे हैं और नगाड़ों पर चोट लग रही है।

आवत जानि भानुकुल केतू। सरितन्हि जनक बँधाए सेतू॥
बीच-बीच बर बास बनाए। सुरपुर सरिस संपदा छाए॥

सूर्यवंश के पताका स्वरूप दशरथ को आते हुए जानकर जनक ने नदियों पर पुल बँधवा दिए। बीच-बीच में ठहरने के लिए सुंदर घर (पड़ाव) बनवा दिए, जिनमें देवलोक के समान संपदा छाई है,

असन सयन बर बसन सुहाए। पावहिं सब निज निज मन भाए॥
नित नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन्ह मंदिर भूले॥

और जहाँ बारात के सब लोग अपने-अपने मन की पसंद के अनुसार सुहावने उत्तम भोजन, बिस्तर और वस्त्र पाते हैं। मन के अनुकूल नित्य नए सुखों को देखकर सभी बारातियों को अपने घर भूल गए।

दो॰ - आवत जानि बरात बर सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरग लेन चले अगवान॥ 304॥

बड़े जोर से बजते हुए नगाड़ों की आवाज सुनकर श्रेष्ठ बारात को आती हुई जानकर अगवानी करनेवाले हाथी, रथ, पैदल और घोड़े सजाकर बारात लेने चले॥ 304॥

कनक कलस भरि कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा॥
भरे सुधा सम सब पकवाने। नाना भाँति न जाहिं बखाने॥

(दूध, शर्बत, ठंढाई, जल आदि से) भरकर सोने के कलश तथा जिनका वर्णन नहीं हो सकता ऐसे अमृत के समान भाँति-भाँति के सब पकवानों से भरे हुए परात, थाल आदि अनेक प्रकार के सुंदर बर्तन,

फल अनेक बर बस्तु सुहाईं। हरषि भेंट हित भूप पठाईं॥
भूषन बसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहुबिधि जाना॥

उत्तम फल तथा और भी अनेकों सुंदर वस्तुएँ राजा ने हर्षित होकर भेंट के लिए भेजीं। गहने, कपड़े, नाना प्रकार की मूल्यवान मणियाँ (रत्न), पक्षी, पशु, घोड़े, हाथी और बहुत तरह की सवारियाँ,

मंगल सगुन सुगंध सुहाए। बहुत भाँति महिपाल पठाए॥
दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कहारा॥

तथा बहुत प्रकार के सुगंधित एवं सुहावने मंगल-द्रव्य और शगुन के पदार्थ राजा ने भेजे। दही, चिउड़ा और अगणित उपहार की चीजें काँवरों में भर-भरकर कहार चले।

अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनंदु पुलक भर गाता॥
देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बरातिन्ह हने निसाना॥

अगवानी करने वालों को जब बारात दिखाई दी, तब उनके हृदय में आनंद छा गया और शरीर रोमांच से भर गया। अगवानों को सज-धज के साथ देखकर बारातियों ने प्रसन्न होकर नगाड़े बजाए।

दो॰ - हरषि परसपर मिलन हित कछुक चले बगमेल।

जनु आनंद समुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल॥ 305॥

(बाराती तथा अगवानों में से) कुछ लोग परस्पर मिलने के लिए हर्ष के मारे बाग छोड़कर (सरपट) दौड़ चले, और ऐसे मिले मानो आनंद के दो समुद्र मर्यादा छोड़कर मिलते हों॥ 305॥

बरषि सुमन सुर सुंदरि गावहिं। मुदित देव दुंदुभीं बजावहिं॥
बस्तु सकल राखीं नृप आगें। बिनय कीन्हि तिन्ह अति अनुरागें॥

देवसुंदरियाँ फूल बरसाकर गीत गा रही हैं, और देवता आनंदित होकर नगाड़े बजा रहे हैं। (अगवानी में आए हुए) उन लोगों ने सब चीजें दशरथ के आगे रख दीं और अत्यंत प्रेम से विनती की।

प्रेम समेत रायँ सबु लीन्हा। भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा॥
करि पूजा मान्यता बड़ाई। जनवासे कहुँ चले लवाई॥

राजा दशरथ ने प्रेम सहित सब वस्तुएँ ले लीं, फिर उनकी बख्शीशें होने लगीं और वे याचकों को दे दी गईं। तदनंतर पूजा, आदर-सत्कार और बड़ाई करके अगवान लोग उनको जनवासे की ओर लिवा ले चले।

बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं। देखि धनदु धन मदु परिहरहीं॥
अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा। जहँ सब कहुँ सब भाँति सुपासा॥

विलक्षण वस्त्रों के पाँवड़े पड़ रहे हैं, जिन्हें देखकर कुबेर भी अपने धन का अभिमान छोड़ देते हैं। बड़ा सुंदर जनवासा दिया गया, जहाँ सबको सब प्रकार का सुभीता था।

जानी सियँ बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं। भूप पहुनई करन पठाईं॥

सीता ने बारात जनकपुर में आई जानकर अपनी कुछ महिमा प्रकट करके दिखलाई। हृदय में स्मरणकर सब सिद्धियों को बुलाया और उन्हें राजा दशरथ की मेहमानी करने के लिए भेजा।

दो० - सिधि सब सिय आयसु अकनि गईं जहाँ जनवास।

लिएँ संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास॥ 306॥

सीता की आज्ञा सुनकर सब सिद्धियाँ जहाँ जनवासा था वहाँ सारी संपदा, सुख और इंद्रपुरी के भोग-विलास को लिए हुए गईं॥ 306॥

निज निज बास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती॥
बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना॥

बारातियों ने अपने-अपने ठहरने के स्थान देखे तो वहाँ देवताओं के सब सुखों को सब प्रकार से सुलभ पाया। इस ऐश्वर्य का कुछ भी भेद कोई जान न सका। सब जनक की बड़ाई कर रहे हैं।

सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदयँ हेतु पहिचानी॥
पितु आगमनु सुनत दोउ भाई। हृदयँ न अति आनंदु अमाई॥

रघुनाथ यह सब सीता की महिमा जानकर और उनका प्रेम पहचानकर हृदय में हर्षित हुए। पिता दशरथ के आने का समाचार सुनकर दोनों भाइयों के हृदय में महान आनंद समाता न था।

सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं। पितु दरसन लालचु मन माहीं॥
बिस्वामित्र बिनय बड़ि देखी। उपजा उर संतोषु बिसेषी॥

संकोचवश वे गुरु विश्वामित्र से कह नहीं सकते थे; परंतु मन में पिता के दर्शनों की लालसा थी। विश्वामित्र ने उनकी बड़ी नम्रता देखी, तो उनके हृदय में बहुत संतोष उत्पन्न हुआ।

हरषि बंधु दोउ हृदयँ लगाए। पुलक अंग अंबक जल छाए॥
चले जहाँ दसरथु जनवासे। मनहुँ सरोबर तकेउ पिआसे॥

प्रसन्न होकर उन्होंने दोनों भाइयों को हृदय से लगा लिया। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया। वे उस जनवासे को चले, जहाँ दशरथ थे। मानो सरोवर प्यासे की ओर लक्ष्य करके चला हो।

दो० - भूप बिलोके जबहिं मुनि आवत सुतन्ह समेत।

उठे हरषि सुखसिंधु महुँ चले थाह सी लेत॥ 307॥

जब राजा दशरथ ने पुत्रों सहित मुनि को आते देखा, तब वे हर्षित होकर उठे और सुख के समुद्र में थाह-सी लेते हुए चले॥ 307॥

मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा। बार बार पद रज धरि सीसा॥
कौसिक राउ लिए उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई॥

पृथ्वीपति दशरथ ने मुनि की चरणधूलि को बारंबार सिर पर चढ़ाकर उनको दंडवत-प्रणाम किया। विश्वामित्र ने राजा को उठाकर हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद देकर कुशल पूछी।

पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुखु न समाई॥
सुत हियँ लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे॥

फिर दोनों भाइयों को दंडवत-प्रणाम करते देखकर राजा के हृदय में सुख समाया नहीं। पुत्रों को (उठाकर) हृदय से लगाकर उन्होंने अपने (वियोगजनित) दुःसह दुःख को मिटाया। मानो मृतक शरीर को प्राण मिल गए हों।

पुनि बसिष्ठ पद सिर तिन्ह नाए। प्रेम मुदित मुनिबर उर लाए॥
बिप्र बृंद बंदे दुहुँ भाईं। मनभावती असीसें पाईं॥

फिर उन्होंने वशिष्ठ के चरणों में सिर नवाया। मुनि श्रेष्ठ ने प्रेम के आनंद में उन्हें हृदय से लगा लिया। दोनों भाइयों ने सब ब्राह्मणों की वंदना की और मनभाए आशीर्वाद पाए।

भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिए उठाइ लाइ उर रामा॥
हरषे लखन देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम परिपूरित गाता॥

भरत ने छोटे भाई शत्रुघ्न सहित राम को प्रणाम किया। राम ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया। लक्ष्मण दोनों भाइयों को देखकर हर्षित हुए और प्रेम से परिपूर्ण हुए शरीर से उनसे मिले।

दो० - पुरजन परिजन जातिजन जाचक मंत्री मीत।
मिले जथाबिधि सबहि प्रभु परम कृपाल बिनीत॥ 308॥

तदनंतर परम कृपालु और विनयी राम अयोध्यावासियों, कुटुंबियों, जाति के लोगों, याचकों, मंत्रियों और मित्रों - सभी से यथायोग्य मिले॥ 308॥

रामहि देखि बरात जुड़ानी। प्रीति कि रीति न जाति बखानी॥
नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धरमादिक तनुधारी॥

राम को देखकर बारात शीतल हुई (राम के वियोग में सबके हृदय में जो आग जल रही थी, वह शांत हो गई)। प्रीति की रीति का बखान नहीं हो सकता। राजा के पास चारों पुत्र ऐसी शोभा पा रहे हैं मानो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष शरीर धारण किए हुए हों।

सुतन्ह समेत दसरथहि देखी। मुदित नगर नर नारि बिसेषी॥
सुमन बरिसि सुर हनहिं निसाना। नाकनटीं नाचहिं करि गाना॥

पुत्रों सहित दशरथ को देखकर नगर के स्त्री-पुरुष बहुत ही प्रसन्न हो रहे हैं। (आकाश में) देवता फूलों की वर्षा करके नगाड़े बजा रहे हैं और अप्सराएँ गा-गाकर नाच रही हैं।

सतानंद अरु बिप्र सचिव गन। मागध सूत बिदुष बंदीजन॥
सहित बरात राउ सनमाना। आयसु मागि फिरे अगवाना॥

अगवानी में आए हुए शतानंद, अन्य ब्राह्मण, मंत्रीगण, मागध, सूत, विद्वान और भाटों ने बारात सहित राजा दशरथ का आदर-सत्कार किया। फिर आज्ञा लेकर वे वापस लौटे।

प्रथम बरात लगन तें आई। तातें पुर प्रमोदु अधिकाई॥
ब्रह्मानंदु लोग सब लहहीं। बढ़हुँ दिवस निसि बिधि सन कहहीं॥

बारात लग्न के दिन से पहले आ गई है, इससे जनकपुर में अधिक आनंद छा रहा है। सब लोग ब्रह्मानंद प्राप्त कर रहे हैं और विधाता से मनाकर कहते हैं कि दिन-रात बढ़ जाएँ (बड़े हो जाएँ)।

दो० - रामु सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस मिलि नर नारि समाज॥ 309॥

राम और सीता सुंदरता की सीमा हैं और दोनों राजा पुण्य की सीमा हैं, जहाँ-तहाँ जनकपुरवासी स्त्री-पुरुषों के समूह इकट्ठे हो-होकर यही कह रहे हैं॥ 309॥

जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरें देही॥
इन्ह सम काहुँ न सिव अवराधे। काहुँ न इन्ह समान फल लाधे॥

जनक के सुकृत (पुण्य) की मूर्ति जानकी हैं और दशरथ के सुकृत देह धारण किए हुए राम हैं। इन (दोनों राजाओं) के समान किसी ने शिव की आराधना नहीं की; और न इनके समान किसी ने फल ही पाए।

इन्ह सम कोउ न भयउ जग माहीं। है नहिं कतहूँ होनेउ नाहीं॥
हम सब सकल सुकृत कै रासी। भए जग जनमि जनकपुर बासी॥

इनके समान जगत में न कोई हुआ, न कहीं है, न होने का ही है। हम सब भी संपूर्ण पुण्यों की राशि हैं, जो जगत में जन्म लेकर जनकपुर के निवासी हुए,

जिन्ह जानकी राम छबि देखी। को सुकृती हम सरिस बिसेषी॥
पुनि देखब रघुबीर बिआहू। लेब भली बिधि लोचन लाहू॥

और जिन्होंने जानकी और राम की छवि देखी है। हमारे-सरीखा विशेष पुण्यात्मा कौन होगा! और अब हम रघुनाथ का विवाह देखेंगे और भली-भाँति नेत्रों का लाभ लेंगे।

कहहिं परसपर कोकिलबयनीं। एहि बिआहँ बड़ लाभु सुनयनीं॥
बड़ें भाग बिधि बात बनाई। नयन अतिथि होइहहिं दोउ भाई॥

कोयल के समान मधुर बोलनेवाली स्त्रियाँ आपस में कहती हैं कि हे सुंदर नेत्रोंवाली! इस विवाह में बड़ा लाभ है। बड़े भाग्य से विधाता ने सब बात बना दी है, ये दोनों भाई हमारे नेत्रों के अतिथि हुआ करेंगे।

दो० - बारहिं बार सनेह बस जनक बोलाउब सीय।
लेन आइहहिं बंधु दोउ कोटि काम कमनीय॥ 310॥

जनक स्नेहवश बार-बार सीता को बुलावेंगे और करोड़ों कामदेवों के समान सुंदर दोनों भाई सीता को लेने (विदा कराने) आया करेंगे॥ 310॥

बिबिध भाँति होइहि पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर माई॥
तब तब राम लखनहि निहारी। होइहहिं सब पुर लोग सुखारी॥

तब उनकी अनेकों प्रकार से पहुनाई होगी। सखी! ऐसी ससुराल किसे प्यारी न होगी! तब-तब हम सब नगर निवासी राम-लक्ष्मण को देख-देखकर सुखी होंगे।

सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा॥
स्याम गौर सब अंग सुहाए। ते सब कहहिं देखि जे आए॥

हे सखी! जैसा राम-लक्ष्मण का जोड़ा है, वैसे ही दो कुमार राजा के साथ और भी हैं। वे भी एक श्याम और दूसरे गौर वर्ण के हैं, उनके भी सब अंग बहुत सुंदर हैं। जो लोग उन्हें देख आए हैं, वे सब यही कहते हैं।

कहा एक मैं आजु निहारे। जनु बिरंचि निज हाथ सँवारे॥
भरतु राम ही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी॥

एक ने कहा - मैंने आज ही उन्हें देखा है; इतने सुंदर हैं, मानो ब्रह्मा ने उन्हें अपने हाथों सँवारा है। भरत तो राम की ही शकल-सूरत के हैं। स्त्री-पुरुष उन्हें सहसा पहचान नहीं सकते।

लखनु सत्रुसूदनु एकरूपा। नख सिख ते सब अंग अनूपा॥
मन भावहिं मुख बरनि न जाहीं। उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाहीं॥

लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों का एक रूप है। दोनों के नख से शिखा तक सभी अंग अनुपम हैं। मन को बड़े अच्छे लगते हैं, पर मुख से उनका वर्णन नहीं हो सकता। उनकी उपमा के योग्य तीनों लोकों में कोई नहीं है।

छं॰ - उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कबि कोबिद कहैं।
बल बिनय बिद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एइ अहैं॥
पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं।
ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं॥

दास तुलसी कहता है कवि और कोविद (विद्वान) कहते हैं, इनकी उपमा कहीं कोई नहीं है। बल, विनय, विद्या, शील और शोभा के समुद्र इनके समान ये ही हैं। जनकपुर की सब स्त्रियाँ आँचल फैलाकर विधाता को यह वचन (विनती) सुनाती हैं कि चारों भाइयों का विवाह इसी नगर में हो और हम सब सुंदर मंगल गाएँ।

सो० - कहहिं परस्पर नारि बारि बिलोचन पुलक तन।
सखि सबु करब पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ॥ 311॥

नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भरकर पुलकित शरीर से स्त्रियाँ आपस में कह रही हैं कि हे सखी! दोनों राजा पुण्य के समुद्र हैं, त्रिपुरारी शिव सब मनोरथ पूर्ण करेंगे॥ 311॥

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। आनँद उमगि उमगि उर भरहीं॥
जे नृप सीय स्वयंबर आए। देखि बंधु सब तिन्ह सुख पाए॥

इस प्रकार सब मनोरथ कर रही हैं और हृदय को उमंग-उमंगकर (उत्साहपूर्वक) आनंद से भर रही हैं। सीता के स्वयंवर में जो राजा आए थे, उन्होंने भी चारों भाइयों को देखकर सुख पाया।

कहत राम जसु बिसद बिसाला। निज निज भवन गए महिपाला॥
गए बीति कछु दिन एहि भाँती। प्रमुदित पुरजन सकल बराती॥

राम का निर्मल और महान यश कहते हुए राजा लोग अपने-अपने घर गए। इस प्रकार कुछ दिन बीत गए। जनकपुर निवासी और बाराती सभी बड़े आनंदित हैं।

मंगल मूल लगन दिनु आवा। हिम रितु अगहनु मासु सुहावा॥
ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू। लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू॥

मंगलों का मूल लग्न का दिन आ गया। हेमंत ऋतु और सुहावना अगहन का महीना था। ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग और वार श्रेष्ठ थे। लग्न (मुहूर्त) शोधकर ब्रह्मा ने उस पर विचार किया,

पठै दीन्हि नारद सन सोई। गनी जनक के गनकन्ह जोई॥
सुनी सकल लोगन्ह यह बाता। कहहिं जोतिषी आहिं बिधाता॥

और उस (लग्न पत्रिका) को नारद के हाथ (जनक के यहाँ) भेज दिया। जनक के ज्योतिषियों ने भी वही गणना कर रखी थी। जब सब लोगों ने यह बात सुनी तब वे कहने लगे - यहाँ के ज्योतिषी भी ब्रह्मा ही हैं।

दो० - धेनुधूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल।

बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनुकूल॥ 312॥

निर्मल और सभी सुंदर मंगलों की मूल गोधूलि की पवित्र बेला आ गई और अनुकूल शकुन होने लगे, यह जानकर ब्राह्मणों ने जनक से कहा॥ 312॥

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा। अब बिलंब कर कारनु काहा॥
सतानंद तब सचिव बोलाए। मंगल सकल साजि सब ल्याए॥

तब राजा जनक ने पुरोहित शतानंद से कहा कि अब देरी का क्या कारण है। तब शतानंद ने मंत्रियों को बुलाया। वे सब मंगल का सामान सजाकर ले आए।

संख निसान पनव बहु बाजे। मंगल कलस सगुन सुभ साजे॥
सुभग सुआसिनि गावहिं गीता। करहिं बेद धुनि बिप्र पुनीता॥

शंख, नगाड़े, ढोल और बहुत-से बाजे बजने लगे तथा मंगल-कलश और शुभ शकुन की वस्तुएँ (दधि, दूर्वा आदि) सजाई गईं। सुंदर सुहागिन स्त्रियाँ गीत गा रही हैं और पवित्र ब्राह्मण वेद की ध्वनि कर रहे हैं।

लेन चले सादर एहि भाँती। गए जहाँ जनवास बराती॥
कोसलपति कर देखि समाजू। अति लघु लाग तिन्हहि सुरराजू॥

सब लोग इस प्रकार आदरपूर्वक बारात को लेने चले और जहाँ बारातियों का जनवासा था, वहाँ गए। अवधपति दशरथ का समाज (वैभव) देखकर उनको देवराज इंद्र भी बहुत ही तुच्छ लगने लगे।

भयउ समउ अब धारिअ पाऊ। यह सुनि परा निसानहिं घाऊ॥
गुरहि पूछि करि कुल बिधि राजा। चले संग मुनि साधु समाजा॥

(उन्होंने जाकर विनती की -) समय हो गया, अब पधारिए। यह सुनते ही नगाड़ों पर चोट पड़ी। गुरु वशिष्ठ से पूछकर और कुल की सब रीतियों को करके राजा दशरथ मुनियों और साधुओं के समाज को साथ लेकर चले।

दो० - भाग्य बिभव अवधेस कर देखि देव ब्रह्मादि।
लगे सराहन सहस मुख जानि जनम निज बादि॥ 313॥

अवध नरेश दशरथ का भाग्य और वैभव देखकर और अपना जन्म व्यर्थ समझकर, ब्रह्मा आदि देवता हजारों मुखों से उसकी सराहना करने लगे॥ 313॥

सुरन्ह सुमंगल अवसरु जाना। बरषहिं सुमन बजाइ निसाना॥
सिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा। चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा॥

देवगण सुंदर मंगल का अवसर जानकर, नगाड़े बजा-बजाकर फूल बरसाते हैं। शिव, ब्रह्मा आदि देववृंद यूथ (टोलियाँ) बना-बनाकर विमानों पर जा चढ़े।

प्रेम पुलक तन हृदयँ उछाहू। चले बिलोकन राम बिआहू॥
देखि जनकपुरु सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहिं लघु लागे॥

और प्रेम से पुलकित-शरीर हो तथा हृदय में उत्साह भरकर राम का विवाह देखने चले। जनकपुर को देखकर देवता इतने अनुरक्त हो गए कि उन सबको अपने-अपने लोक बहुत तुच्छ लगने लगे।

चितवहिं चकित बिचित्र बिताना। रचना सकल अलौकिक नाना।
नगर नारि नर रूप निधाना। सुघर सुधरम सुसील सुजाना॥

विचित्र मंडप को तथा नाना प्रकार की सब अलौकिक रचनाओं को वे चकित होकर देख रहे हैं। नगर के स्त्री-पुरुष रूप के भंडार, सुघड़, श्रेष्ठ धर्मात्मा, सुशील और सुजान हैं।

तिन्हहि देखि सब सुर सुरनारीं। भए नखत जनु बिधु उजिआरीं॥
बिधिहि भयउ आचरजु बिसेषी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी॥

उन्हें देखकर सब देवता और देवांगनाएँ ऐसे प्रभाहीन हो गए जैसे चंद्रमा के उजियाले में तारागण फीके पड़ जाते हैं। ब्रह्मा को विशेष आश्चर्य हुआ; क्योंकि वहाँ उन्होंने अपनी कोई करनी (रचना) तो कहीं देखी ही नहीं।

दो० - सिवँ समुझाए देव सब जनि आचरज भुलाहु।
हृदयँ बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिआहु॥ 314॥

तब शिव ने सब देवताओं को समझाया कि तुम लोग आश्चर्य में मत भूलो। हृदय में धीरज धरकर विचार तो करो कि यह (भगवान की महामहिमामयी निजशक्ति) सीता का

और (अखिल ब्रह्मांडों के परम ईश्वर साक्षात भगवान) राम का विवाह है॥ 314॥

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥

जिनका नाम लेते ही जगत में सारे अमंगलों की जड़ कट जाती है और चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) मुट्ठी में आ जाते हैं, ये वही (जगत के माता-पिता) सीताराम हैं, काम के शत्रु शिव ने ऐसा कहा।

एहि बिधि संभु सुरन्ह समुझावा। पुनि आगें बर बसह चलावा॥
देवन्ह देखे दसरथु जाता। महामोद मन पुलकित गाता॥

इस प्रकार शिव ने देवताओं को समझाया और फिर अपने श्रेष्ठ बैल नंदीश्वर को आगे बढ़ाया। देवताओं ने देखा कि दशरथ मन में बड़े ही प्रसन्न और शरीर से पुलकित हुए चले जा रहे हैं।

साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरें करहिं सुख सेवा॥
सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपबरग सकल तनुधारी॥

उनके साथ (परम हर्षयुक्त) साधुओं और ब्राह्मणों की मंडली ऐसी शोभा दे रही है, मानो समस्त सुख शरीर धारण करके उनकी सेवा कर रहे हों। चारों सुंदर पुत्र साथ में ऐसे सुशोभित हैं, मानो संपूर्ण मोक्ष (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य) शरीर धारण किए हुए हों।

मरकत कनक बरन बर जोरी। देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी॥
पुनि रामहि बिलोकि हियँ हरषे। नृपहि सराहि सुमन तिन्ह बरषे॥

मरकतमणि और सुवर्ण के रंग की सुंदर जोड़ियों को देखकर देवताओं को कम प्रीति नहीं हुई (अर्थात बहुत ही प्रीति हुई)। फिर राम को देखकर वे हृदय में (अत्यंत) हर्षित हुए और राजा की सराहना करके उन्होंने फूल बरसाए।

दो० - राम रूपु नख सिख सुभग बारहिं बार निहारि।
पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि॥ 315॥

नख से शिखा तक राम के सुंदर रूप को बार-बार देखते हुए पार्वती सहित शिव का शरीर

पुलकित हो गया और उनके नेत्र (प्रेमाश्रुओं के) जल से भर गए॥ 315॥

केकि कंठ दुति स्यामल अंगा। तड़ित बिनिंदक बसन सुरंगा॥
ब्याह बिभूषन बिबिध बनाए। मंगल सब सब भाँति सुहाए॥

राम का मोर के कंठ की-सी कांतिवाला (हरिताभ) श्याम शरीर है। बिजली का अत्यंत निरादर करनेवाले प्रकाशमय सुंदर (पीत) रंग के वस्त्र हैं। सब मंगल रूप और सब प्रकार के सुंदर भाँति-भाँति के विवाह के आभूषण शरीर पर सजाए हुए हैं।

सरद बिमल बिधु बदनु सुहावन। नयन नवल राजीव लजावन॥
सकल अलौकिक सुंदरताई। कहि न जाइ मनहीं मन भाई॥

उनका सुंदर मुख शरत्पूर्णिमा के निर्मल चंद्रमा के समान और (मनोहर) नेत्र नवीन कमल को लजानेवाले हैं। सारी सुंदरता अलौकिक है। (माया की बनी नहीं है, दिव्य सच्चिदानंदमयी है) वह कहीं नहीं जा सकती, मन-ही-मन बहुत प्रिय लगती है।

बंधु मनोहर सोहहिं संगा। जात नचावत चपल तुरंगा।
राजकुअँर बर बाजि देखावहिं। बंस प्रसंसक बिरिद सुनावहिं॥

साथ में मनोहर भाई शोभित हैं, जो चंचल घोड़ों को नचाते हुए चले जा रहे हैं। राजकुमार श्रेष्ठ घोड़ों को (उनकी चाल को) दिखला रहे हैं और वंश की प्रशंसा करनेवाले (मागध-भाट) विरुदावली सुना रहे हैं।

जेहि तुरंग पर रामु बिराजे। गति बिलोकि खगनायकु लाजे॥
कहि न जाइ सब भाँति सुहावा। बाजि बेषु जनु काम बनावा॥

जिस घोड़े पर राम विराजमान हैं, उसकी (तेज) चाल देखकर गरुड़ भी लजा जाते हैं, उसका वर्णन नहीं हो सकता, वह सब प्रकार से सुंदर है। मानो कामदेव ने ही घोड़े का वेष धारण कर लिया हो।

छं० - जनु बाजि बेषु बनाइ मनसिजु राम हित अति सोहई।
आपनें बय बल रूप गुन गति सकल भुवन बिमोहई॥
जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे।
किंकिनि ललाम लगामु ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे॥

मानो राम के लिए कामदेव घोड़े का वेश बनाकर अत्यंत शोभित हो रहा है। वह अपनी अवस्था, बल, रूप, गुण और चाल से समस्त लोकों को मोहित कर रहा है। सुंदर मोती, मणि और माणिक्य लगी हुई जड़ाऊ जीन ज्योति से जगमगा रहा है। उसकी सुंदर घुँघरू लगी ललित लगाम को देखकर देवता, मनुष्य और मुनि सभी ठगे जाते हैं।

दो० - प्रभु मनसहिं लयलीन मनु चलत बाजि छबि पाव।
भूषित उड़गन तड़ित घनु जनु बर बरहि नचाव॥ 316॥

प्रभु की इच्छा में अपने मन को लीन किए चलता हुआ वह घोड़ा बड़ी शोभा पा रहा है। मानो तारागण तथा बिजली से अलंकृत मेघ सुंदर मोर को नचा रहा हो॥ 316॥

जेहिं बर बाजि रामु असवारा। तेहि सारदउ न बरनै पारा॥
संकरु राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥

जिस श्रेष्ठ घोड़े पर राम सवार हैं, उसका वर्णन सरस्वती भी नहीं कर सकतीं। शंकर राम के रूप में ऐसे अनुरक्त हुए कि उन्हें अपने पंद्रह नेत्र इस समय बहुत ही प्यारे लगने लगे।

हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥
निरखि राम छबि बिधि हरषाने। आठइ नयन जानि पछिताने॥

भगवान विष्णु ने जब प्रेम सहित राम को देखा, तब वे (रमणीयता की मूर्ति) लक्ष्मी के पति लक्ष्मी सहित मोहित हो गए। राम की शोभा देखकर ब्रह्मा बड़े प्रसन्न हुए, पर अपने आठ ही नेत्र जानकर पछताने लगे।

सुर सेनप उर बहुत उछाहू। बिधि ते डेवढ़ लोचन लाहू॥
रामहि चितव सुरेस सुजाना। गौतम श्रापु परम हित माना॥

देवताओं के सेनापति स्वामि कार्तिक के हृदय में बड़ा उत्साह है, क्योंकि वे ब्रह्मा से ड्योढ़े अर्थात बारह नेत्रों से रामदर्शन का सुंदर लाभ उठा रहे हैं। सुजान इंद्र (अपने हजार नेत्रों से) राम को देख रहे हैं और गौतम के शाप को अपने लिए परम हितकर मान रहे हैं।

देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं। आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं॥
मुदित देवगन रामहि देखी। नृपसमाज दुहुँ हरषु बिसेषी॥

सभी देवता देवराज इंद्र से ईर्ष्या कर रहे हैं (और कह रहे हैं) कि आज इंद्र के समान भाग्यवान दूसरा कोई नहीं है। राम को देखकर देवगण प्रसन्न हैं और दोनों राजाओं के समाज में विशेष हर्ष छा रहा है।

छं० - अति हरषु राजसमाज दुहु दिसि दुंदुभीं बाजहिं घनी।
बरषहिं सुमन सुर हरषि कहि जय जयति जय रघुकुलमनी॥
एहि भाँति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहीं।
रानी सुआसिनि बोलि परिछनि हेतु मंगल साजहीं॥

दोनों ओर से राजसमाज में अत्यंत हर्ष है और बड़े जोर से नगाड़े बज रहे हैं। देवता प्रसन्न होकर और 'रघुकुलमणि राम की जय हो, जय हो, जय हो' कहकर फूल बरसा रहे हैं। इस प्रकार बारात को आती हुई जानकर बहुत प्रकार के बाजे बजने लगे और रानी सुहागिन स्त्रियों को बुलाकर परछन के लिए मंगल द्रव्य सजाने लगीं।

दो० - सजि आरती अनेक बिधि मंगल सकल सँवारि।
चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि बर नारि॥ 317॥

अनेक प्रकार से आरती सजकर और समस्त मंगल द्रव्यों को यथायोग्य सजाकर गजगामिनी (हाथी की-सी चालवाली) उत्तम स्त्रियाँ आनंदपूर्वक परछन के लिए चलीं॥ 317॥

बिधुबदनीं सब सब मृगलोचनि। सब निज तन छबि रति मदु मोचनि॥
पहिरें बरन बरन बर चीरा। सकल बिभूषन सजें सरीरा॥

सभी स्त्रियाँ चंद्रमुखी (चंद्रमा के समान मुखवाली) और सभी मृगलोचनी (हरिण की-सी आँखोंवाली) हैं और सभी अपने शरीर की शोभा से रति के गर्व को छुड़ानेवाली हैं। रंग-रंग की सुंदर साड़ियाँ पहने हैं और शरीर पर सब आभूषण सजे हुए हैं।

सकल सुमंगल अंग बनाएँ। करहिं गान कलकंठि लजाएँ॥
कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं। चालि बिलोकि काम गज लाजहिं॥

समस्त अंगों को सुंदर मंगल पदार्थों से सजाए हुए वे कोयल को भी लजाती हुई (मधुर स्वर से) गान कर रही हैं। कंगन, करधनी और नूपुर बज रहे हैं। स्त्रियों की चाल देखकर

कामदेव के हाथी भी लजा जाते हैं।

बाजहिं बाजने बिबिध प्रकारा। नभ अरु नगर सुमंगलचारा॥
सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी॥

अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं, आकाश और नगर दोनों स्थानों में सुंदर मंगलाचार हो रहे हैं। शची (इंद्राणी), सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती और जो स्वभाव से ही पवित्र और सयानी देवांगनाएँ थीं,

कपट नारि बर बेष बनाई। मिली सकल रनिवासहिं जाई॥
करहिं गान कल मंगल बानीं। हरष बिबस सब काहुँ न जानीं॥

वे सब कपट से सुंदर स्त्री का वेश बनाकर रनिवास में जा मिलीं और मनोहर वाणी से मंगलगान करने लगीं। सब कोई हर्ष के विशेष वश थे, अतः किसी ने उन्हें पहचाना नहीं।

छं० - को जान केहि आनंद बस सब ब्रह्मु बर परिछन चली।
कल गान मधुर निसान बरषहिं सुमन सुर सोभा भली॥
आनंदकंदु बिलोकि दूलहु सकलहियँ हरषित भई।
अंभोज अंबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छई॥

कौन किसे जाने-पहिचाने! आनंद के वश हुई सब दूलह बने हुए ब्रह्म का परछन करने चलीं। मनोहर गान हो रहा है। मधुर-मधुर नगाड़े बज रहे हैं, देवता फूल बरसा रहे हैं, बड़ी अच्छी शोभा है। आनंदकंद दूलह को देखकर सब स्त्रियाँ हृदय में हर्षित हुईं। उनके कमल सरीखे नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का जल उमड़ आया और सुंदर अंगों में पुलकावली छा गई॥

दो० - जो सुखु भा सिय मातु मन देखि राम बर बेषु।
सो न सकहिं कहि कलप सत सहस सारदा सेषु॥ 318॥

राम का वर वेश देखकर सीता की माता सुनयना के मन में जो सुख हुआ, उसे हजारों सरस्वती और शेष सौ कल्पों में भी नहीं कह सकते (अथवा लाखों सरस्वती और शेष लाखों कल्पों में भी नहीं कह सकते)॥ 318॥

नयन नीरु हटि मंगल जानी। परिछनि करहिं मुदित मन रानी॥
बेद बिहित अरु कुल आचारू। कीन्ह भली बिधि सब ब्यवहारू॥

मंगल अवसर जानकर नेत्रों के जल को रोके हुए रानी प्रसन्न मन से परछन कर रही हैं। वेदों में कहे हुए तथा कुलाचार के अनुसार सभी व्यवहार रानी ने भली-भाँति किए।

पंच सबद धुनि मंगल गाना। पट पाँवड़े परहिं बिधि नाना॥
करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा। राम गमनु मंडप तब कीन्हा॥

पंचशब्द (तंत्री, ताल, झाँझ, नगारा और तुरही - इन पाँच प्रकार के बाजों के शब्द), पंचध्वनि (वेदध्वनि, वंदिध्वनि, जयध्वनि, शंखध्वनि और हुलूध्वनि) और मंगलगान हो रहे हैं। नाना प्रकार के वस्त्रों के पाँवड़े पड़ रहे हैं। उन्होंने (रानी ने) आरती करके अर्घ्य दिया, तब राम ने मंडप में गमन किया।

दसरथु सहित समाज बिराजे। बिभव बिलोकि लोकपति लाजे॥
समयँ समयँ सुर बरषहिं फूला। सांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला॥

दशरथ अपनी मंडली सहित विराजमान हुए। उनके वैभव को देखकर लोकपाल भी लजा गए। समय-समय पर देवता फूल बरसाते हैं और भूदेव ब्राह्मण समयानुकूल शांति-पाठ करते हैं।

नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपनि पर कछु सुनइ न कोई॥
एहि बिधि रामु मंडपहिं आए। अरघु देइ आसन बैठाए॥

आकाश और नगर में शोर मच रहा है। अपनी-पराई कोई कुछ भी नहीं सुनता। इस प्रकार राम मंडप में आए और अर्घ्य देकर आसन पर बैठाए गए।

छं० - बैठारि आसन आरती करि निरखि बरु सुखु पावहीं।
मनि बसन भूषन भूरि वारहिं नारि मंगल गावहीं॥
ब्रह्मादि सुरबर बिप्र बेष बनाइ कौतुक देखहीं।
अवलोकि रघुकुल कमल रबि छबि सुफल जीवन लेखहीं॥

आसन पर बैठाकर, आरती करके दूलह को देखकर स्त्रियाँ सुख पा रही हैं। वे ढेर के ढेर मणि, वस्त्र और गहने निछावर करके मंगल गा रही हैं। ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवता ब्राह्मण का वेश बनाकर कौतुक देख रहे हैं। वे रघुकुलरूपी कमल को प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य राम की छवि देखकर अपना जीवन सफल जान रहे हैं।

दो० - नाऊ बारी भाट नट राम निछावरि पाइ।
मुदित असीसहिं नाइ सिर हरषु न हृदयँ समाइ॥ 319॥

नाई, बारी, भाट और नट राम की निछावर पाकर आनंदित हो सिर नवाकर आशीष देते हैं, उनके हृदय में हर्ष समाता नहीं है॥ 319॥

मिले जनकु दसरथु अति प्रीतीं। करि बैदिक लौकिक सब रीतीं॥
मिलत महा दोउ राज बिराजे। उपमा खोजि खोजि कबि लाजे॥

वैदिक और लौकिक सब रीतियाँ करके जनक और दशरथ बड़े प्रेम से मिले। दोनों मिलते हुए बड़े ही शोभित हुए, कवि उनके लिए उपमा खोज-खोजकर लजा गए।

लही न कतहुँ हारि हियँ मानी। इन्ह सम एइ उपमा उर आनी॥
सामध देखि देव अनुरागे। सुमन बरषि जसु गावन लागे॥

जब कहीं भी उपमा नहीं मिली, तब हृदय में हार मानकर उन्होंने मन में यही उपमा निश्चित की कि इनके समान ये ही हैं। समधियों का मिलाप या परस्पर संबंध देखकर देवता अनुरक्त हो गए और फूल बरसाकर उनका यश गाने लगे।

जगु बिरंचि उपजावा जब तें। देखे सुने ब्याह बहु तब तें॥
सकल भाँति सम साजु समाजू। सम समधी देखे हम आजू॥

(वे कहने लगे -) जब से ब्रह्मा ने जगत को उत्पन्न किया, तब से हमने बहुत विवाह देखे-सुने, परंतु सब प्रकार से समान साज-समाज और बराबरी के (पूर्ण समतायुक्त) समधी तो आज ही देखे।

देव गिरा सुनि सुंदर साँची। प्रीति अलौकिक दुहु दिसि माची॥
देत पाँवड़े अरघु सुहाए। सादर जनकु मंडपहिं ल्याए॥

देवताओं की सुंदर सत्यवाणी सुनकर दोनों ओर अलौकिक प्रीति छा गई। सुंदर पाँवड़े और अर्घ्य देते हुए जनक दशरथ को आदरपूर्वक मंडप में ले आए।

छं० - मंडपु बिलोकि बिचित्र रचनाँ रुचिरताँ मुनि मन हरे।
निज पानि जनक सुजान सब कहुँ आनि सिंघासन धरे॥
कुल इष्ट सरिस बसिष्ट पूजे बिनय करि आसिष लही।

कौसिकहि पूजन परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही॥

मंडप को देखकर उसकी विचित्र रचना और सुंदरता से मुनियों के मन भी हरे गए (मोहित हो गए)। सुजान जनक ने अपने हाथों से ला-लाकर सबके लिए सिंहासन रखे। उन्होंने अपने कुल के इष्ट देवता के समान वशिष्ठ की पूजा की और विनय करके आशीर्वाद प्राप्त किया। विश्वामित्र की पूजा करते समय की परम प्रीति की रीति तो कहते ही नहीं बनती।

दो॰ - बामदेव आदिक रिषय पूजे मुदित महीस॥
दिए दिब्य आसन सबहि सब सन लही असीस॥ 320॥

राजा ने वामदेव आदि ऋषियों की प्रसन्न मन से पूजा की। सभी को दिव्य आसन दिए और सबसे आशीर्वाद प्राप्त किया॥ 320॥

बहुरि कीन्हि कोसलपति पूजा। जानि ईस सम भाउ न दूजा॥
कीन्हि जोरि कर बिनय बड़ाई। कहि निज भाग्य बिभव बहुताई॥

फिर उन्होंने कोसलाधीश राजा दशरथ की पूजा उन्हें ईश (महादेव) के समान जानकर की, कोई दूसरा भाव न था। तदनंतर (उनके संबंध से) अपने भाग्य और वैभव के विस्तार की सराहना करके हाथ जोड़कर विनती और बड़ाई की।

पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती॥
आसन उचित दिए सब काहू। कहौं काह मुख एक उछाहू॥

राजा जनक ने सब बारातियों का समधी दशरथ के समान ही सब प्रकार से आदरपूर्वक पूजन किया और सब किसी को उचित आसन दिए। मैं एक मुख से उस उत्साह का क्या वर्णन करूँ।

सकल बरात जनक सनमानी। दान मान बिनती बर बानी॥
बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ। जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ॥

राजा जनक ने दान, मान-सम्मान, विनय और उत्तम वाणी से सारी बारात का सम्मान किया। ब्रहमा, विष्णु, शिव, दिक्पाल और सूर्य जो रघुनाथ का प्रभाव जानते हैं,

कपट बिप्र बर बेष बनाएँ। कौतुक देखहिं अति सचु पाएँ॥

पूजे जनक देव सम जानें। दिए सुआसन बिनु पहिचानें॥

वे कपट से ब्राह्मणों का सुंदर वेश बनाए बहुत ही सुख पाते हुए सब लीला देख रहे थे। जनक ने उनको देवताओं के समान जानकर उनका पूजन किया और बिना पहिचाने भी उन्हें सुंदर आसन दिए।

छं॰ - पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई।
आनंद कंदु बिलोकि दूलहु उभय दिसि आनँदमई॥
सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए।
अवलोकि सीलु सुभाउ प्रभु को बिबुध मन प्रमुदित भए॥

कौन किसको जाने-पहिचाने! सबको अपनी ही सुध भूली हुई है। आनंदकंद दूलह को देखकर दोनों ओर आनंदमयी स्थिति हो रही है। सुजान (सर्वज्ञ) राम ने देवताओं को पहचान लिया और उनकी मानसिक पूजा करके उन्हें मानसिक आसन दिए। प्रभु का शील-स्वभाव देखकर देवगण मन में बहुत आनंदित हुए।

दो॰ - रामचंद्र मुख चंद्र छबि लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल प्रेमु प्रमोदु न थोर॥ 321॥

रामचंद्र के मुखरूपी चंद्रमा की छवि को सभी के सुंदर नेत्ररूपी चकोर आदरपूर्वक पान कर रहे हैं; प्रेम और आनंद कम नहीं है (अर्थात बहुत है)॥ 321॥

समउ बिलोकि बसिष्ठ बोलाए। सादर सतानंदु सुनि आए॥
बेगि कुअँरि अब आनहु जाई। चले मुदित मुनि आयसु पाई॥

समय देखकर वशिष्ठ ने शतानंद को आदरपूर्वक बुलाया। वे सुनकर आदर के साथ आए। वशिष्ठ ने कहा - अब जाकर राजकुमारी को शीघ्र ले आइए। मुनि की आज्ञा पाकर वे प्रसन्न होकर चले।

रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सखिन्ह समेत सयानी॥
बिप्र बधू कुल बृद्ध बोलाईं। करि कुल रीति सुमंगल गाईं॥

बुद्धिमती रानी पुरोहित की वाणी सुनकर सखियों समेत बड़ी प्रसन्न हुईं। ब्राह्मणों की स्त्रियों और कुल की बूढ़ी स्त्रियों को बुलाकर उन्होंने कुलरीति करके सुंदर मंगल गीत

गाए।

नारि बेष जे सुर बर बामा। सकल सुभायँ सुंदरी स्यामा॥
तिन्हहि देखि सुखु पावहिं नारी। बिनु पहिचानि प्रानहु ते प्यारीं॥

श्रेष्ठ देवांगनाएँ, जो सुंदर मनुष्य-स्त्रियों के वेश में हैं, सभी स्वभाव से ही सुंदरी और श्यामा (सोलह वर्ष की अवस्थावाली) हैं। उनको देखकर रनिवास की स्त्रियाँ सुख पाती हैं और बिना पहचान के ही वे सबको प्राणों से भी प्यारी हो रही हैं।

बार बार सनमानहिं रानी। उमा रमा सारद सम जानी॥
सीय सँवारि समाजु बनाई। मुदित मंडपहिं चलीं लवाई॥

उन्हें पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती के समान जानकर रानी बार-बार उनका सम्मान करती हैं। (रनिवास की स्त्रियाँ और सखियाँ) सीता का श्रृंगार करके, मंडली बनाकर, प्रसन्न होकर उन्हें मंडप में लिवा चलीं।

छं० - चलि ल्याइ सीतहि सखीं सादर सजि सुमंगल भामिनीं।
नवसप्त साजें सुंदरी सब मत्त कुंजर गामिनीं॥
कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।
मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल गति बर बाजहीं॥

सुंदर मंगल का साज सजकर (रनिवास की) स्त्रियाँ और सखियाँ आदर सहित सीता को लिवा चलीं। सभी सुंदरियाँ सोलहों श्रृंगार किए हुए मतवाले हाथियों की चाल से चलनेवाली हैं। उनके मनोहर गान को सुनकर मुनि ध्यान छोड़ देते हैं और कामदेव की कोयलें भी लजा जाती हैं। पायजेब, पैंजनी और सुंदर कंकण ताल की गति पर बड़े सुंदर बज रहे हैं।

दो० - सोहति बनिता बृंद महुँ सहज सुहावनि सीय।
छबि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय॥ 322॥

सहज ही सुंदरी सीता स्त्रियों के समूह में इस प्रकार शोभा पा रही हैं, मानो छविरूपी ललनाओं के समूह के बीच साक्षात परम मनोहर शोभारूपी स्त्री सुशोभित हो॥ 322॥

सिय सुंदरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई॥
आवत दीखि बरातिन्ह सीता। रूप रासि सब भाँति पुनीता॥

सीता की सुंदरता का वर्णन नहीं हो सकता, क्योंकि बुद्धि बहुत छोटी है और मनोहरता बहुत बड़ी है। रूप की राशि और सब प्रकार से पवित्र सीता को बारातियों ने आते देखा।

सबहिं मनहिं मन किए प्रनामा। देखि राम भए पूरनकामा॥
हरषे दसरथ सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनँदु जेता॥

सभी ने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया। राम को देखकर तो सभी पूर्णकाम (कृतकृत्य) हो गए। राजा दशरथ पुत्रों सहित हर्षित हुए। उनके हृदय में जितना आनंद था, वह कहा नहीं जा सकता।

सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला। मुनि असीस धुनि मंगल मूला॥
गान निसान कोलाहलु भारी। प्रेम प्रमोद मगन नर नारी॥

देवता प्रणाम करके फूल बरसा रहे हैं। मंगलों की मूल मुनियों के आशीर्वादों की ध्वनि हो रही है। गानों और नगाड़ों के शब्द से बड़ा शोर मच रहा है। सभी नर-नारी प्रेम और आनंद में मग्न हैं।

एहि बिधि सीय मंडपहिं आई। प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई॥
तेहि अवसर कर बिधि ब्यवहारू। दुहुँ कुलगुर सब कीन्ह अचारू॥

इस प्रकार सीता मंडप में आईं। मुनिराज बहुत ही आनंदित होकर शांतिपाठ पढ़ रहे हैं। उस अवसर की सब रीति, व्यवहार और कुलाचार दोनों कुलगुरुओं ने किए।

छं॰ - आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुखु पावहीं॥
मधुपर्क मंगल द्रब्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहैं।
भरे कनक कोपर कलस सो तब लिएहिं परिचारक रहैं॥

कुलाचार करके गुरु प्रसन्न होकर गौरी, गणेश और ब्राह्मणों की पूजा करा रहे हैं (अथवा ब्राह्मणों के द्वारा गौरी और गणेश की पूजा करवा रहे हैं)। देवता प्रकट होकर पूजा ग्रहण करते हैं, आशीर्वाद देते हैं और अत्यंत सुख पा रहे हैं। मधुपर्क आदि जिस किसी भी मांगलिक पदार्थ की मुनि जिस समय भी मन में चाह मात्र करते हैं, सेवकगण उसी समय सोने की परातों में और कलशों में भरकर उन पदार्थों को लिए तैयार रहते हैं।

कुल रीति प्रीति समेत रबि कहि देत सबु सादर कियो।
एहि भाँति देव पुजाइ सीतहि सुभग सिंघासनु दियो॥
सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेमु काहुँ न लखि परै।
मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कबि कैसें करै॥

स्वयं सूर्यदेव प्रेम सहित अपने कुल की सब रीतियाँ बता देते हैं और वे सब आदरपूर्वक की जा रही हैं। इस प्रकार देवताओं की पूजा कराके मुनियों ने सीता को सुंदर सिंहासन दिया। सीता और राम का आपस में एक-दूसरे को देखना तथा उनका परस्पर का प्रेम किसी को लख नहीं पड़ रहा है। जो बात श्रेष्ठ मन, बुद्धि और वाणी से भी परे है, उसे कवि क्योंकर प्रकट करे?

दो० - होम समय तनु धरि अनलु अति सुख आहुति लेहिं।
बिप्र बेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देहिं॥ 323॥

हवन के समय अग्निदेव शरीर धारण करके बड़े ही सुख से आहुति ग्रहण करते हैं और सारे वेद ब्राह्मण वेष धरकर विवाह की विधियाँ बताए देते हैं॥ 323॥

जनक पाटमहिषी जग जानी। सीय मातु किमि जाइ बखानी॥
सुजसु सुकृत सुख सुंदरताई। सब समेटि बिधि रची बनाई॥

जनक की जगद्विख्यात पटरानी और सीता की माता का बखान तो हो ही कैसे सकता है। सुयश, सुकृत (पुण्य), सुख और सुंदरता सबको बटोरकर विधाता ने उन्हें सँवारकर तैयार किया है।

समउ जानि मुनिबरन्ह बोलाईं। सुनत सुआसिनि सादर ल्याईं॥
जनक बाम दिसि सोह सुनयना। हिमगिरि संग बनी जनु मयना॥

समय जानकर श्रेष्ठ मुनियों ने उनको बुलवाया। यह सुनते ही सुहागिनी स्त्रियाँ उन्हें आदरपूर्वक ले आईं। सुनयना (जनक की पटरानी) जनक की बाईं ओर ऐसी सोह रही हैं, मानो हिमाचल के साथ मैना शोभित हों।

कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मंगल जल पूरे॥
निज कर मुदित रायँ अरु रानी। धरे राम के आगें आनी॥

पवित्र, सुगंधित और मंगल जल से भरे सोने के कलश और मणियों की सुंदर परातें राजा और रानी ने आनंदित होकर अपने हाथों से लाकर राम के आगे रखीं।

पढ़हिं बेद मुनि मंगल बानी। गगन सुमन झरि अवसरु जानी॥
बरु बिलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे॥

मुनि मंगलवाणी से वेद पढ़ रहे हैं। सुअवसर जानकर आकाश से फूलों की झड़ी लग गई है। दूल्हे को देखकर राजा-रानी प्रेममग्न हो गए और उनके पवित्र चरणों को पखारने लगे।

छं० - लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली।
नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली॥
जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं।
जे सुकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलि मल भाजहीं॥

वे राम के चरण कमलों को पखारने लगे, प्रेम से उनके शरीर में पुलकावली छा रही है। आकाश और नगर में होनेवाली गान, नगाड़े और जय-जयकार की ध्वनि मानो चारों दिशाओं में उमड़ चली, जो चरण कमल कामदेव के शत्रु शिव के हृदयरूपी सरोवर में सदा ही विराजते हैं, जिनका एक बार भी स्मरण करने से मन में निर्मलता आ जाती है और कलियुग के सारे पाप भाग जाते हैं,

जे परसि मुनिबनिता लही गति रही जो पातकमई।
मकरंदु जिन्ह को संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई॥
करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं।
ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु जय जय सब कहैं॥

जिनका स्पर्श पाकर गौतम मुनि की स्त्री अहल्या ने, जो पापमयी थी, परमगति पाई, जिन चरणकमलों का मकरंद रस (गंगा) शिव के मस्तक पर विराजमान है, जिसको देवता पवित्रता की सीमा बताते हैं; मुनि और योगीजन अपने मन को भौंरा बनाकर जिन चरणकमलों का सेवन करके मनोवांछित गति प्राप्त करते हैं; उन्हीं चरणों को भाग्य के पात्र (बड़भागी) जनक धो रहे हैं; यह देखकर सब जय-जयकार कर रहे हैं।

बर कुअँरि करतल जोरि साखोचारु दोउ कुलगुर करैं।
भयो पानिगहनु बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरैं॥

सुखमूल दूलहु देखि दंपति पुलक तन हुलस्यो हियो।
करि लोक बेद बिधानु कन्यादानु नृपभूषन कियो॥

दोनों कुलों के गुरु वर और कन्या की हथेलियों को मिलाकर शाखोच्चार करने लगे। पाणिग्रहण हुआ देखकर ब्रह्मादि देवता, मनुष्य और मुनि आनंद में भर गए। सुख के मूल दूल्हे को देखकर राजा-रानी का शरीर पुलकित हो गया और हृदय आनंद से उमंग उठा। राजाओं के अलंकार स्वरूप जनक ने लोक और वेद की रीति को करके कन्यादान किया।

हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि सागर दई।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई॥
क्यों करै बिनय बिदेहु कियो बिदेहु मूरति सावँरीं।
करि होमु बिधिवत गाँठि जोरी होन लागीं भावँरीं॥

जैसे हिमवान ने शिव को पार्वती और सागर ने भगवान विष्णु को लक्ष्मी दी थीं, वैसे ही जनक ने राम को सीता समर्पित कीं, जिससे विश्व में सुंदर नवीन कीर्ति छा गई। विदेह (जनक) कैसे विनती करें! उस साँवली मूर्ति ने तो उन्हें सचमुच विदेह (देह की सुध-बुध से रहित) ही कर दिया। विधिपूर्वक हवन करके गठजोड़ी की गई और भाँवरें होने लगीं।

दो० - जय धुनि बंदी बेद धुनि मंगल गान निसान।
सुनि हरषहिं बरषहिं बिबुध सुरतरु सुमन सुजान॥ 324॥

जय ध्वनि, वंदि ध्वनि, वेद ध्वनि, मंगलगान और नगाड़ों की ध्वनि सुनकर चतुर देवगण हर्षित हो रहे हैं और कल्पवृक्ष के फूलों को बरसा रहे हैं॥ 324॥

कुअँरु कुअँरि कल भावँरि देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं॥
जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहौं सो थोरी॥

वर और कन्या सुंदर भाँवरें दे रहे हैं। सब लोग आदरपूर्वक (उन्हें देखकर) नेत्रों का परम लाभ ले रहे हैं। मनोहर जोड़ी का वर्णन नहीं हो सकता, जो कुछ उपमा कहूँ वही थोड़ी होगी।

राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं। जगमगात मनि खंभन माहीं॥
मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिआहु अनूपा॥

राम और सीता की सुंदर परछाईं मणियों के खम्भों में जगमगा रही हैं, मानो कामदेव और रति बहुत-से रूप धारण करके राम के अनुपम विवाह को देख रहे हैं।

दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी॥
भए मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे॥

उन्हें (कामदेव और रति को) दर्शन की लालसा और संकोच दोनों ही कम नहीं हैं (अर्थात बहुत हैं); इसीलिए वे मानो बार-बार प्रकट होते और छिपते हैं। सब देखनेवाले आनंदमग्न हो गए और जनक की भाँति सभी अपनी सुध भूल गए।

प्रमुदित मुनिन्ह भावँरीं फेरीं। नेगसहित सब रीति निबेरीं॥
राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं॥

मुनियों ने आनंदपूर्वक भाँवरें फिराईं और नेग सहित सब रीतियों को पूरा किया। राम सीता के सिर में सिंदूर दे रहे हैं; यह शोभा किसी प्रकार भी कही नहीं जाती।

अरुन पराग जलजु भरि नीकें। ससिहि भूष अहि लोभ अमी कें॥
बहुरि बसिष्ठ दीन्हि अनुसासन। बरु दुलहिनि बैठे एक आसन॥

मानो कमल को लाल पराग से अच्छी तरह भरकर अमृत के लोभ से साँप चंद्रमा को भूषित कर रहा है। (यहाँ राम के हाथ को कमल की, सिंदूर को पराग की, राम की श्याम भुजा को साँप की और सीता के मुख को चंद्रमा की उपमा दी गई है) फिर वशिष्ठ ने आज्ञा दी, तब दूल्हा और दुलहिन एक आसन पर बैठे।

छं० - बैठे बरासन रामु जानकि मुदित मन दसरथु भए।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपनें सुकृत सुरतरु फल नए॥
भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबहीं कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यहु मंगलु महा॥

राम और जानकी श्रेष्ठ आसन पर बैठे; उन्हें देखकर दशरथ मन में बहुत आनंदित हुए। अपने सुकृतरूपी कल्प वृक्ष में नए फल (आए) देखकर उनका शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है। चौदहों भुवनों में उत्साह भर गया; सबने कहा कि राम का विवाह हो गया। जीभ एक है और यह मंगल महान है; फिर भला, वह वर्णन करके किस प्रकार समाप्त किया

जा सकता है।

तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै।
मांडवी श्रुतकीरति उरमिला कुअँरि लईं हँकारि कै॥
कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई॥

तब वशिष्ठ की आज्ञा पाकर जनक ने विवाह का सामान सजाकर मांडवी, श्रुतकीर्ति और उर्मिला - इन तीनों राजकुमारियों को बुला लिया। कुशध्वज की बड़ी कन्या मांडवी को, जो गुण, शील, सुख और शोभा की रूप ही थीं, राजा जनक ने प्रेमपूर्वक सब रीतियाँ करके भरत को ब्याह दिया।

जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै।
सो तनय दीन्ही ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै॥
जेहि नामु श्रुतकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप सील उजागरी॥

जानकी की छोटी बहिन उर्मिला को सब सुंदरियों में शिरोमणि जानकर उस कन्या को सब प्रकार से सम्मान करके, लक्ष्मण को ब्याह दिया; और जिनका नाम श्रुतकीर्ति है और जो सुंदर नेत्रोंवाली, सुंदर मुखवाली, सब गुणों की खान और रूप तथा शील में उजागर हैं, उनको राजा ने शत्रुघ्न को ब्याह दिया।

अनुरूप बर दुलहिनि परस्पर लखि सकुच हियँ हरषहीं।
सब मुदित सुंदरता सराहहिं सुमन सुर गन बरषहीं॥
सुंदरीं सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं॥

दूल्हा और दुलहिनें परस्पर अपने-अपने अनुरूप जोड़ी को देखकर सकुचाते हुए हृदय में हर्षित हो रही हैं। सब लोग प्रसन्न होकर उनकी सुंदरता की सराहना करते हैं और देवगण फूल बरसा रहे हैं। सब सुंदरी दुलहिनें सुंदर दूल्हों के साथ एक ही मंडप में ऐसी शोभा पा रही हैं, मानो जीव के हृदय में चारों अवस्थाएँ (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय) अपने चारों स्वामियों (विश्व, तैजस, प्राज्ञ और ब्रह्म) सहित विराजमान हों।

दो॰ - मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।

जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि॥ 325॥

सब पुत्रों को बहुओं सहित देखकर अवध नरेश दशरथ ऐसे आनंदित हैं, मानो वे राजाओं के शिरोमणि क्रियाओं (यज्ञक्रिया, श्रद्धाक्रिया, योगक्रिया और ज्ञानक्रिया) सहित चारों फल (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) पा गए हों॥ 325॥

जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुअँर ब्याहे तेहिं करनी॥
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी। रहा कनक मनि मंडपु पूरी॥

राम के विवाह की जैसी विधि वर्णन की गई, उसी रीति से सब राजकुमार विवाहे गए। दहेज की अधिकता कुछ कही नहीं जाती; सारा मंडप सोने और मणियों से भर गया।

कंबल बसन बिचित्र पटोरे। भाँति भाँति बहु मोल न थोरे॥
गज रथ तुरगदास अरु दासी। धेनु अलंकृत कामदुहा सी॥

बहुत-से कंबल, वस्त्र और भाँति-भाँति के विचित्र रेशमी कपड़े, जो थोड़ी कीमत के न थे (अर्थात बहुमूल्य थे) तथा हाथी, रथ, घोड़े, दास-दासियाँ और गहनों से सजी हुई कामधेनु-सरीखी गाएँ -

बस्तु अनेक करिअ किमि लेखा। कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा॥
लोकपाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अवधपति सबु सुखु माने॥

(आदि) अनेकों वस्तुएँ हैं, जिनकी गिनती कैसे की जाए। उनका वर्णन नहीं किया जा सकता; जिन्होंने देखा है वही जानते हैं। उन्हें देखकर लोकपाल भी सिहा गए। अवधराज दशरथ ने सुख मानकर प्रसन्नचित्त से सब कुछ ग्रहण किया।

दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासेहिं आवा॥
तब कर जोरि जनकु मृदु बानी। बोले सब बरात सनमानी॥

उन्होंने वह दहेज का सामान याचकों को, जो जिसे अच्छा लगा, दे दिया। जो बच रहा, वह जनवासे में चला आया। तब जनक हाथ जोड़कर सारी बारात का सम्मान करते हुए कोमल वाणी से बोले।

छं० - सनमानि सकल बरात आदर दान बिनय बड़ाइ कै।
प्रमुदित महामुनि बृंद बंदे पूजि प्रेम लड़ाइ कै॥

सिरु नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किएँ।
सुर साधु चाहत भाउ सिंधु कि तोष जल अंजलि दिएँ॥

आदर, दान, विनय और बड़ाई के द्वारा सारी बारात का सम्मान कर राजा जनक ने महान आनंद के साथ प्रेमपूर्वक लड़ाकर (लाड़ करके) मुनियों के समूह की पूजा एवं वंदना की। सिर नवाकर, देवताओं को मनाकर, राजा हाथ जोड़कर सबसे कहने लगे कि देवता और साधु तो भाव ही चाहते हैं (वे प्रेम से ही प्रसन्न हो जाते हैं, उन पूर्णकाम महानुभावों को कोई कुछ देकर कैसे संतुष्ट कर सकता है); क्या एक अंजलि जल देने से कहीं समुद्र संतुष्ट हो सकता है।

कर जोरि जनकु बहोरि बंधु समेत कोसलराय सों।
बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सों॥
संबंध राजन रावरें हम बड़े अब सब बिधि भए।
एहि राज साज समेत सेवक जानिबे बिनु गथ लए॥

फिर जनक भाई सहित हाथ जोड़कर कोसलाधीश दशरथ से स्नेह, शील और सुंदर प्रेम में सानकर मनोहर वचन बोले - हे राजन! आपके साथ संबंध हो जाने से अब हम सब प्रकार से बड़े हो गए। इस राज-पाट सहित हम दोनों को आप बिना दाम के लिए हुए सेवक ही समझिएगा।

ए दारिका परिचारिका करि पालिबीं करुना नई।
अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीट्यो कई॥
पुनि भानुकुलभूषन सकल सनमान निधि समधी किए।
कहि जाति नहिं बिनती परस्पर प्रेम परिपूरन हिए॥

इन लड़कियों को टहलनी मानकर, नई-नई दया करके पालन कीजिएगा। मैंने बड़ी ढिठाई की कि आपको यहाँ बुला भेजा, अपराध क्षमा कीजिएगा। फिर सूर्यकुल के भूषण दशरथ ने समधी जनक को संपूर्ण सम्मान का निधि कर दिया (इतना सम्मान किया कि वे सम्मान के भंडार ही हो गए)। उनकी परस्पर की विनय कही नहीं जाती, दोनों के हृदय प्रेम से परिपूर्ण हैं।

बृंदारका गन सुमन बरिसहिं राउ जनवासेहि चले।
दुंदुभी जय धुनि बेद धुनि नभ नगर कौतूहल भले॥

तब सखीं मंगल गान करत मुनीस आयसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै॥

देवतागण फूल बरसा रहे हैं; राजा जनवासे को चले। नगाड़े की ध्वनि, जयध्वनि और वेद की ध्वनि हो रही है, आकाश और नगर दोनों में खूब कौतूहल हो रहा है (आनंद छा रहा है), तब मुनीश्वर की आज्ञा पाकर सुंदरी सखियाँ मंगलगान करती हुई दुलहिनों सहित दूल्हों को लिवाकर कोहबर को चलीं।

दो० - पुनि पुनि रामहि चितव सिय सकुचति मनु सकुचै न।
हरत मनोहर मीन छबि प्रेम पिआसे नैन॥ 326॥

सीता बार-बार राम को देखती हैं और सकुचा जाती हैं; पर उनका मन नहीं सकुचाता। प्रेम के प्यासे उनके नेत्र सुंदर मछलियों की छवि को हर रहे हैं॥ 326॥

स्याम सरीरु सुभायँ सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन॥
जावक जुत पद कमल सुहाए। मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए॥

राम का साँवला शरीर स्वभाव से ही सुंदर है। उसकी शोभा करोड़ों कामदेवों को लजानेवाली है। महावर से युक्त चरण कमल बड़े सुहावने लगते हैं, जिन पर मुनियों के मनरूपी भौंरे सदा छाए रहते हैं।

पीत पुनीत मनोहर धोती। हरति बाल रबि दामिनि जोती॥
कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥

पवित्र और मनोहर पीली धोती प्रातःकाल के सूर्य और बिजली की ज्योति को हरे लेती है। कमर में सुंदर किंकिणी और कटिसूत्र हैं। विशाल भुजाओं में सुंदर आभूषण सुशोभित हैं।

पीत जनेउ महाछबि देई। कर मुद्रिका चोरि चितु लेई॥
सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उरभूषन राजे॥

पीला जनेऊ महान शोभा दे रहा है। हाथ की अँगूठी चित्त को चुरा लेती है। ब्याह के सब साज सजे हुए वे शोभा पा रहे हैं। चौड़ी छाती पर हृदय पर पहनने के सुंदर आभूषण सुशोभित हैं।

पिअर उपरना काखासोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती॥

नयन कमल कल कुंडल काना। बदनु सकल सौंदर्ज निदाना॥

पीला दुपट्टा काँखासोती (जनेऊ की तरह) शोभित है, जिसके दोनों छोरों पर मणि और मोती लगे हैं। कमल के समान सुंदर नेत्र हैं, कानों में सुंदर कुंडल हैं और मुख तो सारी सुंदरता का खजाना ही है।

सुंदर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलकु रुचिरता निवासा॥
सोहत मौरु मनोहर माथे। मंगलमय मुकुता मनि गाथे॥

सुंदर भौंहें और मनोहर नासिका है। ललाट पर तिलक तो सुंदरता का घर ही है। जिसमें मंगलमय मोती और मणि गुँथे हुए हैं, ऐसा मनोहर मौर माथे पर सोह रहा है।

छं० - गाथे महामनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं।
पुर नारि सुर सुंदरीं बरहि बिलोकि सब तिन तोरहीं॥
मनि बसन भूषन वारि आरति करहिं मंगल गावहीं।
सुर सुमन बरिसहिं सूत मागध बंदि सुजसु सुनावहीं॥

सुंदर मौर में बहुमूल्य मणियाँ गुँथी हुई हैं, सभी अंग चित्त को चुराए लेते हैं। सब नगर की स्त्रियाँ और देवसुंदरियाँ दूलह को देखकर तिनका तोड़ रही हैं (उनकी बलैयाँ ले रही हैं) और मणि, वस्त्र तथा आभूषण निछावर करके आरती उतार रही और मंगलगान कर रही हैं। देवता फूल बरसा रहे हैं और सूत, मागध तथा भाट सुयश सुना रहे हैं।

कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ कै॥
लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं।
रनिवासु हास बिलास रस बस जन्म को फलु सब लहैं॥

सुहागिनी स्त्रियाँ सुख पाकर कुँअर और कुमारियों को कोहबर (कुलदेवता के स्थान) में लाईं और अत्यंत प्रेम से मंगल गीत गा-गाकर लौकिक रीति करने लगीं। पार्वती राम को लहकौर (वर-वधू का परस्पर ग्रास देना) सिखाती हैं और सरस्वती सीता को सिखाती हैं। रनिवास हास-विलास के आनंद में मग्न है, (राम और सीता को देख-देखकर) सभी जन्म का परम फल प्राप्त कर रही हैं।

निज पानि मनि महुँ देखि अति मूरति सुरूपनिधान की।

चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी॥
कौतुक बिनोद प्रमोदु प्रेमु न जाइ कहि जानहिं अलीं।
बर कुअँरि सुंदर सकल सखीं लवाइ जनवासेहि चलीं॥

अपने हाथ की मणियों में सुंदर रूप के भंडार राम की परछाईं दिख रही है। यह देखकर जानकी दर्शन में वियोग होने के भय से बाहुरूपी लता को और दृष्टि को हिलाती-डुलाती नहीं हैं। उस समय के हँसी-खेल और विनोद का आनंद और प्रेम कहा नहीं जा सकता, उसे सखियाँ ही जानती हैं। तदनंतर वर-कन्याओं को सब सुंदर सखियाँ जनवासे को लिवा चलीं।

तेहि समय सुनिअ असीस जहँ तहँ नगर नभ आनँदु महा।
चिरु जिअहुँ जोरीं चारु चार्‌यो मुदित मन सबहीं कहा॥
जोगींद्र सिद्ध मुनीस देव बिलोकि प्रभु दुंदुभि हनी।
चले हरषि बरषि प्रसून निज निज लोक जय जय जय भनी॥

उस समय नगर और आकाश में जहाँ सुनिए, वहीं आशीर्वाद की ध्वनि सुनाई दे रही है और महान आनंद छाया है। सभी ने प्रसन्न मन से कहा कि सुंदर चारों जोड़ियाँ चिरंजीवी हों। योगीराज, सिद्ध, मुनीश्वर और देवताओं ने प्रभु राम को देखकर दुंदुभी बजाई और हर्षित होकर फूलों की वर्षा करते हुए तथा 'जय हो, जय हो, जय हो' कहते हुए वे अपने-अपने लोक को चले।

दो० - सहित बधूटिन्ह कुअँर सब तब आए पितु पास।
सोभा मंगल मोद भरि उमगेउ जनु जनवास॥ 327॥

तब सब (चारों) कुमार बहुओं सहित पिता के पास आए। ऐसा मालूम होता था मानो शोभा, मंगल और आनंद से भरकर जनवासा उमड़ पड़ा हो॥ 327॥

पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठए जनक बोलाइ बराती॥
परत पाँवड़े बसन अनूपा। सुतन्ह समेत गवन कियो भूपा॥

फिर बहुत प्रकार की रसोई बनी। जनक ने बारातियों को बुला भेजा। राजा दशरथ ने पुत्रों सहित गमन किया। अनुपम वस्त्रों के पाँवड़े पड़ते जाते हैं।

सादर सब के पाय पखारे। जथाजोगु पीढ़न्ह बैठारे॥

धोए जनक अवधपति चरना। सीलु सनेहु जाइ नहिं बरना॥

आदर के साथ सबके चरण धोए और सबको यथायोग्य पीढ़ों पर बैठाया। तब जनक ने अवधपति दशरथ के चरण धोए। उनका शील और स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता।

बहुरि राम पद पंकज धोए। जे हर हृदय कमल महुँ गोए॥
तीनिउ भाइ राम सम जानी। धोए चरन जनक निज पानी॥

फिर राम के चरणकमलों को धोया, जो शिव के हृदय-कमल में छिपे रहते हैं। तीनों भाइयों को राम के समान जानकर जनक ने उनके भी चरण अपने हाथों से धोए।

आसन उचित सबहि नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी सब लीन्हे॥
सादर लगे परन पनवारे। कनक कील मनि पान सँवारे॥

राजा जनक ने सभी को उचित आसन दिए और सब परसने वालों को बुला लिया। आदर के साथ पत्तलें पड़ने लगीं, जो मणियों के पत्तों से सोने की कील लगाकर बनाई गई थीं।

दो० - सूपोदन सुरभी सरपि सुंदर स्वादु पुनीत।
छन महुँ सब कें परुसि गे चतुर सुआर बिनीत॥ 328॥

चतुर और विनीत रसोइए सुंदर, स्वादिष्ट और पवित्र दाल-भात और गाय का (सुगंधित) घी क्षण भर में सबके सामने परस गए॥ 328॥

पंच कवल करि जेवन लागे। गारि गान सुनि अति अनुरागे।
भाँति अनेक परे पकवाने। सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने॥

सब लोग पंचकौर करके (अर्थात 'प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा और समानाय स्वाहा' इन मंत्रों का उच्चारण करते हुए पहले पाँच ग्रास लेकर) भोजन करने लगे। गाली का गाना सुनकर वे अत्यंत प्रेममग्न हो गए। अनेकों तरह के अमृत के समान (स्वादिष्ट) पकवान परसे गए, जिनका बखान नहीं हो सकता।

परुसन लगे सुआर सुजाना। बिंजन बिबिध नाम को जाना॥
चारि भाँति भोजन बिधि गाई। एक एक बिधि बरनि न जाई॥

चतुर रसोइए नाना प्रकार के व्यंजन परसने लगे, उनका नाम कौन जानता है। चार प्रकार

के (चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय अर्थात चबाकर, चूसकर, चाटकर और पीना-खाने योग्य) भोजन की विधि कही गई है, उनमें से एक-एक विधि के इतने पदार्थ बने थे कि जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

छरस रुचिर बिंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती॥
जेवँत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी॥

छहों रसों के बहुत तरह के सुंदर (स्वादिष्ट) व्यंजन हैं। एक-एक रस के अनगिनत प्रकार के बने हैं। भोजन करते समय पुरुष और स्त्रियों के नाम ले-लेकर स्त्रियाँ मधुर ध्वनि से गाली दे रही हैं (गाली गा रही हैं)।

समय सुहावनि गारि बिराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा॥
एहि बिधि सबहीं भोजनु कीन्हा। आदर सहित आचमनु दीन्हा॥

समय की सुहावनी गाली शोभित हो रही है। उसे सुनकर समाज सहित राजा दशरथ हँस रहे हैं। इस रीति से सभी ने भोजन किया और तब सबको आदर सहित आचमन (हाथ-मुँह धोने के लिए जल) दिया गया।

दो॰ - देइ पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज।
जनवासेहि गवने मुदित सकल भूप सिरताज॥ 329॥

फिर पान देकर जनक ने समाज सहित दशरथ का पूजन किया। सब राजाओं के सिरमौर (चक्रवर्ती) दशरथ प्रसन्न होकर जनवासे को चले॥ 329॥

नित नूतन मंगल पुर माहीं। निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं॥
बड़े भोर भूपतिमनि जागे। जाचक गुन गन गावन लागे॥

जनकपुर में नित्य नए मंगल हो रहे हैं। दिन और रात पल के समान बीत जाते हैं। बड़े सबेरे राजाओं के मुकुटमणि दशरथ जागे। याचक उनके गुणसमूह का गान करने लगे।

देखि कुअँर बर बधुन्ह समेता। किमि कहि जात मोदु मन जेता॥
प्रातक्रिया करि गे गुरु पाहीं। महाप्रमोदु प्रेमु मन माहीं॥

चारों कुमारों को सुंदर वधुओं सहित देखकर उनके मन में जितना आनंद है, वह किस प्रकार कहा जा सकता है? वे प्रातः क्रिया करके गुरु वशिष्ठ के पास गए। उनके मन में

महान आनंद और प्रेम भरा है।

करि प्रनामु पूजा कर जोरी। बोले गिरा अमिअँ जनु बोरी॥
तुम्हरी कृपाँ सुनहु मुनिराजा। भयउँ आजु मैं पूरन काजा॥

राजा प्रणाम और पूजन करके, फिर हाथ जोड़कर मानो अमृत में डुबोई हुई वाणी बोले - हे मुनिराज! सुनिए, आपकी कृपा से आज मैं पूर्णकाम हो गया।

अब सब बिप्र बोलाइ गोसाईं। देहु धेनु सब भाँति बनाईं॥
सुनि गुर करि महिपाल बड़ाई। पुनि पठए मुनिबृंद बोलाई॥

हे स्वामिन्! अब सब ब्राह्मणों को बुलाकर उनको सब तरह (गहनों-कपड़ों) से सजी हुई गाएँ दीजिए। यह सुनकर गुरु ने राजा की बड़ाई करके फिर मुनिगणों को बुलवा भेजा।

दो० - बामदेउ अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि।
आए मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपसालि॥ 330॥

तब वामदेव, देवर्षि नारद, वाल्मीकि, जाबालि और विश्वामित्र आदि तपस्वी श्रेष्ठ मुनियों के समूह-के-समूह आए॥ 330॥

दंड प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे॥
चारि लच्छ बर धेनु मगाईं। काम सुरभि सम सील सुहाईं॥

राजा ने सबको दंडवत-प्रणाम किया और प्रेम सहित पूजन करके उन्हें उत्तम आसन दिए। चार लाख उत्तम गाएँ मँगवाईं, जो कामधेनु के समान अच्छे स्वभाववाली और सुहावनी थीं।

सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं। मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हीं॥
करत बिनय बहु बिधि नरनाहू। लहेउँ आजु जग जीवन लाहू॥

उन सबको सब प्रकार से (गहनों-कपड़ों से) सजाकर राजा ने प्रसन्न होकर भूदेव ब्राह्मणों को दिया। राजा बहुत तरह से विनती कर रहे हैं कि जगत में मैंने आज ही जीने का लाभ पाया।

पाइ असीस महीसु अनंदा। लिए बोलि पुनि जाचक बृंदा॥

कनक बसन मनि हय गय स्यंदन। दिए बूझि रुचि रबिकुलनंदन॥

(ब्राह्मणों से) आशीर्वाद पाकर राजा आनंदित हुए। फिर याचकों के समूहों को बुलवा लिया और सबको उनकी रुचि पूछकर सोना, वस्त्र, मणि, घोड़ा, हाथी और रथ (जिसने जो चाहा सो) सूर्यकुल को आनंदित करनेवाले दशरथ ने दिए।

चले पढ़त गावत गुन गाथा। जय जय जय दिनकर कुल नाथा॥
एहि बिधि राम बिआह उछाहू। सकइ न बरनि सहस मुख जाहू॥

वे सब गुणानुवाद गाते और 'सूर्यकुल के स्वामी की जय हो, जय हो, जय हो' कहते हुए चले। इस प्रकार राम के विवाह का उत्सव हुआ, जिन्हें सहस्र मुख हैं, वे शेष भी उसका वर्णन नहीं कर सकते।

दो॰ - बार बार कौसिक चरन सीसु नाइ कह राउ।
यह सबु सुखु मुनिराज तव कृपा कटाच्छ पसाउ॥ 331॥

बार-बार विश्वामित्र के चरणों में सिर नवाकर राजा कहते हैं - हे मुनिराज! यह सब सुख आपके ही कृपाकटाक्ष का प्रसाद है॥ 331॥

जनक सनेहु सीलु करतूती। नृपु सब भाँति सराह बिभूती॥
दिन उठि बिदा अवधपति मागा। राखहिं जनकु सहित अनुरागा॥

राजा दशरथ जनक के स्नेह, शील, करनी और ऐश्वर्य की सब प्रकार से सराहना करते हैं। प्रतिदिन (सबेरे) उठकर अयोध्या नरेश विदा माँगते हैं। पर जनक उन्हें प्रेम से रख लेते हैं।

नित नूतन आदरु अधिकाई। दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई॥
नित नव नगर अनंद उछाहू। दसरथ गवनु सोहाइ न काहू॥

आदर नित्य नया बढ़ता जाता है। प्रतिदिन हजारों प्रकार से मेहमानी होती है। नगर में नित्य नया आनंद और उत्साह रहता है, दशरथ का जाना किसी को नहीं सुहाता।

बहुत दिवस बीते एहि भाँती। जनु सनेह रजु बँधे बराती॥
कौसिक सतानंद तब जाई। कहा बिदेह नृपहि समुझाई॥

इस प्रकार बहुत दिन बीत गए, मानो बाराती स्नेह की रस्सी से बँध गए हैं। तब विश्वामित्र और शतानंद ने जाकर राजा जनक को समझाकर कहा -

अब दसरथ कहँ आयसु देहू। जद्यपि छाड़ि न सकहु सनेहू॥
भलेहिं नाथ कहि सचिव बोलाए। कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए॥

यद्यपि आप स्नेह (वश उन्हें) नहीं छोड़ सकते, तो भी अब दशरथ को आज्ञा दीजिए। 'हे नाथ! बहुत अच्छा' कहकर जनक ने मंत्रियों को बुलवाया। वे आए और 'जय जीव' कहकर उन्होंने मस्तक नवाया।

दो० - अवधनाथु चाहत चलन भीतर करहु जनाउ।
भए प्रेमबस सचिव सुनि बिप्र सभासद राउ॥ 332॥

(जनक ने कहा -) अयोध्यानाथ चलना चाहते हैं, भीतर (रनिवास में) खबर कर दो। यह सुनकर मंत्री, ब्राह्मण, सभासद और राजा जनक भी प्रेम के वश हो गए॥ 332॥

पुरबासी सुनि चलिहि बराता। बूझत बिकल परस्पर बाता॥
सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने। मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने॥

जनकपुरवासियों ने सुना कि बारात जाएगी, तब वे व्याकुल होकर एक-दूसरे से बात पूछने लगे। जाना सत्य है, यह सुनकर सब ऐसे उदास हो गए मानो संध्या के समय कमल सकुचा गए हों।

जहँ जहँ आवत बसे बराती। तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भाँती॥
बिबिध भाँति मेवा पकवाना। भोजन साजु न जाइ बखाना॥

आते समय जहाँ-जहाँ बाराती ठहरे थे, वहाँ-वहाँ बहुत प्रकार का सीधा (रसोई का सामान) भेजा गया। अनेकों प्रकार के मेवे, पकवान और भोजन की सामग्री जो बखानी नहीं जा सकती -

भरि भरि बसहँ अपार कहारा। पठईं जनक अनेक सुसारा॥
तुरग लाख रथ सहस पचीसा। सकल सँवारे नख अरु सीसा॥

अनगिनत बैलों और कहारों पर भर-भरकर (लाद-लादकर) भेजी गई। साथ ही जनक ने अनेकों सुंदर शय्याएँ (पलंग) भेजीं। एक लाख घोड़े और पचीस हजार रथ सब नख से

शिखा तक (ऊपर से नीचे तक) सजाए हुए,

मत्त सहस दस सिंधुर साजे। जिन्हहि देखि दिसिकुंजर लाजे॥
कनक बसन मनि भरि भरि जाना। महिषीं धेनु बस्तु बिधि नाना॥

दस हजार सजे हुए मतवाले हाथी, जिन्हें देखकर दिशाओं के हाथी भी लजा जाते हैं, गाड़ियों में भर-भरकर सोना, वस्त्र और रत्न (जवाहरात) और भैंस, गाय तथा और भी नाना प्रकार की चीजें दीं।

दो० - दाइज अमित न सकिअ कहि दीन्ह बिदेहँ बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि॥ 333॥

(इस प्रकार) जनक ने फिर से अपरिमित दहेज दिया, जो कहा नहीं जा सकता और जिसे देखकर लोकपालों के लोकों की संपदा भी थोड़ी जान पड़ती थी॥ 333॥

सबु समाजु एहि भाँति बनाई। जनक अवधपुर दीन्ह पठाई॥
चलिहि बरात सुनत सब रानीं। बिकल मीनगन जनु लघु पानीं॥

इस प्रकार सब सामान सजाकर राजा जनक ने अयोध्यापुरी को भेज दिया। बारात चलेगी, यह सुनते ही सब रानियाँ ऐसी विकल हो गईं, मानो थोड़े जल में मछलियाँ छटपटा रही हों।

पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं। देह असीस सिखावनु देहीं॥
होएहु संतत पियहि पिआरी। चिरु अहिबात असीस हमारी॥

वे बार-बार सीता को गोद कर लेती हैं और आशीर्वाद देकर सिखावन देती हैं - तुम सदा अपने पति की प्यारी होओ, तुम्हारा सोहाग अचल हो; हमारी यही आशीष है।

सासु ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू॥
अति सनेह बस सखीं सयानी। नारि धरम सिखवहिं मृदु बानी॥

सास, ससुर और गुरु की सेवा करना। पति का रुख देखकर उनकी आज्ञा का पालन करना। सयानी सखियाँ अत्यंत स्नेह के वश कोमल वाणी से स्त्रियों के धर्म सिखलाती हैं।

सादर सकल कुअँरि समुझाईं। रानिन्ह बार बार उर लाईं॥
बहुरि बहुरि भेटहिं महतारीं। कहहिं बिरंचि रचीं कत नारीं॥

आदर के साथ सब पुत्रियों को (स्त्रियों के धर्म) समझाकर रानियों ने बार-बार उन्हें हृदय से लगाया। माताएँ फिर-फिर भेंटती और कहती हैं कि ब्रह्मा ने स्त्री जाति को क्यों रचा।

हित प्रसन्न होकर विदा कराने के लिए जनक के महल को चले॥ 334॥

चारिउ भाइ सुभायँ सुहाए। नगर नारि नर देखन धाए॥
कोउ कह चलन चहत हहिं आजू। कीन्ह बिदेह बिदा कर साजू॥

स्वभाव से ही सुंदर चारों भाइयों को देखने के लिए नगर के स्त्री-पुरुष दौड़े। कोई कहता है - आज ये जाना चाहते हैं। विदेह ने विदाई का सब सामान तैयार कर लिया है।

लेहु नयन भरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूप सुत चारी॥
को जानै केहिं सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे बिधि आनी॥

राजा के चारों पुत्र, इन प्यारे मेहमानों के (मनोहर) रूप को नेत्र भरकर देख लो। हे सयानी! कौन जाने, किस पुण्य से विधाता ने इन्हें यहाँ लाकर हमारे नेत्रों का अतिथि किया है।

मरनसीलु जिमि पाव पिऊषा। सुरतरु लहै जनम कर भूखा॥
पाव नारकी हरिपदु जैसें। इन्ह कर दरसनु हम कहँ तैसें॥

मरनेवाला जिस तरह अमृत पा जाए, जन्म का भूखा कल्पवृक्ष पा जाए और नरक में रहनेवाला (या नरक के योग्य) जीव जैसे भगवान के परमपद को प्राप्त हो जाए, हमारे लिए इनके दर्शन वैसे ही हैं।

निरखि राम सोभा उर धरहू। निज मन फनि मूरति मनि करहू॥
एहि बिधि सबहि नयन फलु देता। गए कुअँर सब राज निकेता॥

राम की शोभा को निरखकर हृदय में धर लो। अपने मन को साँप और इनकी मूर्ति को मणि बना लो। इस प्रकार सबको नेत्रों का फल देते हुए सब राजकुमार राजमहल में गए।

दो० - रूप सिंधु सब बंधु लखि हरषि उठा रनिवासु।

करहिं निछावरि आरती महा मुदित मन सासु॥ 335॥

रूप के समुद्र सब भाइयों को देखकर सारा रनिवास हर्षित हो उठा। सासुएँ महान प्रसन्न मन से निछावर और आरती करती हैं॥ 335॥

देखि राम छबि अति अनुरागीं। प्रेमबिबस पुनि पुनि पद लागीं॥
रही न लाज प्रीति उर छाई। सहज सनेहु बरनि किमि जाई॥

राम की छवि देखकर वे प्रेम में अत्यंत मग्न हो गईं और प्रेम के विशेष वश होकर बार-बार चरणों लगीं। हृदय में प्रीति छा गई, इससे लज्जा नहीं रह गई। उनके स्वाभाविक स्नेह का वर्णन किस तरह किया जा सकता है।

भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए। छरस असन अति हेतु जेवाँए॥
बोले रामु सुअवसरु जानी। सील सनेह सकुचमय बानी॥

उन्होंने भाइयों सहित राम को उबटन करके स्नान कराया और बड़े प्रेम से षट्रस भोजन कराया। सुअवसर जानकर राम शील, स्नेह और संकोचभरी वाणी बोले -

राउ अवधपुर चहत सिधाए। बिदा होन हम इहाँ पठाए॥
मातु मुदित मन आयसु देहू। बालक जानि करब नित नेहू॥

महाराज अयोध्यापुरी को चलना चाहते हैं, उन्होंने हमें विदा होने के लिए यहाँ भेजा है। हे माता! प्रसन्न मन से आज्ञा दीजिए और हमें अपने बालक जानकर सदा स्नेह बनाए रखिएगा।

सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिं प्रेमबस सासू॥
हृदयँ लगाई कुअँरि सब लीन्ही। पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्ही॥

इन वचनों को सुनते ही रनिवास उदास हो गया। सासुएँ प्रेमवश बोल नहीं सकतीं। उन्होंने सब कुमारियों को हृदय से लगा लिया और उनके पतियों को सौंपकर बहुत विनती की।

छं० - करि बिनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै।
बलि जाउँ तात सुजान तुम्ह कहुँ बिदित गति सब की अहै॥
परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी।
तुलसीस सीलु सनेहु लखि निज किंकरी करि मानिबी॥

विनती करके उन्होंने सीता को राम को समर्पित किया और हाथ जोड़कर बार-बार कहा - हे तात! हे सुजान! मैं बलि जाती हूँ, तुमको सबकी गति (हाल) मालूम है। परिवार को, पुरवासियों को, मुझको और राजा को सीता प्राणों के समान प्रिय है, ऐसा जानिएगा। हे तुलसी के स्वामी! इसके शील और स्नेह को देखकर इसे अपनी दासी करके मानिएगा।

सो० - तुम्ह परिपूरन काम जान सिरोमनि भावप्रिय।
जन गुन गाहक राम दोष दलन करुनायतन॥ 336॥

तुम पूर्ण काम हो, सुजान शिरोमणि हो और भावप्रिय हो (तुम्हें प्रेम प्यारा है)। हे राम! तुम भक्तों के गुणों को ग्रहण करनेवाले, दोषों को नाश करनेवाले और दया के धाम हो॥ 336॥

अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेम पंक जनु गिरा समानी॥
सुनि सनेहसानी बर बानी। बहुबिधि राम सासु सनमानी॥

ऐसा कहकर रानी चरणों को पकड़कर (चुप) रह गईं। मानो उनकी वाणी प्रेमरूपी दलदल में समा गई हो। स्नेह से सनी हुई श्रेष्ठ वाणी सुनकर राम ने सास का बहुत प्रकार से सम्मान किया।

राम बिदा मागत कर जोरी। कीन्ह प्रनामु बहोरि बहोरी॥
पाइ असीस बहुरि सिरु नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई॥

तब राम ने हाथ जोड़कर विदा माँगते हुए बार-बार प्रणाम किया। आशीर्वाद पाकर और फिर सिर नवाकर भाइयों सहित रघुनाथ चले।

मंजु मधुर मूरति उर आनी। भईं सनेह सिथिल सब रानी॥
पुनि धीरजु धरि कुअँरि हँकारीं। बार बार भेटहि महतारीं॥

राम की सुंदर मधुर मूर्ति को हृदय में लाकर सब रानियाँ स्नेह से शिथिल हो गईं। फिर धीरज धारण करके कुमारियों को बुलाकर माताएँ बारंबार उन्हें (गले लगाकर) भेंटने लगीं।

पहुँचावहिं फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी॥
पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई॥

पुत्रियों को पहुँचाती हैं, फिर लौटकर मिलती हैं। परस्पर में कुछ थोड़ी प्रीति नहीं बढ़ी

(अर्थात बहुत प्रीति बढ़ी)। बार-बार मिलती हुई माताओं को सखियों ने अलग कर दिया। जैसे हाल की ब्यायी हुई गाय को कोई उसके बालक बछड़े (या बछिया) से अलग कर दे।

दो० - प्रेमबिबस नर नारि सब सखिन्ह सहित रनिवासु।
मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर करुनाँ बिरहँ निवासु॥ 337॥

सब स्त्री-पुरुष और सखियों सहित सारा रनिवास प्रेम के विशेष वश हो रहा है। (ऐसा लगता है) मानो जनकपुर में करुणा और विरह ने डेरा डाल दिया है॥ 337॥

सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए॥
ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरजु परिहरइ न केही॥

जानकी ने जिन तोता और मैना को पाल-पोसकर बड़ा किया था और सोने के पिंजड़ों में रखकर पढ़ाया था, वे व्याकुल होकर कह रहे हैं - वैदेही कहाँ हैं। उनके ऐसे वचनों को सुनकर धीरज किसको नहीं त्याग देगा (अर्थात सबका धैर्य जाता रहा)।

भए बिकल खग मृग एहि भाँती। मनुज दसा कैसें कहि जाती॥
बंधु समेत जनकु तब आए। प्रेम उमगि लोचन जल छाए॥

जब पक्षी और पशु तक इस तरह विकल हो गए, तब मनुष्यों की दशा कैसे कही जा सकती है! तब भाई सहित जनक वहाँ आए। प्रेम से उमड़कर उनके नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया।

सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी॥
लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी। मिटी महामरजाद ग्यान की॥

वे परम वैराग्यवान कहलाते थे; पर सीता को देखकर उनका भी धीरज भाग गया। राजा ने जानकी को हृदय से लगा लिया। (प्रेम के प्रभाव से) ज्ञान की महान मर्यादा मिट गई (ज्ञान का बाँध टूट गया)।

समुझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह बिचारु न अवसर जाने॥
बारहिं बार सुता उर लाईं। सजि सुंदर पालकीं मगाईं॥

सब बुद्धिमान मंत्री उन्हें समझाते हैं। तब राजा ने विषाद करने का समय न जानकर विचार किया। बारंबार पुत्रियों को हृदय से लगाकर सुंदर सजी हुई पालकियाँ मँगवाईं।

दो० - प्रेमबिबस परिवारु सबु जानि सुलगन नरेस।
कुअँरि चढ़ाईं पालकिन्ह सुमिरे सिद्धि गनेस॥ 338॥

सारा परिवार प्रेम में विवश है। राजा ने सुंदर मुहूर्त जानकर सिद्धि सहित गणेश का स्मरण करके कन्याओं को पालकियों पर चढ़ाया॥ 338॥

बहुबिधि भूप सुता समुझाईं। नारिधरमु कुलरीति सिखाईं॥
दासीं दास दिए बहुतेरे। सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे॥

राजा ने पुत्रियों को बहुत प्रकार से समझाया और उन्हें स्त्रियों का धर्म और कुल की रीति सिखाई। बहुत-से दासी-दास दिए, जो सीता के प्रिय और विश्वासपात्र सेवक थे।

सीय चलत ब्याकुल पुरबासी। होहिं सगुन सुभ मंगल रासी॥
भूसुर सचिव समेत समाजा। संग चले पहुँचावन राजा॥

सीता के चलते समय जनकपुरवासी व्याकुल हो गए। मंगल की राशि शुभ शकुन हो रहे हैं। ब्राह्मण और मंत्रियों के समाज सहित राजा जनक उन्हें पहुँचाने के लिए साथ चले।

समय बिलोकि बाजने बाजे। रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे॥
दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हे॥

समय देखकर बाजे बजने लगे। बारातियों ने रथ, हाथी और घोड़े सजाए। दशरथ ने सब ब्राह्मणों को बुला लिया और उन्हें दान और सम्मान से परिपूर्ण कर दिया।

चरन सरोज धूरि धरि सीसा। मुदित महीपति पाइ असीसा॥
सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना। मंगल मूल सगुन भए नाना॥

उनके चरण कमलों की धूलि सिर पर धरकर और आशीष पाकर राजा आनंदित हुए और गणेश का स्मरण करके उन्होंने प्रस्थान किया। मंगलों के मूल अनेकों शकुन हुए।

दो० - सुर प्रसून बरषहिं हरषि करहिं अपछरा गान।
चले अवधपति अवधपुर मुदित बजाइ निसान॥ 339॥

देवता हर्षित होकर फूल बरसा रहे हैं और अप्सराएँ गान कर रही हैं। अवधपति दशरथ नगाड़े बजाकर आनंदपूर्वक अयोध्यापुरी चले॥ 339॥

नृप करि बिनय महाजन फेरे। सादर सकल मागने टेरे॥
भूषन बसन बाजि गज दीन्हे। प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे॥

राजा दशरथ ने विनती करके प्रतिष्ठित जनों को लौटाया और आदर के साथ सब मंगनों को बुलवाया। उनको गहने-कपड़े, घोड़े-हाथी दिए और प्रेम से पुष्ट करके सबको संपन्न अर्थात बलयुक्त कर दिया।

बार बार बिरिदावलि भाषी। फिरे सकल रामहि उर राखी॥
बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीं। जनकु प्रेमबस फिरै न चहहीं॥

वे सब बारंबार विरुदावली (कुलकीर्ति) बखानकर और राम को हृदय में रखकर लौटे। कोसलाधीश दशरथ बार-बार लौटने को कहते हैं, परंतु जनक प्रेमवश लौटना नहीं चाहते।

पुनि कह भूपत बचन सुहाए। फिरिअ महीस दूरि बड़ि आए॥
राउ बहोरि उतरि भए ठाढ़े। प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े॥

दशरथ ने फिर सुहावने वचन कहे - हे राजन! बहुत दूर आ गए, अब लौटिए। फिर राजा दशरथ रथ से उतरकर खड़े हो गए। उनके नेत्रों में प्रेम का प्रवाह बढ़ आया (प्रेमाश्रुओं की धारा बह चली)।

तब बिदेह बोले कर जोरी। बचन सनेह सुधाँ जनु बोरी॥
करौं कवन बिधि बिनय बनाई। महाराज मोहि दीन्हि बड़ाई॥

तब जनक हाथ जोड़कर मानो स्नेहरूपी अमृत में डुबोकर वचन बोले - मैं किस तरह बनाकर (किन शब्दों में) विनती करूँ। हे महाराज! आपने मुझे बड़ी बड़ाई दी है।

दो० - कोसलपति समधी सजन सनमाने सब भाँति।
मिलनि परसपर बिनय अति प्रीति न हृदयँ समाति॥ 340॥

अयोध्यानाथ दशरथ ने अपने स्वजन समधी का सब प्रकार से सम्मान किया। उनके आपस के मिलने में अत्यंत विनय थी और इतनी प्रीति थी जो हृदय में समाती न थी॥ 340॥

मुनि मंडलिहि जनक सिरु नावा। आसिरबादु सबहि सन पावा॥
सादर पुनि भेंटे जामाता। रूप सील गुन निधि सब भ्राता॥

जनक ने मुनि मंडली को सिर नवाया और सभी से आशीर्वाद पाया। फिर आदर के साथ वे रूप, शील और गुणों के निधान सब भाइयों से, अपने दामादों से मिले,

जोरि पंकरुह पानि सुहाए। बोले बचन प्रेम जनु जाए॥
राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा॥

और सुंदर कमल के समान हाथों को जोड़कर ऐसे वचन बोले जो मानो प्रेम से ही जन्मे हों। हे राम! मैं किस प्रकार आपकी प्रशंसा करूँ! आप मुनियों और महादेव के मनरूपी मानसरोवर के हंस हैं।

करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोहु मोहु ममता मदु त्यागी॥
ब्यापकु ब्रह्मु अलखु अबिनासी। चिदानंदु निरगुन गुनरासी॥

योगी लोग जिनके लिए क्रोध, मोह, ममता और मद को त्यागकर योगसाधन करते हैं, जो सर्वव्यापक, ब्रह्म, अव्यक्त, अविनाशी, चिदानंद, निर्गुण और गुणों की राशि हैं,

मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥
महिमा निगमु नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई॥

जिनको मन सहित वाणी नहीं जानती और सब जिनका अनुमान ही करते हैं, कोई तर्कना नहीं कर सकते; जिनकी महिमा को वेद 'नेति' कहकर वर्णन करता है और जो (सच्चिदानंद) तीनों कालों में एकरस (सर्वदा और सर्वथा निर्विकार) रहते हैं;

दो० - नयन बिषय मो कहुँ भयउ सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभु जग जीव कहँ भएँ ईसु अनुकूल॥ 341॥

वे ही समस्त सुखों के मूल (आप) मेरे नेत्रों के विषय हुए। ईश्वर के अनुकूल होने पर जगत में जीव को सब लाभ-ही-लाभ है॥ 341॥

सबहि भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई॥
होहिं सहस दस सारद सेषा। करहिं कलप कोटिक भरि लेखा॥

आपने मुझे सभी प्रकार से बड़ाई दी और अपना जन जानकर अपना लिया। यदि दस हजार सरस्वती और शेष हों और करोड़ों कल्पों तक गणना करते रहें

मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥
मैं कछु कहउँ एक बल मोरें। तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें॥

तो भी हे रघुना! सुनिए, मेरे सौभाग्य और आपके गुणों की कथा कहकर समाप्त नहीं की जा सकती। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह अपने इस एक ही बल पर कि आप अत्यंत थोड़े प्रेम से प्रसन्न हो जाते हैं।

बार बार मागउँ कर जोरें। मनु परिहरै चरन जनि भोरें॥
सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे। पूरनकाम रामु परितोषे॥

मैं बार-बार हाथ जोड़कर यह माँगता हूँ कि मेरा मन भूलकर भी आपके चरणों को न छोड़े। जनक के श्रेष्ठ वचनों को सुनकर, जो मानो प्रेम से पुष्ट किए हुए थे, पूर्णकाम राम संतुष्ट हुए।

करि बर बिनय ससुर सनमाने। पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने॥
बिनती बहुरि भरत सन कीन्ही। मिलि सप्रेमु पुनि आसिष दीन्ही॥

उन्होंने सुंदर विनती करके पिता दशरथ, गुरु विश्वामित्र और कुलगुरु वशिष्ठ के समान जानकर ससुर जनक का सम्मान किया। फिर जनक ने भरत से विनती की और प्रेम के साथ मिलकर फिर उन्हें आशीर्वाद दिया।

दो॰ - मिले लखन रिपुसूदनहि दीन्हि असीस महीस।
भए परसपर प्रेमबस फिरि फिरि नावहिं सीस॥ 342॥

फिर राजा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न से मिलकर उन्हें आशीर्वाद दिया। वे परस्पर प्रेम के वश होकर बार-बार आपस में सिर नवाने लगे॥ 342॥

बार बार करि बिनय बड़ाई। रघुपति चले संग सब भाई॥
जनक गहे कौसिक पद जाई। चरन रेनु सिर नयनन्ह लाई॥

जनक की बार-बार विनती और बड़ाई करके रघुनाथ सब भाइयों के साथ चले। जनक ने जाकर विश्वामित्र के चरण पकड़ लिए और उनके चरणों की रज को सिर और नेत्रों में लगाया।

सुनु मुनीस बर दरसन तोरें। अगमु न कछु प्रतीति मन मोरें॥

जो सुखु सुजसु लोकपति चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहहीं॥

(उन्होंने कहा -) हे मुनीश्वर! सुनिए, आपके सुंदर दर्शन से कुछ भी दुर्लभ नहीं है, मेरे मन में ऐसा विश्वास है। जो सुख और सुयश लोकपाल चाहते हैं; परंतु (असंभव समझकर) जिसका मनोरथ करते हुए सकुचाते हैं,

सो सुखु सुजसु सुलभ मोहि स्वामी। सब सिधि तव दरसन अनुगामी॥
कीन्हि बिनय पुनि पुनि सिरु नाई। फिरे महीसु आसिषा पाई॥

हे स्वामी! वही सुख और सुयश मुझे सुलभ हो गया; सारी सिद्धियाँ आपके दर्शनों की अनुगामिनी अर्थात पीछे-पीछे चलनेवाली हैं। इस प्रकार बार-बार विनती की और सिर नवाकर तथा उनसे आशीर्वाद पाकर राजा जनक लौटे।

चली बरात निसान बजाई। मुदित छोट बड़ सब समुदाई॥
रामहि निरखि ग्राम नर नारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥

डंका बजाकर बारात चली। छोटे-बड़े सभी समुदाय प्रसन्न हैं। (रास्ते के) गाँव के स्त्री-पुरुष राम को देखकर नेत्रों का फल पाकर सुखी होते हैं।

दो० - बीच बीच बर बास करि मग लोगन्ह सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन पहुँची आइ जनेत॥ 343॥

बीच-बीच में सुंदर मुकाम करती हुई तथा मार्ग के लोगों को सुख देती हुई वह बारात पवित्र दिन में अयोध्यापुरी के समीप आ पहुँची॥ 343॥

हने निसान पनव बर बाजे। भेरि संख धुनि हय गय गाजे॥
झाँझि बिरव डिंडिमीं सुहाई। सरस राग बाजहिं सहनाई॥

नगाड़ों पर चोटें पड़ने लगीं; सुंदर ढोल बजने लगे। भेरी और शंख की बड़ी आवाज हो रही है; हाथी-घोड़े गरज रहे हैं। विशेष शब्द करनेवाली झाँझें, सुहावनी डफलियाँ तथा रसीले राग से शहनाइयाँ बज रही हैं।

पुर जन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता॥
निज निज सुंदर सदन सँवारे। हाट बाट चौहट पुर द्वारे॥

बारात को आती हुई सुनकर नगर निवासी प्रसन्न हो गए। सबके शरीरों पर पुलकावली छा गई। सबने अपने-अपने सुंदर घरों, बाजारों, गलियों, चौराहों और नगर के द्वारों को सजाया।

गलीं सकल अरगजाँ सिंचाईं। जहँ तहँ चौकें चारु पुराईं॥
बना बजारु न जाइ बखाना। तोरन केतु पताक बिताना॥

सारी गलियाँ अरगजे से सिंचाई गईं, जहाँ-तहाँ सुंदर चौक पुराए गए। तोरणों ध्वजा-पताकाओं और मंडपों से बाजार ऐसा सजा कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

सफल पूगफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदंब तमाला॥
लगे सुभग तरु परसत धरनी। मनिमय आलबाल कल करनी॥

फल सहित सुपारी, केला, आम, मौलसिरी, कदंब और तमाल के वृक्ष लगाए गए। वे लगे हुए सुंदर वृक्ष (फलों के भार से) पृथ्वी को छू रहे हैं। उनके मणियों के थाले बड़ी सुंदर कारीगरी से बनाए गए हैं।

दो॰ - बिबिध भाँति मंगल कलस गृह गृह रचे सँवारि।
सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब रघुबर पुरी निहारि॥ 344॥

अनेक प्रकार के मंगल-कलश घर-घर सजाकर बनाए गए हैं। रघुनाथ की पुरी (अयोध्या) को देखकर ब्रह्मा आदि सब देवता सिहाते हैं॥ 344॥

भूप भवनु तेहि अवसर सोहा। रचना देखि मदन मनु मोहा॥
मंगल सगुन मनोहरताई। रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई॥

उस समय राजमहल (अत्यंत) शोभित हो रहा था। उसकी रचना देखकर कामदेव का भी मन मोहित हो जाता था। मंगल शकुन, मनोहरता, ऋद्धि-सिद्धि, सुख, सुहावनी संपत्ति।

जनु उछाह सब सहज सुहाए। तनु धरि धरि दसरथ गृहँ छाए॥
देखन हेतु राम बैदेही। कहहु लालसा होहि न केही॥

और सब प्रकार के उत्साह (आनंद) मानो सहज सुंदर शरीर धर-धरकर दशरथ के घर में छा गए हैं। राम और सीता के दर्शनों के लिए भला कहिए, किसे लालसा न होगी?

जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि। निज छबि निदरहिं मदन बिलासिनि॥
सकल सुमंगल सजें आरती। गावहिं जनु बहु बेष भारती॥

सुहागिनी स्त्रियाँ झुंड-की-झुंड मिलकर चलीं, जो अपनी छवि से कामदेव की स्त्री रति का भी निरादर कर रही हैं। सभी सुंदर मंगलद्रव्य एवं आरती सजाए हुए गा रही हैं, मानो सरस्वती ही बहुत-से वेष धारण किए गा रही हों।

भूपति भवन कोलाहलु होई। जाइ न बरनि समउ सुखु सोई॥
कौसल्यादि राम महतारीं। प्रेमबिबस तन दसा बिसारीं॥

राजमहल में (आनंद के मारे) शोर मच रहा है। उस समय का और सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता। कौसल्या आदि राम की सब माताएँ प्रेम के विशेष वश होने से शरीर की सुध भूल गईं।

दो० - दिए दान बिप्रन्ह बिपुल पूजि गनेस पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु पाइ पदारथ चारि॥ 345॥

गणेश और त्रिपुरारि शिव का पूजन करके उन्होंने ब्राह्मणों को बहुत-सा दान दिया। वे ऐसी परम प्रसन्न हुईं, मानो अत्यंत दरिद्री चारों पदार्थ पा गया हो॥ 345॥

मोद प्रमोद बिबस सब माता। चलहिं न चरन सिथिल भए गाता॥
राम दरस हित अति अनुरागीं। परिछनि साजु सजन सब लागीं॥

सुख और महान आनंद से विवश होने के कारण सब माताओं के शरीर शिथिल हो गए हैं, उनके चरण चलते नहीं हैं। राम के दर्शनों के लिए वे अत्यंत अनुराग में भरकर परछन का सब सामान सजाने लगीं।

बिबिध बिधान बाजने बाजे। मंगल मुदित सुमित्राँ साजे॥
हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मंगल मूला॥

अनेकों प्रकार के बाजे बजते थे। सुमित्रा ने आनंदपूर्वक मंगल साज सजाए। हल्दी, दूब, दही, पत्ते, फूल, पान और सुपारी आदि मंगल की मूल वस्तुएँ,

अच्छत अंकुर लोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा॥
छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुन जनु नीड़ बनाए॥

तथा अक्षत (चावल), अँखुए, गोरोचन, लावा और तुलसी की सुंदर मंजरियाँ सुशोभित हैं। नाना रंगों से चित्रित किए हुए सहज सुहावने सुवर्ण के कलश ऐसे मालूम होते हैं, मानो कामदेव के पक्षियों ने घोंसले बनाए हों।

सगुन सुगंध न जाहिं बखानी। मंगल सकल सजहिं सब रानी॥
रचीं आरतीं बहतु बिधाना। मुदित करहिं कल मंगल गाना॥

शकुन की सुगंधित वस्तुएँ बखानी नहीं जा सकतीं। सब रानियाँ संपूर्ण मंगल साज सज रही हैं। बहुत प्रकार की आरती बनाकर वे आनंदित हुईं सुंदर मंगलगान कर रही हैं।

दो० - कनक थार भरि मंगलन्हि कमल करन्हि लिएँ मात।
चलीं मुदित परिछनि करन पुलक पल्लवित गात॥ 346॥

सोने के थालों को मांगलिक वस्तुओं से भरकर अपने कमल के समान (कोमल) हाथों में लिए हुए माताएँ आनंदित होकर परछन करने चलीं। उनके शरीर पुलकावली से छा गए हैं॥ 346॥

धूप धूम नभु मेचक भयऊ। सावन घन घमंडु जनु ठयऊ॥
सुरतरु सुमन माल सुर बरषहिं। मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिं॥

धूप के धुएँ से आकाश ऐसा काला हो गया है मानो सावन के बादल घुमड़-घुमड़कर छा गए हों। देवता कल्पवृक्ष के फूलों की मालाएँ बरसा रहे हैं। वे ऐसी लगती हैं, मानो बगुलों की पाँति मन को (अपनी ओर) खींच रही हो।

मंजुल मनिमय बंदनिवारे। मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे॥
प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि॥

सुंदर मणियों से बने बंदनवार ऐसे मालूम होते हैं, मानो इंद्रधनुष सजाए हों। अटारियों पर सुंदर और चपल स्त्रियाँ प्रकट होती और छिप जाती हैं (आती-जाती हैं); वे ऐसी जान पड़ती हैं, मानो बिजलियाँ चमक रही हों।

दुंदुभि धुनि घन गरजनि घोरा। जाचक चातक दादुर मोरा॥
सुर सुगंध सुचि बरषहिं बारी। सुखी सकल ससि पुर नर नारी॥

नगाड़ों की ध्वनि मानो बादलों की घोर गर्जना है। याचकगण पपीहे, मेंढक और मोर हैं।

देवता पवित्र सुगंधरूपी जल बरसा रहे हैं, जिससे खेती के समान नगर के सब स्त्री-पुरुष सुखी हो रहे हैं।

समउ जानि गुर आयसु दीन्हा। पुर प्रबेसु रघुकुलमनि कीन्हा॥
सुमिरि संभु गिरिजा गनराजा। मुदित महीपति सहित समाजा॥

(प्रवेश का) समय जानकर गुरु वशिष्ठ ने आज्ञा दी। तब रघुकुलमणि महाराज दशरथ ने शिव, पार्वती और गणेश का स्मरण करके समाज सहित आनंदित होकर नगर में प्रवेश किया।

दो० - होहिं सगुन बरषहिं सुमन सुर दुंदभीं बजाइ।
बिबुध बधू नाचहिं मुदित मंजुल मंगल गाइ॥ 347॥

शकुन हो रहे हैं, देवता दुंदुभी बजा-बजाकर फूल बरसा रहे हैं। देवताओं की स्त्रियाँ आनंदित होकर सुंदर मंगल गीत गा-गाकर नाच रही हैं॥ 347॥

मागध सूत बंदि नट नागर। गावहिं जसु तिहु लोक उजागर॥
जय धुनि बिमल बेद बर बानी। दस दिसि सुनिअ सुमंगल सानी॥

मागध, सूत, भाट और चतुर नट तीनों लोकों के उजागर (सबको प्रकाश देनेवाले परम प्रकाश स्वरूप) राम का यश गा रहे हैं। जय ध्वनि तथा वेद की निर्मल श्रेष्ठ वाणी सुंदर मंगल से सनी हुई दसों दिशाओं में सुनाई पड़ रही है।

बिपुल बाजने बाजन लागे। नभ सुर नगर लोग अनुरागे॥
बने बराती बरनि न जाहीं। महा मुदित मन सुख न समाहीं॥

बहुत-से बाजे बजने लगे। आकाश में देवता और नगर में लोग सब प्रेम में मग्न हैं। बाराती ऐसे बने-ठने हैं कि उनका वर्णन नहीं हो सकता। परम आनंदित हैं, सुख उनके मन में समाता नहीं है।

पुरबासिन्ह तब राय जोहारे। देखत रामहि भए सुखारे॥
करहिं निछावरि मनिगन चीरा। बारि बिलोचन पुलक सरीरा॥

तब अयोध्यावसियों ने राजा को जोहार (वंदना) की। राम को देखते ही वे सुखी हो गए। सब मणियाँ और वस्त्र निछावर कर रहे हैं। नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भरा है और शरीर

पुलकित हैं।

आरति करहिं मुदित पुर नारी। हरषहिं निरखि कुअँर बर चारी॥
सिबिका सुभग ओहार उघारी। देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी॥

नगर की स्त्रियाँ आनंदित होकर आरती कर रही हैं और सुंदर चारों कुमारों को देखकर हर्षित हो रही हैं। पालकियों के सुंदर परदे हटा-हटाकर वे दुलहिनों को देखकर सुखी होती हैं।

दो॰ - एहि बिधि सबही देत सुखु आए राजदुआर।
मुदित मातु परिछनि करहिं बधुन्ह समेत कुमार॥ 348॥

इस प्रकार सबको सुख देते हुए राजद्वार पर आए। माताएँ आनंदित होकर बहुओं सहित कुमारों का परछन कर रही हैं॥ 348॥

करहिं आरती बारहिं बारा। प्रेमु प्रमोदु कहै को पारा॥
भूषन मनि पट नाना जाती। करहिं निछावरि अगनित भाँती॥

वे बार-बार आरती कर रही हैं। उस प्रेम और महान आनंद को कौन कह सकता है! अनेकों प्रकार के आभूषण, रत्न और वस्त्र तथा अगणित प्रकार की अन्य वस्तुएँ निछावर कर रही हैं।

बधुन्ह समेत देखि सुत चारी। परमानंद मगन महतारी॥
पुनि पुनि सीय राम छबि देखी। मुदित सफल जग जीवन लेखी॥

बहुओं सहित चारों पुत्रों को देखकर माताएँ परमानंद में मग्न हो गईं। सीता और राम की छवि को बार-बार देखकर वे जगत में अपने जीवन को सफल मानकर आनंदित हो रही हैं।

सखीं सीय मुख पुनि पुनि चाही। गान करहिं निज सुकृत सराही॥
बरषहिं सुमन छनहिं छन देवा। नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा॥

सखियाँ सीता के मुख को बार-बार देखकर अपने पुण्यों की सराहना करती हुई गान कर रही हैं। देवता क्षण-क्षण में फूल बरसाते, नाचते, गाते तथा अपनी-अपनी सेवा समर्पण करते हैं।

देखि मनोहर चारिउ जोरीं। सारद उपमा सकल ढँढोरीं॥
देत न बनहिं निपट लघु लागीं। एकटक रहीं रूप अनुरागीं॥

चारों मनोहर जोड़ियों को देखकर सरस्वती ने सारी उपमाओं को खोज डाला; पर कोई उपमा देते नहीं बनी, क्योंकि उन्हें सभी बिलकुल तुच्छ जान पड़ीं। तब हारकर वे भी राम के रूप में अनुरक्त होकर एकटक देखती रह गईं।

दो० - निगम नीति कुल रीति करि अरघ पाँवड़े देत।
बधुन्ह सहित सुत परिछि सब चलीं लवाइ निकेत॥ 349॥

वेद की विधि और कुल की रीति करके अर्घ्य-पाँवड़े देती हुई बहुओं समेत सब पुत्रों को परछन करके माताएँ महल में लिवा चलीं॥ 349॥

चारि सिंघासन सहज सुहाए। जनु मनोज निज हाथ बनाए॥
तिन्ह पर कुअँरि कुअँर बैठारे। सादर पाय पुनीत पखारे॥

स्वाभाविक ही सुंदर चार सिंहासन थे, जो मानो कामदेव ने ही अपने हाथ से बनाए थे। उन पर माताओं ने राजकुमारियों और राजकुमारों को बैठाया और आदर के साथ उनके पवित्र चरण धोए।

धूप दीप नैबेद बेद बिधि। पूजे बर दुलहिनि मंगल निधि॥
बारहिं बार आरती करहीं। ब्यजन चारु चामर सिर ढरहीं॥

फिर वेद की विधि के अनुसार मंगलों के निधान दूल्हों की दुलहिनों की धूप, दीप और नैवेद्य आदि के द्वारा पूजा की। माताएँ बारंबार आरती कर रही हैं और वर-वधुओं के सिरों पर सुंदर पंखे तथा चँवर ढल रहे हैं।

बस्तु अनेक निछावरि होहीं। भरीं प्रमोद मातु सब सोहीं॥
पावा परम तत्त्व जनु जोगीं। अमृतु लहेउ जनु संतत रोगीं॥

अनेकों वस्तुएँ निछावर हो रही हैं; सभी माताएँ आनंद से भरी हुई ऐसी सुशोभित हो रही हैं मानो योगी ने परम तत्त्व को प्राप्त कर लिया। सदा के रोगी ने मानो अमृत पा लिया,

जनम रंक जनु पारस पावा। अंधहि लोचन लाभु सुहावा॥

मूक बदन जनु सारद छाई। मानहुँ समर सूर जय पाई॥

जन्म का दरिद्री मानो पारस पा गया। अंधे को सुंदर नेत्रों का लाभ हुआ। गूँगे के मुख में मानो सरस्वती आ विराजीं और शूरवीर ने मानो युद्ध में विजय पा ली।

दो॰ - एहि सुख ते सत कोटि गुन पावहिं मातु अनंदु।
भाइन्ह सहित बिआहि घर आए रघुकुलचंदु॥ 350(क)॥

इन सुखों से भी सौ करोड़ गुना बढ़कर आनंद माताएँ पा रही हैं। क्योंकि रघुकुल के चंद्रमा राम विवाह कर के भाइयों सहित घर आए हैं॥ 350 (क)॥

लोक रीति जननीं करहिं बर दुलहिनि सकुचाहिं।
मोदु बिनोदु बिलोकि बड़ रामु मनहिं मुसुकाहिं॥ 350(ख)॥

माताएँ लोकरीति करती हैं और दूल्हे-दुलहिनें सकुचाते हैं। इस महान आनंद और विनोद को देखकर राम मन-ही-मन मुसकरा रहे हैं॥ 350(ख)॥

देव पितर पूजे बिधि नीकी। पूजीं सकल बासना जी की॥
सबहि बंदि माँगहिं बरदाना। भाइन्ह सहित राम कल्याना॥

मन की सभी वासनाएँ पूरी हुई जानकर देवता और पितरों का भली-भाँति पूजन किया। सबकी वंदना करके माताएँ यही वरदान माँगती हैं कि भाइयों सहित राम का कल्याण हो।

अंतरहित सुर आसिष देहीं। मुदित मातु अंचल भरि लेहीं॥
भूपति बोलि बराती लीन्हे। जान बसन मनि भूषन दीन्हे॥

देवता छिपे हुए (अंतरिक्ष से) आशीर्वाद दे रहे हैं और माताएँ आनंदित हो आँचल भरकर ले रही हैं। तदनंतर राजा ने बारातियों को बुलवा लिया और उन्हें सवारियाँ, वस्त्र, मणि (रत्न) और आभूषणादि दिए।

आयसु पाइ राखि उर रामहि। मुदित गए सब निज निज धामहि॥
पुर नर नारि सकल पहिराए। घर घर बाजन लगे बधाए॥

आज्ञा पाकर, राम को हृदय में रखकर वे सब आनंदित होकर अपने-अपने घर गए। नगर के समस्त स्त्री-पुरुषों को राजा ने कपड़े और गहने पहनाए। घर-घर बधावे बजने लगे।

जाचक जन जाचहिं जोइ जोई। प्रमुदित राउ देहिं सोइ सोई॥
सेवक सकल बजनिआ नाना। पूरन किए दान सनमाना॥

याचक लोग जो-जो माँगते हैं, विशेष प्रसन्न होकर राजा उन्हें वही-वही देते हैं। संपूर्ण सेवकों और बाजे वालों को राजा ने नाना प्रकार के दान और सम्मान से संतुष्ट किया।

दो॰ - देहिं असीस जोहारि सब गावहिं गुन गन गाथ।
तब गुर भूसुर सहित गृहँ गवनु कीन्ह नरनाथ॥ 351॥

सब जोहार (वंदन) करके आशीष देते हैं और गुणसमूहों की कथा गाते हैं। तब गुरु और ब्राह्मणों सहित राजा दशरथ ने महल में गमन किया॥ 351॥

जो बसिष्ट अनुसासन दीन्ही। लोक बेद बिधि सादर कीन्ही॥
भूसुर भीर देखि सब रानी। सादर उठीं भाग्य बड़ जानी॥

वशिष्ठ ने जो आज्ञा दी, उसे लोक और वेद की विधि के अनुसार राजा ने आदरपूर्वक किया। ब्राह्मणों की भीड़ देखकर अपना बड़ा भाग्य जानकर सब रानियाँ आदर के साथ उठीं।

पाय पखारि सकल अन्हवाए। पूजि भली बिधि भूप जेवाँए॥
आदर दान प्रेम परिपोषे। देत असीस चले मन तोषे॥

चरण धोकर उन्होंने सबको स्नान कराया और राजा ने भली-भाँति पूजन करके उन्हें भोजन कराया। आदर, दान और प्रेम से पुष्ट हुए वे संतुष्ट मन से आशीर्वाद देते हुए चले।

बहु बिधि कीन्हि गाधिसुत पूजा। नाथ मोहि सम धन्य न दूजा॥
कीन्हि प्रसंसा भूपति भूरी। रानिन्ह सहित लीन्हि पग धूरी॥

राजा ने गाधि-पुत्र विश्वामित्र की बहुत तरह से पूजा की और कहा - हे नाथ! मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है। राजा ने उनकी बहुत प्रशंसा की और रानियों सहित उनकी चरणधूलि को ग्रहण किया।

भीतर भवन दीन्ह बर बासू। मन जोगवत रह नृपु रनिवासू॥
पूजे गुर पद कमल बहोरी। कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी॥

उन्हें महल के भीतर ठहरने को उत्तम स्थान दिया, जिसमें राजा और सब रनिवास उनका मन जोहता रहे (अर्थात जिसमें राजा और महल की सारी रानियाँ स्वयं उनकी इच्छानुसार उनके आराम की ओर दृष्टि रख सकें), फिर राजा ने गुरु वशिष्ठ के चरणकमलों की पूजा और विनती की। उनके हृदय में कम प्रीति न थी। (अर्थात बहुत प्रीति थी।)

दो॰ - बधुन्ह समेत कुमार सब रानिन्ह सहित महीसु।
पुनि पुनि बंदत गुर चरन देत असीस मुनीसु॥ 352॥

बहुओं सहित सब राजकुमार और सब रानियों समेत राजा बार-बार गुरु के चरणों की वंदना करते हैं और मुनीश्वर आशीर्वाद देते हैं॥ 352॥

बिनय कीन्हि उर अति अनुरागें। सुत संपदा राखि सब आगें॥
नेगु मागि मुनिनायक लीन्हा। आसिरबादु बहुत बिधि दीन्हा॥

राजा ने अत्यंत प्रेमपूर्ण हृदय से पुत्रों को और सारी संपत्ति को सामने रखकर (उन्हें स्वीकार करने के लिए) विनती की। परंतु मुनिराज ने (पुरोहित के नाते) केवल अपना नेग माँग लिया और बहुत तरह से आशीर्वाद दिया।

उर धरि रामहि सीय समेता। हरषि कीन्ह गुर गवनु निकेता॥
बिप्रबधू सब भूप बोलाईं। चैल चारु भूषन पहिराईं॥

फिर सीता सहित राम को हृदय में रखकर गुरु वशिष्ठ हर्षित होकर अपने स्थान को गए। राजा ने सब ब्राह्मणों की स्त्रियों को बुलवाया और उन्हें सुंदर वस्त्र तथा आभूषण पहनाए।

बहुरि बोलाइ सुआसिनि लीन्हीं। रुचि बिचारि पहिरावनि दीन्हीं॥
नेगी नेग जोग जब लेहीं। रुचि अनुरूप भूपमनि देहीं॥

फिर अब सुआसिनियों को (नगर भर की सौभाग्यवती बहन, बेटी, भानजी आदि को) बुलवा लिया और उनकी रुचि समझकर (उसी के अनुसार) उन्हें पहिरावनी दी। नेगी लोग सब अपना-अपना नेग-जोग लेते और राजाओं के शिरोमणि दशरथ उनकी इच्छा के अनुसार देते हैं।

प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने। भूपति भली भाँति सनमाने॥

देव देखि रघुबीर बिबाहू। बरषि प्रसून प्रसंसि उछाहू॥

जिन मेहमानों को प्रिय और पूजनीय जाना, उनका राजा ने भली-भाँति सम्मान किया। देवगण रघुनाथ का विवाह देखकर, उत्सव की प्रशंसा करके फूल बरसाते हुए -

दो० - चले निसान बजाइ सुर निज निज पुर सुख पाइ।
कहत परसपर राम जसु प्रेम न हृदयँ समाइ॥ 353॥

नगाड़े बजाकर और (परम) सुख प्राप्त कर अपने-अपने लोकों को चले। वे एक-दूसरे से राम का यश कहते जाते हैं। हृदय में प्रेम समाता नहीं है॥ 353॥

सब बिधि सबहि समदि नरनाहू। रहा हृदयँ भरि पूरि उछाहू॥
जहँ रनिवासु तहाँ पगु धारे। सहित बहूटिन्ह कुअँर निहारे॥

सब प्रकार से सबका प्रेमपूर्वक भली-भाँति आदर-सत्कार कर लेने पर राजा दशरथ के हृदय में पूर्ण उत्साह (आनंद) भर गया। जहाँ रनिवास था, वे वहाँ पधारे और बहुओं समेत उन्होंने कुमारों को देखा।

लिए गोद करि मोद समेता। को कहि सकइ भयउ सुखु जेता॥
बधू सप्रेम गोद बैठारीं। बार बार हियँ हरषि दुलारीं॥

राजा ने आनंद सहित पुत्रों को गोद में ले लिया। उस समय राजा को जितना सुख हुआ उसे कौन कह सकता है? फिर पुत्रवधुओं को प्रेम सहित गोदी में बैठाकर, बार-बार हृदय में हर्षित होकर उन्होंने उनका दुलार (लाड़-चाव) किया।

देखि समाजु मुदित रनिवासू। सब कें उर अनंद कियो बासू॥
कहेउ भूप जिमि भयउ बिबाहू। सुनि सुनि हरषु होत सब काहू॥

यह समाज (समारोह) देखकर रनिवास प्रसन्न हो गया। सबके हृदय में आनंद ने निवास कर लिया। तब राजा ने जिस तरह विवाह हुआ था वह सब कहा। उसे सुन-सुनकर सब किसी को हर्ष होता है।

जनक राज गुन सीलु बड़ाई। प्रीति रीति संपदा सुहाई॥
बहुबिधि भूप भाट जिमि बरनी। रानीं सब प्रमुदित सुनि करनी॥

राजा जनक के गुण, शील, महत्त्व, प्रीति की रीति और सुहावनी संपत्ति का वर्णन राजा ने भाट की तरह बहुत प्रकार से किया। जनक की करनी सुनकर सब रानियाँ बहुत प्रसन्न हुईं।

दो॰ - सुतन्ह समेत नहाइ नृप बोलि बिप्र गुर ग्याति।
भोजन कीन्ह अनेक बिधि घरी पंच गइ राति॥ 354॥

पुत्रों सहित स्नान करके राजा ने ब्राह्मण, गुरु और कुटुंबियों को बुलाकर अनेक प्रकार के भोजन किए। (यह सब करते-करते) पाँच घड़ी रात बीत गई॥ 354॥

मंगलगान करहिं बर भामिनि। भै सुखमूल मनोहर जामिनि॥
अँचइ पान सब काहूँ पाए। स्रग सुगंध भूषित छबि छाए॥

सुंदर स्त्रियाँ मंगलगान कर रही हैं। वह रात्रि सुख की मूल और मनोहारिणी हो गई। सबने आचमन करके पान खाए और फूलों की माला, सुगंधित द्रव्य आदि से विभूषित होकर सब शोभा से छा गए।

रामहि देखि रजायसु पाई। निज निज भवन चले सिर नाई॥
प्रेम प्रमोदु बिनोदु बड़ाई। समउ समाजु मनोहरताई॥

राम को देखकर और आज्ञा पाकर सब सिर नवाकर अपने-अपने घर को चले। वहाँ के प्रेम, आनंद, विनोद, महत्त्व, समय, समाज और मनोहरता को -

कहि न सकहिं सत सारद सेसू। बेद बिरंचि महेस गनेसू॥
सो मैं कहौं कवन बिधि बरनी। भूमिनागु सिर धरइ कि धरनी॥

सैकड़ों सरस्वती, शेष, वेद, ब्रह्मा, महादेव और गणेश भी नहीं कह सकते। फिर भला मैं उसे किस प्रकार से बखानकर कहूँ? कहीं केंचुआ भी धरती को सिर पर ले सकता है!

नृप सब भाँति सबहि सनमानी। कहि मृदु बचन बोलाईं रानी॥
बधू लरिकनीं पर घर आईं। राखेहु नयन पलक की नाईं॥

राजा ने सबका सब प्रकार से सम्मान करके, कोमल वचन कहकर रानियों को बुलाया और कहा - बहुएँ अभी बच्ची हैं, पराए घर आई हैं। इनको इस तरह से रखना जैसे नेत्रों को पलकें रखती हैं (जैसे पलकें नेत्रों की सब प्रकार से रक्षा करती हैं और उन्हें सुख पहुँचाती

हैं, वैसे ही इनको सुख पहुँचाना)।

दो० - लरिका श्रमित उनीद बस सयन करावहु जाइ।
अस कहि गे बिश्रामगृहँ राम चरन चितु लाइ॥ 355॥

लड़के थके हुए नींद के वश हो रहे हैं, इन्हें ले जाकर शयन कराओ। ऐसा कहकर राजा राम के चरणों में मन लगाकर विश्राम भवन में चले गए॥ 355॥

भूप बचन सुनि सहज सुहाए। जरित कनक मनि पलँग डसाए॥
सुभग सुरभि पय फेन समाना। कोमल कलित सुपेतीं नाना॥

राजा के स्वाभव से ही सुंदर वचन सुनकर (रानियों ने) मणियों से जड़े सुवर्ण के पलँग बिछवाए। (गद्दों पर) गौ के दूध के फेन के समान सुंदर एवं कोमल अनेकों सफेद चादरें बिछाईं।

उपबरहन बर बरनि न जाहीं। स्रग सुगंध मनिमंदिर माहीं॥
रतनदीप सुठि चारु चँदोवा। कहत न बनइ जान जेहिं जोवा॥

सुंदर तकियों का वर्णन नहीं किया जा सकता। मणियों के मंदिर में फूलों की मालाएँ और सुगंध द्रव्य सजे हैं। सुंदर रत्नों के दीपकों और सुंदर चँदोवे की शोभा कहते नहीं बनती। जिसने उन्हें देखा हो, वही जान सकता है।

सेज रुचिर रचि रामु उठाए। प्रेम समेत पलँग पौढ़ाए॥
अग्या पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही। निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही॥

इस प्रकार सुंदर शय्या सजाकर (माताओं ने) राम को उठाया और प्रेम सहित पलँग पर पौढ़ाया। राम ने बार-बार भाइयों को आज्ञा दी। तब वे भी अपनी-अपनी शय्याओं पर सो गए।

देखि स्याम मृदु मंजुल गाता। कहहिं सप्रेम बचन सब माता॥
मारग जात भयावनि भारी। केहि बिधि तात ताड़का मारी॥

राम के साँवले सुंदर कोमल अँगों को देखकर सब माताएँ प्रेम सहित वचन कह रही हैं - हे तात! मार्ग में जाते हुए तुमने बड़ी भयावनी ताड़का राक्षसी को किस प्रकार से मारा?

दो० - घोर निसाचर बिकट भट समर गनहिं नहिं काहु।
मारे सहित सहाय किमि खल मारीच सुबाहु॥ 356॥

बड़े भयानक राक्षस, जो विकट योद्धा थे और जो युद्ध में किसी को कुछ नहीं गिनते थे, उन दुष्ट मारीच और सुबाहु को सहायकों सहित तुमने कैसे मारा?॥ 356॥

मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरें टारी॥
मख रखवारी करि दुहुँ भाईं। गुरु प्रसाद सब बिद्या पाईं॥

हे तात! मैं बलैया लेती हूँ, मुनि की कृपा से ही ईश्वर ने तुम्हारी बहुत-सी बलाओं को टाल दिया। दोनों भाइयों ने यज्ञ की रखवाली करके गुरु के प्रसाद से सब विद्याएँ पाईं।

मुनितिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी॥
कमठ पीठि पबि कूट कठोरा। नृप समाज महुँ सिव धनु तोरा॥

चरणों की धूलि लगते ही मुनि पत्नी अहल्या तर गई। विश्व भर में यह कीर्ति पूर्ण रीति से व्याप्त हो गई। कच्छप की पीठ, वज्र और पर्वत से भी कठोर शिव के धनुष को राजाओं के समाज में तुमने तोड़ दिया।

बिस्व बिजय जसु जानकि पाई। आए भवन ब्याहि सब भाई॥
सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौसिक कृपाँ सुधारे॥

विश्वविजय के यश और जानकी को पाया और सब भाइयों को ब्याहकर घर आए। तुम्हारे सभी कर्म अमानुषी हैं (मनुष्य की शक्ति के बाहर हैं), जिन्हें केवल विश्वामित्र की कृपा ने सुधारा है (संपन्न किया है)।

आजु सुफल जग जनमु हमारा। देखि तात बिधुबदन तुम्हारा॥
जे दिन गए तुम्हहि बिनु देखें। ते बिरंचि जनि पारहिं लेखें॥

हे तात! तुम्हारा चंद्रमुख देखकर आज हमारा जगत में जन्म लेना सफल हुआ। तुमको बिना देखे जो दिन बीते हैं, उनको ब्रह्मा गिनती में न लावें (हमारी आयु में शामिल न करें)।

दो० - राम प्रतोषीं मातु सब कहि बिनीत बर बैन।
सुमिरि संभु गुरु बिप्र पद किए नीदबस नैन॥ 357॥

विनय भरे उत्तम वचन कहकर राम ने सब माताओं को संतुष्ट किया। फिर शिव, गुरु और ब्राह्मणों के चरणों का स्मरण कर नेत्रों को नींद के वश किया। (अर्थात वे सो रहे)॥ 357॥

नीदउँ बदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना॥
घर घर करहिं जागरन नारीं। देहिं परसपर मंगल गारीं॥

नींद में भी उनका अत्यंत सलोना मुखड़ा ऐसा सोह रहा था, मानो संध्या के समय का लाल कमल सोह रहा हो। स्त्रियाँ घर-घर जागरण कर रही हैं और आपस में (एक-दूसरी को) मंगलमयी गालियाँ दे रही हैं।

पुरी बिराजति राजति रजनी। रानीं कहहिं बिलोकहु सजनी॥
सुंदर बधुन्ह सासु लै सोईं। फनिकन्ह जनु सिरमनि उर गोईं॥

रानियाँ कहती हैं - हे सजनी! देखो, (आज) रात्रि की कैसी शोभा है, जिससे अयोध्यापुरी विशेष शोभित हो रही है! (यों कहती हुई) सासुएँ सुंदर बहुओं को लेकर सो गईं, मानो सर्पों ने अपने सिर की मणियों को हृदय में छिपा लिया है।

प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड़ बर बोलन लागे॥
बंदि मागधन्हि गुनगन गाए। पुरजन द्वार जोहारन आए॥

प्रातःकाल पवित्र ब्रह्म मुहूर्त में प्रभु जागे। मुर्गे सुंदर बोलने लगे। भाट और मागधों ने गुणों का गान किया तथा नगर के लोग द्वार पर जोहार करने को आए।

बंदि बिप्र सुर गुर पितु माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता॥
जननिन्ह सादर बदन निहारे। भूपति संग द्वार पगु धारे॥

ब्राह्मणों, देवताओं, गुरु, पिता और माताओं की वंदना करके आशीर्वाद पाकर सब भाई प्रसन्न हुए। माताओं ने आदर के साथ उनके मुखों को देखा। फिर वे राजा के साथ दरवाजे (बाहर) पधारे।

दो० - कीन्हि सौच सब सहज सुचि सरित पुनीत नहाइ।
प्रातक्रिया करि तात पहिं आए चारिउ भाइ॥ 358॥

स्वभाव से ही पवित्र चारों भाइयों ने सब शौचादि से निवृत्त होकर पवित्र सरयू नदी में

स्नान किया और प्रातःक्रिया (संध्या-वंदनादि) करके वे पिता के पास आए॥ 358॥

भूप बिलोकि लिए उर लाई। बैठे हरषि रजायसु पाई॥
देखि रामु सब सभा जुड़ानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी॥

राजा ने देखते ही उन्हें हृदय से लगा लिया। तदनंतर वे आज्ञा पाकर हर्षित होकर बैठ गए। राम के दर्शन कर और नेत्रों के लाभ की बस यही सीमा है, ऐसा अनुमान कर सारी सभा शीतल हो गई। (अर्थात सबके तीनों प्रकार के ताप सदा के लिए मिट गए।)

पुनि बसिष्टु मुनि कौसिकु आए। सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए॥
सुतन्ह समेत पूजि पद लागे। निरखि रामु दोउ गुर अनुरागे॥

फिर मुनि वशिष्ठ और विश्वामित्र आए। राजा ने उनको सुंदर आसनों पर बैठाया और पुत्रों समेत उनकी पूजा करके उनके चरणों लगे। दोनों गुरु राम को देखकर प्रेम में मुग्ध हो गए।

कहहिं बसिष्टु धरम इतिहासा। सुनहिं महीसु सहित रनिवासा॥
मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदित बसिष्ठ बिपुल बिधि बरनी॥

वशिष्ठ धर्म के इतिहास कह रहे हैं और राजा रनिवास सहित सुन रहे हैं। जो मुनियों के मन को भी अगम्य है, ऐसी विश्वामित्र की करनी को वशिष्ठ ने आनंदित होकर बहुत प्रकार से वर्णन किया।

बोले बामदेउ सब साँची। कीरति कलित लोक तिहुँ माची॥
सुनि आनंदु भयउ सब काहू। राम लखन उर अधिक उछाहू॥

वामदेव बोले - ये सब बातें सत्य हैं। विश्वामित्र की सुंदर कीर्ति तीनों लोकों में छाई हुई है। यह सुनकर सब किसी को आनंद हुआ। राम-लक्ष्मण के हृदय में अधिक उत्साह (आनंद) हुआ।

दो० - मंगल मोद उछाह नित जाहिं दिवस एहि भाँति।
उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति॥ 359॥

नित्य ही मंगल, आनंद और उत्सव होते हैं; इस तरह आनंद में दिन बीतते जाते हैं।

अयोध्या आनंद से भरकर उमड़ पड़ी, आनंद की अधिकता अधिक-अधिक बढ़ती ही जा रही है॥ 359॥

सुदिन सोधि कल कंकन छोरे। मंगल मोद बिनोद न थोरे॥
नित नव सुखु सुर देखि सिहाहीं। अवध जन्म जाचहिं बिधि पाहीं॥

अच्छा दिन (शुभ मुहूर्त) शोधकर सुंदर कंकण खोले गए। मंगल, आनंद और विनोद कुछ कम नहीं हुए (अर्थात बहुत हुए)। इस प्रकार नित्य नए सुख को देखकर देवता सिहाते हैं और अयोध्या में जन्म पाने के लिए ब्रह्मा से याचना करते हैं।

बिस्वामित्रु चलन नित चहहीं। राम सप्रेम बिनय बस रहहीं॥
दिन दिन सयगुन भूपति भाऊ। देखि सराह महामुनिराऊ॥

विश्वामित्र नित्य ही चलना (अपने आश्रम जाना) चाहते हैं, पर राम के स्नेह और विनयवश रह जाते हैं। दिनों-दिन राजा का सौ गुना भाव (प्रेम) देखकर महामुनिराज विश्वामित्र उनकी सराहना करते हैं।

मागत बिदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे॥
नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवकु समेत सुत नारी॥

अंत में जब विश्वामित्र ने विदा माँगी, तब राजा प्रेममग्न हो गए और पुत्रों सहित आगे खड़े हो गए। (वे बोले -) हे नाथ! यह सारी संपदा आपकी है। मैं तो स्त्री-पुत्रों सहित आपका सेवक हूँ।

करब सदा लरिकन्ह पर छोहू। दरसनु देत रहब मुनि मोहू॥
अस कहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरन मुख आव न बानी॥

हे मुनि! लड़कों पर सदा स्नेह करते रहिएगा और मुझे भी दर्शन देते रहिएगा। ऐसा कहकर पुत्रों और रानियों सहित राजा दशरथ विश्वामित्र के चरणों पर गिर पड़े, (प्रेमविह्वल हो जाने के कारण) उनके मुँह से बात नहीं निकलती।

दीन्हि असीस बिप्र बहु भाँति। चले न प्रीति रीति कहि जाती॥
रामु सप्रेम संग सब भाई। आयसु पाइ फिरे पहुँचाई॥

ब्राह्मण विश्वमित्र ने बहुत प्रकार से आशीर्वाद दिए और वे चल पड़े, प्रीति की रीति कही

नहीं जाती। सब भाइयों को साथ लेकर राम प्रेम के साथ उन्हें पहुँचाकर और आज्ञा पाकर लौटे।

दो० - राम रूपु भूपति भगति ब्याहु उछाहु अनंदु।
जात सराहत मनहिं मन मुदित गाधिकुलचंदु॥ 360॥

गाधिकुल के चंद्रमा विश्वामित्र बड़े हर्ष के साथ राम के रूप, राजा दशरथ की भक्ति, (चारों भाइयों के) विवाह और (सबके) उत्साह और आनंद को मन-ही-मन सराहते जाते हैं॥ 360॥

बामदेव रघुकुल गुर ग्यानी। बहुरि गाधिसुत कथा बखानी॥
सुनि मुनि सुजसु मनहिं मन राऊ। बरनत आपन पुन्य प्रभाऊ॥

वामदेव और रघुकुल के गुरु ज्ञानी वशिष्ठ ने फिर विश्वामित्र की कथा बखानकर कही। मुनि का सुंदर यश सुनकर राजा मन-ही-मन अपने पुण्यों के प्रभाव का बखान करने लगे।

बहुरे लोग रजायसु भयऊ। सुतन्ह समेत नृपति गृहँ गयऊ॥
जहँ तहँ राम ब्याहु सबु गावा। सुजसु पुनीत लोक तिहुँ छावा॥

आज्ञा हुई तब सब लोग (अपने-अपने घरों को) लौटे। राजा दशरथ भी पुत्रों सहित महल में गए। जहाँ-तहाँ सब राम के विवाह की गाथाएँ गा रहे हैं। राम का पवित्र सुयश तीनों लोकों में छा गया।

आए ब्याहि रामु घर जब तें। बसइ अनंद अवध सब तब तें॥
प्रभु बिबाहँ जस भयउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू॥

जब से राम विवाह करके घर आए, तब से सब प्रकार का आनंद अयोध्या में आकर बसने लगा। प्रभु के विवाह में जैसा आनंद-उत्साह हुआ, उसे सरस्वती और सर्पों के राजा शेष भी नहीं कह सकते।

कबिकुल वनु पावन जानी। राम सीय जसु मंगल खानी॥
तेहि ते मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी॥

सीताराम के यश को कविकुल के जीवन को पवित्र करनेवाला और मंगलों की खान जानकर, इससे मैंने अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए कुछ (थोड़ा-सा) बखानकर कहा

है।

छं० - निज गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसीं कह्यो।
रघुबीर चरित अपार बारिधि पारु कबि कौनें लह्यो॥
उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं।
बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुखु पावहीं॥

अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए तुलसी ने राम का यश कहा है। (नहीं तो) रघुनाथ का चरित्र अपार समुद्र है, किस कवि ने उसका पार पाया है? जो लोग यज्ञोपवीत और विवाह के मंगलमय उत्सव का वर्णन आदर के साथ सुनकर गावेंगे, वे लोग जानकी और राम की कृपा से सदा सुख पावेंगे।

सो० - सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु॥ 361॥

सीता और रघुनाथ के विवाह प्रसंग को जो लोग प्रेमपूर्वक गाएँ-सुनेंगे, उनके लिए सदा उत्साह(आनंद)-ही-उत्साह है; क्योंकि राम का यश मंगल का धाम है॥ 361॥

इतिमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने प्रथमः सोपानः समाप्तः।
कलियुग के संपूर्ण पापों को विध्वंस करनेवाले रामचरितेमानस का यह पहला सोपान समाप्त हुआ।

(बालकांड समाप्त)
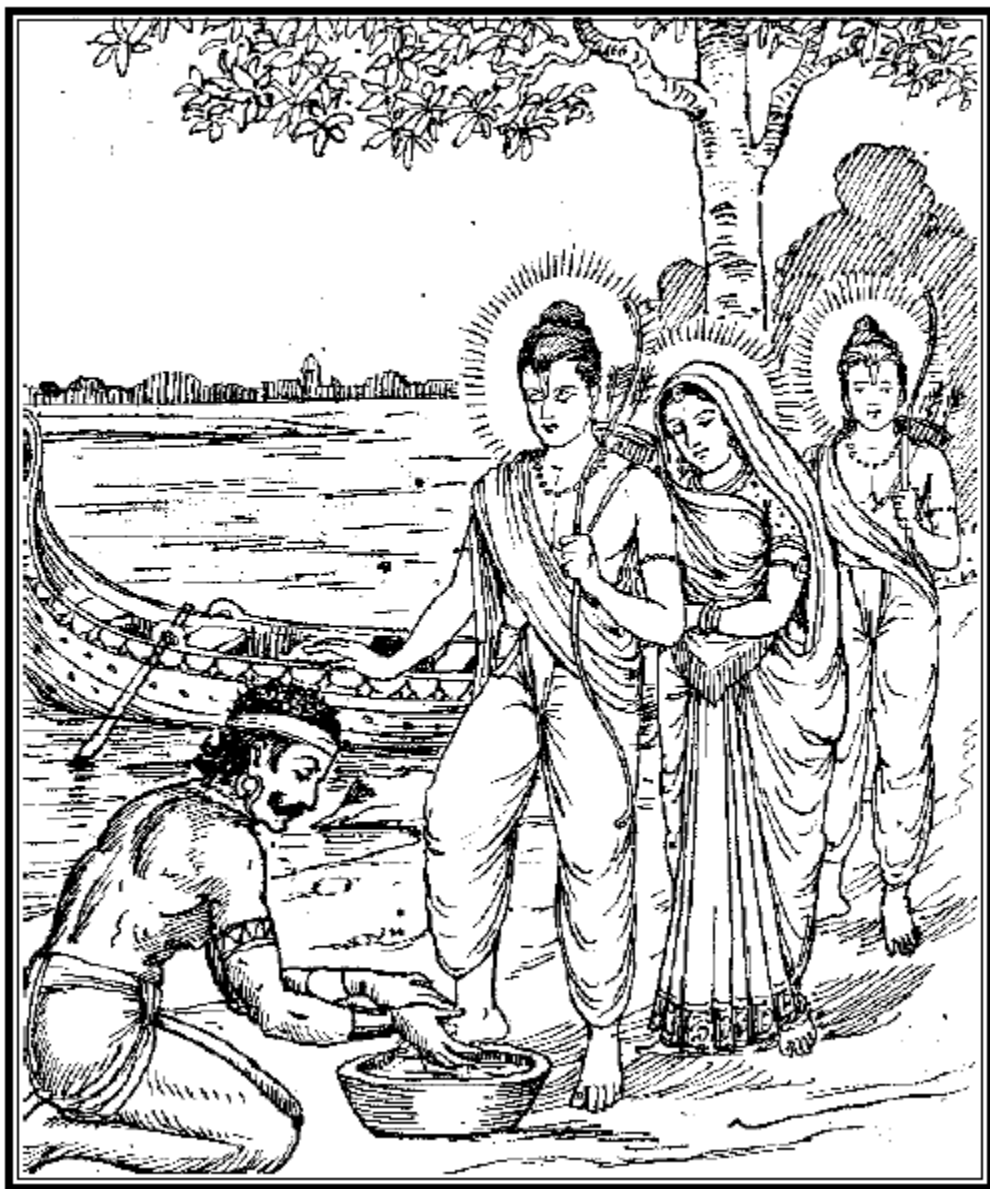
भगवान शंकर जी के मन द्वारा रचित श्रीराम जी के परमपवित्र चरित्र

यस्यांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्री शंकरः पातु माम्॥ 1॥

जिनकी गोद में हिमाचलसुता पार्वती, मस्तक पर गंगा, ललाट पर द्वितीया का चंद्रमा, कंठ में हलाहल विष और वक्षस्थल पर सर्पराज शेष सुशोभित हैं, वे भस्म से विभूषित, देवताओं में श्रेष्ठ, सर्वेश्वर, संहारकर्ता (या भक्तों के पापनाशक), सर्वव्यापक, कल्याण रूप, चंद्रमा के समान शुभ्रवर्ण श्री शंकर सदा मेरी रक्षा करें॥ 1॥

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुज श्री रघुनंदनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा॥ 2॥

रघुकुल को आनंद देनेवाले श्री रघुनंदन के मुखारविंद की जो शोभा राज्याभिषेक से (राज्याभिषेक की बात सुनकर) न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न वनवास के दुःख से मलिन ही हुई, वह (मुखकमल की छवि) मेरे लिए सदा सुंदर मंगलों की देनेवाली हो॥ 2॥

नीलाम्बुजश्यामलकोमलांग सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥ 3॥

नीले कमल के समान श्याम और कोमल जिनके अंग हैं, सीता जिनके वाम-भाग में विराजमान हैं और जिनके हाथों में (क्रमशः) अमोघ बाण और सुंदर धनुष है, उन रघुवंश के स्वामी राम को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 3॥

दो० - श्री गुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि॥

श्री गुरु के चरण कमलों की रज से अपने मनरूपी दर्पण को साफ करके मैं रघुनाथ के उस निर्मल यश का वर्णन करता हूँ, जो चारों फलों को (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को) देनेवाला है।

जब तें रामु ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए॥
भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी॥

जब से राम विवाह करके घर आए, तब से (अयोध्या में) नित्य नए मंगल हो रहे हैं और आनंद के बधावे बज रहे हैं। चौदहों लोकरूपी बड़े भारी पर्वतों पर पुण्यरूपी मेघ सुखरूपी जल बरसा रहे हैं।

रिधि सिधि संपति नदीं सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई॥
मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुंदर सब भाँती॥

ऋद्धि-सिद्धि और संपत्तिरूपी सुहावनी नदियाँ उमड़-उमड़कर अयोध्यारूपी समुद्र में आ मिलीं। नगर के स्त्री-पुरुष अच्छी जाति के मणियों के समूह हैं, जो सब प्रकार से पवित्र, अमूल्य और सुंदर हैं।

कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु एतनिअ बिरंचि करतूती॥
सब बिधि सब पुर लोग सुखारी। रामचंद मुख चंदु निहारी॥

नगर का ऐश्वर्य कुछ कहा नहीं जाता। ऐसा जान पड़ता है, मानो ब्रह्मा की कारीगरी बस इतनी ही है। सब नगर निवासी रामचंद्र के मुखचंद्र को देखकर सब प्रकार से सुखी हैं।

मुदित मातु सब सखीं सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली॥
राम रूपु गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ॥

सब माताएँ और सखी-सहेलियाँ अपनी मनोरथरूपी बेल को फली हुई देखकर आनंदित हैं। राम के रूप, गुण, शील और स्वभाव को देख-सुनकर राजा दशरथ बहुत ही आनंदित होते हैं।

दो० - सब कें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु।
आप अछत जुबराज पद रामहि देउ नरेसु॥ 1॥

सबके हृदय में ऐसी अभिलाषा है और सब महादेव को मनाकर (प्रार्थना करके) कहते हैं कि राजा अपने जीते-जी राम को युवराज पद दे दें॥ 1॥

एक समय सब सहित समाजा। राजसभाँ रघुराजु बिराजा॥

सकल सुकृत मूरति नरनाहू। राम सुजसु सुनि अतिहि उछाहू॥

एक समय रघुकुल के राजा दशरथ अपने सारे समाज सहित राजसभा में विराजमान थे। महाराज समस्त पुण्यों की मूर्ति हैं, उन्हें राम का सुंदर यश सुनकर अत्यंत आनंद हो रहा है।

नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें। लोकप करहिं प्रीति रुख राखें॥

वन तीनि काल जग माहीं। भूरिभाग दसरथ सम नाहीं॥

सब राजा उनकी कृपा चाहते हैं और लोकपालगण उनके रुख को रखते हुए (अनुकूल होकर) प्रीति करते हैं। (पृथ्वी, आकाश, पाताल) तीनों भुवनों में और (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों कालों में दशरथ के समान बड़भागी (और) कोई नहीं है।

मंगलमूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सबु तासू॥
रायँ सुभायँ मुकुरु कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा॥

मंगलों के मूल राम जिनके पुत्र हैं, उनके लिए जो कुछ कहा जाए सब थोड़ा है। राजा ने स्वाभाविक ही हाथ में दर्पण ले लिया और उसमें अपना मुँह देखकर मुकुट को सीधा किया।

श्रवन समीप भए सित केसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा॥
नृप जुबराजु राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू॥

(देखा कि) कानों के पास बाल सफेद हो गए हैं, मानो बुढ़ापा ऐसा उपदेश कर रहा है कि हे राजन! राम को युवराज पद देकर अपने जीवन और जन्म का लाभ क्यों नहीं लेते।

दो० - यह बिचारु उर आनि नृप सुदिनु सुअवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनायउ जाइ॥ 2॥

हृदय में यह विचार लाकर (युवराज पद देने का निश्चय कर) राजा दशरथ ने शुभ दिन और सुंदर समय पाकर, प्रेम से पुलकित शरीर हो आनंदमग्न मन से उसे गुरु वशिष्ठ को जा सुनाया॥ 2॥

कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक। भए राम सब बिधि सब लायक॥

सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे हमार अरि मित्र उदासी॥

राजा ने कहा - हे मुनिराज! (कृपया यह निवेदन) सुनिए। राम अब सब प्रकार से सब योग्य हो गए हैं। सेवक, मंत्री, सब नगर निवासी और जो हमारे शत्रु, मित्र या उदासीन हैं -

सबहि रामु प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही॥
बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु सब रौरिहि नाईं॥

सभी को राम वैसे ही प्रिय हैं, जैसे वे मुझको हैं। (उनके रूप में) आपका आशीर्वाद ही मानो शरीर धारण करके शोभित हो रहा है। हे स्वामी! सारे ब्राह्मण, परिवार सहित आपके ही समान उन पर स्नेह करते हैं।

जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥
मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें। सबु पायउँ रज पावनि पूजें॥

जो लोग गुरु के चरणों की रज को मस्तक पर धारण करते हैं, वे मानो समस्त ऐश्वर्य को अपने वश में कर लेते हैं। इसका अनुभव मेरे समान दूसरे किसी ने नहीं किया। आपकी पवित्र चरण-रज की पूजा करके मैंने सब कुछ पा लिया।

अब अभिलाषु एकु मन मोरें। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कहेउ नरेस रजायसु देहू॥

अब मेरे मन में एक ही अभिलाषा है। हे नाथ! वह भी आप ही के अनुग्रह से पूरी होगी। राजा का सहज प्रेम देखकर मुनि ने प्रसन्न होकर कहा - नरेश! आज्ञा दीजिए। (कहिए, क्या अभिलाषा है?)

दो॰ - राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिप मनि मन अभिलाषु तुम्हार॥ 3॥

हे राजन! आपका नाम और यश ही संपूर्ण मनचाही वस्तुओं को देनेवाला है। हे राजाओं के मुकुटमणि! आपके मन की अभिलाषा फल का अनुगमन करती है (अर्थात आपके इच्छा करने के पहले ही फल उत्पन्न हो जाता है)।

सब बिधि गुरु प्रसन्न जियँ जानी। बोलेउ राउ रहँसि मृदु बानी॥

नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू॥

अपने जी में गुरु को सब प्रकार से प्रसन्न जानकर, हर्षित होकर राजा कोमल वाणी से बोले - हे नाथ! राम को युवराज प्रतिष्ठित कीजिए। कृपा करके कहिए (आज्ञा दीजिए) तो तैयारी की जाए।

मोहि अछत यहु होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन लाहू॥
प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। यह लालसा एक मन माहीं॥

मेरे जीते जी यह आनंद उत्सव हो जाए, (जिससे) सब लोग अपने नेत्रों का लाभ प्राप्त करें। प्रभु (आप) के प्रसाद से शिव ने सब कुछ निबाह दिया (सब इच्छाएँ पूर्ण कर दीं), केवल यही एक लालसा मन में रह गई है।

पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहिं न होइ पाछें पछिताऊ॥
सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाए। मंगल मोद मूल मन भाए॥

(इस लालसा के पूर्ण हो जाने पर) फिर सोच नहीं, शरीर रहे या चला जाए, जिससे मुझे पीछे पछतावा न हो। दशरथ के मंगल और आनंद के मूल सुंदर वचन सुनकर मुनि मन में बहुत प्रसन्न हुए।

सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं॥
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। रामु पुनीत प्रेम अनुगामी॥

(वशिष्ठ ने कहा -) हे राजन! सुनिए, जिनसे विमुख होकर लोग पछताते हैं और जिनके भजन बिना जी की जलन नहीं जाती, वही स्वामी (सर्वलोक महेश्वर) राम आपके पुत्र हुए हैं, जो पवित्र प्रेम के अनुगामी हैं। (राम पवित्र प्रेम के पीछे-पीछे चलनेवाले हैं, इसी से तो प्रेमवश आपके पुत्र हुए हैं।)

दो० - बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु।
सुदिन सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु॥ 4॥

हे राजन! अब देर न कीजिए; शीघ्र सब सामान सजाइए। शुभ दिन और सुंदर मंगल तभी है, जब राम युवराज हो जाएँ (अर्थात उनके अभिषेक के लिए सभी दिन शुभ और मंगलमय हैं)॥ 4॥

मुदित महीपति मंदिर आए। सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए॥
कहि जयजीव सीस तिन्ह नाए। भूप सुमंगल बचन सुनाए॥

राजा आनंदित होकर महल में आए और उन्होंने सेवकों को तथा मंत्री सुमंत्र को बुलवाया। उन लोगों ने 'जयजीव' कहकर सिर नवाए। तब राजा ने सुंदर मंगलमय वचन (राम को युवराज-पद देने का प्रस्ताव) सुनाए।

जौं पाँचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हियँ रामहि टीका॥

(और कहा -) यदि पंचों को (आप सबको) यह मत अच्छा लगे, तो हृदय में हर्षित होकर आप लोग राम का राजतिलक कीजिए।

मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरवँ परेउ जनु पानी॥
बिनती सचिव करहिं कर जोरी। जिअहु जगतपति बरिस करोरी॥

इस प्रिय वाणी को सुनते ही मंत्री ऐसे आनंदित हुए मानो उनके मनोरथरूपी पौधे पर पानी पड़ गया हो। मंत्री हाथ जोड़कर विनती करते हैं कि हे जगत्पति! आप करोड़ों वर्ष जिएँ।

जग मंगल भल काजु बिचारा। बेगिअ नाथ न लाइअ बारा॥
नृपहि मोदु सुनि सचिव सुभाषा। बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा॥

आपने जगतभर का मंगल करनेवाला भला काम सोचा है। हे नाथ! शीघ्रता कीजिए, देर न लगाइए। मंत्रियों की सुंदर वाणी सुनकर राजा को ऐसा आनंद हुआ मानो बढ़ती हुई बेल सुंदर डाली का सहारा पा गई हो।

दो० - कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयसु होइ।
राम राज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ॥ 5॥

राजा ने कहा राम के राज्याभिषेक के लिए मुनिराज वशिष्ठ की जो-जो आज्ञा हो, आप लोग वही सब तुरंत करें॥ 5॥

हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी। आनहु सकल सुतीरथ पानी॥
औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना॥

मुनिराज ने हर्षित होकर कोमल वाणी से कहा कि संपूर्ण श्रेष्ठ तीर्थों का जल ले आओ। फिर उन्होंने औषधि, मूल, फूल, फल और पत्र आदि अनेकों मांगलिक वस्तुओं के नाम गिनकर बताए।

चामर चरम बसन बहु भाँती। रोम पाट पट अगनित जाती॥
मनिगन मंगल बस्तु अनेका। जो जग जोगु भूप अभिषेका॥

चँवर, मृगचर्म, बहुत प्रकार के वस्त्र, असंख्यों जातियों के ऊनी और रेशमी कपड़े, (नाना प्रकार की) मणियाँ (रत्न) तथा और भी बहुत-सी मंगल वस्तुएँ, जो जगत में राज्याभिषेक के योग्य होती हैं (सबको मँगाने की उन्होंने आज्ञा दी)।

बेद बिदित कहि सकल बिधाना। कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना॥
सफल रसाल पूगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा॥

मुनि ने वेदों में कहा हुआ सब विधान बताकर कहा - नगर में बहुत-से मंडप (चँदोवे) सजाओ। फलों समेत आम, सुपारी और केले के वृक्ष नगर की गलियों में चारों ओर रोप दो।

रचहु मंजु मनि चौकें चारू। कहहु बनावन बेगि बजारू॥
पूजहु गनपति गुर कुलदेवा। सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा॥

सुंदर मणियों के मनोहर चौक पुरवाओ और बाजार को तुरंत सजाने के लिए कह दो। गणेश, गुरु और कुलदेवता की पूजा करो और भूदेव ब्राह्मणों की सब प्रकार से सेवा करो।

दो॰ - ध्वज पताक तोरन कलस सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिबर बचन सबु निज निज काजहिं लाग॥ 6॥

ध्वजा, पताका, तोरण, कलश, घोड़े, रथ और हाथी सबको सजाओ। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ के वचनों को शिरोधार्य करके सब लोग अपने-अपने काम में लग गए॥ 6॥

जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा। सो तेहिं काजु प्रथम जनु कीन्हा॥
बिप्र साधु सुर पूजत राजा। करत राम हित मंगल काजा॥

मुनीश्वर ने जिसको जिस काम के लिए आज्ञा दी, उसने वह काम (इतनी शीघ्रता से कर डाला कि) मानो पहले से ही कर रखा था। राजा ब्राह्मण, साधु और देवताओं को पूज रहे

हैं और राम के लिए सब मंगल कार्य कर रहे हैं।

सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥
राम सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए॥

राम के राज्याभिषेक की सुहावनी खबर सुनते ही अवधभर में बड़ी धूम से बधावे बजने लगे। राम और सीता के शरीर में भी शुभ शकुन सूचित हुए। उनके सुंदर मंगल अंग फड़कने लगे।

पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमनु सूचक अहहीं॥
भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥

पुलकित होकर वे दोनों प्रेम सहित एक-दूसरे से कहते हैं कि ये सब शकुन भरत के आने की सूचना देनेवाले हैं। (उनको मामा के घर गए) बहुत दिन हो गए; बहुत ही अवसेर आ रही है (बार-बार उनसे मिलने की मन में आती है) शकुनों से प्रिय (भरत) के मिलने का विश्वास होता है।

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं॥
रामहि बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती॥

और भरत के समान जगत में (हमें) कौन प्यारा है! शकुन का बस, यही फल है, दूसरा नहीं। राम को (अपने) भाई भरत का दिन-रात ऐसा सोच रहता है जैसा कछुए का हृदय अंडों में रहता है।

दो० - एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहँसेउ रनिवासु।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु बारिधि बीचि बिलासु॥ 7॥

इसी समय यह परम मंगल समाचार सुनकर सारा रनिवास हर्षित हो उठा। जैसे चंद्रमा को बढ़ते देखकर समुद्र में लहरों का विलास (आनंद) सुशोभित होता है॥ 7॥

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए॥
प्रेम पुलकि तन मन अनुरागीं। मंगल कलस सजन सब लागीं॥

सबसे पहले (रनिवास में) जाकर जिन्होंने ये वचन (समाचार) सुनाए, उन्होंने बहुत-से आभूषण और वस्त्र पाए। रानियों का शरीर प्रेम से पुलकित हो उठा और मन प्रेम में

मग्न हो गया। वे सब मंगल कलश सजाने लगीं।

चौकें चारु सुमित्राँ पूरी। मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी॥
आनँद मगन राम महतारी। दिए दान बहु बिप्र हँकारी॥

सुमित्रा ने मणियों (रत्नों) के बहुत प्रकार के अत्यंत सुंदर और मनोहर चौक पूरे। आनंद में मग्न हुई राम की माता कौसल्या ने ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत दान दिए।

पूजीं ग्रामदेबि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलिभागा॥
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू॥

उन्होंने ग्रामदेवियों, देवताओं और नागों की पूजा की और फिर बलि भेंट देने को कहा (अर्थात कार्य सिद्ध होने पर फिर पूजा करने की मनौती मानी); और प्रार्थना की कि जिस प्रकार से राम का कल्याण हो, दया करके वही वरदान दीजिए।

गावहिं मंगल कोकिलबयनीं। बिधुबदनीं मृगसावकनयनीं॥

कोयल की-सी मीठी वाणीवाली, चंद्रमा के समान मुखवाली और हिरन के बच्चे के-से नेत्रोंवाली स्त्रियाँ मंगलगान करने लगीं।

दो० - राम राज अभिषेकु सुनि हियँ हरषे नर नारि।
लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि॥ 8॥

राम का राज्याभिषेक सुनकर सभी स्त्री-पुरुष हृदय में हर्षित हो उठे और विधाता को अपने अनुकूल समझकर सब सुंदर मंगल साज सजाने लगे॥ 8॥

तब नरनाहँ बसिष्ठु बोलाए। रामधाम सिख देन पठाए॥
गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायउ माथा॥

तब राजा ने वशिष्ठ को बुलाया और शिक्षा (समयोचित उपदेश) देने के लिए राम के महल में भेजा। गुरु का आगमन सुनते ही रघुनाथ ने दरवाजे पर आकर उनके चरणों में मस्तक नवाया।

सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने॥

गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी॥

आदरपूर्वक अर्घ्य देकर उन्हें घर में लाए और षोडशोपचार से पूजा करके उनका सम्मान किया। फिर सीता सहित उनके चरण स्पर्श किए और कमल के समान दोनों हाथों को जोड़कर राम बोले -

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती॥

यद्यपि सेवक के घर स्वामी का पधारना मंगलों का मूल और अमंगलों का नाश करनेवाला होता है, तथापि हे नाथ! उचित तो यही था कि प्रेमपूर्वक दास को ही कार्य के लिए बुला भेजते; ऐसी ही नीति है।

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यहु गेहू॥
आयसु होइ सो करौं गोसाईं। सेवकु लइह स्वामि सेवकाईं॥

परंतु प्रभु (आप) ने प्रभुता छोड़कर (स्वयं यहाँ पधारकर) जो स्नेह किया, इससे आज यह घर पवित्र हो गया। हे गोसाईं! (अब) जो आज्ञा हो, मैं वही करूँ। स्वामी की सेवा में ही सेवक का लाभ है।

दो० - सुनि सनेह साने बचन मुनि रघुबरहि प्रसंस।
राम कस न तुम्ह कहहु अस हंस बंस अवतंस॥ 9॥

(राम के) प्रेम में सने हुए वचनों को सुनकर मुनि वशिष्ठ ने रघुनाथ की प्रशंसा करते हुए कहा कि हे राम! भला, आप ऐसा क्यों न कहें। आप सूर्यवंश के भूषण जो हैं॥ 9॥

बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहि जुबराजू॥

राम के गुण, शील और स्वभाव का बखान कर, मुनिराज प्रेम से पुलकित होकर बोले - (हे राम!) राजा (दशरथ) ने राज्याभिषेक की तैयारी की है। वे आपको युवराज-पद देना चाहते हैं।

राम करहु सब संजम आजू। जौं बिधि कुसल निबाहै काजू॥

गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ। राम हृदयँ अस बिसमउ भयऊ॥

(इसलिए) हे राम! आज आप (उपवास, हवन आदि विधिपूर्वक) सब संयम कीजिए, जिससे विधाता कुशलपूर्वक इस काम को निबाह दें (सफल कर दें)। गुरु शिक्षा देकर राजा दशरथ के पास चले गए। राम के हृदय में (यह सुनकर) इस बात का खेद हुआ कि -

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥

हम सब भाई एक ही साथ जन्मे; खाना, सोना, लड़कपन के खेल-कूद, कनछेदन, यज्ञोपवीत और विवाह आदि उत्सव सब साथ-साथ ही हुए।

बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई॥

पर इस निर्मल वंश में यही एक अनुचित बात हो रही है कि और सब भाइयों को छोड़कर राज्याभिषेक एक बड़े का ही (मेरा ही) होता है। (तुलसीदास कहते हैं कि) प्रभु राम का यह सुंदर प्रेमपूर्ण पछतावा भक्तों के मन की कुटिलता को हरण करे।

दो० - तेहि अवसर आए लखन मगन प्रेम आनंद।
सनमाने प्रिय बचन कहि रघुकुल कैरव चंद॥ 10॥

उसी समय प्रेम और आनंद में मग्न लक्ष्मण आए। रघुकुलरूपी कुमुद के खिलानेवाले चंद्रमा राम ने प्रिय वचन कहकर उनका सम्मान किया॥ 10॥

बाजहिं बाजने बिबिध बिधाना। पुर प्रमोदु नहिं जाइ बखाना॥
भरत आगमनु सकल मनावहिं। आवहुँ बेगि नयन फलु पावहिं॥

बहुत प्रकार के बाजे बज रहे हैं। नगर के अतिशय आनंद का वर्णन नहीं हो सकता। सब लोग भरत का आगमन मना रहे हैं और कह रहे हैं कि वे भी शीघ्र आएँ और (राज्याभिषेक का उत्सव देखकर) नेत्रों का फल प्राप्त करें।

हाट बाट घर गलीं अथाईं। कहहिं परसपर लोग लोगाईं॥
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा॥

बाजार, रास्ते, घर, गली और चबूतरों पर (जहाँ-तहाँ) पुरुष और स्त्री आपस में यही कहते हैं कि कल वह शुभ लग्न (मुहूर्त) कितने समय है जब विधाता हमारी अभिलाषा पूरी करेंगे।

कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता॥
सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहिं देव कुचाली॥

जब सीता सहित राम सुवर्ण के सिंहासन पर विराजेंगे और हमारा मनचीता होगा (मनःकामना पूरी होगी)। इधर तो सब यह कह रहे हैं कि कल कब होगा, उधर कुचक्री देवता विघ्न मना रहे हैं।

तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा। चोरहि चंदिनि राति न भावा॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहिं बार पाय लै परहीं॥

उन्हें (देवताओं को) अवध के बधावे नहीं सुहाते, जैसे चोर को चाँदनी रात नहीं भाती। सरस्वती को बुलाकर देवता विनय कर रहे हैं और बार-बार उनके पैरों को पकड़कर उन पर गिरते हैं।

दो० - बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु॥ 11॥

(वे कहते हैं -) हे माता! हमारी बड़ी विपत्ति को देखकर आज वही कीजिए जिससे राम राज्य त्यागकर वन को चले जाएँ और देवताओं का सब कार्य सिद्ध हो॥ 11॥

सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती। भइउँ सरोज बिपिन हिमराती॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी॥

देवताओं की विनती सुनकर सरस्वती खड़ी-खड़ी पछता रही हैं कि (हाय!) मैं कमलवन के लिए हेमंत ऋतु की रात हुई। उन्हें इस प्रकार पछताते देखकर देवता विनय करके कहने लगे - हे माता! इसमें आपको जरा भी दोष न लगेगा।

बिसमय हरष रहित रघुराऊ। तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ॥
जीव करम बस सुख दुख भागी। जाइअ अवध देव हित लागी॥

रघुनाथ विषाद और हर्ष से रहित हैं। आप तो राम के सब प्रभाव को जानती ही हैं। जीव अपने कर्मवश ही सुख-दुःख का भागी होता है। अतएव देवताओं के हित के लिए आप

अयोध्या जाइए।

बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबुध मति पोची॥
ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती॥

बार-बार चरण पकड़कर देवताओं ने सरस्वती को संकोच में डाल दिया। तब वह यह विचारकर चलीं कि देवताओं की बुद्धि ओछी है। इनका निवास तो ऊँचा है, पर इनकी करनी नीची है। ये दूसरे का ऐश्वर्य नहीं देख सकते।

आगिल काजु बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी॥
हरषि हृदयँ दसरथ पुर आई। जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई॥

परंतु आगे के काम का विचार करके (राम के वन जाने से राक्षसों का वध होगा, जिससे सारा जगत सुखी हो जाएगा) चतुर कवि (राम के वनवास के चरित्रों का वर्णन करने के लिए) मेरी चाह (कामना) करेंगे। ऐसा विचार कर सरस्वती हृदय में हर्षित होकर दशरथ की पुरी अयोध्या में आईं, मानो दुःसह दुःख देनेवाली कोई ग्रहदशा आई हो।

दो० - नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥ 12॥

मंथरा नाम की कैकेयी की एक मंदबुद्धि दासी थी, उसे अपयश की पिटारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धि को फेरकर चली गईं॥ 12॥

दीख मंथरा नगरु बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलकु सुनि भा उर दाहू॥

मंथरा ने देखा कि नगर सजाया हुआ है। सुंदर मंगलमय बधावे बज रहे हैं। उसने लोगों से पूछा कि कैसा उत्सव है? (उनसे) राम के राजतिलक की बात सुनते ही उसका हृदय जल उठा।

करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवनि बिधि राती॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती॥

वह दुर्बुद्धि, नीच जातिवाली दासी विचार करने लगी कि किस प्रकार से यह काम रात-ही-रात में बिगड़ जाए, जैसे कोई कुटिल भीलनी शहद का छत्ता लगा देखकर घात लगाती है

कि इसको किस तरह से उखाड़ लूँ।

भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी॥
ऊतरु देइ न लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू॥

वह उदास होकर भरत की माता कैकेयी के पास गई। रानी कैकेयी ने हँसकर कहा तू उदास क्यों है? मंथरा कुछ उत्तर नहीं देती, केवल लंबी साँस ले रही है और त्रियाचरित्र करके आँसू ढरका रही है।

हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें॥
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि॥

रानी हँसकर कहने लगी कि तेरे बड़े गाल हैं (तू बहुत बढ़-बढ़कर बोलनेवाली है)। मेरा मन कहता है कि लक्ष्मण ने तुझे कुछ सीख दी है (दंड दिया है)। तब भी वह महापापिनी दासी कुछ भी नहीं बोलती। ऐसी लंबी साँस छोड़ रही है, मानो काली नागिन (फुफकार छोड़ रही) हो।

दो० - सभय रानि कह कहसि किन कुसल रामु महिपालु।
लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु॥ 13॥

तब रानी ने डरकर कहा - अरी! कहती क्यों नहीं? राम, राजा, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न कुशल से तो हैं? यह सुनकर कुबरी मंथरा के हृदय में बड़ी ही पीड़ा हुई॥ 13॥

कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गालु करब केहि कर बलु पाई॥
रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू। जेहि जनेसु देइ जुबराजू॥

(वह कहने लगी -) हे माई! हमें कोई क्यों सीख देगा और मैं किसका बल पाकर गाल करूँगी (बढ़-बढ़कर बोलूँगी)। राम को छोड़कर आज और किसकी कुशल है, जिन्हें राजा युवराज-पद दे रहे हैं।

भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा॥

आज कौसल्या को विधाता बहुत ही दाहिने (अनुकूल) हुए हैं; यह देखकर उनके हृदय में गर्व समाता नहीं। तुम स्वयं जाकर सब शोभा क्यों नहीं देख लेतीं, जिसे देखकर मेरे मन

में क्षोभ हुआ है।

पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। जानति हहु बस नाहु हमारें॥
नीद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥

तुम्हारा पुत्र परदेस में है, तुम्हें कुछ सोच नहीं। जानती हो कि स्वामी हमारे वश में है। तुम्हें तो तोशक-पलँग पर पड़े-पड़े नींद लेना ही बहुत प्यारा लगता है, राजा की कपटभरी चतुराई तुम नहीं देखतीं।

सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी। झुकी रानि अब रहु अरगानी॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी॥

मंथरा के प्रिय वचन सुनकर किंतु उसको मन की मैली जानकर रानी झुककर (डाँटकर) बोली - बस, अब चुप रह घरफोड़ी कहीं की! जो फिर कभी ऐसा कहा तो तेरी जीभ पकड़कर निकलवा लूँगी।

दो॰ - काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनिचेरि कहि भरतमातु मुसुकानि॥ 14॥

कानों, लँगड़ों और कुबड़ों को कुटिल और कुचाली जानना चाहिए। उनमें भी स्त्री और खासकर दासी! इतना कहकर भरत की माता कैकेयी मुसकरा दीं॥ 14॥

प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। सपनेहुँ तो पर कोपु न मोही॥
सुदिनु सुमंगल दायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई॥

(और फिर बोलीं -) हे प्रिय वचन कहनेवाली मंथरा! मैंने तुझको यह सीख दी है (शिक्षा के लिए इतनी बात कही है)। मुझे तुझ पर स्वप्न में भी क्रोध नहीं है। सुंदर मंगलदायक शुभ दिन वही होगा, जिस दिन तेरा कहना सत्य होगा (अर्थात राम का राज्यतिलक होगा)।

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई॥
राम तिलकु जौं साँचेहुँ काली। देउँ मागु मन भावत आली॥

बड़ा भाई स्वामी और छोटा भाई सेवक होता है। यह सूर्यवंश की सुहावनी रीति ही है। यदि सचमुच कल ही राम का तिलक है, तो हे सखी! तेरे मन को अच्छी लगे वही वस्तु

माँग ले, मैं दूँगी।

कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभायँ पिआरी॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी। मैं करि प्रीति परीछा देखी॥

राम को सहज स्वभाव से सब माताएँ कौसल्या के समान ही प्यारी हैं। मुझ पर तो वे विशेष प्रेम करते हैं। मैंने उनकी प्रीति की परीक्षा करके देख ली है।

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिय पूत पुतोहू॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरें॥

जो विधाता कृपा करके जन्म दें तो (यह भी दें कि) राम पुत्र और सीता बहू हों। राम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। उनके तिलक से (उनके तिलक की बात सुनकर) तुझे क्षोभ कैसा?

दो० - भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमउ करसि कारन मोहि सुनाउ॥ 15॥

तुझे भरत की सौगंध है, छल-कपट छोड़कर सच-सच कह। तू हर्ष के समय विषाद कर रही है, मुझे इसका कारण सुना॥ 15॥

एकहिं बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥
फोरै जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा॥

(मंथरा ने कहा -) सारी आशाएँ तो एक ही बार कहने में पूरी हो गईं। अब तो दूसरी जीभ लगाकर कुछ कहूँगी। मेरा अभागा कपाल तो फोड़ने ही योग्य है, जो अच्छी बात कहने पर भी आपको दुःख होता है।

कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई॥
हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहब दिनु राती॥

जो झूठी-सच्ची बातें बनाकर कहते हैं, हे माई! वे ही तुम्हें प्रिय हैं और मैं कड़वी लगती हूँ! अब मैं भी ठकुरसुहाती (मुँह देखी) कहा करूँगी। नहीं तो दिन-रात चुप रहूँगी।

करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा॥

कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी॥

विधाता ने कुरूप बनाकर मुझे परवश कर दिया! (दूसरे को क्या दोष) जो बोया सो काटती हूँ, दिया सो पाती हूँ। कोई भी राजा हो, हमारी क्या हानि है? दासी छोड़कर क्या अब मैं रानी होऊँगी! (अर्थात रानी तो होने से रही)।

जारै जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥
तातें कछुक बात अनुसारी। छमिअ देबि बड़ि चूक हमारी॥

हमारा स्वभाव तो जलाने ही योग्य है। क्योंकि तुम्हारा अहित मुझसे देखा नहीं जाता। इसलिए कुछ बात चलाई थी। किंतु हे देवी! हमारी बड़ी भूल हुई, क्षमा करो।

दो॰ - गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि रानि।
सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि॥ 16॥

आधाररहित (अस्थिर) बुद्धि की स्त्री और देवताओं की माया के वश में होने के कारण रहस्ययुक्त कपटभरे प्रिय वचनों को सुनकर रानी कैकेयी ने बैरिन मंथरा को अपनी सुहृद (अहैतुक हित करनेवाली) जानकर उसका विश्वास कर लिया॥ 16॥

सादर पुनि पुनि पूँछति ओही। सबरी गान मृगी जनु मोही॥
तसि मति फिरी अहइ जसि भाबी। रहसी चेरि घात जनु फाबी॥

बार-बार रानी उससे आदर के साथ पूछ रही हैं, मानो भीलनी के गान से हिरनी मोहित हो गई हो। जैसी भावी (होनहार) है, वैसी ही बुद्धि भी फिर गई। दासी अपना दाँव लगा जानकर हर्षित हुई।

तुम्ह पूँछहु मैं कहत डेराउँ। धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ॥
सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़साती तब बोली॥

तुम पूछती हो, किंतु मैं कहते डरती हूँ। क्योंकि तुमने पहले ही मेरा नाम घरफोड़ी रख दिया है। बहुत तरह से गढ़-छोलकर, खूब विश्वास जमाकर, तब वह अयोध्या की साढ़साती (शनि की साढ़े सात वर्ष की दशारूपी मंथरा) बोली -

प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी॥

रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरें रिपु होहिं पिरीते॥

हे रानी! तुमने जो कहा कि मुझे सीताराम प्रिय हैं और राम को तुम प्रिय हो, सो यह बात सच्ची है। परंतु यह बात पहले थी, वे दिन अब बीत गए। समय फिर जाने पर मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

भानु कमल कुल पोषनिहारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाउ बर बारी॥

सूर्य कमल के कुल का पालन करनेवाला है, पर बिना जल के वही सूर्य उनको (कमलों को) जलाकर भस्म कर देता है। सौत कौसल्या तुम्हारी जड़ उखाड़ना चाहती है। अतः उपायरूपी श्रेष्ठ बाड़ (घेरा) लगाकर उसे रूँध दो (सुरक्षित कर दो)।

दो० - तुम्हहि न सोचु सोहाग बल निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुह मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ॥ 17॥

तुमको अपने सुहाग के (झूठे) बल पर कुछ भी सोच नहीं है; राजा को अपने वश में जानती हो। किंतु राजा मन के मैले और मुँह के मीठे हैं! और आपका सीधा स्वभाव है (आप कपट-चतुराई जानती ही नहीं)॥ 17॥

चतुर गँभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी॥
पठए भरतु भूप ननिअउरें। राम मातु मत जानब रउरें॥

राम की माता (कौसल्या) बड़ी चतुर और गंभीर है (उसकी थाह कोई नहीं पाता)। उसने मौका पाकर अपनी बात बना ली। राजा ने जो भरत को ननिहाल भेज दिया, उसमें आप बस राम की माता की ही सलाह समझिए!

सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें। गरबित भरत मातु बल पी कें॥
सालु तुमर कौसिलहि माई। कपट चतुर नहिं होई जनाई॥

(कौसल्या समझती है कि) और सब सौतें तो मेरी अच्छी तरह सेवा करती हैं, एक भरत की माँ पति के बल पर गर्वित रहती है! इसी से हे माई! कौसल्या को तुम बहुत ही साल (खटक) रही हो। किंतु वह कपट करने में चतुर है; अतः उसके हृदय का भाव जानने में नहीं आता (वह उसे चतुरता से छिपाए रखती है)।

राजहि तुम्ह पर प्रेमु बिसेषी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई॥

राजा का तुम पर विशेष प्रेम है। कौसल्या सौत के स्वभाव से उसे देख नहीं सकती। इसलिए उसने जाल रचकर राजा को अपने वश में करके, (भरत की अनुपस्थिति में) राम के राजतिलक के लिए लग्न निश्चय करा लिया।

यह कुल उचित राम कहुँ टीका। सबहि सोहाइ मोहि सुठि नीका॥
आगिलि बात समुझि डरु मोही। देउ दैउ फिरि सो फलु ओही॥

राम को तिलक हो, यह कुल (रघुकुल) के उचित ही है और यह बात सभी को सुहाती है; और मुझे तो बहुत ही अच्छी लगती है। परंतु मुझे तो आगे की बात विचारकर डर लगता है। दैव उलटकर इसका फल उसी (कौसल्या) को दे।

दो० - रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोधु।
कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु॥ 18॥

इस तरह करोड़ों कुटिलपन की बातें गढ़-छोलकर मंथरा ने कैकेयी को उलटा-सीधा समझा दिया और सैकड़ों सौतों की कहानियाँ इस प्रकार (बना-बनाकर) कहीं जिस प्रकार विरोध बढ़े॥ 18॥

भावी बस प्रतीति उर आई। पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई॥
का पूँछहु तुम्ह अबहुँ न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना॥

होनहार वश कैकेयी के मन में विश्वास हो गया। रानी फिर सौगंध दिलाकर पूछने लगी। (मंथरा बोली -) क्या पूछती हो? अरे, तुमने अब भी नहीं समझा? अपने भले-बुरे को (अथवा मित्र-शत्रु को) तो पशु भी पहचान लेते हैं।

भयउ पाखु दिन सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू॥
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें। सत्य कहें नहिं दोषु हमारें॥

पूरा पखवाड़ा बीत गया सामान सजते और तुमने खबर पाई है आज मुझसे! मैं तुम्हारे राज में खाती-पहनती हूँ, इसलिए सच कहने में मुझे कोई दोष नहीं है।

जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देइहि हमहि सजाई॥

रामहि तिलक कालि जौं भयऊ। तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ॥

यदि मैं कुछ बनाकर झूठ कहती होऊँगी तो विधाता मुझे दंड देगा। यदि कल राम का राजतिलक हो गया तो (समझ रखना कि) तुम्हारे लिए विधाता ने विपत्ति का बीज बो दिया।

रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥

मैं यह बात लकीर खींचकर बलपूर्वक कहती हूँ, हे भामिनी! तुम तो अब दूध की मक्खी हो गई! (जैसे दूध में पड़ी हुई मक्खी को लोग निकालकर फेंक देते हैं, वैसे ही तुम्हें भी लोग घर से निकाल बाहर करेंगे) जो पुत्र सहित (कौसल्या की) चाकरी बजाओगी तो घर में रह सकोगी; (अन्यथा घर में रहने का) दूसरा उपाय नहीं।

दो० - कद्रूँ बिनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलाँ देब।
भरतु बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब॥ 19॥

कद्रू ने विनता को दुःख दिया था, तुम्हें कौसल्या देगी। भरत कारागार का सेवन करेंगे (जेल की हवा खाएँगे) और लक्ष्मण राम के नायब (सहकारी) होंगे॥ 19॥

कैकयसुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरीं दसन जीभ तब चाँपी॥

कैकेयी मंथरा की कड़वी वाणी सुनते ही डरकर सूख गई, कुछ बोल नहीं सकती। शरीर में पसीना हो आया और वह केले की तरह काँपने लगी। तब कुबरी (मंथरा) ने अपनी जीभ दाँतों-तले दबाई (उसे भय हुआ कि कहीं भविष्य का अत्यंत डरावना चित्र सुनकर कैकेयी के हृदय की गति न रुक जाए, जिससे उलटा सारा काम ही बिगड़ जाए)।

कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु धरहु प्रबोधिसि रानी॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली॥

फिर कपट की करोड़ों कहानियाँ कह-कहकर उसने रानी को खूब समझाया कि धीरज रखो! कैकेयी का भाग्य पलट गया, उसे कुचाल प्यारी लगी। वह बगुली को हंसिनी मानकर (वैरिन को हित मानकर) उसकी सराहना करने लगी।

सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी॥
दिन प्रति देखउँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोह बस अपने॥

कैकेयी ने कहा - मंथरा! सुन, तेरी बात सत्य है। मेरी दाहिनी आँख नित्य फड़का करती है। मैं प्रतिदिन रात को बुरे स्वप्न देखती हूँ; किंतु अपने अज्ञानवश तुझसे कहती नहीं।

काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ॥

सखी! क्या करूँ, मेरा तो सीधा स्वभाव है। मैं दायाँ-बायाँ कुछ भी नहीं जानती।

दो॰ - अपनें चलत न आजु लगि अनभल काहुक कीन्ह।
केहिं अघ एकहि बार मोहि दैअँ दुसह दुखु दीन्ह॥ 20॥

अपनी चलते (जहाँ तक मेरा वश चला) मैंने आज तक कभी किसी का बुरा नहीं किया। फिर न जाने किस पाप से दैव ने मुझे एक ही साथ यह दुःसह दुःख दिया॥ 20॥

नैहर जनमु भरब बरु जाई। जिअत न करबि सवति सेवकाई॥
अरि बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही॥

मैं भले ही नैहर जाकर वहीं जीवन बिता दूँगी; पर जीते-जी सौत की चाकरी नहीं करूँगी। दैव जिसको शत्रु के वश में रखकर जिलाता है, उसके लिए तो जीने की अपेक्षा मरना ही अच्छा है।

दीन बचन कह बहुबिधि रानी। सुनि कुबरीं तियमाया ठानी॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना॥

रानी ने बहुत प्रकार के दीन वचन कहे। उन्हें सुनकर कुबरी ने त्रियाचरित्र फैलाया। (वह बोली -) तुम मन में ग्लानि मानकर ऐसा क्यों कह रही हो, तुम्हारा सुख-सुहाग दिन-दिन दूना होगा।

जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका॥
जब तें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नींद न जामिनि॥

जिसने तुम्हारी बुराई चाही है, वही परिणाम में यह (बुराई रूप) फल पाएगी। हे स्वामिनि! मैंने जब से यह कुमत सुना है, तबसे मुझे न तो दिन में कुछ भूख लगती है और न रात

में नींद ही आती है।

पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यह साँची॥
भामिनि करहु त कहौं उपाऊ। है तुम्हरीं सेवा बस राऊ॥

मैंने ज्योतिषियों से पूछा, तो उन्होंने रेखा खींचकर (गणित करके अथवा निश्चयपूर्वक) कहा कि भरत राजा होंगे, यह सत्य बात है। हे भामिनि! तुम करो, तो उपाय मैं बताऊँ। राजा तुम्हारी सेवा के वश में हैं ही।

दो० - परउँ कूप तुअ बचन पर सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि॥ 21॥

(कैकेयी ने कहा -) मैं तेरे कहने से कुएँ में गिर सकती हूँ, पुत्र और पति को भी छोड़ सकती हूँ। जब तू मेरा बड़ा भारी दुःख देखकर कुछ कहती है, तो भला मैं अपने हित के लिए उसे क्यों न करूँगी?॥ 21॥

कुबरीं करि कबुली कैकई। कपट छुरी उर पाहन टेई॥
लखइ ना रानि निकट दुखु कैसें। चरइ हरित तिन बलिपसु जैसें॥

कुबरी ने कैकेयी को (सब तरह से) कबूल करवाकर (अर्थात बलि पशु बनाकर) कपटरूपी छुरी को अपने (कठोर) हृदयरूपी पत्थर पर टेया (उसकी धार को तेज किया)। रानी कैकेयी अपने निकट के (शीघ्र आनेवाले) दुःख को कैसे नहीं देखती, जैसे बलि का पशु हरी-हरी घास चरता है। (पर यह नहीं जानता कि मौत सिर पर नाच रही है)।

सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं॥

मंथरा की बातें सुनने में तो कोमल हैं, पर परिणाम में कठोर (भयानक) हैं। मानो वह शहद में जहर घोलकर पिला रही हो। दासी कहती है - हे स्वामिनि! तुमने मुझको एक कथा कही थी, उसकी याद है कि नहीं?

दुइ बरदान भूप सन थाती। मागहु आजु जुड़ावहु छाती॥
सुतहि राजु रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥

तुम्हारे दो वरदान राजा के पास धरोहर हैं। आज उन्हें राजा से माँगकर अपनी छाती ठंडी

करो। पुत्र को राज्य और राम को वनवास दो और सौत का सारा आनंद तुम ले लो।

भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेहु जेहिं बचनु न टरई॥
होइ अकाजु आजु निसि बीतें। बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें॥

जब राजा राम की सौगंध खा लें, तब वर माँगना, जिससे वचन न टलने पावे। आज की रात बीत गई, तो काम बिगड़ जाएगा। मेरी बात को हृदय से प्रिय (या प्राणों से भी प्यारी) समझना।

दो॰ - बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृहँ जाहु।
काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु॥ 22॥॥

पापिनी मंथरा ने बड़ी बुरी घात लगाकर कहा – कोप भवन में जाओ। सब काम बड़ी सावधानी से बनाना, राजा पर सहसा विश्वास न कर लेना (उनकी बातों में न आ जाना)॥ 22॥

कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी। बार बार बुद्धि बखानी॥
तोहि सम हित न मोर संसारा। बहे जात कई भइसि अधारा॥

कुबरी को रानी ने प्राणों के समान प्रिय समझकर बार-बार उसकी बड़ी बुद्धि का बखान किया और बोली - संसार में मेरा तेरे समान हितकारी और कोई नहीं है। तू मुझ बही जाती हुई के लिए सहारा हुई है।

जौं बिधि पुरब मनोरथु काली। करौं तोहि चख पूतरि आली॥
बहुबिधि चेरिहि आदरु देई। कोपभवन गवनी कैकई॥

यदि विधाता कल मेरा मनोरथ पूरा कर दें तो हे सखी! मैं तुझे आँखों की पुतली बना लूँ। इस प्रकार दासी को बहुत तरह से आदर देकर कैकेयी कोपभवन में चली गई।

बिपति बीजु बरषा रितु चेरी। भुइँ भइ कुमति कैकई केरी॥
पाइ कपट जलु अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा॥

विपत्ति (कलह) बीज है, दासी वर्षा-ऋतु है, कैकेयी की कुबुद्धि (उस बीज के बोने के लिए) जमीन हो गई। उसमें कपटरूपी जल पाकर अंकुर फूट निकला। दोनों वरदान उस अंकुर

के दो पत्ते हैं और अंत में इसके दुःखरूपी फल होगा।

कोप समाजु साजि सबु सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई॥
राउर नगर कोलाहलु होई। यह कुचालि कछु जान न कोई॥

कैकेयी कोप का सब साज सजकर (कोप भवन में) जा सोई। राज्य करती हुई वह अपनी दुष्ट बुद्धि से नष्ट हो गई। राजमहल और नगर में धूम-धाम मच रही है। इस कुचाल को कोई कुछ नहीं जानता।

दो० - प्रमुदित पुर नर नारि सब सजहिं सुमंगलचार।
एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं भीर भूप दरबार॥ 23।

बड़े ही आनंदित होकर नगर के सब स्त्री-पुरुष शुभ मंगलाचार के साज सज रहे हैं। कोई भीतर जाता है, कोई बाहर निकलता है; राजद्वार में बड़ी भीड़ हो रही है॥ 23॥

बाल सखा सुनि हियँ हरषाहीं। मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं॥
प्रभु आदरहिं प्रेमु पहिचानी। पूँछहिं कुसल खेम मृदु बानी॥

राम के बाल सखा राजतिलक का समाचार सुनकर हृदय में हर्षित होते हैं। वे दस-पाँच मिलकर राम के पास जाते हैं। प्रेम पहचानकर प्रभु राम उनका आदर करते हैं और कोमल वाणी से कुशल क्षेम पूछते हैं।

फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई॥
को रघुबीर सरिस संसारा। सीलु सनेहु निबाहनिहारा॥

अपने प्रिय सखा राम की आज्ञा पाकर वे आपस में एक-दूसरे से राम की बड़ाई करते हुए घर लौटते हैं और कहते हैं - संसार में रघुनाथ के समान शील और स्नेह को निबाहनेवाला कौन है?

जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू॥

भगवान हमें यही दें कि हम अपने कर्मवश भ्रमते हुए जिस-जिस योनि में जन्में, वहाँ-वहाँ (उस-उस योनि में) हम तो सेवक हों और सीतापति राम हमारे स्वामी हों और यह नाता

अंत तक निभ जाए॥

अस अभिलाषु नगर सब काहू। कैकयसुता हृदयँ अति दाहू॥
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई॥

नगर में सबकी ऐसी ही अभिलाषा है, परंतु कैकेयी के हृदय में बड़ी जलन हो रही है। कुसंगति पाकर कौन नष्ट नहीं होता। नीच के मत के अनुसार चलने से चतुराई नहीं रह जाती।

दो० - साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकई गेहँ।
गवनु निठुरता निकट किय जनु धरि देह सनेहँ॥ 24॥

संध्या के समय राजा दशरथ आनंद के साथ कैकेयी के महल में गए। मानो साक्षात स्नेह ही शरीर धारण कर निष्ठुरता के पास गया हो!॥ 24॥

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुड़ परइ न पाऊ॥
सुरपति बसइ बाहँबल जाकें। नरपति सकल रहहिं रुख ताकें॥

कोप भवन का नाम सुनकर राजा सहम गए। डर के मारे उनका पाँव आगे को नहीं पड़ता। स्वयं देवराज इंद्र जिनकी भुजाओं के बल पर (राक्षसों से निर्भय होकर) बसता है और संपूर्ण राजा लोग जिनका रुख देखते रहते हैं।

सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई॥
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे॥

वही राजा दशरथ स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गए। कामदेव का प्रताप और महिमा तो देखिए। जो त्रिशूल, वज्र और तलवार आदि की चोट अपने अंगों पर सहनेवाले हैं, वे रतिनाथ कामदेव के पुष्पबाण से मारे गए।

सभय नरेसु प्रिया पहिं गयऊ। देखि दसा दुखु दारुन भयऊ॥
भूमि सयन पटु मोट पुराना। दिए डारि तन भूषन नाना॥

राजा डरते-डरते अपनी प्यारी कैकेयी के पास गए। उसकी दशा देखकर उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ। कैकेयी जमीन पर पड़ी है। पुराना मोटा कपड़ा पहने हुए है। शरीर के नाना

आभूषणों को उतारकर फेंक दिया है।

कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी। अनअहिवातु सूच जनु भाबी॥
जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी। प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी॥

उस दुर्बुद्धि कैकेयी को यह कुवेषता (बुरा वेष) कैसी फब रही है, मानो भावी विधवापन की सूचना दे रही हो। राजा उसके पास जाकर कोमल वाणी से बोले - हे प्राणप्रिये! किसलिए रिसाई (रूठी) हो?

छं० - केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई।
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि बिषम भाँति निहारई॥
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भवतब्यता बस काम कौतुक लेखई॥

'हे रानी! किसलिए रूठी हो?' यह कहकर राजा उसे हाथ से स्पर्श करते हैं तो वह उनके हाथ को (झटककर) हटा देती है और ऐसे देखती है मानो क्रोध में भरी हुई नागिन क्रूर दृष्टि से देख रही हो। दोनों (वरदानों की) वासनाएँ उस नागिन की दो जीभें हैं और दोनों वरदान दाँत हैं; वह काटने के लिए मर्मस्थान देख रही है। तुलसीदास कहते हैं कि राजा दशरथ होनहार के वश में होकर इसे (इस प्रकार हाथ झटकने और नागिन की भाँति देखने को) कामदेव की क्रीड़ा ही समझ रहे हैं।

सो० - बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर॥ 25॥

राजा बारबार कह रहे हैं - हे सुमुखी! हे सुलोचनी! हे कोकिलबयनी! हे गजगामिनी! मुझे अपने क्रोध का कारण तो सुना॥ 25॥

अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा॥
कहु केहि रंकहि करौं नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासौं देसू॥

हे प्रिये! किसने तेरा अनिष्ट किया? किसके दो सिर हैं? यमराज किसको लेना (अपने लोक को ले जाना) चाहते हैं? कह, किस कंगाल को राजा कर दूँ या किस राजा को देश से निकाल दूँ?

सकउँ तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नर नारी॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मनु तव आनन चंद चकोरू॥

तेरा शत्रु अमर (देवता) भी हो, तो मैं उसे भी मार सकता हूँ। बेचारे कीड़े-मकोड़े-सरीखे नर-नारी तो चीज ही क्या हैं। हे सुंदरी! तू तो मेरा स्वभाव जानती ही है कि मेरा मन सदा तेरे मुखरूपी चंद्रमा का चकोर है।

प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें। परिजन प्रजा सकल बस तोरें॥
जौं कछु कहौं कपटु करि तोही। भामिनि राम सपथ सत मोही॥

हे प्रिये! मेरी प्रजा, कुटुंबी, सर्वस्व (संपत्ति), पुत्र, यहाँ तक कि मेरे प्राण भी, ये सब तेरे वश में (अधीन) हैं। यदि मैं तुझसे कुछ कपट करके कहता होऊँ तो हे भामिनी! मुझे सौ बार राम की सौगंध है।

बिहसि मागु मनभावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता॥
घरी कुघरी समुझि जियँ देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुबेषू॥

तू हँसकर (प्रसन्नतापूर्वक) अपनी मनचाही बात माँग ले और अपने मनोहर अंगों को आभूषणों से सजा। मौका-बेमौका तो मन में विचार कर देख। हे प्रिये! जल्दी इस बुरे वेष को त्याग दे।

दो० - यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि बिहसि उठी मतिमंद।
भूषन सजति बिलोकि मृगु मनहुँ किरातिनि फंद॥ 26॥

यह सुनकर और मन में राम की बड़ी सौंगंध को विचारकर मंदबुद्धि कैकेयी हँसती हुई उठी और गहने पहनने लगी, मानो कोई भीलनी मृग को देखकर फंदा तैयार कर रही हो!॥ 26॥

पुनि कह राउ सुहृद जियँ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी॥
भामिनि भयउ तोर मनभावा। घर घर नगर अनंद बधावा॥

अपने जी में कैकेयी को सुहृद जानकर राजा दशरथ प्रेम से पुलकित होकर कोमल और सुंदर वाणी से फिर बोले - हे भामिनि! तेरा मनचीता हो गया। नगर में घर-घर आनंद के बधावे बज रहे हैं।

रामहि देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू॥
दलकि उठेउ सुनि हृदउ कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू॥

मैं कल ही राम को युवराज-पद दे रहा हूँ, इसलिए हे सुनयनी! तू मंगल- साज सज। यह सुनते ही उसका कठोर हृदय दलक उठा (फटने लगा)। मानो पका हुआ बालतोड़ (फोड़ा) छू गया हो।

ऐसिउ पीर बिहसि तेहिं गोई। चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई॥
लखहिं न भूप कपट चतुराई। कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई॥

ऐसी भारी पीड़ा को भी उसने हँसकर छिपा लिया, जैसे चोर की स्त्री प्रकट होकर नहीं रोती (जिसमें उसका भेद न खुल जाए)। राजा उसकी कपट-चतुराई को नहीं देख रहे हैं, क्योंकि वह करोड़ों कुटिलों की शिरोमणि गुरु मंथरा की पढ़ाई हुई है।

जद्यपि नीति निपुन नरनाहू। नारिचरित जलनिधि अवगाहू॥
कपट सनेहु बढ़ाई बहोरी। बोली बिहसि नयन मुहु मोरी॥

यद्यपि राजा नीति में निपुण हैं; परंतु त्रियाचरित्र अथाह समुद्र है। फिर वह कपटयुक्त प्रेम बढ़ाकर (ऊपर से प्रेम दिखाकर) नेत्र और मुँह मोड़कर हँसती हुई बोली -

दो॰ - मागु मागु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु॥ 27॥

हे प्रियतम! आप माँग-माँग तो कहा करते हैं, पर देते-लेते कभी कुछ भी नहीं। आपने दो वरदान देने को कहा था, उनके भी मिलने में संदेह है॥ 27॥

जानेउँ मरमु राउ हँसि कहई। तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई॥
थाती राखि न मागिहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ॥

राजा ने हँसकर कहा कि अब मैं तुम्हारा मर्म (मतलब) समझा। मान करना तुम्हें परम प्रिय है। तुमने उन वरों को थाती (धरोहर) रखकर फिर कभी माँगा ही नहीं और मेरा भूलने का स्वभाव होने से मुझे भी वह प्रसंग याद नहीं रहा।

झूठेहुँ हमहि दोषु जनि देहू। दुइ कै चारि मागि मकु लेहू॥

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥

मुझे झूठ-मूठ दोष मत दो। चाहे दो के बदले चार माँग लो। रघुकुल में सदा से यह रीति चली आई है कि प्राण भले ही चले जाएँ, पर वचन नहीं जाता।

नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए॥

असत्य के समान पापों का समूह भी नहीं है। क्या करोड़ों घुँघचियाँ मिलकर भी कहीं पहाड़ के समान हो सकती हैं? 'सत्य' ही समस्त उत्तम सुकृतों (पुण्यों) की जड़ है। यह बात वेद-पुराणों में प्रसिद्ध है और मनु ने भी यही कहा है।

तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई॥
बाद दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली॥

उस पर मेरे द्वारा राम की शपथ करने में आ गई (मुँह से निकल पड़ी)। रघुनाथ मेरे सुकृत (पुण्य) और स्नेह की सीमा हैं। इस प्रकार बात पक्की कराके दुर्बुद्धि कैकेयी हँसकर बोली, मानो उसने कुमत (बुरे विचार)रूपी दुष्ट पक्षी (बाज) (को छोड़ने के लिए उस) की कुलही (आँखों पर की टोपी) खोल दी।

दो॰ - भूप मनोरथ सुभग बनु सुख सुबिहंग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकरु बाजु॥ 28॥

राजा का मनोरथ सुंदर वन है, सुख सुंदर पक्षियों का समुदाय है। उस पर भीलनी की तरह कैकेयी अपना वचनरूपी भयंकर बाज छोड़ना चाहती है॥ 28॥

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका॥
मागउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥

(वह बोली -) हे प्राण प्यारे! सुनिए, मेरे मन को भानेवाला एक वर तो दीजिए, भरत को राजतिलक; और हे नाथ! दूसरा वर भी मैं हाथ जोड़कर माँगती हूँ, मेरा मनोरथ पूरा कीजिए -

तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी॥

सुनि मृदु बचन भूप हियँ सोकू। ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू॥

तपस्वियों के वेष में विशेष उदासीन भाव से (राज्य और कुटुंब आदि की ओर से भली-भाँति उदासीन होकर विरक्त मुनियों की भाँति) राम चौदह वर्ष तक वन में निवास करें। कैकेयी के कोमल (विनययुक्त) वचन सुनकर राजा के हृदय में ऐसा शोक हुआ जैसे चंद्रमा की किरणों के स्पर्श से चकवा विकल हो जाता है।

गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू॥

राजा सहम गए, उनसे कुछ कहते न बना, मानो बाज वन में बटेर पर झपटा हो। राजा का रंग बिलकुल उड़ गया, मानो ताड़ के पेड़ को बिजली ने मारा हो (जैसे ताड़ के पेड़ पर बिजली गिरने से वह झुलसकर बदरंगा हो जाता है, वही हाल राजा का हुआ)।

माथें हाथ मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन॥
मोर मनोरथु सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला॥

माथे पर हाथ रखकर, दोनों नेत्र बंद करके राजा ऐसे सोच करने लगे, मानो साक्षात सोच ही शरीर धारण कर सोच कर रहा हो। (वे सोचते हैं - हाय!) मेरा मनोरथरूपी कल्पवृक्ष फूल चुका था, परंतु फलते समय कैकेयी ने हथिनी की तरह उसे जड़ समेत उखाड़कर नष्ट कर डाला।

अवध उजारि कीन्हि कैकेईं। दीन्हिसि अचल बिपति कै नेईं॥

कैकेयी ने अयोध्या को उजाड़ कर दिया और विपत्ति की अचल (सुदृढ़) नींव डाल दी।

दो० - कवनें अवसर का भयउ गयउँ नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अबिद्या नास॥ 29॥

किस अवसर पर क्या हो गया! स्त्री का विश्वास करके मैं वैसे ही मारा गया, जैसे योग की सिद्धिरूपी फल मिलने के समय योगी को अविद्या नष्ट कर देती है॥ 29॥

एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा। देखि कुभाँति कुमति मन माखा॥
भरतु कि राउर पूत न होंही। आनेहु मोल बेसाहि कि मोही॥

इस प्रकार राजा मन-ही-मन झीख रहे हैं। राजा का ऐसा बुरा हाल देखकर दुर्बुद्धि कैकेयी मन में बुरी तरह से क्रोधित हुई। (और बोली -) क्या भरत आपके पुत्र नहीं हैं? क्या मुझे आप दाम देकर खरीद लाए हैं? (क्या मैं आपकी विवाहिता पत्नी नहीं हूँ?)।

जो सुनि सरु अस लाग तुम्हारें। काहे न बोलहु बचनु सँभारें॥
देहु उतरु अनु करहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं॥

जो मेरा वचन सुनते ही आपको बाण-सा लगा तो आप सोच-समझ कर बात क्यों नहीं कहते? उत्तर दीजिए - हाँ कीजिए, नहीं तो नाहीं कर दीजिए। आप रघुवंश में सत्य प्रतिज्ञावाले (प्रसिद्ध) हैं!

देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजसु लेहू॥
सत्य सराहि कहेहु बरु देना। जानेहु लेइहि मागि चबेना॥

आपने ही वर देने को कहा था, अब भले ही न दीजिए। सत्य को छोड़ दीजिए और जगत में अपयश लीजिए। सत्य की बड़ी सराहना करके वर देने को कहा था। समझा था कि यह चबेना ही माँग लेगी!

सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा। तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा॥
अति कटु बचन कहति कैकेई। मानहुँ लोन जरे पर देई॥

राजा शिवि, दधीचि और बलि ने जो कुछ कहा, शरीर और धन त्यागकर भी उन्होंने अपने वचन की प्रतिज्ञा को निबाहा। कैकेयी बहुत ही कड़वे वचन कह रही है, मानो जले पर नमक छिड़क रही हो।

दो० - धरम धुरंधर धीर धरि नयन उघारे रायँ।
सिरु धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठायँ॥ 30॥

धर्म की धुरी को धारण करनेवाले राजा दशरथ ने धीरज धरकर नेत्र खोले और सिर धुनकर तथा लंबी साँस लेकर इस प्रकार कहा कि इसने मुझे बड़े कुठौर मारा (ऐसी कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर दी, जिससे बच निकलना कठिन हो गया)॥ 30॥

आगें दीखि जरत सिर भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरीं सान बनाई॥

प्रचंड क्रोध से जलती हुई कैकेयी सामने इस प्रकार दिखाई पड़ी, मानो क्रोधरूपी तलवार नंगी (म्यान से बाहर) खड़ी हो। कुबुद्धि उस तलवार की मूठ है, निष्ठुरता धार है और वह कुबरी (मंथरा)रूपी सान पर धरकर तेज की हुई है।

लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा॥
बोले राउ कठिन करि छाती। बानी सबिनय तासु सोहाती॥

राजा ने देखा कि यह (तलवार) बड़ी ही भयानक और कठोर है (और सोचा -) क्या सत्य ही यह मेरा जीवन लेगी? राजा अपनी छाती कड़ी करके, बहुत ही नम्रता के साथ उसे (कैकेयी को) प्रिय लगनेवाली वाणी बोले -

प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। भीर प्रतीति प्रीति करि हाँती॥
मोरें भरतु रामु दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि संकरु साखी॥

हे प्रिये! हे भीरु! विश्वास और प्रेम को नष्ट करके ऐसे बुरी तरह के वचन कैसे कह रही हो। मेरे तो भरत और राम दो आँखें (अर्थात एक-से) हैं; यह मैं शंकर की साक्षी देकर सत्य कहता हूँ।

अवसि दूतु मैं पठइब प्राता। ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता॥
सुदिन सोधि सबु साजु सजाई। देउँ भरत कहुँ राजु बजाई॥

मैं अवश्य सबेरे ही दूत भेजूँगा। दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) सुनते ही तुरंत आ जाएँगे। अच्छा दिन (शुभ मुहूर्त) शोधवाकर, सब तैयारी करके डंका बजाकर मैं भरत को राज्य दे दूँगा।

दो० - लोभु न रामहि राजु कर बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जियँ करत रहेउँ नृपनीति॥ 31॥

राम को राज्य का लोभ नहीं है और भरत पर उनका बड़ा ही प्रेम है। मैं ही अपने मन में बड़े-छोटे का विचार करके राजनीति का पालन कर रहा था (बड़े को राजतिलक देने जा रहा था)॥ 31॥

राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ। राममातु कछु कहेउ न काऊ॥
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूँछें। तेहि तें परेउ मनोरथु छूछें॥

राम की सौ बार सौगंध खाकर मैं स्वभाव से ही कहता हूँ कि राम की माता (कौसल्या) ने (इस विषय में) मुझसे कभी कुछ नहीं कहा। अवश्य ही मैंने तुमसे बिना पूछे यह सब किया। इसी से मेरा मनोरथ खाली गया।

रिस परिहरु अब मंगल साजू। कछु दिन गएँ भरत जुबराजू॥
एकहि बात मोहि दुखु लागा। बर दूसर असमंजस मागा॥

अब क्रोध छोड़ दे और मंगल साज सज। कुछ ही दिनों बाद भरत युवराज हो जाएँगे। एक ही बात का मुझे दुःख लगा कि तूने दूसरा वरदान बड़ी अड़चन का माँगा।

अजहूँ हृदय जरत तेहि आँचा। रिस परिहास कि साँचेहुँ साँचा॥
कहु तजि रोषु राम अपराधू। सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू॥

उसकी आँच से अब भी मेरा हृदय जल रहा है। यह दिल्लगी में, क्रोध में अथवा सचमुच ही (वास्तव में) सच्चा है? क्रोध को त्यागकर राम का अपराध तो बता। सब कोई तो कहते हैं कि राम बड़े ही साधु हैं।

तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ संदेहू॥
जासु सुभाउ अरिहि अनूकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला॥

तू स्वयं भी राम की सराहना करती और उन पर स्नेह किया करती थी। अब यह सुनकर मुझे संदेह हो गया है (कि तुम्हारी प्रशंसा और स्नेह कहीं झूठे तो न थे?) जिसका स्वभाव शत्रु को भी अनूकल है, वह माता के प्रतिकूल आचरण क्यों कर करेगा?

दो० - प्रिया हास रिस परिहरहि मागु बिचारि बिबेकु।
जेहिं देखौं अब नयन भरि भरत राज अभिषेकु॥ 32॥

हे प्रिये! हँसी और क्रोध छोड़ दे और विवेक (उचित-अनुचित) विचारकर वर माँग, जिससे अब मैं नेत्र भरकर भरत का राज्याभिषेक देख सकूँ॥ 32॥

जिऐ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिऐ दुख दीना॥
कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं। जीवनु मोर राम बिनु नाहीं॥

मछली चाहे बिना पानी के जीती रहे और साँप भी चाहे बिना मणि के दीन-दुःखी होकर जीता रहे। परंतु मैं स्वभाव से ही कहता हूँ, मन में (जरा भी) छल रखकर नहीं कि मेरा

जीवन राम के बिना नहीं है।

समुझि देखु जियँ प्रिया प्रबीना। जीवनु राम दरस आधीना॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहुँ अनल आहुति घृत परई॥

हे चतुर प्रिये! जी में समझ देख, मेरा जीवन राम के दर्शन के अधीन है। राजा के कोमल वचन सुनकर दुर्बुद्धि कैकेयी अत्यंत जल रही है। मानो अग्नि में घी की आहुतियाँ पड़ रही हैं।

कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं। मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं॥

(कैकेयी कहती है -) आप करोड़ों उपाय क्यों न करें, यहाँ आपकी माया (चालबाजी) नहीं लगेगी। या तो मैंने जो माँगा है सो दीजिए, नहीं तो 'नाहीं' करके अपयश लीजिए। मुझे बहुत प्रपंच (बखेड़े) नहीं सुहाते।

रामु साधु तुम्ह साधु सयाने। राममातु भलि सब पहिचाने॥
जस कौसिलाँ मोर भल ताका। तस फलु उन्हहि देउँ करि साका॥

राम साधु हैं, आप सयाने साधु हैं और राम की माता भी भली हैं; मैंने सबको पहचान लिया है। कौसल्या ने मेरा जैसा भला चाहा है, मैं भी साका करके (याद रखने योग्य) उन्हें वैसा ही फल दूँगी।

दो॰ - होत प्रात मुनिबेष धरि जौं न रामु बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन माहिं॥ 33॥

(सबेरा होते ही मुनि का वेष धारण कर यदि राम वन को नहीं जाते, तो हे राजन! मन में (निश्चय) समझ लीजिए कि मेरा मरना होगा और आपका अपयश!॥ 33॥

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई॥

ऐसा कहकर कुटिल कैकेयी उठ खड़ी हुई, मानो क्रोध की नदी उमड़ी हो। वह नदी पापरूपी पहाड़ से प्रकट हुई है और क्रोधरूपी जल से भरी है; (ऐसी भयानक है कि) देखी नहीं

जाती!

दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भवँर कूबरी बचन प्रचारा॥
ढाहत भूपरूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनूकूला॥

दोनों वरदान उस नदी के दो किनारे हैं, कैकेयी का कठिन हठ ही उसकी (तीव्र) धारा है और कुबरी (मंथरा) के वचनों की प्रेरणा ही भँवर है। (वह क्रोधरूपी नदी) राजा दशरथरूपी वृक्ष को जड़-मूल से ढहाती हुई विपत्तिरूपी समुद्र की ओर (सीधी) चली है।

लखी नरेस बात फुरि साँची। तिय मिस मीचु सीस पर नाची॥
गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी। जनि दिनकर कुल होसि कुठारी॥

राजा ने समझ लिया कि बात सचमुच (वास्तव में) सच्ची है, स्त्री के बहाने मेरी मृत्यु ही सिर पर नाच रही है। (तदनंतर राजा ने कैकेयी के) चरण पकड़कर उसे बिठाकर विनती की कि तू सूर्यकुल (रूपी वृक्ष) के लिए कुल्हाड़ी मत बन।

मागु माथ अबहीं देउँ तोही। राम बिरहँ जनि मारसि मोही॥
राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँती। नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती॥

तू मेरा मस्तक माँग ले, मैं तुझे अभी दे दूँ। पर राम के विरह में मुझे मत मार। जिस किसी प्रकार से हो तू राम को रख ले। नहीं तो जन्मभर तेरी छाती जलेगी।

दो॰ - देखी ब्याधि असाध नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ॥ 34॥

राजा ने देखा कि रोग असाध्य है, तब वे अत्यंत आर्तवाणी से 'हा राम! हा राम! हा रघुनाथ!' कहते हुए सिर पीटकर जमीन पर गिर पड़े॥ 34॥

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता॥
कंठु सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीनु दीन बिनु पानी॥

राजा व्याकुल हो गए, उनका सारा शरीर शिथिल पड़ गया, मानो हथिनी ने कल्पवृक्ष को उखाड़ फेंका हो। कंठ सूख गया, मुख से बात नहीं निकलती, मानो पानी के बिना पहिना नामक मछली तड़प रही हो।

पुनि कह कटु कठोर कैकेयी। मनहुँ घाय महुँ माहुर देई॥
जौं अंतहुँ अस करतबु रहेऊ। मागु मागु तुम्ह केहिं बल कहेऊ॥

कैकेयी फिर कड़वे और कठोर वचन बोली, मानो घाव में जहर भर रही हो। (कहती है -) जो अंत में ऐसा ही करना था, तो आपने 'माँग, माँग' किस बल पर कहा था?

दुइ कि होइ एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई॥

हे राजा! ठहाका मारकर हँसना और गाल फुलाना - क्या ये दोनों एक साथ हो सकते हैं? दानी भी कहाना और कंजूसी भी करना। क्या रजपूती में क्षेम-कुशल भी रह सकती है? (लड़ाई में बहादुरी भी दिखाएँ और कहीं चोट भी न लगे!)

छाड़हु बचनु कि धीरजु धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू॥
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी। सत्यसंध कहुँ तृन सम बरनी॥

या तो वचन (प्रतिज्ञा) ही छोड़ दीजिए या धैर्य धारण कीजिए। यों असहाय स्त्री की भाँति रोइए-पीटिए नहीं। सत्यव्रती के लिए तो शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, धन और पृथ्वी - सब तिनके के बराबर कहे गए हैं।

दो० - मरम बचन सुनि राउ कह कहु कछु दोषु न तोर।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर॥ 35॥

कैकेयी के मर्मभेदी वचन सुनकर राजा ने कहा कि तू जो चाहे कह, तेरा कुछ भी दोष नहीं है। मेरा काल तुझे मानो पिशाच होकर लग गया है, वही तुझसे यह सब कहला रहा है॥ 35॥

चहत न भरत भूपतहि भोरें। बिधि बस कुमति बसी जिय तोरें॥
सो सबु मोर पाप परिनामू। भयउ कुठाहर जेहिं बिधि बामू॥

भरत तो भूलकर भी राजपद नहीं चाहते। होनहारवश तेरे ही जी में कुमति आ बसी। यह सब मेरे पापों का परिणाम है, जिससे कुसमय (बेमौके) में विधाता विपरीत हो गया।

सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुन धाम राम प्रभुताई॥

करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई॥

(तेरी उजाड़ी हुई) यह सुंदर अयोध्या फिर भली-भाँति बसेगी और समस्त गुणों के धाम राम की प्रभुता भी होगी। सब भाई उनकी सेवा करेंगे और तीनों लोकों में राम की बड़ाई होगी।

तोर कलंकु मोर पछिताऊ। मुएहुँ न मिटिहि न जाइहि काऊ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठु मुहु गोई॥

केवल तेरा कलंक और मेरा पछतावा मरने पर भी नहीं मिटेगा, यह किसी तरह नहीं जाएगा। अब तुझे जो अच्छा लगे वही कर। मुँह छिपाकर मेरी आँखों की ओट जा बैठ (अर्थात मेरे सामने से हट जा, मुझे मुँह न दिखा)।

जब लगि जिऔं कहउँ कर जोरी। तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी॥
फिरि पछितैहसि अंत अभागी। मारसि गाइ नहारू लागी॥

मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जब तक मैं जीता रहूँ, तब तक फिर कुछ न कहना (अर्थात मुझसे न बोलना)। अरी अभागिनी! फिर तू अंत में पछताएगी जो तू नहारू (ताँत) के लिए गाय को मार रही है।

दो० - परेउ राउ कहि कोटि बिधि काहे करसि निदानु।
कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसानु॥ 36॥

राजा करोड़ों प्रकार से (बहुत तरह से) समझाकर (और यह कहकर) कि तू क्यों सर्वनाश कर रही है, पृथ्वी पर गिर पड़े। पर कपट करने में चतुर कैकेयी कुछ बोलती नहीं, मानो (मौन होकर) मसान जगा रही हो (श्मशान में बैठकर प्रेतमंत्र सिद्ध कर रही हो)॥ 36॥

राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू॥
हृदयँ मनाव भोरु जनि होई। रामहि जाइ कहै जनि कोई॥

राजा 'राम-राम' रट रहे हैं और ऐसे व्याकुल हैं, जैसे कोई पक्षी पंख के बिना बेहाल हो। वे अपने हृदय में मनाते हैं कि सबेरा न हो और कोई जाकर राम से यह बात न कहे।

उदउ करहु जनि रबि रघुकुल गुर। अवध बिलोकि सूल होइहि उर॥

भूप प्रीति कैकइ कठिनाई। उभय अवधि बिधि रची बनाई॥

हे रघुकुल के गुरु (बड़ेरे मूलपुरुष) सूर्य भगवान! आप अपना उदय न करें। अयोध्या को (बेहाल) देखकर आपके हृदय में बड़ी पीड़ा होगी। राजा की प्रीति और कैकेयी की निष्ठुरता दोनों को ब्रह्मा ने सीमा तक रचकर बनाया है (अर्थात राजा प्रेम की सीमा है और कैकेयी निष्ठुरता की)।

बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा। बीना बेनु संख धुनि द्वारा॥
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक॥

विलाप करते-करते ही राजा को सबेरा हो गया! राज द्वार पर वीणा, बाँसुरी और शंख की ध्वनि होने लगी। भाट लोग विरुदावली पढ़ रहे हैं और गवैए गुणों का गान कर रहे हैं। सुनने पर राजा को वे बाण-जैसे लगते हैं।

मंगल सकल सोहाहिं न कैसें। सहगामिनिहि बिभूषन जैसें॥
तेहि निसि नीद परी नहिं काहू। राम दरस लालसा उछाहू॥

राजा को ये सब मंगल-साज कैसे नहीं सुहा रहे हैं, जैसे पति के साथ सती होनेवाली स्त्री को आभूषण! राम के दर्शन की लालसा और उत्साह के कारण उस रात्रि में किसी को भी नींद नहीं आई।

दो० - द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रबि देखि।
जागेउ अजहुँ न अवधपति कारनु कवनु बिसेषि॥ 37॥

राजद्वार पर मंत्रियों और सेवकों की भीड़ लगी है। वे सब सूर्य को उदय हुआ देखकर कहते हैं कि ऐसा कौन-सा विशेष कारण है कि अवधपति दशरथ अभी तक नहीं जागे?॥ 37॥

पछिले पहर भूपु नित जागा। आजु हमहि बड़ अचरजु लागा॥
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। कीजिअ काजु रजायसु पाई॥

राजा नित्य ही रात के पिछले पहर जाग जाया करते हैं, किंतु आज हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है। हे सुमंत्र! जाओ, जाकर राजा को जगाओ। उनकी आज्ञा पाकर हम सब काम करें।

गए सुमंत्रु तब राउर माहीं। देखि भयावन जात डेराहीं॥

धाइ खाई जनु जाइ न हेरा। मानहुँ बिपति बिषाद बसेरा॥

तब सुमंत्र रावले (राजमहल) में गए, पर महल को भयानक देखकर वे जाते हुए डर रहे हैं। (ऐसा लगता है) मानो दौड़कर काट खाएगा, उसकी ओर देखा भी नहीं जाता। मानो विपत्ति और विषाद ने वहाँ डेरा डाल रखा हो।

पूछें कोउ न ऊतरु देई। गए जेहिं भवन भूप कैकेई॥
कहि जयजीव बैठ सिरु नाई। देखि भूप गति गयउ सुखाई॥

पूछने पर कोई जवाब नहीं देता; वे उस महल में गए, जहाँ राजा और कैकेयी थे। 'जय जीव' कहकर सिर नवाकर (वंदना करके) बैठे और राजा की दशा देखकर तो वे सूख ही गए।

सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहु कमल मूलु परिहरेऊ॥
सचिउ सभीत सकइ नहिं पूँछी। बोली असुभ भरी सुभ छूँछी॥

(देखा कि -) राजा सोच से व्याकुल हैं, चेहरे का रंग उड़ गया है। जमीन पर ऐसे पड़े हैं, मानो कमल जड़ छोड़कर (जड़ से उखड़कर) (मुर्झाया) पड़ा हो। मंत्री मारे डर के कुछ पूछ नहीं सकते। तब अशुभ से भरी हुई और शुभ से विहीन कैकेयी बोली -

दो० - परी न राजहि नीद निसि हेतु जान जगदीसु।
रामु रामु रटि भोरु किय कहइ ना मरमु महीसु॥ 38॥

राजा को रातभर नींद नहीं आई, इसका कारण जगदीश्वर ही जानें। इन्होंने 'राम-राम' रटकर सबेरा कर दिया, परंतु इसका भेद राजा कुछ भी नहीं बतलाते॥ 38॥

आनहु रामहि बेगि बोलाई। समाचार तब पूँछेहु आई॥
चलेउ सुमंत्रु राय रुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी॥

तुम जल्दी राम को बुला लाओ। तब आकर समाचार पूछना। राजा का रुख जानकर सुमंत्र चले, समझ गए कि रानी ने कुछ कुचाल की है।

सोच बिकल मग परइ न पाऊ। रामहि बोलि कहिहि का राऊ॥
उर धरि धीरजु गयउ दुआरें। पूँछहिं सकल देखि मनु मारें॥

सुमंत्र सोच से व्याकुल हैं, रास्ते पर पैर नहीं पड़ता (आगे बढ़ा नहीं जाता), (सोचते हैं -) राम को बुलाकर राजा क्या कहेंगे? किसी तरह हृदय में धीरज धरकर वे द्वार पर गए। सब लोग उनको मन मारे (उदास) देखकर पूछने लगे।

समाधानु करि सो सबही का। गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका॥
राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पिता सम लेखा॥

सब लोगों का समाधान करके (किसी तरह समझा-बुझाकर) सुमंत्र वहाँ गए, जहाँ सूर्यकुल के तिलक राम थे। राम ने सुमंत्र को आते देखा तो पिता के समान समझकर उनका आदर किया।

निरखि बदनु कहि भूप रजाई। रघुकुलदीपहि चलेउ लेवाई॥
रामु कुभाँति सचिव सँग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं॥

राम के मुख को देखकर और राजा की आज्ञा सुनाकर वे रघुकुल के दीपक राम को (अपने साथ) लिवा चले। राम मंत्री के साथ बुरी तरह से (बिना किसी लवाजमे के) जा रहे हैं, यह देखकर लोग जहाँ-तहाँ विषाद कर रहे हैं।

दो॰ - जाइ दीख रघुबंसमनि नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहुँ बृद्ध गजराजु॥ 39॥

रघुवंशमणि राम ने जाकर देखा कि राजा अत्यंत ही बुरी हालत में पड़े हैं, मानो सिंहनी को देखकर कोई बूढ़ा गजराज सहमकर गिर पड़ा हो॥ 39॥

सूखहिं अधर जरइ सबु अंगू। मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू॥
सरुष समीप दीखि कैकेई। मानहुँ मीचु घरीं गनि लेई॥

राजा के ओठ सूख रहे हैं और सारा शरीर जल रहा है, मानो मणि के बिना साँप दुःखी हो रहा हो। पास ही क्रोध से भरी कैकेयी को देखा, मानो (साक्षात) मृत्यु ही बैठी (राजा के जीवन की अंतिम) घड़ियाँ गिन रही हो।

करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूँछी मधुर बचन महतारी॥

राम का स्वभाव कोमल और करुणामय है। उन्होंने (अपने जीवन में) पहली बार यह दुःख

देखा; इससे पहले कभी उन्होंने दुःख सुना भी न था। तो भी समय का विचार करके हृदय में धीरज धरकर उन्होंने मीठे वचनों से माता कैकेयी से पूछा -

मोहि कहु मातु तात दुख कारन। करिअ जतन जेहिं होइ निवारन॥
सुनहु राम सबु कारनु एहू। राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू॥

हे माता! मुझे पिता के दुःख का कारण कहो ताकि उसका निवारण हो (दुःख दूर हो) वह यत्न किया जाए। (कैकेयी ने कहा -) हे राम! सुनो, सारा कारण यही है कि राजा का तुम पर बहुत स्नेह है।

देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। मागेउँ जो कछु मोहि सोहाना॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू॥

इन्होंने मुझे दो वरदान देने को कहा था। मुझे जो कुछ अच्छा लगा, वही मैंने माँगा। उसे सुनकर राजा के हृदय में सोच हो गया; क्योंकि ये तुम्हारा संकोच नहीं छोड़ सकते।

दो० - सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु॥ 40॥

इधर तो पुत्र का स्नेह है और उधर वचन (प्रतिज्ञा); राजा इसी धर्मसंकट में पड़ गए हैं। यदि तुम कर सकते हो, तो राजा की आज्ञा शिरोधार्य करो और इनके कठिन क्लेश को मिटाओ॥ 40॥

निधरक बैठि कहइ कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी॥
जीभ कमान बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना॥

कैकेयी बेधड़क बैठी ऐसी कड़वी वाणी कह रही है जिसे सुनकर स्वयं कठोरता भी अत्यंत व्याकुल हो उठी। जीभ धनुष है, वचन बहुत-से तीर हैं और मानो राजा ही कोमल निशाने के समान हैं।

जनु कठोरपनु धरें सरीरू। सिखइ धनुषबिद्या बर बीरू॥
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई॥

(इस सारे साज-समान के साथ) मानो स्वयं कठोरपन श्रेष्ठ वीर का शरीर धारण करके धनुष विद्या सीख रहा है। रघुनाथ को सब हाल सुनाकर वह ऐसे बैठी है, मानो निष्ठुरता

ही शरीर धारण किए हुए हो।

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनंद निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन॥

सूर्यकुल के सूर्य, स्वाभाविक ही आनंदनिधान राम मन में मुसकराकर सब दूषणों से रहित ऐसे कोमल और सुंदर वचन बोले जो मानो वाणी के भूषण ही थे -

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

हे माता! सुनो, वही पुत्र बड़भागी है, जो पिता-माता के वचनों का अनुरागी (पालन करनेवाला) है। (आज्ञा-पालन द्वारा) माता-पिता को संतुष्ट करनेवाला पुत्र, हे जननी! सारे संसार में दुर्लभ है।

दो० - मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥ 41॥

वन में विशेष रूप से मुनियों का मिलाप होगा, जिसमें मेरा सभी प्रकार से कल्याण है। उसमें भी, फिर पिता की आज्ञा और हे जननी! तुम्हारी सम्मति है,॥ 41॥

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा॥

और प्राणप्रिय भरत राज्य पाएँगे। (इन सभी बातों को देखकर यह प्रतीत होता है कि) आज विधाता सब प्रकार से मुझे सम्मुख हैं (मेरे अनुकूल हैं)। यदि ऐसे काम के लिए भी मैं वन को न जाऊँ तो मूर्खों के समाज में सबसे पहले मेरी गिनती करनी चाहिए।

सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिं बिषु मागी॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मन माहीं॥

जो कल्पवृक्ष को छोड़कर रेंड की सेवा करते हैं और अमृत त्याग कर विष माँग लेते हैं, हे माता! तुम मन में विचार कर देखो, वे (महामूर्ख) भी ऐसा मौका पाकर कभी न चूकेंगे।

अंब एक दुखु मोहि बिसेषी। निपट बिकल नरनायकु देखी॥

थोरिहिं बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी॥

हे माता! मुझे एक ही दुःख विशेष रूप से हो रहा है, वह महाराज को अत्यंत व्याकुल देखकर। इस थोड़ी-सी बात के लिए ही पिता को इतना भारी दुःख हो, हे माता! मुझे इस बात पर विश्वास नहीं होता।

राउ धीर गुन उदधि अगाधू। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू॥
जातें मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ॥

क्योंकि महाराज तो बड़े ही धीर और गुणों के अथाह समुद्र हैं। अवश्य ही मुझसे कोई बड़ा अपराध हो गया है, जिसके कारण महाराज मुझसे कुछ नहीं कहते। तुम्हें मेरी सौगंध है, माता! तुम सच-सच कहो।

दो० - सहज सकल रघुबर बचन कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समान॥ 42॥

रघुकुल में श्रेष्ठ राम के स्वभाव से ही सीधे वचनों को दुर्बुद्धि कैकेयी टेढ़ा ही करके जान रही है; जैसे यद्यपि जल समान ही होता है, परंतु जोंक उसमें टेढ़ी चाल से ही चलती है॥ 42॥

रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट सनेहु जनाई॥
सपथ तुम्हार भरत कै आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना॥

रानी कैकेयी राम का रुख पाकर हर्षित हो गई और कपटपूर्ण स्नेह दिखाकर बोली - तुम्हारी शपथ और भरत की सौगंध है, मुझे राजा के दुःख का दूसरा कुछ भी कारण विदित नहीं है।

तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता। जननी जनक बंधु सुखदाता॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू। तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू॥

हे तात! तुम अपराध के योग्य नहीं हो (तुमसे माता-पिता का अपराध बन पड़े यह संभव नहीं)। तुम तो माता-पिता और भाइयों को सुख देनेवाले हो। हे राम! तुम जो कुछ कह रहे हो, सब सत्य है। तुम पिता-माता के वचनों (के पालन) में तत्पर हो।

पितहि बुझाइ कहहु बलि सोई। चौथेंपन जेहिं अजसु न होई॥

तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहिं दीन्हे। उचित न तासु निरादरु कीन्हे॥

मैं तुम्हारी बलिहारी जाती हूँ, तुम पिता को समझाकर वही बात कहो, जिससे चौथेपन (बुढ़ापे) में इनका अपयश न हो। जिस पुण्य ने इनको तुम जैसे पुत्र दिए हैं, उसका निरादर करना उचित नहीं।

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगहँ गयादिक तीरथ जैसे॥
रामहि मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए॥

कैकेयी के बुरे मुख में ये शुभ वचन कैसे लगते हैं जैसे मगध देश में गया आदिक तीर्थ! राम को माता कैकेयी के सब वचन ऐसे अच्छे लगे जैसे गंगा में जाकर (अच्छे-बुरे सभी प्रकार के) जल शुभ, सुंदर हो जाते हैं।

दो० - गइ मुरुछा रामहि सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव राम आगमन कहि बिनय समय सम कीन्ह॥ 43॥

इतने में राजा की मूर्छा दूर हुई, उन्होंने राम का स्मरण करके ('राम! राम!' कहकर) फिरकर करवट ली। मंत्री ने राम का आना कहकर समयानुकूल विनती की॥ 43॥

अवनिप अकनि रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे॥
सचिवँ सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे॥

जब राजा ने सुना कि राम पधारे हैं तो उन्होंने धीरज धरके नेत्र खोले। मंत्री ने संभालकर राजा को बैठाया। राजा ने राम को अपने चरणों में पड़ते (प्रणाम करते) देखा।

लिए सनेह बिकल उर लाई। गै मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई॥
रामहि चितइ रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारि प्रबाहू॥

स्नेह से विकल राजा ने राम को हृदय से लगा लिया। मानो साँप ने अपनी खोई हुई मणि फिर से पा ली हो। राजा दशरथ राम को देखते ही रह गए। उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली।

सोक बिबस कछु कहै न पारा। हृदयँ लगावत बारहिं बारा॥
बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं॥

शोक के विशेष वश होने के कारण राजा कुछ कह नहीं सकते। वे बार-बार राम को हृदय से लगाते हैं और मन में ब्रह्मा को मनाते हैं कि जिससे राघुनाथ वन को न जाएँ।

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी॥
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी॥

फिर महादेव का स्मरण करके उनसे निहोरा करते हुए कहते हैं - हे सदाशिव! आप मेरी विनती सुनिए। आप आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होनेवाले) और अवढरदानी (मुँहमाँगा दे डालनेवाले) हैं। अतः मुझे अपना दीन सेवक जानकर मेरे दुःख को दूर कीजिए।

दो० - तुम्ह प्रेरक सब के हृदयँ सो मति रामहि देहु।
बचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सीलु सनेहु॥ 44॥

आप प्रेरक रूप से सबके हृदय में हैं। आप राम को ऐसी बुद्धि दीजिए, जिससे वे मेरे वचन को त्यागकर और शील-स्नेह को छोड़कर घर ही में रह जाएँ॥ 44॥

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुरु जाऊ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोही। लोचन ओट रामु जनि होंही॥

जगत में चाहे अपयश हो और सुयश नष्ट हो जाए। चाहे (नया पाप होने से) मैं नरक में गिरूँ, अथवा स्वर्ग चला जाए (पूर्व पुण्यों के फलस्वरूप मिलनेवाला स्वर्ग चाहे मुझे न मिले)। और भी सब प्रकार के दुःसह दुःख आप मुझसे सहन करा लें। पर राम मेरी आँखों की ओट न हों।

अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। पीपर पात सरिस मनु डोला॥
रघुपति पितहि प्रेमबस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥

राजा मन-ही-मन इस प्रकार विचार कर रहे हैं, बोलते नहीं। उनका मन पीपल के पत्ते की तरह डोल रहा है। रघुनाथ ने पिता को प्रेम के वश जानकर और यह अनुमान करके कि माता फिर कुछ कहेगी (तो पिता को दुःख होगा) -

देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी॥
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई। अनुचितु छमब जानि लरिकाई॥

देश, काल और अवसर के अनुकूल विचार कर विनीत वचन कहे - हे तात! मैं कुछ कहता

हूँ, यह ढिठाई करता हूँ। इस अनौचित्य को मेरी बाल्यावस्था समझकर क्षमा कीजिएगा।

अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा॥
देखि गोसाइँहि पूँछिउँ माता। सुनि प्रसंगु भए सीतल गाता॥

इस अत्यंत तुच्छ बात के लिए आपने इतना दुःख पाया। मुझे किसी ने पहले कहकर यह बात नहीं जनाई। स्वामी (आप) को इस दशा में देखकर मैंने माता से पूछा। उनसे सारा प्रसंग सुनकर मेरे सब अंग शीतल हो गए (मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई)।

दो॰ - मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात॥ 45॥

हे पिता! इस मंगल के समय स्नेहवश होकर सोच करना छोड़ दीजिए और हृदय में प्रसन्न होकर मुझे आज्ञा दीजिए। यह कहते हुए प्रभु राम सर्वांग पुलकित हो गए॥ 45॥

धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें॥

(उन्होंने फिर कहा -) इस पृथ्वीतल पर उसका जन्म धन्य है, जिसके चरित्र सुनकर पिता को परम आनंद हो। जिसको माता-पिता प्राणों के समान प्रिय हैं, चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) उसके करतलगत (मुट्ठी में) रहते हैं।

आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउँ बेगिहिं होउ रजाई॥
बिदा मातु सन आवउँ मागी। चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी॥

आपकी आज्ञा पालन करके और जन्म का फल पाकर मैं जल्दी ही लौट आऊँगा, अतः कृपया आज्ञा दीजिए। माता से विदा माँग आता हूँ। फिर आपके पैर लगकर (प्रणाम करके) वन को चलूँगा।

अस कहि राम गवनु तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा॥
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥

ऐसा कहकर तब राम वहाँ से चल दिए। राजा ने शोकवश कोई उत्तर नहीं दिया। वह बहुत ही तीखी (अप्रिय) बात नगर भर में इतनी जल्दी फैल गई मानो डंक मारते ही

बिच्छू का विष सारे शरीर में चढ़ गया हो।

सुनि भए बिकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई॥

इस बात को सुनकर सब स्त्री-पुरुष ऐसे व्याकुल हो गए जैसे दावानल (वन में आग लगी) देखकर बेल और वृक्ष मुरझा जाते हैं। जो जहाँ सुनता है वह वहीं सिर धुनने (पीटने) लगता है! बड़ा विषाद है, किसी को धीरज नहीं बँधता।

दो॰ - मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदयँ समाइ।
मनहुँ करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ॥ 46॥

सबके मुख सूखे जाते हैं, आँखों से आँसू बहते हैं, शोक हृदय में नहीं समाता। मानो करुणा रस की सेना अवध पर डंका बजाकर उतर आई हो॥ 46॥

मिलेहि माझ बिधि बात बेगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी॥
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ॥

सब मेल मिल गए थे (सब संयोग ठीक हो गए थे), इतने में ही विधाता ने बात बिगाड़ दी! जहाँ-तहाँ लोग कैकेयी को गाली दे रहे हैं! इस पापिन को क्या सूझ पड़ा जो इसने छाये घर पर आग रख दी।

निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा बिषु चाहत चीखा॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंस बेनु बन आगी॥

यह अपने हाथ से अपनी आँखों को निकालकर (आँखों के बिना ही) देखना चाहती है, और अमृत फेंककर विष चखना चाहती है! यह कुटिल, कठोर, दुर्बुद्धि और अभागिनी कैकेयी रघुवंशरूपी बाँस के वन के लिए अग्नि हो गई!

पालव बैठि पेड़ एहिं काटा। सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा॥
सदा रामु एहि प्रान समाना। कारन कवन कुटिलपनु ठाना॥

पत्ते पर बैठकर इसने पेड़ को काट डाला। सुख में शोक का ठाट ठटकर रख दिया! राम इसे सदा प्राणों के समान प्रिय थे। फिर भी न जाने किस कारण इसने यह कुटिलता

ठानी।

सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ॥
निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई॥

कवि सत्य ही कहते हैं कि स्त्री का स्वभाव सब प्रकार से पकड़ में न आने योग्य अथाह और भेदभरा होता है। अपनी परछाईं भले ही पकड़ जाए, पर भाई! स्त्रियों की गति (चाल) नहीं जानी जाती।

दो० - काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ॥ 47॥

आग क्या नहीं जला सकती! समुद्र में क्या नहीं समा सकता! अबला कहानेवाली प्रबल स्त्री (जाति) क्या नहीं कर सकती! और जगत में काल किसको नहीं खाता!॥ 47॥

का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा॥

विधाता ने क्या सुनाकर क्या सुना दिया और क्या दिखाकर अब वह क्या दिखाना चाहता है! एक कहते हैं कि राजा ने अच्छा नहीं किया, दुर्बुद्धि कैकेयी को विचारकर वर नहीं दिया,

जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु। अबला बिबस ग्यानु गुनु गा जनु॥
एक धरम परमिति पहिचाने। नृपहि दोसु नहिं देहिं सयाने॥

जो हठ करके (कैकेयी की बात को पूरा करने में अड़े रहकर) स्वयं सब दुःखों के पात्र हो गए। स्त्री के विशेष वश होने के कारण मानो उनका ज्ञान और गुण जाता रहा। एक (दूसरे) जो धर्म की मर्यादा को जानते हैं और सयाने हैं, वे राजा को दोष नहीं देते।

सिबि दधीचि हरिचंद कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी॥
एक भरत कर संमत कहहीं। एक उदास भायँ सुनि रहहीं॥

वे शिवि, दधीचि और हरिश्चंद्र की कथा एक-दूसरे से बखानकर कहते हैं। कोई एक इसमें भरत की सम्मति बताते हैं। कोई एक सुनकर उदासीन भाव से रह जाते हैं (कुछ बोलते

नहीं)।

कान मूदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा॥
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे। रामु भरत कहुँ प्रानपिआरे॥

कोई हाथों से कान मूँदकर और जीभ को दाँतों तले दबाकर कहते हैं कि यह बात झूठ है, ऐसी बात कहने से तुम्हारे पुण्य नष्ट हो जाएँगे। भरत को तो राम प्राणों के समान प्यारे हैं।

दो० - चंदु चवै बरु अनल कन सुधा होइ बिषतूल।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु भरतु राम प्रतिकूल॥ 48॥

चंद्रमा चाहे (शीतल किरणों की जगह) आग की चिनगारियाँ बरसाने लगे और अमृत चाहे विष के समान हो जाए, परंतु भरत स्वप्न में भी कभी राम के विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे॥ 48॥

एक बिधातहि दूषनु देहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं॥
खरभरु नगर सोचु सब काहू। दुसह दाहु उर मिटा उछाहू॥

कोई एक विधाता को दोष देते हैं, जिसने अमृत दिखाकर विष दे दिया। नगर भर में खलबली मच गई, सब किसी को सोच हो गया। हृदय में दुःसह जलन हो गई, आनंद-उत्साह मिट गया।

बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकई केरी॥
लगीं देन सिख सीलु सराही। बचन बानसम लागहिं ताहीं॥

ब्राह्मणों की स्त्रियाँ, कुल की माननीय बड़ी-बूढ़ी और जो कैकेयी की परम प्रिय थीं, वे उसके शील की सराहना करके उसे सीख देने लगीं। पर उसको उनके वचन बाण के समान लगते हैं।

भरतु न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यहु सबु जगु जाना॥
करहु राम पर सहज सनेहू। केहिं अपराध आजु बनु देहू॥

(वे कहती हैं -) तुम तो सदा कहा करती थीं कि राम के समान मुझको भरत भी प्यारे नहीं हैं; इस बात को सारा जगत जानता है। राम पर तो तुम स्वाभाविक ही स्नेह करती

रही हो। आज किस अपराध से उन्हें वन देती हो?

कबहुँ न कियहु सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सबु देसू॥
कौसल्याँ अब काह बिगारा। तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा॥

तुमने कभी सौतियाडाह नहीं किया। सारा देश तुम्हारे प्रेम और विश्वास को जानता है। अब कौसल्या ने तुम्हारा कौन-सा बिगाड़ कर दिया, जिसके कारण तुमने सारे नगर पर वज्र गिरा दिया।

दो० - सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु कि रहिहहिं धाम।
राजु कि भूँजब भरत पुर नृपु कि जिइहि बिनु राम॥ 49॥

क्या सीता अपने पति (राम) का साथ छोड़ देंगी? क्या लक्ष्मण राम के बिना घर रह सकेंगे? क्या भरत राम के बिना अयोध्यापुरी का राज्य भोग सकेंगे? और क्या राजा राम के बिना जीवित रह सकेंगे? (अर्थात न सीता यहाँ रहेंगी, न लक्ष्मण रहेंगे, न भरत राज्य करेंगे और न राजा ही जीवित रहेंगे; सब उजाड़ हो जाएगा।)॥ 49॥

अस बिचारि उर छाड़हु कोहू। सोक कलंक कोठि जनि होहू॥
भरतहि अवसि देहु जुबराजू। कानन काह राम कर काजू॥

हृदय में ऐसा विचार कर क्रोध छोड़ दो, शोक और कलंक की कोठी मत बनो। भरत को अवश्य युवराज-पद दो, पर राम का वन में क्या काम है?

नाहिन रामु राज के भूखे। धरम धुरीन बिषय रस रूखे॥
गुर गृह बसहुँ रामु तजि गेहू। नृप सन अस बरु दूसर लेहू॥

राम राज्य के भूखे नहीं हैं। वे धर्म की धुरी को धारण करनेवाले और विषय-रस से रूखे हैं (अर्थात उनमें विषयासक्ति है ही नहीं)। इसलिए तुम यह शंका न करो कि राम वन न गए तो भरत के राज्य में विघ्न करेंगे; इतने पर भी मन न माने तो) तुम राजा से दूसरा ऐसा (यह) वर ले लो कि राम घर छोड़कर गुरु के घर रहें।

जौं नहिं लगिहहु कहें हमारे। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे॥
जौं परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई॥

जो तुम हमारे कहने पर न चलोगी तो तुम्हारे हाथ कुछ भी न लगेगा। यदि तुमने कुछ

हँसी की हो तो उसे प्रकट में कहकर जना दो (कि मैंने दिल्लगी की है)।

राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहि सुनि तुम्ह कहुँ लोगू॥
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई॥

राम-सरीखा पुत्र क्या वन के योग्य है? यह सुनकर लोग तुम्हें क्या कहेंगे! जल्दी उठो और वही उपाय करो जिस उपाय से इस शोक और कलंक का नाश हो।

छं० - जेहि भाँति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही॥
जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चंद बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिन समुझि धौं जियँ भामनी॥

जिस तरह (नगर भर का) शोक और (तुम्हारा) कलंक मिटे, वही उपाय करके कुल की रक्षा कर। वन जाते हुए राम को हठ करके लौटा ले, दूसरी कोई बात न चला। तुलसीदास कहते हैं - जैसे सूर्य के बिना दिन, प्राण के बिना शरीर और चंद्रमा के बिना रात (निर्जीव तथा शोभाहीन हो जाती है), वैसे ही राम के बिना अयोध्या हो जाएगी, हे भामिनी! तू अपने हृदय में इस बात को समझ (विचारकर देख) तो सही।

सो० - सखिन्ह सिखावनु दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइँ कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी॥ 50॥

इस प्रकार सखियों ने ऐसी सीख दी जो सुनने में मीठी और परिणाम में हितकारी थी। पर कुटिला कुबरी की सिखाई-पढ़ाई हुई कैकेयी ने इस पर जरा भी कान नहीं दिया॥ 50॥

उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी॥
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अभागी॥

कैकेयी कोई उत्तर नहीं देती, वह दुःसह क्रोध के मारे रूखी (बेमुरव्वत) हो रही है। ऐसे देखती है मानो भूखी बाघिन हरिनियों को देख रही हो। तब सखियों ने रोग को असाध्य समझकर उसे छोड़ दिया। सब उसको मंदबुद्धि, अभागिनी कहती हुई चल दीं।

राजु करत यह दैअँ बिगोई। कीन्हेसि अस जस करइ न कोई॥
एहि बिधि बिलपहिं पुर नर नारीं। देहिं कुचालिहि कोटिक गारीं॥

राज्य करते हुए इस कैकेयी को दैव ने नष्ट कर दिया। इसने जैसा कुछ किया, वैसा कोई भी न करेगा! नगर के सब स्त्री-पुरुष इस प्रकार विलाप कर रहे हैं और उस कुचाली कैकेयी को करोड़ों गालियाँ दे रहे हैं।

जरहिं बिषम जर लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा॥
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जलचर गन सूखत पानी॥

लोग विषम ज्वर (भयानक दुःख की आग) से जल रहे हैं। लंबी साँसें लेते हुए वे कहते हैं कि राम के बिना जीने की कौन आशा है। महान वियोग (की आशंका) से प्रजा ऐसी व्याकुल हो गई है मानो पानी सूखने के समय जलचर जीवों का समुदाय व्याकुल हो!

अति बिषाद बस लोग लोगाईं। गए मातु पहिं रामु गोसाईं॥
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखै राऊ॥

सभी पुरुष और स्त्रियाँ अत्यंत विषाद के वश हो रहे हैं। स्वामी राम माता कौसल्या के पास गए। उनका मुख प्रसन्न है और चित्त में चौगुना चाव (उत्साह) है। यह सोच मिट गया है कि राजा कहीं रख न लें। (राम को राजतिलक की बात सुनकर विषाद हुआ था कि सब भाइयों को छोड़कर बड़े भाई मुझको ही राजतिलक क्यों होता है। अब माता कैकेयी की आज्ञा और पिता की मौन सम्मति पाकर वह सोच मिट गया।)

दो॰ - नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान॥ 51॥

राम का मन नए पकड़े हुए हाथी के समान और राजतिलक उस हाथी के बाँधने की काँटेदार लोहे की बेड़ी के समान है। 'वन जाना है' यह सुनकर, अपने को बंधन से छूटा जानकर, उनके हृदय में आनंद बढ़ गया है॥ 51॥

रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा॥
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषन बसन निछावरि कीन्हे॥

रघुकुल तिलक राम ने दोनों हाथ जोड़कर आनंद के साथ माता के चरणों में सिर नवाया। माता ने आशीर्वाद दिया, अपने हृदय से लगा लिया और उन पर गहने तथा कपड़े निछावर किए।

बार-बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता॥
गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए॥

माता बार-बार राम का मुख चूम रही हैं। नेत्रों में प्रेम का जल भर आया है और सब अंग पुलकित हो गए हैं। राम को अपनी गोद में बैठाकर फिर हृदय से लगा लिया। सुंदर स्तन प्रेमरस (दूध) बहाने लगे।

प्रेमु प्रमोदु न कछु कहि जाई। रंक धनद पदबी जनु पाई॥
सादर सुंदर बदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी॥

उनका प्रेम और महान आनंद कुछ कहा नहीं जाता। मानो कंगाल ने कुबेर का पद पा लिया हो। बड़े आदर के साथ सुंदर मुख देखकर माता मधुर वचन बोलीं -

कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मंगलकारी॥
सुकृत सील सुख सीवँ सुहाई। जनम लाभ कइ अवधि अघाई॥

हे तात! माता बलिहारी जाती है, कहो, वह आनंद-मंगलकारी लग्न कब है, जो मेरे पुण्य, शील और सुख की सुंदर सीमा है और जन्म लेने के लाभ की पूर्णतम अवधि है;

दो० - जेहि चाहत नर नारि सब अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि तृषित बृष्टि सरद रितु स्वाति॥ 52॥

तथा जिस (लग्न) को सभी स्त्री-पुरुष अत्यंत व्याकुलता से इस प्रकार चाहते हैं जिस प्रकार प्यास से चातक और चातकी शरद ऋतु के स्वाति नक्षत्र की वर्षा को चाहते हैं॥ 52॥

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥
पितु समीप तब जाएहु भैआ। भइ बड़ि बार जाइ बलि मैआ॥

हे तात! मैं बलैया लेती हूँ, तुम जल्दी नहा लो और जो मन भाए, कुछ मिठाई खा लो। भैया! तब पिता के पास जाना। बहुत देर हो गई है, माता बलिहारी जाती है।

मातु बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरु के फूला॥
सुख मकरंद भरे श्रियमूला। निरखि राम मनु भवँरु न भूला॥

माता के अत्यंत अनुकूल वचन सुनकर - जो मानो स्नेहरूपी कल्पवृक्ष के फूल थे, जो सुखरूपी मकरंद (पुष्परस) से भरे थे और (राजलक्ष्मी) के मूल थे - ऐसे वचनरूपी फूलों को देखकर राम का मनरूपी भौंरा उन पर नहीं भूला।

धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी॥
पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥

धर्मधुरीण राम ने धर्म की गति को जानकर माता से अत्यंत कोमल वाणी से कहा - हे माता! पिता ने मुझको वन का राज्य दिया है, जहाँ सब प्रकार से मेरा बड़ा काम बननेवाला है।

आयसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरें। आनँदु अंब अनुग्रह तोरें॥

हे माता! तू प्रसन्न मन से मुझे आज्ञा दे, जिससे मेरी वन यात्रा में आनंद-मंगल हो। मेरे स्नेहवश भूलकर भी डरना नहीं। हे माता! तेरी कृपा से आनंद ही होगा।

दो० - बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहउँ मनु जनि करसि मलान॥ 53॥

चौदह वर्ष वन में रहकर, पिता के वचन को प्रमाणित (सत्य) कर, फिर लौटकर तेरे चरणों का दर्शन करूँगा; तू मन को म्लान (दुःखी) न कर॥ 53॥

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके॥
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परें पावस पानी॥

रघुकुल में श्रेष्ठ राम के ये बहुत ही नम्र और मीठे वचन माता के हृदय में बाण के समान लगे और कसकने लगे। उस शीतल वाणी को सुनकर कौसल्या वैसे ही सहमकर सूख गईं जैसे बरसात का पानी पड़ने से जवासा सूख जाता है।

कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू॥
नयन सजल तन थर थर काँपी। माजहि खाइ मीन जनु मापी॥

हृदय का विषाद कुछ कहा नहीं जाता। मानो सिंह की गर्जना सुनकर हिरनी विकल हो गई हो। नेत्रों में जल भर आया, शरीर थर-थर काँपने लगा। मानो मछली माँजा (पहली

वर्षा का फेन) खाकर बदहवास हो गई हो!

धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी॥
तात पितहि तुम्ह प्रानपिआरे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥

धीरज धरकर, पुत्र का मुख देखकर माता गदगद वचन कहने लगीं - हे तात! तुम तो पिता को प्राणों के समान प्रिय हो। तुम्हारे चरित्रों को देखकर वे नित्य प्रसन्न होते थे।

राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहिं अपराधा॥
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भयउ कृसानू॥

राज्य देने के लिए उन्होंने ही शुभ दिन शोधवाया था। फिर अब किस अपराध से वन जाने को कहा? हे तात! मुझे इसका कारण सुनाओ! सूर्यवंश (रूपी वन) को जलाने के लिए अग्नि कौन हो गया?

दो० - निरखि राम रुख सचिवसुत कारनु कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि दसा बरनि नहिं जाइ॥ 54॥

तब राम का रुख देखकर मंत्री के पुत्र ने सब कारण समझाकर कहा। उस प्रसंग को सुनकर वे गूँगी-जैसी (चुप) रह गईं, उनकी दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता॥ 54॥

राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू॥

न रख ही सकती हैं, न यह कह सकती हैं कि वन चले जाओ। दोनों ही प्रकार से हृदय में बड़ा भारी संताप हो रहा है। (मन में सोचती हैं कि देखो -) विधाता की चाल सदा सबके लिए टेढ़ी होती है। लिखने लगे चंद्रमा और लिखा गया राहु!

धरम सनेह उभयँ मति घेरी। भइ गति साँप छुछुंदरि केरी॥
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू॥

धर्म और स्नेह दोनों ने कौसल्या की बुद्धि को घेर लिया। उनकी दशा साँप-छछूँदर की-सी हो गई। वे सोचने लगीं कि यदि मैं अनुरोध (हठ) करके पुत्र को रख लेती हूँ तो धर्म जाता है और भाइयों में विरोध होता है;

कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भइ रानी॥
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी॥

और यदि वन जाने को कहती हूँ तो बड़ी हानि होती है। इस प्रकार के धर्म-संकट में पड़कर रानी विशेष रूप से सोच के वश हो गईं। फिर बुद्धिमती कौसल्या स्त्री-धर्म (पातिव्रत-धर्म) को समझकर और राम तथा भरत दोनों पुत्रों को समान जानकर -

सरल सुभाउ राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरमक टीका॥

सरल स्वभाववाली राम की माता बड़ा धीरज धरकर वचन बोलीं - हे तात! मैं बलिहारी जाती हूँ, तुमने अच्छा किया। पिता की आज्ञा का पालन करना ही सब धर्मों का शिरोमणि धर्म है।

दो० - राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु॥ 55॥

राज्य देने को कहकर वन दे दिया, उसका मुझे लेशमात्र भी दुःख नहीं है। (दुःख तो इस बात का है कि) तुम्हारे बिना भरत को, महाराज को और प्रजा को बड़ा भारी क्लेश होगा॥ 55॥

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥

हे तात! यदि केवल पिता की ही आज्ञा हो, तो माता को (पिता से) बड़ी जानकर वन को मत जाओ। किंतु यदि पिता-माता दोनों ने वन जाने को कहा हो, तो वन तुम्हारे लिए सैकड़ों अयोध्या के समान है।

पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी॥
अंतहुँ उचित नृपहि बनबासू। बय बिलोकि हियँ होइ हराँसू॥

वन के देवता तुम्हारे पिता होंगे और वनदेवियाँ माता होंगी। वहाँ के पशु-पक्षी तुम्हारे चरणकमलों के सेवक होंगे। राजा के लिए अंत में तो वनवास करना उचित ही है। केवल तुम्हारी (सुकुमार) अवस्था देखकर हृदय में दुःख होता है।

बड़भागी बनु अवध अभागी। जो रघुबंसतिलक तुम्ह त्यागी॥
जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदयँ होइ संदेहू॥

हे रघुवंश के तिलक! वन बड़ा भाग्यवान है और यह अवध अभागी है, जिसे तुमने त्याग दिया। हे पुत्र! यदि मैं कहूँ कि मुझे भी साथ ले चलो तो तुम्हारे हृदय में संदेह होगा (कि माता इसी बहाने मुझे रोकना चाहती हैं)।

पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ। मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ॥

हे पुत्र! तुम सभी के परम प्रिय हो। प्राणों के प्राण और हृदय के जीवन हो। वही (प्राणाधार) तुम कहते हो कि माता! मैं वन को जाऊँ और मैं तुम्हारे वचनों को सुनकर बैठी पछताती हूँ!

दो० - यह बिचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेहु बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ॥ 56॥

यह सोचकर झूठा स्नेह बढ़ाकर मैं हठ नहीं करती! बेटा! मैं बलैया लेती हूँ, माता का नाता मानकर मेरी सुध भूल न जाना॥ 56॥

देव पितर सब तुम्हहि गोसाईं। राखहुँ पलक नयन की नाईं॥
अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना॥

हे गोसाईं! सब देव और पितर तुम्हारी वैसी ही रक्षा करें, जैसे पलकें आँखों की रक्षा करती हैं। तुम्हारे वनवास की अवधि (चौदह वर्ष) जल है, प्रियजन और कुटुंबी मछली हैं। तुम दया की खान और धर्म की धुरी को धारण करनेवाले हो।

अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जिअत जेहिं भेंटहु आई॥
जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ। करि अनाथ जन परिजन गाऊँ॥

ऐसा विचारकर वही उपाय करना जिसमें सबके जीते-जी तुम आ मिलो। मैं बलिहारी जाती हूँ, तुम सेवकों, परिवारवालों और नगर भर को अनाथ करके सुखपूर्वक वन को जाओ।

सब कर आजु सुकृत फल बीता। भयउ कराल कालु बिपरीता॥

बहुबिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी॥

आज सबके पुण्यों का फल पूरा हो गया। कठिन काल हमारे विपरीत हो गया। (इस प्रकार) बहुत विलाप करके और अपने को परम अभागिनी जानकर माता राम के चरणों में लिपट गईं।

दारुन दुसह दाहु उर ब्यापा। बरनि न जाहिं बिलाप कलापा॥
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु बचन बहुरि समुझाई॥

हृदय में भयानक दुःसह संताप छा गया। उस समय के बहुविध विलाप का वर्णन नहीं किया जा सकता। राम ने माता को उठाकर हृदय से लगा लिया और फिर कोमल वचन कहकर उन्हें समझाया।

दो० - समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ॥ 57॥

उसी समय यह समाचार सुनकर सीता अकुला उठीं और सास के पास जाकर उनके दोनों चरणकमलों की वंदना कर सिर नीचा करके बैठ गईं॥ 57॥

दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
बैठि नमितमुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता॥

सास ने कोमल वाणी से आशीर्वाद दिया। वे सीता को अत्यंत सुकुमारी देखकर व्याकुल हो उठीं। रूप की राशि और पति के साथ पवित्र प्रेम करनेवाली सीता नीचा मुख किए बैठी सोच रही हैं।

चलन चहत बन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना॥

जीवननाथ (प्राणनाथ) वन को चलना चाहते हैं। देखें किस पुण्यवान से उनका साथ होगा - शरीर और प्राण दोनों साथ जाएँगे या केवल प्राण ही से इनका साथ होगा? विधाता की करनी कुछ जानी नहीं जाती।

चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी॥

मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं। हमहि सीय पद जनि परिहरहीं॥

सीता अपने सुंदर चरणों के नखों से धरती कुरेद रही हैं। ऐसा करते समय नूपुरों का जो मधुर शब्द हो रहा है, कवि उसका इस प्रकार वर्णन करते हैं कि मानो प्रेम के वश होकर नूपुर यह विनती कर रहे हैं कि सीता के चरण कभी हमारा त्याग न करें।

मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहि पिआरी॥

सीता सुंदर नेत्रों से जल बहा रही हैं। उनकी यह दशा देखकर राम की माता कौसल्या बोलीं - हे तात! सुनो, सीता अत्यंत ही सुकुमारी हैं तथा सास, ससुर और कुटुंबी सभी को प्यारी हैं।

दो० - पिता जनक भूपाल मनि ससुर भानुकुल भानु।
पति रबिकुल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप निधानु॥ 58॥

इनके पिता जनक राजाओं के शिरोमणि हैं, ससुर सूर्यकुल के सूर्य हैं और पति सूर्यकुलरूपी कुमुदवन को खिलानेवाले चंद्रमा तथा गुण और रूप के भंडार हैं॥ 58॥

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई॥

फिर मैंने रूप की राशि, सुंदर गुण और शीलवाली प्यारी पुत्रवधू पाई है। मैंने इन (जानकी) को आँखों की पुतली बनाकर इनसे प्रेम बढ़ाया है और अपने प्राण इनमें लगा रखे हैं।

कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥
फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥

इन्हें कल्पलता के समान मैंने बहुत तरह से बड़े लाड़-चाव के साथ स्नेहरूपी जल से सींचकर पाला है। अब इस लता के फूलने-फलने के समय विधाता वाम हो गए। कुछ जाना नहीं जाता कि इसका क्या परिणाम होगा।

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहउँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ॥

सीता ने पर्यंकपृष्ठ (पलंग के ऊपर), गोद और हिंडोले को छोड़कर कठोर पृथ्वी पर कभी पैर नहीं रखा। मैं सदा संजीवनी जड़ी के समान (सावधानी से) इनकी रखवाली करती रही हूँ! कभी दीपक की बत्ती हटाने को भी नहीं कहती।

सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा॥
चंद किरन रस रसिक चकोरी। रबि रुखनयन सकइ किमि जोरी॥

वही सीता अब तुम्हारे साथ वन चलना चाहती है। हे रघुनाथ! उसे क्या आज्ञा होती है? चंद्रमा की किरणों का रस (अमृत) चाहनेवाली चकोरी सूर्य की ओर आँख किस तरह मिला सकती है।

दो० - करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि।
बिष बाटिकाँ कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि॥ 59॥

हाथी, सिंह, राक्षस आदि अनेक दुष्ट जीव-जंतु वन में विचरते रहते हैं। हे पुत्र! क्या विष की वाटिका में सुंदर संजीवनी बूटी शोभा पा सकती है?॥ 59॥

बन हित कोल किरात किसोरी। रचीं बिरंचि बिषय सुख भोरी॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ॥

वन के लिए तो ब्रह्मा ने विषय सुख को न जाननेवाली कोल और भीलों की लड़कियों को रचा है, जिनका पत्थर के कीड़े-जैसा कठोर स्वभाव है। उन्हें वन में कभी क्लेश नहीं होता।

कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती॥

अथवा तपस्वियों की स्त्रियाँ वन में रहने योग्य हैं, जिन्होंने तपस्या के लिए सब भोग तज दिए हैं। हे पुत्र! जो तसवीर के बंदर को देखकर डर जाती हैं, वे सीता वन में किस तरह रह सकेंगी?

सुरसर सुभग बनज बन चारी। डाबर जोगु कि हंसकुमारी॥
अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई॥

देवसरोवर के कमल वन में विचरण करनेवाली हंसिनी क्या गड़ैयों (तलैयों) में रहने के

योग्य है? ऐसा विचार कर जैसी तुम्हारी आज्ञा हो, मैं जानकी को वैसी ही शिक्षा दूँ।

जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा॥
सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी। सील सनेह सुधाँ जनु सानी॥

माता कहती हैं - यदि सीता घर में रहें तो मुझको बहुत सहारा हो जाए। राम ने माता की प्रिय वाणी सुनकर, जो मानो शील और स्नेहरूपी अमृत से सनी हुई थी,

दो० - कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्हि मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन गुन दोष॥ 60॥

विवेकमय प्रिय वचन कहकर माता को संतुष्ट किया। फिर वन के गुण-दोष प्रकट करके वे जानकी को समझाने लगे॥ 60॥

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं॥
राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आन भाँति जियँ जनि कछु गुनहू॥

माता के सामने सीता से कुछ कहने में सकुचाते हैं। पर मन में यह समझकर कि यह समय ऐसा ही है, वे बोले - हे राजकुमारी! मेरी सिखावन सुनो। मन में कुछ दूसरी तरह न समझ लेना।

आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई॥

जो अपना और मेरा भला चाहती हो, तो मेरा वचन मानकर घर रहो। हे भामिनी! मेरी आज्ञा का पालन होगा, सास की सेवा बन पड़ेगी। घर रहने में सभी प्रकार से भलाई है।

एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी॥

आदरपूर्वक सास-ससुर के चरणों की पूजा (सेवा) करने से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जब-जब माता मुझे याद करेंगी और प्रेम से व्याकुल होने के कारण उनकी बुद्धि भोली हो जाएगी (वे अपने-आपको भूल जाएँगी),

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझाएहु मृदु बानी॥

कहउँ सुभायँ सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखउँ तोही॥

हे सुंदरी! तब-तब तुम कोमल वाणी से पुरानी कथाएँ कह-कहकर इन्हें समझाना। हे सुमुखि! मुझे सैकड़ों सौगंध हैं, मैं यह स्वभाव से ही कहता हूँ कि मैं तुम्हें केवल माता के लिए ही घर पर रखता हूँ।

दो० - गुर श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस।
हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस॥ 61॥

(मेरी आज्ञा मानकर घर पर रहने से) गुरु और वेद के द्वारा सम्मत धर्म (के आचरण) का फल तुम्हें बिना ही क्लेश के मिल जाता है, किंतु हठ के वश होकर गालव मुनि और राजा नहुष आदि सब ने संकट ही सहे॥ 61॥

मैं पुनि करि प्रवान पितु बानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा॥

हे सुमुखि! हे सयानी! सुनो, मैं भी पिता के वचन को सत्य करके शीघ्र ही लौटूँगा। दिन जाते देर नहीं लगेगी। हे सुंदरी! हमारी यह सीख सुनो!

जौं हठ करहु प्रेम बस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा॥
काननु कठिन भयंकरु भारी। घोर घामु हिम बारि बयारी॥

हे वामा! यदि प्रेमवश हठ करोगी, तो तुम परिणाम में दुःख पाओगी। वन बड़ा कठिन (क्लेशदायक) और भयानक है। वहाँ की धूप, जाड़ा, वर्षा और हवा सभी बड़े भयानक हैं।

कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥

रास्ते में कुश, काँटे और बहुत-से कंकड़ हैं। उन पर बिना जूते के पैदल ही चलना होगा। तुम्हारे चरण-कमल कोमल और सुंदर हैं और रास्ते में बड़े-बड़े दुर्गम पर्वत हैं।

कंदर खोह नदीं नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥

पर्वतों की गुफाएँ, खोह (दर्रे), नदियाँ, नद और नाले ऐसे अगम्य और गहरे हैं कि उनकी

ओर देखा तक नहीं जाता। रीछ, बाघ, भेड़िये, सिंह और हाथी ऐसे (भयानक) शब्द करते हैं कि उन्हें सुनकर धीरज भाग जाता है।

दो॰ - भूमि सयन बलकल बसन असनु कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं सबुइ समय अनुकूल॥ 62॥

जमीन पर सोना, पेड़ों की छाल के वस्त्र पहनना और कंद, मूल, फल का भोजन करना होगा। और वे भी क्या सदा सब दिन मिलेंगे? सब कुछ अपने-अपने समय के अनुकूल ही मिल सकेगा॥ 62॥

नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट बेष बिधि कोटिक करहीं॥
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी॥

मनुष्यों को खानेवाले निशाचर (राक्षस) फिरते रहते हैं। वे करोड़ों प्रकार के कपट-रूप धारण कर लेते हैं। पहाड़ का पानी बहुत ही लगता है। वन की विपत्ति बखानी नहीं जा सकती।

ब्याल कराल बिहग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ॥

वन में भीषण सर्प, भयानक पक्षी और स्त्री-पुरुषों को चुरानेवाले राक्षसों के झुंड-के-झुंड रहते हैं। वन की (भयंकरता) याद आने मात्र से धीर पुरुष भी डर जाते हैं। फिर हे मृगलोचनि! तुम तो स्वभाव से ही डरपोक हो!

हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू॥
मानस सलिल सुधाँ प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली॥

हे हंसगामिनी! तुम वन के योग्य नहीं हो। तुम्हारे वन जाने की बात सुनकर लोग मुझे अपयश देंगे (बुरा कहेंगे)। मानसरोवर के अमृत के समान जल से पाली हुई हंसिनी कहीं खारे समुद्र में जी सकती है।

नव रसाल बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥
रहहु भवन अस हृदयँ बिचारी। चंदबदनि दुखु कानन भारी॥

नवीन आम के वन में विहार करनेवाली कोयल क्या करील के जंगल में शोभा पाती है? हे

चंद्रमुखी! हृदय में ऐसा विचारकर तुम घर ही पर रहो। वन में बड़ा कष्ट है।

दो॰ - सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि॥ 63॥

स्वाभाविक ही हित चाहनेवाले गुरु और स्वामी की सीख को जो सिर चढ़ाकर नहीं मानता, वह हृदय में भरपेट पछताता है और उसके हित की हानि अवश्य होती है॥ 63॥

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसें। चकइहि सरद चंद निसि जैसें॥

प्रियतम के कोमल तथा मनोहर वचन सुनकर सीता के सुंदर नेत्र जल से भर गए। राम की यह शीतल सीख उनको कैसी जलानेवाली हुई, जैसे चकवी को शरद ऋतु की चाँदनी रात होती है।

उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी॥

जानकी से कुछ उत्तर देते नहीं बनता, वे यह सोचकर व्याकुल हो उठीं कि मेरे पवित्र और प्रेमी स्वामी मुझे छोड़ जाना चाहते हैं। नेत्रों के जल (आँसुओं) को जबरदस्ती रोककर वे पृथ्वी की कन्या सीता हृदय में धीरज धरकर,

लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी।
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई॥

सास के पैर लगकर, हाथ जोड़कर कहने लगीं - हे देवि! मेरी इस बड़ी भारी ढिठाई को क्षमा कीजिए। मुझे प्राणपति ने वही शिक्षा दी है, जिससे मेरा परम हित हो।

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं॥

परंतु मैंने मन में समझकर देख लिया कि पति के वियोग के समान जगत में कोई दुःख नहीं है।

दो॰ - प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।

तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥ 64॥

हे प्राणनाथ! हे दया के धाम! हे सुंदर! हे सुखों के देनेवाले! हे सुजान! हे रघुकुलरूपी कुमुद के खिलानेवाले चंद्रमा! आपके बिना स्वर्ग भी मेरे लिए नरक के समान है॥ 64॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई॥

माता, पिता, बहन, प्यारा भाई, प्यारा परिवार, मित्रों का समुदाय, सास, ससुर, गुरु, स्वजन (बंधु-बांधव), सहायक और सुंदर, सुशील और सुख देनेवाला पुत्र - ।

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू॥

हे नाथ! जहाँ तक स्नेह और नाते हैं, पति के बिना स्त्री को सूर्य से भी बढ़कर तपानेवाले हैं। शरीर, धन, घर, पृथ्वी, नगर और राज्य, पति के बिना स्त्री के लिए यह सब शोक का समाज है।

भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥

भोग रोग के समान हैं, गहने भार रूप हैं और संसार यम-यातना (नरक की पीड़ा) के समान है। हे प्राणनाथ! आपके बिना जगत में मुझे कहीं कुछ भी सुखदायी नहीं है।

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥

जैसे बिना जीव के देह और बिना जल के नदी, वैसे ही हे नाथ! बिना पुरुष के स्त्री है। हे नाथ! आपके साथ रहकर आपका शरद-(पूर्णिमा) के निर्मल चंद्रमा के समान मुख देखने से मुझे समस्त सुख प्राप्त होंगे।

दो० - खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुख मूल॥ 65॥

हे नाथ! आपके साथ पक्षी और पशु ही मेरे कुटुंबी होंगे, वन ही नगर और वृक्षों की छाल

ही निर्मल वस्त्र होंगे और पर्णकुटी (पत्तों की बनी झोपड़ी) ही स्वर्ग के समान सुखों की मूल होगी॥ 65॥

बनदेबीं बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा॥
कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई॥

उदार हृदय के वनदेवी और वनदेवता ही सास-ससुर के समान मेरी सार-सँभार करेंगे, और कुशा और पत्तों की सुंदर साथरी (बिछौना) ही प्रभु के साथ कामदेव की मनोहर तोशक के समान होगी।

कंद मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू॥
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी॥

कंद, मूल और फल ही अमृत के समान आहार होंगे और (वन के) पहाड़ ही अयोध्या के सैकड़ों राजमहलों के समान होंगे। क्षण-क्षण में प्रभु के चरण कमलों को देख-देखकर मैं ऐसी आनंदित रहूँगी जैसे दिन में चकवी रहती है।

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥

हे नाथ! आपने वन के बहुत-से दुःख और बहुत-से भय, विषाद और संताप कहे। परंतु हे कृपानिधान! वे सब मिलकर भी प्रभु (आप) के वियोग (से होनेवाले दुःख) के लवलेश के समान भी नहीं हो सकते।

अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी। करुनामय उर अंतरजामी॥

ऐसा जी में जानकर, हे सुजान शिरोमणि! आप मुझे साथ ले लीजिए, यहाँ न छोड़िए। हे स्वामी! मैं अधिक क्या विनती करूँ? आप करुणामय हैं और सबके हृदय के अंदर की जाननेवाले हैं।

दो० - राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान।
दीनबंधु सुंदर सुखद सील सनेह निधान॥ 66॥

हे दीनबंधु! हे सुंदर! हे सुख देनेवाले! हे शील और प्रेम के भंडार! यदि अवधि (चौदह वर्ष)

तक मुझे अयोध्या में रखते हैं, तो जान लीजिए कि मेरे प्राण नहीं रहेंगे॥ 66॥

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥

क्षण-क्षण में आपके चरण कमलों को देखते रहने से मुझे मार्ग चलने में थकावट न होगी। हे प्रियतम! मैं सभी प्रकार से आपकी सेवा करूँगी और मार्ग चलने से होनेवाली सारी थकावट को दूर कर दूँगी।

पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं॥
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें॥

आपके पैर धोकर, पेड़ों की छाया में बैठकर, मन में प्रसन्न होकर हवा करूँगी (पंखा झलूँगी)। पसीने की बूँदों सहित श्याम शरीर को देखकर - प्राणपति के दर्शन करते हुए दुःख के लिए मुझे अवकाश ही कहाँ रहेगा।

सम महि तृन तरुपल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि तात बयारि न मोही॥

समतल भूमि पर घास और पेड़ों के पत्ते बिछाकर यह दासी रातभर आपके चरण दबावेगी। बार-बार आपकी कोमल मूर्ति को देखकर मुझको गरम हवा भी न लगेगी।

को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा। सिंघबधुहि जिमि ससक सिआरा॥
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू॥

प्रभु के साथ (रहते) मेरी ओर (आँख उठाकर) देखनेवाला कौन है (अर्थात कोई नहीं देख सकता)! जैसे सिंह की स्त्री (सिंहनी) को खरगोश और सियार नहीं देख सकते। मैं सुकुमारी हूँ और नाथ वन के योग्य हैं? आपको तो तपस्या उचित है और मुझको विषय-भोग?

दो॰ - ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान॥ 67॥

ऐसे कठोर वचन सुनकर भी जब मेरा हृदय न फटा तो, हे प्रभु! (मालूम होता है) ये पामर

प्राण आपके वियोग का भीषण दुःख सहेंगे॥ 67॥

अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन बियोगु न सकी सँभारी॥
देखि दसा रघुपति जियँ जाना। हठि राखें नहिं राखिहि प्राना॥

ऐसा कहकर सीता बहुत ही व्याकुल हो गईं। वे वचन के वियोग को भी न सम्हाल सकीं। (अर्थात शरीर से वियोग की बात तो अलग रही, वचन से भी वियोग की बात सुनकर वे अत्यंत विकल हो गईं।) उनकी यह दशा देखकर रघुनाथ ने अपने जी में जान लिया कि हठपूर्वक इन्हें यहाँ रखने से ये प्राणों को न रखेंगी।

कहेउ कृपाल भानुकुलनाथा। परिहरि सोचु चलहु बन साथा॥
नहिं बिषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहु बन गवन समाजू॥

तब कृपालु, सूर्यकुल के स्वामी राम ने कहा कि सोच छोड़कर मेरे साथ वन को चलो। आज विषाद करने का अवसर नहीं है। तुरंत वनगमन की तैयारी करो।

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आसिष पाई॥
बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥

राम ने प्रिय वचन कहकर प्रियतमा सीता को समझाया। फिर माता के पैरों लगकर आशीर्वाद प्राप्त किया। (माता ने कहा -) बेटा! जल्दी लौटकर प्रजा के दुःख को मिटाना और यह निठुर माता तुम्हें भूल न जाए!

फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहउँ नयन मनोहर जोरी।
सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन बिधु जोइहि॥

हे विधाता! क्या मेरी दशा भी फिर पलटेगी? क्या अपने नेत्रों से मैं इस मनोहर जोड़ी को फिर देख पाऊँगी? हे पुत्र! वह सुंदर दिन और शुभ घड़ी कब होगी जब तुम्हारी जननी जीते-जी तुम्हारा चाँद-सा मुखड़ा फिर देखेगी!

दो० - बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ हरषि निरखिहउँ गात॥ 68॥

हे तात! 'वत्स' कहकर, 'लाल' कहकर, 'रघुपति' कहकर, 'रघुवर' कहकर, मैं फिर कब तुम्हें

बुलाकर हृदय से लगाऊँगी और हर्षित होकर तुम्हारे अंगों को देखूँगी!॥ 68॥

लखि सनेह कातरि महतारी। बचनु न आव बिकल भइ भारी॥
राम प्रबोधु कीन्ह बिधि नाना। समउ सनेहु न जाइ बखाना॥

यह देखकर कि माता स्नेह के मारे अधीर हो गई हैं और इतनी अधिक व्याकुल हैं कि मुँह से वचन नहीं निकलता, राम ने अनेक प्रकार से उन्हें समझाया। वह समय और स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता।

तब जानकी सासु पग लागी। सुनिअ माय मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥

तब जानकी सास के पाँव लगीं और बोलीं - हे माता! सुनिए, मैं बड़ी ही अभागिनी हूँ। आपकी सेवा करने के समय दैव ने मुझे वनवास दे दिया। मेरा मनोरथ सफल न किया।

तजब छोभु जनि छाड़िअ छोहू। करमु कठिन कछु दोसु न मोहू॥
सुनिसिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहौं बखानी॥

आप क्षोभ का त्याग कर दें, परंतु कृपा न छोड़िएगा। कर्म की गति कठिन है, मुझे भी कुछ दोष नहीं है। सीता के वचन सुनकर सास व्याकुल हो गईं। उनकी दशा को मैं किस प्रकार बखान कर कहूँ!

बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही॥
अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा॥

उन्होंने सीता को बार-बार हृदय से लगाया और धीरज धरकर शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया कि जब तक गंगा और यमुना में जल की धारा बहे, तब तक तुम्हारा सुहाग अचल रहे।

दो० - सीतहि सासु आसीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदुम सिरु अति हित बारहिं बार॥ 69॥

सीता को सास ने अनेकों प्रकार से आशीर्वाद और शिक्षाएँ दीं और वे (सीता) बड़े ही प्रेम से बार-बार चरणकमलों में सिर नवाकर चलीं॥ 69॥

समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा॥

जब लक्ष्मण ने समाचार पाए, तब वे व्याकुल होकर उदास-मुँह उठ दौड़े। शरीर काँप रहा है, रोमांच हो रहा है, नेत्र आँसुओं से भरे हैं। प्रेम से अत्यंत अधीर होकर उन्होंने राम के चरण पकड़ लिए।

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीन जनु जल तें काढ़े॥
सोचु हृदयँ बिधि का होनिहारा। सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा॥

वे कुछ कह नहीं सकते, खड़े-खड़े देख रहे हैं। (ऐसे दीन हो रहे हैं) मानो जल से निकाले जाने पर मछली दीन हो रही हो। हृदय में यह सोच है कि हे विधाता! क्या होनेवाला है? क्या हमारा सब सुख और पुण्य पूरा हो गया?

मो कहुँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा॥
राम बिलोकि बंधु कर जोरें। देह गेह सब सन तृनु तोरें॥

मुझको रघुनाथ क्या कहेंगे? घर पर रखेंगे या साथ ले चलेंगे? राम ने भाई लक्ष्मण को हाथ जोड़े और शरीर तथा घर सभी से नाता तोड़े हुए खड़े देखा।

बोले बचनु राम नय नागर। सील सनेह सरल सुख सागर॥
तात प्रेम बस जनि कदराहू। समुझि हृदयँ परिनाम उछाहू॥

तब नीति में निपुण और शील, स्नेह, सरलता और सुख के समुद्र राम वचन बोले - हे तात! परिणाम में होनेवाले आनंद को हृदय में समझकर तुम प्रेमवश अधीर मत होओ।

दो० - मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ॥ 70॥

जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामी की शिक्षा को स्वाभाविक ही सिर चढ़ाकर उसका पालन करते हैं, उन्होंने ही जन्म लेने का लाभ पाया है; नहीं तो जगत में जन्म व्यर्थ ही है॥ 70॥

अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई॥

भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं। राउ बृद्ध मम दुखु मन माहीं॥

हे भाई! हृदय में ऐसा जानकर मेरी सीख सुनो और माता-पिता के चरणों की सेवा करो। भरत और शत्रुघ्न घर पर नहीं हैं, महाराज वृद्ध हैं और उनके मन में मेरा दुःख है।

मैं बन जाऊँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहुँ परइ दुसह दुख भारू॥

इस अवस्था में मैं तुमको साथ लेकर वन जाऊँ तो अयोध्या सभी प्रकार से अनाथ हो जाएगी। गुरु, पिता, माता, प्रजा और परिवार सभी पर दुःख का दुःसह भार आ पड़ेगा।

रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥

अतः तुम यहीं रहो और सबका संतोष करते रहो। नहीं तो हे तात! बड़ा दोष होगा। जिसके राज्य में प्यारी प्रजा दुःखी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है।

रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भए ब्याकुल भारी॥
सिअरें बचन सूखि गए कैसें। परसत तुहिन तामरसु जैसें॥

हे तात! ऐसी नीति विचारकर तुम घर रह जाओ। यह सुनते ही लक्ष्मण बहुत ही व्याकुल हो गए! इन शीतल वचनों से वे कैसे सूख गए, जैसे पाले के स्पर्श से कमल सूख जाता है!

दो० - उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ॥ 71॥

प्रेमवश लक्ष्मण से कुछ उत्तर देते नहीं बनता। उन्होंने व्याकुल होकर राम के चरण पकड़ लिए और कहा - हे नाथ! मैं दास हूँ और आप स्वामी हैं; अतः आप मुझे छोड़ ही दें तो मेरा क्या वश है?॥ 71॥

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं॥
नरबर धीर धरम धुर धारी। निगम नीति कहुँ ते अधिकारी॥

हे स्वामी! आपने मुझे सीख तो बड़ी अच्छी दी है, पर मुझे अपनी कायरता से वह मेरे लिए अगम (पहुँच के बाहर) लगी। शास्त्र और नीति के तो वे ही श्रेष्ठ पुरुष अधिकारी हैं, जो धीर हैं और धर्म की धुरी को धारण करनेवाले हैं।

मैं सिसु प्रभु सनेहँ प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला॥
गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥

मैं तो प्रभु (आप) के स्नेह में पला हुआ छोटा बच्चा हूँ! कहीं हंस भी मंदराचल या सुमेरु पर्वत को उठा सकते हैं! हे नाथ! स्वभाव से ही कहता हूँ, आप विश्वास करें, मैं आपको छोड़कर गुरु, पिता, माता किसी को भी नहीं जानता।

जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥

जगत में जहाँ तक स्नेह का संबंध, प्रेम और विश्वास है, जिनको स्वयं वेद ने गाया है - हे स्वामी! हे दीनबंधु! हे सबके हृदय के अंदर की जाननेवाले! मेरे तो वे सब कुछ केवल आप ही हैं।

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥

धर्म और नीति का उपदेश तो उसको करना चाहिए, जिसे कीर्ति, विभूति (ऐश्वर्य) या सद्गति प्यारी हो, किंतु जो मन, वचन और कर्म से चरणों में ही प्रेम रखता हो, हे कृपासिंधु! क्या वह भी त्यागने के योग्य है?

दो° - करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु जानि सनेहँ सभीत॥ 72॥

दया के समुद्र राम ने भले भाई के कोमल और नम्रतायुक्त वचन सुनकर और उन्हें स्नेह के कारण डरे हुए जानकर, हृदय से लगाकर समझाया॥ 72॥

मागहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भए सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥

(और कहा -) हे भाई! जाकर माता से विदा माँग आओ और जल्दी वन को चलो! रघुकुल

में श्रेष्ठ राम की वाणी सुनकर लक्ष्मण आनंदित हो गए। बड़ी हानि दूर हो गई और बड़ा लाभ हुआ!

हरषित हृदयँ मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए॥
जाइ जननि पग नायउ माथा। मनु रघुनंदन जानकि साथा॥

वे हर्षित हृदय से माता सुमित्रा के पास आए, मानो अंधा फिर से नेत्र पा गया हो। उन्होंने जाकर माता के चरणों में मस्तक नवाया, किंतु उनका मन रघुकुल को आनंद देनेवाले राम और जानकी के साथ था।

पूँछे मातु मलिन मन देखी। लखन कही सब कथा बिसेषी।
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा॥

माता ने उदास मन देखकर उनसे (कारण) पूछा। लक्ष्मण ने सब कथा विस्तार से कह सुनाई। सुमित्रा कठोर वचनों को सुनकर ऐसी सहम गईं जैसे हिरनी चारों ओर वन में आग लगी देखकर सहम जाती है।

लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहिं सनेह सब करब अकाजू॥
मागत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं॥

लक्ष्मण ने देखा कि आज (अब) अनर्थ हुआ। ये स्नेह वश काम बिगाड़ देंगी! इसलिए वे विदा माँगते हुए डर के मारे सकुचाते हैं (और मन-ही-मन सोचते हैं) कि हे विधाता! माता साथ जाने को कहेंगी या नहीं।

दो० - समुझि सुमित्राँ राम सिय रूपु सुसीलु सुभाउ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ॥ 73॥

सुमित्रा ने राम और सीता के रूप, सुंदर शील और स्वभाव को समझकर और उन पर राजा का प्रेम देखकर अपना सिर धुना (पीटा) और कहा कि पापिनी कैकेयी ने बुरी तरह घात लगाया॥ 73॥

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥

परंतु कुसमय जानकर धैर्य धारण किया और स्वभाव से ही हित चाहनेवाली सुमित्रा

कोमल वाणी से बोलीं - हे तात! जानकी तुम्हारी माता हैं और सब प्रकार से स्नेह करनेवाले राम तुम्हारे पिता हैं!

अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥

जहाँ राम का निवास हो वहीं अयोध्या है। जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वहीं दिन है। यदि निश्चय ही सीताराम वन को जाते हैं, तो अयोध्या में तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है।

गुर पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥

गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी, इन सबकी सेवा प्राण के समान करनी चाहिए। फिर राम तो प्राणों के भी प्रिय हैं, हृदय के भी जीवन हैं और सभी के स्वार्थरहित सखा हैं।

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें॥
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥

जगत में जहाँ तक पूजनीय और परम प्रिय लोग हैं, वे सब राम के नाते से ही (पूजनीय और परम प्रिय) मानने योग्य हैं। हृदय में ऐसा जानकर, हे तात! उनके साथ वन जाओ और जगत में जीने का लाभ उठाओ!

दो० - भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥ 74॥

मैं बलिहारी जाती हूँ, (हे पुत्र!) मेरे समेत तुम बड़े ही सौभाग्य के पात्र हुए, जो तुम्हारे चित्त ने छल छोड़कर राम के चरणों में स्थान प्राप्त किया है॥ 74॥

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥

संसार में वही युवती स्त्री पुत्रवती है, जिसका पुत्र रघुनाथ का भक्त हो। नहीं तो जो राम से विमुख पुत्र से अपना हित जानती है, वह तो बाँझ ही अच्छी। पशु की भाँति उसका

ब्याना (पुत्र प्रसव करना) व्यर्थ ही है।

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥

तुम्हारे ही भाग्य से राम वन को जा रहे हैं। हे तात! दूसरा कोई कारण नहीं है। संपूर्ण पुण्यों का सबसे बड़ा फल यही है कि सीताराम के चरणों में स्वाभाविक प्रेम हो।

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥

राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह - इनके वश स्वप्न में भी मत होना। सब प्रकार के विकारों का त्याग कर मन, वचन और कर्म से सीताराम की सेवा करना।

तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

तुमको वन में सब प्रकार से आराम है, जिसके साथ राम और सीता रूप पिता-माता हैं। हे पुत्र! तुम वही करना जिससे राम वन में क्लेश न पाएँ, मेरा यही उपदेश है।

छं० - उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित-नित नई॥

हे तात! मेरा यही उपदेश है (अर्थात तुम वही करना) जिससे वन में तुम्हारे कारण राम और सीता सुख पावें और पिता, माता, प्रिय परिवार तथा नगर के सुखों की याद भूल जाएँ। तुलसीदास कहते हैं कि सुमित्रा ने इस प्रकार हमारे प्रभु (लक्ष्मण) को शिक्षा देकर (वन जाने की) आज्ञा दी और फिर यह आशीर्वाद दिया कि सीता और रघुवीर के चरणों में तुम्हारा निर्मल (निष्काम और अनन्य) एवं प्रगाढ़ प्रेम नित-नित नया हो!

सो० - मातु चरन सिरु नाइ चले तुरत संकित हृदयँ।
बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भाग बस॥ 75॥

माता के चरणों में सिर नवाकर, हृदय में डरते हुए (कि अब भी कोई विघ्न न आ जाए)

लक्ष्मण तुरंत इस तरह चल दिए जैसे सौभाग्यवश कोई हिरन कठिन फंदे को तुड़ाकर भाग निकला हो॥ 75॥

गए लखनु जहँ जानकिनाथू। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू॥
बंदि राम सिय चरन सुहाए। चले संग नृपमंदिर आए॥

लक्ष्मण वहाँ गए जहाँ जानकीनाथ थे और प्रिय का साथ पाकर मन में बड़े ही प्रसन्न हुए। राम और सीता के सुंदर चरणों की वंदना करके वे उनके साथ चले और राजभवन में आए।

कहहिं परसपर पुर नर नारी। भलि बनाइ बिधि बात बिगारी॥
तन कृस मन दुखु बदन मलीने। बिकल मनहुँ माखी मधु छीने॥

नगर के स्त्री-पुरुष आपस में कह रहे हैं कि विधाता ने खूब बनाकर बात बिगाड़ी! उनके शरीर दुबले, मन दुःखी और मुख उदास हो रहे हैं। वे ऐसे व्याकुल हैं, जैसे शहद छीन लिए जाने पर शहद की मक्खियाँ व्याकुल हों।

कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं॥
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा। बरनि न जाइ बिषादु अपारा॥

सब हाथ मल रहे हैं और सिर धुनकर (पीटकर) पछता रहे हैं। मानो बिना पंख के पक्षी व्याकुल हो रहे हों। राजद्वार पर बड़ी भीड़ हो रही है। अपार विषाद का वर्णन नहीं किया जा सकता।

सचिवँ उठाइ राउ बैठारे। कहि प्रिय बचन रामु पगु धारे॥
सिय समेत दोउ तनय निहारी। ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी॥

'राम पधारे हैं', ये प्रिय वचन कहकर मंत्री ने राजा को उठाकर बैठाया। सीता सहित दोनों पुत्रों को (वन के लिए तैयार) देखकर राजा बहुत व्याकुल हुए।

दो॰ - सीय सहित सुत सुभग दोउ देखि देखि अकुलाइ।
बारहिं बार सनेह बस राउ लेइ उर लाइ॥ 76॥

सीता सहित दोनों सुंदर पुत्रों को देख-देखकर राजा अकुलाते हैं और स्नेह वश बारंबार उन्हें हृदय से लगा लेते हैं॥ 76॥

सकइ न बोलि बिकल नरनाहू। सोक जनित उर दारुन दाहू॥
नाइ सीसु पद अति अनुरागा। उठि रघुबीर बिदा तब मागा॥

राजा व्याकुल हैं, बोल नहीं सकते। हृदय में शोक से उत्पन्न हुआ भयानक संताप है। तब रघुकुल के वीर राम ने अत्यंत प्रेम से चरणों में सिर नवाकर उठकर विदा माँगी -

पितु असीस आयसु मोहि दीजै। हरष समय बिसमउ कत कीजै॥
तात किएँ प्रिय प्रेम प्रमादू। जसु जग जाइ होइ अपबादू॥

हे पिता! मुझे आशीर्वाद और आज्ञा दीजिए। हर्ष के समय आप शोक क्यों कर रहे हैं? हे तात! प्रिय के प्रेमवश प्रमाद (कर्तव्यकर्म में त्रुटि) करने से जगत में यश जाता रहेगा और निंदा होगी।

सुनि सनेह बस उठि नरनाहाँ। बैठारे रघुपति गहि बाहाँ॥
सुनहु तात तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं। रामु चराचर नायक अहहीं॥

यह सुनकर स्नेहवश राजा ने उठकर रघुनाथ की बाँह पकड़कर उन्हें बैठा लिया और कहा - हे तात! सुनो, तुम्हारे लिए मुनि लोग कहते हैं कि राम चराचर के स्वामी हैं।

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी॥
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई॥

शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार ईश्वर हृदय में विचारकर फल देता है। जो कर्म करता है वही फल पाता है। ऐसी वेद की नीति है, यह सब कोई कहते हैं।

दो॰ - औरु करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु॥ 77॥

(किंतु इस अवसर पर तो इसके विपरीत हो रहा है,) अपराध तो कोई और ही करे और उसके फल का भोग कोई और ही पावे। भगवान की लीला बड़ी ही विचित्र है, उसे जानने योग्य जगत में कौन है?॥ 77॥

रायँ राम राखन हित लागी। बहुत उपाय किए छलु त्यागी॥
लखी राम रुख रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने॥

राजा ने इस प्रकार राम को रखने के लिए छल छोड़कर बहुत-से उपाय किए, पर जब उन्होंने धर्मधुरंधर, धीर और बुद्धिमान राम का रुख देख लिया और वे रहते हुए न जान पड़े,

तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही॥
कहि बन के दुख दुसह सुनाए। सासु ससुर पितु सुख समुझाए॥

तब राजा ने सीता को हृदय से लगा लिया और बड़े प्रेम से बहुत प्रकार की शिक्षा दी। वन के दुःसह दुःख कहकर सुनाए। फिर सास, ससुर तथा पिता के (पास रहने के) सुखों को समझाया।

सिय मनु राम चरन अनुरागा। घरु न सुगमु बनु बिषमु न लागा॥
औरउ सबहिं सीय समुझाई। कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई॥

परंतु सीता का मन राम के चरणों में अनुरक्त था। इसलिए उन्हें घर अच्छा नहीं लगा और न वन भयानक लगा। फिर और सब लोगों ने भी वन में विपत्तियों की अधिकता बता-बताकर सीता को समझाया।

सचिव नारि गुर नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी॥
तुम्ह कहुँ तौ न दीन्ह बनबासू। करहु जो कहहिं ससुर गुर सासू॥

मंत्री सुमंत्र की पत्नी और गुरु वशिष्ठ की स्त्री अरुंधती तथा और भी चतुर स्त्रियाँ स्नेह के साथ कोमल वाणी से कहती हैं कि तुमको तो (राजा ने) वनवास दिया नहीं है। इसलिए जो ससुर, गुरु और सास कहें, तुम तो वही करो।

दो० - सिख सीतलि हित मधुर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि॥ 78॥

यह शीतल, हितकारी, मधुर और कोमल सीख सुनने पर सीता को अच्छी नहीं लगी। (वे इस प्रकार व्याकुल हो गईं) मानो शरद ऋतु के चंद्रमा की चाँदनी लगते ही चकई व्याकुल हो उठी हो॥ 78॥

सीय सकुच बस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई॥
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगें धरि बोली मृदु बानी॥

सीता संकोचवश उत्तर नहीं देतीं। इन बातों को सुनकर कैकेयी तमककर उठी। उसने मुनियों के वस्त्र, आभूषण (माला, मेखला आदि) और बर्तन (कमंडलु आदि) लाकर राम के आगे रख दिए और कोमल वाणी से कहा -

नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाड़िहि भीरा॥
सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ॥

हे रघुवीर! राजा को तुम प्राणों के समान प्रिय हो। भीरु (प्रेमवश दुर्बल हृदय के) राजा शील और स्नेह नहीं छोड़ेंगे! पुण्य, सुंदर यश और परलोक चाहे नष्ट हो जाए, पर तुम्हें वन जाने को वे कभी न कहेंगे।

अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुखु पावा॥
भूपहि बचन बानसम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे॥

ऐसा विचारकर जो तुम्हें अच्छा लगे वही करो। माता की सीख सुनकर राम ने (बड़ा) सुख पाया। परंतु राजा को ये वचन बाण के समान लगे। (वे सोचने लगे) अब भी अभागे प्राण (क्यों) नहीं निकलते!

लोग बिकल मुरुछित नरनाहू। काह करिअ कछु सूझ न काहू॥
रामु तुरत मुनि बेषु बनाई। चले जनक जननिहि सिरु नाई॥

राजा मूर्छित हो गए, लोग व्याकुल हैं। किसी को कुछ सूझ नहीं पड़ता कि क्या करें। राम तुरंत मुनि का वेष बनाकर और माता-पिता को सिर नवाकर चल दिए।

दो० - सजि बन साजु समाजु सबु बनिता बंधु समेत।
बंदि बिप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत॥ 79॥

वन का सब साज-सामान सजकर (वन के लिए आवश्यक वस्तुओं को साथ लेकर) राम स्त्री (सीता) और भाई (लक्ष्मण) सहित, ब्राह्मण और गुरु के चरणों की वंदना करके सबको अचेत करके चले॥ 79॥

निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढ़े। देखे लोग बिरह दव दाढ़े॥

कहि प्रिय बचन सकल समुझाए। बिप्र बृंद रघुबीर बोलाए॥

राजमहल से निकलकर राम वशिष्ठ के दरवाजे पर जा खड़े हुए और देखा कि सब लोग विरह की अग्नि में जल रहे हैं। उन्होंने प्रिय वचन कहकर सबको समझाया, फिर राम ने ब्राह्मणों की मंडली को बुलाया।

गुर सन कहि बरषासन दीन्हे। आदर दान बिनय बस कीन्हे॥
जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे॥

गुरु से कहकर उन सबको वर्षाशन (वर्षभर का भोजन) दिए और आदर, दान तथा विनय से उन्हें वश में कर लिया। फिर याचकों को दान और मान देकर संतुष्ट किया तथा मित्रों को पवित्र प्रेम से प्रसन्न किया।

दासीं दास बोलाइ बहोरी। गुरहि सौंपि बोले कर जोरी॥
सब कै सार सँभार गोसाईं। करबि जनक जननी की नाईं॥

फिर दास-दासियों को बुलाकर उन्हें गुरु को सौंपकर, हाथ जोड़कर बोले - हे गुसाईं! इन सबकी माता-पिता के समान सार-सँभार (देख-रेख) करते रहिएगा।

बारहिं बार जोरि जुग पानी। कहत रामु सब सन मृदु बानी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जेहि तें रहै भुआल सुखारी॥

राम बार-बार दोनों हाथ जोड़कर सबसे कोमल वाणी कहते हैं कि मेरा सब प्रकार से हितकारी मित्र वही होगा जिसकी चेष्टा से महाराज सुखी रहें।

दो० - मातु सकल मोरे बिरहँ जेहिं न होहिं दुख दीन।
सोइ उपाउ तुम्ह करेहु सब पुर जन परम प्रबीन॥ 80॥

हे परम चतुर पुरवासी सज्जनो! आप लोग सब वही उपाय करिएगा, जिससे मेरी सब माताएँ मेरे विरह के दुःख से दुःखी न हों॥ 80॥

एहि बिधि राम सबहि समुझावा। गुर पद पदुम हरषि सिरु नावा॥
गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई॥

इस प्रकार राम ने सबको समझाया और हर्षित होकर गुरु के चरणकमलों में सिर नवाया।

फिर गणेश, पार्वती और कैलासपति महादेव को मनाकर तथा आशीर्वाद पाकर रघुनाथ चले॥

राम चलत अति भयउ बिषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू॥
कुसगुन लंक अवध अति सोकू। हरष बिषाद बिबस सुरलोकू॥

राम के चलते ही बड़ा भारी विषाद हो गया। नगर का आर्तनाद (हाहाकर) सुना नहीं जाता। लंका में बुरे शकुन होने लगे, अयोध्या में अत्यंत शोक छा गया और देवलोक में सब हर्ष और विषाद दोनों के वश में हो गए। (हर्ष इस बात का था कि अब राक्षसों का नाश होगा और विषाद अयोध्यावासियों के शोक के कारण था।)

गइ मुरुछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे॥
रामु चले बन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं॥

मूर्छा दूर हुई, तब राजा जागे और सुमंत्र को बुलाकर ऐसा कहने लगे - राम वन को चले गए, पर मेरे प्राण नहीं जा रहे हैं। न जाने ये किस सुख के लिए शरीर में टिक रहे हैं।

एहि तें कवन ब्यथा बलवाना। जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू। लै रथु संग सखा तुम्ह जाहू॥

इससे अधिक बलवती और कौन-सी व्यथा होगी जिस दुःख को पाकर प्राण शरीर को छोड़ेंगे। फिर धीरज धरकर राजा ने कहा - हे सखा! तुम रथ लेकर राम के साथ जाओ।

दो० - सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनकसुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि॥ 81॥

अत्यंत सुकुमार दोनों कुमारों को और सुकुमारी जानकी को रथ में चढ़ाकर, वन दिखलाकर चार दिन के बाद लौट आना॥ 81॥

जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई॥
तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेसकिसोरी॥

यदि धैर्यवान दोनों भाई न लौटें - क्योंकि रघुनाथ प्रण के सच्चे और दृढ़ता से नियम का पालन करनेवाले हैं - तो तुम हाथ जोड़कर विनती करना कि हे प्रभो! जनककुमारी सीता

को तो लौटा दीजिए।

जब सिय कानन देखि डेराई। कहेहु मोरि सिख अवसरु पाई॥
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू॥

जब सीता वन को देखकर डरें, तब मौका पाकर मेरी यह सीख उनसे कहना कि तुम्हारे सास और ससुर ने ऐसा संदेश कहा है कि हे पुत्री! तुम लौट चलो, वन में बहुत क्लेश हैं।

पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी॥
एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा॥

कभी पिता के घर, कभी ससुराल, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहीं रहना। इस प्रकार तुम बहुत-से उपाय करना। यदि सीता लौट आईं तो मेरे प्राणों को सहारा हो जाएगा।

नाहिं त मोर मरनु परिनामा। कछु न बसाइ भएँ बिधि बामा॥
अस कहि मुरुछि परा महि राऊ। रामु लखनु सिय आनि देखाऊ॥

नहीं तो अंत में मेरा मरण ही होगा। विधाता के विपरीत होने पर कुछ वश नहीं चलता। हा! राम, लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखाओ। ऐसा कहकर राजा मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

दो० - पाइ रजायसु नाइ सिरु रथु अति बेग बनाइ।
गयउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ॥ 82॥

सुमंत्र राजा की आज्ञा पाकर, सिर नवाकर और बहुत जल्दी रथ जुड़वाकर वहाँ गए, जहाँ नगर के बाहर सीता सहित दोनों भाई थे॥ 82॥

तब सुमंत्र नृप बचन सुनाए। करि बिनती रथ रामु चढ़ाए॥
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयँ अवधहि सिरु नाई॥

तब (वहाँ पहुँचकर) सुमंत्र ने राजा के वचन राम को सुनाए और विनती करके उनको रथ पर चढ़ाया। सीता सहित दोनों भाई रथ पर चढ़कर हृदय में अयोध्या को सिर नवाकर चले।

चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥

कृपासिंधु बहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं॥

राम को जाते हुए और अयोध्या को अनाथ (होते हुए) देखकर सब लोग व्याकुल होकर उनके साथ हो लिए। कृपा के समुद्र राम उन्हें बहुत तरह से समझाते हैं, तो वे (अयोध्या की ओर) लौट जाते हैं; परंतु प्रेमवश फिर लौट आते हैं।

लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधिआरी॥
घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी॥

अयोध्यापुरी बड़ी डरावनी लग रही है। मानो अंधकारमयी कालरात्रि ही हो। नगर के नर-नारी भयानक जंतुओं के समान एक-दूसरे को देखकर डर रहे हैं।

घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता॥
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥

घर श्मशान, कुटुंबी भूत-प्रेत और पुत्र, हितैषी और मित्र मानो यमराज के दूत हैं। बगीचों में वृक्ष और बेलें कुम्हला रही हैं। नदी और तालाब ऐसे भयानक लगते हैं कि उनकी ओर देखा भी नहीं जाता।

दो० - हय गय कोटिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर।
पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर॥ 83॥

करोड़ों घोड़े, हाथी, खेलने के लिए पाले हुए हिरन, नगर के (गाय, बैल, बकरी आदि) पशु, पपीहे, मोर, कोयल, चकवे, तोते, मैना, सारस, हंस और चकोर - ॥ 83॥

राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े॥
नगरु सफल बनु गहबर भारी। खग मृग बिपुल सकल नर नारी॥

राम के वियोग में सभी व्याकुल हुए जहाँ-तहाँ (ऐसे चुपचाप स्थिर होकर) खड़े हैं, मानो तसवीरों में लिखकर बनाए हुए हैं। नगर मानो फलों से परिपूर्ण बड़ा भारी सघन वन था। नगर निवासी सब स्त्री-पुरुष बहुत-से पशु-पक्षी थे। (अर्थात अवधपुरी अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों फलों को देनेवाली नगरी थी और सब स्त्री-पुरुष सुख से उन फलों को प्राप्त करते थे।)

बिधि कैकई किराततिनि कीन्ही। जेहिं दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही॥

सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी॥

विधाता ने कैकेयी को भीलनी बनाया, जिसने दसों दिशाओं में दुःसह दावाग्नि (भयानक आग) लगा दी। राम के विरह की इस अग्नि को लोग सह न सके। सब लोग व्याकुल होकर भाग चले।

सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं। राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं॥
जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥

सबने मन में विचार कर लिया कि राम, लक्ष्मण और सीता के बिना सुख नहीं है। जहाँ राम रहेंगे, वहीं सारा समाज रहेगा। राम के बिना अयोध्या में हम लोगों का कुछ काम नहीं है।

चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई॥
राम चरन पंकज प्रिय जिन्हही। बिषय भोग बस करहिं कि तिन्हही॥

ऐसा विचार दृढ़ करके देवताओं को भी दुर्लभ सुखों से पूर्ण घरों को छोड़कर सब राम के साथ चल पड़े। जिनको राम के चरणकमल प्यारे हैं, उन्हें क्या कभी विषय भोग वश में कर सकते हैं।

दो॰ - बालक बृद्ध बिहाइ गृहँ लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ॥ 84॥

बच्चों और बूढ़ों को घरों में छोड़कर सब लोग साथ हो लिए। पहले दिन रघुनाथ ने तमसा नदी के तीर पर निवास किया॥ 84॥

रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी। सदय हृदयँ दुखु भयउ बिसेषी॥
करुनामय रघुनाथ गोसाँई। बेगि पाइअहिं पीर पराई॥

प्रजा को प्रेमवश देखकर रघुनाथ के दयालु हृदय में बड़ा दुःख हुआ। प्रभु रघुनाथ करुणामय हैं। पराई पीड़ा को वे तुरंत पा जाते हैं (अर्थात दूसरे का दुःख देखकर वे तुरंत स्वयं दुःखित हो जाते हैं)।

कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहुबिधि राम लोग समुझाए॥

किए धरम उपदेस घनेरे। लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरे॥

प्रेमयुक्त कोमल और सुंदर वचन कहकर राम ने बहुत प्रकार से लोगों को समझाया और बहुतेरे धर्म संबंधी उपदेश दिए; परंतु प्रेमवश लोग लौटाए लौटते नहीं।

सीलु सनेहु छाड़ि नहिं जाई। असमंजस बस भे रघुराई॥
लोग सोग श्रम बस गए सोई। कछुक देवमायाँ मति मोई॥

शील और स्नेह छोड़ा नहीं जाता। रघुनाथ असमंजस के अधीन हो गए (दुविधा में पड़ गए)। शोक और परिश्रम (थकावट) के मारे लोग सो गए और कुछ देवताओं की माया से भी उनकी बुद्धि मोहित हो गई।

जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती॥
खोज मारि रथु हाँकहु ताता। आन उपायँ बनिहि नहिं बाता॥

जब दो पहर बीत गई, तब राम ने प्रेमपूर्वक मंत्री सुमंत्र से कहा - हे तात! रथ के खोज मारकर (अर्थात पहियों के चिह्नों से दिशा का पता न चले इस प्रकार) रथ को हाँकिए। और किसी उपाय से बात नहीं बनेगी।

दो॰ - राम लखन सिय जान चढ़ि संभु चरन सिरु नाइ।
सचिवँ चलायउ तुरत रथु इत उत खोज दुराइ॥ 85॥

शंकर के चरणों में सिर नवाकर राम, लक्ष्मण और सीता रथ पर सवार हुए। मंत्री ने तुरंत ही रथ को इधर-उधर खोज छिपाकर चला दिया॥ 85॥

जागे सकल लोग भएँ भोरू। गे रघुनाथ भयउ अति सोरू॥
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं॥

सबेरा होते ही सब लोग जागे, तो बड़ा शोर मचा कि रघुनाथ चले गए। कहीं रथ का खोज नहीं पाते, सब 'हा राम! हा राम!' पुकारते हुए चारों ओर दौड़ रहे हैं।

मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू॥
एकहि एक देहिं उपदेसू। तजे राम हम जानि कलेसू॥

मानो समुद्र में जहाज डूब गया हो, जिससे व्यापारियों का समुदाय बहुत ही व्याकुल हो

उठा हो। वे एक-दूसरे को उपदेश देते हैं कि राम ने, हम लोगों को क्लेश होगा, यह जानकर छोड़ दिया है।

निंदहिं आपु सराहहिं मीना। धिग जीवनु रघुबीर बिहीना॥
जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न मागें दीन्हा॥

वे लोग अपनी निंदा करते हैं और मछलियों की सराहना करते हैं। (कहते हैं -) राम के बिना हमारे जीने को धिक्कार है। विधाता ने यदि प्यारे का वियोग ही रचा, तो फिर उसने माँगने पर मृत्यु क्यों नहीं दी!

एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आए अवध भरे परितापा॥
बिषम बियोगु न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना॥

इस प्रकार बहुत-से प्रलाप करते हुए वे संताप से भरे हुए अयोध्या में आए। उन लोगों के विषम वियोग की दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता। (चौदह साल की) अवधि की आशा से ही वे प्राणों को रख रहे हैं।

दो० - राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि॥ 86॥

(सब) स्त्री-पुरुष राम के दर्शन के लिए नियम और व्रत करने लगे और ऐसे दुःखी हो गए जैसे चकवा, चकवी और कमल सूर्य के बिना दीन हो जाते हैं॥ 86॥

सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगबेरपुर पहुँचे जाई॥
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेषी॥

सीता और मंत्री सहित दोनों भाई श्रृंगवेरपुर जा पहुँचे। वहाँ गंगा को देखकर राम रथ से उतर पड़े और बड़े हर्ष के साथ उन्होंने दंडवत की।

लखन सचिवँ सियँ किए प्रनामा। सबहि सहित सुखु पायउ रामा॥
गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला॥

लक्ष्मण, सुमंत्र और सीता ने भी प्रणाम किया। सबके साथ राम ने सुख पाया। गंगा समस्त आनंद-मंगलों की मूल हैं। वे सब सुखों को करनेवाली और सब पीड़ाओं को

हरनेवाली हैं।

कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा। रामु बिलोकहिं गंग तरंगा॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई॥

अनेक कथा प्रसंग कहते हुए राम गंगा की तरंगों को देख रहे हैं। उन्होंने मंत्री को, छोटे भाई लक्ष्मण को और प्रिया सीता को देवनदी गंगा की बड़ी महिमा सुनाई।

मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ॥
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू। तेहि श्रम यह लौकिक ब्यवहारू॥

इसके बाद सबने स्नान किया, जिससे मार्ग का सारा श्रम (थकावट) दूर हो गया और पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। जिनके स्मरण मात्र से (बार-बार जन्मने और मरने का) महान श्रम मिट जाता है, उनको 'श्रम' होना - यह केवल लौकिक व्यवहार (नरलीला) है।

दो० - सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु॥ 87॥

शुद्ध (प्रकृतिजन्य त्रिगुणों से रहित, मायातीत दिव्य मंगलविग्रह) सच्चिदानंद-कंद स्वरूप सूर्य कुल के ध्वजा रूप भगवान राम मनुष्यों के सदृश ऐसे चरित्र करते हैं, जो संसाररूपी समुद्र के पार उतरने के लिए पुल के समान हैं॥ 87॥

यह सुधि गुहँ निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई॥
लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा॥

जब निषादराज गुह ने यह खबर पाई, तब आनंदित होकर उसने अपने प्रियजनों और भाई-बंधुओं को बुला लिया और भेंट देने के लिए फल, मूल (कंद) लेकर और उन्हें भारों (बहँगियों) में भरकर मिलने के लिए चला। उसके हृदय में हर्ष का पार नहीं था।

करि दंडवत भेंट धरि आगें। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागें॥
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूँछी कुसल निकट बैठाई॥

दंडवत करके भेंट सामने रखकर वह अत्यंत प्रेम से प्रभु को देखने लगा। रघुनाथ ने

स्वाभाविक स्नेह के वश होकर उसे अपने पास बैठाकर कुशल पूछी।

नाथ कुसल पद पंकज देखें। भयउँ भागभाजन जन लेखें॥
देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा॥

निषादराज ने उत्तर दिया - हे नाथ! आपके चरणकमल के दर्शन से ही कुशल है (आपके चरणारविंदों के दर्शन कर) आज मैं भाग्यवान पुरुषों की गिनती में आ गया। हे देव! यह पृथ्वी, धन और घर सब आपका है। मैं तो परिवार सहित आपका नीच सेवक हूँ।

कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिय जनु सबु लोगु सिहाऊ॥
कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना॥

अब कृपा करके पुर (श्रृंगवेरपुर) में पधारिए और इस दास की प्रतिष्ठा बढ़ाइए, जिससे सब लोग मेरे भाग्य की बड़ाई करें। राम ने कहा - हे सुजान सखा! तुमने जो कुछ कहा सब सत्य है। परंतु पिता ने मुझको और ही आज्ञा दी है।

दो॰ - बरष चारिदस बासु बन मुनि ब्रत बेषु अहारु।
ग्राम बासु नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु॥ 88॥

(उनकी आज्ञानुसार) मुझे चौदह वर्ष तक मुनियों का व्रत और वेष धारण कर और मुनियों के योग्य आहार करते हुए वन में ही बसना है, गाँव के भीतर निवास करना उचित नहीं है। यह सुनकर गुह को बड़ा दुःख हुआ॥ 88॥

राम लखन सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे॥

राम, लक्ष्मण और सीता के रूप को देखकर गाँव के स्त्री-पुरुष प्रेम के साथ चर्चा करते हैं। (कोई कहती है -) हे सखी! कहो तो, वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे (सुंदर सुकुमार) बालकों को वन में भेज दिया है।

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोयन लाहु हमहि बिधि दीन्हा॥
तब निषादपति उर अनुमाना। तरु सिंसुपा मनोहर जाना॥

कोई एक कहते हैं - राजा ने अच्छा ही किया, इसी बहाने हमें भी ब्रह्मा ने नेत्रों का लाभ दिया। तब निषादराज ने हृदय में अनुमान किया, तो अशोक के पेड़ को (उनके ठहरने के

लिए) मनोहर समझा।

लै रघुनाथहिं ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा॥
पुरजन करि जोहारु घर आए। रघुबर संध्या करन सिधाए॥

उसने रघुनाथ को ले जाकर वह स्थान दिखाया। राम ने (देखकर) कहा कि यह सब प्रकार से सुंदर है। पुरवासी लोग जोहार (वंदना) करके अपने-अपने घर लौटे और राम संध्या करने पधारे।

गुहँ सँवारि साँथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सुहाई॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि पानी॥

गुह ने (इसी बीच) कुश और कोमल पत्तों की कोमल और सुंदर साथरी सजाकर बिछा दी और पवित्र, मीठे और कोमल देख-देखकर दोनों में भर-भरकर फल-मूल और पानी रख दिया (अथवा अपने हाथ से फल-मूल दोनों में भर-भरकर रख दिए)।

दो० - सिय सुमंत्र भ्राता सहित कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुबंसमनि पाय पलोटत भाइ॥ 89॥

सीता, सुमंत्र और भाई लक्ष्मण सहित कंद-मूल-फल खाकर रघुकुल मणि राम लेट गए। भाई लक्ष्मण उनके पैर दबाने लगे॥ 89॥

उठे लखनु प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी॥
कछुक दूरि सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन॥

फिर प्रभु राम को सोते जानकर लक्ष्मण उठे और कोमल वाणी से मंत्री सुमंत्र को सोने के लिए कहकर वहाँ से कुछ दूर पर धनुष-बाण से सजकर, वीरासन से बैठकर जागने (पहरा देने) लगे।

गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीती। ठावँ ठावँ राखे अति प्रीती॥
आपु लखन पहिं बैठेउ जाई। कटि भाथी सर चाप चढ़ाई॥

गुह ने विश्वासपात्र पहरेदारों को बुलाकर अत्यंत प्रेम से जगह-जगह नियुक्त कर दिया। और आप कमर में तरकस बाँधकर तथा धनुष पर बाण चढ़ाकर लक्ष्मण के पास जा

बैठा।

सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयउ प्रेम बस हृदयँ बिषादू॥
तनु पुलकित जलु लोचन बहई। बचन सप्रेम लखन सन कहई॥

प्रभु को जमीन पर सोते देखकर प्रेमवश निषादराज के हृदय में विषाद हो आया। उसका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बहने लगा। वह प्रेम सहित लक्ष्मण से वचन कहने लगा -

भूपति भवन सुभायँ सुहावा। सुरपति सदनु न पटतर पावा॥
मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे॥

महाराज दशरथ का महल तो स्वभाव से ही सुंदर है, इंद्रभवन भी जिसकी समानता नहीं पा सकता। उसमें सुंदर मणियों के रचे चौबारे (छत के ऊपर बँगले) हैं, जिन्हें मानो रति के पति कामदेव ने अपने ही हाथों सजाकर बनाया है।

दो० - सुचि सुबिचित्र सुभोगमय सुमन सुगंध सुबास।
पलँग मंजु मनि दीप जहँ सब बिधि सकल सुपास॥ 90॥

जो पवित्र, बड़े ही विलक्षण, सुंदर भोग पदार्थों से पूर्ण और फूलों की सुगंध से सुवासित हैं; जहाँ सुंदर पलँग और मणियों के दीपक हैं तथा सब प्रकार का पूरा आराम है;॥ 90॥

बिबिध बसन उपधान तुराईं। छीर फेन मृदु बिसद सुहाईं॥
तहँ सिय रामु सयन निसि करहीं। निज छबि रति मनोज मदु हरहीं॥

जहाँ (ओढ़ने-बिछाने के) अनेकों वस्त्र, तकिए और गद्दे हैं, जो दूध के फेन के समान कोमल, निर्मल (उज्ज्वल) और सुंदर हैं; वहाँ (उन चौबारों में) सीता और राम रात को सोया करते थे और अपनी शोभा से रति और कामदेव के गर्व को हरण करते थे।

ते सिय रामु साथरीं सोए। श्रमित बसन बिनु जाहिं न जोए॥
मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुसील दास अरु दासी॥

वही सीता और राम आज घास-फूस की साथरी पर थके हुए बिना वस्त्र के ही सोए हैं। ऐसी दशा में वे देखे नहीं जाते। माता, पिता, कुटुंबी, पुरवासी (प्रजा), मित्र, अच्छे शील-

स्वभाव के दास और दासियाँ -

जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ राम गोसाईं॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस सखा रघुराऊ॥

सब जिनकी अपने प्राणों की तरह सार-सँभार करते थे, वही प्रभु राम आज पृथ्वी पर सो रहे हैं। जिनके पिता जनक हैं, जिनका प्रभाव जगत में प्रसिद्ध है, जिनके ससुर इंद्र के मित्र रघुराज दशरथ हैं,

रामचंदु पति सो बैदेही। सोवत महि बिधि बाम न केही॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करम प्रधान सत्य कह लोगू॥

और पति राम हैं, वही जानकी आज जमीन पर सो रही हैं। विधाता किसको प्रतिकूल नहीं होता! सीता और राम क्या वन के योग्य हैं? लोग सच कहते हैं कि कर्म (भाग्य) ही प्रधान है।

दो० - कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह।
जेहिं रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुखु दीन्ह॥ 91॥

कैकयराज की लड़की नीच बुद्धि कैकेयी ने बड़ी ही कुटिलता की, जिसने रघुनंदन राम और जानकी को सुख के समय दुःख दिया॥ 91॥

भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी। कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी॥
भयउ बिषादु निषादहि भारी। राम सीय महि सयन निहारी॥

वह सूर्यकुलरूपी वृक्ष के लिए कुल्हाड़ी हो गई। उस कुबुद्धि ने संपूर्ण विश्व को दुःखी कर दिया। राम-सीता को जमीन पर सोते हुए देखकर निषाद को बड़ा दुःख हुआ।

बोले लखन मधुर मृदु बानी। ग्यान बिराग भगति रस सानी॥
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

तब लक्ष्मण ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के रस से सनी हुई मीठी और कोमल वाणी बोले - हे भाई! कोई किसी को सुख-दुःख का देनेवाला नहीं है। सब अपने ही किए हुए कर्मों का फल भोगते हैं।

जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति करमु अरु कालू॥

संयोग (मिलना), वियोग (बिछुड़ना), भले-बुरे भोग, शत्रु, मित्र और उदासीन - ये सभी भ्रम के फंदे हैं। जन्म-मृत्यु, संपत्ति-विपत्ति, कर्म और काल - जहाँ तक जगत के जंजाल हैं,

दरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं॥

धरती, घर, धन, नगर, परिवार, स्वर्ग और नरक आदि जहाँ तक व्यवहार हैं, जो देखने, सुनने और मन के अंदर विचारने में आते हैं, इन सबका मूल मोह (अज्ञान) ही है। परमार्थतः ये नहीं हैं।

दो० - सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ॥ 92॥

जैसे स्वप्न में राजा भिखारी हो जाए या कंगाल स्वर्ग का स्वामी इंद्र हो जाए, तो जागने पर लाभ या हानि कुछ भी नहीं है; वैसे ही इस दृश्य-प्रपंच को हृदय से देखना चाहिए॥ 92॥

अस बिचारि नहिं कीजिअ रोसू। काहुहि बादि न देइअ दोसू॥
मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥

ऐसा विचारकर क्रोध नहीं करना चाहिए और न किसी को व्यर्थ दोष ही देना चाहिए। सब लोग मोहरूपी रात्रि में सोनेवाले हैं और सोते हुए उन्हें अनेकों प्रकार के स्वप्न दिखाई देते हैं।

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥

इस जगतरूपी रात्रि में योगी लोग जागते हैं, जो परमार्थी हैं और प्रपंच (मायिक जगत) से छूटे हुए हैं। जगत में जीव को जागा हुआ तभी जानना चाहिए, जब संपूर्ण भोग-विलासों से वैराग्य हो जाए।

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥

सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥

विवेक होने पर मोहरूपी भ्रम भाग जाता है, तब (अज्ञान का नाश होने पर) रघुनाथ के चरणों में प्रेम होता है। हे सखा! मन, वचन और कर्म से राम के चरणों में प्रेम होना, यही सर्वश्रेष्ठ परमार्थ (पुरुषार्थ) है।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥

राम परमार्थस्वरूप (परमवस्तु) परब्रह्म हैं। वे अविगत (जानने में न आनेवाले), अलख (स्थूल दृष्टि से देखने में न आनेवाले), अनादि (आदिरहित), अनुपम (उपमारहित) सब विकारों से रहति और भेद शून्य हैं, वेद जिनका नित्य 'नेति-नेति' कहकर निरूपण करते हैं।

दो० - भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जग जाल॥ 93॥

वही कृपालु राम भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गौ और देवताओं के हित के लिए मनुष्य शरीर धारण करके लीलाएँ करते हैं, जिनके सुनने से जगत के जंजाल मिट जाते हैं॥ 93॥

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू॥
कहत राम गुन भा भिनुसारा। जागे जग मंगल सुखदारा॥

हे सखा! ऐसा समझ, मोह को त्यागकर सीताराम के चरणों में प्रेम करो। इस प्रकार राम के गुण कहते-कहते सबेरा हो गया! तब जगत का मंगल करनेवाले और उसे सुख देनेवाले राम जागे।

सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बट छीर मगावा॥
अनुज सहित सिर जटा बनाए। देखि सुमंत्र नयन जल छाए॥

शौच के सब कार्य करके (नित्य) पवित्र और सुजान राम ने स्नान किया। फिर बड़ का दूध मँगाया और छोटे भाई लक्ष्मण सहित उस दूध से सिर पर जटाएँ बनाईं। यह देखकर सुमंत्र के नेत्रों में जल छा गया।

हृदयँ दाहु अति बदन मलीना। कह कर जोर बचन अति दीना॥

नाथ कहेउ अस कोसलनाथा। लै रथु जाहु राम कें साथा॥

उनका हृदय अत्यंत जलने लगा, मुँह मलिन (उदास) हो गया। वे हाथ जोड़कर अत्यंत दीन वचन बोले - हे नाथ! मुझे कोसलनाथ दशरथ ने ऐसी आज्ञा दी थी कि तुम रथ लेकर राम के साथ जाओ,

बनु देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई॥
लखनु रामु सिय आनेहु फेरी। संसय सकल सँकोच निबेरी॥

वन दिखाकर, गंगा स्नान कराकर दोनों भाइयों को तुरंत लौटा लाना। सब संशय और संकोच को दूर करके लक्ष्मण, राम, सीता को फिरा लाना।

दो॰ - नृप अस कहेउ गोसाइँ जस कहइ करौं बलि सोइ।
करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ॥ 94॥

महाराज ने ऐसा कहा था, अब प्रभु जैसा कहें, मैं वही करूँ; मैं आपकी बलिहारी हूँ। इस प्रकार से विनती करके वे राम के चरणों में गिर पड़े और बालक की तरह रो दिया॥ 94॥

तात कृपा करि कीजिअ सोई। जातें अवध अनाथ न होई॥
मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरम मतु तुम्ह सबु सोधा॥

(और कहा -) हे तात! कृपा करके वही कीजिए जिससे अयोध्या अनाथ न हो। राम ने मंत्री को उठाकर धैर्य बँधाते हुए समझाया कि हे तात! आपने तो धर्म के सभी सिद्धांतों को छान डाला है।

सिबि दधीच हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि संकट नाना॥

शिबि, दधीचि और राजा हरिश्चंद्र ने धर्म के लिए करोड़ों (अनेकों) कष्ट सहे थे। बुद्धिमान राजा रंतिदेव और बलि बहुत-से संकट सहकर भी धर्म को पकड़े रहे (उन्होंने धर्म का परित्याग नहीं किया)।

धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥
मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा। तजें तिहूँ पुर अपजसु छावा॥

वेद, शास्त्र और पुराणों में कहा गया है कि सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है। मैंने उस धर्म को सहज ही पा लिया है। इस (सत्यरूपी धर्म) का त्याग करने से तीनों लोकों में अपयश छा जाएगा।

संभावित कहुँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहउँ। दिएँ उतरु फिरि पातकु लहऊँ॥

प्रतिष्ठित पुरुष के लिए अपयश की प्राप्ति करोड़ों मृत्यु के समान भीषण संताप देनेवाली है। हे तात! मैं आप से अधिक क्या कहूँ! लौटकर उत्तर देने में भी पाप का भागी होता हूँ।

दो० - पितु पद गहि कहि कोटि नति बिनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहु बात कै तात करिअ जनि मोरि॥ 95॥

आप जाकर पिता के चरण पकड़कर करोड़ों नमस्कार के साथ ही हाथ जोड़कर बिनती करिएगा कि हे तात! आप मेरी किसी बात की चिंता न करें॥ 95॥

तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें। बिनती करउँ तात कर जोरें॥
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें। दुख न पाव पितु सोच हमारें॥

आप भी पिता के समान ही मेरे बड़े हितैषी हैं। हे तात! मैं हाथ जोड़कर आप से विनती करता हूँ कि आपका भी सब प्रकार से वही कर्तव्य है जिसमें पिता हम लोगों के सोच में दुःख न पाएँ।

सुनि रघुनाथ सचिव संबादू। भयउ सपरिजन बिकल निषादू॥
पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी॥

रघुनाथ और सुमंत्र का यह संवाद सुनकर निषादराज कुटुंबियों सहित व्याकुल हो गया। फिर लक्ष्मण ने कुछ कड़वी बात कही। प्रभु राम ने उसे बहुत ही अनुचित जानकर उनको मना किया।

सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई॥
कह सुमंत्रु पुनि भूप सँदेसू। सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू॥

राम ने सकुचाकर, अपनी सौगंध दिलाकर सुमंत्र से कहा कि आप जाकर लक्ष्मण का यह

संदेश न कहिएगा। सुमंत्र ने फिर राजा का संदेश कहा कि सीता वन के क्लेश न सह सकेंगी।

जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। होइ रघुबरहि तुम्हहि करनीया॥
नतरु निपट अवलंब बिहीना। मैं न जिअब जिमि जल बिनु मीना॥

अतएव जिस तरह सीता अयोध्या को लौट आएँ, तुमको और राम को वही उपाय करना चाहिए। नहीं तो मैं बिल्कुल ही बिना सहारे का होकर वैसे ही नहीं जीऊँगा जैसे बिना जल के मछली नहीं जीती।

दो० - मइकें ससुरें सकल सुख जबहिं जहाँ मनु मान।
तहँ तब रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति बिहान॥ 96॥

सीता के मायके (पिता के घर) और ससुराल में सब सुख हैं। जब तक यह विपत्ति दूर नहीं होती, तब तक वे जब जहाँ जी चाहें, वहीं सुख से रहेंगी॥ 96॥

बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती॥
पितु सँदेसु सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना॥

राजा ने जिस तरह (जिस दीनता और प्रेम से) विनती की है, वह दीनता और प्रेम कहा नहीं जा सकता। कृपानिधान राम ने पिता का संदेश सुनकर सीता को करोड़ों (अनेकों) प्रकार से सीख दी।

सासु ससुर गुर प्रिय परिवारू। फिरहु त सब कर मिटै खभारू॥
सुनि पति बचन कहति बैदेही। सुनहु प्रानपति परम सनेही॥

(उन्होंने कहा -) जो तुम घर लौट जाओ, तो सास, ससुर, गुरु, प्रियजन एवं कुटुंबी सबकी चिंता मिट जाए। पति के वचन सुनकर जानकी कहती हैं - हे प्राणपति! हे परम स्नेही! सुनिए।

प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी॥
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका चंदु तजि जाई॥

हे प्रभो! आप करुणामय और परम ज्ञानी हैं। (कृपा करके विचार तो कीजिए) शरीर को छोड़कर छाया अलग कैसे रोकी रह सकती है? सूर्य की प्रभा सूर्य को छोड़कर कहाँ जा

सकती है? और चाँदनी चंद्रमा को त्यागकर कहाँ जा सकती है?

पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई। कहति सचिव सन गिरा सुहाई॥
तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी। उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी॥

इस प्रकार पति को प्रेममयी विनती सुनाकर सीता मंत्री से सुहावनी वाणी कहने लगीं - आप मेरे पिता और ससुर के समान मेरा हित करनेवाले हैं। आपको मैं बदले में उत्तर देती हूँ, यह बहुत ही अनुचित है।

दो० - आरति बस सनमुख भइउँ बिलगु न मानब तात।
आरजसुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात॥ 97॥

किंतु हे तात! मैं आर्त्त होकर ही आपके सम्मुख हुई हूँ, आप बुरा न मानिएगा। आर्यपुत्र (स्वामी) के चरणकमलों के बिना जगत में जहाँ तक नाते हैं सभी मेरे लिए व्यर्थ हैं॥ 97॥

पितु बैभव बिलास मैं डीठा। नृप मनि मुकुट मिलित पद पीठा॥
सुखनिधान अस पितु गृह मोरें। पिय बिहीन मन भाव न भोरें॥

मैंने पिता के ऐश्वर्य की छटा देखी है, जिनके चरण रखने की चौकी से सर्वशिरोमणि राजाओं के मुकुट मिलते हैं (अर्थात बड़े-बड़े राजा जिनके चरणों में प्रणाम करते हैं) ऐसे पिता का घर भी, जो सब प्रकार के सुखों का भंडार है, पति के बिना मेरे मन को भूलकर भी नहीं भाता।

ससुर चक्कवइ कोसल राऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
आगें होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंघासन आसनु देई॥

मेरे ससुर कोसलराज चक्रवर्ती सम्राट हैं, जिनका प्रभाव चौदहों लोकों में प्रकट है, इंद्र भी आगे होकर जिनका स्वागत करता है और अपने आधे सिंहासन पर बैठने के लिए स्थान देता है,

ससुरु एतादृस अवध निवासू। प्रिय परिवारु मातु सम सासू॥
बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा॥

ऐसे (ऐश्वर्य और प्रभावशाली) ससुर; (उनकी राजधानी) अयोध्या का निवास; प्रिय कुटुंबी

और माता के समान सासुएँ - ये कोई भी रघुनाथ के चरण कमलों की रज के बिना मुझे स्वप्न में भी सुखदायक नहीं लगते।

अगम पंथ बनभूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा॥
कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहि सब सुखद प्रानपति संगा॥

दुर्गम रास्ते, जंगली धरती, पहाड़, हाथी, सिंह, अथाह तालाब एवं नदियाँ; कोल, भील, हिरन और पक्षी - प्राणपति (रघुनाथ) के साथ रहते ये सभी मुझे सुख देनेवाले होंगे।

दो० - सासु ससुर सन मोरि हुँति बिनय करबि परि पायँ।
मोर सोचु जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभायँ॥ 98॥

अतः सास और ससुर के पाँव पड़कर, मेरी ओर से विनती कीजिएगा कि वे मेरा कुछ भी सोच न करें; मैं वन में स्वभाव से ही सुखी हूँ॥ 98॥

प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरें धनु भाथा॥
नहिं मग श्रमु भ्रमु दुख मन मोरें। मोहि लगि सोचु करिअ जनि भोरें॥

वीरों में अग्रगण्य तथा धनुष और (बाणों से भरे) तरकस धारण किए मेरे प्राणनाथ और प्यारे देवर साथ हैं। इससे मुझे न रास्ते की थकावट है, न भ्रम है और न मेरे मन में कोई दुःख ही है। आप मेरे लिए भूलकर भी सोच न करें।

सुनि सुमंत्रु सिय सीतलि बानी। भयउ बिकल जनु फनि मनि हानी॥
नयन सूझ नहिं सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना॥

सुमंत्र सीता की शीतल वाणी सुनकर ऐसे व्याकुल हो गए जैसे साँप मणि खो जाने पर। नेत्रों से कुछ सूझता नहीं, कानों से सुनाई नहीं देता। वे बहुत व्याकुल हो गए, कुछ कह नहीं सकते।

राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। तदपि होति नहिं सीतलि छाती॥
जतन अनेक साथ हित कीन्हे। उचित उतर रघुनंदन दीन्हे॥

राम ने उनका बहुत प्रकार से समाधान किया। तो भी उनकी छाती ठंडी न हुई। साथ चलने के लिए मंत्री ने अनेकों यत्न किए (युक्तियाँ पेश कीं), पर रघुनंदन राम (उन सब

युक्तियों का) यथोचित उत्तर देते गए।

मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करम गति कछु न बसाई॥
राम लखन सिय पद सिरु नाई। फिरेउ बनिक जिमि मूर गवाँई॥

राम की आज्ञा मेटी नहीं जा सकती। कर्म की गति कठिन है, उस पर कुछ भी वश नहीं चलता। राम, लक्ष्मण और सीता के चरणों में सिर नवाकर सुमंत्र इस तरह लौटे जैसे कोई व्यापारी अपना मूलधन (पूँजी) गँवाकर लौटे।

दो० - रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद बिषादबस धुनहिं सीस पछिताहिं॥ 99॥

सुमंत्र ने रथ को हाँका, घोड़े राम की ओर देख-देखकर हिनहिनाते हैं। यह देखकर निषाद लोग विषाद के वश होकर सिर धुन-धुनकर (पीट-पीटकर) पछताते हैं॥ 99॥

जासु बियोग बिकल पसु ऐसें। प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसें॥
बरबस राम सुमंत्रु पठाए। सुरसरि तीर आपु तब आए॥

जिनके वियोग में पशु इस प्रकार व्याकुल हैं, उनके वियोग में प्रजा, माता और पिता कैसे जीते रहेंगे? राम ने जबरदस्ती सुमंत्र को लौटाया। तब आप गंगा के तीर पर आए।

मागी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥

राम ने केवट से नाव माँगी, पर वह लाता नहीं। वह कहने लगा - मैंने तुम्हारा मर्म (भेद) जान लिया। तुम्हारे चरण कमलों की धूल के लिए सब लोग कहते हैं कि वह मनुष्य बना देनेवाली कोई जड़ी है,

छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥

जिसके छूते ही पत्थर की शिला सुंदरी स्त्री हो गई (मेरी नाव तो काठ की है)। काठ पत्थर से कठोर तो होता नहीं। मेरी नाव भी मुनि की स्त्री हो जाएगी और इस प्रकार मेरी नाव उड़ जाएगी, मैं लुट जाऊँगा (अथवा रास्ता रुक जाएगा, जिससे आप पार न हो

सकेंगे और मेरी रोजी मारी जाएगी) (मेरी कमाने-खाने की राह ही मारी जाएगी)।

एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥

मैं तो इसी नाव से सारे परिवार का पालन-पोषण करता हूँ। दूसरा कोई धंधा नहीं जानता। हे प्रभु! यदि तुम अवश्य ही पार जाना चाहते हो तो मुझे पहले अपने चरण-कमल पखारने (धो लेने) के लिए कह दो।

छं० - पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं॥
बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥

हे नाथ! मैं चरण कमल धोकर आप लोगों को नाव पर चढ़ा लूँगा; मैं आपसे कुछ उतराई नहीं चाहता। हे राम! मुझे आपकी दुहाई और दशरथ की सौगंध है, मैं सब सच-सच कहता हूँ। लक्ष्मण भले ही मुझे तीर मारें, पर जब तक मैं पैरों को पखार न लूँगा, तब तक हे तुलसीदास के नाथ! हे कृपालु! मैं पार नहीं उतारूँगा।

सो० - सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन॥ 100॥

केवट के प्रेम में लपेटे हुए अटपटे वचन सुनकर करुणाधाम राम जानकी और लक्ष्मण की ओर देखकर हँसे॥ 100॥

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू॥

कृपा के समुद्र राम केवट से मुसकराकर बोले - भाई! तू वही कर जिससे तेरी नाव न जाए। जल्दी पानी ला और पैर धो ले। देर हो रही है, पार उतार दे।

जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा॥

एक बार जिनका नाम स्मरण करते ही मनुष्य अपार भवसागर के पार उतर जाते हैं और

जिन्होंने (वामनावतार में) जगत को तीन पग से भी छोटा कर दिया था (दो ही पग में त्रिलोकी को नाप लिया था), वही कृपालु राम (गंगा से पार उतारने के लिए) केवट का निहोरा कर रहे हैं!

पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोहँ मति करषी॥
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा॥

प्रभु के इन वचनों को सुनकर गंगा की बुद्धि मोह से खिंच गई थी (कि ये साक्षात भगवान होकर भी पार उतारने के लिए केवट का निहोरा कैसे कर रहे हैं)। परंतु (समीप आने पर अपनी उत्पत्ति के स्थान) पदनखों को देखते ही (उन्हें पहचानकर) देवनदी गंगा हर्षित हो गईं। (वे समझ गईं कि भगवान नरलीला कर रहे हैं, इससे उनका मोह नष्ट हो गया; और इन चरणों का स्पर्श प्राप्त करके मैं धन्य होऊँगी, यह विचारकर वे हर्षित हो गईं।) केवट राम की आज्ञा पाकर कठौते में भरकर जल ले आया।

अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥

अत्यंत आनंद और प्रेम में उमंगकर वह भगवान के चरणकमल धोने लगा। सब देवता फूल बरसाकर सिहाने लगे कि इसके समान पुण्य की राशि कोई नहीं है।

दो० - पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥ 101॥

चरणों को धोकर और सारे परिवार सहित स्वयं उस जल (चरणोदक) को पीकर पहले (उस महान पुण्य के द्वारा) अपने पितरों को भवसागर से पार कर फिर आनंदपूर्वक प्रभु राम को गंगा के पार ले गया॥ 101॥

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥

निषादराज और लक्ष्मण सहित सीता और राम (नाव से) उतरकर गंगा की रेत (बालू) में खड़े हो गए। तब केवट ने उतरकर दंडवत की। (उसको दंडवत करते देखकर) प्रभु को संकोच हुआ कि इसको कुछ दिया नहीं।

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई॥

पति के हृदय की जाननेवाली सीता ने आनंद भरे मन से अपनी रत्न जड़ित अँगूठी (अंगुली से) उतारी। कृपालु राम ने केवट से कहा, नाव की उतराई लो। केवट ने व्याकुल होकर चरण पकड़ लिए।

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी॥

(उसने कहा -) हे नाथ! आज मैंने क्या नहीं पाया! मेरे दोष, दुःख और दरिद्रता की आग आज बुझ गई है। मैंने बहुत समय तक मजदूरी की। विधाता ने आज बहुत अच्छी भरपूर मजदूरी दे दी।

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीन दयाल अनुग्रह तोरें॥
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा॥

हे नाथ! हे दीनदयाल! आपकी कृपा से अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। लौटती बार आप मुझे जो कुछ देंगे, वह प्रसाद मैं सिर चढ़ाकर लूँगा।

दो० - बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहिं कछु केवटु लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ॥ 102॥

प्रभु राम, लक्ष्मण और सीता ने बहुत आग्रह (या यत्न) किया, पर केवट कुछ नहीं लेता। तब करुणा के धाम भगवान राम ने निर्मल भक्ति का वरदान देकर उसे विदा किया॥ 102॥

तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा॥
सियँ सुरसरिहि कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी॥

फिर रघुकुल के स्वामी राम ने स्नान करके पार्थिव पूजा की और शिव को सिर नवाया। सीता ने हाथ जोड़कर गंगा से कहा - हे माता! मेरा मनोरथ पूरा कीजिएगा।

पति देवर सँग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहिं पूजा तोरी॥

सुनि सिय बिनय प्रेम रस सानी। भइ तब बिमल बारि बर बानी॥

जिससे मैं पति और देवर के साथ कुशलतापूर्वक लौट आकर तुम्हारी पूजा करूँ। सीता की प्रेम रस में सनी हुई विनती सुनकर तब गंगा के निर्मल जल में से श्रेष्ठ वाणी हुई -

सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। तब प्रभाउ जग बिदित न केही॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरें। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें॥

हे रघुवीर की प्रियतमा जानकी! सुनो, तुम्हारा प्रभाव जगत में किसे नहीं मालूम है? तुम्हारे (कृपा दृष्टि से) देखते ही लोग लोकपाल हो जाते हैं। सब सिद्धियाँ हाथ जोड़े तुम्हारी सेवा करती हैं।

तुम्ह जो हमहि बड़ि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई॥
तदपि देबि मैं देबि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा॥

तुमने जो मुझको बड़ी विनती सुनाई, यह तो मुझ पर कृपा की और मुझे बड़ाई दी है। तो भी हे देवी! मैं अपनी वाणी सफल होने के लिए तुम्हें आशीर्वाद दूँगी।

दो० - प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मनकामना सुजसु रहिहि जग छाइ॥ 103॥

तुम अपने प्राणनाथ और देवर सहित कुशलपूर्वक अयोध्या लौटोगी। तुम्हारी सारी मनःकामनाएँ पूरी होंगी और तुम्हारा सुंदर यश जगत भर में छा जाएगा॥ 103॥

गंग बचन सुनि मंगल मूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला॥
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुखु भा उर दाहू॥

मंगल के मूल गंगा के वचन सुनकर और देवनदी को अनुकूल देखकर सीता आनंदित हुईं। तब प्रभु राम ने निषादराज गुह से कहा कि भैया! अब तुम घर जाओ! यह सुनते ही उसका मुँह सूख गया और हृदय में दाह उत्पन्न हो गया।

दीन बचन गुह कह कर जोरी। बिनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी॥
नाथ साथ रहि पंथु देखाई। करि दिन चारि चरन सेवकाई॥

गुह हाथ जोड़कर दीन वचन बोला - हे रघुकुल शिरोमणि! मेरी विनती सुनिए। मैं नाथ

(आप) के साथ रहकर, रास्ता दिखाकर, चार (कुछ) दिन चरणों की सेवा करके -

जेहिं बन जाइ रहब रघुराई। परनकुटी मैं करबि सुहाई॥
तब मोहि कहँ जसि देब रजाई। सोइ करिहउँ रघुबीर दोहाई॥

हे रघुराज! जिस वन में आप जाकर रहेंगे, वहाँ मैं सुंदर पर्णकुटी (पत्तों की कुटिया) बना दूँगा। तब मुझे आप जैसी आज्ञा देंगे, मुझे रघुवीर (आप) की दुहाई है, मैं वैसा ही करूँगा।

सहज सनेह राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदयँ हुलासू॥
पुनि गुहँ ग्याति बोलि सब लीन्हे। करि परितोषु बिदा तब कीन्हे॥

उसके स्वाभाविक प्रेम को देखकर राम ने उसको साथ ले लिया, इससे गुह के हृदय में बड़ा आनंद हुआ। फिर गुह (निषादराज) ने अपनी जाति के लोगों को बुला लिया और उनका संतोष कराके तब उनको विदा किया।

दो॰ - तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ॥ 104॥

तब प्रभु रघुनाथ गणेश और शिव का स्मरण करके तथा गंगा को मस्तक नवाकर सखा निषादराज, छोटे भाई लक्ष्मण और सीता सहित वन को चले॥ 104॥

तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू। लखन सखाँ सब कीन्ह सुपासू॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई॥

उस दिन पेड़ के नीचे निवास हुआ। लक्ष्मण और सखा गुह ने (विश्राम की) सब सुव्यवस्था कर दी। प्रभु राम ने सबेरे प्रातःकाल की सब क्रियाएँ करके जाकर तीर्थों के राजा प्रयाग के दर्शन किए।

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी॥
चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू॥

उस राजा का सत्य मंत्री है, श्रद्धा प्यारी स्त्री है और वेणीमाधव-सरीखे हितकारी मित्र हैं। चार पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) से भंडार भरा है और वह पुण्यमय प्रांत ही उस राजा का सुंदर देश है।

छेत्रु अगम गढ़ु गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष अनीक दलन रनधीरा॥

प्रयाग क्षेत्र ही दुर्गम, मजबूत और सुंदर गढ़ (किला) है, जिसको स्वप्न में भी (पापरूपी) शत्रु नहीं पा सके हैं। संपूर्ण तीर्थ ही उसके श्रेष्ठ वीर सैनिक हैं, जो पाप की सेना को कुचल डालनेवाले और बड़े रणधीर हैं।

संगमु सिंहासनु सुठि सोहा। छत्रु अखयबटु मुनि मनु मोहा॥
चवँर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥

(गंगा, यमुना और सरस्वती का) संगम ही उसका अत्यंत सुशोभित सिंहासन है। अक्षयवट छत्र है, जो मुनियों के भी मन को मोहित कर लेता है। यमुना और गंगा की तरंगें उसके (श्याम और श्वेत) चँवर हैं, जिनको देखकर ही दुःख और दरिद्रता नष्ट हो जाती है।

दो० - सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मनकाम।
बंदी बेद पुरान गन कहहिं बिमल गुन ग्राम॥ 105॥

पुण्यात्मा, पवित्र साधु उसकी सेवा करते हैं और सब मनोरथ पाते हैं। वेद और पुराणों के समूह भाट हैं, जो उसके निर्मल गुणगणों का बखान करते हैं॥ 105॥

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुख सागर रघुबर सुखु पावा॥

पापों के समूहरूपी हाथी के मारने के लिए सिंह रूप प्रयागराज का प्रभाव (महत्त्व-माहात्म्य) कौन कह सकता है। ऐसे सुहावने तीर्थराज का दर्शन कर सुख के समुद्र रघुकुल श्रेष्ठ राम ने भी सुख पाया।

कहि सिय लखनहि सखहि सुनाई। श्री मुख तीरथराज बड़ाई॥
करि प्रनामु देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा॥

उन्होंने अपने श्रीमुख से सीता, लक्ष्मण और सखा गुह को तीर्थराज की महिमा कहकर सुनाई। तदनंतर प्रणाम करके, वन और बगीचों को देखते हुए और बड़े प्रेम से माहात्म्य कहते हुए -

एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी॥

मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा॥

इस प्रकार राम ने आकर त्रिवेणी का दर्शन किया, जो स्मरण करने से ही सब सुंदर मंगलों को देनेवाली है। फिर आनंदपूर्वक (त्रिवेणी में) स्नान करके शिव की सेवा (पूजा) की और विधिपूर्वक तीर्थ देवताओं का पूजन किया।

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए। करत दंडवत मुनि उर लाए॥
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानंद रासि जनु पाई॥

(स्नान, पूजन आदि सब करके) तब प्रभु राम भरद्वाज के पास आए। उन्हें दंडवत करते हुए ही मुनि ने हृदय से लगा लिया। मुनि के मन का आनंद कुछ कहा नहीं जाता। मानो उन्हें ब्रह्मानंद की राशि मिल गई हो।

दो० - दीन्हि असीस मुनीस उर अति अनंदु अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल मनहुँ किए बिधि आनि॥ 106॥

मुनीश्वर भरद्वाज ने आशीर्वाद दिया। उनके हृदय में ऐसा जानकर अत्यंत आनंद हुआ कि आज विधाता ने (सीता और लक्ष्मण सहित प्रभु राम के दर्शन कराकर) मानो हमारे संपूर्ण पुण्यों के फल को लाकर आँखों के सामने कर दिया॥ 106॥

कुसल प्रस्न करि आसन दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे॥
कंद मूल फल अंकुर नीके। दिए आनि मुनि मनहुँ अमी के॥

कुशल पूछकर मुनिराज ने उनको आसन दिए और प्रेम सहित पूजन करके उन्हें संतुष्ट कर दिया। फिर मानो अमृत के ही बने हों, ऐसे अच्छे-अच्छे कंद, मूल, फल और अंकुर लाकर दिए।

सीय लखन जन सहित सुहाए। अति रुचि राम मूल फल खाए॥
भए बिगतश्रम रामु सुखारे। भरद्वाज मृदु बचन उचारे॥

सीता, लक्ष्मण और सेवक गुह सहित राम ने उन सुंदर मूल-फलों को बड़ी रुचि के साथ खाया। थकावट दूर होने से राम सुखी हो गए। तब भरद्वाज ने उनसे कोमल वचन कहे -

आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू॥

सफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहि अवलोकत आजू॥

हे राम! आपका दर्शन करते ही आज मेरा तप, तीर्थ सेवन और त्याग सफल हो गया। आज मेरा जप, योग और वैराग्य सफल हो गया और आज मेरे संपूर्ण शुभ साधनों का समुदाय भी सफल हो गया।

लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरें दरस आस सब पूजी॥
अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥

लाभ की सीमा और सुख की सीमा (प्रभु के दर्शन को छोड़कर) दूसरी कुछ भी नहीं है। आपके दर्शन से मेरी सब आशाएँ पूर्ण हो गईं। अब कृपा करके यह वरदान दीजिए कि आपके चरण कमलों में मेरा स्वाभाविक प्रेम हो।

दो० - करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार॥ 107॥

जब तक कर्म, वचन और मन से छल छोड़कर मनुष्य आपका दास नहीं हो जाता, तब तक करोड़ों उपाय करने से भी, स्वप्न में भी वह सुख नहीं पाता॥ 107॥

सुनि मुनि बचन रामु सकुचाने। भाव भगति आनंद अघाने॥
तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा॥

मुनि के वचन सुनकर, उनकी भाव-भक्ति के कारण आनंद से तृप्त हुए भगवान राम (लीला की दृष्टि से) सकुचा गए। तब (अपने ऐश्वर्य को छिपाते हुए) राम ने भरद्वाज मुनि का सुंदर सुयश करोड़ों (अनेकों) प्रकार से कहकर सबको सुनाया।

सो बड़ सो सब गुन गन गेहू। जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू॥
मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं॥

(उन्होंने कहा -) हे मुनीश्वर! जिसको आप आदर दें, वही बड़ा है और वही सब गुणसमूहों का घर है। इस प्रकार राम और मुनि भरद्वाज दोनों परस्पर विनम्र हो रहे हैं और अनिर्वचनीय सुख का अनुभव कर रहे हैं।

यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥

भरद्वाज आश्रम सब आए। देखन दसरथ सुअन सुहाए॥

यह (राम, लक्ष्मण और सीता के आने की) खबर पाकर प्रयाग निवासी ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि, सिद्ध और उदासी सब दशरथ के सुंदर पुत्रों को देखने के लिए भरद्वाज के आश्रम पर आए।

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भए लहि लोयन लाहू॥
देहिं असीस परम सुखु पाई। फिरे सराहत सुंदरताई॥

राम ने सब किसी को प्रणाम किया। नेत्रों का लाभ पाकर सब आनंदित हो गए और परम सुख पाकर आशीर्वाद देने लगे। राम के सौंदर्य की सराहना करते हुए वे लौटे।

दो० - राम कीन्ह बिश्राम निसि प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लखन जन मुदित मुनिहि सिरु नाइ॥ 108॥

राम ने रात को वहीं विश्राम किया और प्रातःकाल प्रयागराज का स्नान करके और प्रसन्नता के साथ मुनि को सिर नवाकर सीता, लक्ष्मण और सेवक गुह के साथ वे चले॥ 108॥

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं॥
मुनि मन बिहसि राम सन कहहीं। सुगम सकल मग तुम्ह कहुँ अहहीं॥

(चलते समय) बड़े प्रेम से राम ने मुनि से कहा - हे नाथ! बताइए हम किस मार्ग से जाएँ। मुनि मन में हँसकर राम से कहते हैं कि आपके लिए सभी मार्ग सुगम हैं।

साथ लागि मुनि सिष्य बोलाए। सुनि मन मुदित पचासक आए॥
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिं मगु दीख हमारा॥

फिर उनके साथ के लिए मुनि ने शिष्यों को बुलाया। (साथ जाने की बात) सुनते ही चित्त में हर्षित हो कोई पचास शिष्य आ गए। सभी का राम पर अपार प्रेम है। सभी कहते हैं कि मार्ग हमारा देखा हुआ है।

मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे॥
करि प्रनामु रिषि आयसु पाई। प्रमुदित हृदयँ चले रघुराई॥

तब मुनि ने (चुनकर) चार ब्रह्मचारियों को साथ कर दिया, जिन्होंने बहुत जन्मों तक सब सुकृत (पुण्य) किए थे। रघुनाथ प्रणाम कर और ऋषि की आज्ञा पाकर हृदय में बड़े ही आनंदित होकर चले।

ग्राम निकट जब निकसहिं जाई। देखहिं दरसु नारि नर धाई॥
होहिं सनाथ जनम फलु पाई। फिरहिं दुखित मनु संग पठाई॥

जब वे किसी गाँव के पास होकर निकलते हैं, तब स्त्री-पुरुष दौड़कर उनके रूप को देखने लगते हैं। जन्म का फल पाकर वे (सदा के अनाथ) सनाथ हो जाते हैं और मन को नाथ के साथ भेजकर (शरीर से साथ न रहने के कारण) दुःखी होकर लौट आते हैं।

दो० - बिदा किए बटु बिनय करि फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम॥ 109॥

तदनंतर राम ने विनती करके चारों ब्रह्मचारियों को विदा किया; वे मनचाही वस्तु (अनन्य भक्ति) पाकर लौटे। यमुना के पार उतरकर सबने यमुना के जल में स्नान किया, जो राम के शरीर के समान ही श्याम रंग का था॥ 109॥

सुनत तीरबासी नर नारी। धाए निज निज काज बिसारी॥
लखन राम सिय सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥

यमुना के किनारे पर रहनेवाले स्त्री-पुरुष (यह सुनकर कि निषाद के साथ दो परम सुंदर सुकुमार नवयुवक और एक परम सुंदरी स्त्री आ रही है) सब अपना-अपना काम भूलकर दौड़े और लक्ष्मण, राम और सीता का सौंदर्य देखकर अपने भाग्य की बड़ाई करने लगे।

अति लालसा बसहिं मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं॥
जे तिन्ह महुँ बयबिरिध सयाने। तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने॥

उनके मन में (परिचय जानने की) बहुत-सी लालसाएँ भरी हैं। पर वे नाम-गाँव पूछते सकुचाते हैं। उन लोगों में जो वयोवृद्ध और चतुर थे; उन्होंने युक्ति से राम को पहचान लिया।

सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई। बनहि चले पितु आयसु पाई॥
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं। रानी रायँ कीन्ह भल नाहीं॥

उन्होंने सब कथा सब लोगों को सुनाई कि पिता की आज्ञा पाकर ये वन को चले हैं। यह सुनकर सब लोग दुःखित हो पछता रहे हैं कि रानी और राजा ने अच्छा नहीं किया।

तेहि अवसर एक तापसु आवा। तेजपुंज लघुबयस सुहावा॥
कबि अलखित गति बेषु बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी॥

उसी अवसर पर वहाँ एक तपस्वी आया, जो तेज का पुंज, छोटी अवस्था का और सुंदर था। उसकी गति कवि नहीं जानते (अथवा वह कवि था जो अपना परिचय नहीं देना चाहता)। वह वैरागी के वेष में था और मन, वचन तथा कर्म से राम का प्रेमी था।

दो० - सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि॥ 110॥

अपने इष्टदेव को पहचानकर उसके नेत्रों में जल भर आया और शरीर पुलकित हो गया। वह दंड की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़ा, उसकी (प्रेमविह्वल) दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता॥ 110॥

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारसु पावा॥
मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ। मिलत धरें तन कह सबु कोऊ॥

राम ने प्रेमपूर्वक पुलकित होकर उसको हृदय से लगा लिया। (उसे इतना आनंद हुआ) मानो कोई महादरिद्री मनुष्य पारस पा गया हो। सब कोई (देखनेवाले) कहने लगे कि मानो प्रेम और परमार्थ (परम तत्त्व) दोनों शरीर धारण करके मिल रहे हैं।

बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा॥

फिर वह लक्ष्मण के चरणों लगा। उन्होंने प्रेम से उमंगकर उसको उठा लिया। फिर उसने सीता की चरण धूलि को अपने सिर पर धारण किया। माता सीता ने भी उसको अपना बच्चा जानकर आशीर्वाद दिया।

कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि राम सनेही॥
पिअत नयन पुट रूपु पियुषा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा॥

फिर निषादराज ने उसको दंडवत की। राम का प्रेमी जानकर वह उस (निषाद) से

आनंदित होकर मिला। वह तपस्वी अपने नेत्ररूपी दोनों से राम की सौंदर्य-सुधा का पान करने लगा और ऐसा आनंदित हुआ जैसे कोई भूखा आदमी सुंदर भोजन पाकर आनंदित होता है।

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे॥
राम लखन सिय रूपु निहारी। होहिं सनेह बिकल नर नारी॥

(इधर गाँव की स्त्रियाँ कह रही हैं -) हे सखी! कहो तो, वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे (सुंदर सुकुमार) बालकों को वन में भेज दिया है। राम, लक्ष्मण और सीता के रूप को देखकर सब स्त्री-पुरुष स्नेह से व्याकुल हो जाते हैं।

दो० - तब रघुबीर अनेक बिधि सखहि सिखावनु दीन्ह॥
राम रजायसु सीस धरि भवन गवनु तेइँ कीन्ह॥ 111॥

तब राम ने सखा गुह को अनेकों तरह से (घर लौट जाने के लिए) समझाया। राम की आज्ञा को सिर चढ़ाकर उसने अपने घर को गमन किया॥ 111॥

पुनि सियँ राम लखन कर जोरी। जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रबितनुजा कइ करत बड़ाई॥

फिर सीता, राम और लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर यमुना को पुनः प्रणाम किया और सूर्यकन्या यमुना की बड़ाई करते हुए सीता सहित दोनों भाई प्रसन्नतापूर्वक आगे चले।

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता॥
राज लखन सब अंग तुम्हारें। देखि सोचु अति हृदय हमारें॥

रास्ते में जाते हुए उन्हें अनेकों यात्री मिलते हैं। वे दोनों भाइयों को देखकर उनसे प्रेमपूर्वक कहते हैं कि तुम्हारे सब अंगों में राज चिह्न देखकर हमारे हृदय में बड़ा सोच होता है।

मारग चलहु पयादेहि पाएँ। ज्योतिषु झूठ हमारें भाएँ॥
अगमु पंथु गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी॥

(ऐसे राजचिह्नों के होते हुए भी) तुम लोग रास्ते में पैदल ही चल रहे हो, इससे हमारी समझ में आता है कि ज्योतिष शास्त्र झूठा ही है। भारी जंगल और बड़े-बड़े पहाड़ों का

दुर्गम रास्ता है। तिस पर तुम्हारे साथ सुकुमारी स्त्री है।

करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुम्हहि सिरु नाई॥

हाथी और सिंहों से भरा यह भयानक वन देखा तक नहीं जाता। यदि आज्ञा हो तो हम साथ चलें। आप जहाँ तक जाएँगे, वहाँ तक पहुँचाकर, फिर आपको प्रणाम करके हम लौट आवेंगे।

दो॰ - एहि बिधि पूँछहिं प्रेम बस पुलक गात जलु नैन।
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहि कहि बिनीत मृदु बैन॥ 112॥

इस प्रकार वे यात्री प्रेमवश पुलकित शरीर हो और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भरकर पूछते हैं, किंतु कृपा के समुद्र राम कोमल विनययुक्त वचन कहकर उन्हें लौटा देते हैं॥ 112॥

जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं। तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाहीं॥
केहि सुकृतीं केहि घरीं बसाए। धन्य पुन्यमय परम सुहाए॥

जो गाँव और पुरवे रास्ते में बसे हैं, नागों और देवताओं के नगर उनको देखकर प्रशंसा पूर्वक ईर्ष्या करते और ललचाते हुए कहते हैं कि किस पुण्यवान ने किस शुभ घड़ी में इनको बसाया था, जो आज ये इतने धन्य और पुण्यमय तथा परम सुंदर हो रहे हैं।

जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥
पुन्यपुंज मग निकट निवासी। तिन्हहि सराहहिं सुरपुरबासी॥

जहाँ-जहाँ राम के चरण चले जाते हैं, उनके समान इंद्र की पुरी अमरावती भी नहीं है। रास्ते के समीप बसनेवाले भी बड़े पुण्यात्मा हैं - स्वर्ग में रहनेवाले देवता भी उनकी सराहना करते हैं -

जे भरि नयन बिलोकहिं रामहि। सीता लखन सहित घनस्यामहि॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहि देव सर सरित सराहहिं॥

जो नेत्र भरकर सीता और लक्ष्मण सहित घनश्याम राम के दर्शन करते हैं, जिन तालाबों और नदियों में राम स्नान कर लेते हैं, देवसरोवर और देवनदियाँ भी उनकी बड़ाई करती

हैं।

जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई॥
परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा॥

जिस वृक्ष के नीचे प्रभु जा बैठते हैं, कल्पवृक्ष भी उसकी बड़ाई करते हैं। राम के चरणकमलों की रज का स्पर्श करके पृथ्वी अपना बड़ा सौभाग्य मानती है।

दो॰ - छाँह करहिं घन बिबुधगन बरषहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि बन बिहग मृग रामु चले मग जाहिं॥ 113॥

रास्ते में बादल छाया करते हैं और देवता फूल बरसाते और सिहाते हैं। पर्वत, वन और पशु-पक्षियों को देखते हुए राम रास्ते में चले जा रहे हैं॥ 113॥

सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई॥
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह काजु बिसारी॥

सीता और लक्ष्मण सहित रघुनाथ जब किसी गाँव के पास जा निकलते हैं, तब उनका आना सुनते ही बालक-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब अपने घर और काम-काज को भूलकर तुरंत उन्हें देखने के लिए चल देते हैं।

राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भए मगन देखि दोउ बीरा॥

राम, लक्ष्मण और सीता का रूप देखकर, नेत्रों का (परम) फल पाकर वे सुखी होते हैं। दोनों भाइयों को देखकर सब प्रेमानंद में मग्न हो गए। उनके नेत्रों में जल भर आया और शरीर पुलकित हो गए।

बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुरमनि ढेरी॥
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एहीं॥

उनकी दशा वर्णन नहीं की जाती। मानो दरिद्रों ने चिंतामणि की ढेरी पा ली हो। वे एक-एक को पुकारकर सीख देते हैं कि इसी क्षण नेत्रों का लाभ ले लो।

रामहि देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे॥

एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बर बानी॥

कोई राम को देखकर ऐसे अनुराग में भर गए हैं कि वे उन्हें देखते हुए उनके साथ लगे चले जा रहे हैं। कोई नेत्र मार्ग से उनकी छवि को हृदय में लाकर शरीर, मन और श्रेष्ठ वाणी से शिथिल हो जाते हैं (अर्थात उनके शरीर, मन और वाणी का व्यवहार बंद हो जाता है)।

दो० - एक देखि बट छाँह भलि डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवाँइअ छिनुकु श्रमु गवनब अबहिंकि प्रात॥ 114॥

कोई बड़ की सुंदर छाया देखकर, वहाँ नरम घास और पत्ते बिछाकर कहते हैं कि क्षण भर यहाँ बैठकर थकावट मिटा लीजिए। फिर चाहे अभी चले जाइएगा, चाहे सबेरे॥ 114॥

एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी॥
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी। राम कृपाल सुसील बिसेषी॥

कोई घड़ा भरकर पानी ले आते हैं और कोमल वाणी से कहते हैं - नाथ! आचमन तो कर लीजिए। उनके प्यारे वचन सुनकर और उनका अत्यंत प्रेम देखकर दयालु और परम सुशील राम ने -

जानी श्रमित सीय मन माहीं। घरिक बिलंबु कीन्ह बट छाहीं॥
मुदित नारि नर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मनु लोभा॥

मन में सीता को थकी हुई जानकर घड़ी भर बड़ की छाया में विश्राम किया। स्त्री-पुरुष आनंदित होकर शोभा देखते हैं। अनुपम रूप ने उनके नेत्र और मनों को लुभा लिया है।

एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचंद्र मुख चंद चकोरा॥
तरुन तमाल बरन तनु सोहा। देखत कोटि मदन मनु मोहा॥

सब लोग टकटकी लगाए रामचंद्र के मुखचंद्र को चकोर की तरह (तन्मय होकर) देखते हुए चारों ओर सुशोभित हो रहे हैं। राम का नवीन तमाल वृक्ष के रंग का (श्याम) शरीर अत्यंत शोभा दे रहा है, जिसे देखते ही करोड़ों कामदेवों के मन मोहित हो जाते हैं।

दामिनि बरन लखन सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जी के॥

मुनि पट कटिन्ह कसें तूनीरा। सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा॥

बिजली के-से रंग के लक्ष्मण बहुत ही भले मालूम होते हैं। वे नख से शिखा तक सुंदर हैं, और मन को बहुत भाते हैं। दोनों मुनियों के (वल्कल आदि) वस्त्र पहने हैं और कमर में तरकस कसे हुए हैं। कमल के समान हाथों में धनुष-बाण शोभित हो रहे हैं।

दो॰ - जटा मुकुट सीसनि सुभग उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वेद कन जाल॥ 115॥

उनके सिरों पर सुंदर जटाओं के मुकुट हैं; वक्षःस्थल, भुजा और नेत्र विशाल हैं और शरद पूर्णिमा के चंद्रमा के समान सुंदर मुखों पर पसीने की बूँदों का समूह शोभित हो रहा है॥ 115॥

बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी॥
राम लखन सिय सुंदरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई॥

उस मनोहर जोड़ी का वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि शोभा बहुत अधिक है और मेरी बुद्धि थोड़ी है। राम, लक्ष्मण और सीता की सुंदरता को सब लोग मन, चित्त और बुद्धि तीनों को लगाकर देख रहे हैं।

थके नारि नर प्रेम पिआसे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिआ से॥
सीय समीप ग्रामतिय जाहीं। पूँछत अति सनेहँ सकुचाहीं॥

प्रेम के प्यासे (वे गाँवों के) स्त्री-पुरुष (इनके सौंदर्य-माधुर्य की छटा देखकर) ऐसे चकित रह गए जैसे दीपक को देखकर हिरनी और हिरन (निस्तब्ध रह जाते हैं)! गाँवों की स्त्रियाँ सीता के पास जाती हैं, परंतु अत्यंत स्नेह के कारण पूछते सकुचाती हैं।

बार बार सब लागहिं पाएँ। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ॥
राजकुमारि बिनय हम करहीं। तिय सुभायँ कछु पूँछत डरहीं॥

बार-बार सब उनके पाँव लगतीं और सहज ही सीधे-सादे कोमल वचन कहती हैं - हे राजकुमारी! हम विनती करती (कुछ निवेदन करना चाहती) हैं, परंतु स्त्री-स्वभाव के कारण कुछ पूछते हुए डरती हैं।

स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गवाँरी॥

राजकुअँर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लही दुति मरकत सोने॥

हे स्वामिनी! हमारी ढिठाई क्षमा कीजिएगा और हमको गँवारी जानकर बुरा न मानिएगा। ये दोनों राजकुमार स्वभाव से ही लावण्यमय (परम सुंदर) हैं। मरकतमणि (पन्ने) और सुवर्ण ने कांति इन्हीं से पाई है (अर्थात मरकतमणि में और स्वर्ण में जो हरित और स्वर्ण वर्ण की आभा है वह इनकी हरिताभनील और स्वर्ण कांति के एक कण के बराबर भी नहीं है)।

दो० - स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुषमा ऐन।
सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन॥ 116॥

श्याम और गौर वर्ण है, सुंदर किशोर अवस्था है; दोनों ही परम सुंदर और शोभा के धाम हैं। शरद पूर्णिमा के चंद्रमा के समान इनके मुख और शरद ऋतु के कमल के समान इनके नेत्र हैं॥ 116॥

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी॥

हे सुमुखि! कहो तो अपनी सुंदरता से करोड़ों कामदेवों को लजानेवाले ये तुम्हारे कौन हैं? उनकी ऐसी प्रेममयी सुंदर वाणी सुनकर सीता सकुचा गईं और मन-ही-मन मुसकराईं।

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी॥
सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी॥

उत्तम (गौर) वर्णवाली सीता उनको देखकर (संकोचवश) पृथ्वी की ओर देखती हैं। वे दोनों ओर के संकोच से सकुचा रही हैं (अर्थात न बताने में ग्राम की स्त्रियों को दुःख होने का संकोच है और बताने में लज्जा रूप संकोच)। हिरन के बच्चे के सदृश नेत्रवाली और कोकिल की-सी वाणीवाली सीता सकुचाकर प्रेम सहित मधुर वचन बोलीं -

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥

ये जो सहज स्वभाव, सुंदर और गोरे शरीर के हैं, उनका नाम लक्ष्मण है; ये मेरे छोटे देवर हैं। फिर सीता ने (लज्जावश) अपने चंद्रमुख को आँचल से ढँककर और प्रियतम (राम)

की ओर निहारकर भौंहें टेढ़ी करके,

खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि॥
भईं मुदित सब ग्रामबधूटीं। रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं॥

खंजन पक्षी के-से सुंदर नेत्रों को तिरछा करके सीता ने इशारे से उन्हें कहा कि ये (राम) मेरे पति हैं। यह जानकर गाँव की सब युवती स्त्रियाँ इस प्रकार आनंदित हुईं, मानो कंगालों ने धन की राशियाँ लूट ली हों।

दो० - अति सप्रेम सिय पाँय परि बहुबिधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहि सीस॥ 117

वे अत्यंत प्रेम से सीता के पैरों पड़कर बहुत प्रकार से आशीष देती हैं (शुभ कामना करती हैं) कि जब तक शेष के सिर पर पृथ्वी रहे, तब तक तुम सदा सुहागिनी बनी रहो,॥ 117॥

पारबती सम पतिप्रिय होहू। देबि न हम पर छाड़ब छोहू॥
पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी॥

और पार्वती के समान अपने पति की प्यारी होओ। हे देवी! हम पर कृपा न छोड़ना (बनाए रखना)। हम बार-बार हाथ जोड़कर विनती करती हैं जिसमें आप फिर इसी रास्ते लौटें,

दरसनु देब जानि निज दासी। लखीं सीयँ सब प्रेम पिआसी॥
मधुर बचन कहि कहि परितोषीं। जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं॥

और हमें अपनी दासी जानकर दर्शन दें। सीता ने उन सबको प्रेम की प्यासी देखा, और मधुर वचन कह-कहकर उनका भली-भाँति संतोष किया। मानो चाँदनी ने कुमुदिनियों को खिलाकर पुष्ट कर दिया हो।

तबहिं लखन रघुबर रुख जानी। पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी॥
सुनत नारि नर भए दुखारी। पुलकित गात बिलोचन बारी॥

उसी समय राम का रुख जानकर लक्ष्मण ने कोमल वाणी से लोगों से रास्ता पूछा। यह सुनते ही स्त्री-पुरुष दुःखी हो गए। उनके शरीर पुलकित हो गए और नेत्रों में (वियोग की

संभावना से प्रेम का) जल भर आया।

मिटा मोदु मन भए मलीने। बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने॥
समुझि करम गति धीरजु कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा॥

उनका आनंद मिट गया और मन ऐसे उदास हो गए मानो विधाता दी हुई संपत्ति छीने लेता हो। कर्म की गति समझकर उन्होंने धैर्य धारण किया और अच्छी तरह निर्णय करके सुगम मार्ग बतला दिया।

दो॰ - लखन जानकी सहित तब गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि लिए लाइ मन साथ॥ 118॥

तब लक्ष्मण और जानकी सहित रघुनाथ ने गमन किया और सब लोगों को प्रिय वचन कहकर लौटाया, किंतु उनके मनों को अपने साथ ही लगा लिया॥ 118॥

फिरत नारि नर अति पछिताहीं। दैअहि दोषु देहिं मन माहीं॥
सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं॥

लौटते हुए वे स्त्री-पुरुष बहुत ही पछताते हैं और मन-ही-मन दैव को दोष देते हैं। परस्पर (बड़े ही) विषाद के साथ कहते हैं कि विधाता के सभी काम उलटे हैं।

निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलंकू॥
रूख कलपतरु सागरु खारा। तेहिं पठए बन राजकुमारा॥

वह विधाता बिल्कुल निरंकुश (स्वतंत्र), निर्दय और निडर है, जिसने चंद्रमा को रोगी (घटने-बढ़नेवाला) और कलंकी बनाया, कल्पवृक्ष को पेड़ और समुद्र को खारा बनाया। उसी ने इन राजकुमारों को वन में भेजा है।

जौं पै इन्हहि दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना॥

जब विधाता ने इनको वनवास दिया है, तब उसने भोग-विलास व्यर्थ ही बनाए। जब ये बिना जूते के (नंगे ही पैरों) रास्ते में चल रहे हैं, तब विधाता ने अनेकों वाहन (सवारियाँ) व्यर्थ ही रचे।

ए महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता॥
तरुबर बास इन्हहि बिधि दीन्हा। धवल धाम रचि रचि श्रमु कीन्हा॥

जब ये कुश और पत्ते बिछाकर जमीन पर ही पड़े रहते हैं, तब विधाता सुंदर सेज (पलंग और बिछौने) किसलिए बनाता है? विधाता ने जब इनको बड़े-बड़े पेड़ों (के नीचे) का निवास दिया, तब उज्ज्वल महलों को बना-बनाकर उसने व्यर्थ ही परिश्रम किया।

दो० - जौं ए मुनि पट धर जटिल सुंदर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन बादि किए करतार॥ 119॥

जो ये सुंदर और अत्यंत सुकुमार होकर मुनियों के (वल्कल) वस्त्र पहनते और जटा धारण करते हैं, तो फिर करतार (विधाता) ने भाँति-भाँति के गहने और कपड़े वृथा ही बनाए॥ 119॥

जौं ए कंदमूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं॥
एक कहहिं ए सहज सुहाए। आपु प्रगट भए बिधि न बनाए॥

जो ये कंद, मूल, फल खाते हैं तो जगत में अमृत आदि भोजन व्यर्थ ही हैं। कोई एक कहते हैं - ये स्वभाव से ही सुंदर हैं (इनका सौंदर्य-माधुर्य नित्य और स्वाभाविक है)। ये अपने-आप प्रकट हुए हैं, ब्रह्मा के बनाए नहीं हैं।

जहँ लगि बेद कही बिधि करनी। श्रवन नयन मन गोचर बरनी॥
देखहु खोजि भुअन दस चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी॥

हमारे कानों, नेत्रों और मन के द्वारा अनुभव में आनेवाली विधाता की करनी को जहाँ तक वेदों ने वर्णन करके कहा है, वहाँ तक चौदहों लोकों में ढूँढ देखो, ऐसे पुरुष और ऐसी स्त्रियाँ कहाँ हैं? (कहीं भी नहीं हैं, इसी से सिद्ध है कि ये विधाता के चौदहों लोकों से अलग हैं और अपनी महिमा से ही आप निर्मित हुए हैं।)

इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोग बनावै लागा॥
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। तेहिं इरिषा बन आनि दुराए॥

इन्हें देखकर विधाता का मन अनुरक्त (मुग्ध) हो गया, तब वह भी इन्हीं की उपमा के योग्य दूसरे स्त्री-पुरुष बनाने लगा। उसने बहुत परिश्रम किया, परंतु कोई उसकी अटकल

में ही नहीं आए (पूरे नहीं उतरे)। इसी ईर्ष्या के मारे उसने इनको जंगल में लाकर छिपा दिया है।

एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहि परम धन्य करि मानहिं॥
ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे॥

कोई एक कहते हैं - हम बहुत नहीं जानते। हाँ, अपने को परम धन्य अवश्य मानते हैं (जो इनके दर्शन कर रहे हैं) और हमारी समझ में वे भी बड़े पुण्यवान हैं जिन्होंने इनको देखा है, जो देख रहे हैं और जो देखेंगे।

दो० - एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर॥ 120॥

इस प्रकार प्रिय वचन कह-कहकर सब नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर लेते हैं और कहते हैं कि ये अत्यंत सुकुमार शरीरवाले दुर्गम (कठिन) मार्ग में कैसे चलेंगे॥ 120॥

नारि सनेह बिकल बस होहीं। चकईं साँझ समय जनु सोहीं॥
मृदु पद कमल कठिन मगु जानी। गहबरि हृदयँ कहहिं बर बानी॥

स्त्रियाँ स्नेहवश विकल हो जाती हैं। मानो संध्या के समय चकवी (भावी वियोग की पीड़ा से) सोह रही हो (दुःखी हो रही हो)। इनके चरणकमलों को कोमल तथा मार्ग को कठोर जानकर वे व्यथित हृदय से उत्तम वाणी कहती हैं -

परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे॥
जौं जगदीस इन्हहि बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा॥

इनके कोमल और लाल-लाल चरणों (तलवों) को छूते ही पृथ्वी वैसे ही सकुचा जाती है, जैसे हमारे हृदय सकुचा रहे हैं। जगदीश्वर ने यदि इन्हें वनवास ही दिया, तो सारे रास्ते को पुष्पमय क्यों नहीं बना दिया?

जौं मागा पाइअ बिधि पाहीं। ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं॥
जे नर नारि न अवसर आए। तिन्ह सिय रामु न देखन पाए॥

यदि ब्रह्मा से माँगे मिले तो हे सखी! (हम तो उनसे माँगकर) इन्हें अपनी आँखों में ही

रखें! जो स्त्री-पुरुष इस अवसर पर नहीं आए, वे सीताराम को नहीं देख सके।

सुनि सुरूपु बूझहिं अकुलाई। अब लगि गए कहाँ लगि भाई॥
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहिं जनमफलु पाई॥

उनके सौंदर्य को सुनकर वे व्याकुल होकर पूछते हैं कि भाई! अब तक वे कहाँ तक गए होंगे? और जो समर्थ हैं, वे दौड़ते हुए जाकर उनके दर्शन कर लेते हैं और जन्म का परम फल पाकर, विशेष आनंदित होकर लौटते हैं।

दो० - अबला बालक बृद्ध जन कर मीजहिं पछिताहिं।
होहिं प्रेमबस लोग इमि रामु जहाँ जहँ जाहिं॥ 121॥

(गर्भवती, प्रसूता आदि) अबला स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े (दर्शन न पाने से) हाथ मलते और पछताते हैं। इस प्रकार जहाँ-जहाँ राम जाते हैं, वहाँ-वहाँ लोग प्रेम के वश में हो जाते हैं॥ 121॥

गाँव गाँव अस होइ अनंदू। देखि भानुकुल कैरव चंदू॥
जे कछु समाचार सुनि पावहिं। ते नृप रानिहि दोसु लगावहिं॥

सूर्यकुलरूपी कुमुदिनी को प्रफुल्लित करनेवाले चंद्रमा स्वरूप राम के दर्शन कर गाँव-गाँव में ऐसा ही आनंद हो रहा है। जो लोग (वनवास दिए जाने का) कुछ भी समाचार सुन पाते हैं, वे राजा-रानी (दशरथ-कैकेयी) को दोष लगाते हैं।

कहहिं एक अति भल नरनाहू। दीन्ह हमहि जोइ लोचन लाहू॥
कहहिं परसपर लोग लोगाईं। बातें सरल सनेह सुहाईं॥

कोई एक कहते हैं कि राजा बहुत ही अच्छे हैं, जिन्होंने हमें अपने नेत्रों का लाभ दिया। स्त्री-पुरुष सभी आपस में सीधी, स्नेहभरी सुंदर बातें कह रहे हैं।

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाए। धन्य सो नगरु जहाँ तें आए॥
धन्य सो देसु सैलु बन गाऊँ। जहँ-जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ॥

(कहते हैं -) वे माता-पिता धन्य हैं जिन्होंने इन्हें जन्म दिया। वह नगर धन्य है जहाँ से ये आए हैं। वह देश, पर्वत, वन और गाँव धन्य है, और वही स्थान धन्य है जहाँ-जहाँ ये

जाते हैं।

सुखु पायउ बिरंचि रचि तेही। ए जेहि के सब भाँति सनेही॥
राम लखन पथि कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई॥

ब्रह्मा ने उसी को रचकर सुख पाया है जिसके ये (राम) सब प्रकार से स्नेही हैं। पथिकरूप राम-लक्ष्मण की सुंदर कथा सारे रास्ते और जंगल में छा गई है।

दो० - एहि बिधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन्ह सुख देत।
जाहिं चले देखत बिपिन सिय सौमित्रि समेत॥ 122॥

रघुकुलरूपी कमल को खिलानेवाले सूर्य राम इस प्रकार मार्ग के लोगों को सुख देते हुए सीता और लक्ष्मण सहित वन को देखते हुए चले जा रहे हैं॥ 122॥

आगें रामु लखनु बने पाछें। तापस बेष बिराजत काछें॥
उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें॥

आगे राम हैं, पीछे लक्ष्मण सुशोभित हैं। तपस्वियों के वेष बनाए दोनों बड़ी ही शोभा पा रहे हैं। दोनों के बीच में सीता कैसी सुशोभित हो रही हैं, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया!

बहुरि कहउँ छबि जसि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई॥
उपमा बहुरि कहउँ जियँ जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही॥

फिर जैसी छवि मेरे मन में बस रही है, उसको कहता हूँ - मानो वसंत ऋतु और कामदेव के बीच में रति (कामेदव की स्त्री) शोभित हो। फिर अपने हृदय में खोजकर उपमा कहता हूँ कि मानो बुध (चंद्रमा के पुत्र) और चंद्रमा के बीच में रोहिणी (चंद्रमा की स्त्री) सोह रही हो।

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता॥
सीय राम पद अंक बराएँ। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ॥

प्रभु राम के (जमीन पर अंकित होनेवाले दोनों) चरण चिह्नों के बीच-बीच में पैर रखती हुई सीता (कहीं भगवान के चरण चिह्नों पर पैर न टिक जाए इस बात से) डरती हुईं मार्ग में चल रही हैं और लक्ष्मण (मर्यादा की रक्षा के लिए) सीता और राम दोनों के

चरण चिह्नों को बचाते हुए दाहिने रखकर रास्ता चल रहे हैं।

राम लखन सिय प्रीति सुहाई। बचन अगोचर किमि कहि जाई॥
खग मृग मगन देखि छबि होहीं। लिए चोरि चित राम बटोहीं॥

राम, लक्ष्मण और सीता की सुंदर प्रीति वाणी का विषय नहीं है (अर्थात अनिर्वचनीय है), अतः वह कैसे कही जा सकती है? पक्षी और पशु भी उस छवि को देखकर (प्रेमानंद में) मग्न हो जाते हैं। पथिक रूप राम ने उनके भी चित्त चुरा लिए हैं।

दो० - जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ।
भव मगु अगमु अनंदु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ॥ 123॥

प्यारे पथिक सीता सहित दोनों भाइयों को जिन-जिन लोगों ने देखा, उन्होंने भव का अगम मार्ग (जन्म-मृत्युरूपी संसार में भटकने का भयानक मार्ग) बिना ही परिश्रम आनंद के साथ तय कर लिया (अर्थात वे आवागमन के चक्र से सहज ही छूटकर मुक्त हो गए)॥ 123॥

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहुँ लखनु सिय रामु बटाऊ॥
राम धाम पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई॥

आज भी जिसके हृदय में स्वप्न में भी कभी लक्ष्मण, सीता, राम तीनों बटोही आ बसें, तो वह भी राम के परमधाम के उस मार्ग को पा जाएगा जिस मार्ग को कभी कोई बिरले ही मुनि पाते हैं।

तब रघुबीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल पानी॥
तहँ बसि कंद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई॥

तब राम सीता को थकी हुई जानकर और समीप ही एक बड़ का वृक्ष और ठंडा पानी देखकर उस दिन वहीं ठहर गए। कंद, मूल, फल खाकर (रात भर वहाँ रहकर) प्रातःकाल स्नान करके रघुनाथ आगे चले।

देखत बन सर सैल सुहाए। बालमीकि आश्रम प्रभु आए॥
राम दीख मुनि बासु सुहावन। सुंदर गिरि काननु जलु पावन॥

सुंदर वन, तालाब और पर्वत देखते हुए प्रभु राम वाल्मीकि के आश्रम में आए। राम ने

देखा कि मुनि का निवास स्थान बहुत सुंदर है, जहाँ सुंदर पर्वत, वन और पवित्र जल है।

सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस भूले॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं॥

सरोवरों में कमल और वनों में वृक्ष फूल रहे हैं और मकरंद-रस में मस्त हुए भौंरे सुंदर गुंजार कर रहे हैं। बहुत-से पक्षी और पशु कोलाहल कर रहे हैं और वैर से रहित होकर प्रसन्न मन से विचर रहे हैं।

दो० - सुचि सुंदर आश्रमु निरखि हरषे राजिवनेन।
सुनि रघुबर आगमनु मुनि आगें आयउ लेन॥ 124॥

पवित्र और सुंदर आश्रम को देखकर कमल नयन राम हर्षित हुए। रघुश्रेष्ठ राम का आगमन सुनकर मुनि वाल्मीकि उन्हें लेने के लिए आगे आए॥ 124॥

मुनि कहुँ राम दंडवत कीन्हा। आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। करि सनमानु आश्रमहिं आने॥

राम ने मुनि को दंडवत किया। विप्रश्रेष्ठ मुनि ने उन्हें आशीर्वाद दिया। राम की छवि देखकर मुनि के नेत्र शीतल हो गए। सम्मानपूर्वक मुनि उन्हें आश्रम में ले आए।

मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाए। कंद मूल फल मधुर मगाए॥
सिय सौमित्रि राम फल खाए। तब मुनि आश्रम दिए सुहाए॥

श्रेष्ठ मुनि वाल्मीकि ने प्राणप्रिय अतिथियों को पाकर उनके लिए मधुर कंद, मूल और फल मँगवाए। सीता, लक्ष्मण और राम ने फलों को खाया। तब मुनि ने उनको (विश्राम करने के लिए) सुंदर स्थान बतला दिए।

बालमीकि मन आनँदु भारी। मंगल मूरति नयन निहारी॥
तब कर कमल जोरि रघुराई। बोले बचन श्रवन सुखदाई॥

(मुनि राम के पास बैठे हैं और उनकी) मंगल-मूर्ति को नेत्रों से देखकर वाल्मीकि के मन में बड़ा भारी आनंद हो रहा है। तब रघुनाथ कमलसदृश हाथों को जोड़कर, कानों को सुख देनेवाले मधुर वचन बोले -

तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनिनाथा। बिस्व बदर जिमि तुम्हरें हाथा॥
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनु रानी॥

हे मुनिनाथ! आप त्रिकालदर्शी हैं। संपूर्ण विश्व आपके लिए हथेली पर रखे हुए बेर के समान है। प्रभु राम ने ऐसा कहकर फिर जिस-जिस प्रकार से रानी कैकेयी ने वनवास दिया, वह सब कथा विस्तार से सुनाई।

दो० - तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ।
मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु सबु मम पुन्य प्रभाउ॥ 125॥

(और कहा -) हे प्रभो! पिता की आज्ञा (का पालन), माता का हित और भरत-जैसे (स्नेही एवं धर्मात्मा) भाई का राजा होना और फिर मुझे आपके दर्शन होना, यह सब मेरे पुण्यों का प्रभाव है॥ 125॥

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे॥
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेगु न पावै कोई॥

हे मुनिराज! आपके चरणों का दर्शन करने से आज हमारे सब पुण्य सफल हो गए (हमें सारे पुण्यों का फल मिल गया)। अब जहाँ आपकी आज्ञा हो और जहाँ कोई भी मुनि उद्‌वेग को प्राप्त न हो -

मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥
मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू॥

क्योंकि जिनसे मुनि और तपस्वी दुःख पाते हैं, वे राजा बिना अग्नि के ही (अपने दुष्ट कर्मों से ही) जलकर भस्म हो जाते हैं। ब्राह्मणों का संतोष सब मंगलों की जड़ है और भूदेव ब्राह्मणों का क्रोध करोड़ों कुलों को भस्म कर देता है।

अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करौं कछु काल कृपाला॥

ऐसा हृदय में समझकर - वह स्थान बतलाइए जहाँ मैं लक्ष्मण और सीता सहित जाऊँ और वहाँ सुंदर पत्तों और घास की कुटी बनाकर, हे दयालु! कुछ समय निवास करूँ।

सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ग्यानी॥

कस न कहहु अस रघुकुलकेतू। तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू॥

राम की सहज ही सरल वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि वाल्मीकि बोले - धन्य! धन्य! हे रघुकुल के ध्वजास्वरूप! आप ऐसा क्यों न कहेंगे? आप सदैव वेद की मर्यादा का पालन (रक्षण) करते हैं।

छं० - श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥

हे राम! आप वेद की मर्यादा के रक्षक जगदीश्वर हैं और जानकी (आपकी स्वरूपभूता) माया हैं, जो कृपा के भंडार आपका रुख पाकर जगत का सृजन, पालन और संहार करती हैं। जो हजार मस्तकवाले सर्पों के स्वामी और पृथ्वी को अपने सिर पर धारण करनेवाले हैं, वही चराचर के स्वामी शेष लक्ष्मण हैं। देवताओं के कार्य के लिए आप राजा का शरीर धारण करके दुष्ट राक्षसों की सेना का नाश करने के लिए चले हैं।

सो० - राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥ 126॥

हे राम! आपका स्वरूप वाणी के अगोचर, बुद्धि से परे, अव्यक्त, अकथनीय और अपार है। वेद निरंतर उसका 'नेति-नेति' कहकर वर्णन करते हैं॥ 126॥

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥

हे राम! जगत दृश्य है, आप उसके देखनेवाले हैं। आप ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को भी नचानेवाले हैं। जब वे भी आपके मर्म को नहीं जानते, तब और कौन आपको जाननेवाला है?

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥

वही आपको जानता है, जिसे आप जना देते हैं और जानते ही वह आपका ही स्वरूप बन

जाता है। हे रघुनंदन! हे भक्तों के हृदय को शीतल करनेवाले चंदन! आपकी ही कृपा से भक्त आपको जान पाते हैं।

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥

आपकी देह चिदानंदमय है (यह प्रकृतिजन्य पंच महाभूतों की बनी हुई कर्म बंधनयुक्त, त्रिदेहविशिष्ट मायिक नहीं है) और (उत्पत्ति-नाश, वृद्धि-क्षय आदि) सब विकारों से रहित है; इस रहस्य को अधिकारी पुरुष ही जानते हैं। आपने देवता और संतों के कार्य के लिए (दिव्य) नर-शरीर धारण किया है और प्राकृत (प्रकृति के तत्त्वों से निर्मित देहवाले, साधारण) राजाओं की तरह से कहते और करते हैं।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा॥

हे राम! आपके चरित्रों को देख और सुनकर मूर्ख लोग तो मोह को प्राप्त होते हैं और ज्ञानीजन सुखी होते हैं। आप जो कुछ कहते, करते हैं, वह सब सत्य (उचित) ही है; क्योंकि जैसा स्वाँग भरे वैसा ही नाचना भी तो चाहिए (इस समय आप मनुष्य रूप में हैं, अतः मनुष्योचित व्यवहार करना ठीक ही है)।

दो॰ - पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ॥ 127॥

आपने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ रहूँ? परंतु मैं यह पूछते सकुचाता हूँ कि जहाँ आप न हों, वह स्थान बता दीजिए। तब मैं आपके रहने के लिए स्थान दिखाऊँ॥ 127॥

सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने। सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी॥

मुनि के प्रेमरस से सने हुए वचन सुनकर राम (रहस्य खुल जाने के डर से) सकुचाकर मन में मुसकराए। वाल्मीकि हँसकर फिर अमृत-रस में डुबोई हुई मीठी वाणी बोले -

सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥

हे राम! सुनिए, अब मैं वे स्थान बताता हूँ जहाँ आप सीता और लक्ष्मण समेत निवास कीजिए। जिनके कान समुद्र की भाँति आपकी सुंदर कथारूपी अनेक सुंदर नदियों से -

भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥

निरंतर भरते रहते हैं, परंतु कभी पूरे (तृप्त) नहीं होते, उनके हृदय आपके लिए सुंदर घर हैं और जिन्होंने अपने नेत्रों को चातक बना रखा है, जो आपके दर्शनरूपी मेघ के लिए सदा लालायित रहते हैं;

निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥
तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥

तथा जो भारी-भारी नदियों, समुद्रों और झीलों का निरादर करते हैं और आपके सौंदर्य (रूपी मेघ) के एक बूँद जल से सुखी हो जाते हैं (अर्थात आपके दिव्य सच्चिदानंदमय स्वरूप के किसी एक अंग की जरा-सी भी झाँकी के सामने स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों जगत के, अर्थात पृथ्वी, स्वर्ग और ब्रह्मलोक तक के सौंदर्य का तिरस्कार करते हैं), हे रघुनाथ! उन लोगों के हृदयरूपी सुखदायी भवनों में आप भाई लक्ष्मण और सीता सहित निवास कीजिए।

दो० - जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु॥ 128॥

आपके यशरूपी निर्मल मानसरोवर में जिसकी जीभ हंसिनी बनी हुई आपके गुणसमूहरूपी मोतियों को चुगती रहती है, हे राम! आप उसके हृदय में बसिए॥ 128॥

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥
तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥

जिसकी नासिका प्रभु (आप) के पवित्र और सुगंधित (पुष्पादि) सुंदर प्रसाद को नित्य आदर के साथ ग्रहण करती (सूँघती) है, और जो आपको अर्पण करके भोजन करते हैं और आपके प्रसाद रूप ही वस्त्राभूषण धारण करते हैं;

सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी॥

कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा॥

जिनके मस्तक देवता, गुरु और ब्राह्मणों को देखकर बड़ी नम्रता के साथ प्रेम सहित झुक जाते हैं; जिनके हाथ नित्य राम (आप) के चरणों की पूजा करते हैं, और जिनके हृदय में राम (आप) का ही भरोसा है, दूसरा नहीं;

चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा॥

तथा जिनके चरण राम (आप) के तीर्थों में चलकर जाते हैं; हे राम! आप उनके मन में निवास कीजिए। जो नित्य आपके (रामनामरूप) मंत्रराज को जपते हैं और परिवार (परिकर) सहित आपकी पूजा करते हैं।

तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना॥
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी॥

जो अनेक प्रकार से तर्पण और हवन करते हैं, तथा ब्राह्मणों को भोजन कराकर बहुत दान देते हैं; तथा जो गुरु को हृदय में आपसे भी अधिक (बड़ा) जानकर सर्वभाव से सम्मान करके उनकी सेवा करते हैं;

दो० - सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ॥ 129॥

और ये सब कर्म करके सबका एक मात्र यही फल माँगते हैं कि राम के चरणों में हमारी प्रीति हो; उन लोगों के मनरूपी मंदिरों में सीता और रघुकुल को आनंदित करनेवाले आप दोनों बसिए॥ 129॥

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया॥

जिनके न तो काम, क्रोध, मद, अभिमान और मोह हैं; न लोभ है, न क्षोभ है; न राग है, न द्वेष है; और न कपट, दंभ और माया ही है - हे रघुराज! आप उनके हृदय में निवास कीजिए।

सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥

कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥

जो सबके प्रिय और सबका हित करनेवाले हैं; जिन्हें दुःख और सुख तथा प्रशंसा (बड़ाई) और गाली (निंदा) समान हैं, जो विचारकर सत्य और प्रिय वचन बोलते हैं तथा जो जागते-सोते आपकी ही शरण हैं,

तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी॥

और आपको छोड़कर जिनके दूसरे कोई गति (आश्रय) नहीं है, हे राम! आप उनके मन में बसिए। जो पराई स्त्री को जन्म देनेवाली माता के समान जानते हैं और पराया धन जिन्हें विष से भी भारी विष है,

जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रानपिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे॥

जो दूसरे की संपत्ति देखकर हर्षित होते हैं और दूसरे की विपत्ति देखकर विशेष रूप से दुःखी होते हैं, और हे राम! जिन्हें आप प्राणों के समान प्यारे हैं, उनके मन आपके रहने योग्य शुभ भवन हैं।

दो॰ - स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात॥ 130॥

हे तात! जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु सब कुछ आप ही हैं; उनके मनरूपी मंदिर में सीता सहित आप दोनों भाई निवास कीजिए॥ 130॥

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥

जो अवगुणों को छोड़कर सबके गुणों को ग्रहण करते हैं, ब्राह्मण और गो के लिए संकट सहते हैं, नीति-निपुणता में जिनकी जगत में मर्यादा है, उनका सुंदर मन आपका घर है।

गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥

जो गुणों को आपका और दोषों को अपना समझता है, जिसे सब प्रकार से आपका ही भरोसा है, और राम भक्त जिसे प्यारे लगते हैं, उसके हृदय में आप सीता सहित निवास कीजिए।

जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई॥

जाति, पाँति, धन, धर्म, बड़ाई, प्यारा परिवार और सुख देनेवाला घर - सबको छोड़कर जो केवल आपको ही हृदय में धारण किए रहता है, हे रघुनाथ! आप उसके हृदय में रहिए।

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा॥

स्वर्ग, नरक और मोक्ष जिसकी दृष्टि में समान हैं, क्योंकि वह जहाँ-तहाँ (सब जगह) केवल धनुष-बाण धारण किए आपको ही देखता है; और जो कर्म से, वचन से और मन से आपका दास है, हे राम! आप उसके हृदय में डेरा कीजिए।

दो० - जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥ 131॥

जिसको कभी कुछ भी नहीं चाहिए और जिसका आपसे स्वाभाविक प्रेम है, आप उसके मन में निरंतर निवास कीजिए; वह आपका अपना घर है॥ 131॥

एहि बिधि मुनिबर भवन देखाए। बचन सप्रेम राम मन भाए॥
कह मुनि सुनहु भानुकुलनायक। आश्रम कहउँ समय सुखदायक॥

इस प्रकार मुनि श्रेष्ठ वाल्मीकि ने राम को घर दिखाए। उनके प्रेमपूर्ण वचन राम के मन को अच्छे लगे। फिर मुनि ने कहा - हे सूर्यकुल के स्वामी! सुनिए, अब मैं इस समय के लिए सुखदायक आश्रम कहता हूँ (निवास स्थान बतलाता हूँ)।

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥
सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू॥

आप चित्रकूट पर्वत पर निवास कीजिए, वहाँ आपके लिए सब प्रकार की सुविधा है।

सुहावना पर्वत है और सुंदर वन है। वह हाथी, सिंह, हिरन और पक्षियों का विहार स्थल है।

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तप बल आनी॥
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि॥

वहाँ पवित्र नदी है, जिसकी पुराणों ने प्रशंसा की है, और जिसको अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूया अपने तपोबल से लाई थीं। वह गंगा की धारा है, उसका मंदाकिनी नाम है। वह सब पापरूपी बालकों को खा डालने के लिए डाकिनी (डायन) रूप है।

अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं॥
चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू॥

अत्रि आदि बहुत-से श्रेष्ठ मुनि वहाँ निवास करते हैं, जो योग, जप और तप करते हुए शरीर को कसते हैं। हे राम! चलिए, सबके परिश्रम को सफल कीजिए और पर्वत श्रेष्ठ चित्रकूट को भी गौरव दीजिए।

दो० - चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ।
आइ नहाए सरित बर सिय समेत दोउ भाइ॥ 132॥

महामुनि वाल्मीकि ने चित्रकूट की अपरिमित महिमा बखान कर कही। तब सीता सहित दोनों भाइयों ने आकर श्रेष्ठ नदी मंदाकिनी में स्नान किया॥ 132॥

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू॥
लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥

राम ने कहा - लक्ष्मण! बड़ा अच्छा घाट है। अब यहीं कहीं ठहरने की व्यवस्था करो। तब लक्ष्मण ने पयस्विनी नदी के उत्तर के ऊँचे किनारे को देखा (और कहा कि -) इसके चारों ओर धनुष के-जैसा एक नाला फिरा हुआ है।

नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी॥

नदी (मंदाकिनी) उस धनुष की प्रत्यंचा (डोरी) है और शम, दम, दान बाण हैं। कलियुग के समस्त पाप उसके अनेक हिंसक पशु (रूप निशाने) हैं। चित्रकूट ही मानो अचल शिकारी

है, जिसका निशाना कभी चूकता नहीं, और जो सामने से मारता है।

अस कहि लखन ठाउँ देखरावा। थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा॥
रमेउ राम मनु देवन्ह जाना। चले सहित सुर थपति प्रधाना॥

ऐसा कहकर लक्ष्मण ने स्थान दिखाया। स्थान को देखकर राम ने सुख पाया। जब देवताओं ने जाना कि राम का मन यहाँ रम गया, तब वे देवताओं के प्रधान थवई (मकान बनानेवाले) विश्वकर्मा को साथ लेकर चले।

कोल किरात बेष सब आए। रचे परन तृन सदन सुहाए॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला॥

सब देवता कोल-भीलों के वेष में आए और उन्होंने (दिव्य) पत्तों और घासों के सुंदर घर बना दिए। दो ऐसी सुंदर कुटिया बनाईं जिनका वर्णन नहीं हो सकता। उनमें एक बड़ी सुंदर छोटी-सी थी और दूसरी बड़ी थी।

दो॰ - लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।
सोह मदनु मुनि बेष जनु रति रितुराज समेत॥ 133॥

लक्ष्मण और जानकी सहित प्रभु राम सुंदर घास-पत्तों के घर में शोभायमान हैं। मानो कामदेव मुनि का वेष धारण करके पत्नी रति और वसंत ऋतु के साथ सुशोभित हो॥ 133॥

अमर नाग किंनर दिसिपाला। चित्रकूट आए तेहि काला॥
राम प्रनामु कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू॥

उस समय देवता, नाग, किन्नर और दिक्पाल चित्रकूट में आए और राम ने सब किसी को प्रणाम किया। देवता नेत्रों का लाभ पाकर आनंदित हुए।

बरषि सुमन कह देव समाजू। नाथ सनाथ भए हम आजू॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाए। हरषित निज निज सदन सिधाए॥

फूलों की वर्षा करके देव समाज ने कहा - हे नाथ! आज (आपका दर्शन पाकर) हम सनाथ हो गए। फिर विनती करके उन्होंने अपने दुःसह दुःख सुनाए और (दुःखों के नाश

का आश्वासन पाकर) हर्षित होकर अपने-अपने स्थानों को चले गए।

चित्रकूट रघुनंदनु छाए। समाचार सुनि सुनि मुनि आए॥
आवत देखि मुदित मुनिबृंदा। कीन्ह दंडवत रघुकुल चंदा॥

रघुनाथ चित्रकूट में आ बसे हैं, यह समाचार सुन-सुनकर बहुत-से मुनि आए। रघुकुल के चंद्रमा राम ने मुदित हुई मुनि मंडली को आते देखकर दंडवत प्रणाम किया।

मुनि रघुबरहि लाइ उर लेहीं। सुफल होन हित आसिष देहीं॥
सिय सौमित्रि राम छबि देखहिं। साधन सकल सफल करि लेखहिं॥

मुनिगण राम को हृदय से लगा लेते हैं और सफल होने के लिए आशीर्वाद देते हैं। वे सीता, लक्ष्मण और राम की छवि देखते हैं और अपने सारे साधनों को सफल हुआ समझते हैं।

दो॰ - जथाजोग सनमानि प्रभु बिदा किए मुनिबृंद।
करहिं जोग जप जाग तप निज आश्रमन्हि सुछंद॥ 134॥

प्रभु राम ने यथायोग्य सम्मान करके मुनि मंडली को विदा किया। (राम के आ जाने से) वे सब अपने-अपने आश्रमों में अब स्वतंत्रता के साथ योग, जप, यज्ञ और तप करने लगे॥ 134॥

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना॥

यह (राम के आगमन का) समाचार जब कोल-भीलों ने पाया, तो वे ऐसे हर्षित हुए मानो नवों निधियाँ उनके घर ही पर आ गई हों। वे दोनों में कंद, मूल, फल भर-भरकर चले, मानो दरिद्र सोना लूटने चले हों।

तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता। अपर तिन्हहि पूँछहिं मगु जाता॥
कहत सुनत रघुबीर निकाई। आइ सबन्हि देखे रघुराई॥

उनमें से जो दोनों भाइयों को (पहले) देख चुके थे, उनसे दूसरे लोग रास्ते में जाते हुए पूछते हैं। इस प्रकार राम की सुंदरता कहते-सुनते सब ने आकर रघुनाथ के दर्शन किए।

करहिं जोहारु भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। पुलक सरीर नयन जल बाढ़े॥

भेंट आगे रखकर वे लोग जोहार करते हैं और अत्यंत अनुराग के साथ प्रभु को देखते हैं। वे मुग्ध हुए जहाँ-के-तहाँ मानो चित्रलिखे-से खड़े हैं। उनके शरीर पुलकित हैं और नेत्रों में प्रेमाश्रुओं के जल की बाढ़ आ रही है।

राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। बचन बिनीत कहहिं कर जोरी॥

राम ने उन सबको प्रेम में मग्न जाना और प्रिय वचन कहकर सबका सम्मान किया। वे बार-बार प्रभु राम को जोहार करते हुए हाथ जोड़कर विनीत वचन कहते हैं -

दो० - अब हम नाथ सनाथ सब भए देखि प्रभु पाय।
भाग हमारें आगमनु राउर कोसलराय॥ 135॥

हे नाथ! प्रभु (आप) के चरणों का दर्शन पाकर अब हम सब सनाथ हो गए। हे कोसलराज! हमारे ही भाग्य से आपका यहाँ शुभागमन हुआ है॥ 135॥

धन्य भूमि बन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा॥
धन्य बिहग मृग काननचारी। सफल जनम भए तुम्हहि निहारी॥

हे नाथ! जहाँ-जहाँ आपने अपने चरण रखे हैं, वे पृथ्वी, वन, मार्ग और पहाड़ धन्य हैं, वे वन में विचरनेवाले पक्षी और पशु धन्य हैं, जो आपको देखकर सफल जन्म हो गए।

हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा॥
कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥

हम सब भी अपने परिवार सहित धन्य हैं, जिन्होंने नेत्र भरकर आपके दर्शन किए। आपने बड़ी अच्छी जगह विचारकर निवास किया है। यहाँ सभी ऋतुओं में आप सुखी रहिएगा।

हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई॥
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥

हम लोग सब प्रकार से हाथी, सिंह, सर्प और बाघों से बचाकर आपकी सेवा करेंगे। हे प्रभो!

यहाँ के बीहड़ वन, पहाड़, गुफाएँ और खोह (दर्रे) सब पग-पग हमारे देखे हुए हैं।

तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। सर निरझर जलठाउँ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता॥

हम वहाँ-वहाँ (उन-उन स्थानों में) आपको शिकार खिलावेंगे और तालाब, झरने आदि जलाशयों को दिखाएँगे। हम कुटुंब समेत आपके सेवक हैं। हे नाथ! इसलिए हमें आज्ञा देने में संकोच न कीजिएगा।

दो॰ - बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन॥ 136॥

जो वेदों के वचन और मुनियों के मन को भी अगम हैं, वे करुणा के धाम प्रभु राम भीलों के वचन इस तरह सुन रहे हैं जैसे पिता बालकों के वचन सुनता है॥ 136॥

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जान निहारा॥
राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे॥

राम को केवल प्रेम प्यारा है; जो जाननेवाला हो (जानना चाहता हो), वह जान ले। तब राम ने प्रेम से परिपुष्ट हुए (प्रेमपूर्ण) कोमल वचन कहकर उन सब वन में विचरण करनेवाले लोगों को संतुष्ट किया।

बिदा किए सिर नाइ सिधाए। प्रभु गुन कहत सुनत घर आए॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई॥

फिर उनको विदा किया। वे सिर नवाकर चले और प्रभु के गुण कहते-सुनते घर आए। इस प्रकार देवता और मुनियों को सुख देनेवाले दोनों भाई सीता समेत वन में निवास करने लगे।

जब तें आइ रहे रघुनायकु। तब तें भयउ बनु मंगलदायकु॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु बलित बर बेलि बिताना॥

जब से रघुनाथ वन में आकर रहे तब से वन मंगलदायक हो गया। अनेक प्रकार के वृक्ष फूलते और फलते हैं और उन पर लिपटी हुई सुंदर बेलों के मंडप तने हैं।

सुरतरु सरिस सुभायँ सुहाए। मनहुँ बिबुध बन परिहरि आए॥
गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिबिध बयारि बहइ सुख देनी॥

वे कल्पवृक्ष के समान स्वाभाविक ही सुंदर हैं। मानो वे देवताओं के वन (नंदन वन) को छोड़कर आए हों। भौंरों की पंक्तियाँ बहुत ही सुंदर गुंजार करती हैं और सुख देनेवाली शीतल, मंद, सुगंधित हवा चलती रहती है।

दो० - नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहग श्रवन सुखद चित चोर॥ 137॥

नीलकंठ, कोयल, तोते, पपीहे, चकवे और चकोर आदि पक्षी कानों को सुख देनेवाली और चित्त को चुरानेवाली तरह-तरह की बोलियाँ बोलते हैं॥ 137॥

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगतबैर बिचरहिं सब संगा॥
फिरत अहेर राम छबि देखी। होहिं मुदित मृग बृंद बिसेषी॥

हाथी, सिंह, बंदर, सूअर और हिरन, ये सब वैर छोड़कर साथ-साथ विचरते हैं। शिकार के लिए फिरते हुए राम की छवि को देखकर पशुओं के समूह विशेष आनंदित होते हैं।

बिबुध बिपिन जहँ लगि जग माहीं। देखि रामबनु सकल सिहाहीं॥
सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या। मेकलसुता गोदावरि धन्या॥

जगत में जहाँ तक (जितने) देवताओं के वन हैं, सब राम के वन को देखकर सिहाते हैं। गंगा, सरस्वती, सूर्यकुमारी यमुना, नर्मदा, गोदावरी आदि धन्य (पुण्यमयी) नदियाँ,

सब सर सिंधु नदीं नद नाना। मंदाकिनि कर करहिं बखाना॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू। मंदर मेरु सकल सुरबासू॥

सारे तालाब, समुद्र, नदी और अनेकों नद सब मंदाकिनी की बड़ाई करते हैं। उदयाचल, अस्ताचल, कैलास, मंदराचल और सुमेरु आदि सब, जो देवताओं के रहने के स्थान हैं,

सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहिं तेते॥
बिंधि मुदित मन सुखु न समाई। श्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई॥

और हिमालय आदि जितने पर्वत हैं, सभी चित्रकूट का यश गाते हैं। विंध्याचल बड़ा

आनंदित है, उसके मन में सुख समाता नहीं; क्योंकि उसने बिना परिश्रम ही बहुत बड़ी बड़ाई पा ली है।

दो० - चित्रकूट के बिहग मृग बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्य पुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिन राति॥ 138॥

चित्रकूट के पक्षी, पशु, बेल, वृक्ष, तृण-अंकुरादि की सभी जातियाँ पुण्य की राशि हैं और धन्य हैं - देवता दिन-रात ऐसा कहते हैं॥ 138॥

नयनवंत रघुबरहि बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी॥
परसि चरन रज अचर सुखारी। भए परम पद के अधिकारी॥

आँखोंवाले जीव राम को देखकर जन्म का फल पाकर शोकरहित हो जाते हैं, और अचर (पर्वत, वृक्ष, भूमि, नदी आदि) भगवान की चरण-रज का स्पर्श पाकर सुखी होते हैं। यों सभी परम पद (मोक्ष) के अधिकारी हो गए।

सो बनु सैलु सुभायँ सुहावन। मंगलमय अति पावन पावन॥
महिमा कहिअ कवनि बिधि तासू। सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू॥

वह वन और पर्वत स्वाभाविक ही सुंदर, मंगलमय और अत्यंत पवित्रों को भी पवित्र करनेवाला है। उसकी महिमा किस प्रकार कही जाए, जहाँ सुख के समुद्र राम ने निवास किया है।

पय पयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय लखनु रामु रहे आई॥
कहि न सकहिं सुषमा जसि कानन। जौं सत सहस होहिं सहसानन॥

क्षीर सागर को त्यागकर और अयोध्या को छोड़कर जहाँ सीता, लक्ष्मण और राम आकर रहे, उस वन की जैसी परम शोभा है, उसको हजार मुखवाले जो लाख शेष हों तो वे भी नहीं कह सकते।

सो मैं बरनि कहौं बिधि केहीं। डाबर कमठ कि मंदर लेहीं॥
सेवहिं लखनु करम मन बानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी॥

उसे भला, मैं किस प्रकार से वर्णन करके कह सकता हूँ। कहीं पोखरे का (क्षुद्र) कछुआ भी मंदराचल उठा सकता है? लक्ष्मण मन, वचन और कर्म से राम की सेवा करते हैं। उनके

शील और स्नेह का वर्णन नहीं किया जा सकता।

दो० - छिनु छिनु लखि सिय राम पद जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहुँ लखनु चितु बंधु मातु पितु गेहु॥ 139॥

क्षण-क्षण पर सीताराम के चरणों को देखकर और अपने ऊपर उनका स्नेह जानकर लक्ष्मण स्वप्न में भी भाइयों, माता-पिता और घर की याद नहीं करते॥ 139॥

राम संग सिय रहति सुखारी। पुर परिजन गृह सुरति बिसारी॥
छिनु छिनु पिय बिधु बदनु निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी॥

राम के साथ सीता अयोध्यापुरी, कुटुंब के लोग और घर की याद भूलकर बहुत ही सुखी रहती हैं। क्षण-क्षण पर पति राम के चंद्रमा के समान मुख को देखकर वे वैसे ही परम प्रसन्न रहती हैं, जैसे चकोर कुमारी (चकोरी) चंद्रमा को देखकर!

नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी॥
सिय मनु राम चरन अनुरागा। अवध सहस सम बनु प्रिय लागा॥

स्वामी का प्रेम अपने प्रति नित्य बढ़ता हुआ देखकर सीता ऐसी हर्षित रहती हैं, जैसे दिन में चकवी! सीता का मन राम के चरणों में अनुरक्त है इससे उनको वन हजारों अवध के समान प्रिय लगता है।

परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा। प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा॥
सासु ससुर सम मुनितिय मुनिबर। असनु अमिअ सम कंद मूल फर॥

प्रियतम (राम) के साथ पर्णकुटी प्यारी लगती है। मृग और पक्षी प्यारे कुटुंबियों के समान लगते हैं। मुनियों की स्त्रियाँ सास के समान, श्रेष्ठ मुनि ससुर के समान और कंद-मूल-फलों का आहार उनको अमृत के समान लगता है।

नाथ साथ साँथरी सुहाई। मयन सयन सय सम सुखदाई॥
लोकप होहिं बिलोकत जासू। तेहि कि मोहि सक बिषय बिलासू॥

स्वामी के साथ सुंदर साथरी (कुश और पत्तों की सेज) सैकड़ों कामदेव की सेजों के समान सुख देनेवाली है। जिनके (कृपापूर्वक) देखने मात्र से जीव लोकपाल हो जाते हैं,

उनको कहीं भोग-विलास मोहित कर सकते हैं!

दो॰ - सुमिरत रामहि तजहिं जन तृन सम बिषय बिलासु।
रामप्रिया जग जननि सिय कछु न आचरजु तासु॥ 140॥

जिन राम का स्मरण करने से ही भक्तजन तमाम भोग-विलास को तिनके के समान त्याग देते हैं, उन राम की प्रिय पत्नी और जगत की माता सीता के लिए यह (भोग-विलास का त्याग) कुछ भी आश्चर्य नहीं है॥ 140॥

सीय लखन जेहि बिधि सुखु लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी। सुनहिं लखनु सिय अति सुखु मानी॥

सीता और लक्ष्मण को जिस प्रकार सुख मिले, रघुनाथ वही करते और वही कहते हैं। भगवान प्राचीन कथाएँ और कहानियाँ कहते हैं और लक्ष्मण तथा सीता अत्यंत सुख मानकर सुनते हैं।

जब जब रामु अवध सुधि करहीं। तब तब बारि बिलोचन भरहीं॥
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत सनेहु सीलु सेवकाई॥

जब-जब राम अयोध्या की याद करते हैं, तब-तब उनके नेत्रों में जल भर आता है। माता-पिता, कुटुंबियों और भाइयों तथा भरत के प्रेम, शील और सेवाभाव को याद करके -

कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी। धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी॥
लखि सिय लखनु बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं॥

कृपा के समुद्र प्रभु राम दुःखी हो जाते हैं, किंतु फिर कुसमय समझकर धीरज धारण कर लेते हैं। राम को दुःखी देखकर सीता और लक्ष्मण भी व्याकुल हो जाते हैं, जैसे किसी मनुष्य की परछाईं उस मनुष्य के समान ही चेष्टा करती है।

प्रिया बंधु गति लखि रघुनंदनु। धीर कृपाल भगत उर चंदनु॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता। सुनि सुखु लहहिं लखनु अरु सीता॥

तब धीर, कृपालु और भक्तों के हृदयों को शीतल करने के लिए चंदन रूप रघुकुल को आनंदित करनेवाले राम प्यारी पत्नी और भाई लक्ष्मण की दशा देखकर कुछ पवित्र

कथाएँ कहने लगते हैं, जिन्हें सुनकर लक्ष्मण और सीता सुख प्राप्त करते हैं।

दो० - रामु लखन सीता सहित सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत॥ 141॥

लक्ष्मण और सीता सहित राम पर्णकुटी में ऐसे सुशोभित हैं, जैसे अमरावती में इंद्र अपनी पत्नी शची और पुत्र जयंत सहित बसता है॥ 141॥

जोगवहिं प्रभुसिय लखनहि कैसें। पलक बिलोचन गोलक जैसें॥
सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि॥

प्रभु राम सीता और लक्ष्मण की कैसी सँभाल रखते हैं, जैसे पलकें नेत्रों के गोलकों की। इधर लक्ष्मण सीता और राम की (अथवा लक्ष्मण और सीता राम की) ऐसी सेवा करते हैं, जैसे अज्ञानी मनुष्य शरीर की करते हैं।

एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी॥
कहेउँ राम बन गवनु सुहावा। सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा॥

पक्षी, पशु, देवता और तपस्वियों के हितकारी प्रभु इस प्रकार सुखपूर्वक वन में निवास कर रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं - मैंने राम का सुंदर वनगमन कहा। अब जिस तरह सुमंत्र अयोध्या में आए वह (कथा) सुनो।

फिरेउ निषादु प्रभुहि पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेसि आई॥
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयउ बिषादू॥

प्रभु राम को पहुँचाकर जब निषादराज लौटा, तब आकर उसने रथ को मंत्री (सुमंत्र) सहित देखा। मंत्री को व्याकुल देखकर निषाद को जैसा दुःख हुआ, वह कहा नहीं जाता।

राम राम सिय लखन पुकारी। परेउ धरनितल ब्याकुल भारी॥
देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं॥

(निषाद को अकेले आया देखकर) सुमंत्र हा राम! हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण! पुकारते हुए, बहुत व्याकुल होकर धरती पर गिर पड़े। (रथ के) घोड़े दक्षिण दिशा की ओर (जिधर राम गए थे) देख-देखकर हिनहिनाते हैं। मानो बिना पंख के पक्षी व्याकुल हो रहे हों।

दो० - नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि।
ब्याकुल भए निषाद सब रघुबर बाजि निहारि॥ 142॥

वे न तो घास चरते हैं, न पानी पीते हैं। केवल आँखों से जल बहा रहे हैं। राम के घोड़ों को इस दशा में देखकर सब निषाद व्याकुल हो गए॥ 142॥

धरि धीरजु तब कहइ निषादू। अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू॥
तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता॥

तब धीरज धरकर निषादराज कहने लगा - हे सुमंत्र! अब विषाद को छोड़िए। आप पंडित और परमार्थ के जाननेवाले हैं। विधाता को प्रतिकूल जानकर धैर्य धारण कीजिए।

बिबिधि कथा कहि कहि मृदु बानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी॥
सोक सिथिल रथु सकइ न हाँकी। रघुबर बिरह पीर उर बाँकी॥

कोमल वाणी से भाँति-भाँति की कथाएँ कहकर निषाद ने जबरदस्ती लाकर सुमंत्र को रथ पर बैठाया। परंतु शोक के मारे वे इतने शिथिल हो गए कि रथ को हाँक नहीं सकते। उनके हृदय में राम के विरह की बड़ी तीव्र वेदना है।

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे॥
अढ़ुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। राम बियोगि बिकल दुख तीछें॥

घोड़े तड़फड़ाते हैं और (ठीक) रास्ते पर नहीं चलते। मानो जंगली पशु लाकर रथ में जोत दिए गए हों। वे राम के वियोगी घोड़े कभी ठोकर खाकर गिर पड़ते हैं, कभी घूमकर पीछे की ओर देखने लगते हैं। वे तीक्ष्ण दुःख से व्याकुल हैं।

जो कह रामु लखनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही॥
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहिं भाँती॥

जो कोई राम, लक्ष्मण या जानकी का नाम ले लेता है, घोड़े हिकर-हिकरकर उसकी ओर प्यार से देखने लगते हैं। घोड़ों की विरह दशा कैसे कही जा सकती है? वे ऐसे व्याकुल हैं, जैसे मणि के बिना साँप व्याकुल होता है।

दो० - भयउ निषादु बिषादबस देखत सचिव तुरंग।

बोलि सुसेवक चारि तब दिए सारथी संग॥ 143॥

मंत्री और घोड़ों की यह दशा देखकर निषादराज विषाद के वश हो गया। तब उसने अपने चार उत्तम सेवक बुलाकर सारथी के साथ कर दिए॥ 143॥

गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई। बिरहु बिषादु बरनि नहिं जाई॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा। होहिं छनहिं छन मगन बिषादा॥

निषादराज गुह सारथी (सुमंत्र) को पहुँचाकर (विदा करके) लौटा। उसके विरह और दुःख का वर्णन नहीं किया जा सकता। वे चारों निषाद रथ लेकर अवध को चले। (सुमंत्र और घोड़ों को देख-देखकर) वे भी क्षण-क्षणभर विषाद में डूबे जाते थे।

सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना॥
रहिहि न अंतहुँ अधम सरीरू। जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू॥

व्याकुल और दुःख से दीन हुए सुमंत्र सोचते हैं कि रघुवीर के बिना जीना धिक्कार है। आखिर यह अधम शरीर रहेगा तो है ही नहीं। अभी राम के बिछुड़ते ही छूटकर इसने यश (क्यों) नहीं ले लिया।

भए अजस अघ भाजन प्राना। कवन हेतु नहिं करत पयाना॥
अहह मंद मनु अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका॥

ये प्राण अपयश और पाप के भाँड़े हो गए। अब ये किस कारण कूच नहीं करते (निकलते नहीं)? हाय! नीच मन (बड़ा अच्छा) मौका चूक गया। अब भी तो हृदय के दो टुकड़े नहीं हो जाते!

मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई। मनहुँ कृपन धन रासि गवाँई॥
बिरिद बाँधि बर बीरु कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई॥

सुमंत्र हाथ मल-मलकर और सिर पीट-पीटकर पछताते हैं। मानो कोई कंजूस धन का खजाना खो बैठा हो। वे इस प्रकार चले मानो कोई बड़ा योद्धा वीर का बाना पहनकर और उत्तम शूरवीर कहलाकर युद्ध से भाग चला हो!

दो० - बिप्र बिबेकी बेदबिद संमत साधु सुजाति।

जिमि धोखें मदपान कर सचिव सोच तेहि भाँति॥ 144॥

जैसे कोई विवेकशील, वेद का ज्ञाता, साधुसम्मत आचरणोंवाला और उत्तम जाति का (कुलीन) ब्राह्मण धोखे से मदिरा पी ले और पीछे पछताए, उसी प्रकार मंत्री सुमंत्र सोच कर रहे (पछता रहे) हैं॥ 144॥

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता करम मन बानी॥
रहै करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदयँ तिमि दारुन दाहू॥

जैसे किसी उत्तम कुलवाली, साधु स्वाभाव की, समझदार और मन, वचन, कर्म से पति को ही देवता माननेवाली पतिव्रता स्त्री को भाग्यवश पति को छोड़कर (पति से अलग) रहना पड़े, उस समय उसके हृदय में जैसे भयानक संताप होता है, वैसे ही मंत्री के हृदय में हो रहा है।

लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी॥
सूखहिं अधर लागि मुहँ लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी॥

नेत्रों में जल भरा है, दृष्टि मंद हो गई है। कानों से सुनाई नहीं पड़ता, व्याकुल हुई बुद्धि बेठिकाने हो रही है। ओठ सूख रहे हैं, मुँह में लाटी लग गई है। किंतु (ये सब मृत्यु के लक्षण हो जाने पर भी) प्राण नहीं निकलते; क्योंकि हृदय में अवधिरूपी किवाड़ लगे हैं (अर्थात चौदह वर्ष बीत जाने पर भगवान फिर मिलेंगे, यही आशा रुकावट डाल रही है)।

बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी॥
हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी। जमपुर पंथ सोच जिमि पापी॥

सुमंत्र के मुख का रंग बदल गया है, जो देखा नहीं जाता। ऐसा मालूम होता है मानो इन्होंने माता-पिता को मार डाला हो। उनके मन में राम वियोगरूपी हानि की महान ग्लानि (पीड़ा) छा रही है, जैसे कोई पापी मनुष्य नरक को जाता हुआ रास्ते में सोच कर रहा हो।

बचनु न आव हृदयँ पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई॥
राम रहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई॥

मुँह से वचन नहीं निकलते। हृदय में पछताते हैं कि मैं अयोध्या में जाकर क्या देखूँगा?

राम से शून्य रथ को जो भी देखेगा, वही मुझे देखने में संकोच करेगा (अर्थात मेरा मुँह नहीं देखना चाहेगा)।

दो० - धाइ पूँछिहहिं मोहि जब बिकल नगर नर नारि।
उतरु देब मैं सबहि तब हृदयँ बज्रु बैठारि॥ 145॥

नगर के सब व्याकुल स्त्री-पुरुष जब दौड़कर मुझसे पूछेंगे, तब मैं हृदय पर वज्र रखकर सबको उत्तर दूँगा॥ 145॥

पुछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहि बिधाता।
पूछिहि जबहिं लखन महतारी। कहिहउँ कवन सँदेस सुखारी॥

जब दीन-दुःखी सब माताएँ पूछेंगी, तब हे विधाता! मैं उन्हें क्या कहूँगा? जब लक्ष्मण की माता मुझसे पूछेंगी, तब मैं उन्हें कौन-सा सुखदायी सँदेसा कहूँगा?

राम जननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई॥
पूँछत उतरु देब मैं तेही। गे बनु राम लखनु बैदेही॥

राम की माता जब इस प्रकार दौड़ी आवेंगी जैसे नई ब्यायी हुई गौ बछड़े को याद करके दौड़ी आती है, तब उनके पूछने पर मैं उन्हें यह उत्तर दूँगा कि राम, लक्ष्मण, सीता वन को चले गए!

जोई पूँछिहि तेहि ऊतरु देबा। जाइ अवध अब यहु सुखु लेबा॥
पूँछिहि जबहिं राउ दुख दीना। जिवनु जासु रघुनाथ अधीना॥

जो भी पूछेगा उसे यही उत्तर देना पड़ेगा! हाय! अयोध्या जाकर अब मुझे यही सुख लेना है! जब दुःख से दीन महाराज, जिनका जीवन रघुनाथ के (दर्शन के) ही अधीन है, मुझसे पूछेंगे,

देहउँ उतरु कौनु मुहु लाई। आयउँ कुसल कुअँर पहुँचाई॥
सुनत लखन सिय राम सँदेसू। तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू॥

तब मैं कौन-सा मुँह लेकर उन्हें उत्तर दूँगा कि मैं राजकुमारों को कुशलपूर्वक पहुँचा आया हूँ! लक्ष्मण, सीता औरराम का समाचार सुनते ही महाराज तिनके की तरह शरीर को त्याग

देंगे।

दो॰ - हृदउ न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीरु॥ 146॥

प्रियतम (राम)रूपी जल के बिछुड़ते ही मेरा हृदय कीचड़ की तरह फट नहीं गया, इससे मैं जानता हूँ कि विधाता ने मुझे यह 'यातना शरीर' ही दिया है।146॥

एहि बिधि करत पंथ पछितावा। तमसा तीर तुरत रथु आवा॥
बिदा किए करि बिनय निषादा। फिरे पायँ परि बिकल बिषादा॥

सुमंत्र इस प्रकार मार्ग में पछतावा कर रहे थे, इतने में ही रथ तुरंत तमसा नदी के तट पर आ पहुँचा। मंत्री ने विनय करके चारों निषादों को विदा किया। वे विषाद से व्याकुल होते हुए सुमंत्र के पैरों पड़कर लौटे।

पैठत नगर सचिव सकुचाई। जनु मारेसि गुर बाँभन गाई॥
बैठि बिटप तर दिवसु गवाँवा। साँझ समय तब अवसरु पावा॥

नगर में प्रवेश करते मंत्री (ग्लानि के कारण) ऐसे सकुचाते हैं, मानो गुरु, ब्राह्मण या गौ को मारकर आए हों। सारा दिन एक पेड़ के नीचे बैठकर बिताया। जब संध्या हुई तब मौका मिला।

अवध प्रबेसु कीन्ह अँधिआरें। पैठ भवन रथु राखि दुआरें॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए। भूप द्वार रथु देखन आए॥

अँधेरा होने पर उन्होंने अयोध्या में प्रवेश किया और रथ को दरवाजे पर खड़ा करके वे (चुपके-से) महल में घुसे। जिन-जिन लोगों ने यह समाचार सुना पाया, वे सभी रथ देखने को राजद्वार पर आए।

रथु पहिचानि बिकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे॥
नगर नारि नर ब्याकुल कैसें। निघटत नीर मीनगन जैसें॥

रथ को पहचानकर और घोड़ों को व्याकुल देखकर उनके शरीर ऐसे गले जा रहे हैं (क्षीण हो रहे हैं) जैसे घाम में ओले! नगर के स्त्री-पुरुष कैसे व्याकुल हैं, जैसे जल के घटने पर

मछलियाँ (व्याकुल होती हैं)।

दो० - सचिव आगमनु सुनत सबु बिकल भयउ रनिवासु।
भवनु भयंकरु लाग तेहि मानहुँ प्रेत निवासु॥ 147॥

मंत्री का (अकेले ही) आना सुनकर सारा रनिवास व्याकुल हो गया। राजमहल उनको ऐसा भयानक लगा मानो प्रेतों का निवास स्थान (श्मशान) हो॥ 147॥

अति आरति सब पूँछहिं रानी। उतरु न आव बिकल भइ बानी॥
सुनइ न श्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृपु तेहि तेहि बूझा॥

अत्यंत आर्त होकर सब रानियाँ पूछती हैं; पर सुमंत्र को कुछ उत्तर नहीं आता, उनकी वाणी विकल हो गई (रुक गई) है। न कानों से सुनाई पड़ता है और न आँखों से कुछ सूझता है। वे जो भी सामने आता है उस-उससे पूछते हैं - कहो, राजा कहाँ हैं?

दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई। कौसल्या गृहँ गईं लवाई॥
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिअ रहित जनु चंदु बिराजा॥

दासियाँ मंत्री को व्याकुल देखकर उन्हें कौसल्या के महल में लिवा गईं। सुमंत्र ने जाकर वहाँ राजा को कैसा (बैठे) देखा मानो बिना अमृत का चंद्रमा हो।

आसन सयन बिभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना॥
लेइ उसासु सोच एहि भाँती। सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती॥

राजा आसन, शय्या और आभूषणों से रहित बिलकुल मलिन (उदास) पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। वे लंबी साँसें लेकर इस प्रकार सोच करते हैं मानो राजा ययाति स्वर्ग से गिरकर सोच कर रहे हों।

लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती॥
राम राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लखन बैदेही॥

राजा क्षण-क्षण में सोच से छाती भर लेते हैं। ऐसी विकल दशा है मानो (गीधराज जटायु का भाई) संपाती पंखों के जल जाने पर गिर पड़ा हो। राजा (बार-बार) 'राम, राम' 'हा स्नेही (प्यारे) राम!' कहते हैं, फिर 'हा राम, हा लक्ष्मण, हा जानकी' ऐसा कहने लगते हैं।

दो० - देखि सचिवँ जय जीव कहि कीन्हेउ दंड प्रनामु।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति कहु सुमंत्र कहँ रामु॥ 148॥

मंत्री ने देखकर 'जय जीव' कहकर दंडवत-प्रणाम किया। सुनते ही राजा व्याकुल होकर उठे और बोले - सुमंत्र! कहो, राम कहाँ हैं?॥ 148॥

भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई। बूड़त कछु अधार जनु पाई॥
सहित सनेह निकट बैठारी। पूँछत राउ नयन भरि बारी॥

राजा ने सुमंत्र को हृदय से लगा लिया। मानो डूबते हुए आदमी को कुछ सहारा मिल गया हो। मंत्री को स्नेह के साथ पास बैठाकर नेत्रों में जल भरकर राजा पूछने लगे -

राम कुसल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथु लखनु बैदेही॥
आने फेरि कि बनहि सिधाए। सुनत सचिव लोचन जल छाए॥

हे मेरे प्रेमी सखा! राम की कुशल कहो। बताओ, राम, लक्ष्मण और जानकी कहाँ हैं? उन्हें लौटा लाए हो कि वे वन को चले गए? यह सुनते ही मंत्री के नेत्रों में जल भर आया।

सोक बिकल पुनि पूँछ नरेसू। कहु सिय राम लखन संदेसू॥
राम रूप गुन सील सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥

शोक से व्याकुल होकर राजा फिर पूछने लगे - सीता, राम और लक्ष्मण का संदेसा तो कहो। राम के रूप, गुण, शील और स्वभाव को याद कर-करके राजा हृदय में सोच करते हैं।

राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरषु हराँसू॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना। को पापी बड़ मोहि समाना॥

(और कहते हैं -) मैंने राजा होने की बात सुनाकर वनवास दे दिया, यह सुनकर भी जिस (राम) के मन में हर्ष और विषाद नहीं हुआ, ऐसे पुत्र के बिछुड़ने पर भी मेरे प्राण नहीं गए, तब मेरे समान बड़ा पापी कौन होगा?

दो० - सखा रामु सिय लखनु जहँ तहाँ मोहि पहुँचाउ।
नाहिं त चाहत चलन अब प्रान कहउँ सतिभाउ॥ 149॥

हे सखा! राम, जानकी और लक्ष्मण जहाँ हैं, मुझे भी वहीं पहुँचा दो। नहीं तो मैं सत्य भाव से कहता हूँ कि मेरे प्राण अब चलना ही चाहते हैं॥ 149॥

पुनि पुनि पूँछत मंत्रिहि राऊ। प्रियतम सुअन सँदेस सुनाऊ॥
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ। रामु लखनु सिय नयन देखाऊ॥

राजा बार-बार मंत्री से पूछते हैं - मेरे प्रियतम पुत्रों का संदेसा सुनाओ। हे सखा! तुम तुरंत वही उपाय करो जिससे राम, लक्ष्मण और सीता को मुझे आँखों दिखा दो।

सचिव धीर धरि कह मृदु बानी। महाराज तुम्ह पंडित ग्यानी॥
बीर सुधीर धुरंधर देवा। साधु समाजु सदा तुम्ह सेवा॥

मंत्री धीरज धरकर कोमल वाणी बोले - महाराज! आप पंडित और ज्ञानी हैं। हे देव! आप शूरवीर तथा उत्तम धैर्यवान पुरुषों में श्रेष्ठ हैं। आपने सदा साधुओं के समाज की सेवा की है।

जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा॥
काल करम बस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं॥

जन्म-मरण, सुख-दुःख के भोग, हानि-लाभ, प्यारों का मिलना-बिछुड़ना, ये सब हे स्वामी! काल और कर्म के अधीन रात और दिन की तरह बरबस होते रहते हैं।

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं॥
धीरज धरहु बिबेकु बिचारी। छाड़िअ सोच सकल हितकारी॥

मूर्ख लोग सुख में हर्षित होते और दुःख में रोते हैं, पर धीर पुरुष अपने मन में दोनों को समान समझते हैं। हे सबके हितकारी (रक्षक)! आप विवेक विचारकर धीरज धरिए और शोक का परित्याग कीजिए।

दो० - प्रथम बासु तमसा भयउ दूसर सुरसरि तीर।
न्हाइ रहे जलपानु करि सिय समेत दोउ बीर॥ 150॥

राम का पहला निवास (मुकाम) तमसा के तट पर हुआ, दूसरा गंगा तीर पर। सीता सहित दोनों भाई उस दिन स्नान करके जल पीकर ही रहे॥ 150॥

केवट कीन्हि बहुत-सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर गवाँई॥
होत प्रात बट छीरु मगावा। जटा मुकुट निज सीस बनावा॥

केवट (निषादराज) ने बहुत-सेवा की। वह रात सिंगरौर (श्रृंगवेरपुर) में ही बिताई। दूसरे दिन सबेरा होते ही बड़ का दूध मँगवाया और उससे राम-लक्ष्मण ने अपने सिरों पर जटाओं के मुकुट बनाए।

राम सखाँ तब नाव मगाई। प्रिया चढ़ाई चढ़े रघुराई॥
लखन बान धनु धरे बनाई। आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई॥

तब राम के सखा निषादराज ने नाव मँगवाई। पहले प्रिया सीता को उस पर चढ़ाकर फिर रघुनाथ चढ़े। फिर लक्ष्मण ने धनुष-बाण सजाकर रखे और प्रभु राम की आज्ञा पाकर स्वयं चढ़े।

बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर बचन धरि धीरा॥
तात प्रनामु तात सन कहेहू। बार बार पद पंकज गहेहू॥

मुझे व्याकुल देखकर राम धीरज धरकर मधुर वचन बोले - हे तात! पिता से मेरा प्रणाम कहना और मेरी ओर से बार-बार उनके चरण कमल पकड़ना।

करबि पायँ परि बिनय बहोरी। तात करिअ जनि चिंता मोरी॥
बन मग मंगल कुसल हमारें। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारें॥

फिर पाँव पकड़कर विनती करना कि हे पिता! आप मेरी चिंता न कीजिए। आपकी कृपा, अनुग्रह और पुण्य से वन में और मार्ग में हमारा कुशल-मंगल होगा।

छं॰ - तुम्हरें अनुग्रह तात कानन जात सब सुखु पाइहौं।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं॥
जननीं सकल परितोषि परि परि पायँ करि बिनती घनी।
तुलसी करहु सोइ जतनु जेहिं कुसली रहहिं कोसलधनी॥

हे पिता! आपके अनुग्रह से मैं वन जाते हुए सब प्रकार का सुख पाऊँगा। आज्ञा का भली-भाँति पालन करके चरणों का दर्शन करने कुशलपूर्वक फिर लौट आऊँगा। सब माताओं के पैरों पड़-पड़कर उनका समाधान करके और उनसे बहुत विनती करके - तुलसीदास कहते

हैं - तुम वही प्रयत्न करना, जिसमें कोसलपति पिता कुशल रहें।

सो० - गुर सन कहब सँदेसु बार बार पद पदुम गहि।
करब सोइ उपदेसु जेहिं न सोच मोहि अवधपति॥ 151॥

बार-बार चरण कमलों को पकड़कर गुरु वशिष्ठ से मेरा संदेसा कहना कि वे वही उपदेश दें जिससे अवधपति पिता मेरा सोच न करें॥ 151॥

पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनाएहु बिनती मोरी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जातें रह नरनाहु सुखारी॥

हे तात! सब पुरवासियों और कुटुंबियों से निहोरा (अनुरोध) करके मेरी विनती सुनाना कि वही मनुष्य मेरा सब प्रकार से हितकारी है जिसकी चेष्टा से महाराज सुखी रहें।

कहब सँदेसु भरत के आएँ। नीति न तजिअ राजपदु पाएँ॥
पालेहु प्रजहि करम मन बानी। सेएहु मातु सकल सम जानी॥

भरत के आने पर उनको मेरा संदेसा कहना कि राजा का पद पा जाने पर नीति न छोड़ देना; कर्म, वचन और मन से प्रजा का पालन करना और सब माताओं को समान जानकर उनकी सेवा करना।

ओर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु मातु सुजन सेवकाई॥
तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहिं करै न काऊ॥

और हे भाई! पिता, माता और स्वजनों की सेवा करके भाईपन को अंत तक निबाहना। हे तात! राजा (पिता) को उसी प्रकार से रखना जिससे वे कभी (किसी तरह भी) मेरा सोच न करें।

लखन कहे कछु बचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा॥
बार बार निज सपथ देवाई। कहबि न तात लखन लरिकाई॥

लक्ष्मण ने कुछ कठोर वचन कहे। किंतु राम ने उन्हें बरजकर फिर मुझसे अनुरोध किया और बार-बार अपनी सौगंध दिलाई (और कहा -) हे तात! लक्ष्मण का लड़कपन वहाँ न कहना।

दो० - कहि प्रनामु कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित बचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह॥ 152॥

प्रणाम कर सीता भी कुछ कहने लगी थीं, परंतु स्नेहवश वे शिथिल हो गईं। उनकी वाणी रुक गई, नेत्रों में जल भर आया और शरीर रोमांच से व्याप्त हो गया॥ 152॥

तेहि अवसर रघुबर रुख पाई। केवट पारहि नाव चलाई॥
रघुकुलतिलक चले एहि भाँती। देखउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती॥

उसी समय राम का रुख पाकर केवट ने पार जाने के लिए नाव चला दी। इस प्रकार रघुवंश तिलक राम चल दिए और मैं छाती पर वज्र रखकर खड़ा-खड़ा देखता रहा।

मैं आपन किमि कहौं कलेसू। जिअत फिरेउँ लेइ राम सँदेसू॥
अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोच बस भयऊ॥

मैं अपने क्लेश को कैसे कहूँ, जो राम का यह संदेसा लेकर जीता ही लौट आया! ऐसा कहकर मंत्री की वाणी रुक गई (वे चुप हो गए) और वे हानि की ग्लानि और सोच के वश हो गए।

सूत बचन सुनतहिं नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुन दाहू॥
तलफत बिषम मोह मन मापा। माजा मनहुँ मीन कहुँ ब्यापा॥

सारथी सुमंत्र के वचन सुनते ही राजा पृथ्वी पर गिर पड़े, उनके हृदय में भयानक जलन होने लगी। वे तड़पने लगे, उनका मन भीषण मोह से व्याकुल हो गया। मानो मछली को माँजा व्याप गया हो (पहली वर्षा का जल लग गया हो)।

करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महा बिपति किमि जाइ बखानी॥
सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा। धीरजहू कर धीरजु भागा॥

सब रानियाँ विलाप करके रो रही हैं। उस महान विपत्ति का कैसे वर्णन किया जाए? उस समय के विलाप को सुनकर दुःख को भी दुःख लगा और धीरज का भी धीरज भाग गया!

दो० - भयउ कोलाहलु अवध अति सुनि नृप राउर सोरु।
बिपुल बिहग बन परेउ निसि मानहुँ कुलिस कठोरु॥ 153॥

राजा के रावले (रनिवास) में (रोने का) शोर सुनकर अयोध्या भर में बड़ा भारी कुहराम मच गया! (ऐसा जान पड़ता था) मानो पक्षियों के विशाल वन में रात के समय कठोर वज्र गिरा हो॥ 153॥

प्रान कंठगत भयउ भुआलू। मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू॥
इंद्रीं सकल बिकल भइँ भारी। जनु सर सरसिज बनु बिनु बारी॥

राजा के प्राण कंठ में आ गए। मानो मणि के बिना साँप व्याकुल (मरणासन्न) हो गया हो। इंद्रियाँ सब बहुत ही विकल हो गईं, मानो बिना जल के तालाब में कमलों का वन मुरझा गया हो।

कौसल्याँ नृपु दीख मलाना। रबिकुल रबि अँथयउ जियँ जाना॥
उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी॥

कौसल्या ने राजा को बहुत दुःखी देखकर अपने हृदय में जान लिया कि अब सूर्यकुल का सूर्य अस्त हो चला! तब राम की माता कौसल्या हृदय में धीरज धरकर समय के अनुकूल वचन बोलीं -

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥

हे नाथ! आप मन में समझ कर विचार कीजिए कि राम का वियोग अपार समुद्र है। अयोध्या जहाज है और आप उसके कर्णधार (खेनेवाले) हैं। सब प्रियजन (कुटुंबी और प्रजा) ही यात्रियों का समाज है, जो इस जहाज पर चढ़ा हुआ है।

धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू॥
जौं जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी॥

आप धीरज धरिएगा, तो सब पार पहुँच जाएँगे। नहीं तो सारा परिवार डूब जाएगा। हे प्रिय स्वामी! यदि मेरी विनती हृदय में धारण कीजिएगा तो राम, लक्ष्मण, सीता फिर आ मिलेंगे।

दो० - प्रिया बचन मृदु सुनत नृपु चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु सींचत सीतल बारि॥ 154॥

प्रिय पत्नी कौसल्या के कोमल वचन सुनते हुए राजा ने आँखें खोलकर देखा! मानो तड़पती हुई दीन मछली पर कोई शीतल जल छिड़क रहा हो॥ 154॥

धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू। कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालू॥
कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही। कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही॥

धीरज धरकर राजा उठ बैठे और बोले - सुमंत्र! कहो, कृपालु राम कहाँ हैं? लक्ष्मण कहाँ हैं? स्नेही राम कहाँ हैं? और मेरी प्यारी बहू जानकी कहाँ है?

बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुग सरिस सिराति न राती॥
तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई॥

राजा व्याकुल होकर बहुत प्रकार से विलाप कर रहे हैं। वह रात युग के समान बड़ी हो गई, बीतती ही नहीं। राजा को अंधे तपस्वी (श्रवणकुमार के पिता) के शाप की याद आ गई। उन्होंने सब कथा कौसल्या को कह सुनाई।

भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा॥
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा॥

उस इतिहास का वर्णन करते-करते राजा व्याकुल हो गए और कहने लगे कि राम के बिना जीने की आशा को धिक्कार है। मैं उस शरीर को रखकर क्या करूँगा, जिसने मेरा प्रेम का प्रण नहीं निबाहा?

हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते॥
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर॥

हा रघुकुल को आनंद देनेवाले मेरे प्राण प्यारे राम! तुम्हारे बिना जीते हुए मुझे बहुत दिन बीत गए। हा जानकी, लक्ष्मण! हा रघुवीर! हा पिता के चित्तरूपी चातक के हित करनेवाले मेघ!

दो० - राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम॥ 155॥

राम-राम कहकर, फिर राम कहकर, फिर राम-राम कहकर और फिर राम कहकर राजा राम

के विरह में शरीर त्याग कर सुरलोक को सिधार गए॥ 155॥

जिअन मरन फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा॥
जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरनु सँवारा॥

जीने और मरने का फल तो दशरथ ने ही पाया, जिनका निर्मल यश अनेकों ब्रह्मांडों में छा गया। जीते-जी तो राम के चंद्रमा के समान मुख को देखा और राम के विरह को निमित्त बनाकर अपना मरण सुधार लिया।

सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूपु सीलु बलु तेजु बखानी॥
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहिं बारा॥

सब रानियाँ शोक के मारे व्याकुल होकर रो रही हैं। वे राजा के रूप, शील, बल और तेज का बखान कर-करके अनेकों प्रकार से विलाप कर रही हैं और बार-बार धरती पर गिर-गिर पड़ती हैं।

बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदनु करहिं पुरबासी॥
अँथयउ आजु भानुकुल भानू। धरम अवधि गुन रूप निधानू॥

दास-दासीगण व्याकुल होकर विलाप कर रहे हैं और नगर निवासी घर-घर रो रहे हैं। कहते हैं कि आज धर्म की सीमा, गुण और रूप के भंडार सूर्यकुल के सूर्य अस्त हो गए!

गारीं सकल कैकइहि देहीं। नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीं॥
एहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी॥

सब कैकेयी को गालियाँ देते हैं, जिसने संसार भर को बिना नेत्र का (अंधा) कर दिया! इस प्रकार विलाप करते रात बीत गई। प्रातःकाल सब बड़े-बड़े ज्ञानी मुनि आए।

दो० - तब बसिष्ठ मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास।
सोक नेवारेउ सबहि कर निज बिग्यान प्रकास॥ 156॥

तब वशिष्ठ मुनि ने समय के अनुकूल अनेक इतिहास कहकर अपने विज्ञान के प्रकाश से सबका शोक दूर किया॥ 156॥

तेल नावँ भरि नृप तनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाषा॥

धावहु बेगि भरत पहिं जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू॥

वशिष्ठ ने नाव में तेल भरवाकर राजा के शरीर को उसमें रखवा दिया। फिर दूतों को बुलवाकर उनसे ऐसा कहा - तुम लोग जल्दी दौड़कर भरत के पास जाओ। राजा की मृत्यु का समाचार कहीं किसी से न कहना।

एतनेइ कहेहु भरत सन जाई। गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई॥
सुनि मुनि आयसु धावन धाए। चले बेग बर बाजि लजाए॥

जाकर भरत से इतना ही कहना कि दोनों भाइयों को गुरु ने बुलवा भेजा है। मुनि की आज्ञा सुनकर धावन (दूत) दौड़े। वे अपने वेग से उत्तम घोड़ों को भी लजाते हुए चले।

अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें॥
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना॥

जब से अयोध्या में अनर्थ प्रारंभ हुआ, तभी से भरत को अपशकुन होने लगे। वे रात को भयंकर स्वप्न देखते थे और जागने पर (उन स्वप्नों के कारण) करोड़ों (अनेकों) तरह की बुरी-बुरी कल्पनाएँ किया करते थे।

बिप्र जेवाँइ देहिं दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना॥
मागहिं हृदयँ महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई॥

(अनिष्ट शांति के लिए) वे प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन कराकर दान देते थे। अनेकों विधियों से रुद्राभिषेक करते थे। महादेव को हृदय में मनाकर उनसे माता-पिता, कुटुंबी और भाइयों का कुशल-क्षेम माँगते थे।

दो० - एहि बिधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ।
गुर अनुसासन श्रवन सुनि चले गनेसु मनाई॥ 157॥

भरत इस प्रकार मन में चिंता कर रहे थे कि दूत आ पहुँचे। गुरु की आज्ञा कानों से सुनते ही वे गणेश को मनाकर चल पड़े॥ 157॥

चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके॥
हृदयँ सोचु बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जियँ जाउँ उड़ाई॥

हवा के समान वेगवाले घोड़ों को हाँकते हुए वे विकट नदी, पहाड़ तथा जंगलों को लाँघते हुए चले। उनके हृदय में बड़ा सोच था, कुछ सुहाता न था। मन में ऐसा सोचते थे कि उड़कर पहुँच जाऊँ।

एक निमेष बरष सम जाई। एहि बिधि भरत नगर निअराई॥
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा॥

एक-एक निमेष वर्ष के समान बीत रहा था। इस प्रकार भरत नगर के निकट पहुँचे। नगर में प्रवेश करते समय अपशकुन होने लगे। कौए बुरी जगह बैठकर बुरी तरह से काँव-काँव कर रहे हैं।

खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावनु लागा॥

गदहे और सियार विपरीत बोल रहे हैं। यह सुन-सुनकर भरत के मन में बड़ी पीड़ा हो रही है। तालाब, नदी, वन, बगीचे सब शोभाहीन हो रहे हैं। नगर बहुत ही भयानक लग रहा है।

खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए॥
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी॥

राम के वियोगरूपी बुरे रोग से सताए हुए पक्षी-पशु, घोड़े-हाथी (ऐसे दुःखी हो रहे हैं कि) देखे नहीं जाते। नगर के स्त्री-पुरुष अत्यंत दुःखी हो रहे हैं। मानो सब अपनी सारी संपत्ति हार बैठे हों।

दो० - पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गवँहि जोहारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूँछि न सकहिं भय बिषाद मन माहिं॥ 158॥

नगर के लोग मिलते हैं, पर कुछ कहते नहीं; गौं से (चुपके-से) जोहार (वंदना) करके चले जाते हैं। भरत भी किसी से कुशल नहीं पूछ सकते, क्योंकि उनके मन में भय और विषाद छा रहा है॥ 158॥

हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी॥
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनि॥

बाजार और रास्ते देखे नहीं जाते। मानो नगर में दसों दिशाओं में दावाग्नि लगी है! पुत्र

को आते सुनकर सूर्यकुलरूपी कमल के लिए चाँदनीरूपी कैकेयी (बड़ी) हर्षित हुई।

सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई॥
भरत दुखित परिवारु निहारा॥ मानहुँ तुहिन बनज बनु मारा॥

वह आरती सजाकर आनंद में भरकर उठ दौड़ी और दरवाजे पर ही मिलकर भरत-शत्रुघ्न को महल में ले आई। भरत ने सारे परिवार को दुःखी देखा। मानो कमलों के वन को पाला मार गया हो।

कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती॥
सुतहि ससोच देखि मनु मारें। पूँछति नैहर कुसल हमारें॥

एक कैकेयी ही इस तरह हर्षित दिखती है मानो भीलनी जंगल में आग लगाकर आनंद में भर रही हो। पुत्र को सोच वश और मन मारे (बहुत उदास) देखकर वह पूछने लगी - हमारे नैहर में कुशल तो है?

सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूँछी निज कुल कुसल भलाई॥
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता॥

भरत ने सब कुशल कह सुनाई। फिर अपने कुल की कुशल-क्षेम पूछी। (भरत ने कहा -) कहो, पिता कहाँ हैं? मेरी सब माताएँ कहाँ हैं? सीता और मेरे प्यारे भाई राम-लक्ष्मण कहाँ हैं?

दो० - सुनि सुत बचन सनेहमय कपट नीर भरि नैन।
भरत श्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बैन॥ 159॥

पुत्र के स्नेहमय वचन सुनकर नेत्रों में कपट का जल भरकर पापिनी कैकेयी भरत के कानों में और मन में शूल के समान चुभनेवाले वचन बोली - ॥ 159॥

तात बात मैं सकल सँवारी। भै मंथरा सहाय बिचारी॥
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ॥

हे तात! मैंने सारी बात बना ली थी। बेचारी मंथरा सहायक हुई। पर विधाता ने बीच में जरा-सा काम बिगाड़ दिया। वह यह कि राजा देवलोक को पधार गए।

सुनत भरतु भए बिबस बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरि नादा॥
तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल ब्याकुल भारी॥

भरत यह सुनते ही विषाद के मारे विवश (बेहाल) हो गए। मानो सिंह की गर्जना सुनकर हाथी सहम गया हो। वे 'तात! तात! हा तात!' पुकारते हुए अत्यंत व्याकुल होकर जमीन पर गिर पड़े।

चलत न देखन पायउँ तोही। तात न रामहि सौंपेहु मोही॥
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी। कहु पितु मरन हेतु महतारी॥

(और विलाप करने लगे कि) हे तात! मैं आपको (स्वर्ग के लिए) चलते समय देख भी न सका। (हाय!) आप मुझे राम को सौंप भी नहीं गए! फिर धीरज धरकर वे सम्हलकर उठे और बोले - माता! पिता के मरने का कारण तो बताओ।

सुनि सुत बचन कहति कैकेई। मरमु पाँछि जनु माहुर देई॥
आदिहु तें सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदित मन बरनी॥

पुत्र का वचन सुनकर कैकेयी कहने लगी। मानो मर्मस्थान को पाछकर (चाकू से चीरकर) उसमें जहर भर रही हो। कुटिल और कठोर कैकेयी ने अपनी सब करनी शुरू से (आखिर तक बड़े) प्रसन्न मन से सुना दी।

दो० - भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु।
हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु॥ 160॥

राम का वन जाना सुनकर भरत को पिता का मरण भूल गया और हृदय में इस सारे अनर्थ का कारण अपने को ही जानकर वे मौन होकर स्तंभित रह गए (अर्थात उनकी बोली बंद हो गई और वे सन्न रह गए)॥ 160॥

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति। मनहुँ जरे पर लोनु लगावति॥
तात राउ नहिं सोचै जोगू। बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू॥

पुत्र को व्याकुल देखकर कैकेयी समझाने लगी। मानो जले पर नमक लगा रही हो। (वह बोली -) हे तात! राजा सोच करने योग्य नहीं हैं। उन्होंने पुण्य और यश कमाकर उसका पर्याप्त भोग किया।

जीवत सकल जनम फल पाए। अंत अमरपति सदन सिधाए॥
अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राज पुर करहू॥

जीवनकाल में ही उन्होंने जन्म लेने के संपूर्ण फल पा लिए और अंत में वे इंद्रलोक को चले गए। ऐसा विचारकर सोच छोड़ दो और समाज सहित नगर का राज्य करो।

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाकें छत जनु लाग अँगारू॥
धीरज धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहि भाँति कुल नासा॥

राजकुमार भरत यह सुनकर बहुत ही सहम गए। मानो पके घाव पर अँगार छू गया हो। उन्होंने धीरज धरकर बड़ी लंबी साँस लेते हुए कहा - पापिनी! तूने सभी तरह से कुल का नाश कर दिया।

जौं पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारे मोही॥
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। मीन जिअन निति बारि उलीचा॥

हाय! यदि तेरी ऐसी ही अत्यंत बुरी रुचि (दुष्ट इच्छा) थी, तो तूने जन्मते ही मुझे मार क्यों नहीं डाला? तूने पेड़ को काटकर पत्ते को सींचा है और मछली के जीने के लिए पानी को उलीच डाला! (अर्थात मेरा हित करने जाकर उलटा तूने मेरा अहित कर डाला।)

दो॰ - हंसबंसु दसरथु जनकु राम लखन से भाइ।
जननी तूँ जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ॥ 161॥

मुझे सूर्यवंश (-सा वंश), दशरथ (-सरीखे) पिता और राम-लक्ष्मण से भाई मिले। पर हे जननी! मुझे जन्म देनेवाली माता तू हुई! (क्या किया जाए!) विधाता से कुछ भी वश नहीं चलता॥ 161॥

जब तैं कुमति कुमत जियँ ठयऊ। खंड खंड होइ हृदउ न गयऊ॥
बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा॥

अरी कुमति! जब तूने हृदय में यह बुरा विचार (निश्चय) ठाना, उसी समय तेरे हृदय के टुकड़े-टुकड़े (क्यों) न हो गए? वरदान माँगते समय तेरे मन में कुछ भी पीड़ा नहीं हुई? तेरी जीभ गल नहीं गई? तेरे मुँह में कीड़े नहीं पड़ गए?

भूपँ प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही॥

बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥

राजा ने तेरा विश्वास कैसे कर लिया? (जान पड़ता है,) विधाता ने मरने के समय उनकी बुद्धि हर ली थी। स्त्रियों के हृदय की गति (चाल) विधाता भी नहीं जान सके। वह संपूर्ण कपट, पाप और अवगुणों की खान है।

सरल सुसील धरम रत राऊ। सो किमि जानै तीय सुभाऊ॥
अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं॥

फिर राजा तो सीधे, सुशील और धर्मपरायण थे। वे भला, स्त्री स्वभाव को कैसे जानते? अरे, जगत के जीव-जंतुओं में ऐसा कौन है, जिसे रघुनाथ प्राणों के समान प्यारे नहीं हैं।

भे अति अहित रामु तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोही॥
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई॥

वे राम भी तुझे अहित हो गए (वैरी लगे)! तू कौन है? मुझे सच-सच कह! तू जो है, सो है, अब मुँह में स्याही पोतकर (मुँह काला करके) उठकर मेरी आँखों की ओट में जा बैठ।

दो० - राम बिरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहि॥ 162॥

विधाता ने मुझे राम से विरोध करनेवाले (तेरे) हृदय से उत्पन्न किया (अथवा विधाता ने मुझे हृदय से राम का विरोधी जाहिर कर दिया)। मेरे बराबर पापी दूसरा कौन है? मैं व्यर्थ ही तुझे कुछ कहता हूँ॥ 162॥

सुनि सत्रुघुन मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस कछु न बसाई॥
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई॥

माता की कुटिलता सुनकर शत्रुघ्न के सब अंग क्रोध से जल रहे हैं, पर कुछ वश नहीं चलता। उसी समय भाँति-भाँति के कपड़ों और गहनों से सजकर कुबरी (मंथरा) वहाँ आई।

लखि रिस भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुह भर महि करत पुकारा॥

उसे (सजी) देखकर लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न क्रोध में भर गए। मानो जलती हुई आग

को घी की आहुति मिल गई हो। उन्होंने जोर से तककर कूबड़ पर एक लात जमा दी। वह चिल्लाती हुई मुँह के बल जमीन पर गिर पड़ी।

कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू॥
आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा॥

उसका कूबड़ टूट गया, कपाल फूट गया, दाँत टूट गए और मुँह से खून बहने लगा। (वह कराहती हुई बोली -) हाय दैव! मैंने क्या बिगाड़ा? जो भला करते बुरा फल पाया।

सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी॥
भरत दयानिधि दीन्हि छड़ाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई॥

उसकी यह बात सुनकर और उसे नख से शिखा तक दुष्ट जानकर शत्रुघ्न झोंटा पकड़-पकड़कर उसे घसीटने लगे। तब दयानिधि भरत ने उसको छुड़ा दिया और दोनों भाई (तुरंत) कौसल्या के पास गए।

दो० - मलिन बसन बिबरन बिकल कृस शरीर दुख भार।
कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसार॥ 163॥

कौसल्या मैले वस्त्र पहने हैं, चेहरे का रंग बदला हुआ है, व्याकुल हो रही हैं, दुःख के बोझ से शरीर सूख गया है। ऐसी दिख रही हैं मानो सोने की सुंदर कल्पलता को वन में पाला मार गया हो॥ 163॥

भरतहि देखि मातु उठि धाई। मुरुछित अवनि परी झइँ आई॥
देखत भरतु बिकल भए भारी। परे चरन तन दसा बिसारी॥

भरत को देखते ही माता कौसल्या उठ दौड़ीं। पर चक्कर आ जाने से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। यह देखते ही भरत बड़े व्याकुल हो गए और शरीर की सुध भुलाकर चरणों में गिर पड़े।

मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई॥
कैकइ कत जनमी जग माझा। जौं जनमि त भइ काहे न बाँझा॥

(फिर बोले -) माता! पिता कहाँ हैं? उन्हें दिखा दे। सीता तथा मेरे दोनों भाई राम-लक्ष्मण कहाँ हैं? (उन्हें दिखा दे।) कैकेयी जगत में क्यों जनमी! और यदि जनमी ही तो फिर बाँझ

क्यों न हुई? -

कुल कलंकु जेहिं जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही॥
को तिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी॥

जिसने कुल के कलंक, अपयश के भाँड़े और प्रियजनों के द्रोही मुझ-जैसे पुत्र को उत्पन्न किया। तीनों लोकों में मेरे समान अभागा कौन है? जिसके कारण हे माता! तेरी यह दशा हुई!

पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥
धिग मोहि भयउँ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूषन भागी॥

पिता स्वर्ग में हैं और राम वन में हैं। केतु के समान केवल मैं ही इन सब अनर्थों का कारण हूँ। मुझे धिक्कार है! मैं बाँस के वन में आग उत्पन्न हुआ और कठिन दाह, दुःख और दोषों का भागी बना।

दो० - मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि॥ 164॥

भरत के कोमल वचन सुनकर माता कौसल्या फिर सँभलकर उठीं। उन्होंने भरत को उठाकर छाती से लगा लिया और नेत्रों से आँसू बहाने लगीं॥ 164॥

सरल सुभाय मायँ हियँ लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए॥
भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई। सोकु सनेहु न हृदयँ समाई॥

सरल स्वभाववाली माता ने बड़े प्रेम से भरत को छाती से लगा लिया, मानो राम ही लौटकर आ गए हों। फिर लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न को हृदय से लगाया। शोक और स्नेह हृदय में समाता नहीं है।

देखि सुभाउ कहत सबु कोई। राम मातु अस काहे न होई॥
मातॉं भरतु गोद बैठारे। आँसु पोछिं मृदु बचन उचारे॥

कौसल्या का स्वभाव देखकर सब कोई कह रहे हैं - राम की माता का ऐसा स्वभाव क्यों न हो। माता ने भरत को गोद में बैठा लिया और उनके आँसू पोंछकर कोमल वचन बोलीं

-

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी॥

हे वत्स! मैं बलैया लेती हूँ। तुम अब भी धीरज धरो। बुरा समय जानकर शोक त्याग दो। काल और कर्म की गति अमिट जानकर हृदय में हानि और ग्लानि मत मानो।

काहुहि दोसु देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता॥
जो एतेहुँ दुख मोहि जिआवा। अजहुँ को जानइ का तेहि भावा॥

हे तात! किसी को दोष मत दो। विधाता मुझको सब प्रकार से उलटा हो गया है, जो इतने दुःख पर भी मुझे जिला रहा है। अब भी कौन जानता है, उसे क्या भा रहा है?

दो० - पितु आयस भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर॥ 165॥

हे तात! पिता की आज्ञा से रघुवीर ने भूषण-वस्त्र त्याग दिए और वल्कल-वस्त्र पहन लिए। उनके हृदय में न कुछ विषाद था, न हर्ष!॥ 165॥

मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू। सब कर सब बिधि करि परितोषू॥
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी। रहइ न राम चरन अनुरागी॥

उनका मुख प्रसन्न था; मन में न आसक्ति थी, न रोष (द्वेष)। सबका सब तरह से संतोष कराकर वे वन को चले। यह सुनकर सीता भी उनके साथ लग गईं।राम के चरणों की अनुरागिणी वे किसी तरह न रहीं।

सुनतहिं लखनु चले उठि साथा। रहहिं न जतन किए रघुनाथा॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई॥

सुनते ही लक्ष्मण भी साथ ही उठ चले। रघुनाथ ने उन्हें रोकने के बहुत यत्न किए, पर वे न रहे। तब रघुनाथ सबको सिर नवाकर सीता और छोटे भाई लक्ष्मण को साथ लेकर चले गए।

रामु लखनु सिय बनहि सिधाए। गइउँ न संग न प्रान पठाए॥

यहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगें। तउ न तजा तनु जीव अभागें॥

राम, लक्ष्मण और सीता वन को चले गए। मैं न तो साथ ही गई और न मैंने अपने प्राण ही उनके साथ भेजे। यह सब इन्हीं आँखों के सामने हुआ, तो भी अभागे जीव ने शरीर नहीं छोड़ा।

मोहि न लाज निज नेहु निहारी। राम सरिस सुत मैं महतारी॥
जिऐ मरै भल भूपति जाना। मोर हृदय सत कुलिस समाना॥

अपने स्नेह की ओर देखकर मुझे लाज नहीं आती; राम-सरीखे पुत्र की मैं माता! जीना और मरना तो राजा ने खूब जाना। मेरा हृदय तो सैकड़ों वज्रों के समान कठोर है।

दो० - कौसल्या के बचन सुनि भरत सहित रनिवासु।
ब्याकुल बिलपत राजगृह मानहुँ सोक नेवासु॥ 166॥

कौसल्या के वचनों को सुनकर भरत सहित सारा रनिवास व्याकुल होकर विलाप करने लगा। राजमहल मानो शोक का निवास बन गया॥ 166॥

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्याँ लिए हृदयँ लगाई॥
भाँति अनेक भरतु समुझाए। कहि बिबेकमय बचन सुनाए॥

भरत, शत्रुघ्न दोनों भाई विकल होकर विलाप करने लगे। तब कौसल्या ने उनको हृदय से लगा लिया। अनेकों प्रकार से भरत को समझाया और बहुत-सी विवेकभरी बातें उन्हें कहकर सुनाईं।

भरतहुँ मातु सकल समुझाईं। कहि पुरान श्रुति कथा सुहाईं॥
छल बिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी॥

भरत ने भी सब माताओं को पुराण और वेदों की सुंदर कथाएँ कहकर समझाया। दोनों हाथ जोड़कर भरत छलरहित, पवित्र और सीधी सुंदर वाणी बोले -

जे अघ मातु पिता सुत मारें। गाइ गोठ महिसुर पुर जारें॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें॥

जो पाप माता-पिता और पुत्र के मारने से होते हैं और जो गोशाला और ब्राह्मणों के नगर

जलाने से होते हैं, जो पाप स्त्री और बालक की हत्या करने से होते हैं और जो मित्र और राजा को जहर देने से होते हैं -

जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं॥
ते पातक मोहि होहुँ बिधाता। जौं यहु होइ मोर मत माता॥

कर्म, वचन और मन से होनेवाले जितने पातक एवं उपपातक (बड़े-छोटे पाप) हैं, जिनको कवि लोग कहते हैं, हे विधाता! यदि इस काम में मेरा मत हो, तो हे माता! वे सब पाप मुझे लगें।

दो॰ - जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर॥ 167॥

जो लोग हरि और शंकर के चरणों को छोड़कर भयानक भूत-प्रेतों को भजते हैं, हे माता! यदि इसमें मेरा मत हो तो विधाता मुझे उनकी गति दे॥ 167॥

बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी॥

जो लोग वेदों को बेचते हैं, धर्म को दुह लेते हैं, चुगलखोर हैं, दूसरों के पापों को कह देते हैं; जो कपटी, कुटिल, कलहप्रिय और क्रोधी हैं, तथा जो वेदों की निंदा करनेवाले और विश्वभर के विरोधी हैं;

लोभी लंपट लोलुपचारा। जे ताकहिं परधनु परदारा॥
पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी यहु संमत मोरा॥

जो लोभी, लंपट और लालचियों का आचरण करनेवाले हैं; जो पराए धन और पराई स्त्री की ताक में रहते हैं; हे जननी! यदि इस काम में मेरी सम्मति हो तो मैं उनकी भयानक गति को पाऊँ।

जे नहिं साधुसंग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नर तनु पाई। जिन्हहि न हरि हर सुजसु सोहाई॥

जिनका सत्संग में प्रेम नहीं है; जो अभागे परमार्थ के मार्ग से विमुख हैं; जो मनुष्य-शरीर पाकर हरि का भजन नहीं करते; जिनको हरि-हर (भगवान विष्णु और शंकर) का सुयश

नहीं सुहाता;

तजि श्रुतिपंथु बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं यहु जानौं भेऊ॥

जो वेद मार्ग को छोड़कर वाम (वेद प्रतिकूल) मार्ग पर चलते हैं; जो ठग हैं और वेष बनाकर जगत को छलते हैं; हे माता! यदि मैं इस भेद को जानता भी होऊँ तो शंकर मुझे उन लोगों की गति दें।

दो॰ - मातु भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुभायँ।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन कायँ॥ 168॥

माता कौसल्या भरत के स्वाभाविक ही सच्चे और सरल वचनों को सुनकर कहने लगीं - हे तात! तुम तो मन, वचन और शरीर से सदा ही राम के प्यारे हो॥ 168॥

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥
बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥

राम तुम्हारे प्राणों से भी बढ़कर प्राण (प्रिय) हैं और तुम भी रघुनाथ को प्राणों से भी अधिक प्यारे हो। चंद्रमा चाहे विष चुआने लगे और पाला आग बरसाने लगे; जलचर जीव जल से विरक्त हो जाए,

भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥

और ज्ञान हो जाने पर भी चाहे मोह न मिटे; पर तुम राम के प्रतिकूल कभी नहीं हो सकते। इसमें तुम्हारी सम्मति है, जगत में जो कोई ऐसा कहते हैं वे स्वप्न में भी सुख और शुभ गति नहीं पावेंगे।

अस कहि मातु भरतु हिएँ लाए। थन पय स्रवहिं नयन जल छाए॥
करत बिलाप बहुत एहि भाँती। बैठेहिं बीति गई सब राती॥

ऐसा कहकर माता कौसल्या ने भरत को हृदय से लगा लिया। उनके स्तनों से दूध बहने लगा और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल छा गया। इस प्रकार बहुत विलाप करते हुए सारी

रात बैठे-ही-बैठे बीत गई।

बामदेउ बसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे॥

तब वामदेव और वशिष्ठ आए। उन्होंने सब मंत्रियों तथा महाजनों को बुलवाया। फिर मुनि वशिष्ठ ने परमार्थ के सुंदर समयानुकूल वचन कहकर बहुत प्रकार से भरत को उपदेश दिया।

दो० - तात हृदयँ धीरजु धरहु करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुर बचन सुनि करन कहेउ सबु साजु॥ 169॥

(वशिष्ठ ने कहा -) हे तात! हृदय में धीरज धरो और आज जिस कार्य के करने का अवसर है, उसे करो। गुरु के वचन सुनकर भरत उठे और उन्होंने सब तैयारी करने के लिए कहा॥ 169॥

नृप तनु बेद बिदित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमानु बनावा॥
गाहि पद भरत मातु सब राखी। रहीं रानि दरसन अभिलाषी॥

वेदों में बताई हुई विधि से राजा की देह को स्नान कराया गया और परम विचित्र विमान बनाया गया। भरत ने सब माताओं को चरण पकड़कर रखा (अर्थात प्रार्थना करके उनको सती होने से रोक लिया)। वे रानियाँ भी (राम के) दर्शन की अभिलाषा से रह गईं।

चंदन अगर भार बहु आए। अमित अनेक सुगंध सुहाए॥
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई॥

चंदन और अगर के तथा और भी अनेकों प्रकार के अपार (कपूर, गुग्गुल, केसर आदि) सुगंध-द्रव्यों के बहुत-से बोझ आए। सरयू के तट पर सुंदर चिता रचकर बनाई गई, (जो ऐसी मालूम होती थी) मानो स्वर्ग की सुंदर सीढ़ी हो।

एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही॥
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधाना॥

इस प्रकार सब दाह क्रिया की गई और सबने विधिपूर्वक स्नान करके तिलांजलि दी। फिर वेद, स्मृति और पुराण सबका मत निश्चय करके उसके अनुसार भरत ने पिता का

दशगात्र-विधान (दस दिनों के कृत्य) किया।

जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा॥
भए बिसुद्ध दिए सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना॥

मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ ने जहाँ जैसी आज्ञा दी, वहाँ भरत ने सब वैसा ही हजारों प्रकार से किया। शुद्ध हो जाने पर (विधिपूर्वक) सब दान दिए। गौएँ तथा घोड़े, हाथी आदि अनेक प्रकार की सवारियाँ,

दो॰ - सिंघासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम।
दिए भरत लहि भूमिसुर भे परिपूरन काम॥ 170॥

सिंहासन, गहने, कपड़े, अन्न, पृथ्वी, धन और मकान भरत ने दिए; भूदेव ब्राह्मण दान पाकर परिपूर्णकाम हो गए (अर्थात उनकी सारी मनोकामनाएँ अच्छी तरह से पूरी हो गईं)॥ 170॥

पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी॥
सुदिनु सोधि मुनिबर तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥

पिता के लिए भरत ने जैसी करनी की वह लाखों मुखों से भी वर्णन नहीं की जा सकती। तब शुभ दिन शोधकर श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठ आए और उन्होंने मंत्रियों तथा सब महाजनों को बुलवाया।

बैठे राजसभाँ सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई॥
भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धरममय बचन उचारे॥

सब लोग राजसभा में जाकर बैठ गए। तब मुनि ने भरत तथा शत्रुघ्न दोनों भाइयों को बुलवा भेजा। भरत को वशिष्ठ ने अपने पास बैठा लिया और नीति तथा धर्म से भरे हुए वचन कहे।

प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी। कैकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी॥
भूप धरमुब्रतु सत्य सराहा। जेहिं तनु परिहरि प्रेमु निबाहा॥

पहले तो कैकेयी ने जैसी कुटिल करनी की थी, श्रेष्ठ मुनि ने वह सारी कथा कही। फिर

राजा के धर्मव्रत और सत्य की सराहना की, जिन्होंने शरीर त्याग कर प्रेम को निबाहा।

कहत राम गुन सील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ॥
बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी॥

राम के गुण, शील और स्वभाव का वर्णन करते-करते तो मुनिराज के नेत्रों में जल भर आया और वे शरीर से पुलकित हो गए। फिर लक्ष्मण और सीता के प्रेम की बड़ाई करते हुए ज्ञानी मुनि शोक और स्नेह में मग्न हो गए।

दो० - सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥ 171॥

मुनिनाथ ने बिलखकर (दुःखी होकर) कहा - हे भरत! सुनो, भावी (होनहार) बड़ी बलवान है। हानि-लाभ, जीवन-मरण और यश-अपयश, ये सब विधाता के हाथ हैं॥ 171॥

अस बिचारि केहि देइअ दोसू। ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू॥
तात बिचारु करहु मन माहीं। सोच जोगु दसरथु नृपु नाहीं॥

ऐसा विचार कर किसे दोष दिया जाए? और व्यर्थ किस पर क्रोध किया जाए? हे तात! मन में विचार करो। राजा दशरथ सोच करने के योग्य नहीं हैं।

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥

सोच उस ब्राह्मण का करना चाहिए, जो वेद नहीं जानता और जो अपना धर्म छोड़कर विषय-भोग में ही लीन रहता है। उस राजा का सोच करना चाहिए, जो नीति नहीं जानता और जिसको प्रजा प्राणों के समान प्यारी नहीं है।

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू॥
सोचिअ सूद्रु बिप्र अवमानी। मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी॥

उस वैश्य का सोच करना चाहिए जो धनवान होकर भी कंजूस है, और जो अतिथि सत्कार तथा शिव की भक्ति करने में कुशल नहीं है। उस शूद्र का सोच करना चाहिए जो ब्राह्मणों का अपमान करनेवाला, बहुत बोलनेवाला, मान-बड़ाई चाहनेवाला और ज्ञान का

घमंड रखनेवाला है।

सोचिअ पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुर आयसु अनुसरई॥

पुनः उस स्त्री का सोच करना चाहिए जो पति को छलनेवाली, कुटिल, कलहप्रिय और स्वेच्छाचारिणी है। उस ब्रह्मचारी का सोच करना चाहिए जो अपने ब्रह्मचर्य-व्रत को छोड़ देता है और गुरु की आज्ञा के अनुसार नहीं चलता।

दो० - सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग॥ 172॥

उस गृहस्थ का सोच करना चाहिए जो मोहवश कर्म मार्ग का त्याग कर देता है; उस संन्यासी का सोच करना चाहिए जो दुनिया के प्रपंच में फँसा हुआ और ज्ञान-वैराग्य से हीन है॥ 172॥

बैखानस सोइ सोचै जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुर बंधु बिरोधी॥

वानप्रस्थ वही सोच करने योग्य है जिसको तपस्या छोड़कर भोग अच्छे लगते हैं। सोच उसका करना चाहिए जो चुगलखोर है, बिना ही कारण क्रोध करनेवाला है तथा माता, पिता, गुरु एवं भाई-बंधुओं के साथ विरोध रखनेवाला है।

सब बिधि सोचिअ पर अपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी॥
सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाड़ि छलु हरि जन होई॥

सब प्रकार से उसका सोच करना चाहिए जो दूसरों का अनिष्ट करता है, अपने ही शरीर का पोषण करता है और बड़ा भारी निर्दयी है। और वह तो सभी प्रकार से सोच करने योग्य है जो छल छोड़कर हरि का भक्त नहीं होता।

सोचनीय नहिं कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥

कोसलराज दशरथ सोच करने योग्य नहीं हैं, जिनका प्रभाव चौदहों लोकों में प्रकट है। हे

भरत! तुम्हारे पिता-जैसा राजा तो न हुआ, न है और न अब होने का ही है।

बिधि हरि हरु सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं सब दसरथ गुन गाथा॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इंद्र और दिक्पाल सभी दशरथ के गुणों की कथाएँ कहा करते हैं।

दो० - कहहु तात केहि भाँति कोउ करिहि बड़ाई तासु।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु॥ 173॥

हे तात! कहो, उनकी बड़ाई कोई किस प्रकार करेगा जिनके राम, लक्ष्मण, तुम और शत्रुघ्न-सरीखे पवित्र पुत्र हैं?॥ 173॥

सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी॥
यह सुनि समुझि सोचु परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहू॥

राजा सब प्रकार से बड़भागी थे। उनके लिए विषाद करना व्यर्थ है। यह सुन और समझकर सोच त्याग दो और राजा की आज्ञा सिर चढ़ाकर तदनुसार करो।

रायँ राजपदु तुम्ह कहुँ दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा॥
तजे रामु जेहिं बचनहि लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी॥

राजा ने राज पद तुमको दिया है। पिता का वचन तुम्हें सत्य करना चाहिए, जिन्होंने वचन के लिए ही राम को त्याग दिया और रामविरह की अग्नि में अपने शरीर की आहुति दे दी।

नृपहि बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन प्रवाना॥
करहु सीस धरि भूप रजाई। हइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई॥

राजा को वचन प्रिय थे, प्राण प्रिय नहीं थे। इसलिए हे तात! पिता के वचनों को प्रमाण (सत्य) करो! राजा की आज्ञा सिर चढ़ाकर पालन करो, इसमें तुम्हारी सब तरह भलाई है।

परसुराम पितु अग्या राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥
तनय जजातिहि जौबनु दयऊ। पितु अग्याँ अघ अजसु न भयऊ॥

परशुराम ने पिता की आज्ञा रखी और माता को मार डाला; सब लोक इस बात के साक्षी

हैं। राजा ययाति के पुत्र ने पिता को अपनी जवानी दे दी। पिता की आज्ञा पालन करने से उन्हें पाप और अपयश नहीं हुआ।

दो॰ - अनुचित उचित बिचारु तजि ते पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन॥ 174॥

जो अनुचित और उचित का विचार छोड़कर पिता के वचनों का पालन करते हैं, वे (यहाँ) सुख और सुयश के पात्र होकर अंत में इंद्रपुरी (स्वर्ग) में निवास करते हैं॥ 174॥

अवसि नरेस बचन फुर करहू। पालहु प्रजा सोकु परिहरहू॥
सुरपुर नृपु पाइहि परितोषू। तुम्ह कहुँ सुकृतु सुजसु नहिं दोषू॥

राजा का वचन अवश्य सत्य करो। शोक त्याग दो और प्रजा का पालन करो। ऐसा करने से स्वर्ग में राजा संतोष पावेंगे और तुम को पुण्य और सुंदर यश मिलेगा, दोष नहीं लगेगा।

बेद बिदित संमत सबही का। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका॥
करहु राजु परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचन हित जानी॥

यह वेद में प्रसिद्ध है और (स्मृति-पुराणादि) सभी शास्त्रों के द्वारा सम्मत है कि पिता जिसको दे वही राजतिलक पाता है। इसलिए तुम राज्य करो, ग्लानि का त्याग कर दो। मेरे वचन को हित समझकर मानो।

सुनि सुखु लहब राम बैदेहीं। अनुचित कहब न पंडित केहीं॥
कौसल्यादि सकल महतारीं। तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारीं॥

इस बात को सुनकर राम और जानकी सुख पाएँगे और कोई पंडित इसे अनुचित नहीं कहेगा। कौसल्या आदि तुम्हारी सब माताएँ भी प्रजा के सुख से सुखी होंगी।

परम तुम्हार राम कर जानिहि। सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि॥
सौंपेहु राजु राम के आएँ। सेवा करेहु सनेह सुहाएँ॥

जो तुम्हारे और राम के श्रेष्ठ संबंध को जान लेगा, वह सभी प्रकार से तुमसे भला मानेगा। राम के लौट आने पर राज्य उन्हें सौंप देना और सुंदर स्नेह से उनकी सेवा

करना।

दो॰ - कीजिअ गुर आयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आएँ उचित जस तस तब करब बहोरि॥ 175॥

मंत्री हाथ जोड़कर कह रहे हैं - गुरु की आज्ञा का अवश्य ही पालन कीजिए। रघुनाथ के लौट आने पर जैसा उचित हो, तब फिर वैसा ही कीजिएगा॥ 175॥

कौसल्या धरि धीरजु कहई। पूत पथ्य गुर आयसु अहई॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी। तजिअ बिषादु काल गति जानी॥

कौसल्या भी धीरज धरकर कह रही हैं - हे पुत्र! गुरु की आज्ञा पथ्यरूप है। उसका आदर करना चाहिए और हित मानकर उसका पालन करना चाहिए। काल की गति को जानकर विषाद का त्याग कर देना चाहिए।

बन रघुपति सुरपति नरनाहू। तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू॥
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुम्हहीं सुत सब कहँ अवलंबा॥

रघुनाथ वन में हैं, महाराज स्वर्ग का राज्य करने चले गए। और हे तात! तुम इस प्रकार कातर हो रहे हो। हे पुत्र! कुटुंब, प्रजा, मंत्री और सब माताओं के - सबके एक तुम ही सहारे हो।

लखि बिधि बाम कालु कठिनाई। धीरजु धरहु मातु बलि जाई॥
सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि परिजन दुखु हरहू॥

विधाता को प्रतिकूल और काल को कठोर देखकर धीरज धरो, माता तुम्हारी बलिहारी जाती है। गुरु की आज्ञा को सिर चढ़ाकर उसी के अनुसार कार्य करो और प्रजा का पालन कर कुटुंबियों का दुःख हरो।

गुरु के बचन सचिव अभिनंदनु। सुने भरत हिय हित जनु चंदनु॥
सुनी बहोरि मातु मृदु बानी। सील सनेह सरल रस सानी॥

भरत ने गुरु के वचनों और मंत्रियों के अभिनंदन (अनुमोदन) को सुना, जो उनके हृदय के लिए मानो चंदन के समान (शीतल) थे। फिर उन्होंने शील, स्नेह और सरलता के रस में

सनी हुई माता कौसल्या की कोमल वाणी सुनी।

छं० - सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरतु ब्याकुल भए।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज सनेह की॥

सरलता के रस में सनी हुई माता की वाणी सुनकर भरत व्याकुल हो गए। उनके नेत्र-कमल जल (आँसू) बहाकर हृदय के विरहरूपी नवीन अंकुर को सींचने लगे। (नेत्रों के आँसुओं ने उनके वियोग-दुःख को बहुत ही बढ़ाकर उन्हें अत्यंत व्याकुल कर दिया।) उनकी वह दशा देखकर उस समय सबको अपने शरीर की सुध भूल गई। तुलसीदास कहते हैं - स्वाभाविक प्रेम की सीमा भरत की सब लोग आदरपूर्वक सराहना करने लगे।

सो० - भरतु कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि।
बचन अमिअँ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि॥ 176॥

धैर्य की धुरी को धारण करनेवाले भरत धीरज धरकर, कमल के समान हाथों को जोड़कर, वचनों को मानो अमृत में डुबाकर सबको उचित उत्तर देने लगे - ॥ 176॥

मोहि उपदेसु दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव संमत सबही का॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा॥

गुरु ने मुझे सुंदर उपदेश दिया। (फिर) प्रजा, मंत्री आदि सभी को यही सम्मत है। माता ने भी उचित समझकर ही आज्ञा दी है और मैं भी अवश्य उसको सिर चढ़ाकर वैसा ही करना चाहता हूँ।

गुर पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी॥
उचित कि अनुचित किएँ बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू॥

(क्योंकि) गुरु, पिता, माता, स्वामी और सुहृद (मित्र) की वाणी सुनकर प्रसन्न मन से उसे अच्छी समझकर करना (मानना) चाहिए। उचित-अनुचित का विचार करने से धर्म जाता है और सिर पर पाप का भार चढ़ता है।

तुम्ह तौ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई॥

जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें। तदपि होत परितोष न जी कें॥

आप तो मुझे वही सरल शिक्षा दे रहे हैं, जिसके आचरण करने में मेरा भला हो। यद्यपि मैं इस बात को भली भाँति समझता हूँ, तथापि मेरे हृदय को संतोष नहीं होता।

अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू॥
ऊतरु देउँ छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू॥

अब आप लोग मेरी विनती सुन लीजिए और मेरी योग्यता के अनुसार मुझे शिक्षा दीजिए। मैं उत्तर दे रहा हूँ, यह अपराध क्षमा कीजिए। साधु पुरुष दुःखी मनुष्य के दोष-गुणों को नहीं गिनते।

दो० - पितु सुरपुर सिय रामु बन करन कहहु मोहि राजु।
एहि तें जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु॥ 177॥

पिता स्वर्ग में हैं, सीताराम वन में हैं और मुझे आप राज्य करने के लिए कह रहे हैं। इसमें आप मेरा कल्याण समझते हैं या अपना कोई बड़ा काम (होने की आशा रखते हैं)?॥ 177॥

हित हमार सियपति सेवकाईं। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाईं॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपायँ मोर हित नाहीं॥

मेरा कल्याण तो सीतापति राम की चाकरी में है, सो उसे माता की कुटिलता ने छीन लिया। मैंने अपने मन में अनुमान करके देख लिया है कि दूसरे किसी उपाय से मेरा कल्याण नहीं है।

सोक समाजु राजु केहि लेखें। लखन राम सिय बिनु पद देखें॥
बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू॥

यह शोक का समुदाय राज्य लक्ष्मण, राम और सीता के चरणों को देखे बिना किस गिनती में है (इसका क्या मूल्य है)? जैसे कपड़ों के बिना गहनों का बोझ व्यर्थ है। वैराग्य के बिना ब्रह्मविचार व्यर्थ है।

सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरिभगति जायँ जप जोगा॥

जायँ जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सबु बिनु रघुराई॥

रोगी शरीर के लिए नाना प्रकार के भोग व्यर्थ हैं। हरि की भक्ति के बिना जप और योग व्यर्थ हैं। जीव के बिना सुंदर देह व्यर्थ है, वैसे ही रघुनाथ के बिना मेरा सब कुछ व्यर्थ है।

जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकाहिं आँक मोर हित एहू॥
मोहि नृप करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ता बस कहहू॥

मुझे आज्ञा दीजिए, मैं राम के पास जाऊँ! एक ही आँक (निश्चयपूर्वक) मेरा हित इसी में है। और मुझे राजा बनाकर आप अपना भला चाहते हैं, यह भी आप स्नेह की जड़ता (मोह) के वश होकर ही कह रहे हैं।

दो० - कैकेई सुअ कुटिलमति राम बिमुख गतलाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधम कें राज॥ 178॥

कैकेयी के पुत्र, कुटिलबुद्धि, रामविमुख और निर्लज्ज मुझ-से अधम के राज्य से आप मोह के वश होकर ही सुख चाहते हैं॥ 178॥

कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहू। चाहिअ धरमसील नरनाहू॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥

मैं सत्य कहता हूँ, आप सब सुनकर विश्वास करें, धर्मशील को ही राजा होना चाहिए। आप मुझे हठ करके ज्यों ही राज्य देंगे, त्यों ही पृथ्वी पाताल में धँस जाएगी।

मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम बनबासू॥
रायँ राम कहुँ काननु दीन्हा। बिछुरत गमनु अमरपुर कीन्हा॥

मेरे समान पापों का घर कौन होगा, जिसके कारण सीता और राम का वनवास हुआ? राजा ने राम को वन दिया और उनके बिछुड़ते ही स्वयं स्वर्ग को गमन किया।

मैं सठु सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनउँ सचेतू॥
बिन रघुबीर बिलोकि अबासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू॥

और मैं दुष्ट, जो सारे अनर्थों का कारण हूँ, होश-हवास में बैठा सब बातें सुन रहा हूँ!

रघुनाथ से रहित घर को देखकर और जगत का उपहास सहकर भी ये प्राण बने हुए हैं।

राम पुनीत बिषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे॥
कहँ लगि कहौं हृदय कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहिं लही बड़ाई॥

(इसका यही कारण है कि ये प्राण) रामरूपी पवित्र विषय-रस में आसक्त नहीं हैं। ये लालची भूमि और भोगों के ही भूखे हैं। मैं अपने हृदय की कठोरता कहाँ तक कहूँ? जिसने वज्र का भी तिरस्कार करके बड़ाई पाई है।

दो० - कारन तें कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर॥ 179॥

कारण से कार्य कठिन होता ही है, इसमें मेरा दोष नहीं। हड्डी से वज्र और पत्थर से लोहा भयानक और कठोर होता है॥ 179॥

कैकेई भव तनु अनुरागे। पावँर प्रान अघाइ अभागे॥
जौं प्रिय बिरहँ प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे॥

कैकेयी से उत्पन्न देह में प्रेम करनेवाले ये पामर प्राण भरपेट (पूरी तरह से) अभागे हैं। जब प्रिय के वियोग में भी मुझे प्राण प्रिय लग रहे हैं तब अभी आगे मैं और भी बहुत कुछ देखूँ-सुनूँगा।

लखन राम सिय कहुँ बनु दीन्हा। पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा॥
लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू। दीन्हेउ प्रजहि सोकु संतापू॥

लक्ष्मण, राम और सीता को तो वन दिया; स्वर्ग भेजकर पति का कल्याण किया; स्वयं विधवापन और अपयश लिया; प्रजा को शोक और संताप दिया;

मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकईं सब कर काजू॥
ऐहि तें मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका॥

और मुझे सुख, सुंदर यश और उत्तम राज्य दिया! कैकेयी ने सभी का काम बना दिया! इससे अच्छा अब मेरे लिए और क्या होगा? उस पर भी आप लोग मुझे राजतिलक देने को कहते हैं!

कैकइ जठर जनमि जग माहीं। यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीं॥
मोरि बात सब बिधिहिं बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई॥

कैकेयी के पेट से जगत में जन्म लेकर यह मेरे लिए कुछ भी अनुचित नहीं है। मेरी सब बात तो विधाता ने ही बना दी है। (फिर) उसमें प्रजा और पंच (आप लोग) क्यों सहायता कर रहे हैं?

दो॰ - ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पिआइअ बारुनी कहहु काह उपचार॥ 180॥

जिसे कुग्रह लगे हों (अथवा जो पिशाचग्रस्त हो), फिर जो वायुरोग से पीड़ित हो और उसी को फिर बिच्छू डंक मार दे, उसको यदि मदिरा पिलाई जाए, तो कहिए यह कैसा इलाज है!॥ 180॥

कैकइ सुअन जोगु जग जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई॥
दसरथ तनय राम लघु भाई। दीन्हि मोहि बिधि बादि बड़ाई॥

कैकेयी के लड़के के लिए संसार में जो कुछ योग्य था, चतुर विधाता ने मुझे वही दिया। पर 'दशरथ का पुत्र' और 'राम का छोटा भाई' होने की बड़ाई मुझे विधाता ने व्यर्थ ही दी।

तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका। राय रजायसु सब कहँ नीका॥
उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथा रुचि जेही॥

आप सब लोग भी मुझे टीका कढ़ाने के लिए कह रहे हैं! राजा की आज्ञा सभी के लिए अच्छी है। मैं किस-किस को किस-किस प्रकार से उत्तर दूँ? जिसकी जैसी रुचि हो, आप लोग सुखपूर्वक वही कहें।

मोहि कुमातु समेत बिहाई। कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई॥
मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सिय रामु प्रानप्रिय नाहीं॥

मेरी कुमाता कैकेयी समेत मुझे छोड़कर, कहिए, और कौन कहेगा कि यह काम अच्छा किया गया? जड़-चेतन जगत में मेरे सिवा और कौन है जिसको सीताराम प्राणों के समान प्यारे न हों।

परम हानि सब कहँ बड़ लाहू। अदिनु मोर नहिं दूषन काहू॥

संसय सील प्रेम बस अहहू। सबुइ उचित सब जो कछु कहहू॥

जो परम हानि है, उसी में सबको बड़ा लाभ दिख रहा है। मेरा बुरा दिन है किसी का दोष नहीं। आप सब जो कुछ कहते हैं सो सब उचित ही है। क्योंकि आप लोग संशय, शील और प्रेम के वश हैं।

दो० - राम मातु सुठि सरलचित मो पर प्रेमु बिसेषि।
कहइ सुभाय सनेह बस मोरि दीनता देखि॥ 181॥

राम की माता बहुत ही सरल हृदय हैं और मुझ पर उनका विशेष प्रेम है। इसलिए मेरी दीनता देखकर वे स्वाभाविक स्नेहवश ही ऐसा कह रही हैं॥ 181॥

गुर बिबेक सागर जगु जाना। जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना॥
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ। भएँ बिधि बिमुख बिमुख सबु कोऊ॥

गुरु ज्ञान के समुद्र हैं, इस बात को सारा जगत जानता है, जिसके लिए विश्व हथेली पर रखे हुए बेर के समान है, वे भी मेरे लिए राजतिलक का साज सज रहे हैं। सत्य है, विधाता के विपरीत होने पर सब कोई विपरीत हो जाते हैं।

परिहरि रामु सीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं॥
सो मैं सुनब सहब सुखु मानी। अंतहुँ कीच तहाँ जहँ पानी॥

राम और सीता को छोड़कर जगत में कोई यह नहीं कहेगा कि इस अनर्थ में मेरी सम्मति नहीं है। मैं उसे सुखपूर्वक सुनूँगा और सहूँगा। क्योंकि जहाँ पानी होता है, वहाँ अंत में कीचड़ होता ही है।

डरु न मोहि जग कहिहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू॥
एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय रामु दुखारी॥

मुझे इसका डर नहीं है कि जगत मुझे बुरा कहेगा और न मुझे परलोक का ही सोच है। मेरे हृदय में तो बस, एक ही दुःसह दावानल धधक रहा है कि मेरे कारण सीताराम दुःखी हुए।

जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि राम चरन मनु लावा॥

मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी॥

जीवन का उत्तम लाभ तो लक्ष्मण ने पाया, जिन्होंने सब कुछ तजकर राम के चरणों में मन लगाया। मेरा जन्म तो राम के वनवास के लिए ही हुआ था। मैं अभागा झूठ-मूठ क्या पछताता हूँ?

दो० - आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ॥ 182॥

सबको सिर झुकाकर मैं अपनी दारुण दीनता कहता हूँ। रघुनाथ के चरणों के दर्शन किए बिना मेरे जी की जलन न जाएगी॥ 182॥

आन उपाउ मोहि नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा॥
एकहिं आँक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं॥

मुझे दूसरा कोई उपाय नहीं सूझता। राम के बिना मेरे हृदय की बात कौन जान सकता है? मन में एक ही आँक (निश्चयपूर्वक) यही है कि प्रातः काल राम के पास चल दूँगा।

जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भै मोहि कारन सकल उपाधी॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी॥

यद्यपि मैं बुरा हूँ और अपराधी हूँ, और मेरे ही कारण यह सब उपद्रव हुआ है, तथापि राम मुझे शरण में सम्मुख आया हुआ देखकर सब अपराध क्षमा करके मुझ पर विशेष कृपा करेंगे।

सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ॥
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा॥

रघुनाथ शील, संकोच, अत्यंत सरल स्वभाव, कृपा और स्नेह के घर हैं। राम ने कभी शत्रु का भी अनिष्ट नहीं किया। मैं यद्यपि टेढ़ा हूँ पर हूँ तो उनका बच्चा और गुलाम ही।

तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी॥
जेहिं सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि रामु रजधानी॥

आप पंच (सब) लोग भी इसी में मेरा कल्याण मानकर सुंदर वाणी से आज्ञा और

आशीर्वाद दीजिए, जिसमें मेरी विनती सुनकर और मुझे अपना दास जानकर राम राजधानी को लौट आवें।

दो० - जद्यपि जनमु कुमातु तें मैं सठु सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस॥ 183॥

यद्यपि मेरा जन्म कुमाता से हुआ है और मैं दुष्ट तथा सदा दोषयुक्त भी हूँ, तो भी मुझे राम का भरोसा है कि वे मुझे अपना जानकर त्यागेंगे नहीं॥ 183॥

भरत बचन सब कहँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधाँ जनु पागे॥
लोग बियोग बिषम बिष दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे॥

भरत के वचन सबको प्यारे लगे। मानो वे राम के प्रेमरूपी अमृत में पगे हुए थे। रामवियोगरूपी भीषण विष से सब लोग जले हुए थे। वे मानो बीज सहित मंत्र को सुनते ही जाग उठे।

मातु सचिव गुर पुर नर नारी। सकल सनेहँ बिकल भए भारी॥
भरतहि कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही॥

माता, मंत्री, गुरु, नगर के स्त्री-पुरुष सभी स्नेह के कारण बहुत ही व्याकुल हो गए। सब भरत को सराह-सराहकर कहते हैं कि आपका शरीर रामप्रेम की साक्षात मूर्ति ही है।

तात भरत अस काहे न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अहहू॥
जो पावँरु अपनी जड़ताईं। तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाईं॥

हे तात भरत! आप ऐसा क्यों न कहें। राम को आप प्राणों के समान प्यारे हैं। जो नीच अपनी मूर्खता से आपकी माता कैकेयी की कुटिलता को लेकर आप पर संदेह करेगा,

सो सठु कोटिक पुरुष समेता। बसिहि कलप सत नरक निकेता॥
अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई॥

वह दुष्ट करोड़ों पुरखों सहित सौ कल्पों तक नरक के घर में निवास करेगा। साँप के पाप और अवगुण को मणि नहीं ग्रहण करती। बल्कि वह विष को हर लेती है और दुःख तथा दरिद्रता को भस्म कर देती है।

दो॰ - अवसि चलिअ बन रामु जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह।
सोक सिंधु बूड़त सबहि तुम्ह अवलंबनु दीन्ह॥ 184॥

हे भरत! वन को अवश्य चलिए, जहाँ राम हैं; आपने बहुत अच्छी सलाह विचारी। शोक समुद्र में डूबते हुए सब लोगों को आपने (बड़ा) सहारा दे दिया॥ 184॥

भा सब कें मन मोदु न थोरा। जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा॥
चलत प्रात लखि निरनउ नीके। भरतु प्रानप्रिय भे सबही के॥

सबके मन में कम आनंद नहीं हुआ (अर्थात बहुत ही आनंद हुआ)! मानो मेघों की गर्जना सुनकर चातक और मोर आनंदित हो रहे हों। (दूसरे दिन) प्रातःकाल चलने का सुंदर निर्णय देखकर भरत सभी को प्राणप्रिय हो गए।

मुनिहि बंदि भरतहि सिरु नाई। चले सकल घर बिदा कराई॥
धन्य भरत जीवनु जग माहीं। सीलु सनेहु सराहत जाहीं॥

मुनि वशिष्ठ की वंदना करके और भरत को सिर नवाकर, सब लोग विदा लेकर अपने-अपने घर को चले। जगत में भरत का जीवन धन्य है, इस प्रकार कहते हुए वे उनके शील और स्नेह की सराहना करते जाते हैं।

कहहिं परसपर भा बड़ काजू। सकल चलै कर साजहिं साजू॥
जेहि राखहिं रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदनि मारी॥

आपस में कहते हैं, बड़ा काम हुआ। सभी चलने की तैयारी करने लगे। जिसको भी घर की रखवाली के लिए रहो, ऐसा कहकर रखते हैं, वही समझता है मानो मेरी गर्दन मारी गई।

कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू। को न चहइ जग जीवन लाहू॥

कोई-कोई कहते हैं - रहने के लिए किसी को भी मत कहो, जगत में जीवन का लाभ कौन नहीं चाहता?

दो॰ - जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ॥ 185॥

वह संपत्ति, घर, सुख, मित्र, माता, पिता, भाई जल जाए जो राम के चरणों के सम्मुख होने

में हँसते हुए (प्रसन्नतापूर्वक) सहायता न करे॥ 185॥

घर घर साजहिं बाहन नाना। हरषु हृदयँ परभात पयाना॥
भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू। नगरु बाजि गज भवन भँडारू॥

घर-घर लोग अनेकों प्रकार की सवारियाँ सजा रहे हैं। हृदय में (बड़ा) हर्ष है कि सबेरे चलना है। भरत ने घर जाकर विचार किया कि नगर घोड़े, हाथी, महल-खजाना आदि -

संपति सब रघुपति कै आही। जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप सिरोमनि साइँ दोहाई॥

सारी संपत्ति रघुनाथ की है। यदि उसकी (रक्षा की) व्यवस्था किए बिना उसे ऐसे ही छोड़कर चल दूँ, तो परिणाम में मेरी भलाई नहीं है, क्योंकि स्वामी का द्रोह सब पापों में शिरोमणि (श्रेष्ठ) है।

करइ स्वामि हित सेवकु सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई॥
अस बिचारि सुचि सेवक बोले। जे सपनेहुँ निज धरम न डोले॥

सेवक वही है जो स्वामी का हित करे, चाहे कोई करोड़ों दोष क्यों न दे। भरत ने ऐसा विचारकर ऐसे विश्वासपात्र सेवकों को बुलाया जो कभी स्वप्न में भी अपने धर्म से नहीं डिगे थे।

कहि सबु मरमु धरमु भल भाषा। जो जेहि लायक सो तेहिं राखा॥
करि सबु जतनु राखि रखवारे। राम मातु पहिं भरतु सिधारे॥

भरत ने उनको सब भेद समझाकर फिर उत्तम धर्म बतलाया और जो जिस योग्य था, उसे उसी काम पर नियुक्त कर दिया। सब व्यवस्था करके, रक्षकों को रखकर भरत राम माता कौसल्या के पास गए।

दो० - आरत जननी जानि सब भरत सनेह सुजान।
कहेउ बनावन पालकीं सजन सुखासन जान॥ 186॥

स्नेह के सुजान (प्रेम के तत्त्व को जाननेवाले) भरत ने सब माताओं को आर्त (दुःखी) जानकर उनके लिए पालकियाँ तैयार करने तथा सुखासन यान (सुखपाल) सजाने के लिए

कहा॥ 186॥

चक्क चक्कि जिमि पुर नर नारी। चहत प्रात उर आरत भारी॥
जागत सब निसि भयउ बिहाना। भरत बोलाए सचिव सुजाना॥

नगर के नर-नारी चकवे-चकवी की भाँति हृदय में अत्यंत आर्त होकर प्रातःकाल का होना चाहते हैं। सारी रात जागते-जागते सबेरा हो गया। तब भरत ने चतुर मंत्रियों को बुलवाया।

कहेउ लेहु सबु तिलक समाजू। बनहिं देब मुनि रामहि राजू॥
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे। तुरत तुरग रथ नाग सँवारे॥

और कहा - तिलक का सब सामान ले चलो। वन में ही मुनि वशिष्ठ राम को राज्य देंगे, जल्दी चलो। यह सुनकर मंत्रियों ने वंदना की और तुरंत घोड़े, रथ और हाथी सजवा दिए।

अरुंधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ॥
बिप्र बृंद चढ़ि बाहन नाना। चले सकल तप तेज निधाना॥

सबसे पहले मुनिराज वशिष्ठ अरुंधती और अग्निहोत्र की सब सामग्री सहित रथ पर सवार होकर चले। फिर ब्राह्मणों के समूह, जो सब-के-सब तपस्या और तेज के भंडार थे, अनेकों सवारियों पर चढ़कर चले।

नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना॥
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी॥

नगर के सब लोग रथों को सजा-सजाकर चित्रकूट को चल पड़े। जिनका वर्णन नहीं हो सकता, ऐसी सुंदर पालकियों पर चढ़-चढ़कर सब रानियाँ चलीं।

दो० - सौंपि नगर सुचि सेवकनि सादर सकल चलाइ।
सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरत दोउ भाइ॥ 187॥

विश्वासपात्र सेवकों को नगर सौंपकर और सबको आदरपूर्वक रवाना करके, तब सीताराम के चरणों को स्मरण करके भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले॥ 187॥

राम दरस बस सब नर नारी। जनु करि करिनि चले तकि बारी॥

बन सिय रामु समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहिं जाहीं॥

राम के दर्शन के वश में हुए (दर्शन की अनन्य लालसा से) सब नर-नारी ऐसे चले मानो प्यासे हाथी-हथिनी जल को तककर (बड़ी तेजी से बावले-से हुए) जा रहे हों। सीताराम (सब सुखों को छोड़कर) वन में हैं, मन में ऐसा विचार करके छोटे भाई शत्रुघ्न सहित भरत पैदल ही चले जा रहे हैं।

देखि सनेहु लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे॥
जाइ समीप राखि निज डोली। राम मातु मृदु बानी बोली॥

उनका स्नेह देखकर लोग प्रेम में मग्न हो गए और सब घोड़े, हाथी, रथों को छोड़कर उनसे उतरकर पैदल चलने लगे। तब राम की माता कौसल्या भरत के पास जाकर और अपनी पालकी उनके समीप खड़ी करके कोमल वाणी से बोलीं -

तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी॥
तुम्हरें चलत चलिहि सबु लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू॥

हे बेटा! माता बलैया लेती है, तुम रथ पर चढ़ जाओ। नहीं तो सारा परिवार दुःखी हो जाएगा। तुम्हारे पैदल चलने से सभी लोग पैदल चलेंगे। शोक के मारे सब दुबले हो रहे हैं, पैदल रास्ते के (पैदल चलने के) योग्य नहीं हैं।

सिर धरि बचन चरन सिरु नाई। रथ चढ़ि चलत भए दोउ भाई॥
तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमति तीर निवासू॥

माता की आज्ञा को सिर चढ़ाकर और उनके चरणों में सिर नवाकर दोनों भाई रथ पर चढ़कर चलने लगे। पहले दिन तमसा पर वास (मुकाम) करके दूसरा मुकाम गोमती के तीर पर किया।

दो० - पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग।
करत राम हित नेम ब्रत परिहरि भूषन भोग॥ 188॥

कोई दूध ही पीते, कोई फलाहार करते और कुछ लोग रात को एक ही बार भोजन करते हैं। भूषण और भोग-विलास को छोड़कर सब लोग राम के लिए नियम और व्रत करते हैं॥ 188॥

सई तीर बसि चले बिहाने। सृंगबेरपुर सब निअराने॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदयँ बिचार करइ सबिषादा॥

रात भर सई नदी के तीर पर निवास करके सबेरे वहाँ से चल दिए और सब श्रृंगवेरपुर के समीप जा पहुँचे। निषादराज ने सब समाचार सुने, तो वह दुःखी होकर हृदय में विचार करने लगा -

कारन कवन भरतु बन जाहीं। है कछु कपट भाउ मन माहीं॥
जौं पै जियँ न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई॥

क्या कारण है जो भरत वन को जा रहे हैं, मन में कुछ कपट-भाव अवश्य है। यदि मन में कुटिलता न होती, तो साथ में सेना क्यों ले चले हैं।

जानहिं सानुज रामहि मारी। करउँ अकंटक राजु सुखारी॥
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंकु अब जीवन हानी।

समझते हैं कि छोटे भाई लक्ष्मण सहित राम को मारकर सुख से निष्कंटक राज्य करूँगा। भरत ने हृदय में राजनीति को स्थान नहीं दिया (राजनीति का विचार नहीं किया)। तब (पहले) तो कलंक ही लगा था, अब तो जीवन से ही हाथ धोना पड़ेगा।

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतनिहारा॥
का आचरजु भरतु अस करहीं। नहिं बिष बेलि अमिअ फल फरहीं॥

संपूर्ण देवता और दैत्य वीर जुट जाएँ, तो भी राम को रण में जीतनेवाला कोई नहीं है। भरत जो ऐसा कर रहे हैं, इसमें आश्चर्य ही क्या है? विष की बेलें अमृतफल कभी नहीं फलतीं!

दो॰ - अस बिचारि गुहँ ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु।
हथवाँसहु बोरहु तरनि कीजिअ घाटारोहु॥ 189॥

ऐसा विचारकर गुह (निषादराज) ने अपनी जाति वालों से कहा कि सब लोग सावधान हो जाओ। नावों को हाथ में (कब्जे में) कर लो और फिर उन्हें डुबा दो तथा सब घाटों को रोक दो॥ 189॥

होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा॥

सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ॥

सुसज्जित होकर घाटों को रोक लो और सब लोग मरने के साज सजा लो (अर्थात भरत से युद्ध में लड़कर मरने के लिए तैयार हो जाओ)। मैं भरत से सामने (मैदान में) लोहा लूँगा (मुठभेड़ करूँगा) और जीते-जी उन्हें गंगा पार न उतरने दूँगा।

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छनभंगु सरीरा॥
भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू। बड़ें भाग असि पाइअ मीचू॥

युद्ध में मरण, फिर गंगा का तट, राम का काम और क्षणभंगुर शरीर (जो चाहे जब नाश हो जाए); भरत राम के भाई और राजा (उनके हाथ से मरना) और मैं नीच सेवक - बड़े भाग्य से ऐसी मृत्यु मिलती है।

स्वामि काज करिहउँ रन रारी। जस धवलिहउँ भुवन दस चारी॥
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें॥

मैं स्वामी के काम के लिए रण में लड़ाई करूँगा और चौदहों लोकों को अपने यश से उज्ज्वल कर दूँगा। रघुनाथ के निमित्त प्राण त्याग दूँगा। मेरे तो दोनों ही हाथों में आनंद के लड्डू हैं (अर्थात जीत गया तो राम सेवक का यश प्राप्त करूँगा और मारा गया तो राम की नित्य सेवा प्राप्त करूँगा)।

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महुँ जासु न रेखा॥
जायँ जिअत जग सो महि भारू। जननी जौबन बिटप कुठारू॥

साधुओं के समाज में जिसकी गिनती नहीं और राम के भक्तों में जिसका स्थान नहीं, वह जगत में पृथ्वी का भार होकर व्यर्थ ही जीता है। वह माता के यौवनरूपी वृक्ष के काटने के लिए कुल्हाड़ा मात्र है।

दो॰ - बिगत बिषाद निषादपति सबहि बढ़ाइ उछाहु।
सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु॥ 190॥

(इस प्रकार राम के लिए प्राण समर्पण का निश्चय करके) निषादराज विषाद से रहित हो गया और सबका उत्साह बढ़ाकर तथा राम का स्मरण करके उसने तुरंत ही तरकस, धनुष और कवच माँगा॥ 190॥

बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ॥
भलेहिं नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावइ करषा॥

(उसने कहा -) हे भाइयो! जल्दी करो और सब सामान सजाओ। मेरी आज्ञा सुनकर कोई मन में कायरता न लावे। सब हर्ष के साथ बोल उठे - हे नाथ! बहुत अच्छा; और आपस में एक-दूसरे का जोश बढ़ाने लगे।

चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचइ रारी॥
सुमिरि राम पद पंकज पनहीं। भाथीं बाँधि चढ़ाइन्हि धनहीं॥

निषादराज को जोहार कर-करके सब निषाद चले। सभी बड़े शूरवीर हैं और संग्राम में लड़ना उन्हें बहुत अच्छा लगता है। राम के चरणकमलों की जूतियों का स्मरण करके उन्होंने भाथियाँ (छोटे-छोटे तरकस) बाँधकर धनुहियों (छोटे-छोटे धनुषों) पर प्रत्यंचा चढ़ाई।

अँगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करहीं॥
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े॥

कवच पहनकर सिर पर लोहे का टोप रखते हैं और फरसे, भाले तथा बरछों को सीधा कर रहे हैं (सुधार रहे हैं)। कोई तलवार के वार रोकने में अत्यंत ही कुशल है। वे ऐसे उमंग में भरे हैं, मानो धरती छोड़कर आकाश में कूद (उछल) रहे हों।

निज निज साजु समाजु बनाई। गुह राउतहि जोहारे जाई॥
देखि सुभट सब लायक जाने। लै लै नाम सकल सनमाने॥

अपना-अपना साज-समाज (लड़ाई का सामान और दल) बनाकर उन्होंने जाकर निषादराज गुह को जोहार की। निषादराज ने सुंदर योद्धाओं को देखकर, सबको सुयोग्य जाना और नाम ले-लेकर सबका सम्मान किया।

दो० - भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट बीर अधीर न होहि॥ 191॥

(उसने कहा -) हे भाइयो! धोखा न लाना (अर्थात मरने से न घबड़ाना), आज मेरा बड़ा भारी काम है। यह सुनकर सब योद्धा बड़े जोश के साथ बोल उठे - हे वीर! अधीर मत

हो॥ 191॥

राम प्रताप नाथ बल तोरे। करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे॥
जीवन पाउ न पाछें धरहीं। रुंड मुंडमय मेदिनि करहीं॥

हे नाथ! राम के प्रताप से और आपके बल से हम लोग भरत की सेना को बिना वीर और बिना घोड़े की कर देंगे (एक-एक वीर और एक-एक घोड़े को मार डालेंगे)। जीते-जी पीछे पाँव न रखेंगे। पृथ्वी को रुंड-मुंडमयी कर देंगे (सिरों और धड़ों से छा देंगे)।

दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू॥
एतना कहत छींक भइ बाँए। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए॥

निषादराज ने वीरों का बढ़िया दल देखकर कहा - जुझारू (लड़ाई का) ढोल बजाओ। इतना कहते ही बाईं ओर छींक हुई। शकुन विचारने वालों ने कहा कि खेत सुंदर हैं (जीत होगी)।

बूढ़ु एकु कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिअ न होइहि रारी॥
रामहि भरतु मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं॥

एक बूढ़े ने शकुन विचारकर कहा - भरत से मिल लीजिए, उनसे लड़ाई नहीं होगी। भरत राम को मनाने जा रहे हैं। शकुन ऐसा कह रहा है कि विरोध नहीं है।

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा॥
भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझें। बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझें॥

यह सुनकर निषादराज गुहने कहा - बूढ़ा ठीक कह रहा है। जल्दी में (बिना विचारे) कोई काम करके मूर्ख लोग पछताते हैं। भरत का शील-स्वभाव बिना समझे और बिना जाने युद्ध करने में हित की बहुत बड़ी हानि है।

दो॰ - गहहु घाट भट समिटि सब लेउँ मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति तस तब करिहउँ आइ॥ 192॥

अतएव हे वीरो! तुम लोग इकट्ठे होकर सब घाटों को रोक लो, मैं जाकर भरत से मिलकर उनका भेद लेता हूँ। उनका भाव मित्र का है या शत्रु का या उदासीन का, यह जानकर तब आकर वैसा (उसी के अनुसार) प्रबंध करूँगा॥ 192॥

लखब सनेहु सुभायँ सुहाएँ। बैरु प्रीति नहिं दुरइँ दुराएँ॥
अस कहि भेंट सँजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग मागे॥

उनके सुंदर स्वभाव से मैं उनके स्नेह को पहचान लूँगा। वैर और प्रेम छिपाने से नहीं छिपते। ऐसा कहकर वह भेंट का सामान सजाने लगा। उसने कंद, मूल, फल, पक्षी और हिरन मँगवाए।

मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने॥
मिलन साजु सजि मिलन सिधाए। मंगल मूल सगुन सुभ पाए॥

कहार लोग पुरानी और मोटी पहिना नामक मछलियों के भार भर-भरकर लाए। भेंट का सामान सजाकर मिलने के लिए चले तो मंगलदायक शुभ-शकुन मिले।

देखि दूरि तें कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू॥
जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा। भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा॥

निषादराज ने मुनिराज वशिष्ठ को देखकर अपना नाम बतलाकर दूर ही से दंडवत-प्रणाम किया। मुनीश्वर वशिष्ठ ने उसको राम का प्यारा जानकर आशीर्वाद दिया और भरत को समझाकर कहा (कि यह राम का मित्र है)।

राम सखा सुनि संदनु त्यागा। चले उचरि उमगत अनुरागा॥
गाउँ जाति गुहँ नाउँ सुनाई। कीन्ह जोहारु माथ महि लाई॥

यह राम का मित्र है, इतना सुनते ही भरत ने रथ त्याग दिया। वे रथ से उतरकर प्रेम में उमँगते हुए चले। निषादराज गुह ने अपना गाँव, जाति और नाम सुनाकर पृथ्वी पर माथा टेककर जोहार की।

दो० - करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदयँ समाइ॥ 193॥

दंडवत करते देखकर भरत ने उठाकर उसको छाती से लगा लिया। हृदय में प्रेम समाता नहीं है, मानो स्वयं लक्ष्मण से भेंट हो गई हो॥ 193॥

भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती॥

धन्य धन्य धुनि मंगल मूला। सुर सराहि तेहि बरिसहिं फूला॥

भरत गुह को अत्यंत प्रेम से गले लगा रहे हैं। प्रेम की रीति को सब लोग सिहा रहे हैं (ईर्ष्यापूर्वक प्रशंसा कर रहे हैं); मंगल की मूल 'धन्य-धन्य' की ध्वनि करके देवता उसकी सराहना करते हुए फूल बरसा रहे हैं।

लोक बेद सब भाँतिहिं नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा॥
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता॥

(वे कहते हैं -) जो लोक और वेद दोनों में सब प्रकार से नीचा माना जाता है, जिसकी छाया के छू जाने से भी स्नान करना होता है, उसी निषाद से अँकवार भरकर (हृदय से चिपटाकर) राम के छोटे भाई भरत (आनंद और प्रेमवश) शरीर में पुलकावली से परिपूर्ण हो मिल रहे हैं।

राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं॥
यह तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जगु पावन कीन्हा॥

जो लोग राम-राम कहकर जँभाई लेते हैं (अर्थात आलस्य से भी जिनके मुँह से राम-नाम का उच्चारण हो जाता है), पापों के समूह (कोई भी पाप) उनके सामने नहीं आते। फिर इस गुह को तो स्वयं राम ने हृदय से लगा लिया और कुल समेत इसे जगत्पावन (जगत को पवित्र करनेवाला) बना दिया।

करमनास जलु सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरई॥
उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

कर्मनाशा नदी का जल गंगा में पड़ जाता है (मिल जाता है), तब कहिए, उसे कौन सिर पर धारण नहीं करता? जगत जानता है कि उलटा नाम (मरा-मरा) जपते-जपते वाल्मीकि ब्रह्म के समान हो गए।

दो० - स्वपच सबर खस जमन जड़ पावँर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात॥ 194॥

मूर्ख और पामर चांडाल, शबर, खस, यवन, कोल और किरात भी राम-नाम कहते ही परम पवित्र और त्रिभुवन में विख्यात हो जाते हैं॥ 194॥

नहिं अचिरिजु जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई॥
राम नाम महिमा सुर कहहीं। सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहहीं॥

इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, युग-युगांतर से यही रीति चली आ रही है। रघुनाथ ने किसको बड़ाई नहीं दी? इस प्रकार देवता रामनाम की महिमा कह रहे हैं और उसे सुन-सुनकर अयोध्या के लोग सुख पा रहे हैं।

रामसखहि मिलि भरत सप्रेमा। पूँछी कुसल सुमंगल खेमा॥
देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥

रामसखा निषादराज से प्रेम के साथ मिलकर भरत ने कुशल, मंगल और क्षेम पूछी। भरत का शील और प्रेम देखकर निषाद उस समय विदेह हो गया (प्रेममुग्ध होकर देह की सुध भूल गया)।

सकुच सनेहु मोदु मन बाढ़ा। भरतहि चितवत एकटक ठाढ़ा॥
धरि धीरजु पद बंदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी॥

उसके मन में संकोच, प्रेम और आनंद इतना बढ़ गया कि वह खड़ा-खड़ा टकटकी लगाए भरत को देखता रहा। फिर धीरज धरकर भरत के चरणों की वंदना करके प्रेम के साथ हाथ जोड़कर विनती करने लगा -

कुसल मूल पद पंकज पेखी। मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी॥
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें। सहित कोटि कुल मंगल मोरें॥

हे प्रभो! कुशल के मूल आपके चरण कमलों के दर्शन कर मैंने तीनों कालों में अपना कुशल जान लिया। अब आपके परम अनुग्रह से करोड़ों कुलों (पीढ़ियों) सहित मेरा मंगल (कल्याण) हो गया।

दो० - समुझि मोरि करतूति कुलु प्रभु महिमा जियँ जोइ।
जो न भजइ रघुबीर पद जग बिधि बंचित सोइ॥ 195॥

मेरी करतूत और कुल को समझकर और प्रभु राम की महिमा को मन में देख (विचार) कर (अर्थात कहाँ तो मैं नीच जाति और नीच कर्म करनेवाला जीव, और कहाँ अनंतकोटि ब्रह्मांडों के स्वामी भगवान राम! पर उन्होंने मुझ-जैसे नीच को भी अपनी अहैतुकी

कृपावश अपना लिया - यह समझकर) जो रघुवीर राम के चरणों का भजन नहीं करता, वह जगत में विधाता के द्वारा ठगा गया है॥ 195॥

कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर सब भाँती॥
राम कीन्ह आपन जबही तें। भयउँ भुवन भूषन तबही तें॥

मैं कपटी, कायर, कुबुद्धि और कुजाति हूँ और लोक-वेद दोनों से सब प्रकार से बाहर हूँ। पर जब से राम ने मुझे अपनाया है, तभी से मैं विश्व का भूषण हो गया।

देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउ बहोरि भरत लघु भाई॥
कहि निषाद निज नाम सुबानीं। सादर सकल जोहारीं रानीं॥

निषादराज की प्रीति को देखकर और सुंदर विनय सुनकर फिर भरत के छोटे भाई शत्रुघ्न उससे मिले। फिर निषाद ने अपना नाम ले-लेकर सुंदर (नम्र और मधुर) वाणी से सब रानियों को आदरपूर्वक जोहार की।

जानि लखन सम देहिं असीसा। जिअहु सुखी सय लाख बरीसा॥
निरखि निषादु नगर नर नारी। भए सुखी जनु लखनु निहारी॥

रानियाँ उसे लक्ष्मण के समान समझकर आशीर्वाद देती हैं कि तुम सौ लाख वर्षों तक सुख पूर्वक जिओ। नगर के स्त्री-पुरुष निषाद को देखकर ऐसे सुखी हुए, मानो लक्ष्मण को देख रहे हों।

कहहिं लहेउ एहिं जीवन लाहू। भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू॥
सुनि निषादु निज भाग बड़ाई। प्रमुदित मन लइ चलेउ लेवाई॥

सब कहते हैं कि जीवन का लाभ तो इसी ने पाया है, जिसे कल्याण स्वरूप राम ने भुजाओं में बाँधकर गले लगाया है। निषाद अपने भाग्य की बड़ाई सुनकर मन में परम आनंदित हो सबको अपने साथ लिवा ले चला।

दो० - सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरु तर सर बाग बन बास बनाएन्हि जाइ॥ 196॥

उसने अपने सब सेवकों को इशारे से कह दिया। वे स्वामी का रुख पाकर चले और उन्होंने घरों में, वृक्षों के नीचे, तालाबों पर तथा बगीचों और जंगलों में ठहरने के लिए

स्थान बना दिए॥ 196॥

सृंगबेरपुर भरत दीख जब। भे सनेहँ सब अंग सिथिल तब॥
सोहत दिएँ निषादहि लागू। जनु तनु धरें बिनय अनुरागू॥

भरत ने जब श्रृंगवेरपुर को देखा, तब उनके सब अंग प्रेम के कारण शिथिल हो गए। वे निषाद को लाग दिए (अर्थात उसके कंधे पर हाथ रखे चलते हुए) ऐसे शोभा दे रहे हैं, मानो विनय और प्रेम शरीर धारण किए हुए हों।

एहि बिधि भरत सेनु सबु संगा। दीखि जाइ जग पावनि गंगा॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू॥

इस प्रकार भरत ने सब सेना को साथ में लिए हुए जगत को पवित्र करनेवाली गंगा के दर्शन किए। रामघाट को (जहाँ राम ने स्नान- संध्या की थी) प्रणाम किया। उनका मन इतना आनंदमग्न हो गया, मानो उन्हें स्वयं राम मिल गए हों।

करहिं प्रनाम नगर नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी॥
करि मज्जनु मागहिं कर जोरी। रामचंद्र पद प्रीति न थोरी॥

नगर के नर-नारी प्रणाम कर रहे हैं और गंगा के ब्रह्म रूप जल को देख-देखकर आनंदित हो रहे हैं। गंगा में स्नान कर हाथ जोड़कर सब यही वर माँगते हैं कि रामचंद्र के चरणों में हमारा प्रेम कम न हो (अर्थात बहुत अधिक हो)।

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू॥
जोरि पानि बर मागउँ एहू। सीय राम पद सहज सनेहू॥

भरत ने कहा - हे गंगे! आपकी रज सबको सुख देनेवाली तथा सेवक के लिए तो कामधेनु ही है। मैं हाथ जोड़कर यही वरदान माँगता हूँ कि सीताराम के चरणों में मेरा स्वाभाविक प्रेम हो।

दो० - एहि बिधि मज्जनु भरतु करि गुर अनुसासन पाइ।
मातु नहानीं जानि सब डेरा चले लवाइ॥ 197॥

इस प्रकार भरत स्नान कर और की आज्ञा पाकर तथा यह जानकर कि सब माताएँ स्नान

कर चुकी हैं, डेरा उठा ले चले॥ 197॥

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोधु सबही कर लीन्हा॥
सुर सेवा करि आयसु पाई। राम मातु पहिं गे दोउ भाई॥

लोगों ने जहाँ-तहाँ डेरा डाल दिया। भरत ने सभी का पता लगाया (कि सब लोग आकर आराम से टिक गए हैं या नहीं)। फिर देव पूजन करके आज्ञा पाकर दोनों भाई राम की माता कौसल्या के पास गए।

चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी। जननीं सकल भरत सनमानी॥
भाइहि सौंपि मातु सेवकाई। आपु निषादहि लीन्ह बोलाई॥

चरण दबाकर और कोमल वचन कह-कहकर भरत ने सब माताओं का सत्कार किया। फिर भाई शत्रुघ्न को माताओं की सेवा सौंपकर आपने निषाद को बुला लिया।

चले सखा कर सों कर जोरें। सिथिल सरीरु सनेह न थोरें॥
पूँछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ॥

सखा निषादराज के हाथ-से-हाथ मिलाए हुए भरत चले। प्रेम कुछ थोड़ा नहीं है (अर्थात बहुत अधिक प्रेम है), जिससे उनका शरीर शिथिल हो रहा है। भरत सखा से पूछते हैं कि मुझे वह स्थान दिखलाओ - और नेत्र और मन की जलन कुछ ठंडी करो -

जहँ सिय रामु लखनु निसि सोए। कहत भरे जल लोचन कोए॥
भरत बचन सुनि भयउ बिषादू। तुरत तहाँ लइ गयउ निषादू॥

जहाँ सीता, राम और लक्ष्मण रात को सोए थे। ऐसा कहते ही उनके नेत्रों के कोयों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया। भरत के वचन सुनकर निषाद को बड़ा विषाद हुआ। वह तुरंत ही उन्हें वहाँ ले गया -

दो० - जहँ सिंसुपा पुनीत तर रघुबर किय बिश्रामु।
अति सनेहँ सादर भरत कीन्हेउ दंड प्रनामु॥ 198॥

जहाँ पवित्र अशोक के वृक्ष के नीचे राम ने विश्राम किया था। भरत ने वहाँ अत्यंत प्रेम से आदरपूर्वक दंडवत-प्रणाम किया॥ 198॥

कुस साँथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई॥
चरन देख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई॥

कुशों की सुंदर साथरी देखकर उसकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया। राम के चरण चिह्नों की रज आँखों में लगाई। (उस समय के) प्रेम की अधिकता कहते नहीं बनती।

कनक बिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे॥
सजल बिलोचन हृदयँ गलानी। कहत सखा सन बचन सुबानी॥

भरत ने दो-चार स्वर्णविंदु (सोने के कण या तारे आदि जो सीता के गहने-कपड़ों से गिर पड़े थे) देखे तो उनको सीता के समान समझकर सिर पर रख लिया। उनके नेत्र (प्रेमाश्रु के) जल से भरे हैं और हृदय में ग्लानि भरी है। वे सखा से सुंदर वाणी में ये वचन बोले -

श्रीहत सीय बिरहँ दुतिहीना। जथा अवध नर नारि बिलीना॥
पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोगु जोगु जग जेही॥

ये स्वर्ण के कण या तारे भी सीता के विरह से ऐसे हत (शोभाहीन) एवं कांतिहीन हो रहे हैं, जैसे (राम-वियोग में) अयोध्या के नर-नारी विलीन (शोक के कारण क्षीण) हो रहे हैं। जिन सीता के पिता राजा जनक हैं, इस जगत में भोग और योग दोनों ही जिनकी मुट्ठी में हैं, उन जनक को मैं किसकी उपमा दूँ?

ससुर भानुकुल भानु भुआलू। जेहि सिहात अमरावतिपालू॥
प्राननाथु रघुनाथ गोसाईं। जो बड़ होत सो राम बड़ाईं॥

सूर्यकुल के सूर्य राजा दशरथ जिनके ससुर हैं, जिनको अमरावती के स्वामी इंद्र भी सिहाते थे। (ईर्ष्यापूर्वक उनके-जैसा ऐश्वर्य और प्रताप पाना चाहते थे); और प्रभु रघुनाथ जिनके प्राणनाथ हैं, जो इतने बड़े हैं कि जो कोई भी बड़ा होता है, वह राम की (दी हुई) बड़ाई से ही होता है।

दो० - पति देवता सुतीय मनि सीय साँथरी देखि।
बिहरत हृदउ न हहरि हर पबि तें कठिन बिसेषि॥ 199॥

उन श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियों में शिरोमणि सीता की साथरी (कुश शय्या) देखकर मेरा हृदय

हहराकर (दहलकर) फट नहीं जाता; हे शंकर! यह वज्र से भी अधिक कठोर है!॥ 199॥

लालन जोगु लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहि प्रानपिआरे॥

मेरे छोटे भाई लक्ष्मण बहुत ही सुंदर और प्यार करने योग्य हैं। ऐसे भाई न तो किसी के हुए, न हैं, न होने के ही हैं। जो लक्ष्मण अवध के लोगों को प्यारे, माता-पिता के दुलारे और सीताराम के प्राण प्यारे हैं;

मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस एहिं छाती॥

जिनकी कोमल मूर्ति और सुकुमार स्वभाव है, जिनके शरीर में कभी गरम हवा भी नहीं लगी, वे वन में सब प्रकार की विपत्तियाँ सह रहे हैं। (हाय!) इस मेरी छाती ने (कठोरता में) करोड़ों वज्रों का भी निरादर कर दिया (नहीं तो यह कभी की फट गई होती)।

राम जनमि जगु कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुन सागर॥
पुरजन परिजन गुरु पितु माता। राम सुभाउ सबहि सुखदाता॥

राम ने जन्म (अवतार) लेकर जगत को प्रकाशित (परम सुशोभित) कर दिया। वे रूप, शील, सुख और समस्त गुणों के समुद्र हैं। पुरवासी, कुटुंबी, गुरु, पिता-माता सभी को राम का स्वभाव सुख देनेवाला है।

बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं॥
सारद कोटि कोटि सत सेषा। करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा॥

शत्रु भी राम की बड़ाई करते हैं। बोल-चाल, मिलने के ढंग और विनय से वे मन को हर लेते हैं। करोड़ों सरस्वती और अरबों शेष भी प्रभु राम के गुण-समूहों की गिनती नहीं कर सकते।

दो॰ - सुखस्वरूप रघुबंसमनि मंगल मोद निधान।
ते सोवत कुस डासि महि बिधि गति अति बलवान॥ 200॥

जो सुख स्वरूप रघुवंशशिरोमणि राम मंगल और आनंद के भंडार हैं, वे पृथ्वी पर कुशा

बिछाकर सोते हैं। विधाता की गति बड़ी ही बलवान है॥ 200॥

राम सुना दुखु कान न काऊ। जीवनतरु जिमि जोगवइ राउ॥
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती॥

राम ने कानों से भी कभी दुःख का नाम नहीं सुना। महाराज स्वयं जीवन-वृक्ष की तरह उनकी सार-सँभाल किया करते थे। सब माताएँ भी रात-दिन उनकी ऐसी सार-संभाल करती थीं, जैसे पलक नेत्रों और साँप अपनी मणि की करते हैं।

ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंद मूल फल फूल अहारी॥
धिग कैकई अमंगल मूला। भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला॥

वही राम अब जंगलों में पैदल फिरते हैं और कंद-मूल तथा फल-फूलों का भोजन करते हैं। अमंगल की मूल कैकेयी धिक्कार है, जो अपने प्राणप्रियतम पति से भी प्रतिकूल हो गई।

मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी। सबु उतपातु भयउ जेहि लागी॥
कुल कलंकु करि सृजेउ बिधाताँ। साइँदोह मोहि कीन्ह कुमाताँ॥

मुझ पापों के समुद्र और अभागे को धिक्कार है, धिक्कार है, जिसके कारण ये सब उत्पात हुए। विधाता ने मुझे कुल का कलंक बनाकर पैदा किया और कुमाता ने मुझे स्वामी द्रोही बना दिया।

सुनि सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ करिअ कत बादि बिषादू॥
राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि। यह निरजोसु दोसु बिधि बामहि॥

यह सुनकर निषादराज प्रेमपूर्वक समझाने लगा - हे नाथ! आप व्यर्थ विषाद किसलिए करते हैं? राम आपको प्यारे हैं और आप राम को प्यारे हैं। यही निचोड़ (निश्चित सिद्धांत) है, दोष तो प्रतिकूल विधाता को है।

छं० - बिधि बाम की करनी कठिन जेहिं मातु कीन्ही बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरी॥
तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतमु कहतु हौं सौंहे किएँ।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिए धीरजु हिएँ॥

प्रतिकूल विधाता की करनी बड़ी कठोर है, जिसने माता कैकेयी को बावली बना दिया

(उसकी मति फेर दी)। उस रात को प्रभु राम बार-बार आदरपूर्वक आपकी बड़ी सराहना करते थे। तुलसीदास कहते हैं - (निषादराज कहता है कि -) राम को आपके समान अतिशय प्रिय और कोई नहीं है, मैं सौगंध खाकर कहता हूँ। परिणाम में मंगल होगा, यह जानकर आप अपने हृदय में धैर्य धारण कीजिए।

सो॰ - अंतरजामी रामु सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिअ करिअ बिश्रामु यह बिचारि दृढ़ आनि मन॥ 201॥

राम अंतर्यामी तथा संकोच, प्रेम और कृपा के धाम हैं, यह विचार कर और मन में दृढ़ता लाकर चलिए और विश्राम कीजिए॥ 201॥

सखा बचन सुनि उर धरि धीरा। बास चले सुमिरत रघुबीरा॥
यह सुधि पाइ नगर नर नारी। चले बिलोकन आरत भारी॥

सखा के वचन सुनकर, हृदय में धीरज धरकर राम का स्मरण करते हुए भरत डेरे को चले। नगर के सारे स्त्री-पुरुष यह (राम के ठहरने के स्थान का) समाचार पाकर बड़े आतुर होकर उस स्थान को देखने चले।

परदखिना करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहि खोरि निकामा।
भरि भरि बारि बिलोचन लेंहीं। बाम बिधातहि दूषन देहीं॥

वे उस स्थान की परिक्रमा करके प्रणाम करते हैं और कैकेयी को बहुत दोष देते हैं। नेत्रों में जल भर-भर लेते हैं और प्रतिकूल विधाता को दूषण देते हैं।

एक सराहहिं भरत सनेहू। कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू॥
निंदहिं आपु सराहि निषादहि। को कहि सकइ बिमोह बिषादहि॥

कोई भरत के स्नेह की सराहना करते हैं और कोई कहते हैं कि राजा ने अपना प्रेम खूब निबाहा। सब अपनी निंदा करके निषाद की प्रशंसा करते हैं। उस समय के विमोह और विषाद को कौन कह सकता है?

ऐहि बिधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसार गुदारा लागा॥
गुरहि सुनावँ चढ़ाइ सुहाईं। नईं नाव सब मातु चढ़ाईं॥

इस प्रकार रातभर सब लोग जागते रहे। सबेरा होते ही खेवा लगा। सुंदर नाव पर गुरु को

चढ़ाकर फिर नई नाव पर सब माताओं को चढ़ाया।

दंड चारि महँ भा सबु पारा। उतरि भरत तब सबहि सँभारा॥

चार घड़ी में सब गंगा के पार उतर गए। तब भरत ने उतरकर सबको सँभाला।

दो० - प्रातक्रिया करि मातु पद बंदि गुरहि सिरु नाइ।
आगें किए निषाद गन दीन्हेउ कटकु चलाइ॥ 202॥

प्रातःकाल की क्रियाओं को करके माता के चरणों की वंदना कर और गुरु को सिर नवाकर भरत ने विषाद गणों को (रास्ता दिखलाने के लिए) आगे कर लिया और सेना चला दी॥ 202॥

कियउ निषादनाथु अगुआईं। मातु पालकीं सकल चलाईं॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। बिप्रन्ह सहित गवनु गुर कीन्हा॥

निषादराज को आगे करके पीछे सब माताओं की पालकियाँ चलाईं। छोटे भाई शत्रुघ्न को बुलाकर उनके साथ कर दिया। फिर ब्राह्मणों सहित गुरु ने गमन किया।

आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लखन सहित सिय रामू॥
गवने भरत पयादेहिं पाए। कोतल संग जाहिं डोरिआए॥

तदनंतर आप (भरत) ने गंगा को प्रणाम किया और लक्ष्मण सहित सीताराम का स्मरण किया। भरत पैदल ही चले। उनके साथ कोतल (बिना सवार के) घोड़े बागडोर से बँधे हुए चले जा रहे हैं।

कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइअ नाथ अस्व असवारा॥
रामु पयादेहि पायँ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए॥

उत्तम सेवक बार-बार कहते हैं कि हे नाथ! आप घोड़े पर सवार हो लीजिए। (भरत जवाब देते हैं कि) राम तो पैदल ही गए और हमारे लिए रथ, हाथी और घोड़े बनाए गए हैं।

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा॥
देखि भरत गति सुनि मृदु बानी। सब सेवक गन गरहिं गलानी॥

मुझे उचित तो ऐसा है कि मैं सिर के बल चलकर जाऊँ। सेवक का धर्म सबसे कठिन होता है। भरत की दशा देखकर और कोमल वाणी सुनकर सब सेवकगण ग्लानि के मारे गले जा रहे हैं।

दो० - भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग॥ 203॥

प्रेम में उमंग-उमंगकर सीताराम-सीताराम कहते हुए भरत ने तीसरे पहर प्रयाग में प्रवेश किया॥ 203॥

झलका झलकत पायन्ह कैसें। पंकज कोस ओस कन जैसें॥
भरत पयादेहिं आए आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू॥

उनके चरणों में छाले कैसे चमकते हैं, जैसे कमल की कली पर ओस की बूँदें चमकती हों। भरत आज पैदल ही चलकर आए हैं, यह समाचार सुनकर सारा समाज दुःखी हो गया।

खबरि लीन्ह सब लोग नहाए। कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहिं आए॥
सबिधि सितासित नीर नहाने। दिए दान महिसुर सनमाने॥

जब भरत ने यह पता पा लिया कि सब लोग स्नान कर चुके, तब त्रिवेणी पर आकर उन्हें प्रणाम किया। फिर विधिपूर्वक (गंगा-यमुना के) श्वेत और श्याम जल में स्नान किया और दान देकर ब्राह्मणों का सम्मान किया।

देखत स्यामल धवल हलोरे। पुलकि सरीर भरत कर जोरे॥
सकल काम प्रद तीरथराऊ। बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ॥

श्याम और सफेद (यमुना और गंगा की) लहरों को देखकर भरत का शरीर पुलकित हो उठा और उन्होंने हाथ जोड़कर कहा - हे तीर्थराज! आप समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाले हैं। आपका प्रभाव वेदों में प्रसिद्ध और संसार में प्रकट है।

मागउँ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू॥
अस जियँ जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग जाचक बानी॥

मैं अपना धर्म (न माँगने का क्षत्रिय धर्म) त्यागकर आप से भीख माँगता हूँ। आर्त्त मनुष्य कौन-सा कुकर्म नहीं करता? ऐसा हृदय में जानकर सुजान उत्तम दानी जगत में

माँगनेवाले की वाणी को सफल किया करते हैं (अर्थात वह जो माँगता है, सो दे देते हैं)।

दो० - अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम-जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥ 204॥

मुझे न अर्थ की रुचि (इच्छा) है, न धर्म की, न काम की और न मैं मोक्ष ही चाहता हूँ। जन्म-जन्म में मेरा राम के चरणों में प्रेम हो, बस, यही वरदान माँगता हूँ, दूसरा कुछ नहीं॥ 204॥

जानहुँ रामु कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही॥
सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥

स्वयं राम भी भले ही मुझे कुटिल समझें और लोग मुझे गुरुद्रोही तथा स्वामी द्रोही भले ही कहें; पर सीताराम के चरणों में मेरा प्रेम आपकी कृपा से दिन-दिन बढ़ता ही रहे।

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जलु पबि पाहन डारउ॥
चातकु रटनि घटें घटि जाई। बढ़ें प्रेमु सब भाँति भलाई॥

मेघ चाहे जन्मभर चातक की सुध भुला दे और जल माँगने पर वह चाहे वज्र और पत्थर (ओले) ही गिराए, पर चातक की रटन घटने से तो उसकी बात ही घट जाएगी (प्रतिष्ठा ही नष्ट हो जाएगी)। उसकी तो प्रेम बढ़ने में ही सब तरह से भलाई है।

कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें॥
भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी। भइ मृदु बानि सुमंगल देनी॥

जैसे तपाने से सोने पर आब (चमक) आ जाती है, वैसे ही प्रियतम के चरणों में प्रेम का नियम निबाहने से प्रेमी सेवक का गौरव बढ़ जाता है। भरत के वचन सुनकर बीच त्रिवेणी में से सुंदर मंगल देनेवाली कोमल वाणी हुई।

तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू। राम चरन अनुराग अगाधू॥
बादि गलानि करहु मन माहीं। तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं॥

हे तात भरत! तुम सब प्रकार से साधु हो। राम के चरणों में तुम्हारा अथाह प्रेम है। तुम व्यर्थ ही मन में ग्लानि कर रहे हो। राम को तुम्हारे समान प्रिय कोई नहीं है।

दो॰ - तनु पुलकेउ हियँ हरषु सुनि बेनि बचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल॥ 205॥

त्रिवेणी के अनुकूल वचन सुनकर भरत का शरीर पुलकित हो गया, हृदय में हर्ष छा गया। भरत धन्य हैं, कहकर देवता हर्षित होकर फूल बरसाने लगे॥ 205॥

प्रमुदित तीरथराज निवासी। बैखानस बटु गृही उदासी॥
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा। भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा॥

तीर्थराज प्रयाग में रहनेवाले वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, गृहस्थ और उदासीन (संन्यासी) सब बहुत ही आनंदित हैं और दस-पाँच मिलकर आपस में कहते हैं कि भरत का प्रेम और शील पवित्र और सच्चा है।

सुनत राम गुन ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिबर पहिं आए॥
दंड प्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिमंत भाग्य निज लेखे॥

राम के सुंदर गुणसमूहों को सुनते हुए वे मुनिश्रेष्ठ भरद्वाज के पास आए। मुनि ने भरत को दंडवत प्रणाम करते देखा और उन्हें अपना मूर्तिमान सौभाग्य समझा।

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे॥
आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे। चहत सकुच गृहँ जनु भजि पैठे॥

उन्होंने दौड़कर भरत को उठाकर हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया। मुनि ने उन्हें आसन दिया। वे सिर नवाकर इस तरह बैठे मानो भागकर संकोच के घर में घुस जाना चाहते हैं।

मुनि पूँछब कछु यह बड़ सोचू। बोले रिषि लखि सीलु सँकोचू॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई॥

उनके मन में यह बड़ा सोच है कि मुनि कुछ पूछेंगे (तो मैं क्या उत्तर दूँगा)। भरत के शील और संकोच को देखकर ऋषि बोले - भरत! सुनो, हम सब खबर पा चुके हैं। विधाता के कर्तव्य पर कुछ वश नहीं चलता।

दो॰ - तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु समुझि मातु करतूति।

तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति॥ 206॥

माता की करतूत को समझकर (याद करके) तुम हृदय में ग्लानि मत करो। हे तात! कैकेयी का कोई दोष नहीं है, उसकी बुद्धि तो सरस्वती बिगाड़ गई थी॥ 206॥

यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ। लोकु बेदु बुध संमत दोऊ॥
तात तुम्हार बिमल जसु गाई। पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई॥

यह कहते भी कोई भला न कहेगा, क्योंकि लोक और वेद दोनों ही विद्वानों को मान्य है। किंतु हे तात! तुम्हारा निर्मल यश गाकर तो लोक और वेद दोनों बड़ाई पाएँगे।

लोक बेद संमत सबु कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई॥
राउ सत्यब्रत तुम्हहि बोलाई। देत राजु सुखु धरमु बड़ाई॥

यह लोक और वेद दोनों को मान्य है और सब यही कहते हैं कि पिता जिसको राज्य दे वही पाता है। राजा सत्यव्रती थे, तुमको बुलाकर राज्य देते, तो सुख मिलता, धर्म रहता और बड़ाई होती।

राम गवनु बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला॥
सो भावी बस रानि अयानी। करि कुचालि अंतहुँ पछितानी॥

सारे अनर्थ की जड़ तो राम का वनगमन है, जिसे सुनकर समस्त संसार को पीड़ा हुई। वह राम का वनगमन भी भावीवश हुआ। बेसमझ रानी तो भावीवश कुचाल करके अंत में पछताई।

तहँउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहै सो अधम अयान असाधू॥
करतेहु राजु त तुम्हहि ना दोषू। रामहि होत सुनत संतोषू॥

उसमें भी तुम्हारा कोई तनिक-सा भी अपराध कहे, तो वह अधम, अज्ञानी और असाधु है। यदि तुम राज्य करते तो भी तुम्हें दोष न होता। सुनकर राम को भी संतोष ही होता।

दो० - अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहि उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेहु॥ 207॥

हे भरत! अब तो तुमने बहुत ही अच्छा किया; यही मत तुम्हारे लिए उचित था। राम के

चरणों में प्रेम होना ही संसार में समस्त सुंदर मंगलों का मूल है॥ 207॥

सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना। भूरिभाग को तुम्हहि समाना॥
यह तुम्हार आचरजु न ताता। दसरथ सुअन राम प्रिय भ्राता॥

सो वह (राम के चरणों का प्रेम) तो तुम्हारा धन, जीवन और प्राण ही है; तुम्हारे समान बड़भागी कौन है? हे तात! तुम्हारे लिए यह आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि तुम दशरथ के पुत्र और राम के प्यारे भाई हो।

सुनहु भरत रघुबर मन माहीं। प्रेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं॥
लखन राम सीतहि अति प्रीती। निसि सब तुम्हहि सराहत बीती॥

हे भरत! सुनो, राम के मन में तुम्हारे समान प्रेमपात्र दूसरा कोई नहीं है। लक्ष्मण, राम और सीता तीनों की सारी रात उस दिन अत्यंत प्रेम के साथ तुम्हारी सराहना करते ही बीती।

जाना मरमु नहात प्रयागा। मगन होहिं तुम्हरें अनुरागा॥
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर कें। सुख जीवन जग जस जड़ नर कें॥

प्रयागराज में जब वे स्नान कर रहे थे, उस समय मैंने उनका यह मर्म जाना। वे तुम्हारे प्रेम में मग्न हो रहे थे। तुम पर राम का ऐसा ही (अगाध) स्नेह है जैसा मूर्ख (विषयासक्त) मनुष्य का संसार में सुख के जीवन पर होता है।

यह न अधिक रघुबीर बड़ाई। प्रनत कुटुंब पाल रघुराई॥
तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥

यह रघुनाथ की बहुत बड़ाई नहीं है। क्योंकि रघुनाथ तो शरणागत के कुटुंब भर को पालनेवाले हैं। हे भरत! मेरा यह मत है कि तुम तो मानो शरीरधारी राम के प्रेम ही हो।

दो० - तुम्ह कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु।
राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु॥ 208॥

हे भरत! तुम्हारे लिए (तुम्हारी समझ में) यह कलंक है, पर हम सबके लिए तो उपदेश है। रामभक्तिरूपी रस की सिद्धि के लिए यह समय गणेश (बड़ा शुभ) हुआ है॥ 208॥

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा॥
उदित सदा अँथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना॥

हे तात! तुम्हारा यश निर्मल नवीन चंद्रमा है और राम के दास कुमुद और चकोर हैं (वह चंद्रमा तो प्रतिदिन अस्त होता और घटता है, जिससे कुमुद और चकोर को दुःख होता है); परंतु यह तुम्हारा यशरूपी चंद्रमा सदा उदय रहेगा; कभी अस्त होगा ही नहीं। जगतरूपी आकाश में यह घटेगा नहीं, वरन दिन-दिन दूना होगा।

कोक तिलोक प्रीति अति करिही। प्रभु प्रताप रबि छबिहि न हरिही॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकइ करतबु राहू॥

त्रैलोक्यरूपी चकवा इस यशरूपी चंद्रमा पर अत्यंत प्रेम करेगा और प्रभु राम का प्रतापरूपी सूर्य इसकी छवि को हरण नहीं करेगा। यह चंद्रमा रात-दिन सदा सब किसी को सुख देनेवाला होगा। कैकेयी का कुकर्मरूपी राहु इसे ग्रास नहीं करेगा।

पूरन राम सुप्रेम पियूषा। गुर अवमान दोष नहिं दूषा॥
राम भगत अब अमिअँ अघाहूँ। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहूँ॥

यह चंद्रमा राम के सुंदर प्रेमरूपी अमृत से पूर्ण है। यह गुरु के अपमानरूपी दोष से दूषित नहीं है। तुमने इस यशरूपी चंद्रमा की सृष्टि करके पृथ्वी पर भी अमृत को सुलभ कर दिया। अब राम के भक्त इस अमृत से तृप्त हो लें।

भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल सुमंगल खानी॥
दसरथ गुन गन बरनि न जाहीं। अधिकु कहा जेहि सम जग नाहीं॥

राजा भगीरथ गंगा को लाए, जिन (गंगा) का स्मरण ही संपूर्ण सुंदर मंगलों की खान है। दशरथ के गुणसमूहों का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता; अधिक क्या, जिनकी बराबरी का जगत में कोई नहीं है।

दो० - जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भए आई।
जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ॥ 209॥

जिनके प्रेम और संकोच (शील) के वश में होकर स्वयं (सच्चिदानंदघन) भगवान राम आकर प्रकट हुए, जिन्हें महादेव अपने हृदय के नेत्रों से कभी अघाकर नहीं देख पाए

(अर्थात जिनका स्वरूप हृदय में देखते-देखते शिव कभी तृप्त नहीं हुए)॥ 209॥

कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा। जहँ बस राम प्रेम मृगरूपा॥
तात गलानि करहु जियँ जाएँ। डरहु दरिद्रहि पारसु पाएँ॥

(परंतु उनसे भी बढ़कर) तुमने कीर्तिरूपी अनुपम चंद्रमा को उत्पन्न किया, जिसमें राम प्रेम ही हिरन के (चिह्न के) रूप में बसता है। हे तात! तुम व्यर्थ ही हृदय में ग्लानि कर रहे हो। पारस पाकर भी तुम दरिद्रता से डर रहे हो!

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा॥

हे भरत! सुनो, हम झूठ नहीं कहते। हम उदासीन हैं (किसी का पक्ष नहीं करते), तपस्वी हैं (किसी की मुँह-देखी नहीं कहते) और वन में रहते हैं (किसी से कुछ प्रयोजन नहीं रखते)। सब साधनों का उत्तम फल हमें लक्ष्मण, राम और सीता का दर्शन प्राप्त हुआ।

तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा॥
भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ। कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ॥

(सीता-लक्ष्मण सहित रामदर्शन रूप) उस महान फल का परम फल यह तुम्हारा दर्शन है! प्रयागराज समेत हमारा बड़ा भाग्य है। हे भरत! तुम धन्य हो, तुमने अपने यश से जगत को जीत लिया है। ऐसा कहकर मुनि प्रेम में मग्न हो गए।

सुनि मुनि बचन सभासद हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
धन्य धन्य धुनि गगन पयागा। सुनि सुनि भरतु मगन अनुरागा॥

भरद्वाज मुनि के वचन सुनकर सभासद हर्षित हो गए। 'साधु-साधु' कहकर सराहना करते हुए देवताओं ने फूल बरसाए। आकाश में और प्रयागराज में 'धन्य, धन्य' की ध्वनि सुन-सुनकर भरत प्रेम में मग्न हो रहे हैं।

दो० - पुलक गात हियँ रामु सिय सजल सरोरुह नैन।
करि प्रनामु मुनि मंडलिहि बोले गदगद बैन॥ 210॥

भरत का शरीर पुलकित है, हृदय में सीताराम हैं और कमल के समान नेत्र (प्रेमाश्रु के)

जल से भरे हैं। वे मुनियों की मंडली को प्रणाम करके गद्‍गद वचन बोले - ॥ 210॥

मुनि समाजु अरु तीरथराजू। साँचिहुँ सपथ अघाइ अकाजू॥
एहिं थल जौं किछु कहिअ बनाई। एहि सम अधिक न अघ अधमाई॥

मुनियों का समाज है और फिर तीर्थराज है। यहाँ सच्ची सौगंध खाने से भी भरपूर हानि होती है। इस स्थान में यदि कुछ बनाकर कहा जाए, तो इसके समान कोई बड़ा पाप और नीचता न होगी।

तुम्ह सर्बग्य कहउँ सतिभाऊ। उर अंतरजामी रघुराऊ॥
मोहि न मातु करतब कर सोचू। नहिं दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू॥

मैं सच्चे भाव से कहता हूँ। आप सर्वज्ञ हैं, और रघुनाथ हृदय के भीतर की जाननेवाले हैं (मैं कुछ भी असत्य कहूँगा तो आपसे और उनसे छिपा नहीं रह सकता)। मुझे माता कैकेयी की करनी का कुछ भी सोच नहीं है। और न मेरे मन में इसी बात का दुःख है कि जगत मुझे नीच समझेगा।

नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू। पितहु मरन कर मोहि न सोकू॥
सुकृत सुजस भरि भुअन सुहाए। लछिमन राम सरिस सुत पाए॥

न यही डर है कि मेरा परलोक बिगड़ जाएगा और न पिता के मरने का ही मुझे शोक है। क्योंकि उनका सुंदर पुण्य और सुयश विश्व भर में सुशोभित है। उन्होंने राम-लक्ष्मण-सरीखे पुत्र पाए।

राम बिरहँ तजि तनु छनभंगू। भूप सोच कर कवन प्रसंगू॥
राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं॥

फिर जिन्होंने राम के विरह में अपने क्षणभंगुर शरीर को त्याग दिया, ऐसे राजा के लिए सोच करने का कौन प्रसंग है? (सोच इसी बात का है कि) राम, लक्ष्मण और सीता पैरों में बिना जूती के मुनियों का वेष बनाए वन-वन में फिरते हैं।

दो॰ - अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात॥ 211॥

वे वल्कल वस्त्र पहनते हैं, फलों का भोजन करते हैं, पृथ्वी पर कुश और पत्ते बिछाकर

सोते हैं और वृक्षों के नीचे निवास करके नित्य सर्दी, गर्मी, वर्षा और हवा सहते हैं॥ 211॥

एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती॥
एहि कुरोग कर औषधु नाहीं। सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं॥

इसी दुःख की जलन से निरंतर मेरी छाती जलती रहती है। मुझे न दिन में भूख लगती है, न रात को नींद आती है। मैंने मन-ही-मन समस्त विश्व को खोज डाला, पर इस कुरोग की औषध कहीं नहीं है।

मातु कुमत बढ़ई अघ मूला। तेहिं हमार हित कीन्ह बँसूला॥
कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू। गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू॥

माता का कुमत (बुरा विचार) पापों का मूल बढ़ई है। उसने हमारे हित का बसूला बनाया। उससे कलहरूपी कुकाठ का कुयंत्र बनाया और चौदह वर्ष की अवधिरूपी कठिन कुमंत्र पढ़कर उस यंत्र को गाड़ दिया। (यहाँ माता का कुविचार बढ़ई है, भरत को राज्य बसूला है, राम का वनवास कुयंत्र है और चौदह वर्ष की अवधि कुमंत्र है)।

मोहि लगि यहु कुठाटु तेहिं ठाटा। घालेसि सब जगु बारहबाटा॥
मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ। बसइ अवध नहिं आन उपाएँ॥

मेरे लिए उसने यह सारा कुठाट (बुरा साज) रचा और सारे जगत को बारहबाट (छिन्न-भिन्न) करके नष्ट कर डाला। यह कुयोग राम के लौट आने पर ही मिट सकता है और तभी अयोध्या बस सकती है, दूसरे किसी उपाय से नहीं।

भरत बचन सुनि मुनि सुखु पाई। सबहिं कीन्हि बहु भाँति बड़ाई॥
तात करहु जनि सोचु बिसेषी। सब दुखु मिटिहि राम पग देखी॥

भरत के वचन सुनकर मुनि ने सुख पाया और सभी ने उनकी बहुत प्रकार से बड़ाई की। (मुनि ने कहा -) हे तात! अधिक सोच मत करो। राम के चरणों का दर्शन करते ही सारा दुःख मिट जाएगा।

दो० - करि प्रबोधु मुनिबर कहेउ अतिथि प्रेमप्रिय होहु।
कंद मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु॥ 212॥

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ भरद्वाज ने उनका समाधान करके कहा - अब आप लोग हमारे प्रेम

प्रिय अतिथि बनिए और कृपा करके कंद-मूल, फल-फूल जो कुछ हम दें, स्वीकार कीजिए॥ 212॥

सुनि मुनि बचन भरत हियँ सोचू। भयउ कुअवसर कठिन सँकोचू॥
जानि गुरुइ गुर गिरा बहोरी। चरन बंदि बोले कर जोरी॥

मुनि के वचन सुनकर भरत के हृदय में सोच हुआ कि यह बेमौके बड़ा बेढब संकोच आ पड़ा! फिर गुरुजनों की वाणी को महत्त्वपूर्ण (आदरणीय) समझकर, चरणों की वंदना करके हाथ जोड़कर बोले -

सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरम यहु नाथ हमारा॥
भरत बचन मुनिबर मन भाए। सुचि सेवक सिष निकट बोलाए॥

हे नाथ! आपकी आज्ञा को सिर चढ़ाकर उसका पालन करना, यह हमारा परम धर्म है। भरत के ये वचन मुनिश्रेष्ठ के मन को अच्छे लगे। उन्होंने विश्वासपात्र सेवकों और शिष्यों को पास बुलाया।

चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई।
भलेहिं नाथ कहि तिन्ह सिर नाए। प्रमुदित निज निज काज सिधाए॥

(और कहा कि) भरत की पहुनई करनी चाहिए। जाकर कंद, मूल और फल लाओ। उन्होंने 'हे नाथ! बहुत अच्छा' कहकर सिर नवाया और तब वे बड़े आनंदित होकर अपने-अपने काम को चल दिए।

मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता॥
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं। आयसु होइ सो करहिं गोसाईं॥

मुनि को चिंता हुई कि हमने बहुत बड़े मेहमान को न्योता है। अब जैसा देवता हो, वैसी ही उसकी पूजा भी होनी चाहिए। यह सुनकर ऋद्धियाँ और अणिमादि सिद्धियाँ आ गईं (और बोलीं -) हे गोसाईं! जो आपकी आज्ञा हो सो हम करें।

दो० - राम बिरह ब्याकुल भरतु सानुज सहित समाज।
पहुनाई करि हरहु श्रम कहा मुदित मुनिराज॥ 213॥

मुनिराज ने प्रसन्न होकर कहा - छोटे भाई शत्रुघ्न और समाज सहित भरत राम के विरह

में व्याकुल हैं, इनकी पहुनाई (आतिथ्य-सत्कार) करके इनके श्रम को दूर करो॥ 213॥

रिधि सिधि सिर धरि मुनिबर बानी। बड़भागिनि आपुहि अनुमानी॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघु भाई॥

ऋद्धि-सिद्धि ने मुनिराज की आज्ञा को सिर चढ़ाकर अपने को बड़भागिनी समझा। सब सिद्धियाँ आपस में कहने लगीं - राम के छोटे भाई भरत ऐसे अतिथि हैं, जिनकी तुलना में कोई नहीं आ सकता।

मुनि पद बंदि करिअ सोइ आजू। होइ सुखी सब राज समाजू॥
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना॥

अतः मुनि के चरणों की वंदना करके आज वही करना चाहिए जिससे सारा राज-समाज सुखी हो। ऐसा कहकर उन्होंने बहुत-से सुंदर घर बनाए, जिन्हें देखकर विमान भी विलखते हैं (लजा जाते हैं)।

भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहि अमर अभिलाषे॥
दासीं दास साजु सब लीन्हें। जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हें॥

उन घरों में बहुत-से भोग (इंद्रियों के विषय) और ऐश्वर्य (ठाट-बाट) का सामान भरकर रख दिया, जिन्हें देखकर देवता भी ललचा गए। दासी-दास सब प्रकार की सामग्री लिए हुए मन लगाकर उनके मनों को देखते रहते हैं (अर्थात उनके मन की रुचि के अनुसार करते रहते हैं)।

सब समाजु सजि सिधि पल माहीं। जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं॥
प्रथमहिं बास दिए सब केही। सुंदर सुखद जथा रुचि जेही॥

जो सुख के सामान स्वर्ग में भी स्वप्न में भी नहीं हैं ऐसे सब सामान सिद्धियों ने पल भर में सजा दिए। पहले तो उन्होंने सब किसी को, जिसकी जैसी रुचि थी वैसे ही, सुंदर सुखदायक निवास स्थान दिए।

दो० - बहुरि सपरिजन भरत कहुँ रिषि अस आयसु दीन्ह।
बिधि बिसमय दायकु बिभव मुनिबर तपबल कीन्ह॥ 214॥

और फिर कुटुंब सहित भरत को दिए, क्योंकि ऋषि भरद्वाज ने ऐसी ही आज्ञा दे रखी

थी। (भरत चाहते थे कि उनके सब संगियों को आराम मिले, इसलिए उनके मन की बात जानकर मुनि ने पहले उन लोगों को स्थान देकर पीछे सपरिवार भरत को स्थान देने के लिए आज्ञा दी थी।) मुनिश्रेष्ठ ने तपोबल से ब्रह्मा को भी चकित कर देनेवाला वैभव रच दिया॥ 214॥

मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका॥
सुख समाजु नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी॥

जब भरत ने मुनि के प्रभाव को देखा, तो उसके सामने उन्हें (इंद्र, वरुण, यम, कुबेर आदि) सभी लोकपालों के लोक तुच्छ जान पड़े। सुख की सामग्री का वर्णन नहीं हो सकता, जिसे देखकर ज्ञानी लोग भी वैराग्य भूल जाते हैं।

आसन सयन सुबसन बिताना। बन बाटिका बिहग मृग नाना॥
सुरभि फूल फल अमिअ समाना। बिमल जलासय बिबिध बिधाना॥

आसन, सेज, सुंदर वस्त्र, चँदोवे, वन, बगीचे, भाँति-भाँति के पक्षी और पशु, सुगंधित फूल और अमृत के समान स्वादिष्ट फल, अनेकों प्रकार के (तालाब, कुएँ, बावली आदि) निर्मल जलाशय,

असन पान सुचि अमिअ अमी से। देखि लोग सकुचात जमी से॥
सुर सुरभी सुरतरु सबही कें। लखि अभिलाषु सुरेस सची कें॥

तथा अमृत के भी अमृत-सरीखे पवित्र खान-पान के पदार्थ थे, जिन्हें देखकर सब लोग संयमी पुरुषों (विरक्त मुनियों) की भाँति सकुचा रहे हैं। सभी के डेरों में (मनोवांछित वस्तु देनेवाले) कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं, जिन्हें देखकर इंद्र और इंद्राणी को भी अभिलाषा होती है (उनका भी मन ललचा जाता है)।

रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी॥
स्रक चंदन बनितादिक भोगा। देखि हरष बिसमय बस लोगा॥

वसंत ऋतु है। शीतल, मंद, सुगंध तीन प्रकार की हवा बह रही है। सभी को (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) चारों पदार्थ सुलभ हैं। माला, चंदन, स्त्री आदि भोगों को देखकर सब लोग हर्ष और विषाद के वश हो रहे हैं। (हर्ष तो भोग-सामग्रियों को और मुनि के तप:प्रभाव को देखकर होता है और विषाद इस बात से होता है कि राम के वियोग में नियम-व्रत से

रहनेवाले हम लोग भोग-विलास में क्यों आ फँसे; कहीं इनमें आसक्त होकर हमारा मन नियम-व्रतों को न त्याग दे)।

दो० - संपति चकई भरतु चक मुनि आयस खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजराँ राखे भा भिनुसार॥ 215॥

संपत्ति (भोग-विलास की सामग्री) चकवी है और भरत चकवा हैं और मुनि की आज्ञा खेल है, जिसने उस रात को आश्रमरूपी पिंजड़े में दोनों को बंद कर रखा और ऐसे ही सबेरा हो गया। (जैसे किसी बहेलिए के द्वारा एक पिंजड़े में रखे जाने पर भी चकवी-चकवे का रात को संयोग नहीं होता, वैसे ही भरद्वाज की आज्ञा से रात भर भोग-सामग्रियों के साथ रहने पर भी भरत ने मन से भी उनका स्पर्श तक नहीं किया।)॥ 215॥

कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा। नाई मुनिहि सिरु सहित समाजा।
रिषि आयसु असीस सिर राखी। करि दंडवत बिनय बहु भाषी॥

(प्रातःकाल) भरत ने तीर्थराज में स्नान किया और समाज सहित मुनि को सिर नवाकर और ऋषि की आज्ञा तथा आशीर्वाद को सिर चढ़ाकर दंडवत करके बहुत विनती की।

पथ गति कुसल साथ सब लीन्हें। चले चित्रकूटहिं चितु दीन्हें॥
रामसखा कर दीन्हें लागू। चलत देह धरि जनु अनुरागू॥

तदनंतर रास्ते की पहचान रखनेवाले लोगों (कुशल पथप्रदर्शकों) के साथ सब लोगों को लिए हुए भरत चित्रकूट में चित्त लगाए चले। भरत रामसखा गुह के हाथ में हाथ दिए हुए ऐसे जा रहे हैं, मानो साक्षात प्रेम ही शरीर धारण किए हुए हो।

नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया। प्रेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया॥
लखन राम सिय पंथ कहानी। पूँछत सखहि कहत मृदु बानी॥

न तो उनके पैरों में जूते हैं, और न सिर पर छाया है। उनका प्रेम नियम, व्रत और धर्म निष्कपट (सच्चा) है। वे सखा निषादराज से लक्ष्मण, राम और सीता के रास्ते की बातें पूछते हैं, और वह कोमल वाणी से कहता है।

राम बास थल बिटप बिलोकें। उर अनुराग रहत नहिं रोकें॥
देखि दसा सुर बरिसहिं फूला। भइ मृदु महि मगु मंगल मूला॥

राम के ठहरने की जगहों और वृक्षों को देखकर उनके हृदय में प्रेम रोके नहीं रुकता। भरत की यह दशा देखकर देवता फूल बरसाने लगे। पृथ्वी कोमल हो गई और मार्ग मंगल का मूल बन गया।

दो० - किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात॥ 216॥

बादल छाया किए जा रहे हैं, सुख देनेवाली सुंदर हवा बह रही है। भरत के जाते समय मार्ग जैसा सुखदायक हुआ, वैसा राम को भी नहीं हुआ था॥ 216॥

जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥
ते सब भए परम पद जोगू। भरत दरस मेटा भव रोगू॥

रास्ते में असंख्य जड़-चेतन जीव थे। उनमें से जिनको प्रभु राम ने देखा, अथवा जिन्होंने प्रभु राम को देखा वे सब (उसी समय) परमपद के अधिकारी हो गए। परंतु अब भरत के दर्शन ने तो उनका भव (जन्म-मरण)रूपी रोग मिटा ही दिया। (रामदर्शन से तो वे परमपद के अधिकारी ही हुए थे, परंतु भरत दर्शन से उन्हें वह परमपद प्राप्त हो गया।)

यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं। सुमिरत जिनहि रामु मन माहीं॥
बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥

भरत के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है, जिन्हें राम स्वयं अपने मन में स्मरण करते रहते हैं। जगत में जो भी मनुष्य एक बार 'राम' कह लेते हैं, वे भी तरने-तारनेवाले हो जाते हैं।

भरतु राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मगु मंगलदाता॥
सिद्ध साधु मुनिबर अस कहहीं। भरतहि निरखि हरषु हियँ लहहीं॥

फिर भरत तो राम के प्यारे तथा उनके छोटे भाई ठहरे। तब भला उनके लिए मार्ग मंगल (सुख) - दायक कैसे न हो? सिद्ध, साधु और श्रेष्ठ मुनि ऐसा कह रहे हैं और भरत को देखकर हृदय में हर्ष-लाभ करते हैं।

देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू। जगु भल भलेहि पोच कहुँ पोचू॥
गुर सन कहेउ करिअ प्रभु सोई। रामहि भरतहि भेट न होई॥

भरत के (इस प्रेम के) प्रभाव को देखकर देवराज इंद्र को सोच हो गया (कि कहीं इनके प्रेम-वश राम लौट न जाएँ और हमारा बना-बनाया काम बिगड़ जाए)। संसार भले के लिए भला और बुरे के लिए बुरा है (मनुष्य जैसा आप होता है जगत उसे वैसा ही दिखता है)। उसने गुरु बृहस्पति से कहा - हे प्रभो! वही उपाय कीजिए जिससे राम और भरत की भेंट ही न हो।

दो० - रामु सँकोची प्रेम बस भरत सप्रेम पयोधि।
बनी बात बेगरन चहति करिअ जतनु छलु सोधि॥ 217॥

राम संकोची और प्रेम के वश हैं और भरत प्रेम के समुद्र हैं। बनी-बनाई बात बिगड़ना चाहती है, इसलिए कुछ छल ढूँढ़ कर इसका उपाय कीजिए॥ 217॥

बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने। सहसनयन बिनु लोचन जाने॥
मायापति सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुरराया॥

इंद्र के वचन सुनते ही देवगुरु बृहस्पति मुसकराए। उन्होंने हजार नेत्रोंवाले इंद्र को (ज्ञानरूपी) नेत्रोंरहित (मूर्ख) समझा और कहा - हे देवराज! माया के स्वामी राम के सेवक के साथ कोई माया करता है तो वह उलटकर अपने ही ऊपर आ पड़ती है।

तब किछु कीन्ह राम रुख जानी। अब कुचालि करि होइहि हानी।
सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥

उस समय (पिछली बार) तो राम का रुख जानकर कुछ किया था। परंतु इस समय कुचाल करने से हानि ही होगी। हे देवराज! रघुनाथ का स्वभाव सुनो, वे अपने प्रति किए हुए अपराध से कभी रुष्ट नहीं होते।

जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरबासा॥

पर जो कोई उनके भक्त का अपराध करता है, वह राम की क्रोधाग्नि में जल जाता है। लोक और वेद दोनों में इतिहास (कथा) प्रसिद्ध है। इस महिमा को दुर्वासा जानते हैं।

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥

सारा जगत राम को जपता है, वे राम जिनको जपते हैं, उन भरत के समान राम का प्रेमी

कौन होगा?

दो॰ - मनहुँ न आनिअ अमरपति रघुबर भगत अकाजु।
अजसु लोक परलोक दुख दिन दिन सोक समाजु॥ 218॥

हे देवराज! रघुकुलश्रेष्ठ राम के भक्त का काम बिगाड़ने की बात मन में भी न लाइए। ऐसा करने से लोक में अपयश और परलोक में दुःख होगा और शोक का सामान दिनोंदिन बढ़ता ही चला जाएगा॥ 218॥

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा। रामहि सेवकु परम पिआरा॥
मानत सुखु सेवक सेवकाईं। सेवक बैर बैरु अधिकाईं॥

हे देवराज! हमारा उपदेश सुनो। राम को अपना सेवक परम प्रिय है। वे अपने सेवक की सेवा से सुख मानते हैं और सेवक के साथ वैर करने से बड़ा भारी वैर मानते हैं।

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

यद्यपि वे सम हैं - उनमें न राग है, न रोष है और न वे किसी का पाप-पुण्य और गुण-दोष ही ग्रहण करते हैं। उन्होंने विश्व में कर्म को ही प्रधान कर रखा है। जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल भोगता है।

तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥
अगनु अलेप अमान एकरस। रामु सगुन भए भगत प्रेम बस॥

तथापि वे भक्त और अभक्त के हृदय के अनुसार सम और विषम व्यवहार करते हैं (भक्त को प्रेम से गले लगा लेते हैं और अभक्त को मारकर तार देते हैं)। गुणरहित, निर्लेप, मानरहित और सदा एकरस भगवान राम भक्त के प्रेमवश ही सगुण हुए हैं।

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी॥
अस जियँ जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई॥

राम सदा अपने सेवकों (भक्तों) की रुचि रखते आए हैं। वेद, पुराण, साधु और देवता इसके साक्षी हैं। ऐसा हृदय में जानकर कुटिलता छोड़ दो और भरत के चरणों में सुंदर प्रीति

करो।

दो० - राम भगत परहित निरत पर दुख दुखी दयाल।
भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल॥ 219॥

हे देवराज इंद्र! राम के भक्त सदा दूसरों के हित में लगे रहते हैं, वे दूसरों के दुःख से दुःखी और दयालु होते हैं। फिर भरत तो भक्तों के शिरोमणि हैं, उनसे बिलकुल न डरो॥ 219॥

सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयस अनुसारी॥
स्वारथ बिबस बिकल तुम्ह होहू। भरत दोसु नहिं राउर मोहू॥

प्रभु राम सत्यप्रतिज्ञ और देवताओं का हित करनेवाले हैं। और भरत राम की आज्ञा के अनुसार चलनेवाले हैं। तुम व्यर्थ ही स्वार्थ के विशेष वश होकर व्याकुल हो रहे हो। इसमें भरत का कोई दोष नहीं, तुम्हारा ही मोह है।

सुनि सुरबर सुरगुर बर बानी। भा प्रमोदु मन मिटी गलानी॥
बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ॥

देवगुरु बृहस्पति की श्रेष्ठ वाणी सुनकर इंद्र के मन में बड़ा आनंद हुआ और उनकी चिंता मिट गई। तब हर्षित होकर देवराज फूल बरसाकर भरत के स्वभाव की सराहना करने लगे।

एहि बिधि भरत चले मग जाहीं। दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं॥
जबहि रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत प्रेमु मनहुँ चहु पासा॥

इस प्रकार भरत मार्ग में चले जा रहे हैं। उनकी (प्रेममयी) दशा देखकर मुनि और सिद्ध लोग भी सिहाते हैं। भरत जब भी 'राम' कहकर लंबी साँस लेते हैं, तभी मानो चारों ओर प्रेम उमड़ पड़ता है।

द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। पुरजन प्रेमु न जाइ बखाना॥
बीच बास करि जमुनहिं आए। निरखि नीरु लोचन जल छाए॥

उनके (प्रेम और दीनता से पूर्ण) वचनों को सुनकर वज्र और पत्थर भी पिघल जाते हैं। अयोध्यावासियों का प्रेम कहते नहीं बनता। बीच में निवास (मुकाम) करके भरत यमुना

के तट पर आए। यमुना का जल देखकर उनके नेत्रों में जल भर आया।

दो० - रघुबर बरन बिलोकि बर बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह चढ़े बिबेक जहाज॥ 220॥

रघुनाथ के (श्याम) रंग का सुंदर जल देखकर सारे समाज सहित भरत (प्रेम विह्वल होकर) राम के विरहरूपी समुद्र में डूबते-डूबते विवेकरूपी जहाज पर चढ़ गए (अर्थात यमुना का श्यामवर्ण जल देखकर सब लोग श्यामवर्ण भगवान के प्रेम में विह्वल हो गए और उन्हें न पाकर विरह व्यथा से पीड़ित हो गए; तब भरत को यह ध्यान आया कि जल्दी चलकर उनके साक्षात दर्शन करेंगे, इस विवेक से वे फिर उत्साहित हो गए)॥ 220॥

जमुन तीर तेहि दिन करि बासू। भयउ समय सम सबहि सुपासू॥
रातिहिं घाट घाट की तरनी। आईं अगनित जाहिं न बरनी॥

उस दिन यमुना के किनारे निवास किया। समयानुसार सबके लिए (खान-पान आदि की) सुंदर व्यवस्था हुई। (निषादराज का संकेत पाकर) रात- ही-रात में घाट-घाट की अगणित नावें वहाँ आ गईं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

प्रात पार भए एकहि खेवाँ। तोषे रामसखा की सेवाँ॥
चले नहाइ नदिहि सिर नाई। साथ निषादनाथ दोउ भाई॥

सबेरे एक ही खेवे में सब लोग पार हो गए और राम के सखा निषादराज की इस सेवा से संतुष्ट हुए। फिर स्नान करके और नदी को सिर नवाकर निषादराज के साथ दोनों भाई चले।

आगें मुनिबर बाहन आछें। राजसमाज जाइ सबु पाछें॥
तेहि पाछें दोउ बंधु पयादें। भूषन बसन बेष सुठि सादें॥

आगे अच्छी-अच्छी सवारियों पर श्रेष्ठ मुनि हैं, उनके पीछे सारा राजसमाज जा रहा है। उसके पीछे दोनों भाई बहुत सादे भूषण-वस्त्र और वेष से पैदल चल रहे हैं।

सेवक सुहृद सचिवसुत साथा। सुमिरत लखनु सीय रघुनाथा॥
जहँ जहँ राम बास बिश्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा॥

सेवक, मित्र और मंत्री के पुत्र उनके साथ हैं। लक्ष्मण, सीता और रघुनाथ का स्मरण करते

जा रहे हैं। जहाँ-जहाँ राम ने निवास और विश्राम किया था, वहाँ-वहाँ वे प्रेमसहित प्रणाम करते हैं।

दो० - मगबासी नर नारि सुनि धाम काम तजि धाइ।
देखि सरूप सनेह सब मुदित जनम फलु पाइ॥ 221॥

मार्ग में रहनेवाले स्त्री-पुरुष यह सुनकर घर और काम-काज छोड़कर दौड़ पड़ते हैं और उनके रूप (सौंदर्य) और प्रेम को देखकर वे सब जन्म लेने का फल पाकर आनंदित होते हैं॥ 221॥

कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं। रामु लखनु सखि होहिं कि नाहीं॥
बय बपु बरन रूपु सोइ आली। सीलु सनेहु सरिस सम चाली॥

गाँवों की स्त्रियाँ एक-दूसरे से प्रेमपूर्वक कहती हैं - सखी! ये राम-लक्ष्मण हैं कि नहीं? हे सखी! इनकी अवस्था, शरीर और रंग-रूप तो वही है। शील, स्नेह उन्हीं के सदृश है और चाल भी उन्हीं के समान है।

बेषु न सो सखि सीय न संगा। आगें अनी चली चतुरंगा॥
नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा। सखि संदेहु होइ एहिं भेदा॥

परंतु सखी! इनका न तो वह वेष (वल्कलवस्त्रधारी मुनिवेष) है, न सीता ही संग हैं। और इनके आगे चतुरंगिणी सेना चली जा रही है। फिर इनके मुख प्रसन्न नहीं हैं, इनके मन में खेद है। हे सखी! इसी भेद के कारण संदेह होता है।

तासु तरक तियगन मन मानी। कहहिं सकल तेहि सम न सयानी॥
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। बोली मधुर बचन तिय दूजी॥

उसका तर्क (युक्ति) अन्य स्त्रियों के मन भाया। सब कहती हैं कि इसके समान सयानी (चतुर) कोई नहीं है। उसकी सराहना करके और 'तेरी वाणी सत्य है' इस प्रकार उसका सम्मान करके दूसरी स्त्री मीठे वचन बोली।

कहि सप्रेम बस कथाप्रसंगू। जेहि बिधि राम राज रस भंगू॥
भरतहि बहुरि सराहन लागी। सील सनेह सुभाय सुभागी॥

राम के राजतिलक का आनंद जिस प्रकार से भंग हुआ था वह सब कथाप्रसंग प्रेमपूर्वक

कहकर फिर वह भाग्यवती स्त्री भरत के शील, स्नेह और स्वभाव की सराहना करने लगी।

दो॰ - चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहि भरत सरिस को आजु॥ 222॥

(वह बोली -) देखो, ये भरत पिता के दिए हुए राज्य को त्यागकर पैदल चलते और फलाहार करते हुए राम को मनाने के लिए जा रहे हैं। इनके समान आज कौन है?॥ 222॥

भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन हरनू॥
जो किछु कहब थोर सखि सोई। राम बंधु अस काहे न होई॥

भरत का भाईपना, भक्ति और इनके आचरण कहने और सुनने से दुःख और दोषों के हरनेवाले हैं। हे सखी! उनके संबंध में जो कुछ भी कहा जाए, वह थोड़ा है। राम के भाई ऐसे क्यों न हों।

हम सब सानुज भरतहि देखें। भइन्ह धन्य जुबती जन लेखें॥
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं। कैकइ जननि जोगु सुतु नाहीं॥

छोटे भाई शत्रुघ्न सहित भरत को देखकर हम सब भी आज धन्य (बड़भागिनी) स्त्रियों की गिनती में आ गईं। इस प्रकार भरत के गुण सुनकर और उनकी दशा देखकर स्त्रियाँ पछताती हैं और कहती हैं - यह पुत्र कैकेयी-जैसी माता के योग्य नहीं है।

कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन। बिधि सबु कीन्ह हमहि जो दाहिन॥
कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी॥

कोई कहती है - इसमें रानी का भी दोष नहीं है। यह सब विधाता ने ही किया है, जो हमारे अनुकूल है। कहाँ तो हम लोक और वेद दोनों की विधि (मर्यादा) से हीन, कुल और करतूत दोनों से मलिन तुच्छ स्त्रियाँ,

बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा। कहँ यह दरसु पुन्य परिनामा॥
अस अनंदु अचिरिजु प्रति ग्रामा। जनु मरुभूमि कलपतरु जामा॥

जो बुरे देश (जंगली प्रांत) और बुरे गाँव में बसती हैं और (स्त्रियों में भी) नीच स्त्रियाँ हैं! और कहाँ यह महान पुण्यों का परिणामस्वरूप इनका दर्शन! ऐसा ही आनंद और आश्चर्य

गाँव-गाँव में हो रहा है। मानो मरुभूमि में कल्पवृक्ष उग गया हो।

दो॰ - भरत दरसु देखत खुलेउ मग लोगन्ह कर भागु।
जनु सिंघलबासिन्ह भयउ बिधि बस सुलभ प्रयागु॥ 223॥

भरत का स्वरूप देखते ही रास्ते में रहनेवाले लोगों के भाग्य खुल गए! मानो दैवयोग से सिंहलद्वीप के बसने वालों को तीर्थराज प्रयाग सुलभ हो गया हो!॥ 223॥

निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा॥
तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा॥

(इस प्रकार) अपने गुणों सहित राम के गुणों की कथा सुनते और रघुनाथ को स्मरण करते हुए भरत चले जा रहे हैं। वे तीर्थ देखकर स्नान और मुनियों के आश्रम तथा देवताओं के मंदिर देखकर प्रणाम करते हैं,

मनहीं मन मागहिं बरु एहू। सीय राम पद पदुम सनेहू॥
मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी॥

और मन-ही-मन यह वरदान माँगते हैं कि सीताराम के चरण कमलों में प्रेम हो। मार्ग में भील, कोल आदि वनवासी तथा वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, संन्यासी और विरक्त मिलते हैं।

करि प्रनामु पूँछहिं जेहि तेही। केहि बन लखनु रामु बैदेही॥
ते प्रभु समाचार सब कहहीं। भरतहि देखि जनम फलु लहहीं॥

उनमें से जिस-तिस से प्रणाम करके पूछते हैं कि लक्ष्मण, राम और जानकी किस वन में हैं? वे प्रभु के सब समाचार कहते हैं और भरत को देखकर जन्म का फल पाते हैं।

जे जन कहहिं कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे॥
एहि बिधि बूझत सबहि सुबानी। सुनत राम बनबास कहानी॥

जो लोग कहते हैं कि हमने उनको कुशलपूर्वक देखा है, उनको ये राम-लक्ष्मण के समान ही प्यारे मानते हैं। इस प्रकार सबसे सुंदर वाणी से पूछते और राम के वनवास की कहानी सुनते जाते हैं।

दो॰ - तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमिरि रघुनाथ।

राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ॥ 224॥

उस दिन वहीं ठहरकर दूसरे दिन प्रातःकाल ही रघुनाथ का स्मरण करके चले। साथ के सब लोगों को भी भरत के समान ही राम के दर्शन की लालसा (लगी हुई) है॥ 224॥

मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू॥
भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं रामु मिटिहि दुख दाहू॥

सबको मंगलसूचक शकुन हो रहे हैं। सुख देनेवाले (पुरुषों के दाहिने और स्त्रियों के बाएँ) नेत्र और भुजाएँ फड़क रही हैं। समाज सहित भरत को उत्साह हो रहा है कि राम मिलेंगे और दुःख का दाह मिट जाएगा।

करत मनोरथ जस जियँ जाके। जाहिं सनेह सुराँ सब छाके।
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिहबल बचन प्रेम बस बोलहिं॥

जिसके जी में जैसा है, वह वैसा ही मनोरथ करता है। सब स्नेहीरूपी मदिरा से छके (प्रेम में मतवाले हुए) चले जा रहे हैं। अंग शिथिल हैं, रास्ते में पैर डगमगा रहे हैं और प्रेमवश विह्वल वचन बोल रहे हैं।

रामसखाँ तेहि समय देखावा। सैल सिरोमनि सहज सुहावा॥
जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा॥

रामसखा निषादराज ने उसी समय स्वाभाविक ही सुहावना पर्वतशिरोमणि कामदगिरि दिखलाया, जिसके निकट ही पयस्विनी नदी के तट पर सीता समेत दोनों भाई निवास करते हैं।

देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा॥
प्रेम मगन अस राज समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू॥

सब लोग उस पर्वत को देखकर 'जानकी-जीवन राम की जय हो।' ऐसा कहकर दंडवत प्रणाम करते हैं। राजसमाज प्रेम में ऐसा मग्न है मानो रघुनाथ अयोध्या को लौट चले हों।

दो० - भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु।

कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु॥ 225॥

भरत का उस समय जैसा प्रेम था, वैसा शेष भी नहीं कह सकते। कवि के लिए तो वह वैसा ही अगम है जैसा अहंता और ममता से मलिन मनुष्यों के लिए ब्रह्मानंद!॥ 225॥

सकल सनेह सिथिल रघुबर कें। गए कोस दुइ दिनकर ढरकें॥
जलु थलु देखि बसे निसि बीतें। कीन्ह गवन रघुनाथ पिरीतें॥

सब लोग राम के प्रेम के मारे शिथिल होने के कारण सूर्यास्त होने तक (दिनभर में) दो ही कोस चल पाए और जल-स्थल का सुपास देखकर रात को वहीं (बिना खाए-पिए ही) रह गए। रात बीतने पर रघुनाथ के प्रेमी भरत ने आगे गमन किया।

उहाँ रामु रजनी अवसेषा। जागे सीयँ सपन अस देखा॥
सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए॥

उधर राम रात शेष रहते ही जागे। रात को सीता ने ऐसा स्वप्न देखा (जिसे वे राम को सुनाने लगीं) मानो समाज सहित भरत यहाँ आए हैं। प्रभु के वियोग की अग्नि से उनका शरीर संतप्त है।

सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखीं सासु आन अनुहारी॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोचबस सोच बिमोचन॥

सभी लोग मन में उदास, दीन और दुःखी हैं। सासुओं को दूसरी ही सूरत में देखा। सीता का स्वप्न सुनकर राम के नेत्रों में जल भर आया और सबको सोच से छुड़ा देनेवाले प्रभु स्वयं (लीला से) सोच के वश हो गए।

लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई॥
अस कहि बंधु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने॥

(और बोले -) लक्ष्मण! यह स्वप्न अच्छा नहीं है। कोई भीषण कुसमाचार (बहुत ही बुरी खबर) सुनाएगा। ऐसा कहकर उन्होंने भाई सहित स्नान किया और त्रिपुरारी महादेव का पूजन करके साधुओं का सम्मान किया।

छं० - सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भए।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गए॥

तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे॥

देवताओं का सम्मान (पूजन) और मुनियों की वंदना करके राम बैठ गए और उत्तर दिशा की ओर देखने लगे। आकाश में धूल छा रही है; बहुत-से पक्षी और पशु व्याकुल होकर भागे हुए प्रभु के आश्रम को आ रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि प्रभु राम यह देखकर उठे और सोचने लगे कि क्या कारण है? वे चित्त में आश्चर्ययुक्त हो गए। उसी समय कोल-भीलों ने आकर सब समाचार कहे।

सो० - सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल॥ 226॥

तुलसीदास कहते हैं कि सुंदर मंगल वचन सुनते ही राम के मन में बड़ा आनंद हुआ। शरीर में पुलकावली छा गई, और शरद्-ऋतु के कमल के समान नेत्र प्रेमाश्रुओं से भर गए॥ 226॥

बहुरि सोचबस भे सियरवनू। कारन कवन भरत आगवनू॥
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी॥

सीतापति राम पुनः सोच के वश हो गए कि भरत के आने का क्या कारण है? फिर एक ने आकर ऐसा कहा कि उनके साथ में बड़ी भारी चतुरंगिणी सेना भी है।

सो सुनि रामहि भा अति सोचू। इत पितु बच इत बंधु सकोचू॥
भरत सुभाउ समुझि मन माहीं। प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं॥

यह सुनकर राम को अत्यंत सोच हुआ। इधर तो पिता के वचन और उधर भाई भरत का संकोच! भरत के स्वभाव को मन में समझकर तो प्रभु राम चित्त को ठहराने के लिए कोई स्थान ही नहीं पाते हैं।

समाधान तब भा यह जाने। भरतु कहे महुँ साधु सयाने॥
लखन लखेउ प्रभु हृदयँ खभारू। कहत समय सम नीति बिचारू॥

तब यह जानकर समाधान हो गया कि भरत साधु और सयाने हैं तथा मेरे कहने में (आज्ञाकारी) हैं। लक्ष्मण ने देखा कि प्रभु राम के हृदय में चिंता है तो वे समय के

अनुसार अपना नीतियुक्त विचार कहने लगे -

बिनु पूछें कछु कहउँ गोसाईं। सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाईं॥
तुम्ह सर्बग्य सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउँ अनुगामी॥

हे स्वामी! आपके बिना ही पूछे मैं कुछ कहता हूँ; सेवक समय पर ढिठाई करने से ढीठ नहीं समझा जाता (अर्थात आप पूछें तब मैं कहूँ, ऐसा अवसर नहीं है; इसलिए यह मेरा कहना ढिठाई नहीं होगा)। हे स्वामी! आप सर्वज्ञों में शिरोमणि हैं (सब जानते ही हैं)। मैं सेवक तो अपनी समझ की बात कहता हूँ।

दो० - नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जियँ जानिअ आपु समान॥ 227॥

हे नाथ! आप परम सुहृद (बिना ही कारण परम हित करनेवाले), सरल हृदय तथा शील और स्नेह के भंडार हैं, आपका सभी पर प्रेम और विश्वास है, और अपने हृदय में सबको अपने ही समान जानते हैं॥ 227॥

बिषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोह बस होहिं जनाई॥
भरतु नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेमु सकल जगु जाना॥

परंतु मूढ़ विषयी जीव प्रभुता पाकर मोहवश अपने असली स्वरूप को प्रकट कर देते हैं। भरत नीतिपरायण, साधु और चतुर हैं तथा प्रभु (आप) के चरणों में उनका प्रेम है, इस बात को सारा जगत जानता है।

तेऊ आजु राम पदु पाई। चले धरम मरजाद मेटाई॥
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। जानि राम बनबास एकाकी॥

वे भरत भी आज राम (आप) का पद (सिंहासन या अधिकार) पाकर धर्म की मर्यादा को मिटाकर चले हैं। कुटिल खोटे भाई भरत कुसमय देखकर और यह जानकर कि राम (आप) वनवास में अकेले (असहाय) हैं,

करि कुमंत्रु मन साजि समाजू। आए करै अकंटक राजू॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आए दल बटोरि दोउ भाई॥

अपने मन में बुरा विचार करके, समाज जोड़कर राज्यों को निष्कंटक करने के लिए यहाँ

आए हैं। करोड़ों (अनेकों) प्रकार की कुटिलताएँ रचकर सेना बटोरकर दोनों भाई आए हैं।

जौं जियँ होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ बाजि गजाली॥
भरतहि दोसु देइ को जाएँ। जग बौराइ राज पदु पाएँ॥

यदि इनके हृदय में कपट और कुचाल न होती, तो रथ, घोड़े और हाथियों की कतार (ऐसे समय) किसे सुहाती? परंतु भरत को ही व्यर्थ कौन दोष दे? राजपद पा जाने पर सारा जगत ही पागल (मतवाला) हो जाता है।

दो० - ससि गुर तिय गामी नघुषु चढ़ेउ भूमिसुर जान।
लोक बेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान॥ 228॥

चंद्रमा गुरुपत्नी गामी हुआ, राजा नहुष ब्राह्मणों की पालकी पर चढ़ा। और राजा वेन के समान नीच तो कोई नहीं होगा, जो लोक और वेद दोनों से विमुख हो गया॥ 228॥

सहसबाहु सुरनाथु त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ॥

सहस्रबाहु, देवराज इंद्र और त्रिशंकु आदि किसको राजमद ने कलंक नहीं दिया? भरत ने यह उपाय उचित ही किया है, क्योंकि शत्रु और ऋण को कभी जरा भी शेष नहीं रखना चाहिए।

एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे रामु जानि असहाई॥
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेषी। समर सरोष राम मुखु पेखी॥

हाँ, भरत ने एक बात अच्छी नहीं की, जो राम (आप) को असहाय जानकर उनका निरादर किया! पर आज संग्राम में राम (आप) का क्रोधपूर्ण मुख देखकर यह बात भी उनकी समझ में विशेष रूप से आ जाएगी (अर्थात इस निरादर का फल भी वे अच्छी तरह पा जाएँगे)।

एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटपु पुलक मिस फूला॥
प्रभु पद बंदि सीस रज राखी। बोले सत्य सहज बलु भाषी॥

इतना कहते ही लक्ष्मण नीतिरस भूल गए और युद्ध-रसरूपी वृक्ष पुलकावली के बहाने से फूल उठा (अर्थात नीति की बात कहते-कहते उनके शरीर में वीर रस छा गया)। वे प्रभु

राम के चरणों की वंदना करके, चरण-रज को सिर पर रखकर सच्चा और स्वाभाविक बल कहते हुए बोले।

अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहि उपचार न थोरा॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मनु मारें। नाथ साथ धनु हाथ हमारें॥

हे नाथ! मेरा कहना अनुचित न मानिएगा। भरत ने हमें कम नहीं प्रचारा है (हमारे साथ कम छेड़छाड़ नहीं की है)। आखिर कहाँ तक सहा जाए और मन मारे रहा जाए, जब स्वामी हमारे साथ हैं और धनुष हमारे हाथ में है!

दो० - छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जगु जान।
लातहुँ मारें चढ़ति सिर नीच को धूरि समान॥ 229॥

क्षत्रिय जाति, रघुकुल में जन्म और फिर मैं राम (आप) का अनुगामी (सेवक) हूँ, यह जगत जानता है। (फिर भला कैसे सहा जाए?) धूल के समान नीच कौन है, परंतु वह भी लात मारने पर सिर ही चढ़ती है॥ 229॥

उठि कर जोरि रजायसु मागा। मनहुँ बीर रस सोवत जागा॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासनु सायकु हाथा॥

यों कहकर लक्ष्मण ने उठकर, हाथ जोड़कर आज्ञा माँगी। मानो वीर रस सोते से जाग उठा हो। सिर पर जटा बाँधकर कमर में तरकस कस लिया और धनुष को सजाकर तथा बाण को हाथ में लेकर कहा -

आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ॥
राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई॥

आज मैं राम (आप) का सेवक होने का यश लूँ और भरत को संग्राम में शिक्षा दूँ। राम (आप) के निरादर का फल पाकर दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) रण-शय्या पर सोएँ!

आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥

अच्छा हुआ जो सारा समाज आकर एकत्र हो गया। आज मैं पिछला सब क्रोध प्रकट करूँगा। जैसे सिंह हाथियों के झुंड को कुचल डालता है और बाज जैसे लवे को लपेट में

ले लेता है।

तैसेहिं भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥
जौं सहाय कर संकरु आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई॥

वैसे ही भरत को सेना समेत और छोटे भाई सहित तिरस्कार करके मैदान में पछाड़ूँगा। यदि शंकर भी आकर उनकी सहायता करें, तो भी, मुझे राम की सौगंध है, मैं उन्हें युद्ध में (अवश्य) मार डालूँगा (छोड़ूँगा नहीं)।

दो॰ - अति सरोष माखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान॥ 230॥

लक्ष्मण को अत्यंत क्रोध से तमतमाया हुआ देखकर और उनकी प्रामाणिक (सत्य) सौगंध सुनकर सब लोग भयभीत हो जाते हैं और लोकपाल घबड़ाकर भागना चाहते हैं॥ 230॥

जगु भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहुबलु बिपुल बखानी॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥

सारा जगत भय में डूब गया। तब लक्ष्मण के अपार बाहुबल की प्रशंसा करती हुई आकाशवाणी हुई - हे तात! तुम्हारे प्रताप और प्रभाव को कौन कह सकता है और कौन जान सकता है?

अनुचित उचित काजु किछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ॥
सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥

परंतु कोई भी काम हो, उसे अनुचित-उचित खूब समझ-बूझकर किया जाए तो सब कोई अच्छा कहते हैं। वेद और विद्वान कहते हैं कि जो बिना विचारे जल्दी में किसी काम को करके पीछे पछताते हैं, वे बुद्धिमान नहीं हैं।

सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीयँ सादर सनमाने॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई॥

देववाणी सुनकर लक्ष्मण सकुचा गए। राम और सीता ने उनका आदर के साथ सम्मान किया (और कहा -) हे तात! तुमने बड़ी सुंदर नीति कही। हे भाई! राज्य का मद सबसे

कठिन मद है।

जो अचवँत नृप मातहिं तेई। नाहिन साधुसभा जेहिं सेई॥
सुनहू लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥

जिन्होंने साधुओं की सभा का सेवन (सत्संग) नहीं किया, वे ही राजा राजमदरूपी मदिरा का आचमन करते ही (पीते ही) मतवाले हो जाते हैं। हे लक्ष्मण! सुनो, भरत-सरीखा उत्तम पुरुष ब्रह्मा की सृष्टि में न तो कहीं सुना गया है, न देखा ही गया है।

दो० - भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ॥ 231॥

(अयोध्या के राज्य की तो बात ही क्या है) ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का पद पाकर भी भरत को राज्य का मद नहीं होने का! क्या कभी काँजी की बूँदों से क्षीरसमुद्र नष्ट हो सकता (फट सकता) है?॥ 231॥

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़ै छोनी॥

अंधकार चाहे तरुण (मध्याह्न के) सूर्य को निगल जाए। आकाश चाहे बादलों में समाकर मिल जाए। गौ के खुर-इतने जल में अगस्त्य डूब जाएँ और पृथ्वी चाहे अपनी स्वाभाविक क्षमा (सहनशीलता) को छोड़ दे।

मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहि भाई॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥

मच्छर की फूँक से चाहे सुमेरु उड़ जाए। परंतु हे भाई! भरत को राजमद कभी नहीं हो सकता। हे लक्ष्मण! मैं तुम्हारी शपथ और पिता की सौगंध खाकर कहता हूँ, भरत के समान पवित्र और उत्तम भाई संसार में नहीं है।

सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता॥
भरतु हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥

हे तात! गुरुरूपी दूध और अवगुणरूपी जल को मिलाकर विधाता इस दृश्य-प्रपंच (जगत) को रचता है, परंतु भरत ने सूर्यवंशरूपी तालाब में हंस रूप जन्म लेकर गुण और दोष का

विभाग कर दिया (दोनों को अलग-अलग कर दिया)।

गहि गुन पय तजि अवगुण बारी। निज जस जगत कीन्हि उजिआरी॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ॥

गुणरूपी दूध को ग्रहण कर और अवगुणरूपी जल को त्यागकर भरत ने अपने यश से जगत में उजियाला कर दिया है। भरत के गुण, शील और स्वभाव को कहते-कहते रघुनाथ प्रेमसमुद्र में मग्न हो गए।

दो० - सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपानिकेतु॥ 232॥

राम की वाणी सुनकर और भरत पर उनका प्रेम देखकर समस्त देवता उनकी सराहना करने लगे (और कहने लगे) कि राम के समान कृपा के धाम प्रभु और कौन हैं?॥ 232॥

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा॥

यदि जगत में भरत का जन्म न होता, तो पृथ्वी पर संपूर्ण धर्मों की धुरी को कौन धारण करता? हे रघुनाथ! कविकुल के लिए अगम (उनकी कल्पना से अतीत) भरत के गुणों की कथा आपके सिवा और कौन जान सकता है?

लखन राम सियँ सुनि सुर बानी। अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी॥
इहाँ भरतु सब सहित सहाए। मंदाकिनीं पुनीत नहाए॥

लक्ष्मण, राम और सीता ने देवताओं की वाणी सुनकर अत्यंत सुख पाया, जो वर्णन नहीं किया जा सकता। यहाँ भरत ने सारे समाज के साथ पवित्र मंदाकिनी में स्नान किया।

सरित समीप राखि सब लोगा। मागि मातु गुर सचिव नियोगा॥
चले भरतु जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथु लघु भाई॥

फिर सबको नदी के समीप ठहराकर तथा माता, गुरु और मंत्री की आज्ञा माँगकर

निषादराज और शत्रुघ्न को साथ लेकर भरत वहाँ चले जहाँ सीता और रघुनाथ थे।

समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मन माहीं॥
रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥

भरत अपनी माता कैकेयी की करनी को समझकर (याद करके) सकुचाते हैं और मन में करोड़ों (अनेकों) कुतर्क करते हैं (सोचते हैं -) राम, लक्ष्मण और सीता मेरा नाम सुनकर स्थान छोड़कर कहीं दूसरी जगह उठकर न चले जाएँ।

दो० - मातु मते महुँ मानि मोहि जो कछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर॥ 233॥

मुझे माता के मत में मानकर वे जो कुछ भी करें सो थोड़ा है, पर वे अपनी ओर समझकर (अपने विरद और संबंध को देखकर) मेरे पापों और अवगुणों को क्षमा करके मेरा आदर ही करेंगे॥ 233॥

जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी। जौं सनमानहिं सेवकु मानी॥
मोरें सरन रामहि की पनही। राम सुस्वामि दोसु सब जनही॥

चाहे मलिन-मन जानकर मुझे त्याग दें, चाहे अपना सेवक मानकर मेरा सम्मान करें, (कुछ भी करें); मेरे तो राम की जूतियाँ ही शरण हैं। राम तो अच्छे स्वामी हैं, दोष तो सब दास का ही है।

जग जग भाजन चातक मीना। नेम प्रेम निज निपुन नबीना॥
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेहँ सिथिल सब गाता॥

जगत में यश के पात्र तो चातक और मछली ही हैं, जो अपने नेम और प्रेम को सदा नया बनाए रखने में निपुण हैं। ऐसा मन में सोचते हुए भरत मार्ग में चले जाते हैं। उनके सब अंग संकोच और प्रेम से शिथिल हो रहे हैं।

फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ॥

माता की हुई बुराई मानो उन्हें लौटाती है, पर धीरज की धुरी को धारण करनेवाले भरत भक्ति के बल से चले जाते हैं। जब रघुनाथ के स्वभाव को समझते (स्मरण करते) हैं तब

मार्ग में उनके पैर जल्दी-जल्दी पड़ने लगते हैं।

भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रबाहँ जल अलि गति जैसी॥
देखि भरत कर सोचु सनेहू। भा निषाद तेहि समयँ बिदेहू॥

उस समय भरत की दशा कैसी है? जैसी जल के प्रवाह में जल के भौंरे की गति होती है। भरत का सोच और प्रेम देखकर उस समय निषाद विदेह हो गया (देह की सुध-बुध भूल गया)।

दो० - लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोचु होइहि हरषु पुनि परिनाम बिषादु॥ 234॥

मंगल-शकुन होने लगे। उन्हें सुनकर और विचारकर निषाद कहने लगा - सोच मिटेगा, हर्ष होगा, पर फिर अंत में दुःख होगा॥ 234॥

सेवक बचन सत्य सब जाने। आश्रम निकट जाइ निअराने॥
भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू॥

भरत ने सेवक (गुह) के सब वचन सत्य जाने और वे आश्रम के समीप जा पहुँचे। वहाँ के वन और पर्वतों के समूह को देखा तो भरत इतने आनंदित हुए मानो कोई भूखा अच्छा अन्न (भोजन) पा गया हो।

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहिं भरत गति तेहि अनुहारी॥

जैसे ईति के भय से दुःखी हुई और तीनों (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक) तापों तथा क्रूर ग्रहों और महामारियों से पीड़ित प्रजा किसी उत्तम देश और उत्तम राज्य में जाकर सुखी हो जाए, भरत की गति (दशा) ठीक उसी प्रकार की हो रही है।

(अधिक जल बरसना, न बरसना, चूहों का उत्पात, टिड्डियाँ, तोते और दूसरे राजा की चढ़ाई - खेतों में बाधा देनेवाले इन छह उपद्रवों को 'ईति' कहते हैं)।

राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू॥

राम के निवास से वन की संपत्ति ऐसी सुशोभित है मानो अच्छे राजा को पाकर प्रजा सुखी हो। सुहावना वन ही पवित्र देश है। विवेक उसका राजा है और वैराग्य मंत्री है।

भट जम नियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुंदर रानी॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ। राम चरन आश्रित चित चाऊ॥

यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) तथा नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान) योद्धा हैं। पर्वत राजधानी है, शांति तथा सुबुद्धि दो सुंदर पवित्र रानियाँ हैं। वह श्रेष्ठ राजा राज्य के सब अंगों से पूर्ण है और राम के चरणों के आश्रित रहने से उसके चित्त में चाव (आनंद या उत्साह) है।

(स्वामी, अमात्य, सुहृद, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेना - राज्य के सात अंग हैं।)

दो० - जीति मोह महिपालु दल सहित बिबेक भुआलु।
करत अकंटक राजु पुरँ सुख संपदा सुकालु॥ 235॥

मोहरूपी राजा को सेना सहित जीतकर विवेकरूपी राजा निष्कंटक राज्य कर रहा है। उसके नगर में सुख, संपत्ति और सुकाल वर्तमान है॥ 235॥

बन प्रदेस मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे॥
बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना। प्रजा समाजु न जाइ बखाना॥

वनरूपी प्रांतों में जो मुनियों के बहुत-से निवास स्थान हैं वही मानो शहरों, नगरों, गाँवों और खेड़ों का समूह है। बहुत-से विचित्र पक्षी और अनेकों पशु ही मानो प्रजाओं का समाज है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष बृष साजु सराहा॥
बयरु बिहाइ चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा॥

गैंडा, हाथी, सिंह, बाघ, सूअर, भैंसे और बैलों को देखकर राजा के साज को सराहते ही बनता है। ये सब आपस का वैर छोड़कर जहाँ-तहाँ एक साथ विचरते हैं। यही मानो चतुरंगिणी सेना है।

झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिधि बिधि बाजहिं॥

चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन॥

पानी के झरने झर रहे हैं और मतवाले हाथी चिंघाड़ रहे हैं। वे ही मानो वहाँ अनेकों प्रकार के नगाड़े बज रहे हैं। चकवा, चकोर, पपीहा, तोता तथा कोयलों के समूह और सुंदर हंस प्रसन्न मन से कूज रहे हैं।

अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहु ओरा॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाजु मुद मंगल मूला॥

भौंरों के समूह गुंजार कर रहे हैं और मोर नाच रहे हैं। मानो उस अच्छे राज्य में चारों ओर मंगल हो रहा है। बेल, वृक्ष, तृण सब फल और फूलों से युक्त हैं। सारा समाज आनंद और मंगल का मूल बन रहा है।

दो० - राम सैल सोभा निरखि भरत हृदयँ अति प्रेमु।
तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिरानें नेमु॥ 236॥

राम के पर्वत की शोभा देखकर भरत के हृदय में अत्यंत प्रेम हुआ। जैसे तपस्वी नियम की समाप्ति होने पर तपस्या का फल पाकर सुखी होता है॥ 236॥

तब केवट ऊँचें चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला॥

तब केवट दौड़कर ऊँचे चढ़ गया और भुजा उठाकर भरत से कहने लगा - हे नाथ! ये जो पाकर, जामुन, आम और तमाल के विशाल वृक्ष दिखाई देते हैं,

जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु बिसाल देखि मनु मोहा॥
नील सघन पल्लव फल लाला। अबिरल छाहँ सुखद सब काला॥

जिन श्रेष्ठ वृक्षों के बीच में एक सुंदर विशाल बड़ का वृक्ष सुशोभित है, जिसको देखकर मन मोहित हो जाता है, उसके पत्ते नीले और सघन हैं और उसमें लाल फल लगे हैं। उसकी घनी छाया सब ऋतुओं में सुख देनेवाली है।

मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी। बिरची बिधि सँकेलि सुषमा सी॥
ए तरु सरित समीप गोसाँई। रघुबर परनकुटी जहँ छाई॥

मानो ब्रह्मा ने परम शोभा को एकत्र करके अंधकार और लालिमामयी राशि-सी रच दी है। हे गुसाईं! ये वृक्ष नदी के समीप हैं, जहाँ राम की पर्णकुटी छाई है।

तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए। कहुँ कहुँ सियँ कहुँ लखन लगाए॥
बट छायाँ बेदिका बनाई। सियँ निज पानि सरोज सुहाई॥

वहाँ तुलसी के बहुत-से सुंदर वृक्ष सुशोभित हैं, जो कहीं-कहीं सीता ने और कहीं लक्ष्मण ने लगाए हैं। इसी बड़ की छाया में सीता ने अपने करकमलों से सुंदर वेदी बनाई है।

दो० - जहाँ बैठि मुनिगन सहित नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान॥ 237॥

जहाँ सुजान सीताराम मुनियों के वृन्द समेत बैठकर नित्य शास्त्र, वेद और पुराणों के सब कथा-इतिहास सुनते हैं॥ 237॥

सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥

सखा के वचन सुनकर और वृक्षों को देखकर भरत के नेत्रों में जल उमड़ आया। दोनों भाई प्रणाम करते हुए चले। उनके प्रेम का वर्णन करने में सरस्वती भी सकुचाती हैं।

हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारसु पायउ रंका॥
रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं॥

राम के चरणचिहन देखकर दोनों भाई ऐसे हर्षित होते हैं मानो दरिद्र पारस पा गया हो। वहाँ की रज को मस्तक पर रखकर हृदय में और नेत्रों में लगाते हैं और रघुनाथ के मिलने के समान सुख पाते हैं।

देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा॥
सखहि सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला॥

भरत की अत्यंत अनिर्वचनीय दशा देखकर वन के पशु, पक्षी और जड़ (वृक्षादि) जीव प्रेम में मग्न हो गए। प्रेम के विशेष वश होने से सखा निषादराज को भी रास्ता भूल गया। तब देवता सुंदर रास्ता बतलाकर फूल बरसाने लगे।

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥

भरत के प्रेम की इस स्थिति को देखकर सिद्ध और साधक लोग भी अनुराग से भर गए और उनके स्वाभाविक प्रेम की प्रशंसा करने लगे कि यदि इस पृथ्वी तल पर भरत का जन्म (अथवा प्रेम) न होता, तो जड़ को चेतन और चेतन को जड़ कौन करता?

दो० - प्रेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर॥ 238॥

प्रेम अमृत है, विरह मंदराचल पर्वत है, भरत गहरे समुद्र हैं। कृपा के समुद्र राम ने देवता और साधुओं के हित के लिए स्वयं (इस भरतरूपी गहरे समुद्र को अपने विरहरूपी मंदराचल से) मथकर यह प्रेमरूपी अमृत प्रकट किया है॥ 238॥

सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा॥
भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन। सकल सुमंगल सदनु सुहावन॥

सखा निषादराज सहित इस मनोहर जोड़ी को सघन वन की आड़ के कारण लक्ष्मण नहीं देख पाए। भरत ने प्रभु राम के समस्त सुमंगलों के धाम और सुंदर पवित्र आश्रम को देखा।

करत प्रबेस मिटे दुख दावा। जनु जोगीं परमारथु पावा॥
देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूँछे बचन कहत अनुरागे॥

आश्रम में प्रवेश करते ही भरत का दुःख और दाह (जलन) मिट गया, मानो योगी को परमार्थ (परमतत्त्व) की प्राप्ति हो गई हो। भरत ने देखा कि लक्ष्मण प्रभु के आगे खड़े हैं और पूछे हुए वचन प्रेमपूर्वक कह रहे हैं (पूछी हुई बात का प्रेमपूर्वक उत्तर दे रहे हैं)।

सीस जटा कटि मुनि पट बाँधें। तून कसें कर सरु धनु काँधें॥
बेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू॥

सिर पर जटा है। कमर में मुनियों का (वल्कल) वस्त्र बाँधे हैं और उसी में तरकस कसे हैं। हाथ में बाण तथा कंधे पर धनुष है। वेदी पर मुनि तथा साधुओं का समुदाय बैठा है और सीता सहित रघुनाथ विराजमान हैं।

बलकल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनिबेष कीन्ह रति कामा॥
कर कमलनि धनु सायकु फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत॥

राम के वल्कल वस्त्र हैं, जटा धारण किए हैं, श्याम शरीर है। (सीताराम ऐसे लगते हैं) मानो रति और कामदेव ने मुनि का वेष धारण किया हो। राम अपने करकमलों से धनुष-बाण फेर रहे हैं, और हँसकर देखते ही जी की जलन हर लेते हैं (अर्थात जिसकी ओर भी एक बार हँसकर देख लेते हैं, उसी को परम आनंद और शांति मिल जाती है)।

दो॰ - लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरें भगति सच्चिदानंदु॥ 239॥

सुंदर मुनि मंडली के बीच में सीता और रघुकुलचंद्र राम ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो ज्ञान की सभा में साक्षात भक्ति और सच्चिदानंद शरीर धारण करके विराजमान हैं॥ 239॥

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख गन॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं॥

छोटे भाई शत्रुघ्न और सखा निषादराज समेत भरत का मन (प्रेम में) मग्न हो रहा है। हर्ष-शोक, सुख-दुःख आदि सब भूल गए। 'हे नाथ! रक्षा कीजिए, हे गुसाईं! रक्षा कीजिए' ऐसा कहकर वे पृथ्वी पर दंड की तरह गिर पड़े।

बचन सप्रेम लखन पहिचाने। करत प्रनामु भरत जियँ जाने॥
बंधु सनेह सरस एहि ओरा। उत साहिब सेवा बस जोरा॥

प्रेमभरे वचनों से लक्ष्मण ने पहचान लिया और मन में जान लिया कि भरत प्रणाम कर रहे हैं। (वे राम की ओर मुँह किए खड़े थे, भरत पीठ- पीछे थे; इससे उन्होंने देखा नहीं।) अब इस ओर तो भाई भरत का सरस प्रेम और उधर स्वामी राम की सेवा की प्रबल परवशता।

मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकबि लखन मन की गति भनई॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू॥

न तो (क्षणभर के लिए भी सेवा से पृथक होकर) मिलते ही बनता है और न (प्रेमवश)

छोड़ते (उपेक्षा करते) ही। कोई श्रेष्ठ कवि ही लक्ष्मण के चित्त की इस गति (दुविधा) का वर्णन कर सकता है। वे सेवा पर भार रखकर रह गए (सेवा को ही विशेष महत्त्वपूर्ण समझकर उसी में लगे रहे) मानो चढ़ी हुई पतंग को खिलाड़ी (पतंग उड़ानेवाला) खींच रहा हो।

कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥
उठे रामु सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥

लक्ष्मण ने प्रेम सहित पृथ्वी पर मस्तक नवाकर कहा - हे रघुनाथ! भरत प्रणाम कर रहे हैं। यह सुनते ही रघुनाथ प्रेम में अधीर होकर उठे। कहीं वस्त्र गिरा, कहीं तरकस, कहीं धनुष और कहीं बाण।

दो० - बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान॥ 240॥

कृपानिधान राम ने उनको जबरदस्ती उठाकर हृदय से लगा लिया! भरत और राम के मिलने की रीति को देखकर सबको अपनी सुध भूल गई॥ 240॥

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल अगम करम मन बानी॥
परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई॥

मिलन की प्रीति कैसे बखानी जाए? वह तो कविकुल के लिए कर्म, मन, वाणी तीनों से अगम है। दोनों भाई (भरत और राम) मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को भुलाकर परम प्रेम से पूर्ण हो रहे हैं।

कहहु सुप्रेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि मति अनुसरई॥
कबिहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा॥

कहिए, उस श्रेष्ठ प्रेम को कौन प्रकट करे? कवि की बुद्धि किसकी छाया का अनुसरण करे? कवि को तो अक्षर और अर्थ का ही सच्चा बल है। नट ताल की गति के अनुसार ही नाचता है!

अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँति। बाज सुराग कि गाँडर ताँती॥

भरत और रघुनाथ का प्रेम अगम्य है, जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का भी मन नहीं जा सकता। उस प्रेम को मैं कुबुद्धि किस प्रकार कहूँ! भला, गाँडर की ताँत से भी कहीं सुंदर राग बज सकता है?

(तालाबों और झीलों में एक तरह की घास होती है, उसे गाँडर कहते हैं।)

मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुरगन सभय धकधकी धरकी॥
समुझाए सुरगुरु जड़ जागे। बरषि प्रसून प्रसंसन लागे॥

भरत और राम के मिलने का ढंग देखकर देवता भयभीत हो गए, उनकी धुकधुकी धड़कने लगी। देव गुरु बृहस्पति ने समझाया, तब कहीं वे मूर्ख चेते और फूल बरसाकर प्रशंसा करने लगे।

दो० - मिलि सप्रेम रिपुसूदनहि केवटु भेंटेउ राम।
भूरि भायँ भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम॥ 241॥

फिर राम प्रेम के साथ शत्रुघ्न से मिलकर तब केवट (निषादराज) से मिले। प्रणाम करते हुए लक्ष्मण से भरत बड़े ही प्रेम से मिले॥ 241॥

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई। बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई॥
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनंदे॥

तब लक्ष्मण ललककर (बड़ी उमंग के साथ) छोटे भाई शत्रुघ्न से मिले। फिर उन्होंने निषादराज को हृदय से लगा लिया। फिर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाइयों ने (उपस्थित) मुनियों को प्रणाम किया और इच्छित आशीर्वाद पाकर वे आनंदित हुए।

सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर कर कमल परसि बैठाए॥

छोटे भाई शत्रुघ्न सहित भरत प्रेम में उमँगकर सीता के चरण कमलों की रज सिर पर धारण कर बार-बार प्रणाम करने लगे। सीता ने उन्हें उठाकर उनके सिर को अपने करकमल से स्पर्श कर (सिर पर हाथ फेरकर) उन दोनों को बैठाया।

सीयँ असीस दीन्हि मन माहीं। मगन सनेहँ देह सुधि नाहीं॥

सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता॥

सीता ने मन-ही-मन आशीर्वाद दिया; क्योंकि वे स्नेह में मग्न हैं, उन्हें देह की सुध-बुध नहीं है। सीता को सब प्रकार से अपने अनुकूल देखकर भरत सोचरहित हो गए और उनके हृदय का कल्पित भय जाता रहा।

कोउ किछु कहई न कोउ किछु पूँछा। प्रेम भरा मन निज गति छूँछा॥
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि॥

उस समय न तो कोई कुछ कहता है, न कोई कुछ पूछता है। मन प्रेम से परिपूर्ण है, वह अपनी गति से खाली है (अर्थात संकल्प-विकल्प और चांचल्य से शून्य है)। उस अवसर पर केवट (निषादराज) धीरज धर और हाथ जोड़कर प्रणाम करके विनती करने लगा -

दो॰ - नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब आए बिकल बियोग॥ 242॥

हे नाथ! मुनिनाथ वशिष्ठ के साथ सब माताएँ, नगरवासी, सेवक, सेनापति, मंत्री - सब आपके वियोग से व्याकुल होकर आए हैं॥ 242॥

सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदवनू॥
चले सबेग रामु तेहि काला। धीर धरम धुर दीनदयाला॥

गुरु का आगमन सुनकर शील के समुद्र राम ने सीता के पास शत्रुघ्न को रख दिया और वे परम धीर, धर्मधुरंधर, दीनदयालु राम उसी समय वेग के साथ चल पड़े।

गुरहि देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे॥
मुनिबर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई॥

गुरु के दर्शन करके लक्ष्मण सहित प्रभु राम प्रेम में भर गए और दंडवत प्रणाम करने लगे। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ ने दौड़कर उन्हें हृदय से लगा लिया और प्रेम में उमँगकर वे दोनों भाइयों से मिले।

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू॥
राम सखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा॥

फिर प्रेम से पुलकित होकर केवट (निषादराज) ने अपना नाम लेकर दूर से ही वशिष्ठ को दंडवत प्रणाम किया। ऋषि वशिष्ठ ने रामसखा जानकर उसको जबरदस्ती हृदय से लगा लिया। मानो जमीन पर लोटते हुए प्रेम को समेट लिया हो।

रघुपति भगति सुमंगल मूला। नभ सराहि सुर बरिसहिं फूला॥
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं॥

रघुनाथ की भक्ति सुंदर मंगलों का मूल है इस प्रकार कहकर सराहना करते हुए देवता आकाश से फूल बरसाने लगे। वे कहने लगे - जगत में इसके समान सर्वथा नीच कोई नहीं और वशिष्ठ के समान बड़ा कौन है?

दो० - जेहि लखि लखनहु तें अधिक मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीतापति भजन को प्रगट प्रताप प्रभाउ॥ 243॥

जिस (निषाद) को देखकर मुनिराज वशिष्ठ लक्ष्मण से भी अधिक उससे आनंदित होकर मिले। यह सब सीतापति राम के भजन का प्रत्यक्ष प्रताप और प्रभाव है॥ 243॥

आरत लोग राम सबु जाना। करुनाकर सुजान भगवाना॥
जो जेहि भायँ रहा अभिलाषी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुख राखी॥

दया की खान, सुजान भगवान राम ने सब लोगों को दुःखी (मिलने के लिए व्याकुल) जाना। तब जो जिस भाव से मिलने का अभिलाषी था, उस-उस का उस-उस प्रकार का रुख रखते हुए (उसकी रुचि के अनुसार)।

सानुज मिलि पल महुँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुखु दारुन दाहू॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं॥

उन्होंने लक्ष्मण सहित पल भर में सब किसी से मिलकर उनके दुःख और कठिन संताप को दूर कर दिया। राम के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है। जैसे करोड़ों घड़ों में एक ही सूर्य की (पृथक-पृथक) छाया (प्रतिबिंब) एक साथ ही दिखती है।

मिलि केवटहि उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा॥
देखीं राम दुखित महतारीं। जनु सुबेलि अवलीं हिम मारीं॥

समस्त पुरवासी प्रेम में उमँगकर केवट से मिलकर (उसके) भाग्य की सराहना करते हैं।

राम ने सब माताओं को दुःखी देखा। मानो सुंदर लताओं की पंक्तियों को पाला मार गया हो।

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायँ भगति मति भेई॥
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥

सबसे पहले राम कैकेयी से मिले और अपने सरल स्वभाव तथा भक्ति से उसकी बुद्धि को तर कर दिया। फिर चरणों में गिरकर काल, कर्म और विधाता के सिर दोष मढ़कर, राम ने उनको सांत्वना दी।

दो० - भेटीं रघुबर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु।
अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु॥ 244॥

फिर रघुनाथ सब माताओं से मिले। उन्होंने सबको समझा-बुझाकर संतोष कराया कि हे माता! जगत ईश्वर के अधीन है। किसी को भी दोष नहीं देना चाहिए॥ 244॥

गुरतिय पद बंदे दुहु भाईं। सहित बिप्रतिय जे सँग आईं॥
गंग गौरिसम सब सनमानीं। देहिं असीस मुदित मृदु बानीं॥

फिर दोनों भाइयों ने ब्राह्मणों की स्त्रियों सहित - जो भरत के साथ आई थीं, गुरु की पत्नी अरुंधती के चरणों की वंदना की और उन सबका गंगा तथा गौरी के समान सम्मान किया। वे सब आनंदित होकर कोमल वाणी से आशीर्वाद देने लगीं।

गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु भेंटी संपति अति रंका॥
पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता। परे प्रेम ब्याकुल सब गाता॥

तब दोनों भाई पैर पकड़कर सुमित्रा की गोद में जा चिपटे। मानो किसी अत्यंत दरिद्र को संपत्ति से भेंट हो गई हो। फिर दोनों भाई माता कौसल्या के चरणों में गिर पड़े। प्रेम के मारे उनके सारे अंग शिथिल हैं।

अति अनुराग अंब उर लाए। नयन सनेह सलिल अन्हवाए॥
तेहि अवसर कर हरष बिषादू। किमि कबि कहै मूक जिमि स्वादू॥

बड़े ही स्नेह से माता ने उन्हें हृदय से लगा लिया और नेत्रों से बहे हुए प्रेमाश्रुओं के जल से उन्हें नहला दिया। उस समय के हर्ष और विषाद को कवि कैसे कहे? जैसे गूँगा स्वाद

को कैसे बताए?

मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ। गुर सन कहेउ कि धारिअ पाऊ॥
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू। जल थल तकि तकि उतरेउ लोगू॥

रघुनाथ ने छोटे भाई लक्ष्मण सहित माता कौसल्या से मिलकर गुरु से कहा कि आश्रम पर पधारिए। तदनंतर मुनीश्वर वशिष्ठ की आज्ञा पाकर अयोध्यावासी सब लोग जल और थल का सुभीता देख-देखकर उतर गए।

दो० - महिसुर मंत्री मातु गुरु गने लोग लिए साथ।
पावन आश्रम गवनु किय भरत लखन रघुनाथ॥ 245॥

ब्राह्मण, मंत्री, माताएँ और गुरु आदि गिने-चुने लोगों को साथ लिए हुए, भरत, लक्ष्मण और रघुनाथ पवित्र आश्रम को चले॥ 245॥

सीय आइ मुनिबर पग लागी। उचित असीस लही मन मागी॥
गुरपतिनिहि मुनितियन्ह समेता। मिली प्रेमु कहि जाइ न जेता॥

सीता आकर मुनि श्रेष्ठ वशिष्ठ के चरणों लगीं और उन्होंने मनमाँगी उचित आशीष पाई। फिर मुनियों की स्त्रियों सहित गुरु पत्नी अरूंधती से मिलीं। उनका जितना प्रेम था, वह कहा नहीं जाता।

बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिरबचन लहे प्रिय जी के॥
सासु सकल सब सीयँ निहारीं। मूदे नयन सहमि सुकुमारीं॥

सीता ने सभी के चरणों की अलग-अलग वंदना करके अपने हृदय को प्रिय (अनुकूल) लगनेवाले आशीर्वाद पाए। जब सुकुमारी सीता ने सब सासुओं को देखा, तब उन्होंने सहमकर अपनी आँखें बंद कर लीं।

परीं बधिक बस मनहुँ मरालीं। काह कीन्ह करतार कुचालीं॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुखु पावा। सो सबु सहिअ जो दैउ सहावा॥

(सासुओं की बुरी दशा देखकर) उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो राजहंसिनियाँ बधिक के वश में पड़ गई हों। (मन में सोचने लगीं कि) कुचाली विधाता ने क्या कर डाला? उन्होंने भी सीता को देखकर बड़ा दुःख पाया। (सोचा) जो कुछ दैव सहाए, वह सब सहना ही पड़ता

है।

जनकसुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोयन भरि नीरा॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई॥

तब जानकी हृदय में धीरज धरकर, नील कमल के समान नेत्रों में जल भरकर, सब सासुओं से जाकर मिलीं। उस समय पृथ्वी पर करुणा (करुण रस) छा गई।

दो० - लागि लागि पग सबनि सिय भेंटति अति अनुराग।
हृदयँ असीसहिं प्रेम बस रहिअहु भरी सोहाग॥ 246॥

सीता सबके पैरों लग-लगकर अत्यंत प्रेम से मिल रही हैं, और सब सासुएँ स्नेहवश हृदय से आशीर्वाद दे रही हैं कि तुम सुहाग से भरी रहो (अर्थात सदा सौभाग्यवती रहो)॥ 246॥

बिकल सनेहँ सीय सब रानीं। बैठन सबहि कहेउ गुर ग्यानीं॥
कहि जग गति मायिक मुनिनाथा॥ कहे कछुक परमारथ गाथा॥

सीता और सब रानियाँ स्नेह के मारे व्याकुल हैं। तब ज्ञानी गुरु ने सबको बैठ जाने के लिए कहा। फिर मुनिनाथ वशिष्ठ ने जगत की गति को मायिक कहकर (अर्थात जगत माया का है, इसमें कुछ भी नित्य नहीं है, ऐसा कहकर) कुछ परमार्थ की कथाएँ (बातें) कहीं।

नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा॥
मरन हेतु निज नेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर धुर धारी॥

तदनंतर वशिष्ठ ने राजा दशरथ के स्वर्ग गमन की बात सुनाई। जिसे सुनकर रघुनाथ ने दुःसह दुःख पाया। और अपने प्रति उनके स्नेह को उनके मरने का कारण विचारकर धीरधुरंधर राम अत्यंत व्याकुल हो गए।

कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लखन सीय सब रानी॥
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहूँ राजु अकाजेउ आजू॥

वज्र के समान कठोर, कड़वी वाणी सुनकर लक्ष्मण, सीता और सब रानियाँ विलाप करने लगीं। सारा समाज शोक से अत्यंत व्याकुल हो गया! मानो राजा आज ही मरे हों।

मुनिबर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए॥
ब्रत निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहें जलु काहुँ न लीन्हा॥

फिर मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ ने राम को समझाया। तब उन्होंने समाज सहित श्रेष्ठ नदी मंदाकिनी में स्नान किया। उस दिन प्रभु राम ने निर्जल व्रत किया। मुनि वशिष्ठ के कहने पर भी किसी ने जल ग्रहण नहीं किया।

दो० - भोरु भएँ रघुनंदनहि जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु सो सबु सादरु कीन्ह॥ 247॥

दूसरे दिन सबेरा होने पर मुनि वशिष्ठ ने रघुनाथ को जो-जो आज्ञा दी, वह सब कार्य प्रभु राम ने श्रद्धा-भक्ति सहित आदर के साथ किया॥ 247॥

करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी॥
जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला॥

वेदों में जैसा कहा गया है, उसी के अनुसार पिता की क्रिया करके, पापरूपी अंधकार के नष्ट करनेवाले सूर्यरूप राम शुद्ध हुए! जिनका नाम पापरूपी रूई के (तुरंत जला डालने के) लिए अग्नि है; और जिनका स्मरण मात्र समस्त शुभ मंगलों का मूल है,

सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुसरि जस॥
सुद्ध भएँ दुइ बासर बीते। बोले गुर सन राम पिरीते॥

वे (नित्य शुद्ध-बुद्ध) भगवान राम शुद्ध हुए! साधुओं की ऐसी सम्मति है कि उनका शुद्ध होना वैसे ही है जैसा तीर्थों के आवाहन से गंगा शुद्ध होती हैं! (गंगा तो स्वभाव से ही शुद्ध हैं, उनमें जिन तीर्थों का आवाहन किया जाता है उलटे वे ही गंगा के संपर्क में आने से शुद्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार राम तो नित्य शुद्ध हैं, उनके संसर्ग से कर्म ही शुद्ध हो गए।) जब शुद्ध हुए दो दिन बीत गए तब राम प्रीति के साथ गुरु से बोले -

नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद मूल फल अंबु अहारी॥
सानुज भरतु सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता॥

हे नाथ! सब लोग यहाँ अत्यंत दुःखी हो रहे हैं। कंद, मूल, फल और जल का ही आहार करते हैं। भाई शत्रुघ्न सहित भरत को, मंत्रियों को और सब माताओं को देखकर मुझे एक-

एक पल युग के समान बीत रहा है।

सब समेत पुर धारिअ पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ॥
बहुत कहेउँ सब कियउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिअ गोसाँई॥

अतः सबके साथ आप अयोध्यापुरी को पधारिए (लौट जाइए)। आप यहाँ हैं और राजा अमरावती (स्वर्ग) में हैं (अयोध्या सूनी है)! मैंने बहुत कह डाला, यह सब बड़ी ढिठाई की है। हे गोसाईं! जैसा उचित हो, वैसा ही कीजिए।

दो० - धर्म सेतु करुनायतन कस न कहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहहुँ बिश्राम॥ 248॥

(वशिष्ठ ने कहा -) हे राम! तुम धर्म के सेतु और दया के धाम हो, तुम भला ऐसा क्यों न कहो? लोग दुःखी हैं। दो दिन तुम्हारा दर्शन कर शांति लाभ कर लें॥ 248॥

राम बचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू॥
सुनि गुर गिरा सुमंगल मूला। भयउ मनहुँ मारुत अनुकूला॥

राम के वचन सुनकर सारा समाज भयभीत हो गया। मानो बीच समुद्र में जहाज डगमगा गया हो। परंतु जब उन्होंने गुरु वशिष्ठ की श्रेष्ठ कल्याणमूलक वाणी सुनी, तो उस जहाज के लिए मानो हवा अनुकूल हो गई।

पावन पयँ तिहुँ काल नहाहीं। जो बिलोकि अघ ओघ नसाहीं॥
मंगलमूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि॥

सब लोग पवित्र पयस्विनी नदी में (अथवा पयस्विनी नदी के पवित्र जल में) तीनों समय (सबेरे, दोपहर और सायंकाल) स्नान करते हैं, जिसके दर्शन से ही पापों के समूह नष्ट हो जाते हैं और मंगल मूर्ति राम को दंडवत प्रणाम कर-करके उन्हें नेत्र भर-भरकर देखते हैं।

राम सैल बन देखन जाहीं। जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं॥
झरना झरहिं सुधासम बारी। त्रिबिध तापहर त्रिबिध बयारी॥

सब राम के पर्वत (कामदगिरि) और वन को देखने जाते हैं, जहाँ सभी सुख हैं और सभी दुःखों का अभाव है। झरने अमृत के समान जल झरते हैं और तीन प्रकार की (शीतल, मंद, सुगंध) हवा तीनों प्रकार के (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) तापों को हर

लेती है।

बिटप बेलि तृन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती॥
सुंदर सिला सुखद तरु छाहीं। जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं॥

असंख्य जाति के वृक्ष, लताएँ और तृण हैं तथा बहुत तरह के फल, फूल और पत्ते हैं। सुंदर शिलाएँ हैं। वृक्षों की छाया सुख देनेवाली है। वन की शोभा किससे वर्णन की जा सकती है?

दो॰ - सरनि सरोरुह जल बिहग कूजत गुंजत भृंग।
बैर बिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहुरंग॥ 249॥

तालाबों में कमल खिल रहे हैं, जल के पक्षी कूज रहे हैं, भौंरे गुंजार कर रहे हैं और बहुत रंगों के पक्षी और पशु वन में वैर रहित होकर विहार कर रहे हैं॥ 249॥

कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी॥
भरि भरि परन पुटीं रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी॥

कोल, किरात और भील आदि वन के रहनेवाले लोग पवित्र, सुंदर एवं अमृत के समान स्वादिष्ट मधु (शहद) को सुंदर दोने बनाकर और उनमें भर-भरकर तथा कंद, मूल, फल और अंकुर आदि की जूड़ियों (अँटियों) को।

सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥

सबको विनय और प्रणाम करके उन चीजों के अलग-अलग स्वाद, भेद (प्रकार), गुण और नाम बता-बताकर देते हैं। लोग उनका बहुत दाम देते हैं, पर वे नहीं लेते और लौटा देने में राम की दुहाई देते हैं।

कहहिं सनेह मगन मृदु बानी। मानत साधु प्रेम पहिचानी॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा॥

प्रेम में मग्न हुए वे कोमल वाणी से कहते हैं कि साधु लोग प्रेम को पहचानकर उसका सम्मान करते हैं (अर्थात आप साधु हैं, आप हमारे प्रेम को देखिए, दाम देकर या वस्तुएँ लौटाकर हमारे प्रेम का तिरस्कार न कीजिए)। आप तो पुण्यात्मा हैं, हम नीच निषाद हैं।

राम की कृपा से ही हमने आप लोगों के दर्शन पाए हैं।

हमहि अगम अति दरसु तुम्हारा। जस मरु धरनि देवधुनि धारा॥
राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा॥

हम लोगों को आपके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं, जैसे मरुभूमि के लिए गंगा की धारा दुर्लभ है! (देखिए,) कृपालु राम ने निषाद पर कैसी कृपा की है। जैसे राजा हैं वैसा ही उनके परिवार और प्रजा को भी होना चाहिए।

दो० - यह जियँ जानि सँकोचु तजि करिअ छोहु लखि नेहु।
हमहि कृतारथ करनलगि फल तृन अंकुर लेहु॥ 250॥

हृदय में ऐसा जानकर संकोच छोड़कर और हमारा प्रेम देखकर कृपा कीजिए और हमको कृतार्थ करने के लिए ही फल, तृण और अंकुर लीजिए॥ 250॥

तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे॥
देब काह हम तुम्हहि गोसाँई। ईंधनु पात किरात मिताई॥

आप प्रिय पाहुने वन में पधारे हैं। आपकी सेवा करने के योग्य हमारे भाग्य नहीं हैं। हे स्वामी! हम आपको क्या देंगे? भीलों की मित्रता तो बस, ईंधन (लकड़ी) और पत्तों ही तक है।

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई॥
हम जड़ जीव जीव गन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥

हमारी तो यही बड़ी भारी सेवा है कि हम आपके कपड़े और बर्तन नहीं चुरा लेते। हम लोग जड़ जीव हैं, जीवों की हिंसा करनेवाले हैं; कुटिल, कुचाली, कुबुद्धि और कुजाति हैं।

पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं॥
सपनेहुँ धरमबुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ॥

हमारे दिन-रात पाप करते ही बीतते हैं। तो भी न तो हमारी कमर में कपड़ा है और न पेट ही भरते हैं। हममें स्वप्न में भी कभी धर्मबुद्धि कैसी? यह सब तो रघुनाथ के दर्शन का प्रभाव है।

जब तें प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्ह के भाग सराहन लागे॥

जब से प्रभु के चरण कमल देखे, तब से हमारे दुःसह दुःख और दोष मिट गए। वनवासियों के वचन सुनकर अयोध्या के लोग प्रेम में भर गए और उनके भाग्य की सराहना करने लगे।

छं० - लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेहु लखि सुखु पावहीं॥
नर नारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघुबंसमनि की लोह लै लौका तिरा॥

सब उनके भाग्य की सराहना करने लगे और प्रेम के वचन सुनाने लगे। उन लोगों के बोलने और मिलने का ढंग तथा सीताराम के चरणों में उनका प्रेम देखकर सब सुख पा रहे हैं। उन कोल-भीलों की वाणी सुनकर सभी नर-नारी अपने प्रेम का निरादर करते हैं (उसे धिक्कार देते हैं)। तुलसीदास कहते हैं कि यह रघुवंशमणि राम की कृपा है कि लोहा नौका को अपने ऊपर लेकर तैर गया।

सो० - बिहरहिं बन चहु ओर प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यों दादुर मोर भए पीन पावस प्रथम॥ 251॥

सब लोग दिनोंदिन परम आनंदित होते हुए वन में चारों ओर विचरते हैं। जैसे पहली वर्षा के जल से मेढ़क और मोर-मोटे हो जाते हैं (प्रसन्न होकर नाचते-कूदते हैं)॥ 251॥

पुर जन नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलक सम बीती॥
सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई॥

अयोध्यापुरी के पुरुष और स्त्री सभी प्रेम में अत्यंत मग्न हो रहे हैं। उनके दिन पल के समान बीत जाते हैं। जितनी सासुएँ थीं, उतने ही वेष (रूप) बनाकर सीता सब सासुओं की आदरपूर्वक एक-सी सेवा करती हैं।

लखा न मरमु राम बिनु काहूँ। माया सब सिय माया माहूँ॥
सीयँ सासु सेवा बस कीन्हीं। तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्हीं॥

राम के सिवा इस भेद को और किसी ने नहीं जाना। सब मायाएँ सीता की माया में ही हैं। सीता ने सासुओं को सेवा से वश में कर लिया। उन्होंने सुख पाकर सीख और आशीर्वाद दिए।

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई॥
अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई॥

सीता समेत दोनों भाइयों (राम-लक्ष्मण) को सरल स्वभाव देखकर कुटिल रानी कैकेयी भरपेट पछताई। वह पृथ्वी तथा यमराज से याचना करती है, किंतु धरती बीच (फटकर समा जाने के लिए रास्ता) नहीं देती और विधाता मौत नहीं देता।

लोकहुँ बेद बिदित कबि कहहीं। राम बिमुख थलु नरक न लहहीं॥
यहु संसउ सब के मन माहीं। राम गवनु बिधि अवध कि नाहीं॥

लोक और वेद में प्रसिद्ध है और कवि (ज्ञानी) भी कहते हैं कि जो राम से विमुख हैं, उन्हें नरक में भी ठौर नहीं मिलती। सबके मन में यह संदेह हो रहा था कि हे विधाता! राम का अयोध्या जाना होगा या नहीं।

दो॰ - निसि न नीद नहिं भूख दिन भरतु बिकल सुचि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सँकोच॥ 252॥

भरत को न तो रात को नींद आती है, न दिन में भूख ही लगती है। वे पवित्र सोच में ऐसे विकल हैं, जैसे नीचे (तल) के कीचड़ में डूबी हुई मछली को जल की कमी से व्याकुलता होती है॥ 252॥

कीन्हि मातु मिस काल कुचाली। ईति भीति जस पाकत साली॥
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाउ न एकू॥

(भरत सोचते हैं कि) माता के मिस से काल ने कुचाल की है। जैसे धान के पकते समय ईति का भय आ उपस्थित हो। अब राम का राज्याभिषेक किस प्रकार हो, मुझे तो एक भी उपाय नहीं सूझ पड़ता।

अवसि फिरहिं गुर आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी॥
मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ। राम जननि हठ करबि कि काऊ॥

गुरु की आज्ञा मानकर तो राम अवश्य ही अयोध्या को लौट चलेंगे। परंतु मुनि वशिष्ठ तो राम की रुचि जानकर ही कुछ कहेंगे। (अर्थात वे राम की रुचि देखे बिना जाने को नहीं कहेंगे)। माता कौसल्या के कहने से भी रघुनाथ लौट सकते हैं; पर भला, राम को जन्म देनेवाली माता क्या कभी हठ करेगी?

मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता॥
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू॥

मुझ सेवक की तो बात ही कितनी है? उसमें भी समय खराब है (मेरे दिन अच्छे नहीं हैं) और विधाता प्रतिकूल है। यदि मैं हठ करता हूँ तो यह घोर कुकर्म (अधर्म) होगा, क्योंकि सेवक का धर्म शिव के पर्वत कैलास से भी भारी (निबाहने में कठिन) है।

एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैनि बिहानी॥
प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई। बैठत पठए रिषयँ बोलाई॥

एक भी युक्ति भरत के मन में न ठहरी। सोचते-ही-सोचते रात बीत गई। भरत प्रातःकाल स्नान करके और प्रभु राम को सिर नवाकर बैठे ही थे कि ऋषि वशिष्ठ ने उनको बुलवा भेजा।

दो० - गुर पद कमल प्रनामु करि बैठे आयसु पाइ।
बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ॥ 253॥

भरत गुरु के चरणकमलों में प्रणाम करके आज्ञा पाकर बैठ गए। उसी समय ब्राह्मण, महाजन, मंत्री आदि सभी सभासद आकर जुट गए॥ 253॥

बोले मुनिबरु समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना॥
धरम धुरीन भानुकुल भानू। राजा रामु स्वबस भगवानू॥

श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठ समयोचित वचन बोले - हे सभासदों! हे सुजान भरत! सुनो। सूर्यकुल के सूर्य महाराज राम धर्मधुरंधर और स्वतंत्र भगवान हैं।

सत्यसंध पालक श्रुति सेतू। राम जनमु जग मंगल हेतु॥
गुर पितु मातु बचन अनुसारी। खल दलु दलन देव हितकारी॥

वे सत्य प्रतिज्ञ हैं और वेद की मर्यादा के रक्षक हैं। राम का अवतार ही जगत के

कल्याण के लिए हुआ है। वे गुरु, पिता और माता के वचनों के अनुसार चलनेवाले हैं। दुष्टों के दल का नाश करनेवाले और देवताओं के हितकारी हैं।

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु॥
बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला॥

नीति, प्रेम, परमार्थ और स्वार्थ को राम के समान यथार्थ (तत्त्व से) कोई नहीं जानता। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, चंद्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, सभी कर्म और काल,

अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई॥
करि बिचार जियँ देखहु नीकें। राम रजाइ सीस सब ही कें॥

शेष और (पृथ्वी एवं पाताल के अन्यान्य) राजा आदि जहाँ तक प्रभुता है, और योग की सिद्धियाँ, जो वेद और शास्त्रों में गाई गई हैं, हृदय में अच्छी तरह विचार कर देखो, (तो यह स्पष्ट दिखाई देगा कि) राम की आज्ञा इन सभी के सिर पर है (अर्थात राम ही सबके एक मात्र महान महेश्वर हैं)।

दो० - राखें राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब सब मिलि संमत सोइ॥ 254॥

अतएव राम की आज्ञा और रुख रखने में ही हम सबका हित होगा। (इस तत्त्व और रहस्य को समझकर) अब तुम सयाने लोग जो सबको सम्मत हो, वही मिलकर करो॥ 254॥

सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मग एकू॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ॥

राम का राज्याभिषेक सबके लिए सुखदायक है। मंगल और आनंद का मूल यही एक मार्ग है। (अब) रघुनाथ अयोध्या किस प्रकार चलें? विचारकर कहो, वही उपाय किया जाए।

सब सादर सुनि मुनिबर बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी॥
उतरु न आव लोग भए भोरे। तब सिरु नाइ भरत कर जोरे॥

मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ की नीति, परमार्थ और स्वार्थ (लौकिक हित) में सनी हुई वाणी सबने आदरपूर्वक सुनी। पर किसी को कोई उत्तर नहीं आता, सब लोग भोले (विचार शक्ति से

रहित) हो गए। तब भरत ने सिर नवाकर हाथ जोड़े।

भानुबंस भए भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता॥

(और कहा -) सूर्यवंश में एक-से-एक अधिक बड़े बहुत-से राजा हो गए हैं। सभी के जन्म के कारण पिता-माता होते हैं और शुभ-अशुभ कर्मों को (कर्मों का फल) विधाता देते हैं।

दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जगु जाना॥
सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥

आपका आशीष ही एक ऐसा है, जो दुःखों का दमन करके, समस्त कल्याणों को सज देते है; यह जगत जानता है। हे स्वामी! आप वही हैं, जिन्होंने विधाता की गति (विधान) को भी रोक दिया। आपने जो टेक टेक दी (जो निश्चय कर दिया) उसे कौन टाल सकता है?।

दो॰ - बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु।
सुनि सनेहमय बचन गुर उर उमगा अनुरागु॥ 255॥

अब आप मुझसे उपाय पूछते हैं, यह सब मेरा अभाग्य है। भरत के प्रेममय वचनों को सुनकर गुरु के हृदय में प्रेम उमड़ आया॥ 255॥

तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता। अरध तजहिं बुध सरबस जाता॥

(वे बोले -) हे तात! बात सत्य है, पर है राम की कृपा से ही। राम विमुख को तो स्वप्न में भी सिद्धि नहीं मिलती। हे तात! मैं एक बात कहने में सकुचाता हूँ। बुद्धिमान लोग सर्वस्व जाता देखकर (आधे की रक्षा के लिए) आधा छोड़ दिया करते हैं।

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहिं लखन सीय रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद परिपूरन गाता॥

अतः तुम दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) वन को जाओ और लक्ष्मण, सीता और राम को लौटा दिया जाए। ये सुंदर वचन सुनकर दोनों भाई हर्षित हो गए। उनके सारे अंग परमानंद से परिपूर्ण हो गए।

मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा। जनु जिय राउ रामु भए राजा॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी॥

उनके मन प्रसन्न हो गए। शरीर में तेज सुशोभित हो गया। मानो राजा दशरथ जी उठे हों और राम राजा हो गए हों! अन्य लोगों को तो इसमें लाभ अधिक और हानि कम प्रतीत हुई। परंतु रानियों को दुःख-सुख समान ही थे (राम-लक्ष्मण वन में रहें या भरत-शत्रुघ्न, दो पुत्रों का वियोग तो रहेगा ही), यह समझकर वे सब रोने लगीं।

कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे। फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे॥
कानन करउँ जनम भरि बासू। एहि तें अधिक न मोर सुपासू॥

भरत कहने लगे - मुनि ने जो कहा, वह करने से जगतभर के जीवों को उनकी इच्छित वस्तु देने का फल होगा। (चौदह वर्ष की कोई अवधि नहीं,) मैं जन्मभर वन में वास करूँगा। मेरे लिए इससे बढ़कर और कोई सुख नहीं है।

दो० - अंतरजामी रामु सिय तुम्ह सरबग्य सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज कीजिअ बचनु प्रवान॥ 256॥

राम और सीता हृदय की जाननेवाले हैं और आप सर्वज्ञ तथा सुजान हैं। यदि आप यह सत्य कह रहे हैं तो हे नाथ! अपने वचनों को प्रमाण कीजिए (उनके अनुसार व्यवस्था कीजिए)॥ 256॥

भरत बचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भए बिदेहू॥
भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी॥

भरत के वचन सुनकर और उनका प्रेम देखकर सारी सभा सहित मुनि वशिष्ठ विदेह हो गए (किसी को अपने देह की सुधि न रही)। भरत की महान महिमा समुद्र है, मुनि की बुद्धि उसके तट पर अबला स्त्री के समान खड़ी है।

गा चह पार जतनु हियँ हेरा। पावति नाव न बोहितु बेरा॥
औरु करिहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि कि सिंधु समाई॥

वह (उस समुद्र के) पार जाना चाहती है, इसके लिए उसने हृदय में उपाय भी ढूँढ़े! पर (उसे पार करने का साधन) नाव, जहाज या बेड़ा कुछ भी नहीं पाती। भरत की बड़ाई और

कौन करेगा? तलैया की सीपी में भी कहीं समुद्र समा सकता है?

भरतु मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु॥

मुनि वशिष्ठ की अंतरात्मा को भरत बहुत अच्छे लगे और वे समाज सहित राम के पास आए। प्रभु राम ने प्रणाम कर उत्तम आसन दिया। सब लोग मुनि की आज्ञा सुनकर बैठ गए।

बोले मुनिबरु बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहु राम सरबग्य सुजाना। धरम नीति गुन ग्यान निधाना॥

श्रेष्ठ मुनि देश, काल और अवसर के अनुसार विचार करके वचन बोले - हे सर्वज्ञ! हे सुजान! हे धर्म, नीति, गुण और ज्ञान के भंडार राम! सुनिए -

दो० - सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ॥ 257॥

आप सबके हृदय के भीतर बसते हैं और सबके भले-बुरे भाव को जानते हैं। जिसमें पुरवासियों का, माताओं का और भरत का हित हो, वही उपाय बतलाइए॥ 257॥

आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ॥ नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥

आर्त (दुःखी) लोग कभी विचारकर नहीं कहते। जुआरी को अपना ही दाँव सूझता है। मुनि के वचन सुनकर रघुनाथ कहने लगे - हे नाथ! उपाय तो आप ही के हाथ है।

सब कर हित रुख राउरि राखें। आयसु किएँ मुदित फुर भाषें॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई। माथें मानि करौं सिख सोई॥

आपका रुख रखने में और आपकी आज्ञा को सत्य कहकर प्रसन्नता पूर्वक पालन करने में ही सबका हित है। पहले तो मुझे जो आज्ञा हो, मैं उसी शिक्षा को माथे पर चढ़ाकर करूँ।

पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भाँति घटिहि सेवकाईं॥

कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा। भरत सनेहँ बिचारु न राखा॥

फिर हे गोसाईं! आप जिसको जैसा कहेंगे वह सब तरह से सेवा में लग जाएगा (आज्ञा पालन करेगा)। मुनि वशिष्ठ कहने लगे - हे राम! तुमने सच कहा। पर भरत के प्रेम ने विचार को नहीं रहने दिया।

तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी। भरत भगति बस भइ मति मोरी॥
मोरें जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी॥

इसीलिए मैं बार-बार कहता हूँ, मेरी बुद्धि भरत की भक्ति के वश हो गई है। मेरी समझ में तो भरत की रुचि रखकर जो कुछ किया जाएगा, शिव साक्षी हैं, वह सब शुभ ही होगा।

दो० - भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि॥ 258॥

पहले भरत की विनती आदरपूर्वक सुन लीजिए, फिर उस पर विचार कीजिए। तब साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेदों का निचोड़ (सार) निकालकर वैसा ही (उसी के अनुसार) कीजिए॥ 258॥

गुर अनुरागु भरत पर देखी। राम हृदयँ आनंदु बिसेषी॥
भरतहि धरम धुरंधर जानी। निज सेवक तन मानस बानी॥

भरत पर गुरु का स्नेह देखकर राम के हृदय में विशेष आनंद हुआ। भरत को धर्मधुरंधर और तन, मन, वचन से अपना सेवक जानकर -

बोले गुरु आयस अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगल मूला॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुअन भरत सम भाई॥

राम गुरु की आज्ञा अनुकूल मनोहर, कोमल और कल्याण के मूल वचन बोले - हे नाथ! आपकी सौगंध और पिता के चरणों की दुहाई है (मैं सत्य कहता हूँ कि) विश्वभर में भरत के समान कोई भाई हुआ ही नहीं।

जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी॥
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू॥

जो लोग गुरु के चरणकमलों के अनुरागी हैं, वे लोक में (लौकिक दृष्टि से) भी और वेद में (परमार्थिक दृष्टि से) भी बड़भागी होते हैं! (फिर) जिस पर आप (गुरु) का ऐसा स्नेह है, उस भरत के भाग्य को कौन कह सकता है?

लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई॥
भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥

छोटा भाई जानकर भरत के मुँह पर उसकी बड़ाई करने में मेरी बुद्धि सकुचाती है। (फिर भी मैं तो यही कहूँगा कि) भरत जो कुछ कहें, वही करने में भलाई है। ऐसा कहकर राम चुप हो रहे।

दो॰ - तब मुनि बोले भरत सन सब सँकोचु तजि तात।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कै बात॥ 259॥

तब मुनि भरत से बोले - हे तात! सब संकोच त्यागकर कृपा के समुद्र अपने प्यारे भाई से अपने हृदय की बात कहो॥ 259॥

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई॥
लखि अपनें सिर सबु छरु भारू। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू॥

मुनि के वचन सुनकर और राम का रुख पाकर गुरु तथा स्वामी को भरपेट अपने अनुकूल जानकर सारा बोझ अपने ही ऊपर समझकर भरत कुछ कह नहीं सकते। वे विचार करने लगे।

पुलकि सरीर सभाँ भए ठाढ़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि तें अधिक कहौं मैं काहा॥

शरीर से पुलकित होकर वे सभा में खड़े हो गए। कमल के समान नेत्रों में प्रेमाश्रुओं की बाढ़ आ गई। (वे बोले -) मेरा कहना तो मुनिनाथ ने ही निबाह दिया (जो कुछ मैं कह सकता था वह उन्होंने ही कह दिया)। इससे अधिक मैं क्या कहूँ?

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥

अपने स्वामी का स्वभाव मैं जानता हूँ। वे अपराधी पर भी कभी क्रोध नहीं करते। मुझ

पर तो उनकी विशेष कृपा और स्नेह है। मैंने खेल में भी कभी उनकी रिस (अप्रसन्नता) नहीं देखी।

सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहूँ खेल जितावहिं मोही॥

बचपन में ही मैंने उनका साथ नहीं छोड़ा और उन्होंने भी मेरे मन को कभी नहीं तोड़ा (मेरे मन के प्रतिकूल कोई काम नहीं किया)। मैंने प्रभु की कृपा की रीति को हृदय में भली-भाँति देखा है (अनुभव किया है)। मेरे हारने पर भी खेल में प्रभु मुझे जिता देते रहे हैं।

दो॰ - महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि प्रेम पिआसे नैन॥ 260॥

मैंने भी प्रेम और संकोचवश कभी सामने मुँह नहीं खोला। प्रेम के प्यासे मेरे नेत्र आज तक प्रभु के दर्शन से तृप्त नहीं हुए॥ 260॥

बिधि न सकेऊ सहि मोर दुलारा। नीच बीचु जननी मिस पारा॥
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनीं समुझि साधु सुचि को भा॥

परंतु विधाता मेरा दुलार न सह सका। उसने नीच माता के बहाने (मेरे और स्वामी के बीच) अंतर डाल दिया। यह भी कहना आज मुझे शोभा नहीं देता। क्योंकि अपनी समझ से कौन साधु और पवित्र हुआ है? (जिसको दूसरे साधु और पवित्र मानें, वही साधु है।)

मातु मंदि मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥
फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक काली॥

माता नीच है और मैं सदाचारी और साधु हूँ, ऐसा हृदय में लाना ही करोड़ों दुराचारों के समान है। क्या कोदों की बाली उत्तम धान फल सकती है? क्या काली घोंघी मोती उत्पन्न कर सकती है?

सपनेहूँ दोसक लेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू॥
बिनु समुझें निज अघ परिपाकू। जारिउँ जायँ जननि कहि काकू॥

स्वप्न में भी किसी को दोष का लेश भी नहीं है। मेरा अभाग्य ही अथाह समुद्र है। मैंने

अपने पापों का परिणाम समझे बिना ही माता को कटु वचन कहकर व्यर्थ ही जलाया।

हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहिं भल मोरा॥
गुर गोसाइँ साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू॥

मैं अपने हृदय में सब ओर खोज कर हार गया (मेरी भलाई का कोई साधन नहीं सूझता)। एक ही प्रकार भले ही (निश्चय ही) मेरा भला है। वह यह है कि गुरु महाराज सर्वसमर्थ हैं और सीताराम मेरे स्वामी हैं। इसी से परिणाम मुझे अच्छा जान पड़ता है।

दो० - साधु सभाँ गुर प्रभु निकट कहउँ सुथल सतिभाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ॥ 261॥

साधुओं की सभा में गुरु और स्वामी के समीप इस पवित्र तीर्थ स्थान में मैं सत्य भाव से कहता हूँ। यह प्रेम है या प्रपंच (छल-कपट)? झूठ है या सच? इसे (सर्वज्ञ) मुनि वशिष्ठ और (अंतर्यामी) रघुनाथ जानते हैं॥ 261॥

भूपति मरन प्रेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी॥
देखि न जाहिं बिकल महतारीं। जरहिं दुसह जर पुर नर नारीं॥

प्रेम के प्रण को निबाहकर महाराज (पिता) का मरना और माता की कुबुद्धि, दोनों का सारा संसार साक्षी है। माताएँ व्याकुल हैं, वे देखी नहीं जातीं। अवधपुरी के नर-नारी दुःसह ताप से जल रहे हैं।

महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन सिय साथा॥
बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। संकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू॥

मैं ही इन सारे अनर्थों का मूल हूँ, यह सुन और समझकर मैंने सब दुःख सहा है। रघुनाथ लक्ष्मण और सीता के साथ मुनियों का-सा वेष धारणकर बिना जूते पहने पाँव-प्यादे (पैदल) ही वन को चले गए, यह सुनकर, शंकर साक्षी हैं, इस घाव से भी मैं जीता रह गया (यह सुनते ही मेरे प्राण नहीं निकल गए)! फिर निषादराज का प्रेम देखकर भी इस वज्र से भी कठोर हृदय में छेद नहीं हुआ (यह फटा नहीं)।

अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई॥
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी॥

अब यहाँ आकर सब आँखों देख लिया। यह जड़ जीव जीता रह कर सभी सहावेगा। जिनको देखकर रास्ते की साँपिनी और बीछी भी अपने भयानक विष और तीव्र क्रोध को त्याग देती हैं -

दो० - तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैउ सहावइ काहि॥ 262॥

वे ही रघुनंदन, लक्ष्मण और सीता जिसको शत्रु जान पड़े, उस कैकेयी के पुत्र मुझको छोड़कर दैव दुःसह दुःख और किसे सहावेगा॥ 262॥

सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी॥
सोक मगन सब सभाँ खभारू। मनहुँ कमल बन परेउ तुसारू॥

अत्यंत व्याकुल तथा दुःख, प्रेम, विनय और नीति में सनी हुई भरत की श्रेष्ठ वाणी सुनकर सब लोग शोक में मग्न हो गए, सारी सभा में विषाद छा गया। मानो कमल के वन पर पाला पड़ गया हो।

कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी॥
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन चंदू॥

तब ज्ञानी मुनि वशिष्ठ ने अनेक प्रकार की पुरानी कथाएँ कहकर भरत का समाधान किया। फिर सूर्यकुलरूपी कुमुदवन के प्रफुल्लित करनेवाले चंद्रमा रघुनंदन उचित वचन बोले -

तात जायँ जियँ करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी॥
तीनि काल तिभुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें॥

हे तात! तुम अपने हृदय में व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। जीव की गति को ईश्वर के अधीन जानो। मेरे मत में (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों कालों और (स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल) तीनों लोकों के सब पुण्यात्मा पुरुष तुम से नीचे हैं।

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई॥

दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई॥

हृदय में भी तुम पर कुटिलता का आरोप करने से यह लोक (यहाँ के सुख, यश आदि) बिगड़ जाता है और परलोक भी नष्ट हो जाता है (मरने के बाद भी अच्छी गति नहीं मिलती)। माता कैकेयी को तो वे ही मूर्ख दोष देते हैं, जिन्होंने गुरु और साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया है।

दो० - मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार॥ 263॥

हे भरत! तुम्हारा नाम-स्मरण करते ही सब पाप, प्रपंच (अज्ञान) और समस्त अमंगलों के समूह मिट जाएँगे तथा इस लोक में सुंदर यश और परलोक में सुख प्राप्त होगा॥ 263॥

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ। बैर प्रेम नहिं दुरइ दुराएँ॥

हे भरत! मैं स्वभाव से ही सत्य कहता हूँ, शिव साक्षी हैं, यह पृथ्वी तुम्हारी ही रखी रह रही है। हे तात! तुम व्यर्थ कुतर्क न करो। वैर और प्रेम छिपाए नहीं छिपते।

मुनिगन निकट बिहग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना। मानुष तनु गुन ग्यान निधाना॥

पक्षी और पशु मुनियों के पास (बेधड़क) चले जाते हैं, पर हिंसा करनेवाले बधिकों को देखते ही भाग जाते हैं। मित्र और शत्रु को पशु-पक्षी भी पहचानते हैं। फिर मनुष्य शरीर तो गुण और ज्ञान का भंडार ही है।

तात तुम्हहि मैं जानउँ नीकें। करौं काह असमंजस जीकें॥
राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ प्रेम पन लागी॥

हे तात! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। क्या करूँ? जी में बड़ा असमंजस (दुविधा) है। राजा ने मुझे त्याग कर सत्य को रखा और प्रेम-प्रण के लिए शरीर छोड़ दिया।

तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥

उनके वचन को मेटते मन में सोच होता है। उससे भी बढ़कर तुम्हारा संकोच है। उस पर भी गुरु ने मुझे आज्ञा दी है। इसलिए अब तुम जो कुछ कहो, अवश्य ही मैं वही करना चाहता हूँ।

दो० - मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।
सत्यसंध रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु॥ 264॥

तुम मन को प्रसन्न कर और संकोच को त्याग कर जो कुछ कहो, मैं आज वही करूँ। सत्य प्रतिज्ञ रघुकुल श्रेष्ठ राम का यह वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया॥ 264॥

सुर गन सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू॥
बनत उपाउ करत कछु नाहीं। राम सरन सब गे मन माहीं॥

देवगणों सहित देवराज इंद्र भयभीत होकर सोचने लगे कि अब बना-बनाया काम बिगड़ना ही चाहता है। कुछ उपाय करते नहीं बनता। तब वे सब मन-ही-मन राम की शरण गए।

बहुरि बिचारि परस्पर कहहीं। रघुपति भगत भगति बस अहहीं॥
सुधि करि अंबरीष दुरबासा। भे सुर सुरपति निपट निरासा॥

फिर वे विचार करके आपस में कहने लगे कि रघुनाथ तो भक्त की भक्ति के वश हैं। अंबरीष और दुर्वासा की (घटना) याद करके तो देवता और इंद्र बिल्कुल ही निराश हो गए।

सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि किए प्रगट प्रहलादा॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा। अब सुर काज भरत के हाथा॥

पहले देवताओं ने बहुत समय तक दुःख सहे। तब भक्त प्रह्लाद ने ही नृसिंह भगवान को प्रकट किया था। सब देवता परस्पर कानों से लग-लगकर और सिर धुनकर कहते हैं कि अब (इस बार) देवताओं का काम भरत के हाथ है।

आन उपाउ न देखिअ देवा। मानत रामु सुसेवक सेवा॥
हियँ सप्रेम सुमिरहु सब भरतहि। निज गुन सील राम बस करतहि॥

हे देवताओ! और कोई उपाय नहीं दिखाई देता। राम अपने श्रेष्ठ सेवकों की सेवा को मानते हैं (अर्थात उनके भक्त की कोई सेवा करता है, तो उस पर बहुत प्रसन्न होते हैं)।

अतएव अपने गुण और शील से राम को वश में करनेवाले भरत का ही सब लोग अपने-अपने हृदय में प्रेम सहित स्मरण करो।

दो॰ - सुनि सुर मत सुरगुर कहेउ भल तुम्हार बड़ भागु।
सकल सुमंगल मूल जग भरत चरन अनुरागु॥ 265॥

देवताओं का मत सुनकर देवगुरु बृहस्पति ने कहा - अच्छा विचार किया, तुम्हारे बड़े भाग्य हैं। भरत के चरणों का प्रेम जगत में समस्त शुभ मंगलों का मूल है॥ 265॥

सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई॥
भरत भगति तुम्हरें मन आई। तजहु सोचु बिधि बात बनाई॥

सीतानाथ राम के सेवक की सेवा सैकड़ों कामधेनुओं के समान सुंदर है। तुम्हारे मन में भरत की भक्ति आई है, तो अब सोच छोड़ दो। विधाता ने बात बना दी।

देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सजह सुभायँ बिबस रघुराऊ॥
मन थिर करहु देव डरु नाहीं। भरतहि जानि राम परिछाहीं॥

हे देवराज! भरत का प्रभाव तो देखो। रघुनाथ सहज स्वभाव से ही उनके पूर्णरूप से वश में हैं। हे देवताओं ! भरत को राम की परछाईं (परछाईं की भाँति उनका अनुसरण करनेवाला) जानकर मन स्थिर करो, डर की बात नहीं है।

सुनि सुरगुर सुर संमत सोचू। अंतरजामी प्रभुहि सकोचू॥
निज सिर भारु भरत जियँ जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना॥

देवगुरु बृहस्पति और देवताओं की सम्मति (आपस का विचार) और उनका सोच सुनकर अंतर्यामी प्रभु राम को संकोच हुआ। भरत ने अपने मन में सब बोझा अपने ही सिर जाना और वे हृदय में करोड़ों (अनेकों) प्रकार के अनुमान (विचार) करने लगे।

करि बिचारु मन दीन्ही ठीका। राम रजायस आपन नीका॥
निज पन तजि राखेउ पनु मोरा। छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा॥

सब तरह से विचार करके अंत में उन्होंने मन में यही निश्चय किया कि राम की आज्ञा में ही अपना कल्याण है। उन्होंने अपना प्रण छोड़कर मेरा प्रण रखा। यह कुछ कम कृपा

और स्नेह नहीं किया (अर्थात अत्यंत ही अनुग्रह और स्नेह किया)।

दो० - कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज जुग हाथ॥ 266॥

जानकीनाथ ने सब प्रकार से मुझ पर अत्यंत अपार अनुग्रह किया। तदनंतर भरत दोनों करकमलों को जोड़कर प्रणाम करके बोले - ॥ 266॥

कहौं कहावौं का अब स्वामी। कृपा अंबुनिधि अंतरजामी॥
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कलपित सूला॥

हे स्वामी! हे कृपा के समुद्र! हे अंतर्यामी! अब मैं (अधिक) क्या कहूँ और क्या कहाऊँ? गुरु महाराज को प्रसन्न और स्वामी को अनुकूल जानकर मेरे मलिन मन की कल्पित पीड़ा मिट गई।

अपडर डरेउँ न सोच समूलें। रबिहि न दोसु देव दिसि भूलें॥
मोर अभागु मातु कुटिलाई। बिधि गति बिषम काल कठिनाई॥

मैं मिथ्या डर से ही डर गया था। मेरे सोच की जड़ ही न थी। दिशा भूल जाने पर हे देव! सूर्य का दोष नहीं है। मेरा दुर्भाग्य, माता की कुटिलता, विधाता की टेढ़ी चाल और काल की कठिनता,

पाउ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला॥
यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहुँ बेद बिदित नहिं गोई॥

इन सबने मिलकर पैर रोपकर (प्रण करके) मुझे नष्ट कर दिया था। परंतु शरणागत के रक्षक आपने अपना (शरणागत की रक्षा का) प्रण निबाहा (मुझे बचा लिया)। यह आपकी कोई नई रीति नहीं है। यह लोक और वेदों में प्रकट है, छिपी नहीं है।

जगु अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाईं॥
देउ देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ॥

सारा जगत बुरा (करनेवाला) हो; किंतु हे स्वामी! केवल एक आप ही भले (अनुकूल) हों, तो फिर कहिए, किसकी भलाई से भला हो सकता है? हे देव! आपका स्वभाव कल्पवृक्ष के

समान है; वह न कभी किसी के सम्मुख (अनुकूल) है, न विमुख (प्रतिकूल)।

दो॰ - जाइ निकट पहिचानि तरु छाहँ समनि सब सोच।
मागत अभिमत पाव जग राउ रंकु भल पोच॥ 267॥

उस वृक्ष (कल्पवृक्ष) को पहचानकर जो उसके पास जाए, तो उसकी छाया ही सारी चिंताओं का नाश करनेवाली है। राजा-रंक, भले-बुरे, जगत में सभी उससे माँगते ही मनचाही वस्तु पाते हैं॥ 267॥

लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभु नहिं मन संदेहू॥
अब करुनाकर कीजिअ सोई। जन हित प्रभु चित छोभु न होई॥

गुरु और स्वामी का सब प्रकार से स्नेह देखकर मेरा क्षोभ मिट गया, मन में कुछ भी संदेह नहीं रहा। हे दया की खान! अब वही कीजिए जिससे दास के लिए प्रभु के चित्त में क्षोभ (किसी प्रकार का विचार) न हो।

जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई॥

जो सेवक स्वामी को संकोच में डालकर अपना भला चाहता है, उसकी बुद्धि नीच है। सेवक का हित तो इसी में है कि वह समस्त सुखों और लोभों को छोड़कर स्वामी की सेवा ही करे।

स्वारथु नाथ फिरें सबही का। किएँ रजाइ कोटि बिधि नीका॥
यह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू॥

हे नाथ! आपके लौटने में सभी का स्वार्थ है, और आपकी आज्ञा पालन करने में करोड़ों प्रकार से कल्याण है। यही स्वार्थ और परमार्थ का सार (निचोड़) है, समस्त पुण्यों का फल और संपूर्ण शुभ गतियों का श्रृंगार है।

देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना॥

हे देव! आप मेरी एक विनती सुनकर, फिर जैसा उचित हो वैसा ही कीजिए। राजतिलक की सब सामग्री सजाकर लाई गई है, जो प्रभु का मन माने तो उसे सफल कीजिए (उसका

उपयोग कीजिए)।

दो॰ - सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ॥ 268॥

छोटे भाई शत्रुघ्न समेत मुझे वन में भेज दीजिए और (अयोध्या लौटकर) सबको सनाथ कीजिए। नहीं तो किसी तरह भी (यदि आप अयोध्या जाने को तैयार न हों) हे नाथ! लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों भाइयों को लौटा दीजिए और मैं आपके साथ चलूँ॥ 268॥

नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई॥

अथवा हम तीनों भाई वन चले जाएँ और हे रघुनाथ! आप सीता सहित (अयोध्या को) लौट जाइए। हे दयासागर! जिस प्रकार से प्रभु का मन प्रसन्न हो, वही कीजिए।

देवँ दीन्ह सबु मोहि अभारू। मोरें नीति न धरम बिचारू॥
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत कें चित चेतू॥

हे देव! आपने सारा भार (जिम्मेवारी) मुझ पर रख दिया। पर मुझमें न तो नीति का विचार है, न धर्म का। मैं तो अपने स्वार्थ के लिए सब बातें कह रहा हूँ। आर्त (दुःखी) मनुष्य के चित्त में चेत (विवेक) नहीं रहता।

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई॥
अस मैं अवगुन उदधि अगाधू। स्वामि सनेहँ सराहत साधू॥

स्वामी की आज्ञा सुनकर जो उत्तर दे, ऐसे सेवक को देखकर लज्जा भी लजा जाती है। मैं अवगुणों का ऐसा अथाह समुद्र हूँ (कि प्रभु को उत्तर दे रहा हूँ)। किंतु स्वामी (आप) स्नेह वश साधु कहकर मुझे सराहते हैं!

अब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइँ न पावा॥
प्रभु पद सपथ कहउँ सति भाऊ। जग मंगल हित एक उपाऊ॥

हे कृपालु! अब तो वही मत मुझे भाता है, जिससे स्वामी का मन संकोच न पावे। प्रभु के चरणों की शपथ है, मैं सत्यभाव से कहता हूँ, जगत के कल्याण के लिए एक यही उपाय

है।

दो० - प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देब।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब॥ 269॥

प्रसन्न मन से संकोच त्यागकर प्रभु जिसे जो आज्ञा देंगे, उसे सब लोग सिर चढ़ा-चढ़ाकर (पालन) करेंगे और सब उपद्रव और उलझनें मिट जाएँगी॥ 269॥

भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
असमंजस बस अवध नेवासी। प्रमुदित मन तापस बनबासी॥

भरत के पवित्र वचन सुनकर देवता हर्षित हुए और 'साधु-साधु' कहकर सराहना करते हुए देवताओं ने फूल बरसाए। अयोध्या निवासी असमंजस के वश हो गए (कि देखें अब राम क्या कहते हैं) तपस्वी तथा वनवासी लोग (राम के वन में बने रहने की आशा से) मन में परम आनंदित हुए।

चुपहिं रहे रघुनाथ सँकोची। प्रभु गति देखि सभा सब सोची॥

जनक दूत तेहि अवसर आए। मुनि बसिष्ठँ सुनि बेगि बोलाए॥

किंतु संकोची रघुनाथ चुप ही रह गए। प्रभु की यह स्थिति (मौन) देख सारी सभा सोच में पड़ गई। उसी समय जनक के दूत आए, यह सुनकर मुनि वशिष्ठ ने उन्हें तुरंत बुलवा लिया।

करि प्रनाम तिन्ह रामु निहारे। बेषु देखि भए निपट दुखारे॥
दूतन्ह मुनिबर बूझी बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता॥

उन्होंने (आकर) प्रणाम करके राम को देखा। उनका (मुनियों का-सा) वेष देखकर वे बहुत ही दुःखी हुए। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ ने दूतों से बात पूछी कि राजा जनक का कुशल समाचार कहो।

सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चरबर जोरें हाथा॥
बूझब राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भयउ गोसाईं॥

यह (मुनि का कुशल प्रश्न) सुनकर सकुचाकर पृथ्वी पर मस्तक नवाकर वे श्रेष्ठ दूत हाथ

जोड़कर बोले - हे स्वामी! आपका आदर के साथ पूछना, यही हे गोसाईं! कुशल का कारण हो गया।

दो॰ - नाहिं त कोसलनाथ कें साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला अवध बिसेष तें जगु सब भयउ अनाथ॥ 270॥

नहीं तो हे नाथ! कुशल-क्षेम तो सब कोसलनाथ दशरथ के साथ ही चली गई। (उनके चले जाने से) यों तो सारा जगत ही अनाथ (स्वामी के बिना असहाय) हो गया, किंतु मिथिला और अवध तो विशेष रूप से अनाथ हो गये॥ 270॥

कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोक सोकबस बौरा॥
जेहिं देखे तेहि समय बिदेहू। नामु सत्य अस लाग न केहू॥

अयोध्यानाथ की गति (दशरथ का मरण) सुनकर जनकपुरवासीसभी लोग शोकवश बावले हो गए (सुध-बुध भूल गए)। उस समय जिन्होंने विदेह को (शोकमग्न) देखा, उनमें से किसी को ऐसा न लगा कि उनका विदेह (देहाभिमानरहित) नाम सत्य है! (क्योंकि देहाभिमान से शून्य पुरुष को शोक कैसा?)

रानि कुचालि सुनत नरपालहि। सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहि॥
भरत राज रघुबर बनबासू। भा मिथिलेसहि हृदयँ हराँसू॥

रानी की कुचाल सुनकर राजा जनक को कुछ सूझ न पड़ा, जैसे मणि के बिना साँप को नहीं सूझता। फिर भरत को राज्य और राम को वनवास सुनकर मिथिलेश्वर जनक के हृदय में बड़ा दुःख हुआ।

नृप बूझे बुध सचिव समाजू। कहहु बिचारि उचित का आजू॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ। चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ॥

राजा ने विद्वानों और मंत्रियों के समाज से पूछा कि विचारकर कहिए, आज (इस समय) क्या करना उचित है? अयोध्या की दशा समझकर और दोनों प्रकार से असमंजस जानकर 'चलिए या रहिए?' किसी ने कुछ नहीं कहा।

नृपहिं धीर धरि हृदयँ बिचारी। पठए अवध चतुर चर चारी॥
बूझि भरत सति भाउ कुभाऊ। आएहु बेगि न होइ लखाऊ॥

(जब किसी ने कोई सम्मति नहीं दी) तब राजा ने धीरज धर हृदय में विचारकर चार चतुर गुप्तचर (जासूस) अयोध्या को भेजे (और उनसे कह दिया कि) तुम लोग (राम के प्रति) भरत के सद्भाव (अच्छे भाव, प्रेम) या दुर्भाव (बुरा भाव, विरोध) का (यथार्थ) पता लगाकर जल्दी लौट आना, किसी को तुम्हारा पता न लगने पाए।

दो० - गए अवध चर भरत गति बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूटहि भरतु चार चले तेरहूति॥ 271॥

गुप्तचर अवध को गए और भरत का ढंग जानकर और उनकी करनी देखकर, जैसे ही भरत चित्रकूट को चले, वे तिरहुत (मिथिला) को चल दिए॥ 271॥

दूतन्ह आइ भरत कइ करनी। जनक समाज जथामति बरनी॥
सुनि गुर परिजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेहँ बिकल अति॥

(गुप्त) दूतों ने आकर राजा जनक की सभा में भरत की करनी का अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन किया। उसे सुनकर गुरु, कुटुंबी, मंत्री और राजा सभी सोच और स्नेह से अत्यंत व्याकुल हो गए।

धरि धीरजु करि भरत बड़ाई। लिए सुभट साहनी बोलाई॥
घर पुर देस राखि रखवारे। हय गय रथ बहु जान सँवारे॥

फिर जनक ने धीरज धरकर और भरत की बड़ाई करके अच्छे योद्धाओं और साहनियों को बुलाया। घर, नगर और देश में रक्षकों को रखकर, घोड़े, हाथी, रथ आदि बहुत-सी सवारियाँ सजवाईं।

दुघरी साधि चले ततकाला। किए बिश्रामु न मग महिपाला॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सबु लागा॥

वे दुघड़िया मुहूर्त साधकर उसी समय चल पड़े। राजा ने रास्ते में कहीं विश्राम भी नहीं किया। आज ही सबेरे प्रयागराज में स्नान करके चले हैं। जब सब लोग यमुना उतरने लगे,

खबरि लेन हम पठए नाथा। तिन्ह कहि अस महि नायउ माथा॥
साथ किरात छ सातक दीन्हे। मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हे॥

तब हे नाथ! हमें खबर लेने को भेजा। उन्होंने (दूतों ने) ऐसा कहकर पृथ्वी पर सिर नवाया। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ ने कोई छः-सात भीलों को साथ देकर दूतों को तुरंत विदा कर दिया।

दो० - सुनत जनक आगवनु सबु हरषेउ अवध समाजु।
रघुनंदनहि सकोचु बड़ सोच बिबस सुरराजु॥ 272॥

जनक का आगमन सुनकर अयोध्या का सारा समाज हर्षित हो गया। राम को बड़ा संकोच हुआ और देवराज इंद्र तो विशेष रूप से सोच के वश में हो गए॥ 272॥

गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहै केहि दूषनु देई॥
अस मन आनि मुदित नर नारी। भयउ बहोरि रहब दिन चारी॥

कुटिल कैकेयी मन-ही-मन ग्लानि (पश्चात्ताप) से गली जाती है। किससे कहे और किसको दोष दे? और सब नर-नारी मन में ऐसा विचार कर प्रसन्न हो रहे हैं कि (अच्छा हुआ, जनक के आने से) चार (कुछ) दिन और रहना हो गया।

एहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लाग सबु कोऊ॥
करि मज्जनु पूजहिं नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी॥

इस तरह वह दिन भी बीत गया। दूसरे दिन प्रातःकाल सब कोई स्नान करने लगे। स्नान करके सब नर-नारी गणेश, गौरी, महादेव और सूर्य भगवान की पूजा करते हैं।

रमा रमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी॥
राजा रामु जानकी रानी। आनँद अवधि अवध रजधानी॥

फिर लक्ष्मीपति भगवान विष्णु के चरणों की वंदना करके, दोनों हाथ जोड़कर, आँचल पसारकर विनती करते हैं कि राम राजा हों, जानकी रानी हों तथा राजधानी अयोध्या आनंद की सीमा होकर -

सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहि रामु करहुँ जुबराजा॥
एहि सुख सुधाँ सींचि सब काहू। देव देहु जग जीवन लाहू॥

फिर समाज सहित सुखपूर्वक बसे और राम भरत को युवराज बनाएँ। हे देव! इस सुखरूपी

अमृत से सींचकर सब किसी को जगत में जीने का लाभ दीजिए।

दो० - गुर समाज भाइन्ह सहित राम राजु पुर होउ।
अछत राम राजा अवध मरिअ माग सबु कोउ॥ 273॥

गुरु, समाज और भाइयों समेत राम का राज्य अवधपुरी में हो और राम के राजा रहते ही हम लोग अयोध्या में मरें। सब कोई यही माँगते हैं॥ 273॥

सुनि सनेहमय पुरजन बानी। निंदहिं जोग बिरति मुनि ग्यानी॥
एहि बिधि नित्यकरम करि पुरजन। रामहि करहिं प्रनाम पुलकि तन॥

अयोध्यावासियों की प्रेममयी वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि भी अपने योग और वैराग्य की निंदा करते हैं। अवधवासी इस प्रकार नित्यकर्म करके राम को पुलकित शरीर हो प्रणाम करते हैं।

ऊँच नीच मध्यम नर नारी। लहहिं दरसु निज निज अनुहारी॥
सावधान सबही सनमानहिं। सकल सराहत कृपानिधानहिं॥

ऊँच, नीच और मध्यम सभी श्रेणियों के स्त्री-पुरुष अपने-अपने भाव के अनुसार राम का दर्शन प्राप्त करते हैं। राम सावधानी के साथ सबका सम्मान करते हैं और सभी कृपानिधान राम की सराहना करते हैं।

लरिकाइहि तें रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी॥
सील सकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ॥

राम की लड़कपन से ही यह बान है कि वे प्रेम को पहचानकर नीति का पालन करते हैं। रघुनाथ शील और संकोच के समुद्र हैं। वे सुंदर मुख के (या सबके अनुकूल रहनेवाले), सुंदर नेत्रवाले (या सबको कृपा और प्रेम की दृष्टि से देखनेवाले) और सरल स्वभाव हैं।

कहत राम गुन गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे॥
हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिन्हहि रामु जानत करि मोरे॥

राम के गुणसमूहों को कहते-कहते सब लोग प्रेम में भर गए और अपने भाग्य की सराहना करने लगे कि जगत में हमारे समान पुण्य की बड़ी पूँजीवाले थोड़े ही हैं; जिन्हें

राम अपना करके जानते हैं (ये मेरे हैं ऐसा जानते हैं)।

दो० - प्रेम मगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा संभ्रम उठेउ रबिकुल कमल दिनेसु॥ 274॥

उस समय सब लोग प्रेम में मग्न हैं। इतने में ही मिथिलापति जनक को आते हुए सुनकर सूर्यकुलरूपी कमल के सूर्य राम सभा सहित आदरपूर्वक जल्दी से उठ खड़े हुए॥ 274॥

भाइ सचिव गुर पुरजन साथा। आगें गवनु कीन्ह रघुनाथा॥
गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं॥

भाई, मंत्री, गुरु और पुरवासियों को साथ लेकर रघुनाथ आगे (जनक की अगवानी में) चले। जनक ने ज्यों ही पर्वत श्रेष्ठ कामदनाथ को देखा, त्यों ही प्रणाम करके उन्होंने रथ छोड़ दिया (पैदल चलना शुरू कर दिया।)

राम दरस लालसा उछाहू। पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू॥
मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही॥

राम के दर्शन की लालसा और उत्साह के कारण किसी को रास्ते की थकावट और क्लेश जरा भी नहीं है। मन तो वहाँ है जहाँ राम और जानकी हैं। बिना मन के शरीर के सुख-दुःख की सुध किसको हो?

आवत जनकु चले एहि भाँती। सहित समाज प्रेम मति माती॥
आए निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे॥

जनक इस प्रकार चले आ रहे हैं। समाज सहित उनकी बुद्धि प्रेम में मतवाली हो रही है। निकट आए देखकर सब प्रेम में भर गए और आदरपूर्वक आपस में मिलने लगे।

लगे जनक मुनिजन पद बंदन। रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनंदन॥
भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहि। चले लवाइ समेत समाजहि॥

जनक (वशिष्ठ आदि अयोध्यावासी) मुनियों के चरणों की वंदना करने लगे और राम ने (शतानंद आदि जनकपुरवासी) ऋषियों को प्रणाम किया। फिर भाइयों समेत राम राजा

जनक से मिलकर उन्हें समाज सहित अपने आश्रम को लिवा चले।

दो० - आश्रम सागर सांत रस पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुना सरित लिएँ जाहिं रघुनाथु॥ 275॥

राम का आश्रम शांत रसरूपी पवित्र जल से परिपूर्ण समुद्र है। जनक की सेना (समाज) मानो करुणा (करुण रस) की नदी है, जिसे रघुनाथ (उस आश्रमरूपी शांत रस के समुद्र में मिलाने के लिए) लिए जा रहे हैं॥ 275॥

बोरति ग्यान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे॥
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुबर कर भंगा॥

यह करुणा की नदी (इतनी बढ़ी हुई है कि) ज्ञान-वैराग्यरूपी किनारों को डुबाती जाती है। शोक भरे वचन नद और नाले हैं, जो इस नदी में मिलते हैं; और सोच की लंबी साँसें (आहें) ही वायु के झकोरों से उठनेवाली तरंगें हैं, जो धैर्यरूपी किनारे के उत्तम वृक्षों को तोड़ रही हैं।

बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भवँर अबर्त अपारा॥
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा॥

भयानक विषाद (शोक) ही उस नदी की तेज धारा है। भय और भ्रम (मोह) ही उसके असंख्य भँवर और चक्र हैं। विद्वान मल्लाह हैं, विद्या ही बड़ी नाव है, परंतु वे उसे खे नहीं सकते हैं, (उस विद्या का उपयोग नहीं कर सकते हैं), किसी को उसकी अटकल ही नहीं आती है।

बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हियँ हारे॥
आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई॥

वन में विचरनेवाले बेचारे कोल-किरात ही यात्री हैं, जो उस नदी को देखकर हृदय में हारकर थक गए हैं। यह करुणा-नदी जब आश्रम-समुद्र में जाकर मिली, तो मानो वह समुद्र अकुला उठा (खौल उठा)।

सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा॥
भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही॥

दोनों राज समाज शोक से व्याकुल हो गए। किसी को न ज्ञान रहा, न धीरज और न लाज ही रही। राजा दशरथ के रूप, गुण और शील की सराहना करते हुए सब रो रहे हैं और शोक समुद्र में डुबकी लगा रहे हैं।

छं० - अवगाहि सोक समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हों कहा॥
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की॥

शोक समुद्र में डुबकी लगाते हुए सभी स्त्री-पुरुष महान व्याकुल होकर सोच (चिंता) कर रहे हैं। वे सब विधाता को दोष देते हुए क्रोधयुक्त होकर कह रहे हैं कि प्रतिकूल विधाता ने यह क्या किया? तुलसीदास कहते हैं कि देवता, सिद्ध, तपस्वी, योगी और मुनिगणों में कोई भी समर्थ नहीं है जो उस समय विदेह (जनकराज) की दशा देखकर प्रेम की नदी को पार कर सके (प्रेम में मग्न हुए बिना रह सके)।

सो० - किए अमित उपदेस जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह।
धीरजु धरिअ नरेस कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन॥ 276॥

जहाँ-तहाँ श्रेष्ठ मुनियों ने लोगों को अपरिमित उपदेश दिए और वशिष्ठ ने विदेह (जनक) से कहा - हे राजन! आप धैर्य धारण कीजिए॥ 276॥

जासु ग्यान रबि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा॥
तेहि कि मोह ममता निअराई। यह सिय राम सनेह बड़ाई॥

जिन राजा जनक का ज्ञानरूपी सूर्य भव (आवागमन) रूपी रात्रि का नाश कर देता है और जिनकी वचनरूपी किरणें मुनिरूपी कमलों को खिला देती हैं, (आनंदित करती हैं), क्या मोह और ममता उनके निकट भी आ सकते हैं? यह तो सीताराम के प्रेम की महिमा है! (अर्थात राजा जनक की यह दशा सीताराम के अलौकिक प्रेम के कारण हुई, लौकिक मोह-ममता के कारण नहीं। जो लौकिक मोह-ममता को पार कर चुके हैं उन पर भी सीताराम का प्रेम अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रहता)।

बिषई साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने॥
राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभाँ बड़ आदर तासू॥

विषयी, साधक और ज्ञानवान सिद्ध पुरुष - जगत में तीन प्रकार के जीव वेदों ने बताए हैं। इन तीनों में जिसका चित्त राम के स्नेह से सरस (सराबोर) रहता है, साधुओं की सभा में उसी का बड़ा आदर होता है।

सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू॥
मुनि बहुबिधि बिदेहु समुझाए। राम घाट सब लोग नहाए॥

राम के प्रेम के बिना ज्ञान शोभा नहीं देता, जैसे कर्णधार के बिना जहाज। वशिष्ठ ने विदेहराज (जनक) को बहुत प्रकार से समझाया। तदनंतर सब लोगों ने राम के घाट पर स्नान किया।

सकल सोक संकुल नर नारी। सो बासरु बीतेउ बिनु बारी॥
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कौन बिचारू॥

स्त्री-पुरुष सब शोक से पूर्ण थे। वह दिन बिना ही जल के बीत गया (भोजन की बात तो दूर रही, किसी ने जल तक नहीं पिया)। पशु-पक्षी और हिरनों तक ने कुछ आहार नहीं किया। तब प्रियजनों एवं कुटुंबियों का तो विचार ही क्या किया जाए?

दो० - दोउ समाज निमिराजु रघुराजु नहाने प्रात।
बैठे सब बट बिटप तर मन मलीन कृस गात॥ 277॥

निमिराज जनक और रघुराज राम तथा दोनों ओर के समाज ने दूसरे दिन सबेरे स्नान किया और सब बड़ के वृक्ष के नीचे जा बैठे। सबके मन उदास और शरीर दुबले हैं॥ 277॥

जे महिसुर दसरथ पुर बासी। जे मिथिलापति नगर निवासी॥
हंस बंस गुर जनक पुरोधा। जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा॥

जो दशरथ की नगरी अयोध्या के रहनेवाले और जो मिथिलापति जनक के नगर जनकपुर के रहनेवाले ब्राह्मण थे, तथा सूर्यवंश के गुरु वशिष्ठ तथा जनक के पुरोहित शतानंद, जिन्होंने सांसारिक अभ्युदय का मार्ग तथा परमार्थ का मार्ग छान डाला था,

लगे कहन उपदेस अनेका। सहित धरम नय बिरति बिबेका॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानीं। समुझाई सब सभा सुबानीं॥

वे सब धर्म, नीति वैराग्य तथा विवेकयुक्त अनेकों उपदेश देने लगे। विश्वामित्र ने पुरानी कथाएँ (इतिहास) कह-कहकर सारी सभा को सुंदर वाणी से समझाया।

तब रघुनाथ कौसिकहि कहेऊ। नाथ कालि जल बिनु सुब रहेऊ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन पहर अढ़ाई॥

तब रघुनाथ ने विश्वामित्र से कहा कि हे नाथ! कल सब लोग बिना जल पिए ही रह गए थे। (अब कुछ आहार करना चाहिए)। विश्वामित्र ने कहा कि रघुनाथ उचित ही कह रहे हैं। ढाई पहर दिन (आज भी) बीत गया।

रिषि रुख लखि कह तेरहुतिराजू। इहाँ उचित नहिं असन अनाजू॥
कहा भूप भल सबहि सोहाना। पाइ रजायसु चले नहाना॥

विश्वामित्र का रुख देखकर तिरहुत राज जनक ने कहा - यहाँ अन्न खाना उचित नहीं है। राजा का सुंदर कथन सबके मन को अच्छा लगा। सब आज्ञा पाकर नहाने चले।

दो० - तेहि अवसर फल फूल दल मूल अनेक प्रकार।
लइ आए बनचर बिपुल भरि भरि काँवरि भार॥ 278॥

उसी समय अनेकों प्रकार के बहुत-से फल, फूल, पत्ते, मूल आदि बहँगियों और बोझों में भर-भरकर वनवासी (कोल-किरात) लोग ले आए॥ 278॥

कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा॥
सर सरिता बन भूमि बिभागा। जनु उमगत आनँद अनुरागा॥

राम की कृपा से सब पर्वत मनचाही वस्तु देनेवाले हो गए। वे देखने मात्र से ही दुःखों को सर्वथा हर लेते थे। वहाँ के तालाबों, नदियों, वन और पृथ्वी के सभी भागों में मानो आनंद और प्रेम उमड़ रहा है।

बेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला॥

तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू॥

बेलें और वृक्ष सभी फल और फूलों से युक्त हो गए। पक्षी, पशु और भौंरें अनुकूल बोलने लगे। उस अवसर पर वन में बहुत उत्साह (आनंद) था, सब किसी को सुख देनेवाली

शीतल, मंद, सुगंध हवा चल रही थी।

जाइ न बरनि मनोहरताई। जनु महि करति जनक पहुनाई॥
तब सब लोग नहाइ नहाई। राम जनक मुनि आयसु पाई॥
देखि देखि तरुबर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे॥
दल फल मूल कंद बिधि नाना। पावन सुंदर सुधा समाना॥

वन की मनोहरता वर्णन नहीं की जा सकती, मानो पृथ्वी जनक की पहुनाई कर रही है। तब जनकपुरवासी सब लोग नहा-नहाकर राम, जनक और मुनि की आज्ञा पाकर, सुंदर वृक्षों को देख-देखकर प्रेम में भरकर जहाँ-तहाँ उतरने लगे। पवित्र, सुंदर और अमृत के समान (स्वादिष्ट) अनेकों प्रकार के पत्ते, फल, मूल और कंद -

दो० - सादर सब कहँ रामगुर पठए भरि भरि भार।
पूजि पितर सुर अतिथि गुर लगे करन फरहार॥ 279॥

राम के गुरु वशिष्ठ ने सबके पास बोझे भर-भरकर आदरपूर्वक भेजे। तब वे पितर-देवता, अतिथि और गुरु की पूजा करके फलाहार करने लगे॥ 279॥

एहि बिधि बासर बीते चारी। रामु निरखि नर नारि सुखारी॥
दुहु समाज असि रुचि मन माहीं। बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं॥

इस प्रकार चार दिन बीत गए। राम को देखकर सभी नर-नारी सुखी हैं। दोनों समाजों के मन में ऐसी इच्छा है कि सीताराम के बिना लौटना अच्छा नहीं है।

सीता राम संग बनबासू। कोटि अमरपुर सरिस सुपासू॥
परिहरि लखन रामु बैदेही। जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही॥

सीताराम के साथ वन में रहना करोड़ों देवलोकों के (निवास के) समान सुखदायक है। लक्ष्मण, राम और जानकी को छोड़कर जिसको घर अच्छा लगे, विधाता उसके विपरीत हैं।

दाहिन दइउ होइ जब सबही। राम समीप बसिअ बन तबही॥
मंदाकिनि मज्जनु तिहु काला। राम दरसु मुद मंगल माला॥

जब दैव सबके अनुकूल हो, तभी राम के पास वन में निवास हो सकता है। मंदाकिनी का

तीनों समय स्नान और आनंद तथा मंगलों की माला (समूह) रूप राम का दर्शन,

अटनु राम गिरि बन तापस थल। असनु अमिअ सम कंद मूल फल॥
सुख समेत संबत दुइ साता। पल सम होहिं न जनिअहिं जाता॥

राम के पर्वत (कामदनाथ), वन और तपस्वियों के स्थानों में घूमना और अमृत के समान कंद, मूल, फलों का भोजन। चौदह वर्ष सुख के साथ पल के समान हो जाएँगे (बीत जाएँगे), जाते हुए जान ही न पड़ेंगे।

दो० - एहि सुख जोग न लोग सब कहहिं कहाँ अस भागु।
सहज सुभायँ समाज दुहु राम चरन अनुरागु॥ 280॥

सब लोग कह रहे हैं कि हम इस सुख के योग्य नहीं हैं, हमारे ऐसे भाग्य कहाँ? दोनों समाजों का राम के चरणों में सहज स्वभाव से ही प्रेम है॥ 280॥

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं॥
सीय मातु तेहि समय पठाईं। दासीं देखि सुअवसरु आईं॥

इस प्रकार सब मनोरथ कर रहे हैं। उनके प्रेमयुक्त वचन सुनते ही (सुनने वालों के) मनों को हर लेते हैं। उसी समय सीता की माता सुनयना की भेजी हुई दासियाँ (कौसल्या आदि के मिलने का) सुंदर अवसर देखकर आईं।

सावकास सुनि सब सिय सासू। आयउ जनकराज रनिवासू॥
कौसल्याँ सादर सनमानी। आसन दिए समय सम आनी॥

उनसे यह सुनकर कि सीता की सब सासुएँ इस समय फुरसत में हैं, जनकराज का रनिवास उनसे मिलने आया। कौसल्या ने आदरपूर्वक उनका सम्मान किया और समयोचित आसन लाकर दिए।

सीलु सनेहु सकल दुहु ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा॥
पुलक सिथिल तन बारि बिलोचन। महि नख लिखन लगीं सब सोचन॥

दोनों ओर सबके शील और प्रेम को देखकर और सुनकर कठोर वज्र भी पिघल जाते हैं। शरीर पुलकित और शिथिल हैं और नेत्रों में (शोक और प्रेम के) आँसू हैं। सब अपने (पैरों

के) नखों से जमीन कुरेदने और सोचने लगीं।

सब सिय राम प्रीति की सि मूरति। जनु करुना बहु बेष बिसूरति॥
सीय मातु कह बिधि बुधि बाँकी। जो पय फेनु फोर पबि टाँकी॥

सभी सीताराम के प्रेम की मूर्ति-सी हैं, मानो स्वयं करुणा ही बहुत-से वेष (रूप) धारण करके विसूर रही हो (दुःख कर रही हो)। सीता की माता सुनयना ने कहा - विधाता की बुद्धि बड़ी टेढ़ी है, जो दूध के फेन जैसी कोमल वस्तु को वज्र की टाँकी से फोड़ रहा है (अर्थात जो अत्यंत कोमल और निर्दोष हैं उन पर विपत्ति-पर-विपत्ति ढहा रहा है)।

दो॰ - सुनिअ सुधा देखि अहिं गरल सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल॥ 281॥

अमृत केवल सुनने में आता है और विष जहाँ-तहाँ प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। विधाता की सभी करतूतें भयंकर हैं। जहाँ-तहाँ कौए, उल्लू और बगुले ही (दिखाई देते) हैं; हंस तो एक मानसरोवर में ही है॥ 281॥

सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा। बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा॥
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बालकेलि सम बिधि मति भोरी॥

यह सुनकर देवी सुमित्रा शोक के साथ कहने लगीं - विधाता की चाल बड़ी ही विपरीत और विचित्र है, जो सृष्टि को उत्पन्न करके पालता है और फिर नष्ट कर डालता है। विधाता की बुद्धि बालकों के खेल के समान भोली (विवेकशून्य) है।

कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू॥
कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता॥

कौसल्या ने कहा - किसी का दोष नहीं है; दुःख-सुख, हानि-लाभ सब कर्म के अधीन हैं। कर्म की गति कठिन (दुर्विज्ञेय) है, उसे विधाता ही जानता है, जो शुभ और अशुभ सभी फलों का देनेवाला है।

ईस रजाइ सीस सबही कें। उतपति थिति लय बिषहु अमी कें॥
देबि मोह बस सोचिअ बादी। बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी॥

ईश्वर की आज्ञा सभी के सिर पर है। उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और लय (संहार) तथा

अमृत और विष के भी सिर पर है (ये सब भी उसी के अधीन हैं)। हे देवी! मोहवश सोच करना व्यर्थ है। विधाता का प्रपंच ऐसा ही अचल और अनादि है।

भूपति जिअब मरब उर आनी। सोचिअ सखि लखि निज हित हानी॥
सीय मातु कह सत्य सुबानी। सुकृती अवधि अवधपति रानी॥

महाराज के मरने और जीने की बात को हृदय में याद करके जो चिंता करती हैं, वह तो हे सखी! हम अपने ही हित की हानि देखकर (स्वार्थवश) करती हैं। सीता की माता ने कहा - आपका कथन उत्तम है और सत्य है। आप पुण्यात्माओं के सीमा रूप अवधपति (महाराज दशरथ) की ही तो रानी हैं। (फिर भला, ऐसा क्यों न कहेंगी।)

दो० - लखनु रामु सिय जाहुँ बन भल परिनाम न पोचु।
गहबरि हियँ कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु॥ 282॥

कौसल्या ने दुःख भरे हृदय से कहा - राम, लक्ष्मण और सीता वन में जाएँ, इसका परिणाम तो अच्छा ही होगा, बुरा नहीं। मुझे तो भरत की चिंता है॥ 282॥

ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधू देवसरि बारी॥
राम सपथ मैं कीन्हि न काऊ। सो करि कहउँ सखी सति भाऊ॥

ईश्वर के अनुग्रह और आपके आशीर्वाद से मेरे (चारों) पुत्र और (चारों) बहुएँ गंगा के जल के समान पवित्र हैं। हे सखी! मैंने कभी राम की सौगंध नहीं की, सो आज राम की शपथ करके सत्य भाव से कहती हूँ -

भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई॥
कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥

भरत के शील, गुण, नम्रता, बड़प्पन, भाईपन, भक्ति, भरोसे और अच्छेपन का वर्णन करने में सरस्वती की बुद्धि भी हिचकती है। सीप से कहीं समुद्र उलीचे जा सकते हैं?

जानउँ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा॥
कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ। पुरुष परिखिअहिं समयँ सुभाएँ॥

मैं भरत को सदा कुल का दीपक जानती हूँ। महाराज ने भी बार-बार मुझे यही कहा था। सोना कसौटी पर कसे जाने पर और रत्न पारखी (जौहरी) के मिलने पर ही पहचाना

जाता है। वैसे ही पुरुष की परीक्षा समय पड़ने पर उसके स्वभाव से ही (उसका चरित्र देखकर) हो जाती है।

अनुचित आजु कहब अस मोरा। सोक सनेहँ सयानप थोरा॥
सुनि सुरसरि सम पावनि बानी। भईं सनेह बिकल सब रानी॥

किंतु आज मेरा ऐसा कहना भी अनुचित है। शोक और स्नेह में सयानापन (विवेक) कम हो जाता है (लोग कहेंगे कि मैं स्नेहवश भरत की बड़ाई कर रही हूँ)। कौसल्या की गंगा के समान पवित्र करनेवाली वाणी सुनकर सब रानियाँ स्नेह के मारे विकल हो उठीं।

दो० - कौसल्या कह धीर धरि सुनहु देबि मिथिलेसि।
को बिबेकनिधि बल्लभहि तुम्हहि सकइ उपदेसि॥ 283॥

कौसल्या ने फिर धीरज धरकर कहा - हे देवी मिथिलेश्वरी! सुनिए, ज्ञान के भंडार जनक की प्रिया आपको कौन उपदेश दे सकता है?॥ 283॥

रानि राय सन अवसरु पाई। अपनी भाँति कहब समुझाई॥
रखिअहिं लखनु भरतु गवनहिं बन। जौं यह मत मानै महीप मन॥

हे रानी! मौका पाकर आप राजा को अपनी ओर से जहाँ तक हो सके समझाकर कहिएगा कि लक्ष्मण को घर रख लिया जाए और भरत वन को जाएँ। यदि यह राय राजा के मन में (ठीक) जँच जाए,

तौ भल जतनु करब सुबिचारी। मोरें सोचु भरत कर भारी॥
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं। रहें नीक मोहि लागत नाहीं॥

तो भली-भाँति खूब विचारकर ऐसा यत्न करें। मुझे भरत का अत्यधिक सोच है। भरत के मन में गूढ़ प्रेम है। उनके घर रहने में मुझे भलाई नहीं जान पड़ती (यह डर लगता है कि उनके प्राणों को कोई भय न हो जाए)।

लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी। सब भइ मगन करुन रस रानी॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि। सिथिल सनेहँ सिद्ध जोगी मुनि॥

कौसल्या का स्वभाव देखकर और उनकी सरल और उत्तम वाणी को सुनकर सब रानियाँ करुण रस में निमग्न हो गईं। आकाश से पुष्प वर्षा की झड़ी लग गई और धन्य-धन्य

की ध्वनि होने लगी। सिद्ध, योगी और मुनि स्नेह से शिथिल हो गए।

सबु रनिवासु बिथकि लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्राँ कहेऊ॥
देबि दंड जुग जामिनि बीती। राम मातु सुनि उठी सप्रीती॥

सारा रनिवास देखकर चकित रह गया (निस्तब्ध हो गया), तब सुमित्रा ने धीरज करके कहा कि हे देवी! दो घड़ी रात बीत गई है। यह सुनकर राम की माता कौसल्या प्रेमपूर्वक उठीं -

दो॰ - बेगि पाउ धारिअ थलहि कह सनेहँ सतिभाय।
हमरें तौ अब ईस गति कै मिथिलेस सहाय॥ 284॥

और प्रेम सहित सद्भाव से बोलीं - अब आप शीघ्र डेरे को पधारिए। हमारे तो अब ईश्वर ही गति हैं, अथवा मिथिलेश्वर सहायक हैं॥ 284॥

लखि सनेह सुनि बचन बिनीता। जनकप्रिया गह पाय पुनीता॥
देबि उचित असि बिनय तुम्हारी। दसरथ घरिनि राम महतारी॥

कौसल्या के प्रेम को देखकर और उनके विनम्र वचनों को सुनकर जनक की प्रिय पत्नी ने उनके पवित्र चरण पकड़ लिए और कहा - हे देवी! आप राजा दशरथ की रानी और राम की माता हैं। आपकी ऐसी नम्रता उचित ही है।

प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं॥
सेवकु राउ करम मन बानी। सदा सहाय महेसु भवानी॥

प्रभु अपने निज जनों का भी आदर करते हैं। अग्नि धुएँ को और पर्वत तृण (घास) को अपने सिर पर धारण करते हैं। हमारे राजा तो कर्म, मन और वाणी से आपके सेवक हैं और सदा सहायक तो महादेव-पार्वती हैं।

रउरे अंग जोगु जग को है। दीप सहाय की दिनकर सोहै॥
रामु जाइ बनु करि सुर काजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥

आपका सहायक होने योग्य जगत में कौन है? दीपक सूर्य की सहायता करने जाकर कहीं शोभा पा सकता है? राम वन में जाकर देवताओं का कार्य करके अवधपुरी में अचल राज्य

करेंगे।

अमर नाग नर राम बाहुबल। सुख बसिहहिं अपनें अपनें थल॥
यह सब जागबलिक कहि राखा। देबि न होइ मुधा मुनि भाषा॥

देवता, नाग और मनुष्य सब राम की भुजाओं के बल पर अपने-अपने स्थानों (लोकों) में सुखपूर्वक बसेंगे। यह सब याज्ञवल्क्य मुनि ने पहले ही से कह रखा है। हे देवी! मुनि का कथन व्यर्थ (झूठा) नहीं हो सकता।

दो० - अस कहि पग परि प्रेम अति सिय हित बिनय सुनाइ।
सिय समेत सियमातु तब चली सुआयसु पाइ॥ 285॥

ऐसा कहकर बड़े प्रेम से पैरों पड़कर सीता (को साथ भेजने) के लिए विनती करके और सुंदर आज्ञा पाकर तब सीता समेत सीता की माता डेरे को चलीं॥ 285॥

प्रिय परिजनहि मिली बैदेही। जो जेहि जोगु भाँति तेहि तेही॥
तापस बेष जानकी देखी। भा सबु बिकल बिषाद बिसेषी॥

जानकी अपने प्यारे कुटुंबियों से - जो जिस योग्य था, उससे उसी प्रकार मिलीं। जानकी को तपस्विनी के वेष में देखकर सभी शोक से अत्यंत व्याकुल हो गए।

जनक राम गुर आयसु पाई। चले थलहि सिय देखी आई॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन प्रेम प्रान की॥

जनक राम के गुरु वशिष्ठ की आज्ञा पाकर डेरे को चले और आकर उन्होंने सीता को देखा। जनक ने अपने पवित्र प्रेम और प्राणों की पाहुनी जानकी को हृदय से लगा लिया।

उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूप मनु मनहुँ पयागू॥
सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा। ता पर राम प्रेम सिसु सोहा॥

उनके हृदय में (वात्सल्य) प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा। राजा का मन मानो प्रयाग हो गया। उस समुद्र के अंदर उन्होंने (आदि शक्ति) सीता के (अलौकिक) स्नेहरूपी अक्षयवट को बढ़ते हुए देखा। उस (सीता के प्रेमरूपी वट) पर राम का प्रेमरूपी बालक (बाल रूप धारी भगवान) सुशोभित हो रहा है।

चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु। बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु॥
मोह मगन मति नहिं बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की॥

जनक का ज्ञानरूपी चिरंजीवी (मार्कण्डेय) मुनि व्याकुल होकर डूबते-डूबते मानो उस राम प्रेमरूपी बालक का सहारा पाकर बच गया। वस्तुतः (ज्ञानिशिरोमणि) विदेहराज की बुद्धि मोह में मग्न नहीं है। यह तो सीताराम के प्रेम की महिमा है (जिसने उन जैसे महान ज्ञानी के ज्ञान को भी विकल कर दिया)।

दो० - सिय पितु मातु सनेह बस बिकल न सकी सँभारि।
धरनिसुताँ धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारि॥ 286॥

पिता-माता के प्रेम के मारे सीता ऐसी विकल हो गईं कि अपने को सँभाल न सकीं। (परंतु परम धैर्यवती) पृथ्वी की कन्या सीता ने समय और सुंदर धर्म का विचार कर धैर्य धारण किया॥ 286॥

तापस बेष जनक सिय देखी। भयउ प्रेमु परितोषु बिसेषी॥
पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ॥

सीता को तपस्विनी वेष में देखकर जनक को विशेष प्रेम और संतोष हुआ। (उन्होंने कहा -) बेटी! तूने दोनों कुल पवित्र कर दिए। तेरे निर्मल यश से सारा जगत उज्ज्वल हो रहा है, ऐसा सब कोई कहते हैं।

जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी॥
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। एहिं किए साधु समाज घनेरे॥

तेरी कीर्तिरूपी नदी देवनदी गंगा को भी जीतकर (जो एक ही ब्रह्मांड में बहती है) करोड़ों ब्रह्मांडों में बह चली है। गंगा ने तो पृथ्वी पर तीन ही स्थानों (हरिद्वार, प्रयागराज और गंगासागर) को बड़ा (तीर्थ) बनाया है। पर तेरी इस कीर्ति नदी ने तो अनेकों संत समाजरूपी तीर्थ स्थान बना दिए हैं।

पितु कह सत्य सनेहँ सुबानी। सीय सकुच महुँ मनहुँ समानी॥
पुनि पितु मातु लीन्हि उर लाई। सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई॥

पिता जनक ने तो स्नेह से सच्ची सुंदर वाणी कही। परंतु अपनी बड़ाई सुनकर सीता

मानो संकोच में समा गईं। पिता-माता ने उन्हें फिर हृदय से लगा लिया और हितभरी सुंदर सीख और आशीष दी।

कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनीं भल नाहीं॥
लखि रुख रानि जनायउ राऊ। हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ॥

सीता कुछ कहती नहीं हैं, परंतु सकुचा रही हैं कि रात में (सासुओं की सेवा छोड़कर) यहाँ रहना अच्छा नहीं है। रानी सुनयना ने जानकी का रुख देखकर (उनके मन की बात समझकर) राजा जनक को जना दिया। तब दोनों अपने हृदयों में सीता के शील और स्वभाव की सराहना करने लगे।

दो० - बार बार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्हि सनमानि।
कही समय सिर भरत गति रानि सुबानि सयानि॥ 287॥

राजा-रानी ने बार-बार मिलकर और हृदय से लगाकर तथा सम्मान करके सीता को विदा किया। चतुर रानी ने समय पाकर राजा से सुंदर वाणी में भरत की दशा का वर्णन किया॥ 287॥

सुनि भूपाल भरत ब्यवहारू। सोन सुगंध सुधा ससि सारू॥
मूदे सजल नयन पुलके तन। सुजसु सराहन लगे मुदित मन॥

सोने में सुगंध और (समुद्र से निकली हुई) सुधा में चंद्रमा के सार अमृत के समान भरत का व्यवहार सुनकर राजा ने (प्रेम विह्वल होकर) अपने (प्रेमाश्रुओं के) जल से भरे नेत्रों को मूँद लिया (वे भरत के प्रेम में मानो ध्यानस्थ हो गए)। वे शरीर से पुलकित हो गए और मन में आनंदित होकर भरत के सुंदर यश की सराहना करने लगे।

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव बंध बिमोचनि॥
धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू॥

(वे बोले -) हे सुमुखि! हे सुनयनी! सावधान होकर सुनो। भरत की कथा संसार के बंधन से छुड़ानेवाली है। धर्म, राजनीति और ब्रह्मविचार - इन तीनों विषयों में अपनी बुद्धि के अनुसार मेरी (थोड़ी-बहुत) गति है (अर्थात इनके संबंध में मैं कुछ जानता हूँ)।

सो मति मोरि भरत महिमाही। कहै काह छलि छुअति न छाँही॥

बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद॥

वह (धर्म, राजनीति और ब्रह्मज्ञान में प्रवेश रखनेवाली) मेरी बुद्धि भरत की महिमा का वर्णन तो क्या करे, छल करके भी उसकी छाया तक को नहीं छू पाती! ब्रह्मा, गणेश, शेष, महादेव, सरस्वती, कवि, ज्ञानी, पंडित और बुद्धिमान -

भरत चरित कीरति करतूती। धरम सील गुन बिमल बिभूती॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू॥

सब किसी को भरत के चरित्र, कीर्ति, करनी, धर्म, शील, गुण और निर्मल ऐश्वर्य समझने में और सुनने में सुख देनेवाले हैं और पवित्रता में गंगा का तथा स्वाद (मधुरता) में अमृत का भी तिरस्कार करनेवाले हैं।

दो० - निरवधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरत सम जानि।
कहिअ सुमेरु कि सेर सम कबिकुल मति सकुचानि॥ 288॥

भरत असीम गुण संपन्न और उपमारहित पुरुष हैं। भरत के समान बस, भरत ही हैं, ऐसा जानो। सुमेरु पर्वत को क्या सेर के बराबर कह सकते हैं? इसलिए (उन्हें किसी पुरुष के साथ उपमा देने में) कवि समाज की बुद्धि भी सकुचा गई!॥ 288॥

अगम सबहि बरनत बरबरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी॥

हे श्रेष्ठ वर्णवाली! भरत की महिमा का वर्णन करना सभी के लिए वैसे ही अगम है जैसे जलरहित पृथ्वी पर मछली का चलना। हे रानी! सुनो, भरत की अपरिमित महिमा को एक राम ही जानते हैं, किंतु वे भी उसका वर्णन नहीं कर सकते।

बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ॥
बहुरहिं लखनु भरतु बन जाहीं। सब कर भल सब के मन माहीं॥

इस प्रकार प्रेमपूर्वक भरत के प्रभाव का वर्णन करके, फिर पत्नी के मन की रुचि जानकर राजा ने कहा - लक्ष्मण लौट जाएँ और भरत वन को जाएँ, इसमें सभी का भला है और यही सबके मन में है।

देबि परंतु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥

भरतु अवधि सनेह ममता की। जद्यपि रामु सीम समता की॥

परंतु हे देवी! भरत और राम का प्रेम और एक-दूसरे पर विश्वास, बुद्धि और विचार की सीमा में नहीं आ सकता। यद्यपि राम समता की सीमा हैं, तथापि भरत प्रेम और ममता की सीमा हैं।

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥

(राम के प्रति अनन्य प्रेम को छोड़कर) भरत ने समस्त परमार्थ, स्वार्थ और सुखों की ओर स्वप्न में भी मन से भी नहीं ताका है। राम के चरणों का प्रेम ही उनका साधन है और वही सिद्धि है। मुझे तो भरत का बस, यही एक मात्र सिद्धांत जान पड़ता है।

दो० - भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाइ।
करिअ न सोचु सनेह बस कहेउ भूप बिलखाइ॥ 289॥

राजा ने बिलखकर (प्रेम से गद्गद होकर) कहा - भरत भूलकर भी राम की आज्ञा को मन से भी नहीं टालेंगे। अतः स्नेह के वश होकर चिंता नहीं करनी चाहिए॥ 289॥

राम भरत गुन गनत सप्रीती। निसि दंपतिहि पलक सम बीती॥
राज समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे॥

राम और भरत के गुणों की प्रेमपूर्वक गणना करते (कहते-सुनते) पति-पत्नी को रात पलक के समान बीत गई। प्रातःकाल दोनों राजसमाज जागे और नहा-नहाकर देवताओं की पूजा करने लगे।

गे नहाइ गुर पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई॥
नाथ भरतु पुरजन महतारी। सोक बिकल बनबास दुखारी॥

रघुनाथ स्नान करके गुरु वशिष्ठ के पास गए और चरणों की वंदना करके उनका रुख पाकर बोले - हे नाथ! भरत, अवधपुरवासी तथा माताएँ, सब शोक से व्याकुल और वनवास से दुःखी हैं।

सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भए सहत कलेसू॥

उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर रौरें हाथा॥

मिथिलापति राजा जनक को भी समाज सहित क्लेश सहते बहुत दिन हो गए। इसलिए हे नाथ! जो उचित हो वही कीजिए। आप ही के हाथ सभी का हित है।

अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुल के लखि सीलु सुभाऊ॥
तुम्ह बिनु राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहु राज समाजा॥

ऐसा कहकर रघुनाथ अत्यंत ही सकुचा गए। उनका शील-स्वभाव देखकर (प्रेम और आनंद से) मुनि वशिष्ठ पुलकित हो गए। (उन्होंने खुलकर कहा -) हे राम! तुम्हारे बिना (घर-बार आदि) संपूर्ण सुखों के साज दोनों राजसमाजों को नरक के समान हैं।

दो० - प्रान-प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सोहात गृह जिन्हहि तिन्हहि बिधि बाम॥ 290॥

हे राम! तुम प्राणों के भी प्राण, आत्मा के भी आत्मा और सुख के भी सुख हो। हे तात! तुम्हें छोड़कर जिन्हें घर सुहाता है, उन्हे विधाता विपरीत है॥ 290॥

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू॥

जहाँ राम के चरण कमलों में प्रेम नहीं है, वह सुख, कर्म और धर्म जल जाए। जिसमें राम प्रेम की प्रधानता नहीं है, वह योग कुयोग है और वह ज्ञान अज्ञान है।

तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेहीं। तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केहीं॥
राउर आयसु सिर सबही कें। बिदित कृपालहि गति सब नीकें॥

तुम्हारे बिना ही सब दुःखी हैं और जो सुखी हैं वे तुम्हीं से सुखी हैं। जिस किसी के जी में जो कुछ है तुम सब जानते हो। आपकी आज्ञा सभी के सिर पर है। कृपालु (आप) को सभी की स्थिति अच्छी तरह मालूम है।

आपु आश्रमहि धारिअ पाऊ। भयउ सनेह सिथिल मुनिराऊ॥
करि प्रनामु तब रामु सिधाए। रिषि धरि धीर जनक पहिं आए॥

अतः आप आश्रम को पधारिए। इतना कह मुनिराज स्नेह से शिथिल हो गए। तब राम

प्रणाम करके चले गए और ऋषि वशिष्ठ धीरज धरकर जनक के पास आए।

राम बचन गुरु नृपहि सुनाए। सील सनेह सुभायँ सुहाए॥
महाराज अब कीजिअ सोई। सब कर धरम सहित हित होई॥

गुरु ने राम के शील और स्नेह से युक्त स्वभाव से ही सुंदर वचन राजा जनक को सुनाए (और कहा -) हे महाराज! अब वही कीजिए जिसमें सबका धर्म सहित हित हो।

दो० - ग्यान निधान सुजान सुचि धरम धीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ एहि काल॥ 291॥

हे राजन! तुम ज्ञान के भंडार, सुजान, पवित्र और धर्म में धीर हो। इस समय तुम्हारे बिना इस दुविधा को दूर करने में और कौन समर्थ है?॥ 291॥

सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे। लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे॥
सिथिल सनेहँ गुनत मन माहीं। आए इहाँ कीन्ह भल नाहीं॥

मुनि वशिष्ठ के वचन सुनकर जनक प्रेम में मग्न हो गए। उनकी दशा देखकर ज्ञान और वैराग्य को भी वैराग्य हो गया (अर्थात उनके ज्ञान-वैराग्य छूट-से गए)। वे प्रेम से शिथिल हो गए और मन में विचार करने लगे कि हम यहाँ आए, यह अच्छा नहीं किया।

रामहि रायँ कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना॥
हम अब बन तें बनहि पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई॥

राजा दशरथ ने राम को वन जाने के लिए कहा और स्वयं अपने प्रिय के प्रेम को प्रमाणित (सच्चा) कर दिया (प्रिय वियोग में प्राण त्याग दिए)। परंतु हम अब इन्हें वन से (और गहन) वन को भेजकर अपने विवेक की बड़ाई में आनंदित होते हुए लौटेंगे (कि हमें जरा भी मोह नहीं है; हम राम को वन में छोड़कर चले आए, दशरथ की तरह मरे नहीं!)।

तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भए प्रेम बस बिकल बिसेषी॥
समउ समुझि धरि धीरजु राजा। चले भरत पहिं सहित समाजा॥

तपस्वी, मुनि और ब्राह्मण यह सब सुन और देखकर प्रेमवश बहुत ही व्याकुल हो गए।

समय का विचार करके राजा जनक धीरज धरकर समाज सहित भरत के पास चले।

भरत आइ आगें भइ लीन्हे। अवसर सरिस सुआसन दीन्हे॥
तात भरत कह तेरहुति राऊ। तुम्हहि बिदित रघुबीर सुभाऊ॥

भरत ने आकर उन्हें आगे होकर लिया (सामने आकर उनका स्वागत किया) और समयानुकूल अच्छे आसन दिए। तिरहुतराज जनक कहने लगे - हे तात भरत! तुमको राम का स्वभाव मालूम ही है।

दो॰ - राम सत्यब्रत धरम रत सब कर सीलु स्नेहु।
संकट सहत सकोच बस कहिअ जो आयसु देहु॥ 292॥

राम सत्यव्रती और धर्मपरायण हैं, सबका शील और स्नेह रखनेवाले हैं। इसीलिए वे संकोचवश संकट सह रहे हैं; अब तुम जो आज्ञा दो, वह उनसे कही जाए॥ 292॥

सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी। बोले भरतु धीर धरि भारी॥
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुलगुरु सम हित माय न बापू॥

भरत यह सुनकर पुलकित शरीर हो नेत्रों में जल भरकर बड़ा भारी धीरज धरकर बोले - हे प्रभो! आप हमारे पिता के समान प्रिय और पूज्य हैं और कुल गुरु वशिष्ठ के समान हितैषी तो माता-पिता भी नहीं है।

कौसिकादि मुनि सचिव समाजू। ग्यान अंबुनिधि आपुनु आजू॥
सिसु सेवकु आयसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइअ स्वामी॥

विश्वामित्र आदि मुनियों और मंत्रियों का समाज है। और आज के दिन ज्ञान के समुद्र आप भी उपस्थित हैं। हे स्वामी! मुझे अपना बच्चा, सेवक और आज्ञानुसार चलनेवाला समझकर शिक्षा दीजिए।

एहिं समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन मैं बोलब बाउर॥
छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता। छमब तात लखि बाम बिधाता॥

इस समाज और (पुण्य) स्थल में आप (जैसे ज्ञानी और पूज्य) का पूछना! इस पर यदि मैं मौन रहता हूँ तो मलिन समझा जाऊँगा; और बोलना पागलपन होगा तथापि मैं छोटे

मुँह बड़ी बात कहता हूँ। हे तात! विधाता को प्रतिकूल जानकर क्षमा कीजिएगा।

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवाधरमु कठिन जगु जाना॥
स्वामि धरम स्वारथहि बिरोधू। बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू॥

वेद, शास्त्र और पुराणों में प्रसिद्ध है और जगत जानता है कि सेवा धर्म बड़ा कठिन है। स्वामी धर्म में (स्वामी के प्रति कर्तव्य पालन में) और स्वार्थ में विरोध है (दोनों एक साथ नहीं निभ सकते) वैर अंधा होता है और प्रेम को ज्ञान नहीं रहता (मैं स्वार्थवश कहूँगा या प्रेमवश, दोनों में ही भूल होने का भय है)।

दो० - राखि राम रुख धरमु ब्रतु पराधीन मोहि जानि।
सब कें संमत सर्ब हित करिअ प्रेमु पहिचानि॥ 293॥

अतएव मुझे पराधीन जानकर (मुझसे न पूछकर) राम के रुख (रुचि), धर्म और (सत्य के) व्रत को रखते हुए, जो सबके सम्मत और सबके लिए हितकारी हो आप सबका प्रेम पहचानकर वही कीजिए॥ 293॥

भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ॥
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे॥

भरत के वचन सुनकर और उनका स्वभाव देखकर समाज सहित राजा जनक उनकी सराहना करने लगे। भरत के वचन सुगम और अगम, सुंदर, कोमल और कठोर हैं। उनमें अक्षर थोड़े हैं, परंतु अर्थ अत्यंत अपार भरा हुआ है।

ज्यों मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी। गहि न जाइ अस अदभुत बानी॥
भूप भरतू मुनि सहित समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू॥

जैसे मुख (का प्रतिबिंब) दर्पण में दिखता है और दर्पण अपने हाथ में है, फिर भी वह (मुख का प्रतिबिंब) पकड़ा नहीं जाता, इसी प्रकार भरत की यह अद्भुत वाणी भी पकड़ में नहीं आती (शब्दों से उसका आशय समझ में नहीं आता)। (किसी से कुछ उत्तर देते नहीं बना) तब राजा जनक, भरत तथा मुनि वशिष्ठ समाज के साथ वहाँ गए, जहाँ देवतारूपी कुमुदों को खिलानेवाले (सुख देनेवाले) चंद्रमा राम थे।

सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा। मनहुँ मीनगन नव जल जोगा॥

देवँ प्रथम कुलगुर गति देखी। निरखि बिदेह सनेह बिसेषी॥

यह समाचार सुनकर सब लोग सोच से व्याकुल हो गए, जैसे नए (पहली वर्षा के) जल के संयोग से मछलियाँ व्याकुल होती हैं। देवताओं ने पहले कुलगुरु वशिष्ठ की (प्रेमविह्वल) दशा देखी, फिर विदेह के विशेष स्नेह को देखा,

राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हियँ हारे॥
सब कोउ राम प्रेममय पेखा। भए अलेख सोच बस लेखा॥

और तब रामभक्ति से ओतप्रोत भरत को देखा। इन सबको देखकर स्वार्थी देवता घबड़ाकर हृदय में हार मान गए (निराश हो गए)। उन्होंने सब किसी को राम प्रेम में सराबोर देखा। इससे देवता इतने सोच के वश हो गए कि जिसका कोई हिसाब नहीं।

दो॰ - रामु सनेह सकोच बस कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि नाहिं त भयउ अकाजु॥ 294॥

देवराज इंद्र सोच में भरकर कहने लगे कि राम तो स्नेह और संकोच के वश में हैं। इसलिए सब लोग मिलकर कुछ प्रपंच (माया) रचो; नहीं तो काम बिगड़ा (ही समझो)॥ 294॥

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देबि देव सरनागत पाही॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल छाया॥

देवताओं ने सरस्वती का स्मरण कर उनकी सराहना (स्तुति) की और कहा - हे देवी! देवता आपके शरणागत हैं, उनकी रक्षा कीजिए। अपनी माया रचकर भरत की बुद्धि को फेर दीजिए और छल की छाया कर देवताओं के कुल का पालन (रक्षा) कीजिए।

बिबुध बिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू॥

देवताओं की विनती सुनकर और देवताओं को स्वार्थ के वश होने से मूर्ख जानकर बुद्धिमती सरस्वती बोलीं - मुझसे कह रहे हो कि भरत की मति पलट दो! हजार नेत्रों से भी तुमको सुमेरु नहीं सूझ पड़ता!

बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकइ निहारी॥

सो मति मोहि कहत करु भोरी। चंदिनि कर कि चंडकर चोरी॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश की माया बड़ी प्रबल है! किंतु वह भी भरत की बुद्धि की ओर ताक नहीं सकती। उस बुद्धि को, तुम मुझसे कह रहे हो कि, भोली कर दो (भुलावे में डाल दो)! अरे! चाँदनी कहीं प्रचंड किरणवाले सूर्य को चुरा सकती है?

भरत हृदयँ सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू॥
अस कहि सारद गइ बिधि लोका। बिबुध बिकल निसि मानहुँ कोका॥

भरत के हृदय में सीताराम का निवास है। जहाँ सूर्य का प्रकाश है, वहाँ कहीं अँधेरा रह सकता है? ऐसा कहकर सरस्वती ब्रह्मलोक को चली गईं। देवता ऐसे व्याकुल हुए जैसे रात्रि में चकवा व्याकुल होता है।

दो० - सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाटु॥ 295॥

मलिन मनवाले स्वार्थी देवताओं ने बुरी सलाह करके बुरा ठाट (षड्‍यंत्र) रचा। प्रबल माया-जाल रचकर भय, भ्रम, अप्रीति और उच्चाटन फैला दिया॥ 295॥

करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सबु काजु अकाजू॥
गए जनकु रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा॥

कुचाल करके देवराज इंद्र सोचने लगे कि काम का बनना-बिगड़ना सब भरत के हाथ है। इधर राजा जनक (मुनि वशिष्ठ आदि के साथ) रघुनाथ के पास गए। सूर्यकुल के दीपक राम ने सबका सम्मान किया,

समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघुबंस पुरोधा॥
जनक भरत संबादु सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई॥

तब रघुकुल के पुरोहित वशिष्ठ समय, समाज और धर्म के अविरोधी (अर्थात अनुकूल) वचन बोले। उन्होंने पहले जनक और भरत का संवाद सुनाया। फिर भरत की कही हुई सुंदर बातें कह सुनाईं।

तात राम जस आयसु देहू। सो सबु करै मोर मत एहू॥

सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी॥

(फिर बोले -) हे तात राम! मेरा मत तो यह है कि तुम जैसी आज्ञा दो, वैसा ही सब करें! यह सुनकर दोनों हाथ जोड़कर रघुनाथ सत्य, सरल और कोमल वाणी बोले -

बिद्यमान आपुनि मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई॥

आपके और मिथिलेश्वर जनक के विद्यमान रहते मेरा कुछ कहना सब प्रकार से भद्दा (अनुचित) है। आपकी और महाराज की जो आज्ञा होगी, मैं आपकी शपथ करके कहता हूँ वह सत्य ही सबको शिरोधार्य होगी।

दो० - राम सपथ सुनि मुनि जनकु सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुखु बनइ न ऊतरु देत॥ 296॥

राम की शपथ सुनकर सभा समेत मुनि और जनक सकुचा गए (स्तंभित रह गए)। किसी से उत्तर देते नहीं बनता, सब लोग भरत का मुँह ताक रहे हैं॥ 296॥

सभा सकुच बस भरत निहारी। राम बंधु धरि धीरजु भारी॥
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा। बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा॥

भरत ने सभा को संकोच के वश देखा। रामबंधु (भरत) ने बड़ा भारी धीरज धरकर और कुसमय देखकर अपने (उमड़ते हुए) प्रेम को सँभाला, जैसे बढ़ते हुए विंध्याचल को अगस्त्य ने रोका था।

सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुन गन जगजोनी॥
भरत बिबेक बराहँ बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला॥

शोकरूपी हिरण्याक्ष ने (सारी सभा की) बुद्धिरूपी पृथ्वी को हर लिया जो विमल गुणसमूहरूपी जगत की योनि (उत्पन्न करनेवाली) थी। भरत के विवेकरूपी विशाल वराह (वराहरूप धारी भगवान) ने (शोकरूपी हिरण्याक्ष को नष्ट कर) बिना ही परिश्रम उसका उद्धार कर दिया!

करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे। रामु राउ गुर साधु निहोरे॥

छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा॥

भरत ने प्रणाम करके सबके प्रति हाथ जोड़े तथा राम, राजा जनक, गुरु वशिष्ठ और साधु-संत सबसे विनती की और कहा - आज मेरे इस अत्यंत अनुचित बर्ताव को क्षमा कीजिएगा। मैं कोमल (छोटे) मुख से कठोर (धृष्टतापूर्ण) वचन कह रहा हूँ।

हियँ सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुख पंकज आई॥
बिमल बिबेक धरम नय साली। भरत भारती मंजु मराली॥

फिर उन्होंने हृदय में सुहावनी सरस्वती का स्मरण किया। वे मानस से (उनके मनरूपी मानसरोवर से) उनके मुखारविंद पर आ विराजीं। निर्मल विवेक, धर्म और नीति से युक्त भरत की वाणी सुंदर हंसिनी (के समान गुण-दोष का विवेचन करनेवाली) है।

दो० - निरखि बिबेक बिलोचनन्हि सिथिल सनेहँ समाजु।
करि प्रनामु बोले भरतु सुमिरि सीय रघुराजु॥ 297॥

विवेक के नेत्रों से सारे समाज को प्रेम से शिथिल देख, सबको प्रणाम कर, सीता और रघुनाथ का स्मरण करके भरत बोले - ॥ 297॥

प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित अंतरजामी॥
सरल सुसाहिबु सील निधानू। प्रनतपाल सर्बग्य सुजानू॥

हे प्रभु! आप पिता, माता, सुहृद (मित्र), गुरु, स्वामी, पूज्य, परम हितैषी और अंतर्यामी हैं। सरल हृदय, श्रेष्ठ मालिक, शील के भंडार, शरणागत की रक्षा करनेवाले, सर्वज्ञ, सुजान,

समरथ सरनागत हितकारी। गुनगाहकु अवगुन अघ हारी॥
स्वामि गोसाँइहि सरिस गोसाईं। मोहि समान मैं साइँ दोहाईं॥

समर्थ, शरणागत का हित करनेवाले, गुणों का आदर करनेवाले और अवगुणों तथा पापों को हरनेवाले हैं। हे गोसाईं! आप-सरीखे स्वामी आप ही हैं और स्वामी के साथ द्रोह करने में मेरे समान मैं ही हूँ।

प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयउँ इहाँ समाजु सकेली॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिअ अमरपद माहुरु मीचू॥

मैं मोहवश प्रभु (आप) के और पिता के वचनों का उल्लंघन कर और समाज बटोरकर यहाँ आया हूँ। जगत में भले-बुरे, ऊँचे और नीचे, अमृत और अमर पद (देवताओं का पद), विष और मृत्यु आदि -

राम रजाइ मेट मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं॥
सो मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥

किसी को भी कहीं ऐसा नहीं देखा-सुना जो मन में भी राम (आप) की आज्ञा को मेट दे। मैंने सब प्रकार से वही ढिठाई की, परंतु प्रभु ने उस ढिठाई को स्नेह और सेवा मान लिया!

दो० - कृपाँ भलाईं आपनी नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस सुजसु चारु चहु ओर॥ 298॥

हे नाथ! आपने अपनी कृपा और भलाई से मेरा भला किया, जिससे मेरे दूषण (दोष) भी भूषण (गुण) के समान हो गए और चारों ओर मेरा सुंदर यश छा गया॥ 298॥

राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई॥
कूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥

हे नाथ! आपकी रीति और सुंदर स्वभाव की बड़ाई जगत में प्रसिद्ध है, और वेद-शास्त्रों ने गाई है। जो क्रूर, कुटिल, दुष्ट, कुबुद्धि, कलंकी, नीच, शीलरहित, निरीश्वरवादी (नास्तिक) और निःशंक (निडर) हैं।

तेउ सुनि सरन सामुहें आए। सकृत प्रनामु किहें अपनाए॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥

उन्हें भी आपने शरण में सम्मुख आया सुनकर एक बार प्रणाम करने पर ही अपना लिया। उन (शरणागतों) के दोषों को देखकर भी आप कभी हृदय में नहीं लाए और उनके गुणों को सुनकर साधुओं के समाज में उनका बखान किया।

को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिअ सपनें। सेवक सकुच सोचु उर अपनें॥

ऐसा सेवक पर कृपा करनेवाला स्वामी कौन है जो आप ही सेवक का सारा साज-सामान

सज दे (उसकी सारी आवश्यकताओं को पूर्ण कर दे) और स्वप्न में भी अपनी कोई करनी न समझकर (अर्थात मैंने सेवक के लिए कुछ किया है ऐसा न जानकर) उलटा सेवक को संकोच होगा, इसका सोच अपने हृदय में रखे!

सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥

मैं भुजा उठाकर और प्रण रोपकर (बड़े जोर के साथ) कहता हूँ, ऐसा स्वामी आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। (बंदर आदि) पशु नाचते और तोते (सीखे हुए) पाठ में प्रवीण हो जाते हैं। परंतु तोते का (पाठ प्रवीणता रूप) गुण और पशु के नाचने की गति (क्रमशः) पढ़ानेवाले और नचानेवाले के अधीन है।

दो० - यों सुधारि सनमानि जन किए साधु सिरमोर।
को कृपाल बिनु पालिहै बिरिदावलि बरजोर॥ 299॥

इस प्रकार अपने सेवकों की (बिगड़ी) बात सुधारकर और सम्मान देकर आपने उन्हें साधुओं का शिरोमणि बना दिया। कृपालु (आप) के सिवा अपनी विरदावली का और कौन जबरदस्ती (हठपूर्वक) पालन करेगा?॥ 299॥

सोक सनेहँ कि बाल सुभाएँ। आयउँ लाइ रजायसु बाएँ॥
तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा॥

मैं शोक से या स्नेह से या बालक स्वभाव से आज्ञा को बाएँ लाकर (न मानकर) चला आया, तो भी कृपालु स्वामी (आप) ने अपनी ओर देखकर सभी प्रकार से मेरा भला ही माना (मेरे इस अनुचित कार्य को अच्छा ही समझा)।

देखेउँ पाय सुमंगल मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला।
बड़ें समाज बिलोकेउँ भागू। बड़ीं चूक साहिब अनुरागू॥

मैंने सुंदर मंगलों के मूल आपके चरणों का दर्शन किया, और यह जान लिया कि स्वामी मुझ पर स्वभाव से ही अनुकूल हैं। इस बड़े समाज में अपने भाग्य को देखा कि इतनी बड़ी चूक होने पर भी स्वामी का मुझ पर कितना अनुराग है!

कृपा अनुग्रहु अंगु अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई॥

राखा मोर दुलार गोसाईं। अपनें सील सुभायँ भलाई॥

कृपानिधान ने मुझ पर सांगोपांग भरपेट कृपा और अनुग्रह, सब अधिक ही किए हैं (अर्थात मैं जिसके जरा भी लायक नहीं था, उतनी अधिक सर्वांगपूर्ण कृपा आपने मुझ पर की है)। हे गोसाईं! आपने अपने शील, स्वभाव और भलाई से मेरा दुलार रखा।

नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोच बिहाई॥
अबिनय बिनय जथारुचि बानी। छमिहि देउ अति आरति जानी॥

हे नाथ! मैंने स्वामी और समाज के संकोच को छोड़कर अविनय या विनयभरी जैसी रुचि हुई वैसी ही वाणी कहकर सर्वथा ढिठाई की है। हे देव! मेरे आर्तभाव (आतुरता) को जानकर आप क्षमा करेंगे।

दो० - सुहृद सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइअ देव अब सबइ सुधारी मोरि॥ 300॥

सुहृद (बिना ही हेतु के हित करनेवाले), बुद्धिमान और श्रेष्ठ मालिक से बहुत कहना बड़ा अपराध है, इसलिए हे देव! अब मुझे आज्ञा दीजिए, आपने मेरी सभी बात सुधार दी॥ 300॥

प्रभु पद पदुम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुख सीवँ सुहाई॥
सो करि कहउँ हिए अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की॥

प्रभु (आप) के चरणकमलों की रज, जो सत्य, सुकृत (पुण्य) और सुख की सुहावनी सीमा (अवधि) है, उसकी दुहाई करके मैं अपने हृदय को जागते, सोते और स्वप्न में भी बनी रहनेवाली रुचि (इच्छा) कहता हूँ।

सहज सनेहँ स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावै देवा॥

वह रुचि है - कपट, स्वार्थ और (अर्थ-धर्म-काम-मोक्षरूप) चारों फलों को छोड़कर स्वाभाविक प्रेम से स्वामी की सेवा करना। और आज्ञा पालन के समान श्रेष्ठ स्वामी की और कोई सेवा नहीं है। हे देव! अब वही आज्ञा रूप प्रसाद सेवक को मिल जाए।

अस कहि प्रेम बिबस भए भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी॥

प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेहु न सो कहि जाई॥

भरत ऐसा कहकर प्रेम के बहुत ही विवश हो गए। शरीर पुलकित हो उठा, नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया। अकुलाकर (व्याकुल होकर) उन्होंने प्रभु राम के चरणकमल पकड़ लिए। उस समय को और स्नेह को कहा नहीं जा सकता।

कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाए समीप गहि पानी॥
भरत बिनय सुनिदेखि सुभाऊ। सिथिल सनेहँ सभा रघुराऊ॥

कृपासिंधु राम ने सुंदर वाणी से भरत का सम्मान करके हाथ पकड़कर उनको अपने पास बिठा लिया। भरत की विनती सुनकर और उनका स्वभाव देखकर सारी सभा और रघुनाथ स्नेह से शिथिल हो गए।

छं० - रघुराउ सिथिल सनेहँ साधु समाज मुनि मिथिला धनी।
मन महुँ सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी॥
भरतहि प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस मलिन से।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से॥

रघुनाथ, साधुओं का समाज, मुनि वशिष्ठ और मिथिलापति जनक स्नेह से शिथिल हो गए। सब मन-ही-मन भरत के भाईपन और उनकी भक्ति की अतिशय महिमा को सराहने लगे। देवता मलिन से मन से भरत की प्रशंसा करते हुए उन पर फूल बरसाने लगे। तुलसीदास कहते हैं - सब लोग भरत का भाषण सुनकर व्याकुल हो गए और ऐसे सकुचा गए जैसे रात्रि के आगमन से कमल!

सो० - देखि दुखारी दीन दुहु समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन मुए मारि मंगल चहत॥ 301॥

दोनों समाजों के सभी नर-नारियों को दीन और दुःखी देखकर महामलिन- मन इंद्र मरे हुओं को मारकर अपना मंगल चाहता है॥ 301॥

कपट कुचालि सीवँ सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू॥
काक समान पाकरिपु रीती। छली मलीन कतहुँ न प्रतीती॥

देवराज इंद्र कपट और कुचाल की सीमा है। उसे पराई हानि और अपना लाभ ही प्रिय है।

इंद्र की रीति कौए के समान है। वह छली और मलिन- मन है, उसका कहीं किसी पर विश्वास नहीं है।

प्रथम कुमत करि कपटु सँकेला। सो उचाटु सब कें सिर मेला॥
सुरमायाँ सब लोग बिमोहे। राम प्रेम अतिसय न बिछोहे॥

पहले तो कुमत (बुरा विचार) करके कपट को बटोरा (अनेक प्रकार के कपट का साज सजा)। फिर वह (कपटजनित) उचाट सबके सिर पर डाल दिया। फिर देवमाया से सब लोगों को विशेष रूप से मोहित कर दिया। किंतु राम के प्रेम से उनका अत्यंत बिछोह नहीं हुआ (अर्थात उनका राम के प्रति प्रेम कुछ तो बना ही रहा)।

भय उचाट बस मन थिर नाहीं। छन बन रुचि छन सदन सोहाहीं॥
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिंधु संगम जनु बारी॥

भय और उचाट के वश किसी का मन स्थिर नहीं है। क्षण में उनकी वन में रहने की इच्छा होती है और क्षण में उन्हें घर अच्छे लगने लगते हैं। मन की इस प्रकार की दुविधामयी स्थिति से प्रजा दुःखी हो रही है। मानो नदी और समुद्र के संगम का जल क्षुब्ध हो रहा हो। (जैसे नदी और समुद्र के संगम का जल स्थिर नहीं रहता, कभी इधर आता और कभी उधर जाता है, उसी प्रकार की दशा प्रजा के मन की हो गई।)

दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं। एक एक सन मरमु न कहहीं॥
लखि हियँ हँसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवान जुबानू॥

चित्त दोतरफा हो जाने से वे कहीं संतोष नहीं पाते और एक-दूसरे से अपना मर्म भी नहीं कहते। कृपानिधान राम यह दशा देखकर हृदय में हँसकर कहने लगे - कुत्ता, इंद्र और नवयुवक (कामी पुरुष) एक-सरीखे (एक ही स्वभाव के) हैं। (पाणिनीय व्याकरण के अनुसार, श्वन, युवन और मघवन शब्दों के रूप भी एक-सरीखे होते हैं।)

दो० - भरतु जनकु मुनिजन सचिव साधु सचेत बिहाइ।
लागि देवमाया सबहि जथाजोगु जनु पाइ॥ 302॥

भरत, जनक, मुनिजन, मंत्री और ज्ञानी साधु-संतों को छोड़कर अन्य सभी पर जिस मनुष्य को जिस योग्य (जिस प्रकृति और जिस स्थिति का) पाया, उस पर वैसे ही देवमाया लग

गई॥ 302॥

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेहँ सुरपति छल भारे॥
सभा राउ गुर महिसुर मंत्री। भरत भगति सब कै मति जंत्री॥

कृपासिंधु राम ने लोगों को अपने स्नेह और देवराज इंद्र के भारी छल से दुःखी देखा। सभा, राजा जनक, गुरु, ब्राह्मण और मंत्री आदि सभी की बुद्धि को भरत की भक्ति ने कील दिया।

रामहि चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से॥
भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥

सब लोग चित्रलिखे-से राम की ओर देख रहे हैं। सकुचाते हुए सिखाए हुए-से वचन बोलते हैं। भरत की प्रीति, नम्रता, विनय और बड़ाई सुनने में सुख देनेवाली है, पर उसका वर्णन करने में कठिनता है।

जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभायँ सुमति हियँ हुलसी॥

जिनकी भक्ति का लवलेश देखकर मुनिगण और मिथिलेश्वर जनक प्रेम में मग्न हो गए, उन भरत की महिमा तुलसीदास कैसे कहे? उनकी भक्ति और सुंदर भाव से (कवि के) हृदय में सुबुद्धि हुलस रही है (विकसित हो रही है)।

आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिकुल कानि मानि सकुचानी॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल बचन की नाई॥

परंतु वह बुद्धि अपने को छोटी और भरत की महिमा को बड़ी जानकर कवि परंपरा की मर्यादा को मानकर सकुचा गई (उसका वर्णन करने का साहस नहीं कर सकी)। उसकी गुणों में रुचि तो बहुत है; पर उन्हें कह नहीं सकती। बुद्धि की गति बालक के वचनों की तरह हो गई (वह कुंठित हो गई)!

दो॰ - भरत बिमल जसु बिमल बिधु सुमति चकोरकुमारि।
उदित बिमल जन हृदय नभ एकटक रही निहारि॥ 303॥

भरत का निर्मल यश निर्मल चंद्रमा है और कवि की सुबुद्धि चकोरी है, जो भक्तों के

हृदयरूपी निर्मल आकाश में उस चंद्रमा को उदित देखकर उसकी ओर टकटकी लगाए देखती ही रह गई है (तब उसका वर्णन कौन करे?)॥ 303॥

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघु मति चापलता कबि छमहूँ॥
कहत सुनत सति भाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को॥

भरत के स्वभाव का वर्णन वेदों के लिए भी सुगम नहीं है। (अतः) मेरी तुच्छ बुद्धि की चंचलता को कवि लोग क्षमा करें! भरत के सद्भाव को कहते-सुनते कौन मनुष्य सीताराम के चरणों में अनुरक्त न हो जाएगा।

सुमिरत भरतहि प्रेमु राम को। जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को॥
देखि दयाल दसा सबही की। राम सुजान जानि जन जी की॥

भरत का स्मरण करने से जिसको राम का प्रेम सुलभ न हुआ, उसके समान वाम (अभागा) और कौन होगा? दयालु और सुजान राम ने सभी की दशा देखकर और भक्त (भरत) के हृदय की स्थिति जानकर,

धरम धुरीन धीर नय नागर। सत्य सनेह सील सुख सागर॥
देसु कालु लखि समउ समाजू। नीति प्रीति पालक रघुराजू॥

धर्मधुरंधर, धीर, नीति में चतुर, सत्य, स्नेह, शील और सुख के समुद्र, नीति और प्रीति के पालन करनेवाले रघुनाथ देश, काल, अवसर और समाज को देखकर,

बोले बचन बानि सरबसु से। हित परिनाम सुनत ससि रसु से॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना॥

(तदनुसार) ऐसे वचन बोले जो मानो वाणी के सर्वस्व ही थे, परिणाम में हितकारी थे और सुनने में चंद्रमा के रस (अमृत)-सरीखे थे। (उन्होंने कहा -) हे तात भरत! तुम धर्म की धुरी को धारण करनेवाले हो, लोक और वेद दोनों के जाननेवाले और प्रेम में प्रवीण हो।

दो० - करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुर समाज लघु बंधु गुन कुसमयँ किमि कहि जात॥ 304॥

हे तात! कर्म से, वचन से और मन से निर्मल तुम्हारे समान तुम्हीं हो। गुरुजनों के समाज

में और ऐसे कुसमय में छोटे भाई के गुण किस तरह कहे जा सकते हैं?॥ 304॥

जानहु तात तरनि कुल रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती॥
समउ समाजु लाज गुरजन की। उदासीन हित अनहित मन की॥

हे तात! तुम सूर्यकुल की रीति को, सत्यप्रतिज्ञ पिता की कीर्ति और प्रीति को, समय, समाज और गुरुजनों की लज्जा (मर्यादा) को तथा उदासीन, मित्र और शत्रु सबके मन की बात को जानते हो।

तुम्हहि बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा॥

तुमको सबके कर्मों (कर्तव्यों) का और अपने तथा मेरे परम हितकारी धर्म का पता है। यद्यपि मुझे तुम्हारा सब प्रकार से भरोसा है, तथापि मैं समय के अनुसार कुछ कहता हूँ।

तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरकुल कृपाँ सँभारी॥
नतरु प्रजा परिजन परिवारू। हमहि सहित सबु होत खुआरू॥

हे तात! पिता के बिना (उनकी अनुपस्थिति में) हमारी बात केवल गुरुवंश की कृपा ने ही सम्हाल रखी है, नहीं तो हमारे समेत प्रजा, कुटुंब, परिवार सभी बर्बाद हो जाते।

जौं बिनु अवसर अथवँ दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा॥

यदि बिना समय के (संध्या से पूर्व ही) सूर्य अस्त हो जाए, तो कहो जगत में किस को क्लेश न होगा? हे तात! उसी प्रकार का उत्पात विधाता ने यह (पिता की असामयिक मृत्यु) किया है। पर मुनि महाराज ने तथा मिथिलेश्वर ने सबको बचा लिया।

दो॰ - राज काज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाउ पालिहि सबहि भल होइहि परिनाम॥ 305॥

राज्य का सब कार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी, धन, घर - इन सभी का पालन (रक्षण) गुरु का प्रभाव (सामर्थ्य) करेगा और परिणाम शुभ होगा॥ 305॥

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुर प्रसाद रखवारा॥

मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू॥

गुरु का प्रसाद (अनुग्रह) ही घर में और वन में समाज सहित तुम्हारा और हमारा रक्षक है। माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा (का पालन) समस्त धर्मरूपी पृथ्वी को धारण करने में शेष के समान है।

सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुल पालक होहू॥
साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी॥

हे तात! तुम वही करो और मुझसे भी कराओ तथा सूर्यकुल के रक्षक बनो। साधक के लिए यह एक ही (आज्ञापालनरूपी साधना) संपूर्ण सिद्धियों की देनेवाली, कीर्तिमयी, सद्‌गतिमयी और ऐश्वर्यमयी त्रिवेणी है।

सो बिचारि सहि संकटु भारी। करहु प्रजा परिवारू सुखारी॥
बाँटी बिपति सबहिं मोहि भाई। तुम्हहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई॥

इसे विचारकर भारी संकट सहकर भी प्रजा और परिवार को सुखी करो। हे भाई! मेरी विपत्ति सभी ने बाँट ली है, परंतु तुमको तो अवधि (चौदह वर्ष) तक बड़ी कठिनाई है (सबसे अधिक दुःख है)।

जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा। कुसमयँ तात न अनुचित मोरा॥
होहिं कुठायँ सुबंधु सहाए। ओड़िअहिं हाथ असनिहु के घाए॥

तुमको कोमल जानकर भी मैं कठोर (वियोग की बात) कह रहा हूँ। हे तात! बुरे समय में मेरे लिए यह कोई अनुचित बात नहीं है। कुठौर (कुअवसर) में श्रेष्ठ भाई ही सहायक होते हैं। वज्र के आघात भी हाथ से ही रोके जाते हैं।

दो० - सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ॥ 306॥

सेवक हाथ, पैर और नेत्रों के समान और स्वामी मुख के समान होना चाहिए। तुलसीदास कहते हैं कि सेवक-स्वामी की ऐसी प्रीति की रीति सुनकर सुकवि उसकी सराहना करते हैं॥ 306॥

सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम पयोधि अमिअँ जनु सानी॥

सिथिल समाज सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी॥

रघुनाथ की वाणी सुनकर, जो मानो प्रेमरूपी समुद्र के (मंथन से निकले हुए) अमृत में सनी हुई थी, सारा समाज शिथिल हो गया; सबको प्रेम समाधि लग गई। यह दशा देखकर सरस्वती ने चुप साध ली।

भरतहि भयउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू॥
मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू॥

भरत को परम संतोष हुआ। स्वामी के सम्मुख (अनुकूल) होते ही उनके दुःख और दोषों ने मुँह मोड़ लिया (वे उन्हें छोड़कर भाग गए)। उनका मुख प्रसन्न हो गया और मन का विषाद मिट गया। मानो गूँगे पर सरस्वती की कृपा हो गई हो।

कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी। बोले पानि पंकरुह जोरी॥
नाथ भयउ सुखु साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनमु भए को॥

उन्होंने फिर प्रेमपूर्वक प्रणाम किया और करकमलों को जोड़कर वे बोले - हे नाथ! मुझे आपके साथ जाने का सुख प्राप्त हो गया और मैंने जगत में जन्म लेने का लाभ भी पा लिया।

अब कृपाल जस आयसु होई। करौं सीस धरि सादर सोई॥
सो अवलंब देव मोहि देई। अवधि पारु पावौं जेहि सेई॥

हे कृपालु! अब जैसी आज्ञा हो, उसी को मैं सिर पर धरकर आदरपूर्वक करूँ! परंतु देव! आप मुझे वह अवलंबन (कोई सहारा) दें, जिसकी सेवा कर मैं अवधि का पार पा जाऊँ (अवधि को बिता दूँ)।

दो० - देव देव अभिषेक हित गुर अनुसासनु पाइ।
आनेउँ सब तीरथ सलिलु तेहि कहँ काह रजाइ॥ 307॥

हे देव! स्वामी (आप) के अभिषेक के लिए गुरु की आज्ञा पाकर मैं सब तीर्थों का जल लेता आया हूँ; उसके लिए क्या आज्ञा होती है?॥ 307॥

एकु मनोरथु बड़ मन माहीं। सभयँ सकोच जात कहि नाहीं॥

कहहु तात प्रभु आयसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई॥

मेरे मन में एक और बड़ा मनोरथ है, जो भय और संकोच के कारण कहा नहीं जाता। (राम ने कहा -) हे भाई! कहो। तब प्रभु की आज्ञा पाकर भरत स्नेहपूर्ण सुंदर वाणी बोले -

चित्रकूट सुचि थल तीरथ बन। खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन॥
प्रभु पद अंकित अवनि बिसेषी। आयसु होइ त आवौं देखी॥

आज्ञा हो तो चित्रकूट के पवित्र स्थान, तीर्थ, वन, पक्षी-पशु, तालाब-नदी, झरने और पर्वतों के समूह तथा विशेष कर प्रभु (आप) के चरण चिह्नों से अंकित भूमि को देख आऊँ।

अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात बिगतभय कानन चरहू॥
मुनि प्रसाद बनु मंगल दाता। पावन परम सुहावन भ्राता॥

(रघुनाथ बोले -) अवश्य ही अत्रि ऋषि की आज्ञा को सिर पर धारण करो (उनसे पूछकर वे जैसा कहें वैसा करो) और निर्भय होकर वन में विचरो। हे भाई! अत्रि मुनि के प्रसाद से वन मंगलों का देनेवाला, परम पवित्र और अत्यंत सुंदर है -

रिषिनायकु जहँ आयसु देहीं। राखेहु तीरथ जलु थल तेहीं॥
सुनि प्रभु बचन भरत सुखु पावा। मुनि पद कमल मुदित सिरु नावा॥

और ऋषियों के प्रमुख अत्रि जहाँ आज्ञा दें, वहीं (लाया हुआ) तीर्थों का जल स्थापित कर देना। प्रभु के वचन सुनकर भरत ने सुख पाया और आनंदित होकर मुनि अत्रि के चरणकमलों में सिर नवाया।

दो॰ - भरत राम संबादु सुनि सकल सुमंगल मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल बरषत सुरतरु फूल॥ 308॥

समस्त सुंदर मंगलों का मूल भरत और राम का संवाद सुनकर स्वार्थी देवता रघुकुल की सराहना करके कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे॥ 308॥

धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरिआईं॥
मुनि मिथिलेस सभाँ सब काहू। भरत बचन सुनि भयउ उछाहू॥

'भरत धन्य हैं, स्वामी राम की जय हो!' ऐसा कहते हुए देवता बलपूर्वक (अत्यधिक) हर्षित होने लगे। भरत के वचन सुनकर मुनि वशिष्ठ, मिथिलापति जनक और सभा में सब किसी को बड़ा उत्साह (आनंद) हुआ।

भरत राम गुन ग्राम सनेहू। पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन। नेमु प्रेमु अति पावन पावन॥

भरत और राम के गुणसमूह की तथा प्रेम की विदेहराज जनक पुलकित होकर प्रशंसा कर रहे हैं। सेवक और स्वामी दोनों का सुंदर स्वभाव है। इनके नियम और प्रेम पवित्र को भी अत्यंत पवित्र करनेवाले हैं।

मति अनुसार सराहन लागे। सचिव सभासद सब अनुरागे॥
सुनि सुनि राम भरत संबादू। दुहु समाज हियँ हरषु बिषादू॥

मंत्री और सभासद सभी प्रेममुग्ध होकर अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार सराहना करने लगे। राम और भरत का संवाद सुन-सुनकर दोनों समाजों के हृदयों में हर्ष और विषाद (भरत के सेवा धर्म को देखकर हर्ष और रामवियोग की संभावना से विषाद) दोनों हुए।

राम मातु दुखु सुखु सम जानी। कहि गुन राम प्रबोधीं रानी॥
एक कहहिं रघुबीर बड़ाई। एक सराहत भरत भलाई॥

राम की माता कौसल्या ने दुःख और सुख को समान जानकर राम के गुण कहकर दूसरी रानियों को धैर्य बँधाया। कोई राम की बड़ाई (बड़प्पन) की चर्चा कर रहे हैं, तो कोई भरत के अच्छेपन की सराहना करते हैं।

दो० - अत्रि कहेउ तब भरत सन सैल समीप सुकूप।
राखिअ तीरथ तोय तहँ पावन अमिअ अनूप॥ 309॥

तब अत्रि ने भरत से कहा - इस पर्वत के समीप ही एक सुंदर कुआँ है। इस पवित्र, अनुपम और अमृत-जैसे तीर्थजल को उसी में स्थापित कर दीजिए॥ 309॥

भरत अत्रि अनुसासन पाई। जल भाजन सब दिए चलाई॥

सानुज आपु अत्रि मुनि साधू। सहित गए जहँ कूप अगाधू॥

भरत ने अत्रिमुनि की आज्ञा पाकर जल के सब पात्र रवाना कर दिए और छोटे भाई शत्रुघ्न, अत्रि मुनि तथा अन्य साधु-संतों सहित आप वहाँ गए, जहाँ वह अथाह कुआँ था।

पावन पाथ पुन्यथल राखा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाषा॥
तात अनादि सिद्ध थल एहू। लोपेउ काल बिदित नहिं केहू॥

और उस पवित्र जल को उस पुण्य स्थल में रख दिया। तब अत्रि ऋषि ने प्रेम से आनंदित होकर ऐसा कहा - हे तात! यह अनादि सिद्धस्थल है। कालक्रम से यह लोप हो गया था इसलिए किसी को इसका पता नहीं था।

तब सेवकन्ह सरस थलु देखा। कीन्ह सुजल हित कूप बिसेषा॥
बिधि बस भयउ बिस्व उपकारू। सुगम अगम अति धरम बिचारू॥

तब (भरत के) सेवकों ने उस जलयुक्त स्थान को देखा और उस सुंदर (तीर्थों के) जल के लिए एक खास कुआँ बना लिया। दैवयोग से विश्वभर का उपकार हो गया। धर्म का विचार जो अत्यंत अगम था, वह (इस कूप के प्रभाव से) सुगम हो गया।

भरतकूप अब कहिहहिं लोगा। अति पावन तीरथ जल जोगा॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। होइहहिं बिमल करम मन बानी॥

अब इसको लोग भरतकूप कहेंगे। तीर्थों के जल के संयोग से तो यह अत्यंत ही पवित्र हो गया। इसमें प्रेमपूर्वक नियम से स्नान करने पर प्राणी मन, वचन और कर्म से निर्मल हो जाएँगे।

दो॰ - कहत कूप महिमा सकल गए जहाँ रघुराउ।
अत्रि सुनायउ रघुबरहि तीरथ पुन्य प्रभाउ॥ 310॥

कूप की महिमा कहते हुए सब लोग वहाँ गए जहाँ रघुनाथ थे। रघुनाथ को अत्रि ने उस तीर्थ का पुण्य प्रभाव सुनाया॥ 310॥

कहत धरम इतिहास सप्रीती। भयउ भोरु निसि सो सुख बीती॥
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई। राम अत्रि गुर आयसु पाई॥

प्रेमपूर्वक धर्म के इतिहास कहते वह रात सुख से बीत गई और सबेरा हो गया। भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई नित्यक्रिया पूरी करके, राम, अत्रि और गुरु वशिष्ठ की आज्ञा पाकर,

सहित समाज साज सब सादें। चले राम बन अटन पयादें॥
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं। भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं॥

समाज सहित सब सादे साज से राम के वन में भ्रमण (प्रदक्षिणा) करने के लिए पैदल ही चले। कोमल चरण हैं और बिना जूते के चल रहे हैं, यह देखकर पृथ्वी मन-ही-मन सकुचाकर कोमल हो गई।

कुस कंटक काँकरीं कुराईं। कटुक कठोर कुबस्तु दुराईं॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे। बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे॥

कुश, काँटे, कंकड़ी, दरारें आदि कड़वी, कठोर और बुरी वस्तुओं को छिपाकर पृथ्वी ने सुंदर और कोमल मार्ग कर दिए। सुखों को साथ लिए (सुखदायक) शीतल, मंद, सुगंध हवा चलने लगी।

सुमन बरषि सुर घन करि छाहीं। बिटप फूलि फलि तृन मृदुताहीं॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी॥

रास्ते में देवता फूल बरसाकर, बादल छाया करके, वृक्ष फूल-फलकर, तृण अपनी कोमलता से, मृग (पशु) देखकर और पक्षी सुंदर वाणी बोलकर सभी भरत को राम के प्यारे जानकर उनकी सेवा करने लगे।

दो० - सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात।
राम प्रानप्रिय भरत कहुँ यह न होइ बड़ि बात॥ 311॥

जब एक साधारण मनुष्य को भी (आलस्य से) जँभाई लेते समय 'राम' कह देने से ही सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं, तब राम के प्राण प्यारे भरत के लिए यह कोई बड़ी (आश्चर्य की) बात नहीं है॥ 311॥

एहि बिधि भरतु फिरत बन माहीं। नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं॥
पुन्य जलाश्रय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा॥

इस प्रकार भरत वन में फिर रहे हैं। उनके नियम और प्रेम को देखकर मुनि भी सकुचा

जाते हैं। पवित्र जल के स्थान (नदी, बावली, कुंड आदि) पृथ्वी के पृथक-पृथक भाग, पक्षी, पशु, वृक्ष, तृण (घास), पर्वत, वन और बगीचे -

चारु बिचित्र पबित्र बिसेषी। बूझत भरतु दिब्य सब देखी॥
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ॥

सभी विशेष रूप से सुंदर, विचित्र, पवित्र और दिव्य देखकर भरत पूछते हैं और उनका प्रश्न सुनकर ऋषिराज अत्रि प्रसन्न मन से सबके कारण, नाम, गुण और पुण्य-प्रभाव को कहते हैं।

कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा॥
कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई॥

भरत कहीं स्नान करते हैं, कहीं प्रणाम करते हैं, कहीं मनोहर स्थानों के दर्शन करते हैं और कहीं मुनि अत्रि की आज्ञा पाकर बैठकर, सीता सहित राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों का स्मरण करते हैं।

देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित बनदेवा॥
फिरहिं गएँ दिनु पहर अढ़ाई। प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई॥

भरत के स्वभाव, प्रेम और सुंदर सेवाभाव को देखकर वनदेवता आनंदित होकर आशीर्वाद देते हैं। यों घूम-फिरकर ढाई पहर दिन बीतने पर लौट पड़ते हैं और आकर प्रभु रघुनाथ के चरणकमलों का दर्शन करते हैं।

दो० - देखे थल तीरथ सकल भरत पाँच दिन माझ।
कहत सुनत हरि हर सुजसु गयउ दिवसु भइ साँझ॥ 312॥

भरत ने पाँच दिन में सब तीर्थ स्थानों के दर्शन कर लिए। भगवान विष्णु और महादेव का सुंदर यश कहते-सुनते वह (पाँचवाँ) दिन भी बीत गया, संध्या हो गई॥ 312॥

भोर न्हाइ सबु जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तेरहुति राजू॥
भल दिन आजु जानि मन माहीं। रामु कृपाल कहत सकुचाहीं॥

(अगले छठे दिन) सबेरे स्नान करके भरत, ब्राह्मण, राजा जनक और सारा समाज आ जुटा। आज सबको विदा करने के लिए अच्छा दिन है, यह मन में जानकर भी कृपालु राम

कहने में सकुचा रहे हैं।

गुर नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी॥
सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची॥

राम ने गुरु वशिष्ठ, राजा जनक, भरत और सारी सभा की ओर देखा, किंतु फिर सकुचाकर दृष्टि फेरकर वे पृथ्वी की ओर ताकने लगे। सभा उनके शील की सराहना करके सोचती है कि राम के समान संकोची स्वामी कहीं नहीं है।

भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेषी॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखीं नाथ सकल रुचि मोरी॥

सुजान भरत राम का रुख देखकर प्रेमपूर्वक उठकर, विशेष रूप से धीरज धारण कर दंडवत करके हाथ जोड़कर कहने लगे - हे नाथ! आपने मेरी सभी रुचियाँ रखीं।

मोहि लगि सहेउ सबहिं संतापू। बहुत भाँति दुखु पावा आपू॥
अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवौं अवध अवधि भरि जाई॥

मेरे लिए सब लोगों ने संताप सहा और आपने भी बहुत प्रकार से दुःख पाया। अब स्वामी मुझे आज्ञा दें। मैं जाकर अवधिभर (चौदह वर्ष तक) अवध का सेवन करूँ।

दो० - जेहिं उपाय पुनि पाय जनु देखै दीनदयाल।
सो सिख देइअ अवधि लगि कोसलपाल कृपाल॥ 313॥

हे दीनदयालु! जिस उपाय से यह दास फिर चरणों का दर्शन करे - हे कोसलाधीश! हे कृपालु! अवधिभर के लिए मुझे वही शिक्षा दीजिए॥ 313॥

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेहँ सगाईं॥
राउर बदि भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू॥

हे गोसाईं! आपके प्रेम और संबंध में अवधपुरवासी, कुटुंबी और प्रजा सभी पवित्र और रस (आनंद) से युक्त हैं। आपके लिए भवदुःख (जन्म-मरण के दुःख) की ज्वाला में जलना भी अच्छा है और प्रभु (आप) के बिना परमपद (मोक्ष) का लाभ भी व्यर्थ है।

स्वामि सुजानु जानि सब ही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की॥

प्रनतपालु पालिहि सब काहू। देउ दुहू दिसि ओर निबाहू॥

हे स्वामी! आप सुजान हैं, सभी के हृदय की और मुझ सेवक के मन की रुचि, लालसा (अभिलाषा) और रहनी जानकर, हे प्रणतपाल! आप सब किसी का पालन करेंगे और हे देव! दोनों ओर अंत तक निबाहेंगे।

अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो। किएँ बिचारु न सोचु खरो सो॥
आरति मोर नाथ कर छोहू। दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठु हठि मोहू॥

मुझे सब प्रकार से ऐसा बहुत बड़ा भरोसा है। विचार करने पर तिनके के बराबर (जरा-सा) भी सोच नहीं रह जाता! मेरी दीनता और स्वामी का स्नेह दोनों ने मिलकर मुझे जबरदस्ती ढीठ बना दिया है।

यह बड़ दोषु दूरि करि स्वामी। तजि सकोच सिखइअ अनुगामी॥
भरत बिनय सुनि सबहिं प्रसंसी। खीर नीर बिबरन गति हंसी॥

हे स्वामी! इस बड़े दोष को दूर करके संकोच त्याग कर मुझ सेवक को शिक्षा दीजिए। दूध और जल को अलग-अलग करने में हंसिनी की-सी गतिवाली भरत की विनती सुनकर उसकी सभी ने प्रशंसा की।

दो० - दीनबंधु सुनि बंधु के वचन दीन छलहीन।
देस काल अवसर सरिस बोले रामु प्रबीन॥ 314॥

दीनबंधु और परम चतुर राम ने भाई भरत के दीन और छलरहित वचन सुनकर देश, काल और अवसर के अनुकूल वचन बोले - ॥ 314॥

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहि नृपहि घर बन की॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहूँ न कलेसू॥

हे तात! तुम्हारी, मेरी, परिवार की, घर की और वन की सारी चिंता गुरु वशिष्ठ और महाराज जनक को है। हमारे सिर पर जब गुरु, मुनि विश्वामित्र और मिथिलापति जनक हैं, तब हमें और तुम्हें स्वप्न नें भी क्लेश नहीं है।

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु॥

पितु आयसु पालिहिं दुहु भाईं। लोक बेद भल भूप भलाईं॥

मेरा और तुम्हारा तो परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ इसी में है कि हम दोनों भाई पिता की आज्ञा का पालन करें। राजा की भलाई (उनके व्रत की रक्षा) से ही लोक और वेद दोनों में भला है।

गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥

गुरु, पिता, माता और स्वामी की शिक्षा (आज्ञा) का पालन करने से कुमार्ग पर भी चलने पर पैर गड्ढे में नहीं पड़ता (पतन नहीं होता)। ऐसा विचार कर सब सोच छोड़कर अवध जाकर अवधिभर उसका पालन करो।

देसु कोसु परिजन परिवारू। गुर पद रजहिं लाग छरुभारू॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥

देश, खजाना, कुटुंब, परिवार आदि सबकी जिम्मेदारी तो गुरु की चरण रज पर है। तुम तो मुनि वशिष्ठ, माताओं और मंत्रियों की शिक्षा मानकर तदनुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानी का पालन (रक्षा) भर करते रहना।

दो० - मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥ 315॥

तुलसीदास कहते हैं - (राम ने कहा -) मुखिया मुख के समान होना चाहिए, जो खाने-पीने को तो एक (अकेला) है, परंतु विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन-पोषण करता है॥ 315॥

राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माहँ मनोरथ गोई॥
बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती॥

राजधर्म का सर्वस्व (सार) भी इतना ही है। जैसे मन के भीतर मनोरथ छिपा रहता है। रघुनाथ ने भाई भरत को बहुत प्रकार से समझाया, परंतु कोई अवलंबन पाए बिना उनके मन में न संतोष हुआ, न शांति।

भरत सील गुर सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू॥

प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥

इधर तो भरत का शील (प्रेम) और उधर गुरुजनों, मंत्रियों तथा समाज की उपस्थिति! यह देखकर रघुनाथ संकोच तथा स्नेह के विशेष वशीभूत हो गए। (अर्थात भरत के प्रेमवश उन्हें पाँवरी देना चाहते हैं, किंतु साथ ही गुरु आदि का संकोच भी होता है।) आखिर (भरत के प्रेमवश) प्रभु राम ने कृपा कर खड़ाऊँ दे दीं और भरत ने उन्हें आदरपूर्वक सिर पर धारण कर लिया।

चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के॥

करुणानिधान राम के दोनों ख़ड़ाऊँ प्रजा के प्राणों की रक्षा के लिए मानो दो पहरेदार हैं। भरत के प्रेमरूपी रत्न के लिए मानो डिब्बा है और जीव के साधन के लिए मानो राम-नाम के दो अक्षर हैं।

कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के॥
भरत मुदित अवलंब लहे तें। अस सुख जस सिय रामु रहे तें॥

रघुकुल (की रक्षा) के लिए दो किवाड़ हैं। कुशल (श्रेष्ठ) कर्म करने के लिए दो हाथ की भाँति (सहायक) हैं। और सेवारूपी श्रेष्ठ धर्म के सुझाने के लिए निर्मल नेत्र हैं। भरत इस अवलंब के मिल जाने से परम आनंदित हैं। उन्हें ऐसा ही सुख हुआ, जैसा सीताराम के रहने से होता।

दो० - मागेउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ॥ 316॥

भरत ने प्रणाम करके विदा माँगी, तब राम ने उन्हें हृदय से लगा लिया। इधर कुटिल इंद्र ने बुरा मौका पाकर लोगों का उच्चाटन कर दिया॥ 316॥

सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधि आस सम जीवनि जी की॥
नतरु लखन सिय राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा॥

वह कुचाल भी सबके लिए हितकर हो गई। अवधि की आशा के समान ही वह जीवन के लिए संजीवनी हो गई। नहीं तो (उच्चाटन न होता तो) लक्ष्मण, सीता और राम के

वियोगरूपी बुरे रोग से सब लोग घबड़ाकर (हाय-हाय करके) मर ही जाते।

रामकृपाँ अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेम रसु न कहि न परत सो॥

राम की कृपा ने सारी उलझन सुधार दी। देवताओं की सेना जो लूटने आई थी, वही गुणदायक (हितकरी) और रक्षक बन गई। राम भुजाओं में भरकर भाई भरत से मिल रहे हैं। राम के प्रेम का वह रस (आनंद) कहते नहीं बनता।

तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर धुरंधर धीरजु त्यागा॥
बारिज लोचन मोचत बारी। देखि दसा सुर सभा दुखारी॥

तन, मन और वचन तीनों में प्रेम उमड़ पड़ा। धीरज की धुरी को धारण करनेवाले रघुनाथ ने भी धीरज त्याग दिया। वे कमल सदृश नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बहाने लगे। उनकी यह दशा देखकर देवताओं की सभा (समाज) दुःखी हो गई।

मुनिगन गुर धुर धीर जनक से। ग्यान अनल मन कसें कनक से॥
जे बिरंचि निरलेप उपाए। पदुम पत्र जिमि जग जल जाए॥

मुनिगण, गुरु वशिष्ठ और जनक-सरीखे धीरधुरंधर जो अपने मनों को ज्ञानरूपी अग्नि में सोने के समान कस चुके थे, जिनको ब्रह्मा ने निर्लेप ही रचा और जो जगतरूपी जल में कमल के पत्ते की तरह ही (जगत में रहते हुए भी जगत से अनासक्त) पैदा हुए।

दो० - तेउ बिलोकि रघुबर भरत प्रीति अनूप अपार।
भए मगन मन तन बचन सहित बिराग बिचार॥ 317॥

वे भी राम और भरत के उपमारहित अपार प्रेम को देखकर वैराग्य और विवेक सहित तन, मन, वचन से उस प्रेम में मग्न हो गए॥ 317॥

जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी॥
बरनत रघुबर भरत बियोगू। सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू॥

जहाँ जनक और गुरु वशिष्ठ की बुद्धि की गति कुंठित हो, उस दिव्य प्रेम को प्राकृत (लौकिक) कहने में बड़ा दोष है। राम और भरत के वियोग का वर्णन करते सुनकर लोग

कवि को कठोर हृदय समझेंगे।

सो सकोच रसु अकथ सुबानी। समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी॥
भेंटि भरतु रघुबर समुझाए। पुनि रिपुदवनु हरषि हियँ लाए॥

वह संकोच-रस अकथनीय है। अतएव कवि की सुंदर वाणी उस समय उसके प्रेम को स्मरण करके सकुचा गई। भरत को भेंट कर रघुनाथ ने उनको समझाया। फिर हर्षित होकर शत्रुघ्न को हृदय से लगा लिया।

सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई॥
सुनि दारुन दुखु दुहूँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा॥

सेवक और मंत्री भरत का रुख पाकर सब अपने-अपने काम में जा लगे। यह सुनकर दोनों समाजों में दारुण दुःख छा गया। वे चलने की तैयारियाँ करने लगे।

प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई॥
मुनि तापस बनदेव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी॥

प्रभु के चरणकमलों की वंदना करके तथा राम की आज्ञा को सिर पर रखकर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले। मुनि, तपस्वी और वनदेवता सबका बार-बार सम्मान करके उनकी विनती की।

दो० - लखनहि भेंटि प्रनामु करि सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि सकल सुमंगल मूरि॥ 318॥

फिर लक्ष्मण को क्रमशः भेंटकर तथा प्रणाम करके और सीता के चरणों की धूलि को सिर पर धारण करके और समस्त मंगलों के मूल आशीर्वाद सुनकर वे प्रेमसहित चले॥ 318॥

सानुज राम नृपहि सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई॥
देव दया बस बड़ दुखु पायउ। सहित समाज काननहिं आयउ॥

छोटे भाई लक्ष्मण समेत राम ने राजा जनक को सिर नवाकर उनकी बहुत प्रकार से विनती और बड़ाई की (और कहा -) हे देव! दयावश आपने बहुत दुःख पाया। आप समाज सहित वन में आए।

पुर पगु धारिअ देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किए हरि हर सम जाने॥

अब आशीर्वाद देकर नगर को पधारिए। यह सुन राजा जनक ने धीरज धरकर गमन किया। फिर राम ने मुनि, ब्राह्मण और साधुओं को विष्णु और शिव के समान जानकर सम्मान करके उनको विदा किया।

सासु समीप गए दोउ भाई। फिरे बंदि पग आसिष पाई॥
कौसिक बामदेव जाबाली। पुरजन परिजन सचिव सुचाली॥

तब राम-लक्ष्मण दोनों भाई सास (सुनयना) के पास गए और उनके चरणों की वंदना करके आशीर्वाद पाकर लौट आए। फिर विश्वामित्र, वामदेव, जाबालि और शुभ आचरणवाले कुटुंबी, नगर निवासी और मंत्री -

जथा जोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किए सब सानुज रामा॥
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥

सबको छोटे भाई लक्ष्मण सहित राम ने यथायोग्य विनय एवं प्रणाम करके विदा किया। कृपानिधान राम ने छोटे, मध्यम (मझले) और बड़े सभी श्रेणी के स्त्री-पुरुषों का सम्मान करके उनको लौटाया।

दो० - भरत मातु पद बंदि प्रभु सुचि सनेहँ मिलि भेंटि।
बिदा कीन्ह सजि पालकी सकुच सोच सब मेटि॥ 319॥

भरत की माता कैकेयी के चरणों की वंदना करके प्रभु राम ने पवित्र (निश्छल) प्रेम के साथ उनसे मिल-भेंट कर तथा उनके सारे संकोच और सोच को मिटाकर पालकी सजाकर उनको विदा किया॥ 319॥

परिजन मातु पितहि मिलि सीता। फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता॥
करि प्रनामु भेंटीं सब सासू। प्रीति कहत कबि हियँ न हुलासू॥

प्राणप्रिय पति राम के साथ पवित्र प्रेम करनेवाली सीता नैहर के कुटुंबियों से तथा माता-पिता से मिलकर लौट आईं। फिर प्रणाम करके सब सासुओं से गले लगकर मिलीं। उनके प्रेम का वर्णन करने के लिए कवि के हृदय में हुलास (उत्साह) नहीं होता।

सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रही सीय दुहु प्रीति समाई॥
रघुपति पटु पालकीं मगाईं। करि प्रबोध सब मातु चढ़ाईं॥

उनकी शिक्षा सुनकर और मनचाहा आशीर्वाद पाकर सीता सासुओं तथा माता-पिता दोनों ओर की प्रीति में समाई (बहुत देर तक निमग्न) रहीं! (तब) रघुनाथ ने सुंदर पालकियाँ मँगवाईं और सब माताओं को आश्वासन देकर उन पर चढ़ाया।

बार बार हिलि मिलि दुहु भाईं। सम सनेहँ जननीं पहुँचाईं॥
साजि बाजि गज बाहन नाना। भरत भूप दल कीन्ह पयाना॥

दोनों भाइयों ने माताओं से समान प्रेम से बार-बार मिल-जुलकर उनको पहुँचाया। भरत और राजा जनक के दलों ने घोड़े, हाथी और अनेकों तरह की सवारियाँ सजाकर प्रस्थान किया।

हृदयँ रामु सिय लखन समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता॥
बसह बाजि गज पसु हियँ हारें। चले जाहिं परबस मन मारें॥

सीता एवं लक्ष्मण सहित राम को हृदय में रखकर सब लोग बेसुध हुए चले जा रहे हैं। बैल-घोड़े, हाथी आदि पशु हृदय में हारे (शिथिल) हुए परवश मन मारे चले जा रहे हैं।

दो० - गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु सीता लखन समेत।
फिरे हरष बिसमय सहित आए परन निकेत॥ 320॥

गुरु वशिष्ठ और गुरु पत्नी अरुंधती के चरणों की वंदना करके सीता और लक्ष्मण सहित प्रभु राम हर्ष और विषाद के साथ लौटकर पर्णकुटी पर आए॥ 320॥

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदयँ बड़ बिरह बिषादू॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी॥

फिर सम्मान करके निषादराज को विदा किया। वह चला तो सही, किंतु उसके हृदय में विरह का भारी विषाद था। फिर राम ने कोल, किरात, भील आदि वनवासी लोगों को लौटाया। वे सब जोहार-जोहार कर (वंदना कर-करके) लौटे।

प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं॥

भरत सनेह सुभाउ सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी॥

प्रभु राम, सीता और लक्ष्मण बड़ की छाया में बैठकर प्रियजन एवं परिवार के वियोग से दुःखी हो रहे हैं। भरत के स्नेह, स्वभाव और सुंदर वाणी को बखान-बखान कर वे प्रिय पत्नी सीता और छोटे भाई लक्ष्मण से कहने लगे।

प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेम बस बरनी॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना॥

राम ने प्रेम के वश होकर भरत के वचन, मन, कर्म की प्रीति तथा विश्वास का अपने श्रीमुख से वर्णन किया। उस समय पक्षी, पशु और जल की मछलियाँ, चित्रकूट के सभी चेतन और जड़ जीव उदास हो गए।

बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कहि गति घर घर की॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डर न खरो सो॥

रघुनाथ की दशा देखकर देवताओं ने उन पर फूल बरसाकर अपनी घर-घर की दशा कही (दुखड़ा सुनाया)। प्रभु राम ने उन्हें प्रणाम कर आश्वासन दिया। तब वे प्रसन्न होकर चले, मन में जरा-सा भी डर न रहा।

दो० - सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर॥ 321॥

छोटे भाई लक्ष्मण और सीता समेत प्रभु राम पर्णकुटी में ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो वैराग्य, भक्ति और ज्ञान शरीर धारण करके शोभित हो रहे हों॥ 321॥

मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू। राम बिरहँ सबु साजु बिहालू।
प्रभु गुन ग्राम गनत मन माहीं। सब चुपचाप चले मग जाहीं॥

मुनि, ब्राह्मण, गुरु वशिष्ठ, भरत और राजा जनक - सारा समाज राम के विरह में विह्वल है। प्रभु के गुणसमूहों का मन में स्मरण करते हुए सब लोग मार्ग में चुपचाप चले जा रहे हैं।

जमुना उतरि पार सबु भयऊ। सो बासरु बिनु भोजन गयऊ॥

उतरि देवसरि दूसर बासू। रामसखाँ सब कीन्ह सुपासू॥

(पहले दिन) सब लोग यमुना उतरकर पार हुए। वह दिन बिना भोजन के ही बीत गया। दूसरा मुकाम गंगा उतरकर (गंगापार श्रृंगवेरपुर में) हुआ। वहाँ राम सखा निषादराज ने सब सुप्रबंध कर दिया।

सई उतरि गोमतीं नहाए। चौथें दिवस अवधपुर आए॥
जनकु रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज सँभारी॥

फिर सई उतरकर गोमती में स्नान किया और चौथे दिन सब अयोध्या जा पहुँचे। जनक चार दिन अयोध्या में रहे और राजकाज एवं सब साज-सामान को सम्हालकर,

सौंपि सचिव गुर भरतहिं राजू। तेरहुति चले साजि सबु साजू॥
नगर नारि नर गुर सिख मानी। बसे सुखेन राम रजधानी॥

तथा मंत्री, गुरु तथा भरत को राज्य सौंपकर, सारा साज-सामान ठीक करके तिरहुत को चले। नगर के स्त्री-पुरुष गुरु की शिक्षा मानकर राम की राजधानी अयोध्या में सुखपूर्वक रहने लगे।

दो० - राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपबास।
तजि तजि भूषन भोग सुख जिअत अवधि कीं आस॥ 322॥

सब लोग राम के दर्शन के लिए नियम और उपवास करने लगे। वे भूषण और भोग-सुखों को छोड़-छाड़कर अवधि की आशा पर जी रहे हैं॥ 322॥

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे॥
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेवकाई॥

भरत ने मंत्रियों और विश्वासी सेवकों को समझाकर उद्‌यत किया। वे सब सीख पाकर अपने-अपने काम में लग गए। फिर छोटे भाई शत्रुघ्न को बुलाकर शिक्षा दी और सब माताओं की सेवा उनको सौंपी।

भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम बय बिनय निहोरे॥
ऊँच नीच कारजु भल पोचू। आयसु देब न करब सँकोचू॥

ब्राह्मणों को बुलाकर भरत ने हाथ जोड़कर प्रणाम कर अवस्था के अनुसार विनय और निहोरा किया कि आप लोग ऊँचा-नीचा (छोटा-बड़ा), अच्छा-मंदा जो कुछ भी कार्य हो, उसके लिए आज्ञा दीजिएगा। संकोच न कीजिएगा।

परिजन पुरजन प्रजा बोलाए। समाधानु करि सुबस बसाए॥
सानुज गे गुर गेहँ बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी॥

भरत ने फिर परिवार के लोगों को, नागरिकों को तथा अन्य प्रजा को बुलाकर, उनका समाधान करके उनको सुखपूर्वक बसाया। फिर छोटे भाई शत्रुघ्न सहित वे गुरु के घर गए और दंडवत करके हाथ जोड़कर बोले -

आयसु होइ त रहौं सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सपेमा॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई॥

आज्ञा हो तो मैं नियमपूर्वक रहूँ! मुनि वशिष्ठ पुलकित शरीर हो प्रेम के साथ बोले - हे भरत! तुम जो कुछ समझोगे, कहोगे और करोगे, वही जगत में धर्म का सार होगा।

दो० - सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि।
सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि॥ 323॥

भरत ने यह सुनकर और शिक्षा तथा बड़ा आशीर्वाद पाकर ज्योतिषियों को बुलाया और दिन (अच्छा मुहूर्त) साधकर प्रभु की चरणपादुकाओं को निर्विघ्नतापूर्वक सिंहासन पर विराजित कराया॥ 323॥

राम मातु गुर पद सिरु नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई॥
नंदिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा॥

फिर राम की माता कौसल्या और गुरु के चरणों में सिर नवाकर और प्रभु की चरणपादुकाओं की आज्ञा पाकर धर्म की धुरी धारण करने में धीर भरत ने नंदिग्राम में पर्णकुटी बनाकर उसी में निवास किया।

जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा॥

सिर पर जटाजूट और शरीर में मुनियों के (वल्कल) वस्त्र धारण कर, पृथ्वी को खोदकर

उसके अंदर कुश की आसनी बिछाई। भोजन, वस्त्र, बरतन, व्रत, नियम - सभी बातों में वे ऋषियों के कठिन धर्म का प्रेम सहित आचरण करने लगे।

भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिन तूरी॥
अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥

गहने-कपड़े और अनेकों प्रकार के भोग-सुखों को मन, तन और वचन से तृण तोड़कर (प्रतिज्ञा करके) त्याग दिया। जिस अयोध्या के राज्य को देवराज इंद्र सिहाते थे और (जहाँ के राजा) दशरथ की संपत्ति सुनकर कुबेर भी लजा जाते थे,

तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥
रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥

उसी अयोध्यापुरी में भरत अनासक्त होकर इस प्रकार निवास कर रहे हैं, जैसे चंपा के बाग में भौंरा। राम के प्रेमी बड़भागी पुरुष लक्ष्मी के विलास (भोगैश्वर्य) को वमन की भाँति त्याग देते हैं (फिर उसकी ओर ताकते भी नहीं)।

दो० - राम प्रेम भाजन भरतु बड़े न एहिं करतूति।
चातक हंस सराहिअत टेंक बिबेक बिभूति॥ 324॥

फिर भरत तो (स्वयं) राम के प्रेम के पात्र हैं। वे इस (भोगैश्वर्यत्यागरूप) करनी से बड़े नहीं हुए (अर्थात उनके लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है)। (पृथ्वी पर का जल न पीने की) टेक से चातक की और नीर-क्षीर-विवेक की विभूति (शक्ति) से हंस की भी सराहना होती है॥ 324॥

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुखछबि सोई॥
नित नव राम प्रेम पनु पीना। बढ़त धरम दलु मनु न मलीना॥

भरत का शरीर दिनों-दिन दुबला होता जाता है। तेज (अन्न, घृत आदि से उत्पन्न होनेवाला मेद) घट रहा है। बल और मुख छवि (मुख की कांति अथवा शोभा) वैसी ही बनी हुई है। राम प्रेम का प्रण नित्य नया और पुष्ट होता है, धर्म का दल बढ़ता है और मन उदास नहीं है (अर्थात प्रसन्न है)।

जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥

सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा॥

जैसे शरद ऋतु के प्रकाश (विकास) से जल घटता है, किंतु बेंत शोभा पाते हैं और कमल विकसित होते हैं। शम, दम, संयम, नियम और उपवास आदि भरत के हृदयरूपी निर्मल आकाश के नक्षत्र (तारागण) हैं।

ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी॥
राम प्रेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा॥

विश्वास ही (उस आकाश में) ध्रुव तारा है, चौदह वर्ष की अवधि (का ध्यान) पूर्णिमा के समान है और स्वामी राम की सुरति (स्मृति) आकाशगंगा-सरीखी प्रकाशित है। राम प्रेम ही अचल (सदा रहनेवाला) और कलंकरहित चंद्रमा है। वह अपने समाज (नक्षत्रों) सहित नित्य सुंदर सुशोभित है।

भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गमु नाहीं॥

भरत की रहनी, समझ, करनी, भक्ति, वैराग्य, निर्मल, गुण और ऐश्वर्य का वर्णन करने में सभी सुकवि सकुचाते हैं; क्योंकि वहाँ (औरों की तो बात ही क्या) स्वयं शेष, गणेश और सरस्वती की भी पहुँच नहीं है।

दो० - नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति॥ 325॥

वे नित्य प्रति प्रभु की पादुकाओं का पूजन करते हैं, हृदय में प्रेम समाता नहीं है। पादुकाओं से आज्ञा माँग-माँगकर वे बहुत प्रकार (सब प्रकार के) राज-काज करते हैं॥ 325॥

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू॥
लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं॥

शरीर पुलकित है, हृदय में सीताराम हैं। जीभ राम-नाम जप रही है, नेत्रों में प्रेम का जल भरा है। लक्ष्मण, राम और सीता तो वन में बसते हैं, परंतु भरत घर ही में रहकर तप के द्वारा शरीर को कस रहे हैं।

दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू॥
सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥

दोनों ओर की स्थिति समझकर सब लोग कहते हैं कि भरत सब प्रकार से सराहने योग्य हैं। उनके व्रत और नियमों को सुनकर साधु-संत भी सकुचा जाते हैं और उनकी स्थिति देखकर मुनिराज भी लज्जित होते हैं।

परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल करनू॥
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू॥

भरत का परम पवित्र आचरण (चरित्र) मधुर, सुंदर और आनंद-मंगलों का करनेवाला है। कलियुग के कठिन पापों और क्लेशों को हरनेवाला है। महामोहरूपी रात्रि को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान है।

पाप पुंज कुंजर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू॥
जन रंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू॥

पाप समूहरूपी हाथी के लिए सिंह है। सारे संतापों के दल का नाश करनेवाला है। भक्तों को आनंद देनेवाला और भव के भार (संसार के दुःख) का भंजन करनेवाला तथा राम प्रेमरूपी चंद्रमा का सार (अमृत) है।

छं० - सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

सीताराम के प्रेमरूपी अमृत से परिपूर्ण भरत का जन्म यदि न होता, तो मुनियों के मन को भी अगम यम, नियम, शम, दम आदि कठिन व्रतों का आचरण कौन करता? दुःख, संताप, दरिद्रता, दंभ आदि दोषों को अपने सुयश के बहाने कौन हरण करता? तथा कलिकाल में तुलसीदास-जैसे शठों को हठपूर्वक कौन राम के सम्मुख करता?

सो० - भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेमु अवसि होइ भव रस बिरति॥ 326॥

तुलसीदास कहते हैं - जो कोई भरत के चरित्र को नियम से आदरपूर्वक सुनेंगे, उनको अवश्य ही सीताराम के चरणों में प्रेम होगा और सांसारिक विषय-रस से वैराग्य होगा॥ 326॥

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने द्वितीयः सोपानः समाप्तः।

कलियुग के संपूर्ण पापों को विध्वंस करनेवाले श्री रामचरितमानस का यह दूसरा सोपान समाप्त हुआ॥

(अयोध्याकांड समाप्त)

अध्याय -3 अरण्यकाण्ड [712-783]

भगवान शंकर जी के मन द्वारा रचित श्रीराम जी के परमपवित्र चरित्र

मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानंददं
वैराग्यांबुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम्।
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसंभवं शंकरं
वंदे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्री रामभूपप्रियम्॥ 1॥

धर्मरूपी वृक्ष के मूल, विवेकरूपी समुद्र को आनंद देनेवाले पूर्णचंद्र, वैराग्यरूपी कमल के (विकसित करनेवाले) सूर्य, पापरूपी घोर अंधकार को निश्चय ही मिटानेवाले, तीनों तापों को हरनेवाले, मोहरूपी बादलों के समूह को छिन्न-भिन्न करने की विधि (क्रिया) में आकाश से उत्पन्न पवन स्वरूप, ब्रह्मा के वंशज (आत्मज) तथा कलंकनाशक, महाराज राम के प्रिय श्री शंकर की मैं वंदना करता हूँ॥ 1॥

सांद्रानंदपयोदसौभगतनुं पीतांबरं सुंदरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम्।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे॥ 2॥

जिनका शरीर जलयुक्त मेघों के समान सुंदर (श्यामवर्ण) एवं आनंदघन है, जो सुंदर (वल्कल का) पीत वस्त्र धारण किए हैं, जिनके हाथों में बाण और धनुष हैं, कमर उत्तम तरकस के भार से सुशोभित है, कमल के समान विशाल नेत्र हैं और मस्तक पर जटाजूट धारण किए हैं, उन अत्यंत शोभायमान सीता और लक्ष्मण सहित मार्ग में चलते हुए आनंद देनेवाले राम को मैं भजता हूँ॥ 2॥

सो॰ - उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति॥

हे पार्वती! राम के गुण गूढ़ हैं, पंडित और मुनि उन्हें समझकर वैराग्य प्राप्त करते हैं, परंतु जो भगवान से विमुख हैं और जिनका धर्म में प्रेम नहीं है, वे महामूढ़ (उन्हें सुनकर) मोह को प्राप्त होते हैं।

पुर नर भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई॥

अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन॥

पुरवासियों के और भरत के अनुपम और सुंदर प्रेम का मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार गान किया। अब देवता, मनुष्य और मुनियों के मन को भानेवाले प्रभु राम के वे अत्यंत पवित्र चरित्र सुनो, जिन्हें वे वन में कर रहे हैं।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर॥

एक बार सुंदर फूल चुनकर राम ने अपने हाथों से भाँति-भाँति के गहने बनाए और सुंदर स्फटिक शिला पर बैठे हुए प्रभु ने आदर के साथ वे गहने सीता को पहनाए।

सुरपति सुत धरि बायस बेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा॥

देवराज इंद्र का मूर्ख पुत्र जयंत कौए का रूप धरकर रघुनाथ का बल देखना चाहता है। जैसे महान मंद बुद्धि चींटी समुद्र का थाह पाना चाहती हो।

सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा॥
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना॥

वह मूढ़, मंद बुद्धि कारण से (भगवान के बल की परीक्षा करने के लिए) बना हुआ कौआ सीता के चरणों में चोंच मारकर भागा। जब रक्त बह चला, तब रघुनाथ ने जाना और धनुष पर सींक (सरकंडे) का बाण संधान किया।

दो० - अति कृपाल रघुनायक सदा दीन पर नेह।
ता सन आइ कीन्ह छलु मूरख अवगुन गेह॥ 1॥

रघुनाथ, जो अत्यंत ही कृपालु हैं और जिनका दीनों पर सदा प्रेम रहता है, उनसे भी उस अवगुणों के घर मूर्ख जयंत ने आकर छल किया॥ 1॥

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा॥
धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं॥

मंत्र से प्रेरित होकर वह ब्रह्मबाण दौड़ा। कौआ भयभीत होकर भाग चला। वह अपना

असली रूप धरकर पिता इंद्र के पास गया, पर राम का विरोधी जानकर इंद्र ने उसको नहीं रखा।

भा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका॥

तब वह निराश हो गया, उसके मन में भय उत्पन्न हो गया; जैसे दुर्वासा ऋषि को चक्र से भय हुआ था। वह ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि समस्त लोकों में थका हुआ और भय-शोक से व्याकुल होकर भागता फिरा।

काहूँ बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही॥
मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना॥

(पर रखना तो दूर रहा) किसी ने उसे बैठने तक के लिए नहीं कहा। राम के द्रोही को कौन रख सकता है? (काकभुशुंडि कहते हैं -) है गरुड़! सुनिए, उसके लिए माता मृत्यु के समान, पिता यमराज के समान और अमृत विष के समान हो जाता है।

मित्र करइ सत रिपु कै करनी। ता कहँ बिबुधनदी बैतरनी॥
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता॥

मित्र सैकड़ों शत्रुओं की-सी करनी करने लगता है। देवनदी गंगा उसके लिए वैतरणी (यमपुरी की नदी) हो जाती है। हे भाई! सुनिए, जो रघुनाथ के विमुख होता है, समस्त जगत उनके लिए अग्नि से भी अधिक गरम (जलानेवाला) हो जाता है।

नारद देखा बिकल जयंता। लगि दया कोमल चित संता॥
पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही॥

नारद ने जयंत को व्याकुल देखा तो उन्हें दया आ गई; क्योंकि संतों का चित्त बड़ा कोमल होता है। उन्होंने उसे (समझाकर) तुरंत राम के पास भेज दिया। उसने (जाकर) पुकारकर कहा – हे शरणागत के हितकारी! मेरी रक्षा कीजिए।

आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई॥

अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद जानि नहिं पाई॥

आतुर और भयभीत जयंत ने जाकर राम के चरण पकड़ लिए (और कहा -) हे दयालु रघुनाथ! रक्षा कीजिए। आपके अतुलित बल और आपकी अतुलित प्रभुता (सामर्थ्य) को मैं मंद बुद्धि जान नहीं पाया था।

निज कृत कर्म जनित फल पायऊँ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आयऊँ॥

सुनि कृपाल अति आरत बानी। एकनयन करि तजा भवानी॥

अपने किए हुए कर्म से उत्पन्न हुआ फल मैंने पा लिया। अब हे प्रभु! मेरी रक्षा कीजिए। मैं आपकी शरण तककर आया हूँ। (शिव कहते हैं -) हे पार्वती! कृपालु रघुनाथ ने उसकी अत्यंत आर्त्त (दुःखभरी) वाणी सुनकर उसे एक आँख का काना करके छोड़ दिया।

सो० – कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित।

प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम॥ 2॥

उसने मोहवश द्रोह किया था, इसलिए यद्यपि उसका वध ही उचित था, पर प्रभु ने कृपा करके उसे छोड़ दिया। राम के समान कृपालु और कौन होगा?॥ 2॥

रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए श्रुति सुधा समाना॥

बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीड़ सबहिं मोहि जाना॥

चित्रकूट में बसकर रघुनाथ ने बहुत-से चरित्र किए, जो कानों को अमृत के समान (प्रिय) हैं। फिर (कुछ समय पश्चात) राम ने मन में ऐसा अनुमान किया कि मुझे सब लोग जान गए है, इससे (यहाँ) बड़ी भीड़ हो जाएगी।

सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले द्वौ भाई॥
अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ॥

(इसलिए) सब मुनियों से विदा लेकर सीता सहित दोनों भाई चले! जब प्रभु अत्रि के आश्रम में गए, तो उनका आगमन सुनते ही महामुनि हर्षित हो गए।

पुलकित गात अत्रि उठि धाए। देखि रामु आतुर चलि आए॥
करत दंडवत मुनि उर लाए। प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए॥

शरीर पुलकित हो गया, अत्रि उठकर दौड़े। उन्हें दौड़े आते देखकर राम और भी शीघ्रता से चले आए। दंडवत करते हुए ही राम को (उठाकर) मुनि ने हृदय से लगा लिया और प्रेमाश्रुओं के जल से दोनों जनों को (दोनों भाइयों को) नहला दिया।

देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आश्रम तब आने॥
करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिए मूल फल प्रभु मन भाए॥

राम की छवि देखकर मुनि के नेत्र शीतल हो गए। तब वे उनको आदरपूर्वक अपने आश्रम में ले आए। पूजन करके सुंदर वचन कहकर मुनि ने मूल और फल दिए, जो प्रभु के मन को बहुत रुचे।

सो० - प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि।
मुनिबर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत॥ 3॥

प्रभु आसन पर विराजमान हैं। नेत्र भरकर उनकी शोभा देखकर परम प्रवीण मुनि श्रेष्ठ हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे - ॥ 3॥

छं० - नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं॥
भजामि ते पदांबुजं। अकामिनां स्वधामदं॥

हे भक्त वत्सल! हे कृपालु! हे कोमल स्वभाववाले! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निष्काम पुरुषों को अपना परमधाम देनेवाले आपके चरण कमलों को मैं भजता हूँ।

निकाम श्याम सुंदरं। भवांबुनाथ मंदरं॥
प्रफुल्ल कंज लोचनं। मदादि दोष मोचनं॥

आप नितांत सुंदर श्याम, संसार (आवागमन) रूपी समुद्र को मथने के लिए मंदराचल रूप, फूले हुए कमल के समान नेत्रोंवाले और मद आदि दोषों से छुड़ानेवाले हैं।

प्रलंब बाहु विक्रमं। प्रभोऽप्रमेय वैभवं॥
निषंग चाप सायकं। धरं त्रिलोक नायकं॥

हे प्रभो! आपकी लंबी भुजाओं का पराक्रम और आपका ऐश्वर्य अप्रमेय (बुद्धि के परे अथवा असीम) है। आप तरकस और धनुष-बाण धारण करनेवाले तीनों लोकों के स्वामी,

दिनेश वंश मंडनं। महेश चाप खंडनं॥
मुनींद्र संत रंजनं। सुरारि वृंद भंजनं॥

सूर्यवंश के भूषण, महादेव के धनुष को तोड़नेवाले, मुनिराजों और संतों को आनंद देनेवाले तथा देवताओं के शत्रु असुरों के समूह का नाश करनेवाले हैं।

मनोज वैरि वंदितं। अजादि देव सेवितं॥
विशुद्ध बोध विग्रहं। समस्त दूषणापहं॥

आप कामदेव के शत्रु महादेव के द्वारा वंदित, ब्रह्मा आदि देवताओं से सेवित, विशुद्ध ज्ञानमय विग्रह और समस्त दोषों को नष्ट करनेवाले हैं।

नमामि इंदिरा पतिं। सुखाकरं सतां गतिं॥
भजे सशक्ति सानुजं। शची पति प्रियानुजं॥

हे लक्ष्मीपते! हे सुखों की खान और सत्पुरुषों की एकमात्र गति! मैं आपको नमस्कार करता हूँ! हे शचीपति (इंद्र) के प्रिय छोटे भाई (वामन)! स्वरूपा-शक्ति सीता और छोटे भाई लक्ष्मण सहित आपको मैं भजता हूँ।

त्वदंघ्रि मूल ये नराः। भजंति हीन मत्सराः॥
पतंति नो भवार्णवे। वितर्क वीचि संकुले॥

जो मनुष्य मत्सर (डाह) रहित होकर आपके चरण कमलों का सेवन करते हैं, वे तर्क-वितर्क (अनेक प्रकार के संदेह) रूपी तरंगों से पूर्ण संसाररूपी समुद्र में नहीं गिरते (आवागमन के चक्कर में नहीं पड़ते)।

विविक्त वासिनः सदा। भजंति मुक्तये मुदा॥
निरस्य इंद्रियादिकं। प्रयांति ते गतिं स्वकं॥

जो एकांतवासी पुरुष मुक्ति के लिए, इंद्रियादि का निग्रह करके (उन्हें विषयों से हटाकर) प्रसन्नतापूर्वक आपको भजते हैं, वे स्वकीय गति को (अपने स्वरूप को) प्राप्त होते हैं।

तमेकमद्भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं॥
जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं॥

उन (आप) को जो एक (अद्‌वितीय), अद्भुत (मायिक जगत से विलक्षण), प्रभु (सर्वसमर्थ), इच्छारहित, ईश्वर (सबके स्वामी), व्यापक, जगद्‌गुरु, सनातन (नित्य), तुरीय (तीनों गुणों से सर्वथा परे) और केवल (अपने स्वरूप में स्थित) हैं।

भजामि भाव वल्लभं। कुयोगिनां सुदुर्लभं॥
स्वभक्त कल्प पादपं। समं सुसेव्यमन्वहं॥

(तथा) जो भावप्रिय, कुयोगियों (विषयी पुरुषों) के लिए अत्यंत दुर्लभ, अपने भक्तों के लिए कल्पवृक्ष (अर्थात उनकी समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाले), सम (पक्षपातरहित) और सदा सुखपूर्वक सेवन करने योग्य हैं; मैं निरंतर भजता हूँ।

अनूप रूप भूपतिं। नतोऽहमुर्विजा पतिं॥
प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे॥

हे अनुपम सुंदर! हे पृथ्वीपति! हे जानकीनाथ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मुझ पर प्रसन्न होइए, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मुझे अपने चरण कमलों की भक्ति दीजिए।

पठंति ये स्तवं इदं। नरादरेण ते पदं॥
व्रजंति नात्र संशयं। त्वदीय भक्ति संयुताः॥

जो मनुष्य इस स्तुति को आदरपूर्वक पढ़ते हैं, वे आपकी भक्ति से युक्त होकर आपके परम पद को प्राप्त होते हैं, इसमें संदेह नहीं।

दो० - बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि॥ 4॥

मुनि ने (इस प्रकार) विनती करके और फिर सिर नवाकर, हाथ जोड़कर कहा - हे नाथ! मेरी बुद्धि आपके चरण कमलों को कभी न छोड़े॥ 4॥

अनुसुइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता॥
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई। आसिष देइ निकट बैठाई॥

फिर परम शीलवती और विनम्र सीता अनसूया (आत्रि की पत्नी) के चरण पकड़कर उनसे मिलीं। ऋषि पत्नी के मन में बड़ा सुख हुआ। उन्होंने आशीष देकर सीता को पास बैठा

लिया।

दिब्य बसन भूषन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए॥
कह रिषिबधू सरस मृदु बानी। नारिधर्म कछु ब्याज बखानी॥

और उन्हें ऐसे दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनाए, जो नित्य-नए निर्मल और सुहावने बने रहते हैं। फिर ऋषि पत्नी उनके बहाने मधुर और कोमल वाणी से स्त्रियों के कुछ धर्म बखान कर कहने लगीं।

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥

हे राजकुमारी! सुनिए - माता, पिता, भाई सभी हित करनेवाले हैं, परंतु ये सब एक सीमा तक ही (सुख) देनेवाले हैं, परंतु हे जानकी! पति तो (मोक्ष रूप) असीम (सुख) देनेवाला है। वह स्त्री अधम है, जो ऐसे पति की सेवा नहीं करती।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥

धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री - इन चारों की विपत्ति के समय ही परीक्षा होती है। वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अंधा, बहरा, क्रोधी और अत्यंत ही दीन -

ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥

ऐसे भी पति का अपमान करने से स्त्री यमपुर में भाँति-भाँति के दुःख पाती है। शरीर, वचन और मन से पति के चरणों में प्रेम करना स्त्री के लिए, बस, यह एक ही धर्म है, एक ही व्रत है और एक ही नियम है।

जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥

जगत में चार प्रकार की पतिव्रताएँ हैं। वेद, पुराण और संत सब ऐसा कहते हैं कि उत्तम श्रेणी की पतिव्रता के मन में ऐसा भाव बसा रहता है कि जगत में (मेरे पति को छोड़कर)

दूसरा पुरुष स्वप्न में भी नहीं है।

मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई॥

मध्यम श्रेणी की पतिव्रता पराए पति को कैसे देखती है, जैसे वह अपना सगा भाई, पिता या पुत्र हो (अर्थात समान अवस्थावाले को वह भाई के रूप में देखती है, बड़े को पिता के रूप में और छोटे को पुत्र के रूप में देखती है।) जो धर्म को विचारकर और अपने कुल की मर्यादा समझकर बची रहती है, वह निकृष्ट (निम्न श्रेणी की) स्त्री है, ऐसा वेद कहते हैं।

बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥

और जो स्त्री मौका न मिलने से या भयवश पतिव्रता बनी रहती है, जगत में उसे अधम स्त्री जानना। पति को धोखा देनेवाली जो स्त्री पराए पति से रति करती है, वह तो सौ कल्प तक रौरव नरक में पड़ी रहती है।

छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥

क्षणभर के सुख के लिए जो सौ करोड़ (असंख्य) जन्मों के दुःख को नहीं समझती, उसके समान दुष्टा कौन होगी। जो स्त्री छल छोड़कर पतिव्रत धर्म को ग्रहण करती है, वह बिना ही परिश्रम परम गति को प्राप्त करती है।

पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

किंतु जो पति के प्रतिकूल चलती है, वह जहाँ भी जाकर जन्म लेती है, वहीं जवानी पाकर (भरी जवानी में) विधवा हो जाती है।

सो० - सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥ 5(क)॥

स्त्री जन्म से ही अपवित्र है, किंतु पति की सेवा करके वह अनायास ही शुभ गति प्राप्त कर लेती है। (पतिव्रत धर्म के कारण ही) आज भी 'तुलसी' भगवान को प्रिय हैं और चारों

वेद उनका यश गाते हैं॥ 5(क)॥

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित॥ 5(ख)॥

हे सीता! सुनो, तुम्हारा तो नाम ही ले-लेकर स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म का पालन करेंगी। तुम्हें तो राम प्राणों के समान प्रिय हैं, यह (पतिव्रत धर्म की) कथा तो मैंने संसार के हित के लिए कही है॥ 5(ख)॥

सुनि जानकीं परम सुखु पावा। सादर तासु चरन सिरु नावा॥
तब मुनि सन कह कृपानिधाना। आयसु होइ जाउँ बन आना॥

जानकी ने सुनकर परम सुख पाया और आदरपूर्वक उनके चरणों में सिर नवाया। तब कृपा की खान राम ने मुनि से कहा - आज्ञा हो तो अब दूसरे वन में जाऊँ।

संतत मो पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू॥
धर्म धुरंधर प्रभु कै बानी। सुनि सप्रेम बोले मुनि ग्यानी॥

मुझ पर निरंतर कृपा करते रहिएगा और अपना सेवक जानकर स्नेह न छोड़िएगा। धर्म धुरंधर प्रभु राम के वचन सुनकर ज्ञानी मुनि प्रेमपूर्वक बोले -

जासु कृपा अज सिव सनकादी। चहत सकल परमारथ बादी॥
ते तुम्ह राम अकाम पिआरे। दीन बंधु मृदु बचन उचारे॥

ब्रह्मा, शिव और सनकादि सभी परमार्थवादी (तत्त्ववेत्ता) जिनकी कृपा चाहते हैं, हे राम! आप वही निष्काम पुरुषों के भी प्रिय और दीनों के बंधु भगवान हैं, जो इस प्रकार कोमल वचन बोल रहे हैं।

अब जानी मैं चतुराई। भजी तुम्हहि सब देव बिहाई॥
जेहि समान अतिसय नहिं कोई। ता कर सील कस न अस होई॥

अब मैंने लक्ष्मी की चतुराई समझी, जिन्होंने सब देवताओं को छोड़कर आप ही को भजा। जिसके समान (सब बातों में) अत्यंत बड़ा और कोई नहीं है, उसका शील भला, ऐसा क्यों न होगा?

केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी। कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी॥
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा। लोचन जल बह पुलक सरीरा॥

मैं किस प्रकार कहूँ कि हे स्वामी! आप अब जाइए? हे नाथ! आप अंतर्यामी हैं, आप ही कहिए। ऐसा कहकर धीर मुनि प्रभु को देखने लगे। मुनि के नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बह रहा है और शरीर पुलकित है।

छं० - तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए।
मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए॥
जप जोग धर्म समूह तें नर भगति अनुपम पावई।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावई॥

मुनि अत्यंत प्रेम से पूर्ण हैं, उनका शरीर पुलकित है और नेत्रों को राम के मुखकमल में लगाए हुए हैं। (मन में विचार रहे हैं कि) मैंने ऐसे कौन-से जप-तप किए थे, जिसके कारण मन, ज्ञान, गुण और इंद्रियों से परे प्रभु के दर्शन पाए। जप, योग और धर्म-समूह से मनुष्य अनुपम भक्ति को पाता है। रघुवीर के पवित्र चरित्र को तुलसीदास रात-दिन गाता है।

दो० - कलिमल समन दमन मन राम सुजस सुखमूल।
सादर सुनहिं जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल॥ 6(क)॥

राम का सुंदर यश कलियुग के पापों का नाश करनेवाला, मन को दमन करनेवाला और सुख का मूल है। जो लोग इसे आदरपूर्वक सुनते हैं, उन पर राम प्रसन्न रहते हैं॥ 6(क)॥

सो० - कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर॥ 6(ख)॥

यह कठिन कलि काल पापों का खजाना है; इसमें न धर्म है, न ज्ञान है और न योग तथा जप ही है। इसमें तो जो लोग सब भरोसों को छोड़कर राम को ही भजते हैं, वे ही चतुर हैं॥ 6(ख)॥

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहि सुर नर मुनि ईसा॥
आगें राम अनुज पुनि पाछें। मुनि बर बेष बने अति काछें॥

मुनि के चरण कमलों में सिर नवाकर देवता, मनुष्य और मुनियों के स्वामी राम वन को चले। आगे राम हैं और उनके पीछे छोटे भाई लक्ष्मण हैं। दोनों ही मुनियों का सुंदर वेष बनाए अत्यंत सुशोभित हैं।

उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥
सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा॥

दोनों के बीच में श्री जानकी कैसी सुशोभित हैं, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया हो। नदी, वन, पर्वत और दुर्गम घाटियाँ, सभी अपने स्वामी को पहचानकर सुंदर रास्ता दे देते हैं।

जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया॥
मिला असुर बिराध मग जाता। आवतहीं रघुबीर निपाता॥

जहाँ-जहाँ देव रघुनाथ जाते हैं, वहाँ-वहाँ बादल आकाश में छाया करते जाते हैं। रास्ते में जाते हुए विराध राक्षस मिला। सामने आते ही रघुनाथ ने उसे मार डाला।

तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा॥
पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा। सुंदर अनुज जानकी संगा॥

(राम के हाथ से मरते ही) उसने तुरंत सुंदर (दिव्य) रूप प्राप्त कर लिया। दुःखी देखकर प्रभु ने उसे अपने परम धाम को भेज दिया। फिर वे सुंदर छोटे भाई लक्ष्मण और सीता के साथ वहाँ आए जहाँ मुनि शरभंग थे।

दो० - देखि राम मुख पंकज मुनिबर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभंग॥ 7॥

राम का मुखकमल देखकर मुनिश्रेष्ठ के नेत्ररूपी भौंरे अत्यंत आदरपूर्वक उसका (मकरंद रस) पान कर रहे हैं। शरभंग का जन्म धन्य है॥ 7॥

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर मानस राजमराला॥
जात रहेउँ बिरंचि के धामा। सुनेउँ श्रवन बन ऐहहिं रामा॥

मुनि ने कहा - हे कृपालु रघुवीर! हे शंकर मनरूपी मानसरोवर के राजहंस! सुनिए, मैं

ब्रह्मलोक को जा रहा था। (इतने में) कानों से सुना कि राम वन में आवेंगे।

चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥

तब से मैं दिन-रात आपकी राह देखता रहा हूँ। अब (आज) प्रभु को देखकर मेरी छाती शीतल हो गई। हे नाथ! मैं सब साधनों से हीन हूँ। आपने अपना दीन सेवक जानकर मुझ पर कृपा की है।

सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखेउ जन मन चोरा॥
तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी॥

हे देव! यह कुछ मुझ पर आपका एहसान नहीं है। हे भक्त-मनचोर! ऐसा करके आपने अपने प्रण की ही रक्षा की है। अब इस दीन के कल्याण के लिए तब तक यहाँ ठहरिए, जब तक मैं शरीर छोड़कर आपसे (आपके धाम में न) मिलूँ।

जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा॥
एहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा। बैठे हृदयँ छाड़ि सब संगा॥

योग, यज्ञ, जप, तप जो कुछ व्रत आदि भी मुनि ने किया था, सब प्रभु को समर्पण करके बदले में भक्ति का वरदान ले लिया। इस प्रकार (दुर्लभ भक्ति प्राप्त करके फिर) चिता रचकर मुनि शरभंग हृदय से सब आसक्ति छोड़कर उस पर जा बैठे।

दो० - सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हियँ बसहु निरंतर सगुनरूप श्री राम॥ 8॥

हे नीले मेघ के समान श्याम शरीरवाले सगुण रूप श्री राम! सीता और छोटे भाई लक्ष्मण सहित प्रभु (आप) निरंतर मेरे हृदय में निवास कीजिए॥ 8॥

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। राम कृपाँ बैकुंठ सिधारा॥
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ॥

ऐसा कहकर शरभंग ने योगाग्नि से अपने शरीर को जला डाला और राम की कृपा से वे बैकुंठ को चले गए। मुनि भगवान में लीन इसलिए नहीं हुए कि उन्होंने पहले ही भेद-

भक्ति का वर ले लिया था।

रिषि निकाय मुनिबर गति देखी। सुखी भए निज हृदयँ बिसेषी॥
अस्तुति करहिं सकल मुनि बृंदा। जयति प्रनत हित करुना कंदा॥

ऋषि समूह मुनि श्रेष्ठ शरभंग की यह (दुर्लभ) गति देखकर अपने हृदय में विशेष रूप से सुखी हुए। समस्त मुनिवृंद राम की स्तुति कर रहे हैं (और कह रहे हैं) शरणागत हितकारी करुणाकंद (करुणा के मूल) प्रभु की जय हो!

पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिबर बृंद बिपुल सँग लागे॥
अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया॥

फिर रघुनाथ आगे वन में चले। श्रेष्ठ मुनियों के बहुत-से समूह उनके साथ हो लिए। हड्डियों का ढेर देखकर रघुनाथ को बड़ी दया आई, उन्होंने मुनियों से पूछा।

जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी। सबदरसी तुम्ह अंतरजामी॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए॥

(मुनियों ने कहा -) हे स्वामी! आप सर्वदर्शी (सर्वज्ञ) और अंतर्यामी (सबके हृदय की जाननेवाले) हैं। जानते हुए भी (अनजान की तरह) हमसे कैसे पूछ रहे हैं? राक्षसों के दलों ने सब मुनियों को खा डाला है। (ये सब उन्हीं की हड्डियों के ढेर हैं)। यह सुनते ही रघुवीर के नेत्रों में जल छा गया (उनकी आँखों में करुणा के आँसू भर आए)।

दो० - निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥ 9॥

राम ने भुजा उठाकर प्रण किया कि मैं पृथ्वी को राक्षसों से रहित कर दूँगा। फिर समस्त मुनियों के आश्रमों में जा-जाकर उनको (दर्शन एवं संभाषण का) सुख दिया॥ 9॥

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना॥
मन क्रम बचन राम पद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक॥

मुनि अगस्त्य के एक सुतीक्ष्ण नामक सुजान (ज्ञानी) शिष्य थे, उनकी भगवान में प्रीति थी। वे मन, वचन और कर्म से राम के चरणों के सेवक थे। उन्हें स्वप्न में भी किसी

दूसरे देवता का भरोसा नहीं था।

प्रभु आगवनु श्रवन सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा॥
हे बिधि दीनबंधु रघुराया। मो से सठ पर करिहहिं दाया॥

उन्होंने ज्यों ही प्रभु का आगमन कानों से सुन पाया, त्यों ही अनेक प्रकार के मनोरथ करते हुए वे आतुरता (शीघ्रता) से दौड़ चले। हे विधाता! क्या दीनबंधु रघुनाथ मुझ जैसे दुष्ट पर भी दया करेंगे?

सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाईं॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं॥

क्या स्वामी राम छोटे भाई लक्ष्मण सहित मुझसे अपने सेवक की तरह मिलेंगे? मेरे हृदय में दृढ़ विश्वास नहीं होता; क्योंकि मेरे मन में भक्ति, वैराग्य या ज्ञान कुछ भी नहीं है।

नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की॥

मैंने न तो सत्संग, योग, जप अथवा यज्ञ ही किए हैं और न प्रभु के चरणकमलों में मेरा दृढ़ अनुराग ही है। हाँ, दया के भंडार प्रभु की एक बान है कि जिसे किसी दूसरे का सहारा नहीं है, वह उन्हें प्रिय होता है।

होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी॥

(भगवान की इस बान का स्मरण आते ही मुनि आनंदमग्न होकर मन-ही-मन कहने लगे -) अहा! भव बंधन से छुड़ानेवाले प्रभु के मुखारविंद को देखकर आज मेरे नेत्र सफल होंगे। (शिव कहते हैं -) हे भवानी! ज्ञानी मुनि प्रेम में पूर्ण रूप से निमग्न हैं। उनकी वह दशा कही नहीं जाती।

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥

उन्हें दिशा-विदिशा (दिशाएँ और उनके कोण आदि) और रास्ता, कुछ भी नहीं सूझ रहा है। मैं कौन हूँ और कहाँ जा रहा हूँ, यह भी नहीं जानते (इसका भी ज्ञान नहीं है)। वे कभी

पीछे घूमकर फिर आगे चलने लगते हैं और कभी (प्रभु के) गुण गा-गाकर नाचने लगते हैं।

अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा॥

मुनि ने प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति प्राप्त कर ली। प्रभु राम वृक्ष की आड़ में छिपकर (भक्त की प्रेमोन्मत्त दशा) देख रहे हैं। मुनि का अत्यंत प्रेम देखकर भवभय (आवागमन के भय) को हरनेवाले रघुनाथ मुनि के हृदय में प्रकट हो गए।

मुनि मग माझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा॥
तब रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा निज जन मन भाए॥

(हृदय में प्रभु के दर्शन पाकर) मुनि बीच रास्ते में अचल (स्थिर) होकर बैठ गए। उनका शरीर रोमांच से कटहल के फल के समान (कण्टकित) हो गया। तब रघुनाथ उनके पास चले आए और अपने भक्त की प्रेम दशा देखकर मन में बहुत प्रसन्न हुए।

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा॥

राम ने मुनि को बहुत प्रकार से जगाया, पर मुनि नहीं जागे; क्योंकि उन्हें प्रभु के ध्यान का सुख प्राप्त हो रहा था। तब राम ने अपने राजरूप को छिपा लिया और उनके हृदय में अपना चतुर्भुज रूप प्रकट किया।

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनिबर जैसें॥
आगें देखि राम तन स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा॥

तब (अपने ईष्ट स्वरूप के अंतर्धान होते ही) मुनि कैसे व्याकुल होकर उठे, जैसे श्रेष्ठ (मणिधर) सर्प मणि के बिना व्याकुल हो जाता है। मुनि ने अपने सामने सीता और लक्ष्मण सहित श्यामसुंदर विग्रह सुखधाम राम को देखा।

परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी॥
भुज बिसाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई॥

प्रेम में मग्न हुए वे बड़भागी श्रेष्ठ मुनि लाठी की तरह गिरकर राम के चरणों में लग

गए। राम ने अपनी विशाल भुजाओं से पकड़कर उन्हें उठा लिया और बड़े प्रेम से हृदय से लगा रखा।

मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला। कनक तरुहि जनु भेंट तमाला॥
राम बदनु बिलोक मुनि ठाढ़ा। मानहुँ चित्र माझ लिखि काढ़ा॥

कृपालु राम मुनि से मिलते हुए ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानो सोने के वृक्ष से तमाल का वृक्ष गले लगकर मिल रहा हो। मुनि (निस्तब्ध) खड़े हुए (टकटकी लगाकर) राम का मुख देख रहे हैं, मानो चित्र में लिखकर बनाए गए हों।

दो० - तब मुनि हृदयँ धीर धरि गहि पद बारहिं बार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि पूजा बिबिध प्रकार॥ 10॥

तब मुनि ने हृदय में धीरज धरकर बार-बार चरणों को स्पर्श किया। फिर प्रभु को अपने आश्रम में लाकर अनेक प्रकार से उनकी पूजा की॥ 10॥

कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करौं कवन बिधि तोरी॥
महिमा अमित मोरि मति थोरी। रबि सन्मुख खद्योत अँजोरी॥

मुनि कहने लगे - हे प्रभो! मेरी विनती सुनिए। मैं किस प्रकार से आपकी स्तुति करूँ? आपकी महिमा अपार है और मेरी बुद्धि अल्प है। जैसे सूर्य के सामने जुगनू का उजाला!

श्याम तामरस दाम शरीरं। जटा मुकुट परिधन मुनिचीरं॥
पाणि चाप शर कटि तूणीरं। नौमि निरंतर श्रीरघुवीरं॥

हे नीलकमल की माला के समान श्याम शरीरवाले! हे जटाओं का मुकुट और मुनियों के (वल्कल) वस्त्र पहने हुए, हाथों में धनुष-बाण लिए तथा कमर में तरकस कसे हुए श्री रघुवीर! मैं आपको निरंतर नमस्कार करता हूँ।

मोह विपिन घन दहन कृशानुः। संत सरोरुह कानन भानुः॥
निसिचर करि वरूथ मृगराजः। त्रातु सदा नो भव खग बाजः॥

जो मोहरूपी घने वन को जलाने के लिए अग्नि हैं, संतरूपी कमलों के वन को प्रफुल्लित करने के लिए सूर्य हैं, राक्षसरूपी हाथियों के समूह को पछाड़ने के लिए सिंह हैं और भव

(आवागमन) रूपी पक्षी को मारने के लिए बाज रूप हैं, वे प्रभु सदा हमारी रक्षा करें।

अरुण नयन राजीव सुवेशं। सीता नयन चकोर निशेशं॥
हर हृदि मानस बाल मरालं। नौमि राम उर बाहु विशालं॥

हे लाल कमल के समान नेत्र और सुंदर वेशवाले! सीता के नेत्ररूपी चकोर के चंद्रमा, शिव के हृदयरूपी मानसरोवर के बालहंस, विशाल हृदय और भुजावाले राम! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

संशय सर्प ग्रसन उरगादः। शमन सुकर्कश तर्क विषादः॥
भव भंजन रंजन सुर यूथः। त्रातु सदा नो कृपा वरूथः॥

जो संशयरूपी सर्प को ग्रसने के लिए गरुड़ हैं, अत्यंत कठोर तर्क से उत्पन्न होनेवाले विषाद का नाश करनेवाले हैं, आवागमन को मिटानेवाले और देवताओं के समूह को आनंद देनेवाले हैं, वे कृपा के समूह राम सदा हमारी रक्षा करें।

निर्गुण सगुण विषम सम रूपं। ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं॥
अमलमखिलमनवद्यमपारं। नौमि राम भंजन महि भारं॥

हे निर्गुण, सगुण, विषम और समरूप! हे ज्ञान, वाणी और इंद्रियों से अतीत! हे अनुपम, निर्मल, संपूर्ण दोषरहित, अनंत एवं पृथ्वी का भार उतारनेवाले राम! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

भक्त कल्पपादप आरामः। तर्जन क्रोध लोभ मद कामः॥
अति नागर भव सागर सेतुः। त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः॥

जो भक्तों के लिए कल्पवृक्ष के बगीचे हैं, क्रोध, लोभ, मद और काम को डरानेवाले हैं, अत्यंत ही चतुर और संसाररूपी समुद्र से तरने के लिए सेतु रूप हैं, वे सूर्यकुल की ध्वजा राम सदा मेरी रक्षा करें।

अतुलित भुज प्रताप बल धामः। कलि मल विपुल विभंजन नामः॥
धर्म वर्म नर्मद गुण ग्रामः। संतत शं तनोतु मम रामः॥

जिनकी भुजाओं का प्रताप अतुलनीय है, जो बल के धाम हैं, जिनका नाम कलियुग के बड़े भारी पापों का नाश करनेवाला है, जो धर्म के कवच (रक्षक) हैं और जिनके गुणसमूह

आनंद देनेवाले हैं, वे राम निरंतर मेरे कल्याण का विस्तार करें।

जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी। सब के हृदयँ निरंतर बासी॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसतु मनसि मम काननचारी॥

यद्यपि आप निर्मल, व्यापक, अविनाशी और सबके हृदय में निरंतर निवास करनेवाले हैं; तथापि हे खरारि श्री राम! लक्ष्मण और सीता सहित वन में विचरनेवाले आप इसी रूप में मेरे हृदय में निवास कीजिए।

जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी। सगुन अगुन उर अंतरजामी॥
जो कोसलपति राजिव नयना। करउ सो राम हृदय मम अयना॥

हे स्वामी! आपको जो सगुण, निर्गुण और अंतर्यामी जानते हों, वे जाना करें, मेरे हृदय में तो कोसलपति कमलनयन राम ही अपना घर बनावें।

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥
सुनि मुनि बचन राम मन भाए। बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए॥

ऐसा अभिमान भूलकर भी न छूटे कि मैं सेवक हूँ और रघुनाथ मेरे स्वामी हैं। मुनि के वचन सुनकर राम मन में बहुत प्रसन्न हुए। तब उन्होंने हर्षित होकर श्रेष्ठ मुनि को हृदय से लगा लिया।

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर मागहु देउँ सो तोही॥
मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा। समुझि न परइ झूठ का साचा॥

(और कहा -) हे मुनि! मुझे परम प्रसन्न जानो। जो वर माँगो, वही मैं तुम्हें दूँ! मुनि सुतीक्ष्ण ने कहा - मैंने तो वर कभी माँगा ही नहीं। मुझे समझ ही नहीं पड़ता कि क्या झूठ है और क्या सत्य है, (क्या माँगू, क्या नहीं)।

तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई॥
अबिरल भगति बिरति बिग्याना। होहु सकल गुन ग्यान निधाना॥

((अतः) हे रघुनाथ! हे दासों को सुख देनेवाले! आपको जो अच्छा लगे, मुझे वही दीजिए। (राम ने कहा - हे मुने!) तुम प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और समस्त गुणों तथा ज्ञान

के निधान हो जाओ।

प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा॥

(तब मुनि बोले -) प्रभु ने जो वरदान दिया, वह तो मैंने पा लिया। अब मुझे जो अच्छा लगता है, वह दीजिए -

दो० - अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मन हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम॥ 11॥

हे प्रभो! हे राम! छोटे भाई लक्ष्मण और सीता सहित धनुष-बाणधारी आप निष्काम (स्थिर) होकर मेरे हृदयरूपी आकाश में चंद्रमा की भाँति सदा निवास कीजिए॥ 11॥

एवमस्तु करि रमानिवासा। हरषि चले कुंभज रिषि पासा॥
बहुत दिवस गुर दरसनु पाएँ। भए मोहि एहिं आश्रम आएँ॥

'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) ऐसा उच्चारण कर लक्ष्मीनिवास राम हर्षित होकर अगस्त्य ऋषि के पास चले। (तब सुतीक्ष्ण बोले -) गुरु अगस्त्य का दर्शन पाए और इस आश्रम में आए मुझे बहुत दिन हो गए।

अब प्रभु संग जाउँ गुर पाहीं। तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं॥
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई। लिए संग बिहसे द्वौ भाई॥

अब मैं भी प्रभु (आप) के साथ गुरु के पास चलता हूँ। इसमें हे नाथ! आप पर मेरा कोई एहसान नहीं है। मुनि की चतुरता देखकर कृपा के भंडार राम ने उनको साथ ले लिया और दोनो भाई हँसने लगे।

पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा॥
तुरत सुतीछन गुर पहिं गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ॥

रास्ते में अपनी अनुपम भक्ति का वर्णन करते हुए देवताओं के राजराजेश्वर राम अगस्त्य मुनि के आश्रम पर पहुँचे। सुतीक्ष्ण तुरंत ही गुरु अगस्त्य के पास गए और दंडवत करके ऐसा कहने लगे।

नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा॥

राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही॥

हे नाथ! अयोध्या के राजा दशरथ के कुमार जगदाधार राम छोटे भाई लक्ष्मण और सीता सहित आपसे मिलने आए हैं, जिनका हे देव! आप रात-दिन जप करते रहते हैं।

सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। हरि बिलोकि लोचन जल छाए॥
मुनि पद कमल परे द्वौ भाई। रिषि अति प्रीति लिए उर लाई॥

यह सुनते ही अगस्त्य तुरंत ही उठ दौड़े। भगवान को देखते ही उनके नेत्रों में (आनंद और प्रेम के आँसुओं का) जल भर आया। दोनों भाई मुनि के चरण कमलों पर गिर पड़े। ऋषि ने (उठाकर) बड़े प्रेम से उन्हें हृदय से लगा लिया।

सादर कुसल पूछि मुनि ग्यानी। आसन बर बैठारे आनी॥
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा॥

ज्ञानी मुनि ने आदरपूर्वक कुशल पूछकर उनको लाकर श्रेष्ठ आसन पर बैठाया। फिर बहुत प्रकार से प्रभु की पूजा करके कहा - मेरे समान भाग्यवान आज दूसरा कोई नहीं है।

जहँ लगि रहे अपर मुनि बृंदा। हरषे सब बिलोकि सुखकंदा॥

वहाँ जहाँ तक (जितने भी) अन्य मुनिगण थे, सभी आनंदकंद राम के दर्शन करके हर्षित हो गए।

दो० - मुनि समूह महँ बैठे सन्मुख सब की ओर।
सरद इंदु तन चितवन मानहुँ निकर चकोर॥ 12॥

मुनियों के समूह में राम सबकी ओर सम्मुख होकर बैठे हैं (अर्थात प्रत्येक मुनि को राम अपने ही सामने मुख करके बैठे दिखाई देते हैं और सब मुनि टकटकी लगाए उनके मुख को देख रहे हैं)। ऐसा जान पड़ता है मानो चकोरों का समुदाय शरत्पूर्णिमा के चंद्रमा की ओर देख रहा हो॥ 12॥

तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं। तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउँ। ताते तात न कहि समुझायउँ॥

तब राम ने मुनि से कहा - हे प्रभो! आप से तो कुछ छिपाव है नहीं। मैं जिस कारण से

आया हूँ, वह आप जानते ही हैं। इसी से हे तात! मैंने आपसे समझाकर कुछ नहीं कहा।

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही॥
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी। पूछेहु नाथ मोहि का जानी॥

हे प्रभो! अब आप मुझे वही मंत्र (सलाह) दीजिए, जिस प्रकार मैं मुनियों के द्रोही राक्षसों को मारूँ। प्रभु की वाणी सुनकर मुनि मुस्कुराए और बोले - हे नाथ! आपने क्या समझकर मुझसे यह प्रश्न किया?

तुम्हरेइँ भजन प्रभाव अघारी। जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी॥
ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥

हे पापों का नाश करनेवाले! मैं तो आप ही के भजन के प्रभाव से आपकी कुछ थोड़ी-सी महिमा जानता हूँ। आपकी माया गूलर के विशाल वृक्ष के समान है, अनेकों ब्रह्मांडों के समूह ही जिसके फल हैं।

जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना॥
ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भयँ डरत सदा सोउ काला॥

चर और अचर जीव (गूलर के फल के भीतर रहनेवाले छोटे-छोटे) जंतुओं के समान उन (ब्रह्मांडरूपी फलों) के भीतर बसते हैं और वे (अपने उस छोटे-से जगत के सिवा) दूसरा कुछ नहीं जानते। उन फलों का भक्षण करनेवाला कठिन और कराल काल है। वह काल भी सदा आपसे भयभीत रहता है।

ते तुम्ह सकल लोकपति साईं। पूँछेहु मोहि मनुज की नाईं॥
यह बर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता॥

उन्हीं आपने समस्त लोकपालों के स्वामी होकर भी मुझसे मनुष्य की तरह प्रश्न किया। हे कृपा के धाम! मैं तो यह वर माँगता हूँ कि आप श्री सीता और छोटे भाई लक्ष्मण सहित मेरे हृदय में (सदा) निवास कीजिए।

अबिरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा॥
जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता। अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता॥

मुझे प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, सत्संग और आपके चरणकमलों में अटूट प्रेम प्राप्त हो।

यद्यपि आप अखंड और अनंत ब्रह्म हैं, जो अनुभव से ही जानने में आते हैं और जिनका संतजन भजन करते हैं;

अस तव रूप बखानउँ जानउँ। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानउँ॥
संतत दासन्ह देहु बड़ाई। तातें मोहि पूँछेहु रघुराई॥

यद्यपि मैं आपके ऐसे रूप को जानता हूँ और उसका वर्णन भी करता हूँ, तो भी लौट-लौटकर मैं सगुण ब्रह्म में (आपके इस सुंदर स्वरूप में) ही प्रेम मानता हूँ। आप सेवकों को सदा ही बड़ाई दिया करते हैं, इसी से हे रघुनाथ! आपने मुझसे पूछा है।

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचबटी तेहि नाऊँ॥
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू॥

हे प्रभो! एक परम मनोहर और पवित्र स्थान है, उसका नाम पंचवटी है। हे प्रभो! आप दंडक-वन को (जहाँ पंचवटी है) पवित्र कीजिए और श्रेष्ठ मुनि गौतम के कठोर शाप को हर लीजिए।

बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया॥
चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहिं पंचबटी निअराई॥

हे रघुकुल के स्वामी! आप सब मुनियों पर दया करके वहीं निवास कीजिए। मुनि की आज्ञा पाकर राम वहाँ से चल दिए और शीघ्र ही पंचवटी के निकट पहुँच गए।

दो० - गीधराज सै भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाइ॥ 13॥

वहाँ गृध्रराज जटायु से भेंट हुई। उसके साथ बहुत प्रकार से प्रेम बढ़ाकर प्रभु राम गोदावरी के समीप पर्णकुटी छाकर रहने लगे॥ 13॥

जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा॥
गिरि बन नदीं ताल छबि छाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए॥

जब से राम ने वहाँ निवास किया तब से मुनि सुखी हो गए, उनका डर जाता रहा। पर्वत, वन, नदी और तालाब शोभा से छा गए। वे दिनोंदिन अधिक सुहावने (मालूम) होने लगे।

खग मृग बृंद अनंदित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं॥
सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा॥

पक्षी और पशुओं के समूह आनंदित रहते हैं और भौंरे मधुर गुंजार करते हुए शोभा पा रहे हैं। जहाँ प्रत्यक्ष राम विराजमान हैं, उस वन का वर्णन सर्पराज शेष भी नहीं कर सकते।

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना॥
सुर नर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं॥

एक बार प्रभु राम सुख से बैठे हुए थे। उस समय लक्ष्मण ने उनसे छलरहित (सरल) वचन कहे - हे देवता, मनुष्य, मुनि और चराचर के स्वामी! मैं अपने प्रभु की तरह (अपना स्वामी समझकर) आपसे पूछता हूँ।

मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया॥

हे देव! मुझे समझाकर वही कहिए, जिससे सब छोड़कर मैं आपकी चरणरज की ही सेवा करूँ। ज्ञान, वैराग्य और माया का वर्णन कीजिए; और उस भक्ति को कहिए जिसके कारण आप दया करते हैं।

दो० - ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥ 14॥

हे प्रभो! ईश्वर और जीव का भेद भी सब समझाकर कहिए, जिससे आपके चरणों में मेरी प्रीति हो और शोक, मोह तथा भ्रम नष्ट हो जाएँ॥ 14॥

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥

(राम ने कहा -) हे तात! मैं थोड़े ही में सब समझाकर कहे देता हूँ। तुम मन, चित्त और बुद्धि लगाकर सुनो! मैं और मेरा, तू और तेरा - यही माया है, जिसने समस्त जीवों को वश में कर रखा है।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥

तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ॥

इंद्रियों के विषयों को और जहाँ तक मन जाता है, हे भाई! उन सबको माया जानना। उसके भी - एक विद्या और दूसरी अविद्या - इन दोनों भेदों को तुम सुनो -

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें॥

एक (अविद्या) दुष्ट (दोषयुक्त) है और अत्यंत दुःखरूप है जिसके वश होकर जीव संसाररूपी कुएँ में पड़ा हुआ है और एक (विद्या) जिसके वश में गुण है और जो जगत की रचना करती है, वह प्रभु से ही प्रेरित होती है, उसके अपना बल कुछ भी नही है।

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं॥
कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥

ज्ञान वह है, जहाँ (जिसमें) मान आदि एक भी (दोष) नहीं है और जो सबसे समान रूप से ब्रह्म को देखता है। हे तात! उसी को परम वैराग्यवान कहना चाहिए जो सारी सिद्धियों को और तीनों गुणों को तिनके के समान त्याग चुका हो।

दो० - माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव॥ 15॥

जो माया को, ईश्वर को और अपने स्वरूप को नहीं जानता, उसे जीव कहना चाहिए। जो (कर्मानुसार) बंधन और मोक्ष देनेवाला, सबसे परे और माया का प्रेरक है, वह ईश्वर है॥ 15॥

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥
जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥

धर्म (के आचरण) से वैराग्य और योग से ज्ञान होता है तथा ज्ञान मोक्ष का देनेवाला है - ऐसा वेदों ने वर्णन किया है। और हे भाई! जिससे मैं शीघ्र ही प्रसन्न होता हूँ, वह मेरी भक्ति है जो भक्तों को सुख देनेवाली है।

सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥

भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥

वह भक्ति स्वतंत्र है, उसको (ज्ञान-विज्ञान आदि किसी) दूसरे साधन का सहारा (अपेक्षा) नहीं है। ज्ञान और विज्ञान तो उसके अधीन हैं। हे तात! भक्ति अनुपम एवं सुख की मूल है; और वह तभी मिलती है, जब संत अनुकूल (प्रसन्न) होते हैं।

भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥

अब मैं भक्ति के साधन विस्तार से कहता हूँ - यह सुगम मार्ग है, जिससे जीव मुझको सहज ही पा जाते हैं। पहले तो ब्राह्मणों के चरणों में अत्यंत प्रीति हो और वेद की रीति के अनुसार अपने-अपने (वर्णाश्रम के) कर्मों में लगा रहे।

एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥

इसका फल, फिर विषयों से वैराग्य होगा। तब (वैराग्य होने पर) मेरे धर्म (भागवत धर्म) में प्रेम उत्पन्न होगा। तब श्रवण आदि नौ प्रकार की भक्तियाँ दृढ़ होंगी और मन में मेरी लीलाओं के प्रति अत्यंत प्रेम होगा।

संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा॥

जिसका संतों के चरणकमलों में अत्यंत प्रेम हो; मन, वचन और कर्म से भजन का दृढ़ नियम हो और जो मुझको ही गुरु, पिता, माता, भाई, पति और देवता सब कुछ जाने और सेवा में दृढ़ हो;

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें॥

मेरा गुण गाते समय जिसका शरीर पुलकित हो जाए, वाणी गदगद हो जाए और नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बहने लगे और काम, मद और दंभ आदि जिसमें न हों, हे भाई! मैं सदा उसके वश में रहता हूँ।

दो० - बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।

तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥ 16॥

जिनको कर्म, वचन और मन से मेरी ही गति है; और जो निष्काम भाव से मेरा भजन करते हैं, उनके हृदय-कमल में मैं सदा विश्राम किया करता हूँ॥ 16॥

भगति जोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा॥
एहि बिधि कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यान गुन नीती॥

इस भक्ति योग को सुनकर लक्ष्मण ने अत्यंत सुख पाया और उन्होंने प्रभु राम के चरणों में सिर नवाया। इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गए।

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी॥
पंचबटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥

शूर्पणखा नामक रावण की एक बहिन थी, जो नागिन के समान भयानक और दुष्ट हृदय की थी। वह एक बार पंचवटी में गई और दोनों राजकुमारों को देखकर विकल (काम से पीड़ित) हो गई।

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
होइ बिकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी॥

(काकभुशुंडि कहते हैं -) हे गरुड़! (शूर्पणखा - जैसी राक्षसी, धर्मज्ञान शून्य कामांध) स्त्री मनोहर पुरुष को देखकर, चाहे वह भाई, पिता, पुत्र ही हो, विकल हो जाती है और मन को नहीं रोक सकती। जैसे सूर्यकांतमणि सूर्य को देखकर द्रवित हो जाती है (ज्वाला से पिघल जाती है)।

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई॥
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी॥

वह सुंदर रूप धरकर प्रभु के पास जाकर और बहुत मुस्कुराकर वचन बोली - न तो तुम्हारे समान कोई पुरुष है, न मेरे समान स्त्री। विधाता ने यह संयोग (जोड़ा) बहुत विचार कर रचा है।

मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं॥

तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी॥

मेरे योग्य पुरुष (वर) जगतभर में नहीं है, मैंने तीनों लोकों को खोज देखा। इसी से मैं अब तक कुमारी (अविवाहित) रही। अब तुमको देखकर कुछ मन माना (चित्त ठहरा) है।

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुआर मोर लघु भ्राता॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी॥

सीता की ओर देखकर प्रभु राम ने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई कुमार है। तब वह लक्ष्मण के पास गई। लक्ष्मण उसे शत्रु की बहिन समझकर और प्रभु की ओर देखकर कोमल वाणी से बोले -

सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा॥
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहि सब छाजा॥

हे सुंदरी! सुन, मैं तो उनका दास हूँ। मैं पराधीन हूँ, अतः तुम्हे सुभीता (सुख) न होगा। प्रभु समर्थ हैं, कोसलपुर के राजा है, वे जो कुछ करें, उन्हें सब फबता है।

सेवक सुख चह मान भिखारी। ब्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी॥
लोभी जसु चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥

सेवक सुख चाहे, भिखारी सम्मान चाहे, व्यसनी (जिसे जुए, शराब आदि का व्यसन हो) धन और व्यभिचारी शुभ गति चाहे, लोभी यश चाहे और अभिमानी चारों फल - अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चाहे, तो ये सब प्राणी आकाश को दुहकर दूध लेना चाहते हैं (अर्थात असंभव बात को संभव करना चाहते हैं)।

पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई॥

वह लौटकर फिर राम के पास आई, प्रभु ने उसे फिर लक्ष्मण के पास भेज दिया। लक्ष्मण ने कहा - तुम्हें वही वरेगा, जो लज्जा को तृण तोड़कर (अर्थात प्रतिज्ञा करके) त्याग देगा (अर्थात जो निपट निर्लज्ज होगा)।

तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूप भयंकर प्रगटत भई॥

सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई॥

तब वह खिसियाई हुई (क्रुद्ध होकर) राम के पास गई और उसने अपना भयंकर रूप प्रकट किया। सीता को भयभीत देखकर रघुनाथ ने लक्ष्मण को इशारा देकर कहा।

दो० - लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि॥ 17॥

लक्ष्मण ने बड़ी फुर्ती से उसको बिना नाक-कान की कर दिया। मानो उसके हाथ रावण को चुनौती दी हो!॥ 17॥

नाक कान बिनु भइ बिकरारा। जनु स्रव सैल गेरु कै धारा॥
खर दूषन पहिं गइ बिलपाता। धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता॥

बिना नाक-कान के वह विकराल हो गई। (उसके शरीर से रक्त इस प्रकार बहने लगा) मानो (काले) पर्वत से गेरू की धारा बह रही हो। वह विलाप करती हुई खर-दूषण के पास गई (और बोली -) हे भाई! तुम्हारे पौरुष (वीरता) को धिक्कार है, तुम्हारे बल को धिक्कार है।

तेहिं पूछा सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सेन बनाई॥
धाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा॥

उन्होंने पूछा, तब शूर्पणखा ने सब समझाकर कहा। सब सुनकर राक्षसों ने सेना तैयार की। राक्षस समूह झुंड-के-झुंड दौड़े। मानो पंखधारी काजल के पर्वतों का झुंड हो।

नाना बाहन नानाकारा। नानायुध धर घोर अपारा॥
सूपनखा आगें करि लीनी। असुभ रूप श्रुति नासा हीनी॥

वे अनेकों प्रकार की सवारियों पर चढ़े हुए तथा अनेकों आकार (सूरतों) के हैं। वे अपार हैं और अनेकों प्रकार के असंख्य भयानक हथियार धारण किए हुए हैं। उन्होंने नाक-कान कटी हुई अमंगलरूपिणी शूर्पणखा को आगे कर लिया।

असगुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी॥
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं। देखि कटकु भट अति हरषाहीं॥

अनगिनत भयंकर अशकुन हो रहे हैं। परंतु मृत्यु के वश होने के कारण वे सब-के-सब उनको कुछ गिनते ही नहीं। गरजते हैं, ललकारते हैं और आकाश में उड़ते हैं। सेना देखकर योद्धा लोग बहुत ही हर्षित होते हैं।

कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई। धरि मारहु तिय लेहु छड़ाई॥
धूरि पूरि नभ मंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा॥

कोई कहता है दोनों भाइयों को जीता ही पकड़ लो, पकड़कर मार डालो और स्त्री को छीन लो। आकाशमंडल धूल से भर गया। तब राम ने लक्ष्मण को बुलाकर उनसे कहा -

लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर धनु पानी॥

राक्षसों की भयानक सेना आ गई है। जानकी को लेकर तुम पर्वत की कंदरा में चले जाओ। सावधान रहना। प्रभु श्री राम के वचन सुनकर लक्ष्मण हाथ में धनुष-बाण लिए सीता सहित चले।

देखि राम रिपुदल चलि आवा। बिहसि कठिन कोदंड चढ़ावा॥

शत्रुओं की सेना (समीप) चली आई है, यह देखकर राम ने हँसकर कठिन धनुष को चढ़ाया।

छं० - कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बाँधत सोह क्यों।
मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों॥
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै॥

कठिन धनुष चढ़ाकर सिर पर जटा का जूड़ा बाँधते हुए प्रभु कैसे शोभित हो रहे हैं, जैसे मरकतमणि (पन्ने) के पर्वत पर करोड़ों बिजलियों से दो साँप लड़ रहे हों। कमर में तरकस कसकर, विशाल भुजाओं में धनुष लेकर और बाण सुधारकर प्रभु राम राक्षसों की ओर देख रहे हैं। मानो मतवाले हाथियों के समूह को (आता) देखकर सिंह (उनकी ओर) ताक रहा हो।

सो० - आइ गए बगमेल धरहु धरहु धावत सुभट।

जथा बिलोकि अकेल बाल रबिहि घेरत दनुज॥ 18॥

'पकड़ो-पकड़ो' पुकारते हुए राक्षस योद्धा बाग छोड़कर (बड़ी तेजी से) दौड़े हुए आए (और उन्होंने राम को चारों ओर से घेर लिया), जैसे बालसूर्य (उदयकालीन सूर्य) को अकेला देखकर मंदेह नामक दैत्य घेर लेते हैं॥ 18॥

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी॥
सचिव बोलि बोले खर दूषन। यह कोउ नृपबालक नर भूषन॥

(सौंदर्य-माधुर्यनिधि) प्रभु राम को देखकर राक्षसों की सेना थकित रह गई। वे उन पर बाण नहीं छोड़ सके। मंत्री को बुलाकर खर-दूषण ने कहा - यह राजकुमार कोई मनुष्यों का भूषण है।

नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥

जितने भी नाग, असुर, देवता, मनुष्य और मुनि हैं, उनमें से हमने न जाने कितने ही देखे, जीते और मार डाले हैं। पर हे सब भाइयो! सुनो, हमने जन्मभर में ऐसी सुंदरता कहीं नहीं देखी।

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥
देहु तुरत निज नारि दुराई। जीअत भवन जाहु द्वौ भाई॥

यद्यपि इन्होंने हमारी बहिन को कुरूप कर दिया तथापि ये अनुपम पुरुष वध करने योग्य नहीं हैं। 'छिपाई हुई अपनी स्त्री हमें तुरंत दे दो और दोनों भाई जीते-जी घर लौट जाओ'।

मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु। तासु बचन सुनि आतुर आवहु॥
दूतन्ह कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई॥

मेरा यह कथन तुम लोग उसे सुनाओ और उसका वचन (उत्तर) सुनकर शीघ्र आओ। दूतों ने जाकर यह संदेश राम से कहा। उसे सुनते ही राम मुस्कुराकर बोले -

हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं॥

रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं॥

हम क्षत्रिय हैं, वन में शिकार करते हैं और तुम्हारे-सरीखे दुष्ट पशुओं को तो ढूँढ़ते ही फिरते हैं। हम बलवान शत्रु देखकर नहीं डरते। (लड़ने को आए तो) एक बार तो हम काल से भी लड़ सकते हैं।

जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। मुनि पालक खल सालक बालक॥
जौं न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतउँ न काहू॥

यद्यपि हम मनुष्य हैं, परंतु दैत्यकुल का नाश करनेवाले और मुनियों की रक्षा करनेवाले हैं, हम बालक हैं, परंतु दुष्टों को दंड देनेवाले। यदि बल न हो तो घर लौट जाओ। संग्राम में पीठ दिखानेवाले किसी को मैं नहीं मारता।

रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई॥
दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनि खर दूषन उर अति दहेऊ॥

रण में चढ़ आकर कपट-चतुराई करना और शत्रु पर कृपा करना (दया दिखाना) तो बड़ी भारी कायरता है। दूतों ने लौटकर तुरंत सब बातें कहीं, जिन्हें सुनकर खर-दूषण का हृदय अत्यंत जल उठा।

छं० - उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा॥
प्रभु कीन्हि धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा॥

(खर-दूषण का) हृदय जल उठा। तब उन्होंने कहा - पकड़ लो (कैद कर लो)। (यह सुनकर) भयानक राक्षस योद्धा बाण, धनुष, तोमर, शक्ति (साँग), शूल (बरछी), कृपाण (कटार), परिघ और फरसा धारण किए हुए दौड़ पड़े। प्रभु राम ने पहले धनुष का बड़ा कठोर, घोर और भयानक टंकार किया, जिसे सुनकर राक्षस बहरे और व्याकुल हो गए। उस समय उन्हें कुछ भी होश न रहा।

दो० - सावधान होइ धाए जानि सबल आराति।
लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहुभाँति॥ 19(क)॥

फिर वे शत्रु को बलवान जानकर सावधान होकर दौड़े और राम के ऊपर बहुत प्रकार के अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगे॥ 19(क)॥

तिन्ह के आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन श्रवन लगि पुनि छाँड़े निज तीर॥ 19(ख)॥

रघुवीर ने उनके हथियारों को तिल के समान (टुकड़े-टुकड़े) करके काट डाला। फिर धनुष को कान तक तानकर अपने तीर छोड़े॥ 19(ख)॥

छं० - तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल॥
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम॥

तब भयानक बाण ऐसे चले, मानो फुँफकारते हुए बहुत-से सर्प जा रहे हैं। राम संग्राम में क्रुद्ध हुए और अत्यंत तीक्ष्ण बाण चले।

अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर बीर॥
भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ। जो भागि रन ते जाइ॥

अत्यंत तीक्ष्ण बाणों को देखकर राक्षस वीर पीठ दिखाकर भाग चले। तब खर-दूषण और त्रिशिरा तीनों भाई क्रुद्ध होकर बोले - जो रण से भागकर जाएगा,

तेहि बधब हम निज पानि। फिरे मरन मन महुँ ठानि॥
आयुध अनेक प्रकार। सनमुख ते करहिं प्रहार॥

उसका हम अपने हाथों वध करेंगे। तब मन में मरना ठानकर भागते हुए राक्षस लौट पड़े और सामने होकर वे अनेकों प्रकार के हथियारों से राम पर प्रहार करने लगे।

रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष सर संधानि॥
छाँड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच॥

शत्रु को अत्यंत कुपित जानकर प्रभु ने धनुष पर बाण चढ़ाकर बहुत-से बाण छोड़े, जिनसे भयानक राक्षस कटने लगे।

उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन॥

चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान॥

उनकी छाती, सिर, भुजा, हाथ और पैर जहाँ-तहाँ पृथ्वी पर गिरने लगे। बाण लगते ही वे हाथी की तरह चिंग्घाड़ते हैं। उनके पहाड़ के समान धड़ कट-कटकर गिर रहे हैं।

भट कटत तन सत खंड। पुनि उठत करि पाषंड॥
नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड॥

योद्धाओं के शरीर कटकर सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं। वे फिर माया करके उठ खड़े होते हैं। आकाश में बहुत-सी भुजाएँ और सिर उड़ रहे हैं तथा बिना सिर के धड़ दौड़ रहे हैं।

खग कंक काक सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल॥

चील (या क्रौंच), कौए आदि पक्षी और सियार कठोर और भयंकर कट-कट शब्द कर रहे हैं।

छं॰ - कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं॥
रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धर धरु धरु करहिं भयंकर गिरा॥

सियार कटकटाते हैं, भूत, प्रेत और पिशाच खोपड़ियाँ बटोर रहे हैं (अथवा खप्पर भर रहे हैं)। वीर-वैताल खोपड़ियों पर ताल दे रहे हैं और योगिनियाँ नाच रही हैं। रघुवीर के प्रचंड बाण योद्धाओं के वक्षःस्थल, भुजा और सिरों के टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। उनके धड़ जहाँ-तहाँ गिर पड़ते हैं। फिर उठते और लड़ते हैं और 'पकड़ो-पकड़ो' का भयंकर शब्द करते हैं।

अंतावरीं गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं।
संग्राम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं॥
मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे।
अवलोकि निज दल बिकल भट तिसिरादि खर दूषन फिरे॥

अंतड़ियों के एक छोर को पकड़कर गीध उड़ते हैं और उन्हीं का दूसरा छोर हाथ से पकड़कर पिशाच दौड़ते हैं, ऐसा मालूम होता है, मानो संग्रामरूपी नगर के निवासी बहुत-से बालक पतंग उड़ा रहे हों। अनेकों योद्धा मारे और पछाड़े गए। बहुत-से, जिनके हृदय

विदीर्ण हो गए हैं, पड़े कराह रहे हैं। अपनी सेना को व्याकुल देखकर त्रिशिरा और खर-दूषण आदि योद्धा राम की ओर मुड़े।

सरसक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारहीं।
करि कोप श्री रघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं॥
प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका।
दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायका॥

अनगिनत राक्षस क्रोध करके बाण, शक्ति, तोमर, फरसा, शूल और कृपाण एक ही बार में श्री रघुवीर पर छोड़ने लगे। प्रभु ने पल भर में शत्रुओं के बाणों को काटकर, ललकारकर उन पर अपने बाण छोड़े। सब राक्षस-सेनापतियों के हृदय में दस-दस बाण मारे।

महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‍यो।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपु दल लरि मर्‍यो॥

योद्धा पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं, फिर उठकर भिड़ते हैं। मरते नहीं, बहुत प्रकार की अतिशय माया रचते हैं। देवता यह देखकर डरते हैं कि प्रेत (राक्षस) चौदह हजार हैं और अयोध्यानाथ राम अकेले हैं। देवता और मुनियों को भयभीत देखकर माया के स्वामी प्रभु ने एक बड़ा कौतुक किया, जिससे शत्रुओं की सेना एक-दूसरे को राम रूप देखने लगी और आपस में ही युद्ध करके लड़ मरी।

दो॰ - राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।
करि उपाय रिपु मारे छन महुँ कृपानिधान॥ 20(क)॥

सब ('यही राम है, इसे मारो' इस प्रकार) राम-राम कहकर शरीर छोड़ते हैं और निर्वाण (मोक्ष) पद पाते हैं। कृपानिधान राम ने यह उपाय करके क्षण भर में शत्रुओं को मार डाला॥ 20(क)॥

हरषित बरषहिं सुमन सुर बाजहिं गगन निसान।
अस्तुति करि करि सब चले सोभित बिबिध बिमान॥ 20(ख)॥

देवता हर्षित होकर फूल बरसाते हैं, आकाश में नगाड़े बज रहे हैं। फिर वे सब स्तुति कर-

करके अनेकों विमानों पर सुशोभित हुए चले गए॥ 20(ख)॥

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते॥
तब लछिमन सीतहि लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए॥

जब रघुनाथ ने युद्ध में शत्रुओं को जीत लिया तथा देवता, मनुष्य और मुनि सबके भय नष्ट हो गए, तब लक्ष्मण सीता को ले आए। चरणों में पड़ते हुए उनको प्रभु ने प्रसन्नतापूर्वक उठाकर हृदय से लगा लिया।

सीता चितव स्याम मृदु गाता। परम प्रेम लोचन न अघाता॥
पंचबटीं बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक॥

सीता राम के श्याम और कोमल शरीर को परम प्रेम के साथ देख रही हैं, नेत्र अघाते नहीं हैं। इस प्रकार पंचवटी में बसकर रघुनाथ देवताओं और मुनियों को सुख देनेवाले चरित्र करने लगे।

धुआँ देखि खरदूषन केरा। जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा॥
बोली बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी॥

खर-दूषण का विध्वंस देखकर शूर्पणखा ने जाकर रावण को भड़काया। वह बड़ा क्रोध करके वचन बोली - तूने देश और खजाने की सुधि ही भुला दी।

करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती॥
राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ॥
संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा॥

शराब पी लेता है और दिन-रात पड़ा सोता रहता है। तुझे खबर नहीं है कि शत्रु तेरे सिर पर खड़ा है? नीति के बिना राज्य और धर्म के बिना धन प्राप्त करने से, भगवान को समर्पण किए बिना उत्तम कर्म करने से और विवेक उत्पन्न किए बिना विद्या पढ़ने से परिणाम में श्रम ही हाथ लगता है। विषयों के संग से संन्यासी, बुरी सलाह से राजा, मान से ज्ञान, मदिरा पान से लज्जा,

प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥

नम्रता के बिना (नम्रता न होने से) प्रीति और मद (अहंकार) से गुणवान शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार नीति मैंने सुनी है।

सो० - रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन॥ 21(क)॥

शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्प को छोटा करके नहीं समझना चाहिए। ऐसा कहकर शूर्पणखा अनेक प्रकार से विलाप करके रोने लगी॥ 21(क)॥

दो० - सभा माझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ॥ 21(ख)॥

(रावण की) सभा के बीच वह व्याकुल होकर पड़ी हुई बहुत प्रकार से रो-रोकर कह रही है कि अरे दशग्रीव! तेरे जीते-जी मेरी क्या ऐसी दशा होनी चाहिए?॥ 21(ख)॥

सुनत सभासद उठे अकुलाई। समुझाई गहि बाँह उठाई॥
कह लंकेस कहसि निज बाता। केइँ तव नासा कान निपाता॥

शूर्पणखा के वचन सुनते ही सभासद अकुला उठे। उन्होंने शूर्पणखा की बाँह पकड़कर उसे उठाया और समझाया। लंकापति रावण ने कहा - अपनी बात तो बता, किसने तेरे नाक-कान काट लिए?

अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष सिंघ बन खेलन आए॥
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी॥

(वह बोली -) अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र, जो पुरुषों में सिंह के समान हैं, वन में शिकार खेलने आए हैं। मुझे उनकी करनी ऐसी समझ पड़ी है कि वे पृथ्वी को राक्षसों से रहित कर देंगे।

जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन। अभय भए बिचरत मुनि कानन॥
देखत बालक काल समाना। परम धीर धन्वी गुन नाना॥

जिनकी भुजाओं का बल पाकर हे दशमुख! मुनि लोग वन में निर्भय होकर विचरने लगे हैं। वे देखने में तो बालक हैं, पर हैं काल के समान। वे परम धीर, श्रेष्ठ धनुर्धर और

अनेकों गुणों से युक्त हैं।

अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता। खल बध रत सुर मुनि सुखदाता॥
सोभा धाम राम अस नामा। तिन्ह के संग नारि एक स्यामा॥

दोनों भाइयों का बल और प्रताप अतुलनीय है। वे दुष्टों का वध करने में लगे हैं और देवता तथा मुनियों को सुख देनेवाले हैं। वे शोभा के धाम हैं, 'राम' ऐसा उनका नाम है। उनके साथ एक तरुणी सुंदर स्त्री है।

रूप रासि बिधि नारि सँवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी॥
तासु अनुज काटे श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा॥

विधाता ने उस स्त्री को ऐसी रूप की राशि बनाया है कि सौ करोड़ रतियाँ (कामदेव की स्त्री) उस पर निछावर हैं। उन्हीं के छोटे भाई ने मेरे नाक-कान काट डाले। मैं तेरी बहिन हूँ, यह सुनकर वे मेरी हँसी करने लगे।

खर दूषन सुनि लगे पुकारा। छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा॥
खर दूषन तिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता॥

मेरी पुकार सुनकर खर-दूषण सहायता करने आए। पर उन्होंने क्षण भर में सारी सेना को मार डाला। खर-दूषण और त्रिशिरा का वध सुनकर रावण के सारे अंग जल उठे।

दो॰ - सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति।
गयउ भवन अति सोचबस नीद परइ नहिं राति॥ 22॥

उसने शूर्पणखा को समझाकर बहुत प्रकार से अपने बल का बखान किया, किंतु (मन में) वह अत्यंत चिंतावश होकर अपने महल में गया, उसे रात भर नींद नहीं पड़ी॥ 22॥

सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं॥
खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥

(वह मन-ही-मन विचार करने लगा -) देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियों में कोई ऐसा नहीं, जो मेरे सेवक को भी पा सके। खर-दूषण तो मेरे ही समान बलवान थे। उन्हें भगवान के सिवा और कौन मार सकता है?

सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥

देवताओं को आनंद देनेवाले और पृथ्वी का भार हरण करनेवाले भगवान ने ही यदि अवतार लिया है, तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभु के बाण (के आघात) से प्राण छोड़कर भवसागर से तर जाऊँगा।

होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥
जौं नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ॥

इस तामस शरीर से भजन तो होगा नहीं; अतएव मन, वचन और कर्म से यही दृढ़ निश्चय है। और यदि वे मनुष्य रूप कोई राजकुमार होंगे तो उन दोनों को रण में जीतकर उनकी स्त्री को हर लूँगा।

चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ॥
इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई॥

(यों विचारकर) रावण रथ पर चढ़ कर अकेला ही वहाँ चला, जहां समुद्र के तट पर मारीच रहता था। (शिव कहते हैं कि -) हे पार्वती! यहाँ राम ने जैसी युक्ति रची, वह सुंदर कथा सुनो।

दो० - लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कंद।
जनकसुता सन बोले बिहसि कृपा सुख बृंद॥ 23॥

लक्ष्मण जब कंद-मूल-फल लेने के लिए वन में गए, तब (अकेले में) कृपा और सुख के समूह राम हँसकर जानकी से बोले - ॥ 23॥

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥

हे प्रिये! हे सुंदर पतिव्रत-धर्म का पालन करनेवाली सुशीले! सुनो! मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य लीला करूँगा। इसलिए जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँ, तब तक तुम अग्नि में निवास करो।

जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी॥

निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता॥

राम ने ज्यों ही सब समझाकर कहा, त्यों ही सीता प्रभु के चरणों को हृदय में धरकर अग्नि में समा गईं। सीता ने अपनी ही छाया मूर्ति वहाँ रख दी, जो उनके जैसे ही शील-स्वभाव और रूपवाली तथा वैसे ही विनम्र थी।

लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥
दसमुख गयउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथ रत नीचा॥

भगवान ने जो कुछ लीला रची, इस रहस्य को लक्ष्मण ने भी नहीं जाना। स्वार्थ परायण और नीच रावण वहाँ गया, जहाँ मारीच था और उसको सिर नवाया।

नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई॥
भयदायक खल कै प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी॥

नीच का झुकना (नम्रता) भी अत्यंत दुःखदायी होता है। जैसे अंकुश, धनुष, साँप और बिल्ली का झुकना। हे भवानी! दुष्ट की मीठी वाणी भी (उसी प्रकार) भय देनेवाली होती है, जैसे बिना ऋतु के फूल!

दो॰ - करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन ब्यग्र अति अकसर आयहु तात॥ 24॥

तब मारीच ने उसकी पूजा करके आदरपूर्वक बात पूछी - हे तात! आपका मन किस कारण इतना अधिक व्यग्र है और आप अकेले आए हैं?॥ 24॥

दसमुख सकल कथा तेहि आगें। कही सहित अभिमान अभागें॥
होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी॥

भाग्यहीन रावण ने सारी कथा अभिमान सहित उसके सामने कही (और फिर कहा -) तुम छल करनेवाले कपट-मृग बनो, जिस उपाय से मैं उस राजवधू को हर लाऊँ।

तेहिं पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नररूप चराचर ईसा॥
तासों तात बयरु नहिं कीजै। मारें मरिअ जिआएँ जीजै॥

तब उसने (मारीच ने) कहा - हे दशशीश! सुनिए। वे मनुष्य रूप में चराचर के ईश्वर हैं।

हे तात! उनसे वैर न कीजिए। उन्हीं के मारने से मरना और उनके जिलाने से जीना होता है (सबका जीवन-मरण उन्हीं के अधीन है)।

मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा॥
सत जोजन आयउँ छन माहीं। तिन्ह सन बयरु किएँ भल नाहीं॥

यही राजकुमार मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए गए थे। उस समय रघुनाथ ने बिना फल का बाण मुझे मारा था, जिससे मैं क्षणभर में सौ योजन पर आ गिरा। उनसे वैर करने में भलाई नहीं है।

भइ मम कीट भृंग की नाई। जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई॥
जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा॥

मेरी दशा तो भृंगी के कीड़े की-सी हो गई है। अब मैं जहाँ-तहाँ राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों को ही देखता हूँ। और हे तात! यदि वे मनुष्य हैं तो भी बड़े शूरवीर हैं। उनसे विरोध करने में पूरा न पड़ेगा (सफलता नहीं मिलेगी)।

दो॰ - जेहिं ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड।
खर दूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड॥ 25॥

जिसने ताड़का और सुबाहु को मारकर शिव का धनुष तोड़ दिया और खर, दूषण और त्रिशिरा का वध कर डाला, ऐसा प्रचंड बली भी कहीं मनुष्य हो सकता है?॥ 25॥

जाहु भवन कुल कुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी॥
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा॥

अतः अपने कुल की कुशल विचारकर आप घर लौट जाइए। यह सुनकर रावण जल उठा और उसने बहुत-सी गालियाँ दीं (दुर्वचन कहे)। (कहा -) अरे मूर्ख! तू गुरु की तरह मुझे ज्ञान सिखाता है? बता तो, संसार में मेरे समान योद्धा कौन है?

तब मारीच हृदयँ अनुमाना। नवहि बिरोधें नहिं कल्याना॥
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि भानस गुनी॥

तब मारीच ने हृदय में अनुमान किया कि शस्त्री (शस्त्रधारी), मर्मी (भेद जाननेवाला), समर्थ स्वामी, मूर्ख, धनवान, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया - इन नौ व्यक्तियों से विरोध

(वैर) करने में कल्याण (कुशल) नहीं होता।

उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकिसि रघुनायक सरना॥
उतरु देत मोहि बधब अभागें। कस न मरौं रघुपति सर लागें॥

जब मारीच ने दोनों प्रकार से अपना मरण देखा, तब उसने रघुनाथ की शरण तकी (अर्थात उनकी शरण जाने में ही कल्याण समझा)। (सोचा कि) उत्तर देते ही (नाहीं करते ही) यह अभागा मुझे मार डालेगा। फिर रघुनाथ के बाण लगने से ही क्यों न मरूँ।

अस जियँ जानि दसानन संगा। चला राम पद प्रेम अभंगा॥
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही॥

हृदय में ऐसा समझकर वह रावण के साथ चला। राम के चरणों में उसका अखंड प्रेम है। उसके मन में इस बात का अत्यंत हर्ष है कि आज मैं अपने परम स्नेही राम को देखूँगा; किंतु उसने यह हर्ष रावण को नहीं जनाया।

छं० - निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।
श्रीसहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं॥
निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति अबसहि बसकरी।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी॥

(वह मन-ही-मन सोचने लगा -) अपने परम प्रियतम को देखकर नेत्रों को सफल करके सुख पाऊँगा। जानकी सहित और छोटे भाई लक्ष्मण समेत कृपानिधान राम के चरणों में मन लगाऊँगा। जिनका क्रोध भी मोक्ष देनेवाला है और जिनकी भक्ति उन अवश (किसी के वश में न होनेवाले स्वतंत्र भगवान) को भी वश में करनेवाली है, अहा! वे ही आनंद के समुद्र हरि अपने हाथों से बाण संधानकर मेरा वध करेंगे!

दो० - मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन॥ 26॥

धनुष-बाण धारण किए मेरे पीछे-पीछे पृथ्वी पर (पकड़ने के लिए) दौड़ते हुए प्रभु को मैं फिर-फिरकर देखूँगा। मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है॥ 26॥

तेहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपटमृग भयऊ॥

अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई॥

जब रावण उस वन के (जिस वन में रघुनाथ रहते थे) निकट पहुँचा, तब मारीच कपटमृग बन गया। वह अत्यंत ही विचित्र था, कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। सोने का शरीर मणियों से जड़कर बनाया था।

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला॥

सीता ने उस परम सुंदर हिरन को देखा, जिसके अंग-अंग की छटा अत्यंत मनोहर थी। (वे कहने लगीं -) हे देव! हे कृपालु रघुवीर! सुनिए। इस मृग की छाल बहुत ही सुंदर है।

सत्यसंध प्रभु बधि करि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही॥
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काजु सँवारन॥

जानकी ने कहा - हे सत्यप्रतिज्ञ प्रभो! इसको मारकर इसका चमड़ा ला दीजिए। तब रघुनाथ (मारीच के कपटमृग बनने का) सब कारण जानते हुए भी, देवताओं का कार्य बनाने के लिए हर्षित होकर उठे।

मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा॥
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई॥

हिरन को देखकर राम ने कमर में फेंटा बाँधा और हाथ में धनुष लेकर उस पर सुंदर (दिव्य) बाण चढ़ाया। फिर प्रभु ने लक्ष्मण को समझाकर कहा - हे भाई! वन में बहुत-से राक्षस फिरते हैं।

सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी॥

तुम बुद्धि और विवेक के द्वारा बल और समय का विचार करके सीता की रखवाली करना। प्रभु को देखकर मृग भाग चला। राम भी धनुष चढ़ाकर उसके पीछे दौड़े।

निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछें सो धावा॥
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छपाई॥

वेद जिनके विषय में 'नेति-नेति' कहकर रह जाते हैं और शिव भी जिन्हें ध्यान में नहीं पाते (अर्थात जो मन और वाणी से नितांत परे हैं), वे ही राम माया से बने हुए मृग के पीछे दौड़ रहे हैं। वह कभी निकट आ जाता है और फिर दूर भाग जाता है। कभी तो प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है।

प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी॥
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा॥

इस प्रकार प्रकट होता और छिपता हुआ तथा बहुतेरे छल करता हुआ वह प्रभु को दूर ले गया। तब राम ने तक कर (निशाना साधकर) कठोर बाण मारा, (जिसके लगते ही) वह घोर शब्द करके पृथ्वी पर गिर पड़ा।

लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछें सुमिरेसि मन महुँ रामा॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि रामु समेत सनेहा॥

पहले लक्ष्मण का नाम लेकर उसने पीछे मन में राम का स्मरण किया। प्राण त्याग करते समय उसने अपना (राक्षसी) शरीर प्रकट किया और प्रेम सहित राम का स्मरण किया।

अंतर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना॥

सुजान (सर्वज्ञ) राम ने उसके हृदय के प्रेम को पहचानकर उसे वह गति (अपना परमपद) दी जो मुनियों को भी दुर्लभ है।

दो० - बिपुल सुमर सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबंधु रघुनाथ॥ 27॥

देवता बहुत-से फूल बरसा रहे हैं और प्रभु के गुणों की गाथाएँ (स्तुतियाँ) गा रहे हैं (कि) रघुनाथ ऐसे दीनबंधु हैं कि उन्होंने असुर को भी अपना परम पद दे दिया॥ 27॥

खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप कर कटि तूनीरा॥
आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता॥

दुष्ट मारीच को मारकर रघुवीर तुरंत लौट पड़े। हाथ में धनुष और कमर में तरकस शोभा दे रहा है। इधर जब सीता ने दुःखभरी वाणी (मरते समय मारीच की 'हा लक्ष्मण' की

आवाज) सुनी तो वे बहुत ही भयभीत होकर लक्ष्मण से कहने लगीं -

जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहसि कहा सुनु माता॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई॥

तुम शीघ्र जाओ, तुम्हारे भाई बड़े संकट में हैं। लक्ष्मण ने हँसकर कहा - हे माता! सुनो, जिनके भ्रृकुटिविलास (भौं के इशारे) मात्र से सारी सृष्टि का लय (प्रलय) हो जाता है, वे राम क्या कभी स्वप्न में भी संकट में पड़ सकते हैं?

मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥
बन दिसि देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन ससि राहू॥

इस पर जब सीता कुछ मर्म-वचन (हृदय में चुभनेवाले वचन) कहने लगीं, तब भगवान की प्रेरणा से लक्ष्मण का मन भी चंचल हो उठा। वे सीता को वन और दिशाओं के देवताओं को सौंपकर वहाँ चले, जहाँ रावणरूपी चंद्रमा के लिए राहुरूप राम थे।

सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती कें बेषा॥
जाकें डर सुर असुर डेराहीं। निसि न नीद दिन अन्न न खाहीं॥

रावण सूना मौका देखकर यति (संन्यासी) के वेष में सीता के समीप आया, जिसके डर से देवता और दैत्य तक इतना डरते हैं कि रात को नींद नहीं आती और दिन में (भरपेट) अन्न नहीं खाते -

सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा॥

वही दस सिरवाला रावण कुत्ते की तरह इधर-उधर ताकता हुआ भड़िहाई (चोरी) के लिए चला। (काकभुशुंडि कहते हैं -) हे गरुड़! इस प्रकार कुमार्ग पर पैर रखते ही शरीर में तेज तथा बुद्धि एवं बल का लेश भी नहीं रह जाता।

नाना बिधि करि कथा सुहाई। राजनीति भय प्रीति देखाई॥
कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं॥

रावण ने अनेकों प्रकार की सुहावनी कथाएँ रचकर सीता को राजनीति, भय और प्रेम

दिखलाया। सीता ने कहा - हे यति गोसाईं! सुनो, तुमने तो दुष्ट की तरह वचन कहे।

तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा॥
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा॥

तब रावण ने अपना असली रूप दिखलाया और जब नाम सुनाया तब तो सीता भयभीत हो गईं। उन्होंने गहरा धीरज धरकर कहा - 'अरे दुष्ट! खड़ा तो रह, प्रभु आ गए'।

जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा। भएसि कालबस निसिचर नाहा॥
सुनत बचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना॥

जैसे सिंह की स्त्री को तुच्छ खरगोश चाहे, वैसे ही अरे राक्षसराज! तू (मेरी चाह करके) काल के वश हुआ है। ये वचन सुनते ही रावण को क्रोध आ गया, परंतु मन में उसने सीता के चरणों की वंदना करके सुख माना।

दो॰ - क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ॥ 28॥

फिर क्रोध में भरकर रावण ने सीता को रथ पर बैठा लिया और वह बड़ी उतावली के साथ आकाश मार्ग से चला; किंतु डर के मारे उससे रथ हाँका नहीं जाता था॥ 28॥

हा जग एक बीर रघुराया। केहिं अपराध बिसारेहु दाया॥
आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिननायक॥

(सीता विलाप कर रही थीं -) हा जगत के अद्‍वितीय वीर रघुनाथ! आपने किस अपराध से मुझ पर दया भुला दी। हे दुःखों के हरनेवाले, हे शरणागत को सुख देनेवाले, हा रघुकुलरूपी कमल के सूर्य!

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोसा॥
बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही॥

हा लक्ष्मण! तुम्हारा दोष नहीं है। मैंने क्रोध किया, उसका फल पाया। जानकी बहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं - (हाय!) प्रभु की कृपा तो बहुत है, परंतु वे स्नेही प्रभु बहुत दूर रह गए हैं।

बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा॥
सीता कै बिलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी॥

प्रभु को मेरी यह विपत्ति कौन सुनावे? यज्ञ के अन्न को गदहा खाना चाहता है। सीता का भारी विलाप सुनकर जड़-चेतन सभी जीव दुःखी हो गए।

गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुलतिलक नारि पहिचानी॥
अधम निसाचर लीन्हें जाई। जिमि मलेछ बस कपिला गाई॥

गृध्रराज जटायु ने सीता की दुःखभरी वाणी सुनकर पहचान लिया कि ये रघुकुल तिलक राम की पत्नी हैं। (उसने देखा कि) नीच राक्षस इनको (बुरी तरह) लिए जा रहा है, जैसे कपिला गाय म्लेच्छ के पाले पड़ गई हो।

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहउँ जातुधान कर नासा॥
धावा क्रोधवंत खग कैसें। छूटइ पबि परबत कहुँ जैसें॥

(वह बोला -) हे सीते पुत्री! भय मत कर। मैं इस राक्षस का नाश करूँगा। (यह कहकर) वह पक्षी क्रोध में भरकर ऐसे दौड़ा, जैसे पर्वत की ओर वज्र छूटता हो।

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन हो ही। निर्भय चलेसि न जानेहि मोही॥
आवत देखि कृतांत समाना। फिरि दसकंधर कर अनुमाना॥

(उसने ललकारकर कहा -) रे रे दुष्ट! खड़ा क्यों नहीं होता? निडर होकर चल दिया! मुझे तूने नहीं जाना? उसको यमराज के समान आता हुआ देखकर रावण घूमकर मन में अनुमान करने लगा -

की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई॥
जाना जरठ जटायू एहा। मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा॥

यह या तो मैनाक पर्वत है या पक्षियों का स्वामी गरुड़। पर वह (गरुड़) तो अपने स्वामी विष्णु सहित मेरे बल को जानता है! (कुछ पास आने पर) रावण ने उसे पहचान लिया (और बोला -) यह तो बूढ़ा जटायु है। यह मेरे हाथरूपी तीर्थ में शरीर छोड़ेगा।

सुनत गीध क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावन मोर सिखावा॥

तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू। नाहिं त अस होइहि बहुबाहू॥

यह सुनते ही गीध क्रोध में भरकर बड़े वेग से दौड़ा और बोला - रावण! मेरी सिखावन सुन। जानकी को छोड़कर कुशलपूर्वक अपने घर चला जा। नहीं तो हे बहुत भुजाओंवाले! ऐसा होगा कि -

राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सकल सलभ कुल तोरा॥
उतरु न देत दसानन जोधा। तबहिं गीध धावा करि क्रोधा॥

राम के क्रोधरूपी अत्यंत भयानक अग्नि में तेरा सारा वंश पतिंगा (होकर भस्म) हो जाएगा। योद्धा रावण कुछ उत्तर नहीं देता। तब गीध क्रोध करके दौड़ा।

धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा। सीतहि राखि गीध पुनि फिरा॥
चोचन्ह मारि बिदारेसि देही। दंड एक भइ मुरुछा तेही॥

उसने (रावण के) बाल पकड़कर उसे रथ के नीचे उतार लिया, रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। गीध सीता को एक ओर बैठाकर फिर लौटा और चोंचों से मार-मारकर रावण के शरीर को विदीर्ण कर डाला। इससे उसे एक घड़ी के लिए मूर्च्छा हो गई।

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना॥
काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अदभुत करनी॥

तब खिसियाए हुए रावण ने क्रोधयुक्त होकर अत्यंत भयानक कटार निकाली और उससे जटायु के पंख काट डाले। पक्षी (जटायु) राम की अद्भुत लीला का स्मरण करके पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी। चला उताइल त्रास न थोरी॥
करति बिलाप जाति नभ सीता। ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता॥

सीता को फिर रथ पर चढ़ाकर रावण बड़ी उतावली के साथ चला, उसे भय कम न था। सीता आकाश में विलाप करती हुई जा रही हैं। मानो व्याध के वश में पड़ी हुई (जाल में फँसी हुई) कोई भयभीत हिरनी हो!

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी॥

एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ। बन असोक महँ राखत भयऊ॥

पर्वत पर बैठे हुए बंदरों को देखकर सीता ने हरिनाम लेकर वस्त्र डाल दिया। इस प्रकार वह सीता को ले गया और उन्हें अशोक वन में जा रखा।

दो॰ - हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ।
तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ॥ 29(क)॥

सीता को बहुत प्रकार से भय और प्रीति दिखलाकर जब वह दुष्ट हार गया, तब उन्हें यत्न कराके (सब व्यवस्था ठीक कराके) अशोक वृक्ष के नीचे रख दिया॥ 29(क)॥

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चलेराम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम॥ 29(ख)॥

जिस प्रकार कपटमृग के साथ राम दौड़ चले थे, उसी छवि को हृदय में रखकर वे हरिनाम (रामनाम) रटती रहती हैं॥ 29(ख)॥

रघुपति अनुजहि आवत देखी। बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी॥
जनकसुता परिहरिहु अकेली। आयहु तात बचन मम पेली॥

(इधर) रघुनाथ ने छोटे भाई लक्ष्मण को आते देखकर बाह्य रूप में बहुत चिंता की (और कहा -) हे भाई! तुमने जानकी को अकेली छोड़ दिया और मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर यहाँ चले आए!

निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आश्रम नाहीं॥
गहि पद कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी॥

राक्षसों के झुंड वन में फिरते रहते हैं। मेरे मन में ऐसा आता है कि सीता आश्रम में नहीं है। छोटे भाई लक्ष्मण ने राम के चरणकमलों को पकड़कर हाथ जोड़कर कहा - हे नाथ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है।

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ। गोदावरि तट आश्रम जहवाँ॥
आश्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना॥

लक्ष्मण सहित प्रभु राम वहाँ गए जहाँ गोदावरी के तट पर उनका आश्रम था। आश्रम को

जानकी से रहित देखकर राम साधारण मनुष्य की भाँति व्याकुल और दीन (दुःखी) हो गए।

हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता॥
लछिमन समुझाए बहु भाँति। पूछत चले लता तरु पाँती॥

(वे विलाप करने लगे -) हा गुणों की खान जानकी! हा रूप, शील, व्रत और नियमों में पवित्र सीते! लक्ष्मण ने बहुत प्रकार से समझाया। तब राम लताओं और वृक्षों की पंक्तियों से पूछते हुए चले।

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना॥

हे पक्षियों! हे पशुओं! हे भौंरों की पंक्तियों! तुमने कहीं मृगनयनी सीता को देखा है? खंजन, तोता, कबूतर, हिरन, मछली, भौंरों का समूह, प्रवीण कोयल,

कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥

कुंदकली, अनार, बिजली, कमल, शरद का चंद्रमा और नागिनी, वरुण का पाश, कामदेव का धनुष, हंस, गज और सिंह - ये सब आज अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं।

श्री फल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥

बेल, सुवर्ण और केला हर्षित हो रहे हैं। इनके मन में जरा भी शंका और संकोच नहीं है। हे जानकी! सुनो, तुम्हारे बिना ये सब आज ऐसे हर्षित हैं, मानो राज पा गए हों। (अर्थात तुम्हारे अंगों के सामने ये सब तुच्छ, अपमानित और लज्जित थे। आज तुम्हें न देखकर ये अपनी शोभा के अभिमान में फूल रहे हैं)।

किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी॥

तुमसे यह अनख (स्पर्धा) कैसे सही जाती है? हे प्रिये! तुम शीघ्र ही प्रकट क्यों नहीं होती? इस प्रकार (अनंत ब्रह्मांडों के अथवा महामहिमामयी स्वरूपाशक्ति सीता के) स्वामी राम

सीता को खोजते हुए (इस प्रकार) विलाप करते हैं, मानो कोई महाविरही और अत्यंत कामी पुरुष हो।

पूरनकाम राम सुख रासी। मनुजचरित कर अज अबिनासी॥
आगें परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा॥

पूर्णकाम, आनंद की राशि, अजन्मा और अविनाशी राम मनुष्यों के-से चरित्र कर रहे हैं। आगे (जाने पर) उन्होंने गृध्रपति जटायु को पड़ा देखा। वह राम के चरणों का स्मरण कर रहा था, जिनमें (ध्वजा, कुलिश आदि की) रेखाएँ (चिह्न) हैं।

दो० - कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर॥ 30॥

कृपा सागर रघुवीर ने अपने करकमल से उसके सिर का स्पर्श किया (उसके सिर पर कर-कमल फेर दिया)। शोभाधाम राम का (परम सुंदर) मुख देखकर उसकी सब पीड़ा जाती रही॥ 30॥

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भंजन भव भीरा॥
नाथ दसानन यह गति कीन्ही। तेहिं खल जनकसुता हरि लीन्ही॥

तब धीरज धरकर गीध ने यह वचन कहा - हे भव (जन्म-मृत्यु) के भय का नाश करनेवाले राम! सुनिए। हे नाथ! रावण ने मेरी यह दशा की है। उसी दुष्ट ने जानकी को हर लिया है।

लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं॥
दरस लाग प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना॥

हे गोसाईं! वह उन्हें लेकर दक्षिण दिशा को गया है। सीता कुररी (कुर्ज) की तरह अत्यंत विलाप कर रही थीं। हे प्रभो! आपके दर्शनों के लिए ही प्राण रोक रखे थे। हे कृपानिधान! अब ये चलना ही चाहते हैं।

राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेहिं बाता॥
जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा॥

राम ने कहा - हे तात! शारीर को बनाए रखिए। तब उसने मुसकराते हुए मुँह से यह बात

कही - मरते समय जिनका नाम मुख में आ जाने से अधम (महान पापी) भी मुक्त हो जाता है, ऐसा वेद गाते हैं -

सो मम लोचन गोचर आगें। राखौं देह नाथ केहि खाँगें॥
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज तें गति पाई॥

वही (आप) मेरे नेत्रों के विषय होकर सामने खड़े हैं। हे नाथ! अब मैं किस कमी (की पूर्ति) के लिए देह को रखूँ? नेत्रों में जल भरकर रघुनाथ कहने लगे - हे तात! आपने अपने श्रेष्ठ कर्मों से (दुर्लभ) गति पाई है।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥
तनु तिज तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा॥

जिनके मन में दूसरे का हित बसता है (समाया रहता है), उनके लिए जगत में कुछ भी (कोई भी गति) दुर्लभ नहीं है। हे तात! शरीर छोड़कर आप मेरे परम धाम में जाइए। मैं आपको क्या दूँ? आप तो पूर्णकाम हैं (सब कुछ पा चुके हैं)।

दो० - सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ॥ 31॥

हे तात! सीता हरण की बात आप जाकर पिता से न कहिएगा। यदि मैं राम हूँ तो दशमुख रावण कुटुंब सहित वहाँ आकर स्वयं ही कहेगा॥ 31॥

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा॥
स्याम गात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी॥

जटायु ने गीध की देह त्यागकर हरि का रूप धारण किया और बहुत-से अनुपम (दिव्य) आभूषण और (दिव्य) पीतांबर पहन लिए। श्याम शरीर है, विशाल चार भुजाएँ हैं और नेत्रों में (प्रेम तथा आनंद के आँसुओं का) जल भरकर वह स्तुति कर रहा है -

छं० - जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही॥
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं।
नित नौमि रामु कृपाल बाहु बिसाल भव भय मोचनं॥

हे राम! आपकी जय हो। आपका रूप अनुपम है, आप निर्गुण हैं, सगुण हैं और सत्य ही गुणों के (माया के) प्रेरक हैं। दस सिरवाले रावण की प्रचंड भुजाओं को खंड-खंड करने के लिए प्रचंड बाण धारण करनेवाले, पृथ्वी को सुशोभित करनेवाले, जलयुक्त मेघ के समान श्याम शरीरवाले, कमल के समान मुख और (लाल) कमल के समान विशाल नेत्रोंवाले, विशाल भुजाओंवाले और भव-भय से छुड़ानेवाले कृपालु राम को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

बलमप्रमेयमनादिमजमब्यक्तमेकमगोचरं।
गोबिंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधरं॥
जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गंजनं॥

आप अपरिमित बलवाले हैं, अनादि, अजन्मा, अव्यक्त (निराकार), एक अगोचर (अलक्ष्य), गोविंद (वेद वाक्यों द्वारा जानने योग्य), इंद्रियों से अतीत, (जन्म-मरण, सुख-दुःख, हर्ष-शोकादि) द्वंद्वों को हरनेवाले, विज्ञान की घनमूर्ति और पृथ्वी के आधार हैं तथा जो संत राम-मंत्र को जपते हैं, उन अनंत सेवकों के मन को आनंद देनेवाले हैं। उन निष्कामप्रिय (निष्कामजनों के प्रेमी अथवा उन्हें प्रिय) तथा काम आदि दुष्टों (दुष्ट वृत्तियों) के दल का दलन करनेवाले राम को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म ब्यापक बिरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ग्यान बिराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं॥
सो प्रगट करुना कंद सोभा बृंद अग जग मोहई।
मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई॥

जिनको श्रुतियाँ निरंजन (माया से परे), ब्रह्म, व्यापक, निर्विकार और जन्मरहित कहकर गान करती हैं। मुनि जिन्हें ध्यान, ज्ञान, वैराग्य और योग आदि अनेक साधन करके पाते हैं। वे ही करुणाकंद, शोभा के समूह (स्वयं भगवान) प्रकट होकर जड़-चेतन समस्त जगत को मोहित कर रहे हैं। मेरे हृदय-कमल के भ्रमर रूप उनके अंग-अंग में बहुत-से कामदेवों की छवि शोभा पा रही है।

जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।
पस्यंति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा॥
सो राम रमा निवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी।

मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी॥

जो अगम और सुगम हैं, निर्मल स्वभाव हैं, विषम और सम हैं और सदा शीतल (शांत) हैं। मन और इंद्रियों को सदा वश में करते हुए योगी बहुत-साधन करने पर जिन्हें देख पाते हैं। वे तीनों लोकों के स्वामी, रमानिवास राम निरंतर अपने दासों के वश में रहते हैं। वे ही मेरे हृदय में निवास करें, जिनकी पवित्र कीर्ति आवागमन को मिटानेवाली है।

दो० - अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥ 32॥

अखंड भक्ति का वर माँगकर गृध्रराज जटायु हरि के परमधाम को चला गया। राम ने उसकी (दाहकर्म आदि सारी) क्रियाएँ यथायोग्य अपने हाथों से कीं॥ 32॥

कोमल चित अति दीनदयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला॥
गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी॥

रघुनाथ अत्यंत कोमल चित्तवाले, दीनदयालु और बिना ही कारण कृपालु हैं। गीध (पक्षियों में भी) अधम पक्षी और मांसाहारी था, उसको भी वह दुर्लभ गति दी, जिसे योगीजन माँगते रहते हैं।

सुनहू उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी।
पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई॥

(शिव कहते हैं -) हे पार्वती! सुनो, वे लोग अभागे हैं, जो भगवान को छोड़कर विषयों से अनुराग करते हैं। फिर दोनों भाई सीता को खोजते हुए आगे चले। वे वन की सघनता देखते जाते हैं।

संकुल लता बिटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पंचानन॥
आवत पंथ कबंध निपाता। तेहिं सब कही साप कै बाता॥

वह सघन वन लताओं और वृक्षों से भरा है। उसमें बहुत-से पक्षी, मृग, हाथी और सिंह रहते हैं। राम ने रास्ते में आते हुए कबंध राक्षस को मार डाला। उसने अपने शाप की सारी बात कही।

दुरबासा मोहि दीन्ही सापा। प्रभु पद पेखि मिटा सो पापा॥

सुनु गंधर्ब कहउँ मैं तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही॥

(वह बोला -) दुर्वासा ने मुझे शाप दिया था। अब प्रभु के चरणों को देखने से वह पाप मिट गया। (राम ने कहा -) हे गंधर्व! सुनो, मैं तुम्हें कहता हूँ, ब्राह्मणकुल से द्रोह करनेवाला मुझे नहीं सुहाता।

दो० - मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव॥ 33॥

मन, वचन और कर्म से कपट छोड़कर जो भूदेव ब्राह्मणों की सेवा करता है, मुझ समेत ब्रह्मा, शिव आदि सब देवता उसके वश में हो जाते हैं॥ 33॥

सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना॥

शाप देता हुआ, मारता हुआ और कठोर वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूजनीय है, ऐसा संत कहते हैं। शील और गुण से हीन भी ब्राह्मण पूजनीय है। और गुण गणों से युक्त और ज्ञान में निपुण भी शूद्र पूजनीय नहीं है।

कहि निज धर्म ताहि समुझावा। निज पद प्रीति देखि मन भावा॥
रघुपति चरन कमल सिरु नाई। गयउ गगन आपनि गति पाई॥

राम ने अपना धर्म (भागवत-धर्म) कहकर उसे समझाया। अपने चरणों में प्रेम देखकर वह उनके मन को भाया। तदनंतर रघुनाथ के चरणकमलों में सिर नवाकर वह अपनी गति (गंधर्व का स्वरूप) पाकर आकाश में चला गया।

ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी कें आश्रम पगु धारा॥
सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए॥

उदार राम उसे गति देकर शबरी के आश्रम में पधारे। शबरी ने राम को घर में आए देखा, तब मुनि मतंग के वचनों को याद करके उनका मन प्रसन्न हो गया।

सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥

कमल-सदृश नेत्र और विशाल भुजावाले, सिर पर जटाओं का मुकुट और हृदय पर वनमाला धारण किए हुए सुंदर, साँवले और गोरे दोनों भाइयों के चरणों में शबरी लिपट पड़ीं।

प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे॥

वे प्रेम में मग्न हो गईं, मुख से वचन नहीं निकलता। बार-बार चरण-कमलों में सिर नवा रही हैं। फिर उन्होंने जल लेकर आदरपूर्वक दोनों भाइयों के चरण धोए और फिर उन्हें सुंदर आसनों पर बैठाया।

दो० - कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि॥ 34॥

उन्होंने अत्यंत रसीले और स्वादिष्ट कंद, मूल और फल लाकर राम को दिए। प्रभु ने बार-बार प्रशंसा करके उन्हें प्रेम सहित खाया॥ 34॥

पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी॥
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥

फिर वे हाथ जोड़कर आगे खड़ी हो गईं। प्रभु को देखकर उनका प्रेम अत्यंत बढ़ गया। (उन्होंने कहा -) मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ? मैं नीच जाति की और अत्यंत मूढ़ बुद्धि हूँ।

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥

जो अधम से भी अधम हैं, स्त्रियाँ उनमें भी अत्यंत अधम हैं; और उनमें भी हे पापनाशन! मैं मंदबुद्धि हूँ। रघुनाथ ने कहा - हे भामिनि! मेरी बात सुन! मैं तो केवल एक भक्ति ही का संबंध मानता हूँ।

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥

जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुंब, गुण और चतुरता - इन सबके होने पर भी

भक्ति से रहित मनुष्य कैसा लगता है, जैसे जलहीन बादल (शोभाहीन) दिखाई पड़ता है।

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

मैं तुझसे अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ। तू सावधान होकर सुन और मन में धारण कर। पहली भक्ति है संतों का सत्संग। दूसरी भक्ति है मेरे कथा-प्रसंग में प्रेम।

दो० - गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥ 35॥

तीसरी भक्ति है अभिमानरहित होकर गुरु के चरण-कमलों की सेवा और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुणसमूहों का गान करे॥ 35॥

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥

मेरे (राम) मंत्र का जाप और मुझमें दृढ़ विश्वास - यह पाँचवीं भक्ति है, जो वेदों में प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इंद्रियों का निग्रह, शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र), बहुत कार्यों से वैराग्य और निरंतर संत पुरुषों के धर्म (आचरण) में लगे रहना।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥

सातवीं भक्ति है जगत भर को समभाव से मुझमें ओतप्रोत (राममय) देखना और संतों को मुझसे भी अधिक करके मानना। आठवीं भक्ति है जो कुछ मिल जाए, उसी में संतोष करना और स्वप्न में भी पराए दोषों को न देखना।

नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥

नवीं भक्ति है सरलता और सबके साथ कपटरहित बर्ताव करना, हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और दैन्य (विषाद) का न होना। इन नवों में से जिनके एक भी होती है, वह स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन कोई भी हो -

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई॥

हे भामिनि! मुझे वही अत्यंत प्रिय है। फिर तुझ में तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ़ है। अतएव जो गति योगियों को भी दुर्लभ है, वही आज तेरे लिए सुलभ हो गई है।

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥
जनकसुता कइ सुधि भामिनी। जानहि कहु करिबरगामिनी॥

मेरे दर्शन का परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। हे भामिनि! अब यदि तू गजगामिनी जानकी की कुछ खबर जानती हो तो बता।

पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई॥
सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानतहूँ पूछहु मतिधीरा॥

(शबरी ने कहा -) हे रघुनाथ! आप पंपा नामक सरोवर को जाइए। वहाँ आपकी सुग्रीव से मित्रता होगी। हे देव! हे रघुवीर! वह सब हाल बतावेगा। हे धीरबुद्धि! आप सब जानते हुए भी मुझसे पूछते हैं!

बार बार प्रभु पद सिरु नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई॥

बार-बार प्रभु के चरणों में सिर नवाकर, प्रेमसहित उसने सब कथा सुनाई।

छं० - कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदय पद पंकज धरे।
तजि जोग पावक देह परि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे॥
नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू॥

सब कथा कहकर भगवान के मुख के दर्शन कर, उनके चरणकमलों को धारण कर लिया और योगाग्नि से देह को त्याग कर (जलाकर) वह उस दुर्लभ हरिपद में लीन हो गई, जहाँ से लौटना नहीं होता। तुलसीदास कहते हैं कि अनेकों प्रकार के कर्म, अधर्म और बहुत-से मत - ये सब शोकप्रद हैं; हे मनुष्यों! इनका त्याग कर दो और विश्वास करके राम के चरणों में प्रेम करो।

दो० - जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।

महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि॥ 36॥

जो नीच जाति की और पापों की जन्मभूमि थी, ऐसी स्त्री को भी जिन्होंने मुक्त कर दिया, अरे महादुर्बुद्धि मन! तू ऐसे प्रभु को भूलकर सुख चाहता है?॥ 36॥

चले राम त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ॥
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संबादा॥

राम ने उस वन को भी छोड़ दिया और वे आगे चले। दोनों भाई अतुलनीय बलवान और मनुष्यों में सिंह के समान हैं। प्रभु विरही की तरह विषाद करते हुए अनेकों कथाएँ और संवाद कहते हैं -

लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा॥
नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा॥

हे लक्ष्मण! जरा वन की शोभा तो देखो। इसे देखकर किसका मन क्षुब्ध नहीं होगा? पक्षी और पशुओं के समूह सभी स्त्रीसहित हैं। मानो वे मेरी निंदा कर रहे हैं।

हमहि देखि मृग निकर पराहीं। मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥
तुम्ह आनंद करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए॥

हमें देखकर (जब डर के मारे) हिरनों के झुंड भागने लगते हैं, तब हिरनियाँ उनसे कहती हैं - तुमको भय नहीं है। तुम तो साधारण हिरनों से पैदा हुए हो, अतः तुम आनंद करो। ये तो सोने का हिरन खोजने आए हैं।

संग लाइ करिनीं करि लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावनु देहीं॥
सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ॥

हाथी हथिनियों को साथ लगा लेते हैं। वे मानो मुझे शिक्षा देते हैं (कि स्त्री को कभी अकेली नहीं छोड़ना चाहिए)। भली-भाँति चिंतन किए हुए शास्त्र को भी बार-बार देखते रहना चाहिए। अच्छी तरह सेवा किए हुए भी राजा को वश में नहीं समझना चाहिए।

राखिअ नारि जदपि उर माहीं। जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥
देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा॥

और स्त्री को चाहे हृदय में ही क्यों न रखा जाए; परंतु युवती स्त्री, शास्त्र और राजा - किसी के वश में नहीं रहते। हे तात! इस सुंदर वसंत को तो देखो। प्रिया के बिना मुझको यह भय उत्पन्न कर रहा है।

दो० - बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल॥ 37(क)॥

मुझे विरह से व्याकुल, बलहीन और बिलकुल अकेला जानकर कामदेव ने वन, भौंरों और पक्षियों को साथ लेकर मुझ पर धावा बोल दिया॥ 37(क)॥

देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटकु हटकि मनजात॥ 37(ख)॥

परंतु जब उसका दूत यह देख गया कि मैं भाई के साथ हूँ (अकेला नहीं हूँ), तब उसकी बात सुनकर कामदेव ने मानो सेना को रोककर डेरा डाल दिया है॥ 37(ख)॥

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी॥
कदलि ताल बर धुजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥

विशाल वृक्षों में लताएँ उलझी हुई ऐसी मालूम होती हैं मानो नाना प्रकार के तंबू तान दिए गए हैं। केला और ताड़ सुंदर ध्वजा-पताका के समान हैं। इन्हें देखकर वही नहीं मोहित होता, जिसका मन धीर है।

बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना॥
कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग बिलग होइ छाए॥

अनेकों वृक्ष नाना प्रकार से फूले हुए हैं। मानो अलग-अलग बाना (वर्दी) धारण किए हुए बहुत-से तीरंदाज हों। कहीं-कहीं सुंदर वृक्ष शोभा दे रहे हैं। मानो योद्धा लोग अलग-अलग होकर छावनी डाले हों।

कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी॥

कोयलें कूज रही हैं, वही मानो मतवाले हाथी (चिग्घाड़ रहे) हैं। ढेक और महोख पक्षी मानो ऊँट और खच्चर हैं। मोर, चकोर, तोते, कबूतर और हंस मानो सब सुंदर ताजी (अरबी) घोड़े

हैं।

तीतिर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा॥
रथ गिरि सिला दुंदुभीं झरना। चातक बंदी गुन गन बरना॥

तीतर और बटेर पैदल सिपाहियों के झुंड हैं। कामदेव की सेना का वर्णन नहीं हो सकता। पर्वतों की शिलाएँ रथ और जल के झरने नगाड़े हैं। पपीहे भाट हैं, जो गुणसमूह (विरुदावली) का वर्णन करते हैं।

मधुकर मुखर भेरि सहनाई। त्रिबिध बयारि बसीठीं आई॥
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें। बिचरत सबहि चुनौती दीन्हें॥

भौंरों की गुंजार भेरी और शहनाई है। शीतल, मंद और सुगंधित हवा मानो दूत का काम लेकर आई है। इस प्रकार चतुरंगिणी सेना साथ लिए कामदेव मानो सबको चुनौती देता हुआ विचर रहा है।

लछिमन देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका॥
ऐहि कें एक परम बल नारी। तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी॥

हे लक्ष्मण! कामदेव की इस सेना को देखकर जो धीर बने रहते हैं, जगत में उन्हीं की (वीरों में) प्रतिष्ठा होती है। इस कामदेव के एक स्त्री का बड़ा भारी बल है। उससे जो बच जाए, वही श्रेष्ठ योद्धा है।

दो॰ - तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥ 38(क)॥

हे तात! काम, क्रोध और लोभ - ये तीन अत्यंत प्रबल दुष्ट हैं। ये विज्ञान के धाम मुनियों के भी मनों को पलभर में क्षुब्ध कर देते हैं॥ 38(क)॥

लोभ कें इच्छा दंभ बल काम कें केवल नारि।
क्रोध कें परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि॥ 38(ख)॥

लोभ को इच्छा और दंभ का बल है, काम को केवल स्त्री का बल है और क्रोध को कठोर वचनों का बल है; श्रेष्ठ मुनि विचार कर ऐसा कहते हैं॥ 38(ख)॥

गुनातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अंतरजामी॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई॥

(शिव कहते हैं -) हे पार्वती! राम गुणातीत (तीनों गुणों से परे), चराचर जगत के स्वामी और सबके अंतर की जाननेवाले हैं। (उपर्युक्त बातें कहकर) उन्होंने कामी लोगों की दीनता (बेबसी) दिखलाई है और धीर (विवेकी) पुरुषों के मन में वैराग्य को दृढ़ किया है।

क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम कीं दाया॥
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला। जा पर होइ सो नट अनुकूला॥

क्रोध, काम, लोभ, मद और माया - ये सभी राम की दया से छूट जाते हैं। वह नट (नटराज भगवान) जिस पर प्रसन्न होता है, वह मनुष्य इंद्रजाल (माया) में नहीं भूलता।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥
पुनि प्रभु गए सरोबर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा॥

हे उमा! मैं तुम्हें अपना अनुभव कहता हूँ - हरि का भजन ही सत्य है, यह सारा जगत तो स्वप्न (की भाँति झूठा) है। फिर प्रभु राम पंपा नामक सुंदर और गहरे सरोवर के तीर पर गए।

संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पिअहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा॥

उसका जल संतों के हृदय-जैसा निर्मल है। मन को हरनेवाले सुंदर चार घाट बँधे हुए हैं। भाँति-भाँति के पशु जहाँ-तहाँ जल पी रहे हैं। मानो उदार दानी पुरुषों के घर याचकों की भीड़ लगी हो!

दो० - पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म।
मायाछन्न न देखिऐ जैसें निर्गुन ब्रह्म॥ 39(क)॥

घनी पुरइनों (कमल के पत्तों) की आड़ में जल का जल्दी पता नहीं मिलता। जैसे माया से ढँके रहने के कारण निर्गुण ब्रह्म नहीं दिखता॥ 39(क)॥

सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं।

जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं॥ 39(ख)॥

उस सरोवर के अत्यंत अथाह जल में सब मछलियाँ सदा एकरस (एक समान) सुखी रहती हैं। जैसे धर्मशील पुरुषों के सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं॥ 39(ख)॥

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा॥
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा॥

उसमें रंग-बिरंगे कमल खिले हुए हैं। बहुत-से भौंरे मधुर स्वर से गुंजार कर रहे हैं। जल के मुर्गे और राजहंस बोल रहे हैं, मानो प्रभु को देखकर उनकी प्रशंसा कर रहे हों।

चक्रबाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई॥
सुंदर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई॥

चक्रवाक, बगुले आदि पक्षियों का समुदाय देखते ही बनता है, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुंदर पक्षियों की बोली बड़ी सुहावनी लगती है, मानो (रास्ते में) जाते हुए पथिक को बुलाए लेती हो।

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए। चहु दिसि कानन बिटप सुहाए॥
चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस परास रसाला॥

उस झील (पंपा सरोवर) के समीप मुनियों ने आश्रम बना रखे हैं। उसके चारों ओर वन के सुंदर वृक्ष हैं। चंपा, मौलसिरी, कदंब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि -

नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना॥
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ॥

बहुत प्रकार के वृक्ष नए-नए पत्तों और (सुगंधित) पुष्पों से युक्त हैं, (जिन पर) भौंरों के समूह गुंजार कर रहे हैं। स्वभाव से ही शीतल, मंद, सुगंधित एवं मन को हरनेवाली हवा सदा बहती रहती है।

कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं॥

कोयलें 'कुहू' 'कुहू' का शब्द कर रही हैं। उनकी रसीली बोली सुनकर मुनियों का भी ध्यान

टूट जाता है।

दो० - फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ॥ 40॥

फलों के बोझ से झुककर सारे वृक्ष पृथ्वी के पास आ लगे हैं, जैसे परोपकारी पुरुष बड़ी संपत्ति पाकर (विनय से) झुक जाते हैं॥ 40॥

देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा॥
देखी सुंदर तरुबर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया॥

राम ने अत्यंत सुंदर तालाब देखकर स्नान किया और परम सुख पाया। एक सुंदर उत्तम वृक्ष की छाया देखकर रघुनाथ छोटे भाई लक्ष्मण सहित बैठ गए।

तहँ पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति करि निज धाम सिधाए॥
बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला॥

फिर वहाँ सब देवता और मुनि आए और स्तुति करके अपने-अपने धाम को चले गए। कृपालु राम परम प्रसन्न बैठे हुए छोटे भाई लक्ष्मण से रसीली कथाएँ कह रहे हैं।

बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेषी॥
मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा॥

भगवान को विरहयुक्त देखकर नारद के मन में विशेष रूप से सोच हुआ। (उन्होंने विचार किया कि) मेरे ही शाप को स्वीकार करके राम नाना प्रकार के दुःखों का भार सह रहे हैं (दुःख उठा रहे हैं)।

ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई। पुनि न बनिहि अस अवसरु आई॥
यह बिचारि नारद कर बीना। गए जहाँ प्रभु सुख आसीना॥

ऐसे (भक्त वत्सल) प्रभु को जाकर देखूँ। फिर ऐसा अवसर न बन आवेगा। यह विचार कर नारद हाथ में वीणा लिए हुए वहाँ गए, जहाँ प्रभु सुखपूर्वक बैठे हुए थे।

गावत राम चरित मृदु बानी। प्रेम सहित बहु भाँति बखानी॥

करत दंडवत लिए उठाई। राखे बहुत बार उर लाई॥

वे कोमल वाणी से प्रेम के साथ बहुत प्रकार से बखान-बखान कर रामचरित का गान कर (ते हुए चले आ) रहे थे। दंडवत करते देखकर राम ने नारद को उठा लिया और बहुत देर तक हृदय से लगाए रखा।

स्वागत पूँछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे॥

फिर स्वागत (कुशल) पूछकर पास बैठा लिया। लक्ष्मण ने आदर के साथ उनके चरण धोए।

दो० - नाना बिधि बिनती करि प्रभु प्रसन्न जियँ जानि।
नारद बोले बचन तब जोरि सरोरुह पानि॥ 41॥

बहुत प्रकार से विनती करके और प्रभु को मन में प्रसन्न जानकर तब नारद कमल के समान हाथों को जोड़कर वचन बोले - ॥ 41॥

सुनहु उदार सहज रघुनायक। सुंदर अगम सुगम बर दायक॥
देहु एक बर मागउँ स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी॥

हे स्वभाव से ही उदार रघुनाथ! सुनिए। आप सुंदर अगम और सुगम वर के देनेवाले हैं। हे स्वामी! मैं एक वर माँगता हूँ, वह मुझे दीजिए, यद्यपि आप अंतर्यामी होने के नाते सब जानते ही हैं।

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ। जन सन कबहुँ कि करऊँ दुराऊ॥
कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिबर न सकहुँ तुम्ह मागी॥

(राम ने कहा -) हे मुनि! तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो। क्या मैं अपने भक्तों से कभी कुछ छिपाव करता हूँ? मुझे ऐसी कौन-सी वस्तु प्रिय लगती है, जिसे हे मुनिश्रेष्ठ! तुम नहीं माँग सकते?

जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें। अस बिस्वास तजहु जनि भोरें॥
तब नारद बोले हरषाई। अस बर मागउँ करउँ ढिठाई॥

मुझे भक्त के लिए कुछ भी अदेय नहीं है। ऐसा विश्वास भूलकर भी मत छोड़ो। तब

नारद हर्षित होकर बोले - मैं ऐसा वर माँगता हूँ, यह धृष्टता करता हूँ -

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥

यद्यपि प्रभु के अनेकों नाम हैं और वेद कहते हैं कि वे सब एक-से-एक बढ़कर हैं, तो भी हे नाथ! रामनाम सब नामों से बढ़कर हो और पापरूपी पक्षियों के समूह के लिए यह वधिक के समान हो।

दो॰ - राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल बसहुँ भगत उर ब्योम॥ 42(क)॥

आपकी भक्ति पूर्णिमा की रात्रि है; उसमें 'राम' नाम यही पूर्ण चंद्रमा होकर और अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तों के हृदयरूपी निर्मल आकाश में निवास करें॥ 42(क)॥

एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरष अति प्रभु पद नायउ माथ॥ 42(ख)॥

कृपा सागर रघुनाथ ने मुनि से 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा। तब नारद ने मन में अत्यंत हर्षित होकर प्रभु के चरणों में मस्तक नवाया॥ 42(ख)॥

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी॥
राम जबहिं प्रेरेउ निज माया। मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया॥

रघुनाथ को अत्यंत प्रसन्न जानकर नारद फिर कोमल वाणी बोले - हे राम! हे रघुनाथ! सुनिए, जब आपने अपनी माया को प्रेरित करके मुझे मोहित किया था,

तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥

तब मैं विवाह करना चाहता था। हे प्रभु! आपने मुझे किस कारण विवाह नहीं करने दिया? (प्रभु बोले -) हे मुनि! सुनो, मैं तुम्हें हर्ष के साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा-भरोसा छोड़कर केवल मुझको ही भजते हैं,

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥

गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई॥

मैं सदा उनकी वैसे ही रखवाली करता हूँ जैसे माता बालक की रक्षा करती है। छोटा बच्चा जब दौड़कर आग और साँप को पकड़ने जाता है, तो वहाँ माता उसे (अपने हाथों) अलग करके बचा लेती है।

प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता॥
मोरें प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी॥

सयाना हो जाने पर उस पुत्र पर माता प्रेम तो करती है, परंतु पिछली बात नहीं रहती (अर्थात मातृपरायण शिशु की तरह फिर उसको बचाने की चिंता नहीं करती, क्योंकि वह माता पर निर्भर न कर अपनी रक्षा आप करने लगता है)। ज्ञानी मेरे प्रौढ़ (सयाने) पुत्र के समान है और (तुम्हारे जैसा) अपने बल का मान न करनेवाला सेवक मेरे शिशु पुत्र के समान है।

जनहि मोर बल निज बल ताही। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं॥

मेरे सेवक को केवल मेरा ही बल रहता है और उसे (ज्ञानी को) अपना बल होता है। पर काम-क्रोधरूपी शत्रु तो दोनों के लिए हैं। (भक्त के शत्रुओं को मारने की जिम्मेवारी मुझ पर रहती है, क्योंकि वह मेरे परायण होकर मेरा ही बल मानता है; परंतु अपने बल को माननेवाले ज्ञानी के शत्रुओं का नाश करने की जिम्मेवारी मुझ पर नहीं है।) ऐसा विचार कर पंडितजन (बुद्धिमान लोग) मुझको ही भजते हैं। वे ज्ञान प्राप्त होने पर भी भक्ति को नहीं छोड़ते।

दो॰ - काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि॥ 43॥

काम, क्रोध, लोभ और मद आदि मोह (अज्ञान) की प्रबल सेना है। इनमें मायारूपिणी (माया की साक्षात मूर्ति) स्त्री तो अत्यंत दारुण दुःख देनेवाली है॥ 43॥

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता॥
जप तप नेम जलाश्रय झारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी॥

हे मुनि! सुनो, पुराण, वेद और संत कहते हैं कि मोहरूपी वन (को विकसित करने) के लिए स्त्री वसंत ऋतु के समान है। जप, तप, नियमरूपी संपूर्ण जल के स्थानों को स्त्री ग्रीष्मरूप होकर सर्वथा सोख लेती है।

काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हहि हरषप्रद बरषा एका॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई॥

काम, क्रोध, मद और मत्सर (डाह) आदि मेढ़क हैं। इनको वर्षा ऋतु होकर हर्ष प्रदान करनेवाली एकमात्र यही (स्त्री) है। बुरी वासनाएँ कुमुदों के समूह हैं। उनको सदैव सुख देनेवाली यह शरद ऋतु है।

धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई॥

समस्त धर्म कमलों के झुंड हैं। यह नीच (विषयजन्य) सुख देनेवाली स्त्री हिमऋतु होकर उन्हें जला डालती है। फिर ममतारूपी जवास का समूह (वन) स्त्रीरूपी शिशिर ऋतु को पाकर हरा-भरा हो जाता है।

पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधियारी॥
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना॥

पापरूपी उल्लुओं के समूह के लिए यह स्त्री सुख देनेवाली घोर अंधकारमयी रात्रि है। बुद्धि, बल, शील और सत्य - ये सब मछलियाँ हैं और उन (को फँसाकर नष्ट करने) के लिए स्त्री बंसी के समान है, चतुर पुरुष ऐसा कहते हैं।

दो० - अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि॥ 44॥

युवती स्त्री अवगुणों की मूल, पीड़ा देनेवाली और सब दुःखों की खान है। इसलिए हे मुनि! मैंने जी में ऐसा जानकर तुमको विवाह करने से रोका था॥ 44॥

सुनि रघुपति के बचन सुहाए। मुनि तन पुलक नयन भरि आए॥
कहहु कवन प्रभु कै असि रीती। सेवक पर ममता अरु प्रीती॥

रघुनाथ के सुंदर वचन सुनकर मुनि का शरीर पुलकित हो गया और नेत्र (प्रेमाश्रुओं के

जल से) भर आए। (वे मन-ही-मन कहने लगे -) कहो तो किस प्रभु की ऐसी रीती है, जिसका सेवक पर इतना ममत्व और प्रेम हो।

जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी। ग्यान रंक नर मंद अभागी॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम बिग्यान बिसारद॥

जो मनुष्य भ्रम को त्यागकर ऐसे प्रभु को नहीं भजते, वे ज्ञान के कंगाल, दुर्बुद्धि और अभागे हैं। फिर नारद मुनि आदर सहित बोले - हे विज्ञान-विशारद राम! सुनिए -

संतन्ह के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भव भंजन भीरा॥
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उन्ह कें बस रहऊँ॥

हे रघुवीर! हे भव-भय (जन्म-मरण के भय) का नाश करनेवाले मेरे नाथ! अब कृपा कर संतों के लक्षण कहिए। (राम ने कहा -) हे मुनि! सुनो, मैं संतों के गुणों को कहता हूँ, जिनके कारण मैं उनके वश में रहता हूँ।

षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा॥
अमित बोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी॥

वे संत (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर - इन) छह विकारों (दोषों) को जीते हुए, पापरहित, कामनारहित, निश्चल (स्थिरबुद्धि), अकिंचन (सर्वत्यागी), बाहर-भीतर से पवित्र, सुख के धाम, असीम ज्ञानवान, इच्छारहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ, कवि, विद्वान, योगी,

सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना॥

सावधान, दूसरों को मान देनेवाले, अभिमानरहित, धैर्यवान, धर्म के ज्ञान और आचरण में अत्यंत निपुण,

दो० - गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह॥ 45॥

गुणों के घर, संसार के दुःखों से रहित और संदेहों से सर्वथा छूटे हुए होते हैं। मेरे चरण कमलों को छोड़कर उनको न देह ही प्रिय होती है, न घर ही॥ 45॥

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं॥

सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीति॥

कानों से अपने गुण सुनने में सकुचाते हैं, दूसरों के गुण सुनने से विशेष हर्षित होते हैं। सम और शीतल हैं, न्याय का कभी त्याग नहीं करते। सरल स्वभाव होते हैं और सभी से प्रेम रखते हैं।

जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥

वे जप, तप, व्रत, दम, संयम और नियम में रत रहते हैं और गुरु, गोविंद तथा ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम रखते हैं। उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, मुदिता (प्रसन्नता) और मेरे चरणों में निष्कपट प्रेम होता है।

बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥

तथा वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान (परमात्मा के तत्त्व का ज्ञान) और वेद-पुराण का यथार्थ ज्ञान रहता है। वे दंभ, अभिमान और मद कभी नहीं करते और भूलकर भी कुमार्ग पर पैर नहीं रखते।

गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सादर श्रुति तेते॥

सदा मेरी लीलाओं को गाते-सुनते हैं और बिना ही कारण दूसरों के हित में लगे रहनेवाले होते हैं। हे मुनि! सुनो, संतों के जितने गुण हैं, उनको सरस्वती और वेद भी नहीं कह सकते।

छं० - कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे॥
सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए॥

'शेष और शारदा भी नहीं कह सकते' यह सुनते ही नारद ने राम के चरणकमल पकड़ लिए। दीनबंधु कृपालु प्रभु ने इस प्रकार अपने मुख से अपने भक्तों के गुण कहे। भगवान

के चरणों में बार-बार सिर नवाकर नारद ब्रह्मलोक को चले गए। तुलसीदास कहते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं, जो सब आशा छोड़कर केवल हरि के रंग में रँग गए हैं।

दो० - रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग॥ 46(क)॥

जो लोग रावण के शत्रु राम का पवित्र यश गाएँगे और सुनेंगे, वे वैराग्य, जप और योग के बिना ही राम की दृढ़ भक्ति पाएँगे॥ 46(क)॥

दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग॥ 46(ख)॥

युवती स्त्रियों का शरीर दीपक की लौ के समान है, हे मन! तू उसका पतिंगा न बन। काम और मद को छोड़कर राम का भजन कर और सदा सत्संग कर॥ 46(ख)॥

इतिमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने तृतीयः सोपानः समाप्तः।
कलियुग के संपूर्ण पापों को विध्वंस करने वाले रामचरितमानस का यह तीसरा सोपान समाप्त हुआ।

(अरण्यकांड समाप्त)

अध्याय-४ किष्किन्धाकाण्ड [783-820]

भगवान शंकर जी के मन द्वारा रचित श्रीराम जी के परमपवित्र चरित्र

कुन्देन्दीवरसुंदरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृंदप्रियौ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः॥ 1॥

कुंदपुष्प और नीलकमल के समान सुंदर गौर एवं श्यामवर्ण, अत्यंत बलवान, विज्ञान के धाम, शोभा संपन्न, श्रेष्ठ धनुर्धर, वेदों के द्वारा वंदित, गौ एवं ब्राह्मणों के समूह के प्रिय (अथवा प्रेमी), माया से मनुष्य रूप धारण किए हुए, श्रेष्ठ धर्म के लिए कवचस्वरूप, सबके हितकारी, सीता की खोज में लगे हुए, पथिक रूप रघुकुल के श्रेष्ठ राम और लक्ष्मण दोनों भाई निश्चय ही हमें भक्तिप्रद हों॥ 1॥

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुंदरवरे संशोभितं सर्वदा।
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबंति सततं श्रीरामनामामृतम्॥ 2॥

वे सुकृती (पुण्यात्मा पुरुष) धन्य हैं जो वेदरूपी समुद्र (के मथने) से उत्पन्न हुए कलियुग के मल को सर्वथा नष्ट कर देनेवाले, अविनाशी, भगवान शंभु के सुंदर एवं श्रेष्ठ मुखरूपी चंद्रमा में सदा शोभायमान, जन्म-मरणरूपी रोग के औषध, सबको सुख देनेवाले और श्री जानकी के जीवन स्वरूप श्री राम नामरूपी अमृत का निरंतर पान करते रहते हैं॥ 2॥

सो॰ - मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खान अघ हानि कर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥

जहाँ शिव-पार्वती बसते हैं, उस काशी को मुक्ति की जन्मभूमि, ज्ञान की खान और पापों का नाश करनेवाली जानकर उसका सेवन क्यों न किया जाए?

जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस॥

जिस भीषण हलाहल विष से सब देवतागण जल रहे थे उसको जिन्होंने स्वयं पान कर

लिया, रे मंद मन! तू उन शंकर को क्यों नहीं भजता? उनके समान कृपालु (और) कौन है?

आगें चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्बत निअराया॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा॥

रघुनाथ फिर आगे चले। ऋष्यमूक पर्वत निकट आ गया। वहाँ (ऋष्यमूक पर्वत पर) मंत्रियों सहित सुग्रीव रहते थे। अतुलनीय बल की सीमा राम और लक्ष्मण को आते देखकर -

अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना॥
धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई॥

सुग्रीव अत्यंत भयभीत होकर बोले - हे हनुमान! सुनो, ये दोनों पुरुष बल और रूप के निधान हैं। तुम ब्रह्मचारी का रूप धारण करके जाकर देखो। अपने हृदय में उनकी यथार्थ बात जानकर मुझे इशारे से समझाकर कह देना।

पठए बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला॥
बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥

यदि वे मन के मलिन बालि के भेजे हुए हों तो मैं तुरंत ही इस पर्वत को छोड़कर भाग जाऊँ। (यह सुनकर) हनुमान ब्राह्मण का रूप धरकर वहाँ गए और मस्तक नवाकर इस प्रकार पूछने लगे -

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥

हे वीर! साँवले और गोरे शरीरवाले आप कौन हैं, जो क्षत्रिय के रूप में वन में फिर रहे हैं? हे स्वामी! कठोर भूमि पर कोमल चरणों से चलनेवाले आप किस कारण वन में विचर रहे हैं?

मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता ॥
की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥

मन को हरण करनेवाले आपके सुंदर, कोमल अंग हैं, और आप वन के दुःसह धूप और वायु को सह रहे हैं। क्या आप ब्रह्मा, विष्णु, महेश - इन तीन देवताओं में से कोई हैं, या

आप दोनों नर और नारायण हैं।

दो॰ - जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार॥ 1॥

अथवा आप जगत के मूल कारण और संपूर्ण लोकों के स्वामी स्वयं भगवान हैं, जिन्होंने लोगों को भवसागर से पार उतारने तथा पृथ्वी का भार नष्ट करने के लिए मनुष्य रूप में अवतार लिया है?॥ 1॥

कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई॥

(राम ने कहा -) हम कोसलराज दशरथ के पुत्र हैं और पिता का वचन मानकर वन आए हैं। हमारे राम-लक्ष्मण नाम हैं, हम दोनों भाई हैं। हमारे साथ सुंदर सुकुमारी स्त्री थी।

इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई॥

यहाँ (वन में) राक्षस ने (मेरी पत्नी) जानकी को हर लिया। हे ब्राह्मण! हम उसे ही खोजते फिरते हैं। हमने तो अपना चरित्र कह सुनाया। अब हे ब्राह्मण! अपनी कथा समझाकर कहिए।

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना॥

प्रभु को पहचानकर हनुमान उनके चरण पकड़कर पृथ्वी पर गिर पड़े। (शिव कहते हैं -) हे पार्वती! वह सुख वर्णन नहीं किया जा सकता। शरीर पुलकित है, मुख से वचन नहीं निकलता। वे प्रभु के सुंदर वेष की रचना देख रहे हैं!

पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही॥
मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥

फिर धीरज धर कर स्तुति की। अपने नाथ को पहचान लेने से हृदय में हर्ष हो रहा है। (फिर हनुमान ने कहा -) हे स्वामी! मैंने जो पूछा वह मेरा पूछना तो न्याय था, परंतु आप

मनुष्य की तरह कैसे पूछ रहे हैं?

तव माया बस फिरउँ भुलाना। ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना॥

मैं तो आपकी माया के वश भूला फिरता हूँ; इसी से मैंने अपने स्वामी (आप) को नहीं पहचाना।

दो० - एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥ 2॥

एक तो मैं यों ही मंद हूँ, दूसरे मोह के वश में हूँ, तीसरे हृदय का कुटिल और अज्ञान हूँ, फिर हे दीनबंधु भगवान! प्रभु (आप) ने भी मुझे भुला दिया!॥ 2॥

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें॥
नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा॥

हे नाथ! यद्यपि मुझ में बहुत-से अवगुण हैं, तथापि सेवक स्वामी की विस्मृति में न पड़े (आप उसे न भूल जाएँ)। हे नाथ! जीव आपकी माया से मोहित है। वह आप ही की कृपा से निस्तार पा सकता है।

ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई॥
सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥

उस पर हे रघुवीर! मैं आपकी दुहाई (शपथ) करके कहता हूँ कि मैं भजन-साधन कुछ नहीं जानता। सेवक स्वामी के और पुत्र माता के भरोसे निश्चिंत रहता है। प्रभु को सेवक का पालन-पोषण करते ही बनता है (करना ही पड़ता है)।

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई॥
तब रघुपति उठाई उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥

ऐसा कहकर हनुमान अकुलाकर प्रभु के चरणों पर गिर पड़े, उन्होंने अपना असली शरीर प्रकट कर दिया। उनके हृदय में प्रेम छा गया। तब रघुनाथ ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया और अपने नेत्रों के जल से सींचकर शीतल किया।

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥

समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥

(फिर कहा -) हे कपि! सुनो, मन में ग्लानि मत मानना (मन छोटा न करना)। तुम मुझे लक्ष्मण से भी दूने प्रिय हो। सब कोई मुझे समदर्शी कहते हैं (मेरे लिए न कोई प्रिय है न अप्रिय) पर मुझको सेवक प्रिय है, क्योंकि वह अनन्यगति होता है (मुझे छोड़कर उसको कोई दूसरा सहारा नहीं होता)।

दो० - सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥ 3॥

और हे हनुमान! अनन्य वही है जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टलती कि मैं सेवक हूँ और यह चराचर (जड़-चेतन) जगत मेरे स्वामी भगवान का रूप है॥ 3॥

देखि पवनसुत पति अनुकूला। हृदयँ हरष बीती सब सूला॥
नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई॥

स्वामी को अनुकूल (प्रसन्न) देखकर पवन कुमार हनुमान के हृदय में हर्ष छा गया और उनके सब दुःख जाते रहे। (उन्होंने कहा -) हे नाथ! इस पर्वत पर वानरराज सुग्रीव रहते हैं, वह आपका दास है।

तेहि सन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे॥
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि॥

हे नाथ! उससे मित्रता कीजिए और उसे दीन जानकर निर्भय कर दीजिए। वह सीता की खोज करवाएगा और जहाँ-तहाँ करोड़ों वानरों को भेजेगा।

एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई॥
जब सुग्रीवँ राम कहुँ देखा। अतिसय जन्म धन्य करि लेखा॥

इस प्रकार सब बातें समझाकर हनुमान ने (राम-लक्ष्मण) दोनों जनों को पीठ पर चढ़ा लिया। जब सुग्रीव ने राम को देखा तो अपने जन्म को अत्यंत धन्य समझा।

सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा॥
कपि कर मन बिचार एहि रीती। करिहहिं बिधि मो सन ए प्रीती॥

सुग्रीव चरणों में मस्तक नवाकर आदर सहित मिले। रघुनाथ भी छोटे भाई सहित उनसे गले लगकर मिले। सुग्रीव मन में इस प्रकार सोच रहे हैं कि हे विधाता! क्या ये मुझसे प्रीति करेंगे?

दो० - तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥ 4॥

तब हनुमान ने दोनों ओर की सब कथा सुनाकर अग्नि को साक्षी देकर परस्पर दृढ़ करके प्रीति जोड़ दी (अर्थात अग्नि की साक्षी देकर प्रतिज्ञापूर्वक उनकी मैत्री करवा दी)॥ 4॥

कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन राम चरित सब भाषा॥
कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेसकुमारी॥

दोनों ने (हृदय से) प्रीति की, कुछ भी अंतर नहीं रखा। तब लक्ष्मण ने राम का सारा इतिहास कहा। सुग्रीव ने नेत्रों में जल भरकर कहा - हे नाथ! मिथिलेशकुमारी जानकी मिल जाएँगी।

मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा॥
गगन पंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता॥

मैं एक बार यहाँ मंत्रियों के साथ बैठा हुआ कुछ विचार कर रहा था। तब मैंने पराए के वश में पड़ी बहुत विलाप करती हुई सीता को आकाश मार्ग से जाते देखा था।

राम राम हा राम पुकारी। हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी॥
मागा राम तुरत तेहिं दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा॥

हमें देखकर उन्होंने 'राम! राम! हा राम!' पुकारकर वस्त्र गिरा दिया था। राम ने उसे माँगा, तब सुग्रीव ने तुरंत ही दे दिया। वस्त्र को हृदय से लगाकर राम ने बहुत ही सोच किया।

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा॥
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई॥

सुग्रीव ने कहा - हे रघुवीर! सुनिए, सोच छोड़ दीजिए और मन में धीरज लाइए। मैं सब प्रकार से आपकी सेवा करूँगा, जिस उपाय से जानकी आकर आपको मिलें।

दो० - सखा बचन सुनि हरषे कृपासिंधु बलसींव।
कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव॥ 5॥

कृपा के समुद्र और बल की सीमा राम सखा सुग्रीव के वचन सुनकर हर्षित हुए। (और बोले -) हे सुग्रीव! मुझे बताओ, तुम वन में किस कारण रहते हो?॥ 5॥

नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाइ। प्रीति रही कछु बरनि न जाई॥
मयसुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरें गाऊँ॥

(सुग्रीव ने कहा -) हे नाथ! बालि और मैं दो भाई हैं। हम दोनों में ऐसी प्रीति थी कि वर्णन नहीं की जा सकती। हे प्रभो! मय दानव का एक पुत्र था, उसका नाम मायावी था। एक बार वह हमारे गाँव में आया।

अर्ध राति पुर द्वार पुकारा। बाली रिपु बल सहै न पारा॥
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बंधु सँग लागा॥

उसने आधी रात को नगर के फाटक पर आकर पुकारा (ललकारा)। बालि शत्रु के बल (ललकार) को सह नहीं सका। वह दौड़ा, उसे देखकर मायावी भागा। मैं भी भाई के संग लगा चला गया।

गिरिबर गुहाँ पैठ सो जाई। तब बालीं मोहि कहा बुझाई॥
परिखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा॥

वह मायावी एक पर्वत की गुफा में जा घुसा। तब बालि ने मुझे समझाकर कहा - तुम एक पखवाड़े (पंदरह दिन) तक मेरी बाट देखना। यदि मैं उतने दिनों में न आऊँ तो जान लेना कि मैं मारा गया।

मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी॥
बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलेउँ पराई॥

हे खरारि! मैं वहाँ महीने भर तक रहा। वहाँ (उस गुफा में से) रक्त की बड़ी भारी धारा निकली। तब (मैंने समझा कि) उसने बालि को मार डाला, अब आकर मुझे मारेगा। इसलिए मैं वहाँ (गुफा के द्वार पर) एक शिला लगाकर भाग आया।

मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउ मोहि राज बरिआईं॥

बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जियँ भेद बढ़ावा॥

मंत्रियों ने नगर को बिना स्वामी (राजा) का देखा, तो मुझको जबर्दस्ती राज्य दे दिया। बालि उसे मारकर घर आ गया। मुझे (राजसिंहासन पर) देखकर उसने जी में भेद बढ़ाया (बहुत ही विरोध माना)। (उसने समझा कि यह राज्य के लोभ से ही गुफा के द्वार पर शिला दे आया था, जिससे मैं बाहर न निकल सकूँ और यहाँ आकर राजा बन बैठा)।

रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हसि सर्बसु अरु नारी॥
ताकें भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला॥

उसने मुझे शत्रु के समान बहुत अधिक मारा और मेरा सर्वस्व तथा मेरी स्त्री को भी छीन लिया। हे कृपालु रघुवीर! मैं उसके भय से समस्त लोकों में बेहाल होकर फिरता रहा।

इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माहीं॥
सुन सेवक दुःख दीनदयाला फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला॥

वह शाप के कारण यहाँ नहीं आता, तो भी मैं मन में भयभीत रहता हूँ। सेवक का दुःख सुनकर दीनों पर दया करनेवाले रघुनाथ की दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं।

दो॰ - सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान॥ 6॥

(उन्होंने कहा -) हे सुग्रीव! सुनो, मैं एक ही बाण से बालि को मार डालूँगा। ब्रह्मा और रुद्र की शरण में जाने पर भी उसके प्राण न बचेंगे॥ 6॥

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥

जो लोग मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते, उन्हें देखने से ही बड़ा पाप लगता है। अपने पर्वत के समान दुःख को धूल के समान और मित्र के धूल के समान दुःख को सुमेरु (बड़े भारी पर्वत) के समान जाने।

जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥

जिन्हें स्वभाव से ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है, वे मूर्ख हठ करके क्यों किसी से मित्रता करते हैं? मित्र का धर्म है कि वह मित्र को बुरे मार्ग से रोककर अच्छे मार्ग पर चलावे। उसके गुण प्रकट करे और अवगुणों को छिपावे।

देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥

देने-लेने में मन में शंका न रखे। अपने बल के अनुसार सदा हित ही करता रहे। विपत्ति के समय तो सदा सौगुना स्नेह करे। वेद कहते हैं कि संत (श्रेष्ठ) मित्र के गुण (लक्षण) ये हैं।

आगें कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥

जो सामने तो बना-बनाकर कोमल वचन कहता है और पीठ-पीछे बुराई करता है तथा मन में कुटिलता रखता है - हे भाई! (इस तरह) जिसका मन साँप की चाल के समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्र को तो त्यागने में ही भलाई है।

सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥
सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥

मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, कुलटा स्त्री और कपटी मित्र - ये चारों शूल के समान पीड़ा देनेवाले हैं। हे सखा! मेरे बल पर अब तुम चिंता छोड़ दो। मैं सब प्रकार से तुम्हारे काम आऊँगा (तुम्हारी सहायता करूँगा)।

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा॥
दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए॥

सुग्रीव ने कहा - हे रघुवीर! सुनिए, बालि महान बलवान और अत्यंत रणधीर है। फिर सुग्रीव ने राम को दुंदुभि राक्षस की हड्डियाँ व ताल के वृक्ष दिखलाए। रघुनाथ ने उन्हें बिना ही परिश्रम के (आसानी से) ढहा दिया।

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह भइ परतीती॥
बार-बार नावइ पद सीसा। प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा॥

राम का अपरिमित बल देखकर सुग्रीव की प्रीति बढ़ गई और उन्हें विश्वास हो गया कि ये बालि का वध अवश्य करेंगे। वे बार-बार चरणों में सिर नवाने लगे। प्रभु को पहचानकर सुग्रीव मन में हर्षित हो रहे थे।

उपजा ग्यान बचन तब बोला। नाथ कृपाँ मन भयउ अलोला॥
सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई॥

जब ज्ञान उत्पन्न हुआ तब वे ये वचन बोले कि हे नाथ! आपकी कृपा से अब मेरा मन स्थिर हो गया। सुख, संपत्ति, परिवार और बड़ाई (बड़प्पन) सबको त्यागकर मैं आपकी सेवा ही करूँगा।

ए सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक॥
सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं। मायाकृत परमारथ नाहीं॥

क्योंकि आपके चरणों की आराधना करनेवाले संत कहते हैं कि ये सब (सुख-संपत्ति आदि) राम भक्ति के विरोधी हैं। जगत में जितने भी शत्रु-मित्र और सुख-दुःख (आदि द्वंद्व) हैं, सब के सब मायारचित हैं, परमार्थतः (वास्तव में) नहीं हैं।

बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा॥
सपनें जेहि सन होइ लराई। जागें समुझत मन सकुचाई॥

हे राम! बालि तो मेरा परम हितकारी है, जिसकी कृपा से शोक का नाश करनेवाले आप मुझे मिले और जिसके साथ अब स्वप्न में भी लड़ाई हो तो जागने पर उसे समझकर मन में संकोच होगा (कि स्वप्न में भी मैं उससे क्यों लड़ा)।

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँति। सब तजि भजनु करौं दिन राती॥
सुनि बिराग संजुत कपि बानी। बोले बिहँसि रामु धनुपानी॥

हे प्रभो! अब तो इस प्रकार कृपा कीजिए कि सब छोड़कर दिन-रात मैं आपका भजन ही करूँ। सुग्रीव की वैराग्ययुक्त वाणी सुनकर (उसके क्षणिक वैराग्य को देखकर) हाथ में धनुष धारण करनेवाले राम मुसकराकर बोले -

जो कछु कहेहु सत्य सब सोई। सखा बचन मम मृषा न होई॥
नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत॥

तुमने जो कुछ कहा है, वह सभी सत्य है; परंतु हे सखा! मेरा वचन मिथ्या नहीं होता (अर्थात बालि मारा जाएगा और तुम्हें राज्य मिलेगा)। (काकभुशुंडि कहते हैं कि -) हे पक्षियों के राजा गरुड़! नट (मदारी) के बंदर की तरह राम सबको नचाते हैं, वेद ऐसा कहते हैं।

लै सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा॥
तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा॥

तदनंतर सुग्रीव को साथ लेकर और हाथों में धनुष-बाण धारण करके रघुनाथ चले। तब रघुनाथ ने सुग्रीव को बालि के पास भेजा। वह राम का बल पाकर बालि के निकट जाकर गरजा।

सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा॥
सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा॥

बालि सुनते ही क्रोध में भरकर वेग से दौड़ा। उसकी स्त्री तारा ने चरण पकड़कर उसे समझाया कि हे नाथ! सुनिए, सुग्रीव जिनसे मिले हैं वे दोनों भाई तेज और बल की सीमा हैं।

कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा॥

वे कोसलाधीश दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण संग्राम में काल को भी जीत सकते हैं।

दो॰ - कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ॥ 7॥

बालि ने कहा - हे भीरु! (डरपोक) प्रिये! सुनो, रघुनाथ समदर्शी हैं। जो कदाचित वे मुझे मारेंगे ही तो मैं सनाथ हो जाऊँगा (परमपद पा जाऊँगा)॥ 7॥

अस कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहि जानी॥
भिरे उभौ बाली अति तर्जा। मुठिका मारि महाधुनि गर्जा॥

ऐसा कहकर वह महान अभिमानी बालि सुग्रीव को तिनके के समान जानकर चला। दोनों भिड़ गए। बालि ने सुग्रीव को बहुत धमकाया और घूँसा मारकर बड़े जोर से गरजा।

तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा॥
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला॥

तब सुग्रीव व्याकुल होकर भागा। घूँसे की चोट उसे वज्र के समान लगी। (सुग्रीव ने आकर कहा -) हे कृपालु रघुवीर! मैंने आपसे पहले ही कहा था कि बालि मेरा भाई नहीं है, काल है।

एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ॥
कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा॥

(राम ने कहा -) तुम दोनों भाइयों का एक-सा ही रूप है। इसी भ्रम से मैंने उसको नहीं मारा। फिर राम ने सुग्रीव के शरीर को हाथ से स्पर्श किया, जिससे उसका शरीर वज्र के समान हो गया और सारी पीड़ा जाती रही।

मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥
पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई॥

तब राम ने सुग्रीव के गले में फूलों की माला डाल दी और फिर उसे बड़ा भारी बल देकर भेजा। दोनों में पुनः अनेक प्रकार से युद्ध हुआ। रघुनाथ वृक्ष की आड़ से देख रहे थे।

दो० - बहु छल बल सुग्रीव कर हियँ हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि॥ 8॥

सुग्रीव ने बहुत-से छल-बल किए, किंतु (अंत में) भय मानकर हृदय से हार गया। तब राम ने तानकर बालि के हृदय में बाण मारा॥ 8॥

परा बिकल महि सर के लागें। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे॥
स्याम गात सिर जटा बनाएँ। अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ॥

बाण के लगते ही बालि व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। किंतु प्रभु राम को आगे देखकर वह फिर उठ बैठा। भगवान का श्याम शरीर है, सिर पर जटा बनाए हैं, लाल नेत्र

हैं, बाण लिए हैं और धनुष चढ़ाए हैं।

पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥
हृदयँ प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥

बालि ने बार-बार भगवान की ओर देखकर चित्त को उनके चरणों में लगा दिया। प्रभु को पहचानकर उसने अपना जन्म सफल माना। उसके हृदय में प्रीति थी, पर मुख में कठोर वचन थे। वह राम की ओर देखकर बोला -

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥

हे गोसाईं! आपने धर्म की रक्षा के लिए अवतार लिया है और मुझे व्याध की तरह (छिपकर) मारा? मैं बैरी और सुग्रीव प्यारा? हे नाथ! किस दोष से आपने मुझे मारा?

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई॥

(राम ने कहा -) हे मूर्ख! सुन, छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र की स्त्री और कन्या - ये चारों समान हैं। इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता।

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना॥
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥

हे मूढ़! तुझे अत्यंत अभिमान है। तूने अपनी स्त्री की सीख पर भी कान (ध्यान) नहीं दिया। सुग्रीव को मेरी भुजाओं के बल का आश्रित जानकर भी अरे अधम अभिमानी! तूने उसको मारना चाहा!

दो० - सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि॥ 9॥

(बालि ने कहा -) हे राम! सुनिए, स्वामी (आप) से मेरी चतुराई नहीं चल सकती। हे प्रभो! अंतकाल में आपकी गति (शरण) पाकर मैं अब भी पापी ही रहा?॥ 9॥

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी॥

अचल करौं तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपानिधाना॥

बालि की अत्यंत कोमल वाणी सुनकर राम ने उसके सिर को अपने हाथ से स्पर्श किया (और कहा -) मैं तुम्हारे शरीर को अचल कर दूँ, तुम प्राणों को रखो। बालि ने कहा - हे कृपानिधान! सुनिए -

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी॥

मुनिगण जन्म-जन्म में (प्रत्येक जन्म में) (अनेकों प्रकार का) साधन करते रहते हैं। फिर भी अंतकाल में उन्हें 'राम' नहीं कह आता (उनके मुख से राम नाम नहीं निकलता)। जिनके नाम के बल से शंकर काशी में सबको समान रूप से अविनाशिनी गति (मुक्ति) देते हैं।

मम लोचन गोचर सोई आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा॥

वह राम स्वयं मेरे नेत्रों के सामने आ गए हैं। हे प्रभो! ऐसा संयोग क्या फिर कभी बन पड़ेगा?

छं० - सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं।
जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं॥
मोहि जानि अति अभिमान बस प्रभु कहेउ राखु सरीरही।
अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरही॥

श्रुतियाँ 'नेति-नेति' कहकर निरंतर जिनका गुणगान करती रहती हैं, तथा प्राण और मन को जीतकर एवं इंद्रियों को (विषयों के रस से सर्वथा) नीरस बनाकर मुनिगण ध्यान में जिनकी कभी क्वचित ही झलक पाते हैं, वे ही प्रभु (आप) साक्षात मेरे सामने प्रकट हैं। आपने मुझे अत्यंत अभिमानवश जानकर यह कहा कि तुम शरीर रख लो। परंतु ऐसा मूर्ख कौन होगा जो हठपूर्वक कल्पवृक्ष को काटकर उससे बबूर के बाड़ लगावेगा (अर्थात पूर्णकाम बना देनेवाले आपको छोड़कर आपसे इस नश्वर शरीर की रक्षा चाहेगा)?

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ।
जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ॥
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिऐ।

गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिऐ॥

हे नाथ! अब मुझ पर दयादृष्टि कीजिए और मैं जो वर माँगता हूँ उसे दीजिए। मैं कर्मवश जिस योनि में जन्म लूँ, वहीं राम (आप) के चरणों में प्रेम करूँ! हे कल्याणप्रद प्रभो! यह मेरा पुत्र अंगद विनय और बल में मेरे ही समान है, इसे स्वीकार कीजिए। और हे देवता और मनुष्यों के नाथ! बाँह पकड़कर इसे अपना दास बनाइए।

दो० - राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥ 10॥

राम के चरणों में दृढ़ प्रीति करके बालि ने शरीर को वैसे ही (आसानी से) त्याग दिया जैसे हाथी अपने गले से फूलों की माला का गिरना न जाने॥ 10॥

राम बालि निज धाम पठावा। नगर लोग सब व्याकुल धावा॥
नाना बिधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा॥

राम ने बालि को अपने परम धाम भेज दिया। नगर के सब लोग व्याकुल होकर दौड़े। बालि की स्त्री तारा अनेकों प्रकार से विलाप करने लगी। उसके बाल बिखरे हुए हैं और देह की सँभाल नहीं है।

तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया॥
छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥

तारा को व्याकुल देखकर रघुनाथ ने उसे ज्ञान दिया और उसकी माया (अज्ञान) हर ली। (उन्होंने कहा -) पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु - इन पाँच तत्त्वों से यह अत्यंत अधम शरीर रचा गया है।

प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥
उपजा ग्यान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर मागी॥

वह शरीर तो प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने सोया हुआ है, और जीव नित्य है। फिर तुम किसके लिए रो रही हो? जब ज्ञान उत्पन्न हो गया, तब वह भगवान के चरणों लगी और उसने परम भक्ति का वर माँग लिया।

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥

तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा। मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा॥

(शिव कहते हैं -) हे उमा! स्वामी राम सबको कठपुतली की तरह नचाते हैं। तदनंतर राम ने सुग्रीव को आज्ञा दी और सुग्रीव ने विधिपूर्वक बालि का सब मृतक कर्म किया।

राम कहा अनुजहि समुझाई। राज देहु सुग्रीवहि जाई॥
रघुपति चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा॥

तब राम ने छोटे भाई लक्ष्मण को समझाकर कहा कि तुम जाकर सुग्रीव को राज्य दे दो। रघुनाथ की प्रेरणा (आज्ञा) से सब लोग रघुनाथ के चरणों में मस्तक नवाकर चले।

दो० - लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज॥ 11॥

लक्ष्मण ने तुरंत ही सब नगरवासियों को और ब्राह्मणों के समाज को बुला लिया और (उनके सामने) सुग्रीव को राज्य और अंगद को युवराज-पद दिया॥ 11॥

उमा राम सम हत जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥
सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीति॥

हे पार्वती! जगत में राम के समान हित करनेवाला गुरु, पिता, माता, बंधु और स्वामी कोई नहीं है। देवता, मनुष्य और मुनि सबकी यह रीति है कि स्वार्थ के लिए ही सब प्रीति करते हैं।

बालि त्रास ब्याकुल दिन राती। तन बहु ब्रन चिंताँ जर छाती॥
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ॥

जो सुग्रीव दिन-रात बालि के भय से व्याकुल रहता था, जिसके शरीर में बहुत-से घाव हो गए थे और जिसकी छाती चिंता के मारे जला करती थी, उसी सुग्रीव को उन्होंने वानरों का राजा बना दिया। राम का स्वभाव अत्यंत ही कृपालु है।

जानतहूँ अस प्रभु परिहरहीं। काहे न बिपति जाल नर परहीं॥
पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई। बहु प्रकार नृपनीति सिखाई॥

जो लोग जानते हुए भी ऐसे प्रभु को त्याग देते हैं, वे क्यों न विपत्ति के जाल में फँसें?

फिर राम ने सुग्रीव को बुला लिया और बहुत प्रकार से उन्हें राजनीति की शिक्षा दी।

कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाउँ दस चारि बरीसा॥
गत ग्रीषम बरषा रितु आई। रहिहउँ निकट सैल पर छाई॥

फिर प्रभु ने कहा - हे वानरपति सुग्रीव! सुनो, मैं चौदह वर्ष तक गाँव (बस्ती) में नहीं जाऊँगा। ग्रीष्मऋतु बीतकर वर्षाऋतु आ गई। अतः मैं यहाँ पास ही पर्वत पर टिक रहूँगा।

अंगद सहित करहु तुम्ह राजू। संतत हृदयँ धरेहु मम काजू॥
जब सुग्रीव भवन फिरि आए। रामु प्रबरषन गिरि पर छाए॥

तुम अंगद सहित राज्य करो। मेरे काम का हृदय में सदा ध्यान रखना। तदनंतर जब सुग्रीव घर लौट आए, तब राम प्रवर्षण पर्वत पर जा टिके।

दो० - प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा राखेउ रुचिर बनाइ।
राम कृपानिधि कछु दिन बास करहिंगे आइ॥ 12॥

देवताओं ने पहले से ही उस पर्वत की एक गुफा को सुंदर बना (सजा) रखा था। उन्होंने सोच रखा था कि कृपा की खान राम कुछ दिन यहाँ आकर निवास करेंगे॥ 12॥

सुंदर बन कुसुमित अति सोभा। गुंजत मधुप निकर मधु लोभा॥
कंद मूल फल पत्र सुहाए। भए बहुत जब ते प्रभु आए॥

सुंदर वन फूला हुआ अत्यंत सुशोभित है। मधु के लोभ से भौंरों के समूह गुंजार कर रहे हैं। जब से प्रभु आए, तब से वन में सुंदर कंद, मूल, फल और पत्तों की बहुतायत हो गई।

देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा॥
मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा॥

मनोहर और अनुपम पर्वत को देखकर देवताओं के सम्राट राम छोटे भाई सहित वहाँ रह गए। देवता, सिद्ध और मुनि भौंरों, पक्षियों और पशुओं के शरीर धारण करके प्रभु की सेवा करने लगे।

मंगलरूप भयउ बन तब ते। कीन्ह निवास रमापति जब ते॥

फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई॥

जब से रमापति राम ने वहाँ निवास किया तब से वन मंगलस्वरूप हो गया। सुंदर स्फटिक मणि की एक अत्यंत उज्ज्वल शिला है, उस पर दोनों भाई सुखपूर्वक विराजमान हैं।

कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरत नृपनीति बिबेका॥
बरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए॥

राम छोटे भाई लक्ष्मण से भक्ति, वैराग्य, राजनीति और ज्ञान की अनेकों कथाएँ कहते हैं। वर्षाकाल में आकाश में छाए हुए बादल गरजते हुए बहुत ही सुहावने लगते हैं।

दो० - लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस बिष्नुभगत कहुँ देखि॥ 13॥

(राम कहने लगे -) हे लक्ष्मण! देखो, मोरों के झुंड बादलों को देखकर नाच रहे हैं, जैसे वैराग्य में अनुरक्त गृहस्थ किसी विष्णुभक्त को देखकर हर्षित होते हैं॥ 13॥

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥
दामिनि दमक रह न घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥

आकाश में बादल घुमड़-घुमड़कर घोर गर्जना कर रहे हैं, प्रिया (सीता) के बिना मेरा मन डर रहा है। बिजली की चमक बादलों में ठहरती नहीं, जैसे दुष्ट की प्रीति स्थिर नहीं रहती।

बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ।
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें। खल के बचन संत सह जैसें॥

बादल पृथ्वी के समीप आकर (नीचे उतरकर) बरस रहे हैं, जैसे विद्या पाकर विद्वान् नम्र हो जाते हैं। बूँदों की चोट पर्वत कैसे सहते हैं, जैसे दुष्टों के वचन संत सहते हैं।

छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई॥
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी॥

छोटी नदियाँ भरकर (किनारों को) तुड़ाती हुई चलीं, जैसे थोड़े धन से भी दुष्ट इतरा जाते

हैं (मर्यादा का त्याग कर देते हैं)। पृथ्वी पर पड़ते ही पानी गँदला हो गया है, जैसे शुद्ध जीव के माया लिपट गई हो।

समिटि समिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥

जल एकत्र हो-होकर तालाबों में भर रहा है, जैसे सद्‌गुण (एक-एककर) सज्जन के पास चले आते हैं। नदी का जल समुद्र में जाकर वैसे ही स्थिर हो जाता है, जैसे जीव हरि को पाकर अचल (आवागमन से मुक्त) हो जाता है।

दो॰ - हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ॥ 14॥

पृथ्वी घास से परिपूर्ण होकर हरी हो गई है, जिससे रास्ते समझ नहीं पड़ते। जैसे पाखंड-मत के प्रचार से सद्‌ग्रंथ गुप्त (लुप्त) हो जाते हैं॥ 14॥

दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥
नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका॥

चारों दिशाओं में मेढकों की ध्वनि ऐसी सुहावनी लगती है, मानो विद्यार्थियों के समुदाय वेद पढ़ रहे हों। अनेकों वृक्षों में नए पत्ते आ गए हैं, जिससे वे ऐसे हरे-भरे एवं सुशोभित हो गए हैं जैसे साधक का मन विवेक (ज्ञान) प्राप्त होने पर हो जाता है।

अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्‌यम गयऊ॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी॥

मदार और जवासा बिना पत्ते के हो गए (उनके पत्ते झड़ गए)। जैसे श्रेष्ठ राज्य में दुष्टों का उद्‌यम जाता रहा (उनकी एक भी नहीं चलती)। धूल कहीं खोजने पर भी नहीं मिलती, जैसे क्रोध धर्म को दूर कर देता है (अर्थात क्रोध का आवेश होने पर धर्म का ज्ञान नहीं रह जाता)।

ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी॥
निसि तम घन खद्‌योत बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा॥

अन्न से युक्त (लहलहाती हुई खेती से हरी-भरी) पृथ्वी कैसी शोभित हो रही है, जैसी

उपकारी पुरुष की संपत्ति। रात के घने अंधकार में जुगनू शोभा पा रहे हैं, मानो दंभियों का समाज आ जुटा हो।

महाबृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥

भारी वर्षा से खेतों की क्यारियाँ फूट चली हैं, जैसे स्वतंत्र होने से स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। चतुर किसान खेतों को निरा रहे हैं (उनमें से घास आदि को निकालकर फेंक रहे हैं)। जैसे विद्वान लोग मोह, मद और मान का त्याग कर देते हैं।

देखिअत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
ऊषर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा॥

चक्रवाक पक्षी दिखाई नहीं दे रहे हैं; जैसे कलियुग को पाकर धर्म भाग जाते हैं। ऊसर में वर्षा होती है, पर वहाँ घास तक नहीं उगती, जैसे हरिभक्त के हृदय में काम नहीं उत्पन्न होता।

बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रिय गन उपजें ग्याना॥

पृथ्वी अनेक तरह के जीवों से भरी हुई उसी तरह शोभायमान है, जैसे सुराज्य पाकर प्रजा की वृद्धि होती है। जहाँ-तहाँ अनेक पथिक थककर ठहरे हुए हैं, जैसे ज्ञान उत्पन्न होने पर इंद्रियाँ (शिथिल होकर विषयों की ओर जाना छोड़ देती हैं)।

दो॰ - कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं॥ 15(क)॥

कभी-कभी वायु बड़े जोर से चलने लगती है, जिससे बादल जहाँ-तहाँ गायब हो जाते हैं। जैसे कुपुत्र के उत्पन्न होने से कुल के उत्तम धर्म (श्रेष्ठ आचरण) नष्ट हो जाते हैं॥ 15(क)॥

कबहु दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥ 15(ख)॥

कभी (बादलों के कारण) दिन में घोर अंधकार छा जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाते

हैं। जैसे कुसंग पाकर ज्ञान नष्ट हो जाता है और सुसंग पाकर उत्पन्न हो जाता है॥ 15(ख)॥

बरषा बिगत सरद रितु आई। लछमन देखहु परम सुहाई॥
फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई॥

हे लक्ष्मण! देखो, वर्षा बीत गई और परम सुंदर शरद् ऋतु आ गई। फूले हुए कास से सारी पृथ्वी छा गई। मानो वर्षा ऋतु ने (कासरूपी सफेद बालों के रूप में) अपना बुढ़ापा प्रकट किया है।

उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहिं सोषइ संतोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥

अगस्त्य के तारे ने उदय होकर मार्ग के जल को सोख लिया, जैसे संतोष लोभ को सोख लेता है। नदियों और तालाबों का निर्मल जल ऐसी शोभा पा रहा है जैसे मद और मोह से रहित संतों का हृदय!

रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥

नदी और तालाबों का जल धीरे-धीरे सूख रहा है। जैसे ज्ञानी (विवेकी) पुरुष ममता का त्याग करते हैं। शरद ऋतु जानकर खंजन पक्षी आ गए। जैसे समय पाकर सुंदर सुकृत आ जाते हैं (पुण्य प्रकट हो जाते हैं)।

पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी॥
जल संकोच बिकल भइँ मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना॥

न कीचड़ है न धूल; इससे धरती (निर्मल होकर) ऐसी शोभा दे रही है जैसे नीतिनिपुण राजा की करनी! जल के कम हो जाने से मछलियाँ व्याकुल हो रही हैं, जैसे मूर्ख (विवेकशून्य) कुटुंबी (गृहस्थ) धन के बिना व्याकुल होता है।

बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक भाव भगति जिमि मोरी॥

बिना बादलों का निर्मल आकाश ऐसा शोभित हो रहा है जैसे भगवद्भक्त सब आशाओं को

छोड़कर सुशोभित होते हैं। कहीं-कहीं (विरले ही स्थानों में) शरद ऋतु की थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही है। जैसे कोई विरले ही मेरी भक्ति पाते हैं।

दो० - चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि॥ 16॥

(शरद ऋतु पाकर) राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिखारी (क्रमशः विजय, तप, व्यापार और भिक्षा के लिए) हर्षित होकर नगर छोड़कर चले। जैसे हरि की भक्ति पाकर चारों आश्रमवाले (नाना प्रकार के साधनरूपी) श्रमों को त्याग देते हैं॥ 16॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकऊ बाधा॥
फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रहम सगुन भएँ जैसा॥

जो मछलियाँ अथाह जल में हैं, वे सुखी हैं, जैसे हरि के शरण में चले जाने पर एक भी बाधा नहीं रहती। कमलों के फूलने से तालाब कैसी शोभा दे रहा है, जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण होने पर शोभित होता है।

गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खग रव नाना रूपा॥
चक्रबाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी॥

भौंरे अनुपम शब्द करते हुए गूँज रहे हैं, तथा पक्षियों के नाना प्रकार के सुंदर शब्द हो रहे हैं। रात्रि देखकर चकवे के मन में वैसे ही दुःख हो रहा है, जैसे दूसरे की संपत्ति देखकर दुष्ट को होता है।

चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकरद्रोही॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥

पपीहा रट लगाए है, उसको बड़ी प्यास है, जैसे शंकर का द्रोही सुख नहीं पाता (सुख के लिए झीखता रहता है), शरद् ऋतु के ताप को रात के समय चंद्रमा हर लेता है, जैसे संतों के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं।

देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा॥

चकोरों के समुदाय चंद्रमा को देखकर इस प्रकार टकटकी लगाए हैं जैसे भगवद्भक्त

भगवान को पाकर उनके (निर्निमेष नेत्रों से) दर्शन करते हैं। मच्छर और डाँस जाड़े के डर से इस प्रकार नष्ट हो गए जैसे ब्राह्मण के साथ वैर करने से कुल का नाश हो जाता है।

दो० - भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।
सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ॥ 17॥

(वर्षा ऋतु के कारण) पृथ्वी पर जो जीव भर गए थे, वे शरद् ऋतु को पाकर वैसे ही नष्ट हो गए जैसे सद्गुरु के मिल जाने पर संदेह और भ्रम के समूह नष्ट हो जाते हैं॥ 17॥

बरषा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई॥
एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालुह जीति निमिष महुँ आनौं॥

वर्षा बीत गई, निर्मल शरद्ऋतु आ गई। परंतु हे तात! सीता की कोई खबर नहीं मिली। एक बार कैसे भी पता पाऊँ तो काल को भी जीतकर पल भर में जानकी को ले आऊँ।

कतहुँ रहउ जौं जीवति होई। तात जतन करि आनउँ सोई॥
सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी॥

कहीं भी रहे, यदि जीती होगी तो हे तात! यत्न करके मैं उसे अवश्य लाऊँगा। राज्य, खजाना, नगर और स्त्री पा गया, इसलिए सुग्रीव ने भी मेरी सुध भुला दी।

जेहिं सायक मारा मैं बाली। तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली॥
जासु कृपाँ छूटहिं मद मोहा। ता कहुँ उमा कि सपनेहुँ कोहा॥

जिस बाण से मैंने बालि को मारा था, उसी बाण से कल उस मूढ़ को मारूँ! (शिव कहते हैं -) हे उमा! जिनकी कृपा से मद और मोह छूट जाते हैं, उनको कहीं स्वप्न में भी क्रोध हो सकता है? (यह तो लीला मात्र है)।

जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी॥
लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाई गहे कर बाना॥

ज्ञानी मुनि जिन्होंने रघुनाथ के चरणों में प्रीति मान ली है (जोड़ ली है), वे ही इस चरित्र (लीला रहस्य) को जानते हैं। लक्ष्मण ने जब प्रभु को क्रोधयुक्त जाना, तब उन्होंने धनुष चढ़ाकर बाण हाथ में ले लिए।

दो० - तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुना सींव।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव॥ 18॥

तब दया की सीमा रघुनाथ ने छोटे भाई लक्ष्मण को समझाया कि हे तात! सखा सुग्रीव को केवल भय दिखलाकर ले आओ (उसे मारने की बात नहीं है)॥ 18॥

इहाँ पवनसुत हृदयँ बिचारा। राम काजु सुग्रीवँ बिसारा॥
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा॥

यहाँ (किष्किंधा नगरी में) पवनकुमार हनुमान ने विचार किया कि सुग्रीव ने राम के कार्य को भुला दिया। उन्होंने सुग्रीव के पास जाकर चरणों में सिर नवाया। (साम, दान, दंड, भेद) चारों प्रकार की नीति कहकर उन्हें समझाया।

सुनि सुग्रीवँ परम भय माना। बिषयँ मोर हरि लीन्हेउ ग्याना॥
अब मारुतसुत दूत समूहा। पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा॥

हनुमान के वचन सुनकर सुग्रीव ने बहुत ही भय माना। (और कहा -) विषयों ने मेरे ज्ञान को हर लिया। अब हे पवनसुत! जहाँ-तहाँ वानरों के यूथ रहते हैं, वहाँ दूतों के समूहों को भेजो।

कहहु पाख महुँ आव न जोई। मोरें कर ता कर बध होई॥
तब हनुमंत बोलाए दूता। सब कर करि सनमान बहूता॥

और कहला दो कि एक पखवाड़े में (पंदरह दिनों में) जो न आ जाएगा, उसका मेरे हाथों वध होगा। तब हनुमान ने दूतों को बुलाया और सबका बहुत सम्मान करके -

भय अरु प्रीति नीति देखराई। चले सकल चरनन्हि सिर नाई॥
एहि अवसर लछिमन पुर आए। क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए॥

सबको भय, प्रीति और नीति दिखलाई। सब बंदर चरणों में सिर नवाकर चले। इसी समय लक्ष्मण नगर में आए। उनका क्रोध देखकर बंदर जहाँ-तहाँ भागे।

दो० - धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करउँ पुर छार।
ब्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार॥ 19॥

तदनंतर लक्ष्मण ने धनुष चढ़ाकर कहा कि नगर को जलाकर अभी राख कर दूँगा। तब नगरभर को व्याकुल देखकर बालिपुत्र अंगद उनके पास आए॥ 19॥

चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही। लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही॥
क्रोधवंत लछिमन सुनि काना। कह कपीस अति भयँ अकुलाना॥

अंगद ने उनके चरणों में सिर नवाकर विनती की (क्षमा-याचना की)। तब लक्ष्मण ने उनको अभय बाँह दी (भुजा उठाकर कहा कि डरो मत)। सुग्रीव ने अपने कानों से लक्ष्मण को क्रोधयुक्त सुनकर भय से अत्यंत व्याकुल होकर कहा -

सुनु हनुमंत संग लै तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा॥
तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना॥

हे हनुमान! सुनो, तुम तारा को साथ ले जाकर विनती करके राजकुमार को समझाओ (समझा-बुझाकर शांत करो)। हनुमान ने तारा सहित जाकर लक्ष्मण के चरणों की वंदना की और प्रभु के सुंदर यश का बखान किया।

करि बिनती मंदिर लै आए। चरन पखारि पलँग बैठाए॥
तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा॥

वे विनती करके उन्हें महल में ले आए तथा चरणों को धोकर उन्हें पलँग पर बैठाया। तब वानरराज सुग्रीव ने उनके चरणों में सिर नवाया और लक्ष्मण ने हाथ पकड़कर उनको गले से लगा लिया।

नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करइ छन माहीं।
सुनत बिनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहुबिधि समुझावा॥

(सुग्रीव ने कहा -) हे नाथ! विषय के समान और कोई मद नहीं है। यह मुनियों के मन में भी क्षणमात्र में मोह उत्पन्न कर देता है (फिर मैं तो विषयी जीव ही ठहरा)। सुग्रीव के विनययुक्त वचन सुनकर लक्ष्मण ने सुख पाया और उनको बहुत प्रकार से समझाया।

पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गए दूत समुदाई॥

तब पवनसुत हनुमान ने जिस प्रकार सब दिशाओं में दूतों के समूह गए थे वह सब हाल

सुनाया।

दो॰ - हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगें करि आए जहँ रघुनाथ॥ 20॥

तब अंगद आदि वानरों को साथ लेकर और राम के छोटे भाई लक्ष्मण को आगे करके (अर्थात उनके पीछे-पीछे) सुग्रीव हर्षित होकर चले और जहाँ रघुनाथ थे वहाँ आए॥ 20॥

नाइ चरन सिरु कह कर जोरी॥ नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी॥
अतिसय प्रबल देव तव माया॥ छूटइ राम करहु जौं दाया॥

रघुनाथ के चरणों में सिर नवाकर हाथ जोड़कर सुग्रीव ने कहा - हे नाथ! मुझे कुछ भी दोष नहीं है। हे देव! आपकी माया अत्यंत ही प्रबल है। आप जब दया करते हैं, हे राम! तभी यह छूटती है।

बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी॥ मैं पावँर पसु कपि अति कामी॥
नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥

हे स्वामी! देवता, मनुष्य और मुनि सभी विषयों के वश में हैं। फिर मैं तो पामर पशु और पशुओं में भी अत्यंत कामी बंदर हूँ। स्त्री का नयन-बाण जिसको नहीं लगा, जो भयंकर क्रोधरूपी अँधेरी रात में भी जागता रहता है (क्रोधांध नहीं होता)।

लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥
यह गुन साधन तें नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई॥

और लोभ की फाँसी से जिसने अपना गला नहीं बँधाया, हे रघुनाथ! वह मनुष्य आप ही के समान है। ये गुण साधन से नहीं प्राप्त होते। आपकी कृपा से ही कोई-कोई इन्हें पाते हैं।

तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई॥
अब सोइ जतनु करहु मन लाई। जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई॥

तब रघुनाथ मुसकराकर बोले - हे भाई! तुम मुझे भरत के समान प्यारे हो। अब मन लगाकर वही उपाय करो जिस उपाय से सीता की खबर मिले।

दो॰ - एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ।
नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरूथ॥ 21॥

इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि वानरों के यूथ (झुंड) आ गए। अनेक रंगों के वानरों के दल सब दिशाओं में दिखाई देने लगे॥ 21॥

बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरुख जो करन चह लेखा॥
आइ राम पद नावहिं माथा। निरखि बदनु सब होहिं सनाथा॥

(शिव कहते हैं -) हे उमा! वानरों की वह सेना मैंने देखी थी। उसकी जो गिनती करना चाहे वह महान मूर्ख है। सब वानर आ-आकर राम के चरणों में मस्तक नवाते हैं और (सौंदर्य-माधुर्यनिधि) मुख के दर्शन करके कृतार्थ होते हैं।

अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुसल जेहि पूछी नाहीं॥
यह कछु नहिं प्रभु कइ अधिकाई। बिस्वरूप ब्यापक रघुराई॥

सेना में एक भी वानर ऐसा नहीं था जिससे राम ने कुशल न पूछी हो, प्रभु के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है; क्योंकि रघुनाथ विश्वरूप तथा सर्वव्यापक हैं (सारे रूपों और सब स्थानों में हैं)।

ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई। कह सुग्रीव सबहि समुझाई॥
राम काजु अरु मोर निहोरा। बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा॥

आज्ञा पाकर सब जहाँ-तहाँ खड़े हो गए। तब सुग्रीव ने सबको समझाकर कहा कि हे वानरों के समूहों! यह राम का कार्य है और मेरा निहोरा (अनुरोध) है; तुम चारों ओर जाओ।

जनकसुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आएहु भाई॥
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ॥

और जाकर जानकी को खोजो। हे भाई! महीने भर में वापस आ जाना। जो (महीने भर की) अवधि बिताकर बिना पता लगाए ही लौट आएगा उसे मेरे द्वारा मरवाते ही बनेगा (अर्थात मुझे उसका वध करवाना ही पड़ेगा)।

दो॰ - बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरंत।

तब सुग्रीवँ बोलाए अंगद नल हनुमंत॥ 22॥

सुग्रीव के वचन सुनते ही सब वानर तुरंत जहाँ-तहाँ (भिन्न-भिन्न दिशाओं में) चल दिए। तब सुग्रीव ने अंगद, नल, हनुमान आदि प्रधान-प्रधान योद्धाओं को बुलाया (और कहा -)॥ 22॥

सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मतिधीर सुजाना॥
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूँछेहु सब काहू॥

हे धीरबुद्धि और चतुर नील, अंगद, जाम्बवान और हनुमान! तुम सब श्रेष्ठ योद्धा मिलकर दक्षिण दिशा को जाओ और सब किसी से सीता का पता पूछना।

मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। रामचंद्र कर काजु सँवारेहु॥
भानु पीठि सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी॥

मन, वचन तथा कर्म से उसी का (सीता का पता लगाने का) उपाय सोचना। श्री रामचंद्र का कार्य संपन्न (सफल) करना। सूर्य को पीठ से और अग्नि को हृदय से (सामने से) सेवन करना चाहिए। परंतु स्वामी की सेवा तो छल छोड़कर सर्वभाव से (मन, वचन, कर्म से) करनी चाहिए।

तजि माया सेइअ परलोका। मिटहिं सकल भवसंभव सोका॥
देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥

माया (विषयों की ममता-आसक्ति) को छोड़कर परलोक का सेवन (भगवान के दिव्य धाम की प्राप्ति के लिए भगवत्सेवारूप साधन) करना चाहिए, जिससे भव (जन्म-मरण) से उत्पन्न सारे शोक मिट जाएँ। हे भाई! देह धारण करने का यही फल है कि सब कामों (कामनाओं) को छोड़कर राम का भजन ही किया जाए।

सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥
आयसु मागि चरन सिरु नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई॥

सद्‌गुणों को पहचाननेवाला (गुणवान) तथा बड़भागी वही है जो रघुनाथ के चरणों का प्रेमी है। आज्ञा माँगकर और चरणों में फिर सिर नवाकर रघुनाथ का स्मरण करते हुए सब हर्षित होकर चले।

पाछें पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा॥
परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी॥

सबके पीछे पवनसुत हनुमान ने सिर नवाया। कार्य का विचार करके प्रभु ने उन्हें अपने पास बुलाया। उन्होंने अपने कर-कमल से उनके सिर का स्पर्श किया तथा अपना सेवक जानकर उन्हें अपने हाथ की अँगूठी उतारकर दी।

बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥
हनुमत जन्म सुफल करि माना। चलेउ हृदयँ धरि कृपानिधाना॥

(और कहा -) बहुत प्रकार से सीता को समझाना और मेरा बल तथा विरह (प्रेम) कहकर तुम शीघ्र लौट आना। हनुमान ने अपना जन्म सफल समझा और कृपानिधान प्रभु को हृदय में धारण करके वे चले।

जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता॥

यद्यपि देवताओं की रक्षा करनेवाले प्रभु सब बात जानते हैं, तो भी वे राजनीति की रक्षा कर रहे हैं (नीति की मर्यादा रखने के लिए सीता का पता लगाने को जहाँ-तहाँ वानरों को भेज रहे हैं)।

दो० - चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।
राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह॥ 23॥

सब वानर वन, नदी, तालाब, पर्वत और पर्वतों की कंदराओं में खोजते हुए चले जा रहे हैं। मन राम के कार्य में लवलीन है। शरीर तक का प्रेम (ममत्व) भूल गया है॥ 23॥

कतहुँ होइ निसिचर सैं भेटा। प्रान लेहिं एक एक चपेटा॥
बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं॥

कहीं किसी राक्षस से भेंट हो जाती है, तो एक-एक चपत में ही उसके प्राण ले लेते हैं। पर्वतों और वनों को बहुत प्रकार से खोज रहे हैं। कोई मुनि मिल जाता है तो पता पूछने के लिए उसे सब घेर लेते हैं।

लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलइ न जल घन गहन भुलाने॥

मन हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिनु जल पाना॥

इतने में ही सबको अत्यंत प्यास लगी, जिससे सब अत्यंत ही व्याकुल हो गए। किंतु जल कहीं नहीं मिला। घने जंगल में सब भुला गए। हनुमान ने मन में अनुमान किया कि जल पिए बिना सब लोग मरना ही चाहते हैं।

चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा। भूमि बिबर एक कौतुक पेखा॥
चक्रबाक बक हंस उड़ाहीं। बहुतक खग प्रबिसहिं तेहि माहीं॥

उन्होंने पहाड़ की चोटी पर चढ़कर चारों ओर देखा तो पृथ्वी के अंदर एक गुफा में उन्हें एक कौतुक (आश्चर्य) दिखाई दिया। उसके ऊपर चकवे, बगुले और हंस उड़ रहे हैं और बहुत-से पक्षी उसमें प्रवेश कर रहे हैं।

गिरि ते उतरि पवनसुत आवा। सब कहुँ लै सोइ बिबर देखावा॥
आगें कै हनुमंतहि लीन्हा। पैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा॥

पवन कुमार हनुमान पर्वत से उतर आए और सबको ले जाकर उन्होंने वह गुफा दिखलाई। सबने हनुमान को आगे कर लिया और वे गुफा में घुस गए, देर नहीं की।

दो॰ - दीख जाइ उपबन बर सर बिगसित बहु कंज।
मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुंज॥ 24॥

अंदर जाकर उन्होंने एक उत्तम उपवन (बगीचा) और तालाब देखा, जिसमें बहुत-से कमल खिले हुए हैं। वहीं एक सुंदर मंदिर है, जिसमें एक तपोमूर्ति स्त्री बैठी है॥ 24॥

दूरि ते ताहि सबन्हि सिरु नावा। पूछें निज बृत्तांत सुनावा॥
तेहिं तब कहा करहु जल पाना। खाहु सुरस सुंदर फल नाना॥

दूर से ही सबने उसे सिर नवाया और पूछने पर अपना सब वृत्तांत कह सुनाया। तब उसने कहा - जलपान करो और भाँति-भाँति के रसीले सुंदर फल खाओ।

मज्जनु कीन्ह मधुर फल खाए। तासु निकट पुनि सब चलि आए॥
तेहिं सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहाँ रघुराई॥

(आज्ञा पाकर) सबने स्नान किया, मीठे फल खाए और फिर सब उसके पास चले आए।

तब उसने अपनी सब कथा कह सुनाई (और कहा -) मैं अब वहाँ जाऊँगी जहाँ रघुनाथ हैं।

मूदहु नयन बिबर तजि जाहू। पैहहु सीतहि जनि पछिताहू॥
नयन मूदि पुनि देखहिं बीरा। ठाढ़े सकल सिंधु कें तीरा॥

तुम लोग आँखें मूँद लो और गुफा को छोड़कर बाहर जाओ। तुम सीता को पा जाओगे, पछताओ नहीं (निराश न होओ)। आँखें मूँदकर फिर जब आँखें खोलीं तो सब वीर क्या देखते हैं कि सब समुद्र के तीर पर खड़े हैं।

सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा। जाइ कमल पद नाएसि माथा॥
नाना भाँति बिनय तेहिं कीन्ही। अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही॥

और वह स्वयं वहाँ गई जहाँ रघुनाथ थे। उसने जाकर प्रभु के चरण कमलों में मस्तक नवाया और बहुत प्रकार से विनती की। प्रभु ने उसे अपनी अनपायिनी (अचल) भक्ति दी।

दो० - बदरीबन कहुँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस।
उर धरि राम चरन जुग जे बंदत अज ईस॥ 25॥

प्रभु की आज्ञा सिर पर धारण कर और राम के युगल चरणों को, जिनकी ब्रह्मा और महेश भी वंदना करते हैं, हृदय में धारण कर वह (स्वयंप्रभा) बदरिकाश्रम को चली गई॥ 25॥

इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं॥
सब मिलि कहहिं परस्पर बाता। बिनु सुधि लएँ करब का भ्राता॥

यहाँ वानरगण मन में विचार कर रहे हैं कि अवधि तो बीत गई, पर काम कुछ न हुआ। सब मिलकर आपस में बात करने लगे कि हे भाई! अब तो सीता की खबर लिए बिना लौटकर भी क्या करेंगे!

कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥
इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गएँ मारिहि कपिराई॥

अंगद ने नेत्रों में जल भरकर कहा कि दोनों ही प्रकार से हमारी मृत्यु हुई। यहाँ तो सीता की सुध नहीं मिली और वहाँ जाने पर वानरराज सुग्रीव मार डालेंगे।

पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही॥
पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं। मरन भयउ कछु संसय नाहीं॥

वे तो पिता के वध होने पर ही मुझे मार डालते। राम ने ही मेरी रक्षा की, इसमें सुग्रीव का कोई एहसान नहीं है। अंगद बार-बार सबसे कह रहे हैं कि अब मरण हुआ, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

अंगद बचन सुन कपि बीरा। बोलि न सकहिं नयन बह नीरा॥
छन एक सोच मगन होइ रहे। पुनि अस बचन कहत सब भए॥4॥

वानर वीर अंगद के वचन सुनते हैं, किंतु कुछ बोल नहीं सकते। उनके नेत्रों से जल बह रहा है। एक क्षण के लिए सब सोच में मग्न हो रहे। फिर सब ऐसा वचन कहने लगे-

हम सीता कै सुधि लीन्हें बिना। नहिं जैहैं जुबराज प्रबीना॥
अस कहि लवन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई॥

हे सुयोग्य युवराज! हम लोग सीता की खोज लिए बिना नहीं लौटेंगे। ऐसा कहकर लवणसागर के तट पर जाकर सब वानर कुश बिछाकर बैठ गए।

जामवंत अंगद दुख देखी। कहीं कथा उपदेस बिसेषी॥
तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥

जाम्बवान ने अंगद का दुःख देखकर विशेष उपदेश की कथाएँ कहीं। (वे बोले -) हे तात! राम को मनुष्य न मानो, उन्हें निर्गुण ब्रह्म, अजेय और अजन्मा समझो।

हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥

हम सब सेवक अत्यंत बड़भागी हैं, जो निरंतर सगुण ब्रह्म (राम) में प्रीति रखते हैं।

दो० - निज इच्छाँ प्रभु अवतरइ सुर मह गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि॥ 26॥

देवता, पृथ्वी, गो और ब्राह्मणों के लिए प्रभु अपनी इच्छा से (किसी कर्मबंधन से नहीं) अवतार लेते हैं। वहाँ सगुणोपासक (भक्तगण सालोक्य, सामीप्य, सारुप्य, सार्ष्टि और

सायुज्य) सब प्रकार के मोक्षों को त्यागकर उनकी सेवा में साथ रहते हैं॥ 26॥

एहि बिधि कथा कहहिं बहु भाँती। गिरि कंदराँ सुनी संपाती॥
बाहेर होइ देखि बहु कीसा। मोहि अहार दीन्ह जगदीसा॥

इस प्रकार जाम्बवान बहुत प्रकार से कथाएँ कह रहे हैं। इनकी बातें पर्वत की कंदरा में सम्पाती ने सुनीं। बाहर निकलकर उसने बहुत-से वानर देखे। (तब वह बोला -) जगदीश्वर ने मुझको घर बैठे बहुत-सा आहार भेज दिया!

आजु सबहि कहँ भच्छन करऊँ। दिन बहु चले अहार बिनु मरऊँ॥
कबहुँ न मिल भरि उदर अहारा। आजु दीन्ह बिधि एकहिं बारा॥

आज इन सबको खा जाऊँगा। बहुत दिन बीत गए, भोजन के बिना मर रहा था। पेटभर भोजन कभी नहीं मिलता। आज विधाता ने एक ही बार में बहुत-सा भोजन दे दिया।

डरपे गीध बचन सुनि काना। अब भा मरन सत्य हम जाना॥
कपि सब उठे गीध कहँ देखी। जामवंत मन सोच बिसेषी॥

गीध के वचन कानों से सुनते ही सब डर गए कि अब सचमुच ही मरना हो गया। यह हमने जान लिया। फिर उस गीध (सम्पाती) को देखकर सब वानर उठ खड़े हुए। जाम्बवान के मन में विशेष सोच हुआ।

कह अंगद बिचारि मन माहीं। धन्य जटायू सम कोउ नाहीं॥
राम काज कारन तनु त्यागी। हरि पुर गयउ परम बड़भागी॥

अंगद ने मन में विचार कर कहा- अहा! जटायु के समान धन्य कोई नहीं है। राम के कार्य के लिए शरीर छोड़कर वह परम बड़भागी भगवान के परमधाम को चला गया।

सुनि खग हरष सोक जुत बानी। आवा निकट कपिन्ह भय मानी॥
तिन्हहि अभय करि पूछेसि जाई। कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई॥

हर्ष और शोक से युक्त वाणी (समाचार) सुनकर वह पक्षी (सम्पाती) वानरों के पास आया। वानर डर गए। उनको अभय करके (अभय वचन देकर) उसने पास जाकर जटायु का वृत्तांत पूछा, तब उन्होंने सारी कथा उसे कह सुनाई।

सुनि संपाति बंधु कै करनी। रघुपति महिमा बहुबिधि बरनी॥

भाई जटायु की करनी सुनकर सम्पाती ने बहुत प्रकार से रघुनाथ की महिमा वर्णन की।

दो० - मोहि लै जाहु सिंधुतट देउँ तिलांजलि ताहि।
बचन सहाइ करबि मैं पैहहु खोजहु जाहि॥ 27॥

(उसने कहा -) मुझे समुद्र के किनारे ले चलो, मैं जटायु को तिलांजलि दे दूँ। इस सेवा के बदले मैं तुम्हारी वचन से सहायता करूँगा (अर्थात सीता कहाँ हैं सो बतला दूँगा), जिसे तुम खोज रहे हो उसे पा जाओगे॥ 27॥

अनुज क्रिया करि सागर तीरा। कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा॥
हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई। गगन गए रबि निकट उड़ाई॥

समुद्र के तीर पर छोटे भाई जटायु की क्रिया (श्राद्ध आदि) करके सम्पाती अपनी कथा कहने लगा- हे वीर वानरों! सुनो, हम दोनों भाई उठती जवानी में एक बार आकाश में उड़कर सूर्य के निकट चले गए।

तेज न सहि सक सो फिरि आवा। मैं अभिमानी रबि निअरावा॥
जरे पंख अति तेज अपारा। परेउँ भूमि करि घोर चिकारा॥

वह (जटायु) तेज नहीं सह सका, इससे लौट आया। (किंतु) मैं अभिमानी था इसलिए सूर्य के पास चला गया। अत्यंत अपार तेज से मेरे पंख जल गए। मैं बड़े जोर से चीख मारकर जमीन पर गिर पड़ा।

मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही॥
बहु प्रकार तेहिं ग्यान सुनावा। देहजनित अभिमान छुड़ावा॥

वहाँ चंद्रमा नाम के एक मुनि थे। मुझे देखकर उन्हें बड़ी दया लगी। उन्होंने बहुत प्रकार से मुझे ज्ञान सुनाया और मेरे देहजनित (देह संबंधी) अभिमान को छुड़ा दिया।

त्रेताँ ब्रह्म मनुज तनु धरिही। तासु नारि निसिचर पति हरिही॥
तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। तिन्हहि मिलें तैं होब पुनीता॥

(उन्होंने कहा -) त्रेतायुग में साक्षात परब्रह्म मनुष्य शरीर धारण करेंगे। उनकी स्त्री को

राक्षसों का राजा हर ले जाएगा। उसकी खोज में प्रभु दूत भेजेंगे। उनसे मिलने पर तू पवित्र हो जाएगा।

जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता। तिन्हहि देखाइ देहेसु तैं सीता॥
मुनि कइ गिरा सत्य भइ आजू। सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू॥

और तेरे पंख उग आएँगे, चिंता न कर। उन्हें तू सीता को दिखा देना। मुनि की वह वाणी आज सत्य हुई। अब मेरे वचन सुनकर तुम प्रभु का कार्य करो।

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका॥
तहँ असोक उपबन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई॥

त्रिकूट पर्वत पर लंका बसी हुई है। वहाँ स्वभाव से ही निडर रावण रहता है। वहाँ अशोक नाम का उपवन (बगीचा) है, जहाँ सीता रहती हैं। (इस समय भी) वे सोच में मग्न बैठी हैं।

दो॰ - मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार॥ 28॥

मैं उन्हें देख रहा हूँ, तुम नहीं देख सकते, क्योंकि गीध की दृष्टि अपार होती है (बहुत दूर तक जाती है)। क्या करूँ? मैं बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुम्हारी कुछ तो सहायता अवश्य करता॥ 28॥

जो नाघइ सत जोजन सागर। करइ सो राम काज मति आगर॥
मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा। राम कृपाँ कस भयउ सरीरा॥

जो सौ योजन (चार सौ कोस) समुद्र लाँघ सकेगा और बुद्धिनिधान होगा, वही राम का कार्य कर सकेगा। मुझे देखकर मन में धीरज धरो। देखो, राम की कृपा से मेरा शरीर कैसा हो गया (बिना पंख का बेहाल था, पंख उगने से सुंदर हो गया)!

पापिउ जा कर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं॥
तासु दूत तुम्ह तजि कदराई। राम हृदयँ धरि करहु उपाई॥

पापी भी जिनका नाम स्मरण करके अत्यंत अपार भवसागर से तर जाते हैं। तुम उनके

दूत हो, अतः कायरता छोड़कर राम को हृदय में धारण करके उपाय करो।

अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ। तिन्ह कें मन अति बिसमय भयऊ॥
निज निज बल सब काहूँ भाषा। पार जाइ कर संसय राखा॥

(काकभुशुंडि कहते हैं -) हे गरुड़! इस प्रकार कहकर जब गीध चला गया, तब उन (वानरों) के मन में अत्यंत विस्मय हुआ। सब किसी ने अपना-अपना बल कहा। पर समुद्र के पार जाने में सभी ने संदेह प्रकट किया।

जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा। नहिं तन रहा प्रथम बल लेसा॥
जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी। तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी॥

ऋक्षराज जाम्बवान कहने लगे - मैं बूढ़ा हो गया। शरीर में पहले वाले बल का लेश भी नहीं रहा। जब खरारि (खर के शत्रु राम) वामन बने थे, तब मैं जवान था और मुझमें बड़ा बल था।

दो० - बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ॥ 29॥

बलि के बाँधते समय प्रभु इतने बढ़े कि उस शरीर का वर्णन नहीं हो सकता, किंतु मैंने दो ही घड़ी में दौड़कर (उस शरीर की) सात प्रदक्षिणाएँ कर लीं॥ 29॥

अंगद कहइ जाउँ मैं पारा। जियँ संसय कछु फिरती बारा॥
जामवंत कह तुम्ह सब लायक। पठइअ किमि सबही कर नायक॥

अंगद ने कहा - मैं पार तो चला जाऊँगा, परंतु लौटते समय के लिए हृदय में कुछ संदेह है। जाम्बवान ने कहा - तुम सब प्रकार से योग्य हो, परंतु तुम सबके नेता हो, तुम्हे कैसे भेजा जाए?

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥

ऋक्षराज जाम्बवान ने हनुमान से कहा - हे हनुमान! हे बलवान! सुनो, तुमने यह क्या चुप साध रखी है? तुम पवन के पुत्र हो और बल में पवन के समान हो। तुम बुद्धि-विवेक और

विज्ञान की खान हो।

कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्बताकारा॥

जगत में कौन-सा ऐसा कठिन काम है जो हे तात! तुमसे न हो सके। राम के कार्य के लिए ही तो तुम्हारा अवतार हुआ है। यह सुनते ही हनुमान पर्वत के आकार के (अत्यंत विशालकाय) हो गए।

कनक बरन तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा॥
सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा॥

उनका सोने का-सा रंग है, शरीर पर तेज सुशोभित है, मानो पर्वतों का दूसरा राजा सुमेरु हो। हनुमान ने बार-बार सिंहनाद करके कहा - मैं इस खारे समुद्र को खेल में ही लाँघ सकता हूँ।

सहित सहाय रावनहि मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी॥
जामवंत मैं पूँछउँ तोही। उचित सिखावनु दीजहु मोही॥

और सहायकों सहित रावण को मारकर त्रिकूट पर्वत को उखाड़कर यहाँ ला सकता हूँ। हे जाम्बवान! मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम मुझे उचित सीख देना (कि मुझे क्या करना चाहिए)।

एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥
तब निज भुज बल राजिवनैना। कौतुक लागि संग कपि सेना॥

(जाम्बवान ने कहा -) हे तात! तुम जाकर इतना ही करो कि सीता को देखकर लौट आओ और उनकी खबर कह दो। फिर कमलनयन राम अपने बाहुबल से (ही राक्षसों का संहार कर सीता को ले आएँगे, केवल) खेल के लिए ही वे वानरों की सेना साथ लेंगे।

छं० - कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं।
त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

वानरों की सेना साथ लेकर राक्षसों का संहार करके राम सीता को ले आएँगे। तब देवता

और नारदादि मुनि भगवान के तीनों लोकों को पवित्र करने वाले सुंदर यश का बखान करेंगे, जिसे सुनने, गाने, कहने और समझने से मनुष्य परमपद पाते हैं और जिसे रघुवीर के चरण कमल का मधुकर (भ्रमर) तुलसीदास गाता है।

दो॰ - भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥ 30 (क)॥

रघुवीर का यश भव (जन्म-मरण) रूपी रोग की (अचूक) दवा है। जो पुरुष और स्त्री इसे सुनेंगे, त्रिशिरा के शत्रु राम उनके सब मनोरथों को सिद्ध करेंगे॥ 30(क)॥

सो॰ - नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिअ तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ खग बधिक॥ 30(ख)॥

जिनका नीले कमल के समान श्याम शरीर है, जिनकी शोभा करोड़ों कामदेवों से भी अधिक है और जिनका नाम पापरूपी पक्षियों को मारने के लिए बधिक (व्याध) के समान है, उन राम के गुणों के समूह (लीला) को अवश्य सुनना चाहिए॥ 30(ख)॥

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने चतुर्थ: सोपान: समाप्त:।

कलियुग के संपूर्ण पापों को विध्वंस करने वाले श्री रामचरितमानस का यह चौथा सोपान समाप्त हुआ।

(किष्किंधाकांड समाप्त)

अध्याय -५ सुन्दरकाण्ड [821-887]

भगवान शंकर जी के मन द्वारा रचित श्रीराम जी के परमपवित्र चरित्र

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशंभुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदांतवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम्॥ 1॥

शांत, सनातन, अप्रमेय (प्रमाणों से परे), निष्पाप, मोक्षरूप परमशांति देनेवाले, ब्रह्मा, शंभु और शेष से निरंतर सेवित, वेदांत के द्वारा जानने योग्य, सर्वव्यापक, देवताओं में सबसे बड़े, माया से मनुष्य रूप में दिखनेवाले, समस्त पापों को हरनेवाले, करुणा की खान, रघुकुल में श्रेष्ठ तथा राजाओं के शिरोमणि, राम कहलानेवाले जगदीश्वर की मैं वंदना करता हूँ॥ 1॥

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च॥ 2॥

हे रघुनाथ! मैं सत्य कहता हूँ और फिर आप सबके अंतरात्मा ही हैं (सब जानते ही हैं) कि मेरे हृदय में दूसरी कोई इच्छा नहीं है। हे रघुकुलश्रेष्ठ! मुझे अपनी निर्भरा (पूर्ण) भक्ति दीजिए और मेरे मन को काम आदि दोषों से रहित कीजिए॥ 2॥

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥ 3॥

अतुल बल के धाम, सोने के पर्वत (सुमेरु) के समान कांतियुक्त शरीरवाले, दैत्यरूपी वन (को ध्वंस करने) के लिए अग्नि रूप, ज्ञानियों में अग्रगण्य, संपूर्ण गुणों के निधान, वानरों के स्वामी, रघुनाथ के प्रिय भक्त पवनपुत्र हनुमान को मैं प्रणाम करता हूँ॥ 3॥

जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥

तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई॥

जाम्बवान के सुंदर वचन हनुमान के हृदय को बहुत ही भाए। (वे बोले -) हे भाई! तुम लोग दुःख सहकर, कंद-मूल-फल खाकर तब तक मेरी राह देखना -

जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी॥
यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा । चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥

जब तक मैं सीता को देखकर (लौट) न आऊँ। काम अवश्य होगा, क्योंकि मुझे बहुत ही हर्ष हो रहा है। यह कहकर और सबको मस्तक नवाकर तथा हृदय में रघुनाथ को धारण करके हनुमान हर्षित होकर चले।

सिंधु तीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर॥
बार-बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी॥

समुद्र के तीर पर एक सुंदर पर्वत था। हनुमान खेल से ही (अनायास ही) कूदकर उसके ऊपर जा चढ़े और बार-बार रघुवीर का स्मरण करके अत्यंत बलवान हनुमान उस पर से बड़े वेग से उछले।

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना॥

जिस पर्वत पर हनुमान पैर रखकर चले (जिस पर से वे उछले), वह तुरंत ही पाताल में धँस गया। जैसे रघुनाथ का अमोघ बाण चलता है, उसी तरह हनुमान चले।

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रम हारी॥

समुद्र ने उन्हें रघुनाथ का दूत समझकर मैनाक पर्वत से कहा कि हे मैनाक! तू इनकी थकावट दूर करनेवाला है (अर्थात अपने ऊपर इन्हें विश्राम दे)।

दो० - हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥ 1॥

हनुमान ने उसे हाथ से छू दिया, फिर प्रणाम करके कहा - भाई! राम का काम किए बिना

मुझे विश्राम कहाँ?॥ 1॥

जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता॥

देवताओं ने पवनपुत्र हनुमान को जाते हुए देखा। उनकी विशेष बल-बुद्धि को जानने के लिए उन्होंने सुरसा नामक सर्पों की माता को भेजा, उसने आकर हनुमान से यह बात कही -

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा॥
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥

आज देवताओं ने मुझे भोजन दिया है। यह वचन सुनकर पवनकुमार हनुमान ने कहा - राम का कार्य करके मैं लौट आऊँ और सीता की खबर प्रभु को सुना दूँ,

तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥
कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥

तब मैं आकर तुम्हारे मुँह में घुस जाऊँगा (तुम मुझे खा लेना)। हे माता! मैं सत्य कहता हूँ, अभी मुझे जाने दे। जब किसी भी उपाय से उसने जाने नहीं दिया, तब हनुमान ने कहा - तो फिर मुझे खा न ले।

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥

उसने योजनभर (चार कोस में) मुँह फैलाया। तब हनुमान ने अपने शरीर को उससे दूना बढ़ा लिया। उसने सोलह योजन का मुख किया। हनुमान तुरंत ही बत्तीस योजन के हो गए।

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा॥
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥

जैसे-जैसे सुरसा मुख का विस्तार बढ़ाती थी, हनुमान उसका दूना रूप दिखलाते थे। उसने सौ योजन (चार सौ कोस का) मुख किया। तब हनुमान ने बहुत ही छोटा रूप धारण कर

लिया।

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। मागा बिदा ताहि सिरु नावा॥
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥

और उसके मुख में घुसकर (तुरंत) फिर बाहर निकल आए और उसे सिर नवाकर विदा माँगने लगे। (उसने कहा -) मैंने तुम्हारे बुद्धि-बल का भेद पा लिया, जिसके लिए देवताओं ने मुझे भेजा था।

दो० - राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥ 2॥

तुम राम का सब कार्य करोगे, क्योंकि तुम बल-बुद्धि के भंडार हो। यह आशीर्वाद देकर वह चली गई, तब हनुमान हर्षित होकर चले॥ 2॥

निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभु के खग गहई॥
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं॥

समुद्र में एक राक्षसी रहती थी। वह माया करके आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को पकड़ लेती थी। आकाश में जो जीव-जंतु उड़ा करते थे, वह जल में उनकी परछाईं देखकर,

गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा॥

उस परछाईं को पकड़ लेती थी, जिससे वे उड़ नहीं सकते थे (और जल में गिर पड़ते थे) इस प्रकार वह सदा आकाश में उड़नेवाले जीवों को खाया करती थी। उसने वही छल हनुमान से भी किया। हनुमान ने तुरंत ही उसका कपट पहचान लिया।

ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥

पवनपुत्र धीरबुद्धि वीर हनुमान उसको मारकर समुद्र के पार गए। वहाँ जाकर उन्होंने वन की शोभा देखी। मधु (पुष्प रस) के लोभ से भौंरे गुंजार कर रहे थे।

नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए॥

सैल बिसाल देखि एक आगें। ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें॥

अनेकों प्रकार के वृक्ष फल-फूल से शोभित हैं। पक्षी और पशुओं के समूह को देखकर तो वे मन में (बहुत ही) प्रसन्न हुए। सामने एक विशाल पर्वत देखकर हनुमान भय त्यागकर उस पर दौड़कर जा चढ़े।

उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी॥

(शिव कहते हैं -) हे उमा! इसमें वानर हनुमान की कुछ बड़ाई नहीं है। यह प्रभु का प्रताप है, जो काल को भी खा जाता है। पर्वत पर चढ़कर उन्होंने लंका देखी। बहुत ही बड़ा किला है, कुछ कहा नहीं जाता।

अति उतंग जलनिधि चहु पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा॥

वह अत्यंत ऊँचा है, उसके चारों ओर समुद्र है। सोने के परकोटे (चारदीवारी) का परम प्रकाश हो रहा है।

छं० - कनक कोटि बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै॥

विचित्र मणियों से जड़ा हुआ सोने का परकोटा है, उसके अंदर बहुत-से सुंदर-सुंदर घर हैं। चौराहे, बाजार, सुंदर मार्ग और गलियाँ हैं; सुंदर नगर बहुत प्रकार से सजा हुआ है। हाथी, घोड़े, खच्चरों के समूह तथा पैदल और रथों के समूहों को कौन गिन सकता है! अनेक रूपों के राक्षसों के दल हैं, उनकी अत्यंत बलवती सेना वर्णन करते नहीं बनती।

बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं॥

वन, बाग, उपवन (बगीचे), फुलवाड़ी, तालाब, कुएँ और बावलियाँ सुशोभित हैं। मनुष्य, नाग,

देवताओं और गंधर्वों की कन्याएँ अपने सौंदर्य से मुनियों के भी मन को मोहे लेती हैं। कहीं पर्वत के समान विशाल शरीरवाले बड़े ही बलवान मल्ल (पहलवान) गरज रहे हैं। वे अनेकों अखाड़ों में बहुत प्रकार से भिड़ते और एक-दूसरे को ललकारते हैं।

करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही॥

भयंकर शरीरवाले करोड़ों योद्धा यत्न करके (बड़ी सावधानी से) नगर की चारों दिशाओं में (सब ओर से) रखवाली करते हैं। कहीं दुष्ट राक्षस भैंसों, मनुष्यों, गायों, गदहों और बकरों को खा रहे हैं। तुलसीदास ने इनकी कथा इसीलिए कुछ थोड़ी-सी कही है कि ये निश्चय ही राम के बाणरूपी तीर्थ में शरीरों को त्यागकर परमगति पाएँगे।

दो० - पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरों निसि नगर करौं पइसार॥ 3॥

नगर के बहुसंख्यक रखवालों को देखकर हनुमान ने मन में विचार किया कि अत्यंत छोटा रूप धरूँ और रात के समय नगर में प्रवेश करूँ॥ 3॥

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी॥

हनुमान मच्छर के समान (छोटा-सा) रूप धारण कर नर रूप से लीला करनेवाले भगवान राम का स्मरण करके लंका को चले। (लंका के द्वार पर) लंकिनी नाम की एक राक्षसी रहती थी। वह बोली - मेरा निरादर करके (बिना मुझसे पूछे) कहाँ चला जा रहा है?

जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥

हे मूर्ख! तूने मेरा भेद नहीं जाना? जहाँ तक (जितने) चोर हैं, वे सब मेरे आहार हैं। महाकपि हनुमान ने उसे एक घूँसा मारा, जिससे वह खून की उल्टी करती हुई पृथ्वी पर लुढ़क पड़ी।

पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंच कहा मोहि चीन्हा॥

वह लंकिनी फिर अपने को सँभालकर उठी और डर के मारे हाथ जोड़कर विनती करने लगी। (वह बोली -) रावण को जब ब्रह्मा ने वर दिया था, तब चलते समय उन्होंने मुझे राक्षसों के विनाश की यह पहचान बता दी थी कि -

बिकल होसि तैं कपि कें मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे॥
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥

जब तू बंदर के मारने से व्याकुल हो जाए, तब तू राक्षसों का संहार हुआ जान लेना। हे तात! मेरे बड़े पुण्य हैं, जो मैं राम के दूत (आप) को नेत्रों से देख पाई।

दो० - तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥ 4॥

हे तात! स्वर्ग और मोक्ष के सब सुखों को तराजू के एक पलड़े में रखा जाए, तो भी वे सब मिलकर (दूसरे पलड़े पर रखे हुए) उस सुख के बराबर नहीं हो सकते, जो क्षण मात्र के सत्संग से होता है॥ 4॥

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥

अयोध्यापुरी के राजा रघुनाथ को हृदय में रखे हुए नगर में प्रवेश करके सब काम कीजिए। उसके लिए विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्रता करने लगते हैं, समुद्र गाय के खुर के बराबर हो जाता है, अग्नि में शीतलता आ जाती है।

गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥

और हे गरुड़! सुमेरु पर्वत उसके लिए रज के समान हो जाता है, जिसे राम ने एक बार कृपा करके देख लिया। तब हनुमान ने बहुत ही छोटा रूप धारण किया और भगवान का स्मरण करके नगर में प्रवेश किया।

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥

गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं॥

उन्होंने एक-एक (प्रत्येक) महल की खोज की। जहाँ-तहाँ असंख्य योद्धा देखे। फिर वे रावण के महल में गए। वह अत्यंत विचित्र था, जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

सयन किएँ देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीखि बैदेही॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥

हनुमान ने उस (रावण) को सोया हुआ देखा; परंतु महल में जानकी नहीं दिखाई दीं। फिर एक सुंदर महल दिखाई दिया। वहाँ (उसमें) भगवान का एक अलग मंदिर बना हुआ था।

दो॰ - रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराई॥ 5॥

वह महल राम के आयुध (धनुष-बाण) के चिह्नों से अंकित था, उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। वहाँ नवीन-नवीन तुलसी के वृक्ष-समूहों को देखकर कपिराज हनुमान हर्षित हुए॥ 5॥

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥
मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा॥

लंका तो राक्षसों के समूह का निवास स्थान है। यहाँ सज्जन (साधु पुरुष) का निवास कहाँ? हनुमान मन में इस प्रकार तर्क करने लगे। उसी समय विभीषण जागे।

राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सन सठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥

उन्होंने (विभीषण ने) राम नाम का स्मरण (उच्चारण) किया। हनुमान ने उन्हें सज्जन जाना और हृदय से हर्षित हुए। (हनुमान ने विचार किया कि) इनसे हठ करके (अपनी ओर से ही) परिचय करूँगा, क्योंकि साधु से कार्य की हानि नहीं होती (प्रत्युत लाभ ही होता है)।

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहँ आए॥
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥

ब्राह्मण का रूप धरकर हनुमान ने उन्हें वचन सुनाए (पुकारा)। सुनते ही विभीषण उठकर वहाँ आए। प्रणाम करके कुशल पूछी (और कहा कि) हे ब्राह्मणदेव! अपनी कथा समझाकर कहिए।

की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी॥

क्या आप हरिभक्तों में से कोई हैं? क्योंकि आपको देखकर मेरे हृदय में अत्यंत प्रेम उमड़ रहा है। अथवा क्या आप दीनों से प्रेम करनेवाले स्वयं राम ही हैं, जो मुझे बड़भागी बनाने (घर-बैठे दर्शन देकर कृतार्थ करने) आए हैं?

दो० - तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥ 6॥

तब हनुमान ने राम की सारी कथा कहकर अपना नाम बताया। सुनते ही दोनों के शरीर पुलकित हो गए और राम के गुणसमूहों का स्मरण करके दोनों के मन (प्रेम और आनंद में) मग्न हो गए॥ 6॥

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥

(विभीषण ने कहा -) हे पवनपुत्र! मेरी रहनी सुनो। मैं यहाँ वैसे ही रहता हूँ जैसे दाँतों के बीच में बेचारी जीभ। हे तात! मुझे अनाथ जानकर सूर्यकुल के नाथ राम क्या कभी मुझ पर कृपा करेंगे?

तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीत न पद सरोज मन माहीं॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥

मेरा तामसी (राक्षस) शरीर होने से साधन तो कुछ बनता नहीं और न मन में राम के चरणकमलों में प्रेम ही है। परंतु हे हनुमान! अब मुझे विश्वास हो गया कि राम की मुझ पर कृपा है; क्योंकि हरि की कृपा के बिना संत नहीं मिलते।

जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा॥
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीति॥

जब रघुवीर ने कृपा की है, तभी तो आपने मुझे हठ करके (अपनी ओर से) दर्शन दिए हैं। (हनुमान ने कहा -) हे विभीषण! सुनिए, प्रभु की यही रीति है कि वे सेवक पर सदा ही प्रेम किया करते हैं।

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥

भला कहिए, मैं ही कौन बड़ा कुलीन हूँ? (जाति का) चंचल वानर हूँ और सब प्रकार से नीच हूँ। प्रातःकाल जो हम लोगों (बंदरों) का नाम ले ले तो उस दिन उसे भोजन न मिले।

दो० - अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥ 7॥

हे सखा! सुनिए, मैं ऐसा अधम हूँ; पर राम ने तो मुझ पर भी कृपा ही की है। भगवान के गुणों का स्मरण करके हनुमान के दोनों नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया॥ 7॥

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा॥

जो जानते हुए भी ऐसे स्वामी (रघुनाथ) को भुलाकर (विषयों के पीछे) भटकते फिरते हैं, वे दुःखी क्यों न हों? इस प्रकार राम के गुणसमूहों को कहते हुए उन्होंने अनिर्वचनीय (परम) शांति प्राप्त की।

पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही॥
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउँ जानकी माता॥

फिर विभीषण ने, जानकी जिस प्रकार वहाँ (लंका में) रहती थीं, वह सब कथा कही। तब हनुमान ने कहा - हे भाई! सुनो, मैं जानकी माता को देखता चाहता हूँ।

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ॥

विभीषण ने (माता के दर्शन की) सब युक्तियाँ (उपाय) कह सुनाईं।
तब हनुमान विदा लेकर चले। फिर वही (पहले का मसक-सरीखा)

रूप धरकर वहाँ गए, जहाँ अशोक वन में (वन के जिस भाग में) सीता रहती थीं।

देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति जात निसि जामा॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी॥

सीता को देखकर हनुमान ने उन्हें मन ही में प्रणाम किया। उन्हें बैठे-ही-बैठे रात्रि के चारों पहर बीत जाते हैं। शरीर दुबला हो गया है, सिर पर जटाओं की एक वेणी (लट) है। हृदय में रघुनाथ के गुणसमूहों का जाप (स्मरण) करती रहती हैं।

दो० - निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन॥ 8॥

जानकी नेत्रों को अपने चरणों में लगाए हुए हैं (नीचे की ओर देख रही हैं) और मन राम के चरण कमलों में लीन है। जानकी को दीन (दुःखी) देखकर पवनपुत्र हनुमान बहुत ही दुःखी हुए॥ 8॥

तरु पल्लव महँ रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई॥
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किएँ बनावा॥

हनुमान वृक्ष के पत्तों में छिपे रहे और विचार करने लगे कि हे भाई! क्या करूँ (इनका दुःख कैसे दूर करूँ)? उसी समय बहुत-सी स्त्रियों को साथ लिए सज-धजकर रावण वहाँ आया।

बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा॥
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी॥

उस दुष्ट ने सीता को बहुत प्रकार से समझाया। साम, दान, भय और भेद दिखलाया। रावण ने कहा - हे सुमुखि! हे सयानी! सुनो! मंदोदरी आदि सब रानियों को -

तव अनुचरीं करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥
तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥

मैं तुम्हारी दासी बना दूँगा, यह मेरा प्रण है। तुम एक बार मेरी ओर देखो तो सही! अपने परम स्नेही कोसलाधीश राम का स्मरण करके जानकी तिनके की आड़ (परदा) करके कहने लगीं -

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा॥
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की॥

हे दशमुख! सुन, जुगनू के प्रकाश से कभी कमलिनी खिल सकती है? जानकी फिर कहती हैं - तू (अपने लिए भी) ऐसा ही मन में समझ ले। रे दुष्ट! तुझे रघुवीर के बाण की खबर नहीं है।

सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

रे पापी! तू मुझे सूने में हर लाया है। रे अधम! निर्लज्ज! तुझे लज्जा नहीं आती?

दो॰ - आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन॥ 9॥

अपने को जुगनू के समान और राम को सूर्य के समान सुनकर और सीता के कठोर वचनों को सुनकर रावण तलवार निकालकर बड़े गुस्से में आकर बोला - ॥ 9॥

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी॥

सीता! तूने मेरा अपमान किया है। मैं तेरा सिर इस कठोर कृपाण से काट डालूँगा। नहीं तो (अब भी) जल्दी मेरी बात मान ले। हे सुमुखि! नहीं तो जीवन से हाथ धोना पड़ेगा।

स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा॥

(सीता ने कहा -) हे दशग्रीव! प्रभु की भुजा जो श्याम कमल की माला के समान सुंदर और हाथी की सूँड़ के समान (पुष्ट तथा

विशाल) है, या तो वह भुजा ही मेरे कंठ में पड़ेगी या तेरी भयानक तलवार ही। रे शठ! सुन, यही मेरा सच्चा प्रण है।

चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं॥
सीतल निसित बहसि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥

सीता कहती हैं - हे चंद्रहास (तलवार)! रघुनाथ के विरह की अग्नि से उत्पन्न मेरी बड़ी भारी जलन को तू हर ले। हे तलवार! तू शीतल, तीव्र और श्रेष्ठ धारा बहाती है (अर्थात तेरी धारा ठंडी और तेज है), तू मेरे दुःख के बोझ को हर ले।

सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनयाँ कहि नीति बुझावा॥
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई॥

सीता के ये वचन सुनते ही वह मारने दौड़ा। तब मय दानव की पुत्री मंदोदरी ने नीति कहकर उसे समझाया। तब रावण ने सब दासियों को बुलाकर कहा कि जाकर सीता को बहुत प्रकार से भय दिखलाओ।

मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना॥

यदि महीने भर में यह कहा न माने तो मैं इसे तलवार निकालकर मार डालूँगा।

दो॰ - भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद।
सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद॥ 10॥

(यों कहकर) रावण घर चला गया। यहाँ राक्षसियों के समूह बहुत-से बुरे रूप धरकर सीता को भय दिखलाने लगे॥ 10॥

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका॥
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना॥

उनमें एक त्रिजटा नाम की राक्षसी थी। उसकी राम के चरणों में प्रीति थी और वह विवेक (ज्ञान) में निपुण थी। उसने सबों को

बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया और कहा - सीता की सेवा करके
अपना कल्याण कर लो।

सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥

स्वप्न में (मैंने देखा कि) एक बंदर ने लंका जला दी। राक्षसों की
सारी सेना मार डाली गई। रावण नंगा है और गदहे पर सवार है।
उसके सिर मुँड़े हुए हैं, बीसों भुजाएँ कटी हुई हैं।

एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥

इस प्रकार से वह दक्षिण (यमपुरी की) दिशा को जा रहा है और
मानो लंका विभीषण ने पाई है। नगर में राम की दुहाई फिर गई।
तब प्रभु ने सीता को बुला भेजा।

यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी॥
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं॥

मैं पुकारकर (निश्चय के साथ) कहती हूँ कि यह स्वप्न चार (कुछ
ही) दिनों बाद सत्य होकर रहेगा। उसके वचन सुनकर वे सब
राक्षसियाँ डर गईं और जानकी के चरणों पर गिर पड़ीं।

दो० - जहँ तहँ गईं सकल तब सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर पोच॥ 11॥

तब (इसके बाद) वे सब जहाँ-तहाँ चली गईं। सीता मन में सोच करने लगीं कि एक
महीना बीत जाने पर नीच राक्षस रावण मुझे मारेगा॥ 11॥

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी॥
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई॥

सीता हाथ जोड़कर त्रिजटा से बोलीं - हे माता! तू मेरी विपत्ति की संगिनी है। जल्दी कोई

ऐसा उपाय कर जिससे मैं शरीर छोड़ सकूँ। विरह असहृय हो चला है, अब यह सहा नहीं जाता।

आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी॥

काठ लाकर चिता बनाकर सजा दे। हे माता! फिर उसमें आग लगा दे। हे सयानी! तू मेरी प्रीति को सत्य कर दे। रावण की शूल के समान दुःख देनेवाली वाणी कानों से कौन सुने?

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि॥
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी॥

सीता के वचन सुनकर त्रिजटा ने चरण पकड़कर उन्हें समझाया और प्रभु का प्रताप, बल और सुयश सुनाया। (उसने कहा -) हे सुकुमारी! सुनो, रात्रि के समय आग नहीं मिलेगी। ऐसा कहकर वह अपने घर चली गई।

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला॥
देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥

सीता (मन-ही-मन) कहने लगीं - (क्या करूँ) विधाता ही विपरीत हो गया। न आग मिलेगी, न पीड़ा मिटेगी। आकाश में अंगारे प्रकट दिखाई दे रहे हैं, पर पृथ्वी पर एक भी तारा नहीं आता।

पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥

चंद्रमा अग्निमय है, किंतु वह भी मानो मुझे हतभागिनी जानकर आग नहीं बरसाता। हे अशोक वृक्ष! मेरी विनती सुन! मेरा शोक हर ले और अपना (अशोक) नाम सत्य कर।

नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता॥

तेरे नए-नए कोमल पत्ते अग्नि के समान हैं। अग्नि दे, विरह-रोग का अंत मत कर (अर्थात विरह-रोग को बढ़ाकर सीमा तक न पहुँचा)। सीता को विरह से परम व्याकुल देखकर वह क्षण हनुमान को कल्प के समान बीता।

दो० - कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥ 12॥

तब हनुमान ने हदय में विचार कर (सीता के सामने) अँगूठी डाल दी, मानो अशोक ने अंगारा दे दिया। (यह समझकर) सीता ने हर्षित होकर उठकर उसे हाथ में ले लिया॥ 12॥

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी॥

तब उन्होंने राम-नाम से अंकित अत्यंत सुंदर एवं मनोहर अँगूठी देखी। अँगूठी को पहचानकर सीता आश्चर्यचकित होकर उसे देखने लगीं और हर्ष तथा विषाद से हृदय में अकुला उठीं।

जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई॥
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥

(वे सोचने लगीं -) रघुनाथ तो सर्वथा अजेय हैं, उन्हें कौन जीत सकता है? और माया से ऐसी (माया के उपादान से सर्वथा रहित दिव्य, चिन्मय) अँगूठी बनाई नहीं जा सकती। सीता मन में अनेक प्रकार के विचार कर रही थीं। इसी समय हनुमान मधुर वचन बोले -

रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई॥

वे रामचंद्र के गुणों का वर्णन करने लगे, (जिनके) सुनते ही सीता का दुःख भाग गया। वे कान और मन लगाकर उन्हें सुनने लगीं। हनुमान ने आदि से लेकर अब तक की सारी कथा कह सुनाई।

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई॥
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिरि बैठीं मन बिसमय भयऊ॥

(सीता बोलीं -) जिसने कानों के लिए अमृत रूप यह सुंदर कथा कही, वह हे भाई! प्रकट क्यों नहीं होता? तब हनुमान पास चले गए। उन्हें देखकर सीता फिरकर (मुख फेरकर) बैठ गईं; उनके मन में आश्चर्य हुआ।

राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की॥

यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥

(हनुमान ने कहा -) हे माता जानकी मैं राम का दूत हूँ। करुणानिधान की सच्ची शपथ करता हूँ। हे माता! यह अँगूठी मैं ही लाया हूँ। राम ने मुझे आपके लिए यह सहिदानी (निशानी या पहचान) दी है।

नर बानरहि संग कहु कैसें। कही कथा भइ संगति जैसें॥

(सीता ने पूछा -) नर और वानर का संग कहो कैसे हुआ? तब हनुमान ने जैसे संग हुआ था, वह सब कथा कही।

दो॰ - कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास॥ 13॥

हनुमान के प्रेमयुक्त वचन सुनकर सीता के मन में विश्वास उत्पन्न हो गया। उन्होंने जान लिया कि यह मन, वचन और कर्म से कृपासागर रघुनाथ का दास है॥ 13॥

हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी॥
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहुँ जलजाना॥

भगवान का जन (सेवक) जानकर अत्यंत गाढ़ी प्रीति हो गई। नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया और शरीर अत्यंत पुलकित हो गया (सीता ने कहा -) हे तात हनुमान! विरहसागर में डूबती हुई मेरे लिए तुम जहाज हुए।

अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी॥
कोमलचित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥

मैं बलिहारी जाती हूँ, अब छोटे भाई लक्ष्मण सहित खर के शत्रु सुखधाम प्रभु का कुशल-मंगल कहो। रघुनाथ तो कोमल हृदय और कृपालु हैं। फिर हे हनुमान! उन्होंने किस कारण यह निष्ठुरता धारण कर ली है?

सहज बानि सेवक सुखदायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता॥

सेवक को सुख देना उनकी स्वाभाविक बान है। वे रघुनाथ क्या कभी मेरी भी याद करते

हैं? हे तात! क्या कभी उनके कोमल साँवले अंगों को देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे?

बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता॥

(मुँह से) वचन नहीं निकलता, नेत्रों में (विरह के आँसुओं का) जल भर आया। (बड़े दुःख से वे बोलीं -) हा नाथ! आपने मुझे बिलकुल ही भुला दिया! सीता को विरह से परम व्याकुल देखकर हनुमान कोमल और विनीत वचन बोले -

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपा निकेता॥
जनि जननी मानह जियँ ऊना। तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना॥

हे माता! सुंदर कृपा के धाम प्रभु भाई लक्ष्मण सहित (शरीर से) कुशल हैं, परंतु आपके दुःख से दुःखी हैं। हे माता! मन में ग्लानि न मानिए (मन छोटा करके दुःख न कीजिए)। राम के हृदय में आपसे दूना प्रेम है।

दो॰ - रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर॥ 14॥

हे माता! अब धीरज धरकर रघुनाथ का संदेश सुनिए। ऐसा कहकर हनुमान प्रेम से गद्‌गद हो गए। उनके नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया॥ 14॥

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू॥

(हनुमान बोले -) राम ने कहा है कि हे सीते! तुम्हारे वियोग में मेरे लिए सभी पदार्थ प्रतिकूल हो गए हैं। वृक्षों के नए-नए कोमल पत्ते मानो अग्नि के समान, रात्रि कालरात्रि के समान, चंद्रमा सूर्य के समान।

कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥

और कमलों के वन भालों के वन के समान हो गए हैं। मेघ मानो खौलता हुआ तेल बरसाते हैं। जो हित करनेवाले थे, वे ही अब पीड़ा देने लगे हैं। त्रिविध (शीतल, मंद, सुगंध) वायु साँप के श्वास के समान (जहरीली और गरम) हो गई है।

कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥

मन का दुःख कह डालने से भी कुछ घट जाता है। पर कहूँ किससे? यह दुःख कोई जानता नहीं। हे प्रिये! मेरे और तेरे प्रेम का तत्व (रहस्य) एक मेरा मन ही जानता है।

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥

और वह मन सदा तेरे ही पास रहता है। बस, मेरे प्रेम का सार इतने में ही समझ ले। प्रभु का संदेश सुनते ही जानकी प्रेम में मग्न हो गईं। उन्हें शरीर की सुध न रही।

कह कपि हृदयँ धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥

हनुमान ने कहा - हे माता! हृदय में धैर्य धारण करो और सेवकों को सुख देनेवाले राम का स्मरण करो। रघुनाथ की प्रभुता को हृदय में लाओ और मेरे वचन सुनकर कायरता छोड़ दो।

दो० - निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु॥ 15॥

राक्षसों के समूह पतंगों के समान और रघुनाथ के बाण अग्नि के समान हैं। हे माता! हृदय में धैर्य धारण करो और राक्षसों को जला ही समझो॥ 15॥

जौं रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई॥
राम बान रबि उएँ जानकी। तम बरुथ कहँ जातुधान की॥

राम ने यदि खबर पाई होती तो वे विलंब न करते। हे जानकी! रामबाणरूपी सूर्य के उदय होने पर राक्षसों की सेनारूपी अंधकार कहाँ रह सकता है?

अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई। प्रभु आयुस नहिं राम दोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा॥

हे माता! मैं आपको अभी यहाँ से लिवा जाऊँ; पर राम की शपथ है, मुझे प्रभु (उन) की

आज्ञा नहीं है। (अतः) हे माता! कुछ दिन और धीरज धरो। राम वानरों सहित यहाँ आएँगे

निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं॥
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना॥

और राक्षसों को मारकर आपको ले जाएँगे। नारद आदि (ऋषि-मुनि) तीनों लोकों में उनका यश गाएँगे। (सीता ने कहा -) हे पुत्र! सब वानर तुम्हारे ही समान (नन्हे-नन्हे-से) होंगे, राक्षस तो बड़े बलवान, योद्धा हैं।

मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥

अतः मेरे हृदय में बड़ा भारी संदेह होता है (कि तुम-जैसे बंदर राक्षसों को कैसे जीतेंगे)! यह सुनकर हनुमान ने अपना शरीर प्रकट किया। सोने के पर्वत (सुमेरु) के आकार का (अत्यंत विशाल) शरीर था, जो युद्ध में शत्रुओं के हृदय में भय उत्पन्न करनेवाला, अत्यंत बलवान और वीर था।

सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ॥

तब (उसे देखकर) सीता के मन में विश्वास हुआ। हनुमान ने फिर छोटा रूप धारण कर लिया।

दो० - सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल॥ 16॥

हे माता! सुनो, वानरों में बहुत बल-बुद्धि नहीं होती। परंतु प्रभु के प्रताप से बहुत छोटा सर्प भी गरुड़ को खा सकता है (अत्यंत निर्बल भी महान बलवान को मार सकता है)॥ 16॥

मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी॥
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥

भक्ति, प्रताप, तेज और बल से सनी हुई हनुमान की वाणी सुनकर सीता के मन में संतोष हुआ। उन्होंने राम के प्रिय जानकर हनुमान को आशीर्वाद दिया कि हे तात! तुम बल और शील के निधान होओ।

अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

हे पुत्र! तुम अजर (बुढ़ापे से रहित), अमर और गुणों के खजाने होओ। रघुनाथ तुम पर बहुत कृपा करें। 'प्रभु कृपा करें' ऐसा कानों से सुनते ही हनुमान पूर्ण प्रेम में मग्न हो गए।

बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा॥
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥

हनुमान ने बार-बार सीता के चरणों में सिर नवाया और फिर हाथ जोड़कर कहा - हे माता! अब मैं कृतार्थ हो गया। आपका आशीर्वाद अमोघ (अचूक) है, यह बात प्रसिद्ध है।

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा॥
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी॥

हे माता! सुनो, सुंदर फलवाले वृक्षों को देखकर मुझे बड़ी ही भूख लग आई है। (सीता ने कहा -) हे बेटा! सुनो, बड़े भारी योद्धा राक्षस इस वन की रखवाली करते हैं।

तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं।
जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं॥

(हनुमान ने कहा -) हे माता! यदि आप मन में सुख मानें (प्रसन्न होकर) आज्ञा दें) तो मुझे उनका भय तो बिलकुल नहीं है।

दो० - देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु॥ 17॥

हनुमान को बुद्धि और बल में निपुण देखकर जानकी ने कहा - जाओ। हे तात! रघुनाथ के चरणों को हृदय में धारण करके मीठे फल खाओ॥ 17॥

चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरैं लागा॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे॥

वे सीता को सिर नवाकर चले और बाग में घुस गए। फल खाए और वृक्षों को तोड़ने लगे। वहाँ बहुत-से योद्धा रखवाले थे। उनमें से कुछ को मार डाला और कुछ ने जाकर

रावण से पुकार की -

नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी॥
खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥

(और कहा -) हे नाथ! एक बड़ा भारी बंदर आया है। उसने अशोक वाटिका उजाड़ डाली। फल खाए, वृक्षों को उखाड़ डाला और रखवालों को मसल-मसलकर जमीन पर डाल दिया।

सुनि रावन पठए भट नाना। तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना॥
सब रजनीचर कपि संघारे। गए पुकारत कछु अधमारे॥

यह सुनकर रावण ने बहुत-से योद्धा भेजे। उन्हें देखकर हनुमान ने गर्जना की। हनुमान ने सब राक्षसों को मार डाला, कुछ जो अधमरे थे, चिल्लाते हुए गए।

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥

फिर रावण ने अक्षय कुमार को भेजा। वह असंख्य श्रेष्ठ योद्धाओं को साथ लेकर चला। उसे आते देखकर हनुमान ने एक वृक्ष (हाथ में) लेकर ललकारा और उसे मारकर महाध्वनि (बड़े जोर) से गर्जना की।

दो॰ - कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि॥ 18॥

उन्होंने सेना में से कुछ को मार डाला और कुछ को मसल डाला और कुछ को पकड़-पकड़कर धूल में मिला दिया। कुछ ने फिर जाकर पुकार की कि हे प्रभु! बंदर बहुत ही बलवान है॥ 18॥

सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना॥
मारसि जनि सुत बाँधेसु ताही। देखिअ कपिहि कहाँ कर आही॥

पुत्र का वध सुनकर रावण क्रोधित हो उठा और उसने (अपने जेठे पुत्र) बलवान मेघनाद को भेजा। (उससे कहा कि -) हे पुत्र! मारना नहीं; उसे बाँध लाना। उस बंदर को देखा जाए कि कहाँ का है।

चला इंद्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा॥
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥

इंद्र को जीतनेवाला अतुलनीय योद्धा मेघनाद चला। भाई का मारा जाना सुन उसे क्रोध हो आया। हनुमान ने देखा कि अबकी भयानक योद्धा आया है। तब वे कटकटाकर गरजे और दौड़े।

अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा॥
रहे महाभट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्दई निज अंगा॥

उन्होंने एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया और (उसके प्रहार से) लंकेश्वर रावण के पुत्र मेघनाद को बिना रथ का कर दिया (रथ को तोड़कर उसे नीचे पटक दिया)। उसके साथ जो बड़े-बड़े योद्धा थे, उनको पकड़-पकड़कर हनुमान अपने शरीर से मसलने लगे।

तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई॥

उन सबको मारकर फिर मेघनाद से लड़ने लगे। (लड़ते हुए वे ऐसे मालूम होते थे) मानो दो गजराज (श्रेष्ठ हाथी) भिड़ गए हों। हनुमान उसे एक घूँसा मारकर वृक्ष पर जा चढ़े। उसको क्षणभर के लिए मूर्च्छा आ गई।

उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया॥

फिर उठकर उसने बहुत माया रची; परंतु पवन के पुत्र उससे जीते नहीं जाते।

दो० - ब्रह्म अस्त्र तेहि साँधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार॥ 19॥

अंत में उसने ब्रह्मास्त्र का संधान (प्रयोग) किया, तब हनुमान ने मन में विचार किया कि यदि ब्रह्मास्त्र को नहीं मानता हूँ तो उसकी अपार महिमा मिट जाएगी॥ 19॥

ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहिं मारा। परतिहुँ बार कटकु संघारा॥
तेहिं देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ॥

उसने हनुमान को ब्रह्मबाण मारा, (जिसके लगते ही वे वृक्ष से नीचे गिर पड़े) परंतु गिरते

समय भी उन्होंने बहुत-सी सेना मार डाली। जब उसने देखा कि हनुमान मूर्छित हो गए हैं, तब वह उनको नागपाश से बाँधकर ले गया।

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ग्यानी॥
तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा॥

(शिव कहते हैं -) हे भवानी! सुनो, जिनका नाम जपकर ज्ञानी (विवेकी) मनुष्य संसार (जन्म-मरण) के बंधन को काट डालते हैं, उनका दूत कहीं बंधन में आ सकता है? किंतु प्रभु के कार्य के लिए हनुमान ने स्वयं अपने को बँधवा लिया।

कपि बंधन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभाँ सब आए॥
दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥

बंदर का बाँधा जाना सुनकर राक्षस दौड़े और कौतुक के लिए (तमाशा देखने के लिए) सब सभा में आए। हनुमान ने जाकर रावण की सभा देखी। उसकी अत्यंत प्रभुता (ऐश्वर्य) कुछ कही नहीं जाती।

कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका॥

देवता और दिक्पाल हाथ जोड़े बड़ी नम्रता के साथ भयभीत हुए सब रावण की भौं ताक रहे हैं। (उसका रुख देख रहे हैं।) उसका ऐसा प्रताप देखकर भी हनुमान के मन में जरा भी डर नहीं हुआ। वे ऐसे निःशंक खड़े रहे, जैसे सर्पों के समूह में गरुड़ निःशंक निर्भय) रहते हैं।

दो० - कपिहि बिलोकि दसानन बिहसा कहि दुर्बाद।
सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयँ बिसाद॥ 20॥

हनुमान को देखकर रावण दुर्वचन कहता हुआ खूब हँसा। फिर पुत्र-वध का स्मरण किया तो उसके हृदय में विषाद उत्पन्न हो गया॥ 20॥

कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहि कें बल घालेहि बन खीसा॥
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही॥

लंकापति रावण ने कहा - रे वानर! तू कौन है? किसके बल पर तूने वन को उजाड़कर

नष्ट कर डाला? क्या तूने कभी मेरा नाम और यश कानों से नहीं सुना? रे शठ! मैं तुझे अत्यंत निःशंक देख रहा हूँ।

मारे निसिचर केहिं अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा॥
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥

तूने किस अपराध से राक्षसों को मारा? रे मूर्ख! बता, क्या तुझे प्राण जाने का भय नहीं है? (हनुमान ने कहा -) हे रावण! सुन, जिनका बल पाकर माया संपूर्ण ब्रह्मांडों के समूहों की रचना करती है;

जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥

जिनके बल से हे दशशीश! ब्रह्मा, विष्णु, महेश (क्रमशः) सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करते हैं; जिनके बल से सहस्रमुख (फणों) वाले शेष पर्वत और वनसहित समस्त ब्रह्मांड को सिर पर धारण करते हैं;

धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तेहि समेत नृप दल मद गंजा॥

जो देवताओं की रक्षा के लिए नाना प्रकार की देह धारण करते हैं और जो तुम्हारे-जैसे मूर्खों को शिक्षा देनेवाले हैं; जिन्होंने शिव के कठोर धनुष को तोड़ डाला और उसी के साथ राजाओं के समूह का गर्व चूर्ण कर दिया।

खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥

जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा और बालि को मार डाला, जो सब-के-सब अतुलनीय बलवान थे;

दो० - जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥ 21॥

जिनके लेशमात्र बल से तुमने समस्त चराचर जगत को जीत लिया और जिनकी प्रिय पत्नी को तुम (चोरी से) हर लाए हो, मैं उन्हीं का दूत हूँ॥ 21॥

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिहसि बिहरावा॥

मैं तुम्हारी प्रभुता को खूब जानता हूँ, सहस्रबाहु से तुम्हारी लड़ाई हुई थी और बालि से युद्ध करके तुमने यश प्राप्त किया था। हनुमान के (मार्मिक) वचन सुनकर रावण ने हँसकर बात टाल दी।

खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥
सब कें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी॥

हे (राक्षसों के) स्वामी! मुझे भूख लगी थी, (इसलिए) मैंने फल खाए और वानर स्वभाव के कारण वृक्ष तोड़े। हे (निशाचरों के) मालिक! देह सबको परम प्रिय है। कुमार्ग पर चलनेवाले (दुष्ट) राक्षस जब मुझे मारने लगे।

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥

तब जिन्होंने मुझे मारा, उनको मैंने भी मारा। उस पर तुम्हारे पुत्र ने मुझको बाँध लिया। (किंतु), मुझे अपने बाँधे जाने की कुछ भी लज्जा नहीं है। मैं तो अपने प्रभु का कार्य करना चाहता हूँ।

बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी॥

हे रावण! मैं हाथ जोड़कर तुमसे विनती करता हूँ, तुम अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो। तुम अपने पवित्र कुल का विचार करके देखो और भ्रम को छोड़कर भक्त भयहारी भगवान को भजो।

जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै॥

जो देवता, राक्षस और समस्त चराचर को खा जाता है, वह काल भी जिनके डर से अत्यंत डरता है, उनसे कदापि वैर न करो और मेरे कहने से जानकी को दे दो।

दो० - प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।

गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥ 22॥

खर के शत्रु रघुनाथ शरणागतों के रक्षक और दया के समुद्र हैं। शरण जाने पर प्रभु तुम्हारा अपराध भुलाकर तुम्हें अपनी शरण में रख लेंगे॥ 22॥

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका॥

तुम राम के चरण कमलों को हृदय में धारण करो और लंका का अचल राज्य करो। ऋषि पुलस्त्य का यश निर्मल चंद्रमा के समान है। उस चंद्रमा में तुम कलंक न बनो।

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी॥

राम नाम के बिना वाणी शोभा नहीं पाती, मद-मोह को छोड़, विचारकर देखो। हे देवताओं के शत्रु! सब गहनों से सजी हुई सुंदरी स्त्री भी कपड़ों के बिना (नंगी) शोभा नहीं पाती।

राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं॥

रामविमुख पुरुष की संपत्ति और प्रभुता रही हुई भी चली जाती है और उसका पाना न पाने के समान है। जिन नदियों के मूल में कोई जलस्रोत नहीं है (अर्थात जिन्हें केवल बरसात ही आसरा है) वे वर्षा बीत जाने पर फिर तुरंत ही सूख जाती हैं।

सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥
संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥

हे रावण! सुनो, मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि रामविमुख की रक्षा करनेवाला कोई भी नहीं है। हजारों शंकर, विष्णु और ब्रह्मा भी राम के साथ द्रोह करनेवाले तुमको नहीं बचा सकते।

दो० - मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥ 23॥

मोह ही जिनका मूल है ऐसे (अज्ञानजनित), बहुत पीड़ा देनेवाले, तमरूप अभिमान का

त्याग कर दो और रघुकुल के स्वामी, कृपा के समुद्र भगवान राम का भजन करो॥ 23॥

जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी॥
बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी॥

यद्यपि हनुमान ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीति से सनी हुई बहुत ही हित की वाणी कही, तो भी वह महान अभिमानी रावण बहुत हँसकर (व्यंग्य से) बोला कि हमें यह बंदर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला!

मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही॥
उलटा होइहि कह हनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना॥

रे दुष्ट! तेरी मृत्यु निकट आ गई है। अधम! मुझे शिक्षा देने चला है। हनुमान ने कहा - इससे उलटा ही होगा (अर्थात मृत्यु तेरी निकट आई है, मेरी नहीं)। यह तेरा मतिभ्रम (बुद्धि का फेर) है, मैंने प्रत्यक्ष जान लिया है।

सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना॥
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए॥

हनुमान के वचन सुनकर वह बहुत ही कुपित हो गया। (और बोला -) अरे! इस मूर्ख का प्राण शीघ्र ही क्यों नहीं हर लेते? सुनते ही राक्षस उन्हें मारने दौड़े। उसी समय मंत्रियों के साथ विभीषण वहाँ आ पहुँचे।

नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता॥
आन दंड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥

उन्होंने सिर नवाकर और बहुत विनय करके रावण से कहा कि दूत को मारना नहीं चाहिए, यह नीति के विरुद्ध है। हे गोसाईं! कोई दूसरा दंड दिया जाए। सबने कहा - भाई! यह सलाह उत्तम है।

सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर॥

यह सुनते ही रावण हँसकर बोला - अच्छा तो, बंदर को अंग-भंग करके भेज (लौटा) दिया जाए।

दो॰ - कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ॥ 24॥

मैं सबको समझाकर कहता हूँ कि बंदर की ममता पूँछ पर होती है। अतः तेल में कपड़ा डुबोकर उसे इसकी पूँछ में बाँधकर फिर आग लगा दो॥ 24॥

पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लइ आइहि॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई। देखउ मैं तिन्ह कै प्रभुताई॥

जब बिना पूँछ का यह बंदर वहाँ (अपने स्वामी के पास) जाएगा, तब यह मूर्ख अपने मालिक को साथ ले आएगा। जिनकी इसने बहुत बड़ाई की है, मैं जरा उनकी प्रभुता (सामर्थ्य) तो देखूँ!

बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना॥
जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना॥

यह वचन सुनते ही हनुमान मन में मुसकराए (और मन-ही-मन बोले कि) मैं जान गया, सरस्वती (इसे ऐसी बुद्धि देने में) सहायक हुई हैं। रावण के वचन सुनकर मूर्ख राक्षस वही (पूँछ में आग लगाने की) तैयारी करने लगे।

रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥
कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी॥

(पूँछ के लपेटने में इतना कपड़ा और घी-तेल लगा कि) नगर में कपड़ा, घी और तेल नहीं रह गया। हनुमान ने ऐसा खेल किया कि पूँछ बढ़ गई (लंबी हो गई)। नगरवासी लोग तमाशा देखने आए। वे हनुमान को पैर से ठोकर मारते हैं और उनकी हँसी करते हैं।

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी॥
पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघुरूप तुरंता॥

ढोल बजते हैं, सब लोग तालियाँ पीटते हैं। हनुमान को नगर में फिराकर, फिर पूँछ में आग लगा दी। अग्नि को जलते हुए देखकर हनुमान तुरंत ही बहुत छोटे रूप में हो गए।

निबुकि चढ़ेउ कप कनक अटारीं। भईं सभीत निसाचर नारीं॥

बंधन से निकलकर वे सोने की अटारियों पर जा चढ़े। उनको देखकर राक्षसों की स्त्रियाँ भयभीत हो गईं।

दो॰ - हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास॥ 25॥

उस समय भगवान की प्रेरणा से उनचासों पवन चलने लगे। हनुमान अट्टहास करके गरजे और बढ़कर आकाश से जा लगे॥ 25॥

देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला॥

देह बड़ी विशाल, परंतु बहुत ही हल्की (फुर्तीली) है। वे दौड़कर एक महल से दूसरे महल पर चढ़ जाते हैं। नगर जल रहा है, लोग बेहाल हो गए हैं। आग की करोड़ों भयंकर लपटें झपट रही हैं।

तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहिं अवसर को हमहि उबारा॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरें सुर कोई॥

हाय बप्पा! हाय मैया! इस अवसर पर हमें कौन बचाएगा? (चारों ओर) यही पुकार सुनाई पड़ रही है। हमने तो पहले ही कहा था कि यह वानर नहीं है, वानर का रूप धरे कोई देवता है!

साधु अवग्या कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥

साधु के अपमान का यह फल है कि नगर, अनाथ के नगर की तरह जल रहा है। हनुमान ने एक ही क्षण में सारा नगर जला डाला। एक विभीषण का घर नहीं जलाया।

ता कर दूत अनल जेहिं सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥

(शिव कहते हैं -) हे पार्वती! जिन्होंने अग्नि को बनाया, हनुमान उन्हीं के दूत हैं। इसी कारण वे अग्नि से नहीं जले। हनुमान ने उलट-पलटकर (एक ओर से दूसरी ओर तक) सारी लंका जला दी। फिर वे समुद्र में कूद पड़े॥

दो॰ - पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि॥ 26॥

पूँछ बुझाकर, थकावट दूर करके और फिर छोटा-सा रूप धारण कर हनुमान जानकी के सामने हाथ जोड़कर जा खड़े हुए॥ 26॥

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ॥

(हनुमान ने कहा -) हे माता! मुझे कोई चिह्न (पहचान) दीजिए, जैसे रघुनाथ ने मुझे दिया था। तब सीता ने चूड़ामणि उतारकर दी। हनुमान ने उसको हर्षपूर्वक ले लिया।

कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा॥
दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ सम संकट भारी॥

(जानकी ने कहा -) हे तात! मेरा प्रणाम निवेदन करना और इस प्रकार कहना - हे प्रभु! यद्यपि आप सब प्रकार से पूर्णकाम हैं (आपको किसी प्रकार की कामना नहीं है), तथापि दीनों (दुःखियों) पर दया करना आपका विरद है (और मैं दीन हूँ) अतः उस विरद को याद करके, हे नाथ! मेरे भारी संकट को दूर कीजिए।

तात सक्रसुत कथा सनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु॥
मास दिवस महुँ नाथु न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा॥

हे तात! इंद्रपुत्र जयंत की कथा (घटना) सुनाना और प्रभु को उनके बाण का प्रताप समझाना (स्मरण कराना)। यदि महीने भर में नाथ न आए तो फिर मुझे जीती न पाएँगे।

कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुम्हहू तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सो राती॥

हे हनुमान! कहो, मैं किस प्रकार प्राण रखूँ! हे तात! तुम भी अब जाने को कह रहे हो। तुमको देखकर छाती ठंडी हुई थी। फिर मुझे वही दिन और वही रात!

दो॰ - जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह॥ 27॥

हनुमान ने जानकी को समझाकर बहुत प्रकार से धीरज दिया और उनके चरणकमलों में सिर नवाकर राम के पास गमन किया॥ 27॥

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी॥
नाघि सिंधु एहि पारहि आवा। सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा॥

चलते समय उन्होंने महाध्वनि से भारी गर्जन किया, जिसे सुनकर राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिरने लगे। समुद्र लाँघकर वे इस पार आए और उन्होंने वानरों को किलकिला शब्द (हर्षध्वनि) सुनाया।

हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना॥
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा॥

हनुमान को देखकर सब हर्षित हो गए और तब वानरों ने अपना नया जन्म समझा। हनुमान का मुख प्रसन्न है और शरीर में तेज विराजमान है, (जिससे उन्होंने समझ लिया कि) ये रामचंद्र का कार्य कर आए हैं।

मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी॥
चले हरषि रघुनायक पासा। पूँछत कहत नवल इतिहासा॥

सब हनुमान से मिले और बहुत ही सुखी हुए, जैसे तड़पती हुई मछली को जल मिल गया हो। सब हर्षित होकर नए-नए इतिहास (वृत्तांत) पूछते- कहते हुए रघुनाथ के पास चले।

तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधु फल खाए॥
रखवारे जब बरजन लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे॥

तब सब लोग मधुवन के भीतर आए और अंगद की सम्मति से सबने मधुर फल (या मधु और फल) खाए। जब रखवाले बरजने लगे, तब घूँसों की मार मारते ही सब रखवाले भाग छूटे।

दो० - जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज।
सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज॥ 28॥

उन सबने जाकर पुकारा कि युवराज अंगद वन उजाड़ रहे हैं। यह सुनकर सुग्रीव हर्षित हुए कि वानर प्रभु का कार्य कर आए हैं॥ 28॥

जौं न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई॥
एहि बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा॥

यदि सीता की खबर न पाई होती तो क्या वे मधुवन के फल खा सकते थे? इस प्रकार राजा सुग्रीव मन में विचार कर ही रहे थे कि समाज-सहित वानर आ गए।

आइ सबन्हि नावा पद सीसा। मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा॥
पूँछी कुसल कुसल पद देखी। राम कृपाँ भा काजु बिसेषी॥

(सबने आकर सुग्रीव के चरणों में सिर नवाया। कपिराज सुग्रीव सभी से बड़े प्रेम के साथ मिले। उन्होंने कुशल पूछी, (तब वानरों ने उत्तर दिया -) आपके चरणों के दर्शन से सब कुशल है। राम की कृपा से विशेष कार्य हुआ (कार्य में विशेष सफलता हुई है)।

नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ॥

हे नाथ! हनुमान ने सब कार्य किया और सब वानरों के प्राण बचा लिए। यह सुनकर सुग्रीव हनुमान से फिर मिले और सब वानरों समेत रघुनाथ के पास चले।

राम कपिन्ह जब आवत देखा। किएँ काजु मन हरष बिसेषा॥
फटिक सिला बैठे द्वौ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई॥

राम ने जब वानरों को कार्य किए हुए आते देखा तब उनके मन में विशेष हर्ष हुआ। दोनों भाई स्फटिक शिला पर बैठे थे। सब वानर जाकर उनके चरणों पर गिर पड़े।

दो॰ - प्रीति सहित सब भेंटे रघुपति करुना पुंज॥
पूछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज॥ 29॥

दया की राशि रघुनाथ सबसे प्रेम सहित गले लगकर मिले और कुशल पूछी। (वानरों ने कहा -) हे नाथ! आपके चरण कमलों के दर्शन पाने से अब कुशल है॥ 29॥

जामवंत कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥

जाम्बवान ने कहा - हे रघुनाथ! सुनिए। हे नाथ! जिस पर आप दया करते हैं, उसे सदा

कल्याण और निरंतर कुशल है। देवता, मनुष्य और मुनि सभी उस पर प्रसन्न रहते हैं।

सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजसु त्रैलोक उजागर॥
प्रभु कीं कृपा भयउ सबु काजू। जन्म हमार सुफल भा आजू॥

वही विजयी है, वही विनयी है और वही गुणों का समुद्र बन जाता है। उसी का सुंदर यश तीनों लोकों में प्रकाशित होता है। प्रभु की कृपा से सब कार्य हुआ। आज हमारा जन्म सफल हो गया।

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥
पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥

हे नाथ! पवनपुत्र हनुमान ने जो करनी की, उसका हजार मुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता। तब जाम्बवान ने हनुमान के सुंदर चरित्र (कार्य) रघुनाथ को सुनाए।

सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥

(वे चरित्र) सुनने पर कृपानिधि रामचंद के मन को बहुत ही अच्छे लगे। उन्होंने हर्षित होकर हनुमान को फिर हृदय से लगा लिया और कहा - हे तात! कहो, सीता किस प्रकार रहती और अपने प्राणों की रक्षा करती हैं?

दो० - नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥ 30॥

(हनुमान ने कहा -) आपका नाम रात-दिन पहरा देनेवाला है, आपका ध्यान ही किवाड़ है। नेत्रों को अपने चरणों में लगाए रहती हैं, यही ताला लगा है; फिर प्राण जाएँ तो किस मार्ग से?॥ 30॥

चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी॥

चलते समय उन्होंने मुझे चूड़ामणि (उतारकर) दी। रघुनाथ ने उसे लेकर हृदय से लगा लिया। (हनुमान ने फिर कहा -) हे नाथ! दोनों नेत्रों में जल भरकर जानकी ने मुझसे कुछ वचन कहे -

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन बंधु प्रनतारति हरना॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी॥

छोटे भाई समेत प्रभु के चरण पकड़ना (और कहना कि) आप दीनबंधु हैं, शरणागत के दुःखों को हरनेवाले हैं और मैं मन, वचन और कर्म से आपके चरणों की अनुरागिणी हूँ। फिर स्वामी (आप) ने मुझे किस अपराध से त्याग दिया?

अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥

(हाँ) एक दोष मैं अपना (अवश्य) मानती हूँ कि आपका वियोग होते ही मेरे प्राण नहीं चले गए। किंतु हे नाथ! यह तो नेत्रों का अपराध है जो प्राणों के निकलने में हठपूर्वक बाधा देते हैं।

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी॥

विरह अग्नि है, शरीर रूई है और श्वास पवन है; इस प्रकार (अग्नि और पवन का संयोग होने से) यह शरीर क्षणमात्र में जल सकता है। परंतु नेत्र अपने हित के लिए प्रभु का स्वरूप देखकर (सुखी होने के लिए) जल (आँसू) बरसाते हैं, जिससे विरह की आग से भी देह जलने नहीं पाती।

सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भलि दीनदयाला॥

सीता की विपत्ति बहुत बड़ी है। हे दीनदयालु! वह बिना कही ही अच्छी है (कहने से आपको बड़ा क्लेश होगा)।

दो० - निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति॥ 31॥

हे करुणानिधान! उनका एक-एक पल कल्प के समान बीतता है। अतः हे प्रभु! तुरंत चलिए और अपनी भुजाओं के बल से दुष्टों के दल को जीतकर सीता को ले आइए॥ 31॥

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना॥
बचन कायँ मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही॥

सीता का दुःख सुनकर सुख के धाम प्रभु के कमल नेत्रों में जल भर आया (और वे बोले -) मन, वचन और शरीर से जिसे मेरी ही गति (मेरा ही आश्रय) है, उसे क्या स्वप्न में भी विपत्ति हो सकती है?

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी॥

हनुमान ने कहा - हे प्रभो! विपत्ति तो वही (तभी) है जब आपका भजन-स्मरण न हो। हे प्रभो! राक्षसों की बात ही कितनी है? आप शत्रु को जीतकर जानकी को ले आएँगे।

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥

(भगवान कहने लगे -) हे हनुमान! सुन, तेरे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं तेरा प्रत्युपकार (बदले में उपकार) तो क्या करूँ, मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता।

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥

हे पुत्र! सुन, मैंने मन में (खूब) विचार करके देख लिया कि मैं तुझसे उऋण नहीं हो सकता। देवताओं के रक्षक प्रभु बार-बार हनुमान को देख रहे हैं। नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का जल भरा है और शरीर अत्यंत पुलकित है।

दो० - सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥ 32॥

प्रभु के वचन सुनकर और उनके (प्रसन्न) मुख तथा (पुलकित) अंगों को देखकर हनुमान हर्षित हो गए और प्रेम में विकल होकर 'हे भगवन्! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' कहते हुए राम के चरणों में गिर पड़े॥ 32॥

बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥

प्रभु उनको बार-बार उठाना चाहते हैं, परंतु प्रेम में डूबे हुए हनुमान को चरणों से उठना

सुहाता नहीं। प्रभु का करकमल हनुमान के सिर पर है। उस स्थिति का स्मरण करके शिव प्रेममग्न हो गए।

सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर॥
कपि उठाई प्रभु हृदयँ लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥

फिर मन को सावधान करके शंकर अत्यंत सुंदर कथा कहने लगे - हनुमान को उठाकर प्रभु ने हृदय से लगाया और हाथ पकड़कर अत्यंत निकट बैठा लिया।

कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत अभिमाना॥

हे हनुमान! बताओ तो, रावण के द्वारा सुरक्षित लंका और उसके बड़े बाँके किले को तुमने किस तरह जलाया? हनुमान ने प्रभु को प्रसन्न जाना और वे अभिमानरहित वचन बोले -

साखामग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥

बंदर का बस, यही बड़ा पुरुषार्थ है कि वह एक डाल से दूसरी डाल पर चला जाता है। मैंने जो समुद्र लाँघकर सोने का नगर जलाया और राक्षसगण को मारकर अशोक वन को उजाड़ डाला,

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

यह सब तो हे रघुनाथ! आप ही का प्रताप है। हे नाथ! इसमें मेरी प्रभुता (बड़ाई) कुछ भी नहीं है।

दो० - ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभावँ बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल॥ 33॥

हे प्रभु! जिस पर आप प्रसन्न हों, उसके लिए कुछ भी कठिन नहीं है। आपके प्रभाव से रूई (जो स्वयं बहुत जल्दी जल जानेवाली वस्तु है) बड़वानल को निश्चय ही जला सकती है (अर्थात असंभव भी संभव हो सकता है)॥ 33॥

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी॥

सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी॥

हे नाथ! मुझे अत्यंत सुख देनेवाली अपनी निश्चल भक्ति कृपा करके दीजिए। हनुमान की अत्यंत सरल वाणी सुनकर, हे भवानी! तब प्रभु राम ने 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा।

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥
यह संबाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा॥

हे उमा! जिसने राम का स्वभाव जान लिया, उसे भजन छोड़कर दूसरी बात ही नहीं सुहाती। यह स्वामी-सेवक का संवाद जिसके हृदय में आ गया, वही रघुनाथ के चरणों की भक्ति पा गया।

सुनि प्रभु बचन कहहिं कपिबृंदा। जय जय जय कृपाल सुखकंदा॥
तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा। कहा चलैं कर करहु बनावा॥

प्रभु के वचन सुनकर वानरगण कहने लगे - कृपालु आनंदकंद राम की जय हो जय हो, जय हो! तब रघुनाथ ने कपिराज सुग्रीव को बुलाया और कहा - चलने की तैयारी करो।

अब बिलंबु केह कारन कीजे। तुरंत कपिन्ह कहँ आयसु दीजे॥
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ तें भवन चले सुर हरषी॥

अब विलंब किस कारण किया जाए? वानरों को तुरंत आज्ञा दो। (भगवान की) यह लीला (रावणवध की तैयारी) देखकर, बहुत-से फूल बरसाकर और हर्षित होकर देवता आकाश से अपने-अपने लोक को चले।

दो॰ - कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ॥ 34॥

वानरराज सुग्रीव ने शीघ्र ही वानरों को बुलाया, सेनापतियों के समूह आ गए। वानर-भालुओं के झुंड अनेक रंगों के हैं और उनमें अतुलनीय बल है॥ 34॥

प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा॥
देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिव नैना॥

वे प्रभु के चरण कमलों में सिर नवाते हैं। महान बलवान रीछ और वानर गरज रहे हैं।

राम ने वानरों की सारी सेना देखी। तब कमल नेत्रों से कृपापूर्वक उनकी ओर दृष्टि डाली।

राम कृपा बल पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना॥

राम कृपा का बल पाकर श्रेष्ठ वानर मानो पंखवाले बड़े पर्वत हो गए। तब राम ने हर्षित होकर प्रस्थान (कूच) किया। अनेक सुंदर और शुभ शकुन हुए।

जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु पयान जाना बैदेहीं। फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं॥

जिनकी कीर्ति सब मंगलों से पूर्ण है, उनके प्रस्थान के समय शकुन होना, यह नीति है (लीला की मर्यादा है)। प्रभु का प्रस्थान जानकी ने भी जान लिया। उनके बाएँ अंग फड़क-फड़ककर मानो कहे देते थे (कि राम आ रहे हैं)।

जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहिं सोई॥
चला कटकु को बरनैं पारा। गर्जहिं बानर भालु अपारा॥

जानकी को जो-जो शकुन होते थे, वही-वही रावण के लिए अपशकुन हुए। सेना चली, उसका वर्णन कौन कर सकता है? असंख्य वानर और भालू गर्जना कर रहे हैं।

नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी॥
केहरिनाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥

नख ही जिनके शस्त्र हैं, वे इच्छानुसार (सर्वत्र बेरोक-टोक) चलनेवाले रीछ-वानर पर्वतों और वृक्षों को धारण किए कोई आकाश मार्ग से और कोई पृथ्वी पर चले जा रहे हैं। वे सिंह के समान गर्जना कर रहे हैं। (उनके चलने और गर्जने से) दिशाओं के हाथी विचलित होकर चिंग्घाड़ रहे हैं।

छं० - चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष सभ गंधर्ब सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं॥

दिशाओं के हाथी चिंग्घाड़ने लगे, पृथ्वी डोलने लगी, पर्वत चंचल हो गए (काँपने लगे) और

समुद्र खलबला उठे। गंधर्व, देवता, मुनि, नाग, किन्नर सब के सब मन में हर्षित हुए कि (अब) हमारे दुःख टल गए। अनेकों करोड़ भयानक वानर योद्धा कटकटा रहे हैं और करोड़ों ही दौड़ रहे हैं। 'प्रबल प्रताप कोसलनाथ राम की जय हो' ऐसा पुकारते हुए वे उनके गुणसमूहों को गा रहे हैं।

सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई॥
रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी॥

उदार (परम श्रेष्ठ एवं महान) सर्पराज शेष भी सेना का बोझ नहीं सह सकते, वे बार-बार मोहित हो जाते (घबड़ा जाते) हैं और पुनः-पुनः कच्छप की कठोर पीठ को दाँतों से पकड़ते हैं। ऐसा करते (अर्थात बार-बार दाँतों को गड़ाकर कच्छप की पीठ पर लकीर-सी खींचते हुए) वे कैसे शोभा दे रहे हैं मानो राम की सुंदर प्रस्थान यात्रा को परम सुहावनी जानकर उसकी अचल पवित्र कथा को सर्पराज शेष कच्छप की पीठ पर लिख रहे हों।

दो० - एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर॥ 35॥

इस प्रकार कृपानिधान राम समुद्र तट पर जा उतरे। अनेकों रीछ-वानर वीर जहाँ-तहाँ फल खाने लगे॥ 35॥

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका॥
निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा॥

वहाँ (लंका में) जब से हनुमान लंका को जलाकर गए; तब से राक्षस भयभीत रहने लगे। अपने-अपने घरों में सब विचार करते हैं कि अब राक्षस कुल की रक्षा (का कोई उपाय) नहीं है।

जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आएँ पुर कवन भलाई॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी॥

जिसके दूत का बल वर्णन नहीं किया जा सकता, उसके स्वयं नगर में आने पर कौन भलाई है (हम लोगों की बड़ी बुरी दशा होगी)? दूतियों से नगरवासियों के वचन सुनकर

मंदोदरी बहुत ही व्याकुल हो गई।

रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीति रस पागी॥
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू॥

वह एकांत में हाथ जोड़कर पति (रावण) के चरणों लगी और नीतिरस में पगी हुई वाणी बोली - हे प्रियतम! हरि से विरोध छोड़ दीजिए। मेरे कहने को अत्यंत ही हितकर जानकर हृदय में धारण कीजिए।

समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई॥

जिनके दूत की करनी का विचार करते ही (स्मरण आते ही) राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं, हे प्यारे स्वामी! यदि भला चाहते हैं, तो अपने मंत्री को बुलाकर उसके (दूत के) साथ उनकी स्त्री को भेज दीजिए।

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें॥

सीता आपके कुलरूपी कमलों के वन को दुःख देनेवाली जाड़े की रात्रि के समान आई है। हे नाथ! सुनिए, सीता को दिए (लौटाए) बिना शंभु और ब्रह्मा के किए भी आपका भला नहीं हो सकता।

दो० - राम बान अहि गन सरिस निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक॥ 36॥

राम के बाण सर्पों के समूह के समान हैं और राक्षसों के समूह मेढ़क के समान। जब तक वे इन्हें ग्रस नहीं लेते (निगल नहीं जाते) तब तक हठ छोड़कर उपाय कर लीजिए॥ 36॥

श्रवन सुनी सठ ता करि बानी। बिहसा जगत बिदित अभिमानी॥
सभय सुभाउ नारि कर साचा। मंगल महुँ भय मन अति काचा॥

मूर्ख और जगत प्रसिद्ध अभिमानी रावण कानों से उसकी वाणी सुनकर खूब हँसा (और बोला -) स्त्रियों का स्वभाव सचमुच ही बहुत डरपोक होता है। मंगल में भी भय करती हो! तुम्हारा मन (हृदय) बहुत ही कच्चा (कमजोर) है।

जौं आवइ मर्कट कटकाई। जिअहिं बिचारे निसिचर खाई॥
कंपहिं लोकप जाकीं त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा॥

यदि वानरों की सेना आएगी तो बेचारे राक्षस उसे खाकर अपना जीवन निर्वाह करेंगे। लोकपाल भी जिसके डर से काँपते हैं, उसकी स्त्री डरती हो, यह बड़ी हँसी की बात है।

अस कहि बिहसि ताहि उर लाई। चलेउ सभाँ ममता अधिकाई॥
मंदोदरी हृदयँ कर चिंता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता॥

रावण ने ऐसा कहकर हँसकर उसे हृदय से लगा लिया और ममता बढ़ाकर (अधिक स्नेह दर्शाकर) वह सभा में चला गया। मंदोदरी हृदय में चिंता करने लगी कि पति पर विधाता प्रतिकूल हो गए।

बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई। सिंधु पार सेना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू॥

ज्यों ही वह सभा में जाकर बैठा, उसने ऐसी खबर पाई कि शत्रु की सारी सेना समुद्र के उस पार आ गई है। उसने मंत्रियों से पूछा कि उचित सलाह कहिए (अब क्या करना चाहिए?)। तब वे सब हँसे और बोले कि चुप किए रहिए (इसमें सलाह की कौन-सी बात है?)।

जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं॥

आपने देवताओं और राक्षसों को जीत लिया, तब तो कुछ श्रम ही नहीं हुआ। फिर मनुष्य और वानर किस गिनती में हैं?

दो॰ - सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥ 37॥

मंत्री, वैद्य और गुरु - ये तीन यदि (अप्रसन्नता के) भय या (लाभ की) आशा से (हित की बात न कहकर) प्रिय बोलते हैं (ठकुर सुहाती कहने लगते हैं); तो (क्रमशः) राज्य, शरीर और धर्म - इन तीन का शीघ्र ही नाश हो जाता है॥ 37॥

सोइ रावन कहुँ बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई॥
अवसर जानि बिभीषनु आवा। भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा॥

रावण के लिए भी वही सहायता (संयोग) आ बनी है। मंत्री उसे सुना-सुनाकर (मुँह पर) स्तुति करते हैं। (इसी समय) अवसर जानकर विभीषण आए। उन्होंने बड़े भाई के चरणों में सिर नवाया।

पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन॥
जौं कृपाल पूँछिहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता॥

फिर से सिर नवाकर अपने आसन पर बैठ गए और आज्ञा पाकर ये वचन बोले - हे कृपाल! जब आपने मुझसे बात (राय) पूछी ही है, तो हे तात! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार आपके हित की बात कहता हूँ -

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥

जो मनुष्य अपना कल्याण, सुंदर यश, सुबुद्धि, शुभ गति और नाना प्रकार के सुख चाहता हो, वह हे स्वामी! परस्त्री के ललाट को चौथ के चंद्रमा की तरह त्याग दे (अर्थात जैसे लोग चौथ के चंद्रमा को नहीं देखते, उसी प्रकार परस्त्री का मुख ही न देखे)।

चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्टइ नहिं सोई॥
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥

चौदहों भुवनों का एक ही स्वामी हो, वह भी जीवों से वैर करके ठहर नहीं सकता (नष्ट हो जाता है)। जो मनुष्य गुणों का समुद्र और चतुर हो, उसे चाहे थोड़ा भी लोभ क्यों न हो, तो भी कोई भला नहीं कहता।

दो॰ - काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत॥ 38॥

हे नाथ! काम, क्रोध, मद और लोभ - ये सब नरक के रास्ते हैं। इन सबको छोड़कर राम को भजिए, जिन्हें संत (सत्पुरुष) भजते हैं॥ 38॥

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता॥

हे तात! राम मनुष्यों के ही राजा नहीं हैं। वे समस्त लोकों के स्वामी और काल के भी

काल हैं। वे (संपूर्ण ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, वैराग्य एवं ज्ञान के भंडार) भगवान हैं; वे निरामय (विकाररहित), अजन्मा, व्यापक, अजेय, अनादि और अनंत ब्रह्म हैं।

गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपा सिंधु मानुष तनुधारी॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता॥

उन कृपा के समुद्र भगवान ने पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ और देवताओं का हित करने के लिए ही मनुष्य शरीर धारण किया है। हे भाई! सुनिए, वे सेवकों को आनंद देनेवाले, दुष्टों के समूह का नाश करनेवाले और वेद तथा धर्म की रक्षा करनेवाले हैं।

ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥

वैर त्यागकर उन्हें मस्तक नवाइए। वे रघुनाथ शरणागत का दुःख नाश करनेवाले हैं। हे नाथ! उन प्रभु (सर्वेश्वर) को जानकी दे दीजिए और बिना ही कारण स्नेह करनेवाले राम को भजिए।

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन॥

जिसे संपूर्ण जगत से द्रोह करने का पाप लगा है, शरण जाने पर प्रभु उसका भी त्याग नहीं करते। जिनका नाम तीनों तापों का नाश करनेवाला है, वे ही प्रभु (भगवान) मनुष्य रूप में प्रकट हुए हैं। हे रावण! हृदय में यह समझ लीजिए।

दो० - बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस॥ 39(क)॥

हे दशशीश! मैं बार-बार आपके चरणों लगता हूँ और विनती करता हूँ कि मान, मोह और मद को त्यागकर आप कोसलपति राम का भजन कीजिए॥ 39(क)॥

मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ सुअवसरु तात॥ 39(ख)॥

मुनि पुलस्त्य ने अपने शिष्य के हाथ यह बात कहला भेजी है। हे तात! सुंदर अवसर पाकर मैंने तुरंत ही वह बात प्रभु (आप) से कह दी॥ 39(ख)॥

माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥

माल्यवान नाम का एक बहुत ही बुद्धिमान मंत्री था। उसने उन (विभीषण) के वचन सुनकर बहुत सुख माना (और कहा -) हे तात! आपके छोटे भाई नीति-विभूषण (नीति को भूषण रूप में धारण करनेवाले अर्थात नीतिमान) हैं। विभीषण जो कुछ कह रहे हैं उसे हृदय में धारण कर लीजिए।

रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ॥
माल्यवंत गह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी॥

(रावण ने कहा -) ये दोनों मूर्ख शत्रु की महिमा बखान रहे हैं। यहाँ कोई है? इन्हें दूर करो न! तब माल्यवान तो घर लौट गया और विभीषण हाथ जोड़कर फिर कहने लगे -

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥

हे नाथ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि (अच्छी बुद्धि) और कुबुद्धि (खोटी बुद्धि) सबके हृदय में रहती है, जहाँ सुबुद्धि है, वहाँ नाना प्रकार की संपदाएँ (सुख की स्थिति) रहती हैं और जहाँ कुबुद्धि है वहाँ परिणाम में विपत्ति (दुःख) रहती है।

तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता॥
कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥

आपके हृदय में उलटी बुद्धि आ बसी है। इसी से आप हित को अहित और शत्रु को मित्र मान रहे हैं। जो राक्षस कुल के लिए कालरात्रि (के समान) हैं, उन सीता पर आपकी बड़ी प्रीति है।

दो० - तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार॥ 40॥

हे तात! मैं चरण पकड़कर आपसे भीख माँगता हूँ (विनती करता हूँ) कि आप मेरा दुलार रखिए (मुझ बालक के आग्रह को स्नेहपूर्वक स्वीकार कीजिए)। राम को सीता दे दीजिए, जिसमें आपका अहित न हो॥ 40॥

बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी॥
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई॥

विभीषण ने पंडितों, पुराणों और वेदों द्वारा सम्मत (अनुमोदित) वाणी से नीति बखानकर कही। पर उसे सुनते ही रावण क्रोधित होकर उठा और बोला कि रे दुष्ट! अब मृत्यु तेरे निकट आ गई है!

जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा॥
कहसि न खल अस को जग माहीं। भुज बल जाहि जिता मैं नाहीं॥

अरे मूर्ख! तू जीता तो है सदा मेरा जिलाया हुआ (अर्थात मेरे ही अन्न से पल रहा है), पर हे मूढ़! पक्ष तुझे शत्रु का ही अच्छा लगता है। अरे दुष्ट! बता न, जगत में ऐसा कौन है जिसे मैंने अपनी भुजाओं के बल से न जीता हो?

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा॥

मेरे नगर में रहकर प्रेम करता है तपस्वियों पर। मूर्ख! उन्हीं से जा मिल और उन्हीं को नीति बता। ऐसा कहकर रावण ने उन्हें लात मारी, परंतु छोटे भाई विभीषण ने (मारने पर भी) बार-बार उसके चरण ही पकड़े।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। रामु भजें हित नाथ तुम्हारा॥

(शिव कहते हैं -) हे उमा! संत की यही बड़ाई (महिमा) है कि वे बुराई करने पर भी (बुराई करनेवाले की) भलाई ही करते हैं। (विभीषण ने कहा -) आप मेरे पिता के समान हैं, मुझे मारा सो तो अच्छा ही किया; परंतु हे नाथ! आपका भला राम को भजने में ही है।

सचिव संग लै नभ पथ गयऊ। सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ॥

(इतना कहकर) विभीषण अपने मंत्रियों को साथ लेकर आकाश मार्ग में गए और सबको सुनाकर वे ऐसा कहने लगे -

दो॰ - रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥ 41॥

राम सत्य संकल्प एवं (सर्वसमर्थ) प्रभु हैं और (हे रावण!) तुम्हारी सभा काल के वश है। अतः मैं अब रघुवीर की शरण जाता हूँ, मुझे दोष न देना॥ 41॥

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं। आयूहीन भए सब तबहीं॥
साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी॥

ऐसा कहकर विभीषण ज्यों ही चले, त्यों ही सब राक्षस आयुहीन हो गए (उनकी मृत्यु निश्चित हो गई)। (शिव कहते हैं -) हे भवानी! साधु का अपमान तुरंत ही संपूर्ण कल्याण की हानि (नाश) कर देता है।

रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा॥
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं॥

रावण ने जिस क्षण विभीषण को त्यागा, उसी क्षण वह अभागा वैभव (ऐश्वर्य) से हीन हो गया। विभीषण हर्षित होकर मन में अनेकों मनोरथ करते हुए रघुनाथ के पास चले।

देखिहउँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषनारी। दंडक कानन पावनकारी॥

(वे सोचते जाते थे -) मैं जाकर भगवान के कोमल और लाल वर्ण के सुंदर चरण कमलों के दर्शन करूँगा, जो सेवकों को सुख देनेवाले हैं, जिन चरणों का स्पर्श पाकर ऋषि पत्नी अहल्या तर गईं और जो दंडकवन को पवित्र करनेवाले हैं।

जे पद जनकसुताँ उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥

जिन चरणों को जानकी ने हृदय में धारण कर रखा है, जो कपटमृग के साथ पृथ्वी पर (उसे पकड़ने को) दौड़े थे और जो चरणकमल साक्षात शिव के हृदयरूपी सरोवर में विराजते हैं, मेरा अहोभाग्य है कि उन्हीं को आज मैं देखूँगा।

दो० - जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥ 42॥

जिन चरणों की पादुकाओं में भरत ने अपना मन लगा रखा है, अहा! आज मैं उन्हीं चरणों को अभी जाकर इन नेत्रों से देखूँगा॥ 42॥

ऐहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंदु एहिं पारा॥
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा॥

इस प्रकार प्रेमसहित विचार करते हुए वे शीघ्र ही समुद्र के इस पार (जिधर राम की सेना थी) आ गए। वानरों ने विभीषण को आते देखा तो उन्होंने जाना कि शत्रु का कोई खास दूत है।

ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥

उन्हें (पहरे पर) ठहराकर वे सुग्रीव के पास आए और उनको सब समाचार कह सुनाए। सुग्रीव ने (राम के पास जाकर) कहा - हे रघुनाथ! सुनिए, रावण का भाई (आप से) मिलने आया है।

कह प्रभु सखा बूझिऐ काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा॥
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया॥

प्रभु राम ने कहा - हे मित्र! तुम क्या समझते हो (तुम्हारी क्या राय है)? वानरराज सुग्रीव ने कहा - हे महाराज! सुनिए, राक्षसों की माया जानी नहीं जाती। यह इच्छानुसार रूप बदलनेवाला (छली) न जाने किस कारण आया है।

भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥

(जान पड़ता है) यह मूर्ख हमारा भेद लेने आया है, इसलिए मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे बाँध रखा जाए। (राम ने कहा -) हे मित्र! तुमने नीति तो अच्छी विचारी! परंतु मेरा प्रण तो है शरणागत के भय को हर लेना!

सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना॥

प्रभु के वचन सुनकर हनुमान हर्षित हुए (और मन-ही-मन कहने लगे कि) भगवान कैसे शरणागतवत्सल (शरण में आए हुए पर पिता की भाँति प्रेम करनेवाले) हैं।

दो॰ - सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥ 43॥

(राम फिर बोले -) जो मनुष्य अपने अहित का अनुमान करके शरण में आए हुए का त्याग कर देते हैं, वे पामर (क्षुद्र) हैं, पापमय हैं, उन्हें देखने में भी हानि है (पाप लगता है)॥ 43॥

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

जिसे करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या लगी हो, शरण में आने पर मैं उसे भी नहीं त्यागता। जीव ज्यों ही मेरे सम्मुख होता है, त्यों ही उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई॥

पापी का यह सहज स्वभाव होता है कि मेरा भजन उसे कभी नहीं सुहाता। यदि वह (रावण का भाई) निश्चय ही दुष्ट हृदय का होता तो क्या वह मेरे सम्मुख आ सकता था?

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥

जो मनुष्य निर्मल मन का होता है, वही मुझे पाता है। मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते। यदि उसे रावण ने भेद लेने को भेजा है, तब भी हे सुग्रीव! अपने को कुछ भी भय या हानि नहीं है।

जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते॥
जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥

क्योंकि हे सखे! जगत में जितने भी राक्षस हैं, लक्ष्मण क्षणभर में उन सबको मार सकते हैं और यदि वह भयभीत होकर मेरी शरण आया है तो मैं तो उसे प्राणों की तरह रखूँगा।

दो॰ - उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत॥ 44॥

कृपा के धाम राम ने हँसकर कहा - दोनों ही स्थितियों में उसे ले आओ। तब अंगद और हनुमान सहित सुग्रीव 'कपालु राम की जय हो' कहते हुए चले॥ 44॥

सादर तेहि आगें करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर॥
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता॥

विभीषण को आदर सहित आगे करके वानर फिर वहाँ चले, जहाँ करुणा की खान रघुनाथ थे। नेत्रों को आनंद का दान देनेवाले (अत्यंत सुखद) दोनों भाइयों को विभीषण ने दूर ही से देखा।

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी॥
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन॥

फिर शोभा के धाम राम को देखकर वे पलक (मारना) रोककर ठिठककर (स्तब्ध होकर) एकटक देखते ही रह गए। भगवान की विशाल भुजाएँ हैं, लाल कमल के समान नेत्र हैं और शरणागत के भय का नाश करनेवाला साँवला शरीर है।

सघ कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा॥
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता॥

सिंह के-से कंधे हैं, विशाल वक्षःस्थल (चौड़ी छाती) अत्यंत शोभा दे रहा है। असंख्य कामदेवों के मन को मोहित करनेवाला मुख है। भगवान के स्वरूप को देखकर विभीषण के नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया और शरीर अत्यंत पुलकित हो गया। फिर मन में धीरज धरकर उन्होंने कोमल वचन कहे।

नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता॥
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा॥

हे नाथ! मैं दशमुख रावण का भाई हूँ। हे देवताओं के रक्षक! मेरा जन्म राक्षस कुल में हुआ है। मेरा तामसी शरीर है, स्वभाव से ही मुझे पाप प्रिय हैं, जैसे उल्लू को अंधकार पर सहज स्नेह होता है।

दो० - श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥ 45॥

मैं कानों से आपका सुयश सुनकर आया हूँ कि प्रभु भव (जन्म-मरण) के भय का नाश करनेवाले हैं। हे दुखियों के दुःख दूर करनेवाले और शरणागत को सुख देनेवाले रघुवीर!

मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए॥ 45॥

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा॥

प्रभु ने उन्हें ऐसा कहकर दंडवत करते देखा तो वे अत्यंत हर्षित होकर तुरंत उठे। विभीषण के दीन वचन सुनने पर प्रभु के मन को बहुत ही भाए। उन्होंने अपनी विशाल भुजाओं से पकड़कर उनको हृदय से लगा लिया।

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत भयहारी॥
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥

छोटे भाई लक्ष्मण सहित गले मिलकर उनको अपने पास बैठाकर राम भक्तों के भय को हरनेवाले वचन बोले - हे लंकेश! परिवार सहित अपनी कुशल कहो। तुम्हारा निवास बुरी जगह पर है।

खल मंडली बसहु दिनु राती। सखा धरम निबहइ केहि भाँती॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती॥

दिन-रात दुष्टों की मंडली में बसते हो। (ऐसी दशा में) हे सखे! तुम्हारा धर्म किस प्रकार निभता है? मैं तुम्हारी सब रीति (आचार-व्यवहार) जानता हूँ। तुम अत्यंत नीतिनिपुण हो, तुम्हें अनीति नहीं सुहाती।

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥
अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया॥

हे तात! नरक में रहना वरन अच्छा है, परंतु विधाता दुष्ट का संग (कभी) न दे। (विभीषण ने कहा -) हे रघुनाथ! अब आपके चरणों का दर्शन कर कुशल से हूँ, जो आपने अपना सेवक जानकर मुझ पर दया की है।

दो० - तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम॥ 46॥

तब तक जीव की कुशल नहीं और न स्वप्न में भी उसके मन को शांति है, जब तक वह शोक के घर काम (विषय-कामना) को छोड़कर राम को नहीं भजता॥ 46॥

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा॥

लोभ, मोह, मत्सर (डाह), मद और मान आदि अनेकों दुष्ट तभी तक हृदय में बसते हैं, जब तक कि धनुष-बाण और कमर में तरकस धारण किए हुए रघुनाथ हृदय में नहीं बसते।

ममता तरुन तमी अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥

ममता पूर्ण अँधेरी रात है, जो राग-द्वेषरूपी उल्लुओं को सुख देनेवाली है। वह (ममतारूपी रात्रि) तभी तक जीव के मन में बसती है, जब तक प्रभु (आप) का प्रतापरूपी सूर्य उदय नहीं होता।

अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे॥
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला॥

हे राम! आपके चरणारविंद के दर्शन कर अब मैं कुशल से हूँ, मेरे भारी भय मिट गए। हे कृपालु! आप जिस पर अनुकूल होते हैं, उसे तीनों प्रकार के भवशूल (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप) नहीं व्यापते।

मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा॥

मैं अत्यंत नीच स्वभाव का राक्षस हूँ। मैंने कभी शुभ आचरण नहीं किया। जिनका रूप मुनियों के भी ध्यान में नहीं आता, उन प्रभु ने स्वयं हर्षित होकर मुझे हृदय से लगा लिया।

दो॰ - अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव सेब्य जुगल पद कंज॥ 47॥

हे कृपा और सुख के पुंज राम! मेरा अत्यंत असीम सौभाग्य है, जो मैंने ब्रह्मा और शिव के द्वारा सेवित युगल चरण कमलों को अपने नेत्रों से देखा॥ 47॥

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥

(राम ने कहा -) हे सखा! सुनो, मैं तुम्हें अपना स्वभाव कहता हूँ, जिसे काकभुशुंडि, शिव और पार्वती भी जानती हैं। कोई मनुष्य (संपूर्ण) जड़-चेतन जगत का द्रोही हो, यदि वह भी भयभीत होकर मेरी शरण तककर आ जाए,

तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥

और मद, मोह तथा नाना प्रकार के छल-कपट त्याग दे तो मैं उसे बहुत शीघ्र साधु के समान कर देता हूँ। माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र और परिवार -

सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥

इन सबके ममत्वरूपी तागों को बटोरकर और उन सबकी एक डोरी बनाकर उसके द्वारा जो अपने मन को मेरे चरणों में बाँध देता है (सारे सांसारिक संबंधों का केंद्र मुझे बना लेता है), जो समदर्शी है, जिसे कुछ इच्छा नहीं है और जिसके मन में हर्ष, शोक और भय नहीं है।

अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें॥

ऐसा सज्जन मेरे हृदय में कैसे बसता है, जैसे लोभी के हृदय में धन बसा करता है। तुम-सरीखे संत ही मुझे प्रिय हैं। मैं और किसी के निहोरे से (कृतज्ञतावश) देह धारण नहीं करता।

दो॰ - सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम॥ 48॥

जो सगुण (साकार) भगवान के उपासक हैं, दूसरे के हित में लगे रहते हैं, नीति और नियमों में दृढ़ हैं और जिन्हें ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम है, वे मनुष्य मेरे प्राणों के समान हैं॥ 48॥

सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें॥
राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपा बरूथा॥

हे लंकापति! सुनो, तुम्हारे अंदर उपर्युक्त सब गुण हैं। इससे तुम मुझे अत्यंत ही प्रिय हो। राम के वचन सुनकर सब वानरों के समूह कहने लगे - कृपा के समूह राम की जय हो!

सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी॥
पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा॥

प्रभु की वाणी सुनते हैं और उसे कानों के लिए अमृत जानकर विभीषण अघाते नहीं हैं। वे बार-बार राम के चरण कमलों को पकड़ते हैं अपार प्रेम है, हृदय में समाता नहीं है।

सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥

(विभीषण ने कहा -) हे देव! हे चराचर जगत के स्वामी! हे शरणागत के रक्षक! हे सबके हृदय के भीतर की जाननेवाले! सुनिए, मेरे हृदय में पहले कुछ वासना थी, वह प्रभु के चरणों की प्रीतिरूपी नदी में बह गई।

अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। मागा तुरत सिंधु कर नीरा॥

अब तो हे कृपालु! शिव के मन को सदैव प्रिय लगनेवाली अपनी पवित्र भक्ति मुझे दीजिए। 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर रणधीर प्रभु राम ने तुरंत ही समुद्र का जल माँगा।

जदपि सखा तव इच्छा नहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥

(और कहा -) हे सखा! यद्यपि तुम्हारी इच्छा नहीं है, पर जगत में मेरा दर्शन अमोघ है (वह निष्फल नहीं जाता)। ऐसा कहकर राम ने उनको राजतिलक कर दिया। आकाश से पुष्पों की अपार वृष्टि हुई।

दो० - रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड॥ 49(क)॥

राम ने रावण की क्रोधरूपी अग्नि में, जो अपनी (विभीषण की) श्वास (वचन) रूपी पवन से प्रचंड हो रही थी, जलते हुए विभीषण को बचा लिया और उसे अखंड राज्य दिया॥ 49(क)॥

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥ 49(ख)॥

शिव ने जो संपत्ति रावण को दसों सिरों की बलि देने पर दी थी, वही संपत्ति रघुनाथ ने विभीषण को बहुत सकुचते हुए दी॥ 49(ख)॥

अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना॥
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा॥

ऐसे परम कृपालु प्रभु को छोड़कर जो मनुष्य दूसरे को भजते हैं, वे बिना सींग-पूँछ के पशु हैं। अपना सेवक जानकर विभीषण को राम ने अपना लिया। प्रभु का स्वभाव वानरकुल के मन को (बहुत) भाया।

पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी। सर्बरूप सब रहित उदासी॥
बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक॥

फिर सब कुछ जाननेवाले, सबके हृदय में बसनेवाले, सर्वरूप (सब रूपों में प्रकट), सबसे रहित, उदासीन, कारण से (भक्तों पर कृपा करने के लिए) मनुष्य बने हुए तथा राक्षसों के कुल का नाश करनेवाले राम नीति की रक्षा करनेवाले वचन बोले -

सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा॥
संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँति॥

हे वीर वानरराज सुग्रीव और लंकापति विभीषण! सुनो, इस गहरे समुद्र को किस प्रकार पार किया जाए? अनेक जाति के मगर, साँप और मछलियों से भरा हुआ यह अत्यंत अथाह समुद्र पार करने में सब प्रकार से कठिन है।

कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई॥

विभीषण ने कहा - हे रघुनाथ! सुनिए, यद्यपि आपका एक बाण ही करोड़ों समुद्रों को सोखनेवाला है (सोख सकता है), तथापि नीति ऐसी कही गई है (उचित यह होगा) कि (पहले) जाकर समुद्र से प्रार्थना की जाए।

दो० - प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि॥

बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि॥ 50॥

हे प्रभु! समुद्र आपके कुल में बड़े (पूर्वज) हैं, वे विचारकर उपाय बतला देंगे। तब रीछ और वानरों की सारी सेना बिना ही परिश्रम के समुद्र के पार उतर जाएगी॥ 50॥

सखा कही तुम्ह नीति उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई॥
मंत्र न यह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा॥

(राम ने कहा -) हे सखा! तुमने अच्छा उपाय बताया। यही किया जाए, यदि दैव सहायक हों। यह सलाह लक्ष्मण के मन को अच्छी नहीं लगी। राम के वचन सुनकर तो उन्होंने बहुत ही दुःख पाया।

नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा॥
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥

(लक्ष्मण ने कहा -) हे नाथ! दैव का कौन भरोसा! मन में क्रोध कीजिए (ले आइए) और समुद्र को सुखा डालिए। यह दैव तो कायर के मन का एक आधार (तसल्ली देने का उपाय) है। आलसी लोग ही दैव-दैव पुकारा करते हैं।

सुनत बिहसि बोले रघुबीरा। ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा॥
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई॥

यह सुनकर रघुवीर हँसकर बोले - ऐसे ही करेंगे, मन में धीरज रखो। ऐसा कहकर छोटे भाई को समझाकर प्रभु रघुनाथ समुद्र के समीप गए।

प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई॥
जबहिं बिभीषन प्रभु पहिं आए। पाछें रावन दूत पठाए॥

उन्होंने पहले सिर नवाकर प्रणाम किया। फिर किनारे पर कुश बिछाकर बैठ गए। इधर ज्यों ही विभीषण प्रभु के पास आए थे, त्यों ही रावण ने उनके पीछे दूत भेजे थे।

दो॰ - सकल चरित तिन्ह देखे धरें कपट कपि देह।
प्रभु गुन हृदयँ सराहहिं सरनागत पर नेह॥ 51॥

कपट से वानर का शरीर धारण कर उन्होंने सब लीलाएँ देखीं। वे अपने हृदय में प्रभु के

गुणों की और शरणागत पर उनके स्नेह की सराहना करने लगे॥ 51॥

प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस पहिं आने॥

फिर वे प्रकट रूप में भी अत्यंत प्रेम के साथ राम के स्वभाव की बड़ाई करने लगे, उन्हें दुराव (कपट वेश) भूल गया। सब वानरों ने जाना कि ये शत्रु के दूत हैं और वे उन सबको बाँधकर सुग्रीव के पास ले आए।

कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अंग भंग करि पठवहु निसिचर॥
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बाँधि कटक चहु पास फिराए॥

सुग्रीव ने कहा - सब वानरो! सुनो, राक्षसों के अंग-भंग करके भेज दो। सुग्रीव के वचन सुनकर वानर दौड़े। दूतों को बाँधकर उन्होंने सेना के चारों ओर घुमाया।

बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे॥
जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीस कै आना॥

वानर उन्हें बहुत तरह से मारने लगे। वे दीन होकर पुकारते थे, फिर भी वानरों ने उन्हें नहीं छोड़ा। (तब दूतों ने पुकारकर कहा -) जो हमारे नाक-कान काटेगा, उसे कोसलाधीश राम की सौगंध है।

सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए॥
रावन कर दीजहु यह पाती। लछिमन बचन बाचु कुलघाती॥

यह सुनकर लक्ष्मण ने सबको निकट बुलाया। उन्हें बड़ी दया लगी, इससे हँसकर उन्होंने राक्षसों को तुरंत ही छुड़ा दिया। (और उनसे कहा -) रावण के हाथ में यह चिट्ठी देना (और कहना -) हे कुलघातक! लक्ष्मण के शब्दों (संदेसे) को बाँचो।

दो० - कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम संदेसु उदार।
सीता देइ मिलहु न त आवा कालु तुम्हार॥ 52॥

फिर उस मूर्ख से जबानी यह मेरा उदार (कृपा से भरा हुआ) संदेश कहना कि सीता को देकर उनसे (राम से) मिलो, नहीं तो तुम्हारा काल आ गया (समझो)॥ 52॥

तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा॥
कहत राम जसु लंकाँ आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए॥

लक्ष्मण के चरणों में मस्तक नवाकर, राम के गुणों की कथा वर्णन करते हुए दूत तुरंत ही चल दिए। राम का यश कहते हुए वे लंका में आए और उन्होंने रावण के चरणों में सिर नवाए।

बिहसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता॥
पुन कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी॥

दशमुख रावण ने हँसकर बात पूछी - अरे शुक! अपनी कुशल क्यों नहीं कहता? फिर उस विभीषण का समाचार सुना, मृत्यु जिसके अत्यंत निकट आ गई है।

करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥

मूर्ख ने राज्य करते हुए लंका को त्याग दिया। अभागा अब जौ का कीड़ा (घुन) बनेगा (जौ के साथ जैसे घुन भी पिस जाता है, वैसे ही नर वानरों के साथ वह भी मारा जाएगा); फिर भालू और वानरों की सेना का हाल कह, जो कठिन काल की प्रेरणा से यहाँ चली आई है।

जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्ह के हृदयँ त्रास अति मोरी॥

और जिनके जीवन का रक्षक कोमल चित्तवाला बेचारा समुद्र बन गया है (अर्थात उनके और राक्षसों के बीच में यदि समुद्र न होता तो अब तक राक्षस उन्हें मारकर खा गए होते)। फिर उन तपस्वियों की बात बता, जिनके हृदय में मेरा बड़ा डर है।

दो० - की भइ भेंट कि फिरि गए श्रवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर॥ 53॥

उनसे तेरी भेंट हुई या वे कानों से मेरा सुयश सुनकर ही लौट गए? शत्रु सेना का तेज और बल बताता क्यों नहीं? तेरा चित्त बहुत ही चकित (भौंचक्का-सा) हो रहा है॥ 53॥

नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसें। मानहु कहा क्रोध तजि तैसें॥

मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा॥

(दूत ने कहा -) हे नाथ! आपने जैसे कृपा करके पूछा है, वैसे ही क्रोध छोड़कर मेरा कहना मानिए (मेरी बात पर विश्वास कीजिए)। जब आपका छोटा भाई राम से जाकर मिला, तब उसके पहुँचते ही राम ने उसको राजतिलक कर दिया।

रावन दूत हमहि सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हें दुख नाना॥
श्रवन नासिका काटैं लागे। राम सपथ दीन्हें हम त्यागे॥

हम रावण के दूत हैं, यह कानों से सुनकर वानरों ने हमें बाँधकर बहुत कष्ट दिए, यहाँ तक कि वे हमारे नाक-कान काटने लगे। राम की शपथ दिलाने पर कहीं उन्होंने हमको छोड़ा।

पूँछिहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई॥
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी॥

हे नाथ! आपने राम की सेना पूछी, सो उसका वर्णन तो सौ करोड़ मुखों से भी नहीं किया जा सकता। अनेकों रंगों के भालू और वानरों की सेना है, जो भयंकर मुखवाले, विशाल शरीरवाले और भयानक हैं।

जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा॥
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला॥

जिसने नगर को जलाया और आपके पुत्र अक्षय कुमार को मारा, उसका बल तो सब वानरों में थोड़ा है। असंख्य नामोंवाले बड़े ही कठोर और भयंकर योद्धा हैं। उनमें असंख्य हाथियों का बल है और वे बड़े ही विशाल हैं।

दो॰ - द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि॥ 54॥

द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, गद, विकटास्य, दधिमुख, केसरी, निशठ, शठ और जाम्बवान - ये सभी बल की राशि हैं॥ 54॥

ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना॥
राम कृपाँ अतुलित बल तिन्हहीं। तृन समान त्रैलोकहि गनहीं॥

ये सब वानर बल में सुग्रीव के समान हैं और इनके-जैसे (एक-दो नहीं) करोड़ों हैं; उन बहुत-सों को गिन ही कौन सकता है? राम की कृपा से उनमें अतुलनीय बल है। वे तीनों लोकों को तृण के समान (तुच्छ) समझते हैं।

अस मैं सुना श्रवन दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं। जो न तुम्हहि जीतै रन माहीं॥

हे दशग्रीव! मैंने कानों से ऐसा सुना है कि अठारह पद्म तो अकेले वानरों के सेनापति हैं। हे नाथ! उस सेना में ऐसा कोई वानर नहीं है, जो आपको रण में न जीत सके।

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥
सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला। पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला॥

सब के सब अत्यंत क्रोध से हाथ मीजते हैं। पर रघुनाथ उन्हें आज्ञा नहीं देते। हम मछलियों और साँपों सहित समुद्र को सोख लेंगे। नहीं तो बड़े-बड़े पर्वतों से उसे भरकर पूर (पाट) देंगे।

मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका॥

और रावण को मसलकर धूल में मिला देंगे। सब वानर ऐसे ही वचन कह रहे हैं। सब सहज ही निडर हैं; इस प्रकार गरजते और डपटते हैं मानो लंका को निगल ही जाना चाहते हैं।

दो॰ - सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम।
रावन काल कोटि कहुँ जीति सकहिं संग्राम॥ 55॥

सब वानर-भालू सहज ही शूरवीर हैं फिर उनके सिर पर प्रभु (सर्वेश्वर) राम हैं। हे रावण! वे संग्राम में करोड़ों कालों को जीत सकते हैं॥ 55॥

राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई॥
सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहि पूँछेउ नय नागर॥

राम के तेज (सामर्थ्य), बल और बुद्धि की अधिकता को लाखों शेष भी नहीं गा सकते। वे एक ही बाण से सैकड़ों समुद्रों को सोख सकते हैं, परंतु नीति निपुण राम ने (नीति की

रक्षा के लिए) आपके भाई से उपाय पूछा।

तासु बचन सुनि सागर पाहीं। मागत पंथ कृपा मन माहीं॥
सुनत बचन बिहसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा॥

उनके (आपके भाई के) वचन सुनकर वे (राम) समुद्र से राह माँग रहे हैं, उनके मन में कृपा भरी है (इसलिए वे उसे सोखते नहीं)। दूत के ये वचन सुनते ही रावण खूब हँसा (और बोला -) जब ऐसी बुद्धि है, तभी तो वानरों को सहायक बनाया है!

सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥

स्वाभाविक ही डरपोक विभीषण के वचन को प्रमाण करके उन्होंने समुद्र से मचलना (बालहठ) ठाना है। अरे मूर्ख! झूठी बड़ाई क्या करता है? बस, मैंने शत्रु (राम) के बल और बुद्धि की थाह पा ली।

सचिव सभीत बिभीषन जाकें। बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें॥
सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी॥

जिसके विभीषण-जैसा डरपोक मंत्री हो, उसे जगत में विजय और विभूति (ऐश्वर्य) कहाँ? दुष्ट रावण के वचन सुनकर दूत को क्रोध बढ़ आया। उसने मौका समझकर पत्रिका निकाली।

रामानुज दीन्हीं यह पाती। नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती॥
बिहसि बाम कर लीन्हीं रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन॥

(और कहा -) राम के छोटे भाई लक्ष्मण ने यह पत्रिका दी है। हे नाथ! इसे बचवाकर छाती ठंडी कीजिए। रावण ने हँसकर उसे बाएँ हाथ से लिया और मंत्री को बुलवाकर वह मूर्ख उसे बँचाने लगा।

दो० - बातन्ह मनहि रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस।
राम बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस॥ 56(क)॥

(पत्रिका में लिखा था -) अरे मूर्ख! केवल बातों से ही मन को रिझाकर अपने कुल को नष्ट-भ्रष्ट न कर। राम से विरोध करके तू विष्णु, ब्रह्मा और महेश की शरण जाने पर

भी नहीं बचेगा॥ 56(क)॥

की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग।
होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग॥ 56(ख)॥

या तो अभिमान छोड़कर अपने छोटे भाई विभीषण की भाँति प्रभु के चरण कमलों का भ्रमर बन जा। अथवा रे दुष्ट! राम के बाणरूपी अग्नि में परिवार सहित पतिंगा हो जा (दोनों में से जो अच्छा लगे सो कर)॥ 56(ख)॥

सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहि सुनाई॥
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा॥

पत्रिका सुनते ही रावण मन में भयभीत हो गया, परंतु मुख से (ऊपर से) मुसकराता हुआ वह सबको सुनाकर कहने लगा - जैसे कोई पृथ्वी पर पड़ा हुआ हाथ से आकाश को पकड़ने की चेष्टा करता हो, वैसे ही यह छोटा तपस्वी (लक्ष्मण) वाग्विलास करता है (डींग हाँकता है)।

कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा॥

शुक (दूत) ने कहा - हे नाथ! अभिमानी स्वभाव को छोड़कर (इस पत्र में लिखी) सब बातों को सत्य समझिए। क्रोध छोड़कर मेरा वचन सुनिए। हे नाथ! राम से वैर त्याग दीजिए।

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। उर अपराध न एकउ धरिही॥

यद्यपि रघुवीर समस्त लोकों के स्वामी हैं, पर उनका स्वभाव अत्यंत ही कोमल है। मिलते ही प्रभु आप पर कृपा करेंगे और आपका एक भी अपराध वे हृदय में नहीं रखेंगे।

जनकसुता रघुनाथहि दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे॥
जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही॥

जानकी रघुनाथ को दे दीजिए। हे प्रभु! इतना कहना मेरा कीजिए। जब उस (दूत) ने जानकी को देने के लिए कहा, तब दुष्ट रावण ने उसको लात मारी।

नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ॥
करि प्रनामु निज कथा सुनाई। राम कृपाँ आपनि गति पाई॥

वह भी (विभीषण की भाँति) चरणों में सिर नवाकर वहीं चला, जहाँ कृपासागर रघुनाथ थे। प्रणाम करके उसने अपनी कथा सुनाई और राम की कृपा से अपनी गति (मुनि का स्वरूप) पाई।

रिषि अगस्ति कीं साप भवानी। राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी॥
बंदि राम पद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा॥

(शिव कहते हैं -) हे भवानी! वह ज्ञानी मुनि था, अगस्त्य ऋषि के शाप से राक्षस हो गया था। बार-बार राम के चरणों की वंदना करके वह मुनि अपने आश्रम को चला गया।

दो० - बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति॥ 57॥

इधर तीन दिन बीत गए, किंतु जड़ समुद्र विनय नहीं मानता। तब राम क्रोध सहित बोले - बिना भय के प्रीति नहीं होती!॥ 57॥

लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानु॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीति। सहज कृपन सन सुंदर नीति॥

हे लक्ष्मण! धनुष-बाण लाओ, मैं अग्निबाण से समुद्र को सोख डालूँ। मूर्ख से विनय, कुटिल के साथ प्रीति, स्वाभाविक ही कंजूस से सुंदर नीति (उदारता का उपदेश),

ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा॥

ममता में फँसे हुए मनुष्य से ज्ञान की कथा, अत्यंत लोभी से वैराग्य का वर्णन, क्रोधी से शम (शांति) की बात और कामी से भगवान की कथा, इनका वैसा ही फल होता है जैसा ऊसर में बीज बोने से होता है (अर्थात ऊसर में बीज बोने की भाँति यह सब व्यर्थ जाता है)।

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला॥

ऐसा कहकर रघुनाथ ने धनुष चढ़ाया। यह मत लक्ष्मण के मन को बहुत अच्छा लगा। प्रभु ने भयानक (अग्नि) बाण संधान किया, जिससे समुद्र के हृदय के अंदर अग्नि की ज्वाला उठी।

मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने॥
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आयउ तजि माना॥

मगर, साँप तथा मछलियों के समूह व्याकुल हो गए। जब समुद्र ने जीवों को जलते जाना, तब सोने के थाल में अनेक मणियों (रत्नों) को भरकर अभिमान छोड़कर वह ब्राह्मण के रूप में आया।

दो० - काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच॥ 58॥

(काकभुशुंडि कहते हैं -) हे गरुड़! सुनिए, चाहे कोई करोड़ों उपाय करके सींचे, पर केला तो काटने पर ही फलता है। नीच विनय से नहीं मानता, वह डाँटने पर ही झुकता है (रास्ते पर आता है)॥ 58॥

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी॥

समुद्र ने भयभीत होकर प्रभु के चरण पकड़कर कहा - हे नाथ! मेरे सब अवगुण (दोष) क्षमा कीजिए। हे नाथ! आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी - इन सबकी करनी स्वभाव से ही जड़ है।

तव प्रेरित मायाँ उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहें सुख लहई॥

आपकी प्रेरणा से माया ने इन्हें सृष्टि के लिए उत्पन्न किया है, सब ग्रंथों ने यही गाया है। जिसके लिए स्वामी की जैसी आज्ञा है, वह उसी प्रकार से रहने में सुख पाता है।

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही॥
ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥

प्रभु ने अच्छा किया जो मुझे शिक्षा (दंड) दी; किंतु मर्यादा (जीवों का स्वभाव) भी आपकी

ही बनाई हुई है। ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और स्त्री - ये सब ताड़ना के अधिकारी हैं।

प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई॥

प्रभु के प्रताप से मैं सूख जाऊँगा और सेना पार उतर जाएगी, इसमें मेरी बड़ाई नहीं है (मेरी मर्यादा नहीं रहेगी)। तथापि प्रभु की आज्ञा अपेल है (अर्थात आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं हो सकता) ऐसा वेद गाते हैं। अब आपको जो अच्छा लगे, मैं तुरंत वही करूँ।

दो॰ - सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ॥ 59॥

समुद्र के अत्यंत विनीत वचन सुनकर कृपालु राम ने मुसकराकर कहा - हे तात! जिस प्रकार वानरों की सेना पार उतर जाए, वह उपाय बताओ॥ 59॥

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाई॥
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे॥

(समुद्र ने कहा -) हे नाथ! नील और नल दो वानर भाई हैं। उन्होंने लड़कपन में ऋषि से आशीर्वाद पाया था। उनके स्पर्श कर लेने से ही भारी-भारी पहाड़ भी आपके प्रताप से समुद्र पर तैर जाएँगे।

मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहउँ बल अनुमान सहाई॥
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ॥

मैं भी प्रभु की प्रभुता को हृदय में धारण कर अपने बल के अनुसार (जहाँ तक मुझसे बन पड़ेगा) सहायता करूँगा। हे नाथ! इस प्रकार समुद्र को बँधवाइए, जिससे तीनों लोकों में आपका सुंदर यश गाया जाए।

एहि सर मम उत्तर तट बासी। हतहु नाथ खल नर अघ रासी॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा॥

इस बाण से मेरे उत्तर तट पर रहनेवाले पाप की राशि दुष्ट मनुष्यों का वध कीजिए। कृपालु और रणधीर राम ने समुद्र के मन की पीड़ा सुनकर उसे तुरंत ही हर लिया (अर्थात

बाण से उन दुष्टों का वध कर दिया)।

देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा॥

राम का भारी बल और पौरुष देखकर समुद्र हर्षित होकर सुखी हो गया। उसने उन दुष्टों का सारा चरित्र प्रभु को कह सुनाया। फिर चरणों की वंदना करके समुद्र चला गया।

छं० - निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ।
यह चरित कलि मलहर जथामति दास तुलसी गायऊ॥
सुख भवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना॥

समुद्र अपने घर चला गया, श्रीरघुनाथ को यह मत (उसकी सलाह) अच्छा लगा। यह चरित्र कलियुग के पापों को हरनेवाला है, इसे तुलसीदास ने अपनी बुद्धि के अनुसार गाया है। रघुनाथ के गुणसमूह सुख के धाम, संदेह का नाश करनेवाले और विषाद का दमन करनेवाले हैं। अरे मूर्ख मन! तू संसार की सब आशा-भरोसा त्यागकर निरंतर इन्हें गा और सुन।

दो० - सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥ 60॥

रघुनाथ का गुणगान संपूर्ण सुंदर मंगलों का देनेवाला है। जो इसे आदर सहित सुनेंगे, वे बिना किसी जहाज (अन्य साधन) के ही भवसागर को तर जाएँगे॥ 60॥

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने पंचमः सोपानः समाप्तः।
कलियुग के समस्त पापों का नाश करनेवाले श्री रामचरितमानस का यह पाँचवाँ सोपान समाप्त हुआ।

(सुंदरकांड समाप्त)

अध्याय-६ लंकाकाण्ड [887-1045]

भगवान शंकर जी के मन द्वारा रचित श्रीराम जी के परमपवित्र चरित्र

रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्।
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं
वंदे कंदावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम्॥ 1॥

कामदेव के शत्रु शिव के सेव्य, भव (जन्म-मृत्यु) के भय को हरनेवाले, कालरूपी मतवाले हाथी के लिए सिंह के समान, योगियों के स्वामी (योगीश्वर), ज्ञान के द्वारा जानने योग्य, गुणों की निधि, अजेय, निर्गुण, निर्विकार, माया से परे, देवताओं के स्वामी, दुष्टों के वध में तत्पर, ब्राह्मणवृंद के एकमात्र देवता (रक्षक), जलवाले मेघ के समान सुंदर श्याम, कमल के से नेत्रवाले, पृथ्वीपति (राजा) के रूप में परमदेव राम की मैं वंदना करता हूँ॥ 1॥

शंखेन्द्वाभमतीवसुंदरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं
कालव्यालकरालभूषणधरं गंगाशशांकप्रियम्।
काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कंदर्पहं शंकरम्॥ 2॥

शंख और चंद्रमा की-सी कांति के अत्यंत सुंदर शरीरवाले, व्याघ्रचर्म के वस्त्रवाले, काल के समान (अथवा काले रंग के) भयानक सर्पों का भूषण धारण करनेवाले, गंगा और चंद्रमा के प्रेमी, काशीपति, कलियुग के पाप समूह का नाश करनेवाले, कल्याण के कल्पवृक्ष, गुणों के निधान और कामदेव को भस्म करनेवाले, पार्वती पति वंदनीय शंकर को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 2॥

यो ददाति सतां शंभुः कैवल्यमपि दुर्लभम्।
खलानां दंडकृद्योऽसौ शंकरः शं तनोतु मे॥ 3॥

जो सत पुरुषों को अत्यंत दुर्लभ कैवल्यमुक्ति तक दे डालते हैं और जो दुष्टों को दंड देनेवाले हैं, वे कल्याणकारी शंभु मेरे कल्याण का विस्तार करें॥ 3॥

दो॰ - लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु कोदंड॥

लव, निमेष, परमाणु, वर्ष, युग और कल्प जिनके प्रचंड बाण हैं और काल जिनका धनुष है, हे मन! तू उन राम को क्यों नहीं भजता?

सो॰ - सिंधु बचन सुनि राम सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ।
अब बिलंबु केहि काम करहु सेतु उतरै कटकु॥

समुद्र के वचन सुनकर प्रभु राम ने मंत्रियों को बुलाकर ऐसा कहा - अब विलंब किसलिए हो रहा है? सेतु (पुल) तैयार करो, जिससे सेना उतरे।

सुनहु भानुकुल केतु जामवंत कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भव सागर तरहिं॥

जाम्बवान ने हाथ जोड़कर कहा - हे सूर्यकुल के ध्वजास्वरूप (कीर्ति को बढ़ानेवाले) राम! सुनिए। हे नाथ! (सबसे बड़ा) सेतु तो आपका नाम ही है, जिस पर चढ़कर (जिसका आश्रय लेकर) मनुष्य संसाररूपी समुद्र से पार हो जाते हैं।

यह लघु जलधि तरत कति बारा। अस सुनि पुनि कह पवनकुमारा॥
प्रभु प्रताप बड़वानल भारी। सोषेउ प्रथम पयोनिधि बारी॥

फिर यह छोटा-सा समुद्र पार करने में कितनी देर लगेगी? ऐसा सुनकर फिर पवनकुमार हनुमान ने कहा - प्रभु का प्रताप भारी बड़वानल (समुद्र की आग) के समान है। इसने पहले समुद्र के जल को सोख लिया था,

तव रिपु नारि रुदन जल धारा। भरेउ बहोरि भयउ तेहिं खारा॥
सुनि अति उकुति पवनसुत केरी। हरषे कपि रघुपति तन हेरी॥

परंतु आपके शत्रुओं की स्त्रियों के आँसुओं की धारा से यह फिर भर गया और उसी से खारा भी हो गया। हनुमान की यह अत्युक्ति (अलंकारपूर्ण युक्ति) सुनकर वानर रघुनाथ की ओर देखकर हर्षित हो गए।

जामवंत बोले दोउ भाई। नल नीलहि सब कथा सुनाई॥
राम प्रताप सुमिरि मन माहीं। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं॥

जाम्बवान ने नल-नील दोनों भाइयों को बुलाकर उन्हें सारी कथा कह सुनाई (और कहा -) मन में राम के प्रताप को स्मरण करके सेतु तैयार करो, (रामप्रताप से) कुछ भी परिश्रम

नहीं होगा।

बोलि लिए कपि निकर बहोरी। सकल सुनहु बिनती कछु मोरी॥
राम चरन पंकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू॥

फिर वानरों के समूह को बुला लिया (और कहा -) आप सब लोग मेरी कुछ विनती सुनिए। अपने हृदय में राम के चरण-कमलों को धारण कर लीजिए और सब भालू और वानर एक खेल कीजिए।

धावहु मर्कट बिकट बरूथा। आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा॥
सुनि कपि भालु चले करि हूहा। जय रघुबीर प्रताप समूहा॥

विकट वानरों के समूह (आप) दौड़ जाइए और वृक्षों तथा पर्वतों के समूहों को उखाड़ लाइए। यह सुनकर वानर और भालू हूह (हुँकार) करके और रघुनाथ के प्रतापसमूह की (अथवा प्रताप के पुंज राम की) जय पुकारते हुए चले।

दो॰ - अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ।
आनि देहिं नल नीलहि रचहिं ते सेतु बनाइ॥ 1॥

बहुत ऊँचे-ऊँचे पर्वतों और वृक्षों को खेल की तरह ही (उखाड़कर) उठा लेते हैं और ला-लाकर नल-नील को देते हैं। वे अच्छी तरह गढ़कर (सुंदर) सेतु बनाते हैं॥ 1॥

सैल बिसाल आनि कपि देहीं। कंदुक इव नल नील ते लेहीं॥
देखि सेतु अति सुंदर रचना। बिहसि कृपानिधि बोले बचना॥

वानर बड़े-बड़े पहाड़ ला-लाकर देते हैं और नल-नील उन्हें गेंद की तरह ले लेते हैं। सेतु की अत्यंत सुंदर रचना देखकर कृपासिंधु राम हँसकर वचन बोले -

परम रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाइ नहिं बरनी॥
करिहउँ इहाँ संभु थापना। मोरे हृदयँ परम कलपना॥

यह (यहाँ की) भूमि परम रमणीय और उत्तम है। इसकी असीम महिमा वर्णन नहीं की जा सकती। मैं यहाँ शिव की स्थापना करूँगा। मेरे हृदय में यह महान संकल्प है।

सुनि कपीस बहु दूत पठाए। मुनिबर सकल बोलि लै आए॥

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥

राम के वचन सुनकर वानरराज सुग्रीव ने बहुत-से दूत भेजे, जो सब श्रेष्ठ मुनियों को बुलाकर ले आए। शिवलिंग की स्थापना करके विधिपूर्वक उसका पूजन किया। (फिर भगवान बोले -) शिव के समान मुझको दूसरा कोई प्रिय नहीं है।

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥

जो शिव से द्रोह रखता है और मेरा भक्त कहलाता है, वह मनुष्य स्वप्न में भी मुझे नहीं पाता। शंकर से विमुख होकर (विरोध करके) जो मेरी भक्ति चाहता है, वह नरकगामी, मूर्ख और अल्पबुद्धि है।

दो० - संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥ 2॥

जिनको शंकर प्रिय हैं, परंतु जो मेरे द्रोही हैं एवं जो शिव के द्रोही हैं और मेरे दास (बनना चाहते) हैं, वे मनुष्य कल्पभर घोर नरक में निवास करते हैं॥ 2॥

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि॥

जो मनुष्य (मेरे स्थापित किए हुए इन) रामेश्वर का दर्शन करेंगे, वे शरीर छोड़कर मेरे लोक को जाएँगे। और जो गंगाजल लाकर इन पर चढ़ावेगा, वह मनुष्य सायुज्य मुक्ति पावेगा (अर्थात मेरे साथ एक हो जाएगा)।

होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि॥
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही। सो बिनु श्रम भवसागर तरिही॥

जो छल छोड़कर और निष्काम होकर रामेश्वर की सेवा करेंगे, उन्हें शंकर मेरी भक्ति देंगे और जो मेरे बनाए सेतु का दर्शन करेगा, वह बिना ही परिश्रम संसाररूपी समुद्र से तर जाएगा।

राम बचन सब के जिय भाए। मुनिबर निज निज आश्रम आए॥

गिरिजा रघुपति कै यह रीती। संतत करहिं प्रनत पर प्रीती॥

राम के वचन सबके मन को अच्छे लगे। तदनंतर वे श्रेष्ठ मुनि अपने-अपने आश्रमों को लौट आए। (शिव कहते हैं -) हे पार्वती! रघुनाथ की यह रीति है कि वे शरणागत पर सदा प्रीति करते हैं।

बाँधा सेतु नील नल नागर। राम कृपाँ जसु भयउ उजागर॥
बूड़हिं आनहि बोरहिं जेई। भए उपल बोहित सम तेई॥

चतुर नल और नील ने सेतु बाँधा। राम की कृपा से उनका यह (उज्ज्वल) यश सर्वत्र फैल गया। जो पत्थर आप डूबते हैं और दूसरों को डुबा देते हैं, वे ही जहाज के समान (स्वयं तैरनेवाले और दूसरों को पार ले जानेवाले) हो गए।

महिमा यह न जलधि कइ बरनी। पाहन गुन न कपिन्ह कइ करनी॥

यह न तो समुद्र की महिमा वर्णन की गई है, न पत्थरों का गुण है और न वानरों की ही कोई करामात है।

दो॰ - श्री रघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन॥ 3॥

श्री रघुवीर के प्रताप से पत्थर भी समुद्र पर तैर गए। ऐसे राम को छोड़कर जो किसी दूसरे स्वामी को जाकर भजते हैं वे (निश्चय ही) मंदबुद्धि हैं।

बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा। देखि कृपानिधि के मन भावा॥
चली सेन कछु बरनि न जाई। गर्जहिं मर्कट भट समुदाई॥

नल-नील ने सेतु बाँधकर उसे बहुत मजबूत बनाया। देखने पर वह कृपानिधान राम के मन को (बहुत ही) अच्छा लगा। सेना चली, जिसका कुछ वर्णन नहीं हो सकता। योद्धा वानरों के समुदाय गरज रहे हैं।

सेतुबंध ढिग चढ़ि रघुराई। चितव कृपाल सिंधु बहुताई॥
देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा। प्रगट भए सब जलचर बृंदा॥

कृपालु रघुनाथ सेतुबंध के तट पर चढ़कर समुद्र का विस्तार देखने लगे। करुणाकंद

(करुणा के मूल) प्रभु के दर्शन के लिए सब जलचरों के समूह प्रकट हो गए (जल के ऊपर निकल आए)।

मकर नक्र नाना झष ब्याला। सत जोजन तन परम बिसाला॥
अइसेउ एक तिन्हहि जे खाहीं। एकन्ह कें डर तेपि डेराहीं॥

बहुत तरह के मगर, नाक (घड़ियाल), मच्छ और सर्प थे, जिनके सौ-सौ योजन के बहुत बड़े विशाल शरीर थे। कुछ ऐसे भी जंतु थे, जो उनको भी खा जाएँ। किसी-किसी के डर से तो वे भी डर रहे थे।

प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भए सुखारे॥
तिन्ह कीं ओट न देखिअ बारी। मगन भए हरि रूप निहारी॥

वे सब (वैर-विरोध भूलकर) प्रभु के दर्शन कर रहे हैं, हटाने से भी नहीं हटते। सबके मन हर्षित हैं; सब सुखी हो गए। उनकी आड़ के कारण जल नहीं दिखाई पड़ता। वे सब भगवान का रूप देखकर (आनंद और प्रेम में) मग्न हो गए।

चला कटकु प्रभु आयसु पाई। को कहि सक कपि दल बिपुलाई॥

प्रभु की आज्ञा पाकर सेना चली। वानर सेना की विपुलता (अत्यधिक संख्या) को कौन कह सकता है?

दो० – सेतु बंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं॥ 4॥

सेतुबंध पर बड़ी भीड़ हो गई, इससे कुछ वानर आकाश मार्ग से उड़ने लगे और दूसरे (कितने ही) जलचर जीवों पर चढ़-चढ़कर पार जा रहे हैं॥ 4॥

अस कौतुक बिलोकि द्वौ भाई। बिहँसि चले कृपाल रघुराई॥
सेन सहित उतरे रघुबीरा। कहि न जाइ कपि जूथप भीरा॥

कृपालु रघुनाथ (तथा लक्ष्मण) दोनों भाई ऐसा कौतुक देखकर हँसते हुए चले। रघुवीर सेना सहित समुद्र के पार हो गए। वानरों और उनके सेनापतियों की भीड़ कही नहीं जा सकती।

सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा॥

खाहु जाइ फल मूल सुहाए। सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाए॥

प्रभु ने समुद्र के पार डेरा डाला और सब वानरों को आज्ञा दी कि तुम जाकर सुंदर फल-मूल खाओ। यह सुनते ही रीछ-वानर जहाँ-तहाँ दौड़ पड़े।

सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी॥
खाहिं मधुर फल बिटप हलावहिं। लंका सन्मुख सिखर चलवाहिं॥

राम के हित (सेवा) के लिए सब वृक्ष ऋतु-कुऋतु - समय की गति को छोड़कर फल उठे। वानर-भालू मीठे फल खा रहे हैं, वृक्षों को हिला रहे हैं और पर्वतों के शिखरों को लंका की ओर फेंक रहे हैं।

जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं। घेरि सकल बहु नाच नचावहिं॥
दसनन्हि काटि नासिका काना। कहि प्रभु सुजसु देहिं तब जाना॥

घूमते-घूमते जहाँ कहीं किसी राक्षस को पा जाते हैं तो सब उसे घेरकर खूब नाच नचाते हैं और दाँतों से उसके नाक-कान काटकर, प्रभु का सुयश कहकर (अथवा कहलाकर) तब उसे जाने देते हैं।

जिन्ह कर नासा कान निपाता। तिन्ह रावनहि कही सब बाता॥
सुनत श्रवन बारिधि बंधाना। दस मुख बोलि उठा अकुलाना॥

जिन राक्षसों के नाक और कान काट डाले गए, उन्होंने रावण से सब समाचार कहा। समुद्र (पर सेतु) का बाँधा जाना कानों से सुनते ही रावण घबड़ाकर दसों मुखों से बोल उठा -

दो० - बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥ 5॥

वननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिंधु, वारीश, तोयनिधि, कंपति, उदधि, पयोधि, नदीश को क्या सचमुच ही बाँध लिया?॥ 5॥

निज बिकलता बिचारि बहोरी॥ बिहँसि गयउ गृह करि भय भोरी॥
मंदोदरीं सुन्यो प्रभु आयो। कौतुकहीं पाथोधि बँधायो॥

फिर अपनी व्याकुलता को समझकर (ऊपर से) हँसता हुआ, भय को भुलाकर, रावण महल

को गया। (जब) मंदोदरी ने सुना कि प्रभु राम आ गए हैं और उन्होंने खेल में ही समुद्र को बँधवा लिया है,

कर गहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी॥
चरन नाइ सिरु अंचलु रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा॥

(तब) वह हाथ पकड़कर, पति को अपने महल में लाकर परम मनोहर वाणी बोली। चरणों में सिर नवाकर उसने अपना आँचल पसारा और कहा - हे प्रियतम! क्रोध त्याग कर मेरा वचन सुनिए।

नाथ बयरु कीजे ताही सों। बुधि बल सकिअ जीति जाही सों॥
तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा॥

हे नाथ! वैर उसी के साथ करना चाहिए, जिससे बुद्धि और बल के द्वारा जीत सके। आप में और रघुनाथ में निश्चय ही कैसा अंतर है, जैसा जुगनू और सूर्य में!

अति बल मधु कैटभ जेहिं मारे। महाबीर दितिसुत संघारे॥
जेहिं बलि बाँधि सहस भुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा॥

जिन्होंने (विष्णु रूप से) अत्यंत बलवान मधु और कैटभ (दैत्य) मारे और (वराह और नृसिंह रूप से) महान शूरवीर दिति के पुत्रों (हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु) का संहार किया; जिन्होंने (वामन रूप से) बलि को बाँधा और (परशुराम रूप से) सहस्रबाहु को मारा, वे ही (भगवान) पृथ्वी का भार हरण करने के लिए (रामरूप में) अवतीर्ण (प्रकट) हुए हैं!

तासु बिरोध न कीजिअ नाथा। काल करम जिव जाकें हाथा॥

हे नाथ! उनका विरोध न कीजिए, जिनके हाथ में काल, कर्म और जीव सभी हैं।

दो॰ - रामहि सौंपि जानकी नाइ कमल पद माथ।
सुत कहुँ राज समर्पि बन जाइ भजिअ रघुनाथ॥ 6॥

(राम) के चरण कमलों में सिर नवाकर (उनकी शरण में जाकर) उनको जानकी सौंप दीजिए और आप पुत्र को राज्य देकर वन में जाकर रघुनाथ का भजन कीजिए॥ 6॥

नाथ दीनदयाल रघुराई। बाघउ सनमुख गएँ न खाई॥

चाहिअ करन सो सब करि बीते। तुम्ह सुर असुर चराचर जीते॥

हे नाथ! रघुनाथ तो दीनों पर दया करनेवाले हैं। सम्मुख (शरण में) जाने पर तो बाघ भी नहीं खाता। आपको जो कुछ करना चाहिए था, वह सब आप कर चुके। आपने देवता, राक्षस तथा चर-अचर सभी को जीत लिया।

संत कहहिं असि नीति दसानन। चौथेंपन जाइहि नृप कानन॥
तासु भजनु कीजिअ तहँ भर्ता। जो कर्ता पालक संहर्ता॥

हे दशमुख! संतजन ऐसी नीति कहते हैं कि चौथेपन (बुढ़ापे) में राजा को वन में चला जाना चाहिए। हे स्वामी! वहाँ (वन में) आप उनका भजन कीजिए जो सृष्टि के रचनेवाले, पालनेवाले और संहार करनेवाले हैं।

सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी। भजहु नाथ ममता सब त्यागी॥
मुनिबर जतनु करहिं जेहि लागी। भूप राजु तजि होहिं बिरागी॥

हे नाथ! आप विषयों की सारी ममता छोड़कर उन्हीं शरणागत पर प्रेम करनेवाले भगवान का भजन कीजिए। जिनके लिए श्रेष्ठ मुनि साधन करते हैं और राजा राज्य छोड़कर वैरागी हो जाते हैं -

सोइ कोसलाधीस रघुराया। आयउ करन तोहि पर दाया॥
जौं पिय मानहु मोर सिखावन। सुजसु होइ तिहुँ पुर अति पावन॥

वही कोसलाधीश रघुनाथ आप पर दया करने आए हैं। हे प्रियतम! यदि आप मेरी सीख मान लेंगे, तो आपका अत्यंत पवित्र और सुंदर यश तीनों लोकों में फैल जाएगा।

दो० - अस कहि नयन नीर भरि गहि पद कंपित गात।
नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात॥ 7॥

ऐसा कहकर, नेत्रों में (करुणा का) जल भरकर और पति के चरण पकड़कर, काँपते हुए शरीर से मंदोदरी ने कहा - हे नाथ! रघुनाथ का भजन कीजिए, जिससे मेरा सुहाग अचल हो जाए॥ 7॥

तब रावन मयसुता उठाई। कहै लाग खल निज प्रभुताई॥

सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना॥

तब रावण ने मंदोदरी को उठाया और वह दुष्ट उससे अपनी प्रभुता कहने लगा - हे प्रिये! सुन, तूने व्यर्थ ही भय मान रखा है। बता तो जगत में मेरे समान योद्धा है कौन?

बरुन कुबेर पवन जम काला। भुज बल जितेउँ सकल दिगपाला॥
देव दनुज नर सब बस मोरें। कवन हेतु उपजा भय तोरें॥

वरुण, कुबेर, पवन, यमराज आदि सभी दिक्पालों को तथा काल को भी मैंने अपनी भुजाओं के बल से जीत रखा है। देवता, दानव और मनुष्य सभी मेरे वश में हैं। फिर तुझको यह भय किस कारण उत्पन्न हो गया?

नाना बिधि तेहि कहेसि बुझाई। सभाँ बहोरि बैठ सो जाई॥
मंदोदरीं हृदयँ अस जाना। काल बस्य उपजा अभिमाना॥

मंदोदरी ने उसे बहुत तरह से समझाकर कहा (किंतु रावण ने उसकी एक भी बात न सुनी) और वह फिर सभा में जाकर बैठ गया। मंदोदरी ने हृदय में ऐसा जान लिया कि काल के वश होने से पति को अभिमान हो गया है।

सभाँ आइ मंत्रिन्ह तेहिं बूझा। करब कवन बिधि रिपु सैं जूझा॥
कहहिं सचिव सुनु निसिचर नाहा। बार बार प्रभु पूछहु काहा॥

सभा में आकर उसने मंत्रियों से पूछा कि शत्रु के साथ किस प्रकार से युद्ध करना होगा? मंत्री कहने लगे - हे राक्षसों के नाथ! हे प्रभु! सुनिए, आप बार-बार क्या पूछते हैं?

कहहु कवन भय करिअ बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा॥

कहिए तो (ऐसा) कौन-सा बड़ा भय है, जिसका विचार किया जाए? (भय की बात ही क्या है?) मनुष्य और वानर-भालू तो हमारे भोजन (की सामग्री) हैं।

दो० - सब के बचन श्रवन सुनि कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति बिरोध न करिअ प्रभु मंत्रिन्ह मति अति थोरि॥ 8॥

कानों से सबके वचन सुनकर (रावण का पुत्र) प्रहस्त हाथ जोड़कर कहने लगा - हे प्रभु!

नीति के विरुद्ध कुछ भी नहीं करना चाहिए, मंत्रियों में बहुत ही थोड़ी बुद्धि है॥ 8॥

कहहिं सचिव सठ ठकुर सोहाती। नाथ न पूर आव एहि भाँती॥
बारिधि नाघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महुँ सबु गावा॥

ये सभी मूर्ख (खुशामदी) ठकुरसुहाती (मुँहदेखी) कह रहे हैं। हे नाथ! इस प्रकार की बातों से पूरा नहीं पड़ेगा। एक ही बंदर समुद्र लाँघकर आया था। उसका चरित्र सब लोग अब भी मन-ही-मन गाया करते हैं (स्मरण किया करते हैं)।

छुधा न रही तुम्हहि तब काहू। जारत नगरु कस न धरि खाहू॥
सुनत नीक आगें दुःख पावा। सचिवन अस मत प्रभुहि सुनावा॥

उस समय तुम लोगों में से किसी को भूख न थी? (बंदर तो तुम्हारा भोजन ही हैं, फिर) नगर जलाते समय उसे पकड़कर क्यों नहीं खा लिया? इन मंत्रियों ने स्वामी (आप) को ऐसी सम्मति सुनाई है जो सुनने में अच्छी है पर जिससे आगे चलकर दुःख पाना होगा।

जेहिं बारीस बँधायउ हेला। उतरेउ सेन समेत सुबेला॥
सो भनु मनुज खाब हम भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई॥

जिसने खेल-ही-खेल में समुद्र बँधा लिया और जो सेना सहित सुबेल पर्वत पर आ उतरा है। हे भाई! कहो वह मनुष्य है, जिसे कहते हो कि हम खा लेंगे? सब गाल फुला-फुलाकर (पागलों की तरह) वचन कह रहे हैं!

तात बचन मम सुनु अति आदर। जनि मन गुनहु मोहि करि कादर।
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं॥

हे तात! मेरे वचनों को बहुत आदर से (बड़े गौर से) सुनिए। मुझे मन में कायर न समझ लीजिएगा। जगत में ऐसे मनुष्य झुंड-के-झुंड (बहुत अधिक) हैं, जो प्यारी (मुँह पर मीठी लगनेवाली) बात ही सुनते और कहते हैं।

बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे॥
प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। सीता देइ करहु पुनि प्रीती॥

हे प्रभो! सुनने में कठोर परंतु (परिणाम में) परम हितकारी वचन जो सुनते और कहते हैं, वे मनुष्य बहुत ही थोड़े हैं। नीति सुनिए, (उसके अनुसार) पहले दूत भेजिए, और (फिर)

सीता को देकर राम से प्रीति (मेल) कर लीजिए।

दो॰ - नारि पाइ फिरि जाहिं जौं तौ न बढ़ाइअ रारि।
नाहिं त सन्मुख समर महि तात करिअ हठि मारि॥ 9॥

यदि वे स्त्री पाकर लौट जाएँ, तब तो (व्यर्थ) झगड़ा न बढ़ाइए। नहीं तो (यदि न फिरें तो) हे तात! सम्मुख युद्धभूमि में उनसे हठपूर्वक (डटकर) मार-काट कीजिए॥ 9॥

यह मत जौं मानहु प्रभु मोरा। उभय प्रकार सुजसु जग तोरा॥
सुत सन कह दसकंठ रिसाई। असि मति सठ केहिं तोहि सिखाई॥

हे प्रभो! यदि आप मेरी यह सम्मति मानेंगे, तो जगत में दोनों ही प्रकार से आपका सुयश होगा। रावण ने गुस्से में भरकर पुत्र से कहा - अरे मूर्ख! तुझे ऐसी बुद्धि किसने सिखाई?

अबहीं ते उर संसय होई। बेनुमूल सुत भयहु घमोई॥
सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा। चला भवन कहि बचन कठोरा॥

अभी से हृदय में संदेह (भय) हो रहा है? हे पुत्र! तू तो बाँस की जड़ में घमोई हुआ (तू मेरे वंश के अनुकूल या अनुरूप नहीं हुआ)। पिता की अत्यंत घोर और कठोर वाणी सुनकर प्रहस्त ये कड़े वचन कहता हुआ घर को चला गया।

हित मत तोहि न लागत कैसें। काल बिबस कहुँ भेषज जैसें॥
संध्या समय जानि दससीसा। भवन चलेउ निरखत भुज बीसा॥

हित की सलाह आपको कैसे नहीं लगती (आप पर कैसे असर नहीं करती), जैसे मृत्यु के वश हुए (रोगी) को दवा नहीं लगती। संध्या का समय जानकर रावण अपनी बीसों भुजाओं को देखता हुआ महल को चला।

लंका सिखर उपर आगारा। अति बिचित्र तहँ होइ अखारा॥
बैठ जाइ तेहिं मंदिर रावन। लागे किंनर गुन गन गावन॥

लंका की चोटी पर एक अत्यंत विचित्र महल था। वहाँ नाच-गान का अखाड़ा जमता था। रावण उस महल में जाकर बैठ गया। किन्नर उसके गुणसमूहों को गाने लगे।

बाजहिं ताल पखाउज बीना। नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना॥

ताल (करताल), पखावज (मृदंग) और बीणा बज रहे हैं। नृत्य में प्रवीण अप्सराएँ नाच रही हैं।

दो॰ - सुनासीर सत सरिस सो संतत करइ बिलास।
परम प्रबल रिपु सीस पर तद्यपि सोच न त्रास॥ 10॥

वह निरंतर सैकड़ों इंद्रों के समान भोग-विलास करता रहता है। यद्यपि (राम-सरीखा) अत्यंत प्रबल शत्रु सिर पर है, फिर भी उसको न तो चिंता है और न डर ही है॥ 10॥

इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा॥
सिखर एक उतंग अति देखी। परम रम्य सम सुभ्र बिसेषी॥

यहाँ रघुवीर सुबेल पर्वत पर सेना की बड़ी भीड़ (बड़े समूह) के साथ उतरे। पर्वत का एक बहुत ऊँचा, परम रमणीय, समतल और विशेष रूप से उज्ज्वल शिखर देखकर -

तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाए॥
ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहिं आसन आसीन कृपाला॥

वहाँ लक्ष्मण ने वृक्षों के कोमल पत्ते और सुंदर फूल अपने हाथों से सजाकर बिछा दिए। उस पर सुंदर और कोमल मृग छाला बिछा दी। उसी आसन पर कृपालु राम विराजमान थे।

प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा। बाम दहिन दिसि चाप निषंगा॥
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना। कह लंकेस मंत्र लगि काना॥

प्रभु राम वानरराज सुग्रीव की गोद में अपना सिर रखे हैं। उनकी बाईं ओर धनुष तथा दाहिनी ओर तरकस (रखा) है। वे अपने दोनों करकमलों से बाण सुधार रहे हैं। विभीषण कानों से लगकर सलाह कर रहे हैं।

बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना॥
प्रभु पाछें लछिमन बीरासन। कटि निषंग कर बान सरासन॥

परम भाग्यशाली अंगद और हनुमान अनेकों प्रकार से प्रभु के चरण कमलों को दबा रहे

हैं। लक्ष्मण कमर में तरकस कसे और हाथों में धनुष-बाण लिए वीरासन से प्रभु के पीछे सुशोभित हैं।

दो॰ - ऐहि बिधि कृपा रूप गुन धाम रामु आसीन।
धन्य ते नर एहिं ध्यान जे रहत सदा लयलीन॥ 11(क)॥

इस प्रकार कृपा, रूप (सौंदर्य) और गुणों के धाम राम विराजमान हैं। वे मनुष्य धन्य हैं जो सदा इस ध्यान में लौ लगाए रहते हैं॥ 11(क)॥

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक॥ 11(ख)॥

पूर्व दिशा की ओर देखकर प्रभु राम ने चंद्रमा को उदय हुआ देखा। तब वे सबसे कहने लगे - चंद्रमा को तो देखो। कैसा सिंह के समान निडर है!॥ 11(ख)॥

पूरब दिसि गिरिगुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी॥
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन बन चारी॥

पूर्व दिशारूपी पर्वत की गुफा में रहनेवाला, अत्यंत प्रताप, तेज और बल की राशि यह चंद्रमारूपी सिंह अंधकाररूपी मतवाले हाथी के मस्तक को विदीर्ण करके आकाशरूपी वन में निर्भय विचर रहा है।

बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुंदरी केर सिंगारा॥
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई॥

आकाश में बिखरे हुए तारे मोतियों के समान हैं, जो रात्रिरूपी सुंदर स्त्री के श्रृंगार हैं। प्रभु ने कहा - भाइयो! चंद्रमा में जो कालापन है, वह क्या है? अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार कहो।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई॥
मारेउ राहु ससिहि कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई॥

सुग्रीव ने कहा - हे रघुनाथ! सुनिए। चंद्रमा में पृथ्वी की छाया दिखाई दे रही है। किसी ने कहा - चंद्रमा को राहु ने मारा था। वही (चोट का) काला दाग हृदय पर पड़ा हुआ है।

कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा। सार भाग ससि कर हरि लीन्हा॥
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं। तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं॥

कोई कहता है - जब ब्रह्मा ने (कामदेव की स्त्री) रति का मुख बनाया, तब उसने चंद्रमा का सार भाग निकाल लिया (जिससे रति का मुख तो परम सुंदर बन गया, परंतु चंद्रमा के हृदय में छेद हो गया)। वही छेद चंद्रमा के हृदय में वर्तमान है, जिसकी राह से आकाश की काली छाया उसमें दिखाई पड़ती है।

प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा॥
बिष संजुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर नारी॥

प्रभु राम ने कहा - विष चंद्रमा का बहुत प्यारा भाई है, इसी से उसने विष को अपने हृदय में स्थान दे रखा है। विषयुक्त अपने किरण समूह को फैलाकर वह वियोगी नर-नारियों को जलाता रहता है।

दो० - कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास॥ 12(क)॥

हनुमान ने कहा - हे प्रभो! सुनिए, चंद्रमा आपका प्रिय दास है। आपकी सुंदर श्याम मूर्ति चंद्रमा के हृदय में बसती है, वही श्यामता की झलक चंद्रमा में है॥ 12(क)॥

पवन तनय के बचन सुनि बिहँसे रामु सुजान।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु बोले कृपा निधान॥ 12(ख)॥

पवनपुत्र हनुमान के वचन सुनकर सुजान राम हँसे। फिर दक्षिण की ओर देखकर कृपानिधान प्रभु बोले - ॥ 12(ख)॥

देखु विभीषन दच्छिन आसा। घन घमंड दामिनी बिलासा॥
मधुर मधुर गरजइ घन घोरा। होइ बृष्टि जनि उपल कठोरा॥

हे विभीषण! दक्षिण दिशा की ओर देखो, बादल कैसा घुमड़ रहा है और बिजली चमक रही है। भयानक बादल मीठे-मीठे (हल्के-हल्के) स्वर से गरज रहा है। कहीं कठोर ओलों की वर्षा न हो!

कहत विभीषन सुनहु कृपाला। होइ न तड़ित न बारिद माला॥

लंका सिखर उपर आगारा। तहँ दसकंधर देख अखारा॥

विभीषण बोले - हे कृपालु! सुनिए, यह न तो बिजली है, न बादलों की घटा। लंका की चोटी पर एक महल है। दशग्रीव रावण वहाँ (नाच-गान का) अखाड़ा देख रहा है।

छत्र मेघडंबर सिर धारी। सोइ जनु जलद घटा अति कारी॥
मंदोदरी श्रवन ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका॥

रावण ने सिर पर मेघडंबर (बादलों के डंबर-जैसा विशाल और काला) छत्र धारण कर रखा है। वही मानो बादलों की काली घटा है। मंदोदरी के कानों में जो कर्णफूल हिल रहे हैं, हे प्रभो! वही मानो बिजली चमक रही है।

बाजहिं ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव मधुर सुनहू सुरभूपा।
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना। चाप चढ़ाइ बान संधाना॥

हे देवताओं के सम्राट! सुनिए, अनुपम ताल और मृदंग बज रहे हैं। वही मधुर (गर्जन) ध्वनि है। रावण का अभिमान समझकर प्रभु मुसकराए। उन्होंने धनुष चढ़ाकर उस पर बाण का संधान किया।

दो० - छत्र मुकुट तांटक तब हते एकहीं बान।
सब कें देखत महि परे मरमु न कोऊ जान॥ 13(क)॥

और एक ही बाण से (रावण के) छत्र-मुकुट और (मंदोदरी के) कर्णफूल काट गिराए। सबके देखते-देखते वे जमीन पर आ पड़े, पर इसका भेद (कारण) किसी ने नहीं जाना॥ 13(क)॥

अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आइ निषंग।
रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग॥ 13(ख)॥

ऐसा चमत्कार करके राम का बाण (वापस) आकर (फिर) तरकस में जा घुसा। यह महान रस-भंग (रंग में भंग) देखकर रावण की सारी सभा भयभीत हो गई॥ 13(ख)॥

कंप न भूमि न मरुत बिसेषा। अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा।
सोचहिं सब निज हृदय मझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी॥

न भूकंप हुआ, न बहुत जोर की हवा (आँधी) चली। न कोई अस्त्र-शस्त्र ही नेत्रों से देखे।

(फिर ये छत्र, मुकुट और कर्णफूल कैसे कटकर गिर पड़े?) सभी अपने-अपने हृदय में सोच रहे हैं कि यह बड़ा भयंकर अपशकुन हुआ!

दसमुख देखि सभा भय पाई। बिहसि बचन कह जुगुति बनाई।
सिरउ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट परे कस असगुन ताही॥

सभा को भयतीत देखकर रावण ने हँसकर युक्ति रचकर ये वचन कहे - सिरों का गिरना भी जिसके लिए निरंतर शुभ होता रहा है, उसके लिए मुकुट का गिरना अपशकुन कैसा?

सयन करहु निज निज गृह जाई। गवने भवन सकल सिर नाई॥
मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जब ते श्रवनपूर महि खसेऊ॥

अपने-अपने घर जाकर सो रहो (डरने की कोई बात नहीं है) तब सब लोग सिर नवाकर घर गए। जब से कर्णफूल पृथ्वी पर गिरा, तब से मंदोदरी के हृदय में सोच बस गया।

सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी॥
कंत राम बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ मन धरहू॥

नेत्रों में जल भरकर, दोनों हाथ जोड़कर वह (रावण से) कहने लगी - हे प्राणनाथ! मेरी विनती सुनिए। हे प्रियतम! राम से विरोध छोड़ दीजिए। उन्हें मनुष्य जानकर मन में हठ न पकड़े रहिए।

दो॰ - बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु॥ 14॥

मेरे इन वचनों पर विश्वास कीजिए कि ये रघुकुल के शिरोमणि राम विश्व रूप हैं - (यह सारा विश्व उन्हीं का रूप है) वेद जिनके अंग-अंग में लोकों की कल्पना करते हैं॥ 14॥

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला॥

पाताल (जिन विश्व रूप भगवान का) चरण है, ब्रह्म लोक सिर है, अन्य (बीच के सब) लोकों का विश्राम (स्थिति) जिनके अन्य भिन्न-भिन्न अंगों पर है। भयंकर काल जिनका भृकुटि संचालन (भौंहों का चलना) है। सूर्य नेत्र है, बादलों का समूह बाल है।

जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा॥
श्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी॥

अश्विनी कुमार जिनकी नासिका हैं, रात और दिन जिनके अपार निमेष (पलक मारना और खोलना) हैं। दसों दिशाएँ कान हैं, वेद ऐसा कहते हैं। वायु श्वास है और वेद जिनकी अपनी वाणी है।

अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला॥
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा॥

लोभ जिनका अधर (होठ) है, यमराज भयानक दाँत है। माया हँसी है, दिक्पाल भुजाएँ हैं। अग्नि मुख है, वरुण जीभ है। उत्पत्ति, पालन और प्रलय जिनकी चेष्टा (क्रिया) है।

रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना॥

अठारह प्रकार की असंख्य वनस्पतियाँ जिनकी रोमावली हैं, पर्वत अस्थियाँ हैं, नदियाँ नसों का जाल हैं, समुद्र पेट है और नरक जिनकी नीचे की इंद्रियाँ हैं। इस प्रकार प्रभु विश्वमय हैं, अधिक कल्पना (ऊहापोह) क्या की जाए?

दो० - अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥ 15(क)॥

शिव जिनका अहंकार हैं, ब्रह्मा बुद्धि हैं, चंद्रमा मन हैं और महान (विष्णु) ही चित्त हैं। उन्हीं चराचर रूप भगवान राम ने मनुष्य रूप में निवास किया है॥ 15(क)॥

अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ॥ 15(ख)॥

हे प्राणपति! सुनिए, ऐसा विचार कर प्रभु से वैर छोड़कर रघुवीर के चरणों में प्रेम कीजिए, जिससे मेरा सुहाग न जाए॥ 15(ख)॥

बिहँसा नारि बचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना॥
नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥

पत्नी के वचन कानों से सुनकर रावण खूब हँसा (और बोला -) अहो! मोह (अज्ञान) की महिमा बड़ी बलवान है! स्त्री का स्वभाव सब सत्य ही कहते हैं कि उसके हृदय में आठ अवगुण सदा रहते हैं -

साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया॥
रिपु कर रूप सकल तैं गावा। अति बिसाल भय मोहि सुनावा॥

साहस, झूठ, चंचलता, माया (छल), भय (डरपोकपन), अविवेक (मूर्खता), अपवित्रता और निर्दयता। तूने शत्रु का समग्र (विराट) रूप गाया और मुझे उसका बड़ा भारी भय सुनाया।

सो सब प्रिया सहज बस मोरें। समुझि परा अब प्रसाद तोरें॥
जानिउँ प्रिया तोरि चतुराई। एहि बिधि कहहु मोरि प्रभुताई॥

हे प्रिये! वह सब (यह चराचर विश्व तो) स्वभाव से ही मेरे वश में है। तेरी कृपा से मुझे यह अब समझ पड़ा। हे प्रिये! तेरी चतुराई मैं जान गया। तू इस प्रकार (इसी बहाने) मेरी प्रभुता का बखान कर रही है।

तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि। समुझत सुखद सुनत भय मोचनि॥
मंदोदरि मन महुँ अस ठयऊ। पियहि काल बस मति भ्रम भयऊ॥

हे मृगनयनी! तेरी बातें बड़ी गूढ़ (रहस्यभरी) हैं, समझने पर सुख देनेवाली और सुनने से भय छुड़ानेवाली हैं। मंदोदरी ने मन में ऐसा निश्चय कर लिया कि पति को कालवश मतिभ्रम हो गया है।

दो॰ - ऐहि बिधि करत बिनोद बहु प्रात प्रगट दसकंध।
सहज असंक लंकपति सभाँ गयउ मद अंध॥ 16(क)॥

इस प्रकार (अज्ञानवश) बहुत-से विनोद करते हुए रावण को सबेरा हो गया। तब स्वभाव से ही निडर और घमंड में अंधा लंकापति सभा में गया॥ 16(क)॥

सो॰ - फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम॥ 16(ख)॥

यद्यपि बादल अमृत-सा जल बरसाते हैं तो भी बेत फूलता-फलता नहीं। इसी प्रकार चाहे ब्रह्मा के समान भी ज्ञानी गुरु मिलें, तो भी मूर्ख के हृदय में चेत (ज्ञान) नहीं होता॥

16(ख)॥

इहाँ प्रात जागे रघुराई। पूछा मत सब सचिव बोलाई॥
कहहु बेगि का करिअ उपाई। जामवंत कह पद सिरु नाई॥

यहाँ (सुबेल पर्वत पर) प्रातःकाल रघुनाथ जागे और उन्होंने सब मंत्रियों को बुलाकर सलाह पूछी कि शीघ्र बताइए, अब क्या उपाय करना चाहिए? जाम्बवान ने राम के चरणों में सिर नवाकर कहा -

सुनु सर्बग्य सकल उर बासी। बुधि बल तेज धर्म गुन रासी॥
मंत्र कहउँ निज मति अनुसारा। दूत पठाइअ बालि कुमारा॥

हे सर्वज्ञ (सब कुछ जाननेवाले)! हे सबके हृदय में बसनेवाले (अंतर्यामी)! हे बुद्धि, बल, तेज, धर्म और गुणों की राशि! सुनिए! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सलाह देता हूँ कि बालिकुमार अंगद को दूत बनाकर भेजा जाए!

नीक मंत्र सब के मन माना। अंगद सन कह कृपानिधाना॥
बालितनय बुधि बल गुन धामा। लंका जाहु तात मम कामा॥

यह अच्छी सलाह सबके मन में जँच गई। कृपा के निधान राम ने अंगद से कहा - हे बल, बुद्धि और गुणों के धाम बालिपुत्र! हे तात! तुम मेरे काम के लिए लंका जाओ।

बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥
काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥

तुमको बहुत समझाकर क्या कहूँ! मैं जानता हूँ, तुम परम चतुर हो। शत्रु से वही बातचीत करना जिससे हमारा काम हो और उसका कल्याण हो।

दो० - प्रभु अग्या धरि सीस चरन बंदि अंगद उठेउ।
सोइ गुन सागर ईस राम कृपा जा कर करहु॥ 17(क)॥

प्रभु की आज्ञा सिर चढ़ाकर और उनके चरणों की वंदना करके अंगद उठे (और बोले -) हे भगवान राम! आप जिस पर कृपा करें, वही गुणों का समुद्र हो जाता है॥ 17(क)॥

स्वयंसिद्ध सब काज नाथ मोहि आदरु दियउ।

अस बिचारि जुबराज तन पुलकित हरषित हियउ॥ 17(ख)॥

स्वामी, सब कार्य अपने-आप सिद्ध हैं; यह तो प्रभु ने मुझ को आदर दिया है (जो मुझे अपने कार्य पर भेज रहे हैं)। ऐसा विचार कर युवराज अंगद का हृदय हर्षित और शरीर पुलकित हो गया॥ 17(ख)॥

बंदि चरन उर धरि प्रभुताई। अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई॥
प्रभु प्रताप उर सहज असंका। रन बाँकुरा बालिसुत बंका॥

चरणों की वंदना करके और भगवान की प्रभुता हृदय में धरकर अंगद सबको सिर नवाकर चले। प्रभु के प्रताप को हृदय में धारण किए हुए रणबाँकुरे वीर बालिपुत्र स्वाभाविक ही निर्भय हैं।

पुर पैठत रावन कर बेटा। खेलत रहा सो होइ गै भेटा॥
बातहिं बात करष बढ़ि आई। जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई॥

लंका में प्रवेश करते ही रावण के पुत्र से भेंट हो गई, जो वहाँ खेल रहा था। बातों-ही-बातों में दोनों में झगड़ा बढ़ गया (क्योंकि) दोनों ही अतुलनीय बलवान थे और फिर दोनों की युवावस्था थी।

तेहिं अंगद कहुँ लात उठाई। गहि पद पटकेउ भूमि भवाँई॥
निसिचर निकर देखि भट भारी। जहँ तहँ चले न सकहिं पुकारी॥

उसने अंगद पर लात उठाई। अंगद ने (वही) पैर पकड़कर उसे घुमाकर जमीन पर दे पटका (मार गिराया)। राक्षस के समूह भारी योद्धा देखकर जहाँ-तहाँ (भाग) चले, वे डर के मारे पुकार भी न मचा सके।

एक एक सन मरमु न कहहीं। समुझि तासु बध चुप करि रहहीं॥
भयउ कोलाहल नगर मझारी। आवा कपि लंका जेहिं जारी॥

एक-दूसरे को मर्म (असली बात) नहीं बतलाते, उस (रावण के पुत्र) का वध समझकर सब चुप मारकर रह जाते हैं। (रावण-पुत्र की मृत्यु जानकर और राक्षसों को भय के मारे भागते देखकर) नगरभर में कोलाहल मच गया कि जिसने लंका जलाई थी, वही वानर फिर आ गया है।

अब धौं कहा करिहि करतारा। अति सभीत सब करहिं बिचारा॥
बिनु पूछें मगु देहिं दिखाई। जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई॥

सब अत्यंत भयभीत होकर विचार करने लगे कि विधाता अब न जाने क्या करेगा। वे बिना पूछे ही अंगद को (रावण के दरबार की) राह बता देते हैं। जिसे ही वे देखते हैं, वही डर के मारे सूख जाता है।

दो॰ - गयउ सभा दरबार तब सुमिरि राम पद कंज।
सिंह ठवनि इत उत चितव धीर बीर बल पुंज॥ 18॥

राम के चरण कमलों का स्मरण करके अंगद रावण की सभा के द्वार पर गए और वे धीर, वीर और बल की राशि अंगद सिंह की-सी एड़ (शान) से इधर-उधर देखने लगे॥ 18॥

तुरत निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहि जनावा॥
सुनत बिहँसि बोला दससीसा। आनहु बोलि कहाँ कर कीसा॥

तुरंत ही उन्होंने एक राक्षस को भेजा और रावण को अपने आने का समाचार सूचित किया। सुनते ही रावण हँसकर बोला - बुला लाओ, (देखें) कहाँ का बंदर है।

आयसु पाइ दूत बहु धाए। कपिकुंजरहि बोलि लै आए॥
अंगद दीख दसानन बैसें। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसें॥

आज्ञा पाकर बहुत-से दूत दौड़े और वानरों में हाथी के समान अंगद को बुला लाए। अंगद ने रावण को ऐसे बैठे हुए देखा, जैसे कोई प्राणयुक्त (सजीव) काजल का पहाड़ हो!

भुजा बिटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना॥
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना॥

भुजाएँ वृक्षों के और सिर पर्वतों के शिखरों के समान हैं। रोमावली मानो बहुत-सी लताएँ हैं। मुँह, नाक, नेत्र और कान पर्वत की कंदराओं और खोहों के बराबर हैं।

गयउ सभाँ मन नेकु न मुरा। बालितनय अतिबल बाँकुरा॥
उठे सभासद कपि कहुँ देखी। रावन उर भा क्रोध बिसेषी॥

अत्यंत बलवान बाँके वीर बालिपुत्र अंगद सभा में गए, वे मन में जरा भी नहीं झिझके।

अंगद को देखते ही सब सभासद उठ खड़े हुए। यह देखकर रावण के हृदय में बड़ा क्रोध हुआ।

दो० - जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ।
राम प्रताप सुमिरि मन बैठ सभाँ सिरु नाइ॥ 19॥

जैसे मतवाले हाथियों के झुंड में सिंह (निःशंक होकर) चला जाता है, वैसे ही राम के प्रताप का हृदय में स्मरण करके वे (निर्भय) सभा में सिर नवाकर बैठ गए॥ 19॥

कह दसकंठ कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर॥
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तव हित कारन आयउँ भाई॥

रावण ने कहा - अरे बंदर! तू कौन है? (अंगद ने कहा -) हे दशग्रीव! मैं रघुवीर का दूत हूँ। मेरे पिता से और तुमसे मित्रता थी। इसलिए हे भाई! मैं तुम्हारी भलाई के लिए ही आया हूँ।

उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। सिव बिंरचि पूजेहु बहु भाँती॥
बर पायहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सब राजा॥

तुम्हारा उत्तम कुल है, पुलस्त्य ऋषि के तुम पौत्र हो। शिव की और ब्रह्मा की तुमने बहुत प्रकार से पूजा की है। उनसे वर पाए हैं और सब काम सिद्ध किए हैं। लोकपालों और सब राजाओं को तुमने जीत लिया है।

नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनिहु सीता जगदंबा॥
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा॥

राजमद से या मोहवश तुम जगज्जननी सीता को हर लाए हो। अब तुम मेरे शुभ वचन (मेरी हितभरी सलाह) सुनो! (उसके अनुसार चलने से) प्रभु राम तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर देंगे।

दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी॥
सादर जनकसुता करि आगें। एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागें॥

दाँतों में तिनका दबाओ, गले में कुल्हाड़ी डालो और कुटुंबियों सहित अपनी स्त्रियों को

साथ लेकर, आदरपूर्वक जानकी को आगे करके, इस प्रकार सब भय छोड़कर चलो -

दो० - प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि॥ 20॥

और 'हे शरणागत के पालन करनेवाले रघुवंश शिरोमणि राम! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।' (इस प्रकार आर्त प्रार्थना करो।) आर्त पुकार सुनते ही प्रभु तुमको निर्भय कर देंगे॥ 20॥

रे कपिपोत बोलु संभारी। मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी॥
कहु निज नाम जनक कर भाई। केहि नातें मानिऐ मिताई॥

(रावण ने कहा -) अरे बंदर के बच्चे! सँभालकर बोल! मूर्ख! मुझ देवताओं के शत्रु को तूने जाना नहीं? अरे भाई! अपना और अपने बाप का नाम तो बता। किस नाते से मित्रता मानता है?

अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुँ भई ही भेटा॥
अंगद बचन सुनत सकुचाना। रहा बालि बानर मैं जाना॥

(अंगद ने कहा -) मेरा नाम अंगद है, मैं बालि का पुत्र हूँ। उनसे कभी तुम्हारी भेंट हुई थी? अंगद का वचन सुनते ही रावण कुछ सकुचा गया (और बोला -) हाँ, मैं जान गया (मुझे याद आ गया), बालि नाम का एक बंदर था।

अंगद तहीं बालि कर बालक। उपजेहु बंस अनल कुल घालक॥
गर्भ न गयहु ब्यर्थ तुम्ह जायहु। निज मुख तापस दूत कहायहु॥

अरे अंगद! तू ही बालि का लड़का है? अरे कुलनाशक! तू तो अपने कुलरूपी बाँस के लिए अग्नि रूप ही पैदा हुआ! गर्भ में ही क्यों न नष्ट हो गया? तू व्यर्थ ही पैदा हुआ जो अपने ही मुँह से तपस्वियों का दूत कहलाया!

अब कहु कुसल बालि कहँ अहई। बिहँसि बचन तब अंगद कहई॥
दिन दस गएँ बालि पहिं जाई। बूझेहु कुसल सखा उर लाई॥

अब बालि की कुशल तो बता, वह (आजकल) कहाँ है? तब अंगद ने हँसकर कहा - दस (कुछ) दिन बीतने पर (स्वयं ही) बालि के पास जाकर, अपने मित्र को हृदय से लगाकर,

उसी से कुशल पूछ लेना।

राम बिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई॥
सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्री रघुबीर हृदय नहिं जाकें॥

राम से विरोध करने पर जैसी कुशल होती है, वह सब तुमको वे सुनाएँगे। हे मूर्ख! सुन, भेद उसी के मन में पड़ सकता है, (भेद नीति उसी पर अपना प्रभाव डाल सकती है) जिसके हृदय में श्री रघुवीर न हों।

दो० - हम कुल घालक सत्य तुम्ह कुल पालक दससीस।
अंधउ बधिर न अस कहहिं नयन कान तव बीस॥ 21॥

सच है, मैं तो कुल का नाश करनेवाला हूँ और हे रावण! तुम कुल के रक्षक हो। अंधे-बहरे भी ऐसी बात नहीं कहते, तुम्हारे तो बीस नेत्र और बीस कान हैं!॥ 21॥

सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई॥
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। अइसिहुँ मति उर बिहर न तोरा॥

शिव, ब्रह्मा (आदि) देवता और मुनियों के समुदाय जिनके चरणों की सेवा (करना) चाहते हैं, उनका दूत होकर मैंने कुल को डुबा दिया? अरे ऐसी बुद्धि होने पर भी तुम्हारा हृदय फट नहीं जाता?

सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी॥
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ। नीति धर्म मैं जानत अहऊँ॥

वानर (अंगद) की कठोर वाणी सुनकर रावण आँखें तरेरकर (तिरछी करके) बोला - अरे दुष्ट! मैं तेरे सब कठोर वचन इसीलिए सह रहा हूँ कि मैं नीति और धर्म को जानता हूँ (उन्हीं की रक्षा कर रहा हूँ)।

कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी॥
देखी नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्म ब्रतधारी॥

अंगद ने कहा - तुम्हारी धर्मशीलता मैंने भी सुनी है। (वह यह कि) तुमने पराई स्त्री की चोरी की है! और दूत की रक्षा की बात तो अपनी आँखों से देख ली। ऐसे धर्म के व्रत को

धारण (पालन) करनेवाले तुम डूबकर मर नहीं जाते!

कान नाक बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्हि तुम्ह धर्म बिचारी॥
धर्मसीलता तव जग जागी। पावा दरसु हमहुँ बड़भागी॥

नाक-कान से रहित बहिन को देखकर तुमने धर्म विचारकर ही तो क्षमा कर दिया था! तुम्हारी धर्मशीलता जग-जाहिर है। मैं भी बड़ा भाग्यवान हूँ, जो मैंने तुम्हारा दर्शन पाया?

दो० - जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु॥ 22(क)॥

(रावण ने कहा -) अरे जड़ जंतु वानर! व्यर्थ बक-बक न कर, अरे मूर्ख! मेरी भुजाएँ तो देख। ये सब लोकपालों के विशाल बलरूपी चंद्रमा को ग्रसने के लिए राहु हैं॥ 22(क)॥

पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास।
सोभत भयउ मराल इव संभु सहित कैलास॥ 22(ख)॥

फिर (तूने सुना ही होगा कि) आकाशरूपी तालाब में मेरी भुजाओंरूपी कमलों पर बसकर शिव सहित कैलास हंस के समान शोभा को प्राप्त हुआ था!॥ 22(ख)॥

तुम्हरे कटक माझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद॥
तब प्रभु नारि बिरहँ बलहीना। अनुज तासु दुःख दुखी मलीना॥

अरे अंगद! सुन, तेरी सेना में बता, ऐसा कौन योद्धा है, जो मुझसे भिड़ सकेगा। तेरा मालिक तो स्त्री के वियोग में बलहीन हो रहा है। और उसका छोटा भाई उसी के दुःख से दुःखी और उदास है।

तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समरारूढ़ा॥

तुम और सुग्रीव, दोनों (नदी) तट के वृक्ष हो (रहा) मेरा छोटा भाई विभीषण, (सो) वह भी बड़ा डरपोक है। मंत्री जाम्बवान बहुत बूढ़ा है। वह अब लड़ाई में क्या चढ़ (उद्यत हो) सकता है?

सिल्पि कर्म जानहिं नल नीला। है कपि एक महा बलसीला॥

आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा। सुनत बचन कह बालिकुमारा॥

नल-नील तो शिल्प-कर्म जानते हैं (वे लड़ना क्या जानें?)। हाँ, एक वानर जरूर महान बलवान है, जो पहले आया था और जिसने लंका जलाई थी। यह वचन सुनते ही बालि पुत्र अंगद ने कहा -

सत्य बचन कहु निसिचर नाहा। साँचेहुँ कीस कीन्ह पुर दाहा॥
रावण नगर अल्प कपि दहई। सुनि अस बचन सत्य को कहई॥

हे राक्षसराज! सच्ची बात कहो! क्या उस वानर ने सचमुच तुम्हारा नगर जला दिया? रावण (जैसे जगद्विजयी योद्धा) का नगर एक छोटे-से वानर ने जला दिया। ऐसे वचन सुनकर उन्हें सत्य कौन कहेगा?

जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन॥
चलइ बहुत सो बीर न होई। पठवा खबरि लेन हम सोई॥

हे रावण! जिसको तुमने बहुत बड़ा योद्धा कहकर सराहा है, वह तो सुग्रीव का एक छोटा-सा दौड़कर चलनेवाला हरकारा है। वह बहुत चलता है, वीर नहीं है। उसको तो हमने (केवल) खबर लेने के लिए भेजा था।

दो० - सत्य नगरु कपि जारेउ बिनु प्रभु आयसु पाइ।
फिरि न गयउ सुग्रीव पहिं तेहिं भय रहा लुकाइ॥ 23(क)॥

क्या सचमुच ही उस वानर ने प्रभु की आज्ञा पाए बिना ही तुम्हारा नगर जला डाला? मालूम होता है, इसी डर से वह लौटकर सुग्रीव के पास नहीं गया और कहीं छिप रहा!॥ 23(क)॥

सत्य कहहि दसकंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह।
कोउ न हमारें कटक अस तो सन लरत जो सोह॥ 23(ख)॥

हे रावण! तुम सब सत्य ही कहते हो, मुझे सुनकर कुछ भी क्रोध नहीं है। सचमुच हमारी सेना में कोई भी ऐसा नहीं है, जो तुमसे लड़ने में शोभा पाए॥ 23(ख)॥

प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि।

जौं मृगपति बध मेड़ुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि॥ 23(ग)॥

प्रीति और वैर बराबरीवाले से ही करना चाहिए, नीति ऐसी ही है। सिंह यदि मेढ़कों को मारे, तो क्या उसे कोई भला कहेगा?॥ 23(ग)॥

जद्यपि लघुता राम कहुँ तोहि बधें बड़ दोष।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्र जाति कर रोष॥ 23(घ)॥

यद्यपि तुम्हें मारने में राम की लघुता है और बड़ा दोष भी है तथापि हे रावण! सुनो, क्षत्रिय जाति का क्रोध बड़ा कठिन होता है॥ 23(घ)॥

बक्र उक्ति धनु बचन सर हृदय दहेउ रिपु कीस।
प्रतिउत्तर सड़सिन्ह मनहुँ काढ़त भट दससीस॥ 23(ङ)॥

वक्रोक्तिरूपी धनुष से वचनरूपी बाण मारकर अंगद ने शत्रु का हृदय जला दिया। वीर रावण उन बाणों को मानो प्रत्युत्तररूपी सँड़सियों से निकाल रहा है॥ 23(ङ)॥

हँसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुन एक।
जो प्रतिपालइ तासु हित करइ उपाय अनेक॥ 23(च)॥

तब रावण हँसकर बोला - बंदर में यह एक बड़ा गुण है कि जो उसे पालता है, उसका वह अनेकों उपायों से भला करने की चेष्टा करता है॥ 23(च)॥

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करइ धर्म निपुनाई॥

बंदर को धन्य है, जो अपने मालिक के लिए लाज छोड़कर जहाँ-तहाँ नाचता है। नाच-कूदकर, लोगों को रिझाकर, मालिक का हित करता है। यह उसकी धर्म निपुणता है।

अंगद स्वामिभक्त तव जाती। प्रभु गुन कस न कहसि एहि भाँती॥
मैं गुन गाहक परम सुजाना। तव कटु रटनि करउँ नहिं काना॥

हे अंगद! तेरी जाति स्वामिभक्त है (फिर भला) तू अपने मालिक के गुण इस प्रकार कैसे न बखानेगा? मैं गुणग्राहक (गुणों का आदर करनेवाला) और परम सुजान (समझदार) हूँ,

इसी से तेरी जली-कटी बक-बक पर कान (ध्यान) नहीं देता।

कह कपि तव गुन गाहकताई। सत्य पवनसुत मोहि सुनाई॥
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा॥

अंगद ने कहा - तुम्हारी सच्ची गुणग्राहकता तो मुझे हनुमान ने सुनाई थी। उसने अशोक वन में विध्वंस (तहस-नहस) करके, तुम्हारे पुत्र को मारकर नगर को जला दिया था। तो भी (तुमने अपनी गुणग्राहकता के कारण यही समझा कि) उसने तुम्हारा कुछ भी अपकार नहीं किया।

सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई। दसकंधर मैं कीन्हि ढिठाई॥
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा। तुम्हरें लाज न रोष न माखा॥

तुम्हारा वही सुंदर स्वभाव विचार कर, हे दशग्रीव! मैंने कुछ धृष्टता की है। हनुमान ने जो कुछ कहा था, उसे आकर मैंने प्रत्यक्ष देख लिया कि तुम्हें न लज्जा है, न क्रोध है और न चिढ़ है।

जौं असि मति पितु खाए कीसा। कहि अस बचन हँसा दससीसा॥
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही। अबहीं समुझि परा कछु मोही॥

(रावण बोला -) अरे वानर! जब तेरी ऐसी बुद्धि है, तभी तो तू बाप को खा गया। ऐसा वचन कहकर रावण हँसा। अंगद ने कहा - पिता को खाकर फिर तुमको भी खा डालता। परंतु अभी तुरंत कुछ और ही बात मेरी समझ में आ गई!

बालि बिमल जस भाजन जानी। हतउँ न तोहि अधम अभिमानी॥
कहु रावन रावन जग केते। मैं निज श्रवन सुने सुनु जेते॥

अरे नीच अभिमानी! बालि के निर्मल यश का पात्र (कारण) जानकर तुम्हें मैं नहीं मारता। रावण! यह तो बता कि जगत में कितने रावण हैं? मैंने जितने रावण अपने कानों से सुन रखे हैं, उन्हें सुन -

बलिहि जितन एक गयउ पताला। राखेउ बाँधि सिसुन्ह हयसाला॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई॥

एक रावण तो बलि को जीतने पाताल में गया था, तब बच्चों ने उसे घुड़साल में बाँध

रखा। बालक खेलते थे और जा-जाकर उसे मारते थे। बलि को दया लगी, तब उन्होंने उसे छुड़ा दिया।

एक बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा॥
कौतुक लागि भवन लै आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा॥

फिर एक रावण को सहस्रबाहु ने देखा, और उसने दौड़कर उसको एक विशेष प्रकार के (विचित्र) जंतु की तरह (समझकर) पकड़ लिया। तमाशे के लिए वह उसे घर ले आया। तब पुलस्त्य मुनि ने जाकर उसे छुड़ाया।

दो० - एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि कीं काँख।
इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख॥ 24॥

एक रावण की बात कहने में तो मुझे बड़ा संकोच हो रहा है - वह (बहुत दिनों तक) बालि की काँख में रहा था। इनमें से तुम कौन-से रावण हो? खीझना छोड़कर सच-सच बताओ॥ 24॥

सुनु सठ सोइ रावन बलसीला। हरगिरि जान जासु भुज लीला॥
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढ़ाई॥

(रावण ने कहा -) अरे मूर्ख! सुन, मैं वही बलवान रावण हूँ, जिसकी भुजाओं की लीला (करामात) कैलास पर्वत जानता है। जिसकी शूरता उमापति महादेव जानते हैं, जिन्हें अपने सिररूपी पुष्प चढ़ा-चढ़ाकर मैंने पूजा था।

सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी॥
भुज बिक्रम जानहिं दिगपाला। सठ अजहूँ जिन्ह कें उर साला॥

सिररूपी कमलों को अपने हाथों से उतार-उतारकर मैंने अगणित बार त्रिपुरारि शिव की पूजा की है। अरे मूर्ख! मेरी भुजाओं का पराक्रम दिग्पाल जानते हैं, जिनके हृदय में वह आज भी चुभ रहा है।

जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरउँ जाइ बरिआई॥
जिन्ह के दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे॥

दिग्गज (दिशाओं के हाथी) मेरी छाती की कठोरता को जानते हैं। जिनके भयानक दाँत,

जब-जब जाकर मैं उनसे जबरदस्ती भिड़ा, मेरी छाती में कभी नहीं फूटे (अपना चिह्न भी नहीं बना सके), बल्कि मेरी छाती से लगते ही वे मूली की तरह टूट गए।

जासु चलत डोलति इमि धरनी। चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी॥
सोइ रावन जग बिदित प्रतापी। सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी॥

जिसके चलते समय पृथ्वी इस प्रकार हिलती है जैसे मतवाले हाथी के चढ़ते समय छोटी नाव! मैं वही जगत प्रसिद्ध प्रतापी रावण हूँ। अरे झूठी बकवास करनेवाले! क्या तूने मुझको कानों से कभी सुना?

दो० - तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ग्यान॥ 25॥

उस (महान प्रतापी और जगत प्रसिद्ध) रावण को (मुझे) तू छोटा कहता है और मनुष्य की बड़ाई करता है? अरे दुष्ट, असभ्य, तुच्छ बंदर! अब मैंने तेरा ज्ञान जान लिया॥ 25॥

सुनि अंगद सकोप कह बानी। बोलु संभारि अधम अभिमानी॥
सहसबाहु भुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा॥

रावण के ये वचन सुनकर अंगद क्रोध सहित वचन बोले - अरे नीच अभिमानी! सँभालकर (सोच-समझकर) बोल। जिनका फरसा सहस्रबाहु की भुजाओंरूपी अपार वन को जलाने के लिए अग्नि के समान था,

जासु परसु सागर खर धारा। बूड़े नृप अगनित बहु बारा॥
तासु गर्ब जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दससीस अभागा॥

जिनके फरसारूपी समुद्र की तीव्र धारा में अनगिनत राजा अनेकों बार डूब गए, उन परशुराम का गर्व जिन्हें देखते ही भाग गया, अरे अभागे दशशीश! वे मनुष्य क्यों कर हैं?

राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा॥
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा। अन्न दान अरु रस पीयूषा॥

क्यों रे मूर्ख उद्दण्ड! राम मनुष्य हैं? कामदेव भी क्या धनुर्धारी है? और गंगा क्या नदी हैं? कामधेनु क्या पशु है? और कल्पवृक्ष क्या पेड़ है? अन्न भी क्या दान है? और अमृत क्या

रस है?

बैनतेय खग अहि सहसानन। चिंतामनि पुनि उपल दसानन॥
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा॥

गरुड़ क्या पक्षी हैं? शेष क्या सर्प हैं? अरे रावण! चिंतामणि भी क्या पत्थर है? अरे ओ मूर्ख! सुन, बैकुंठ भी क्या लोक है? और रघुनाथ की अखंड भक्ति क्या (और लाभों-जैसा ही) लाभ है?

दो॰ - सेन सहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि॥ 26॥

सेना समेत तेरा मान मथकर, अशोक वन को उजाड़कर, नगर को जलाकर और तेरे पुत्र को मारकर जो लौट गए (तू उनका कुछ भी न बिगाड़ सका), क्यों रे दुष्ट! वे हनुमान क्या वानर हैं?॥ 26॥

सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई॥
जौं खल भएसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही॥

अरे रावण! चतुराई (कपट) छोड़कर सुन। कृपा के समुद्र रघुनाथ का तू भजन क्यों नहीं करता? अरे दुष्ट! यदि तू राम का वैरी हुआ तो तुझे ब्रह्मा और रुद्र भी नहीं बचा सकेंगे।

मूढ़ बृथा जनि मारसि गाला। राम बयर अस होइहि हाला॥
तव सिर निकर कपिन्ह के आगें। परिहहिं धरनि राम सर लागें॥

हे मूढ़! व्यर्थ गाल न मार (डींग न हाँक)। राम से वैर करने पर तेरा ऐसा हाल होगा कि तेरे सिर-समूह राम के बाण लगते ही वानरों के आगे पृथ्वी पर पड़ेंगे,

ते तव सिर कंदुक सम नाना। खेलिहहिं भालु कीस चौगाना॥
जबहिं समर कोपिहि रघुनायक। छुटिहहिं अति कराल बहु सायक॥

और रीछ-वानर तेरे उन गेंद के समान अनेकों सिरों से चौगान खेलेंगे। जब रघुनाथ युद्ध में कोप करेंगे और उनके अत्यंत तीक्ष्ण बहुत-से बाण छूटेंगे,

तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा। अस बिचारि भजु राम उदारा॥

सुनत बचन रावन परजरा। जरत महानल जनु घृत परा॥

तब क्या तेरा गाल चलेगा? ऐसा विचार कर उदार (कृपालु) राम को भज। अंगद के ये वचन सुनकर रावण बहुत अधिक जल उठा। मानो जलती हुई प्रचंड अग्नि में घी पड़ गया हो।

दो॰ - कुंभकरन अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेऊँ चराचर झारि॥ 27॥

(वह बोला - अरे मूर्ख!) कुंभकर्ण-जैसा मेरा भाई है, इंद्र का शत्रु सुप्रसिद्ध मेघनाद मेरा पुत्र है! और मेरा पराक्रम तो तूने सुना ही नहीं कि मैंने संपूर्ण जड़-चेतन जगत को जीत लिया है!॥ 27॥

सठ साखामृग जोरि सहाई। बाँधा सिंधु इहइ प्रभुताई॥
नाघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होहिं ते सुनु सब कीसा॥

रे दुष्ट! वानरों की सहायता जोड़कर राम ने समुद्र बाँध लिया; बस, यही उसकी प्रभुता है। समुद्र को तो अनेकों पक्षी भी लाँघ जाते हैं। पर इसी से वे सभी शूरवीर नहीं हो जाते। अरे मूर्ख बंदर! सुन -

मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा॥
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा॥

मेरा एक-एक भुजारूपी समुद्र बलरूपी जल से पूर्ण है, जिसमें बहुत-से शूरवीर देवता और मनुष्य डूब चूके हैं। (बता,) कौन ऐसा शूरवीर है, जो मेरे इन अथाह और अपार बीस समुद्रों का पार पा जाएगा?

दिगपालन्ह मैं नीर भरावा। भूप सुजस खल मोहि सुनावा॥
जौं पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुन गाथा॥

अरे दुष्ट! मैंने दिक्पालों तक से जल भरवाया और तू एक राजा का मुझे सुयश सुनाता है! यदि तेरा मालिक, जिसकी गुणगाथा तू बार-बार कह रहा है, संग्राम में लड़नेवाला योद्धा है -

तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा॥

हरगिरि मथन निरखु मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू॥

तो (फिर) वह दूत किसलिए भेजता है? शत्रु से प्रीति (संधि) करते उसे लाज नहीं आती? (पहले) कैलास का मथन करनेवाली मेरी भुजाओं को देख। फिर अरे मूर्ख वानर! अपने मालिक की सराहना करना।

दो॰ - सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहिं सीस।
हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस॥ 28॥

रावण के समान शूरवीर कौन है? जिसने अपने हाथों से सिर काट-काटकर अत्यंत हर्ष के साथ बहुत बार उन्हें अग्नि में होम दिया! स्वयं गौरीपति शिव इस बात के साक्षी हैं॥ 28॥

जरत बिलोकेउँ जबहि कपाला। बिधि के लिखे अंक निज भाला॥
नर कें कर आपन बध बाँची। हसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची॥

मस्तकों के जलते समय जब मैंने अपने ललाटों पर लिखे हुए विधाता के अक्षर देखे, तब मनुष्य के हाथ से अपनी मृत्यु होना बाँचकर, विधाता की वाणी (लेख को) असत्य जानकर मैं हँसा।

सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरें। लिखा बिरंचि जरठ मति भोरें॥
आन बीर बल सठ मम आगें। पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागें॥

उस बात को समझकर (स्मरण करके) भी मेरे मन में डर नहीं है। (क्योंकि मैं समझता हूँ कि) बूढ़े ब्रह्मा ने बुद्धि भ्रम से ऐसा लिख दिया है। अरे मूर्ख! तू लज्जा और मर्यादा छोड़कर मेरे आगे बार-बार दूसरे वीर का बल कहता है!

कह अंगद सलज्ज जग माहीं। रावन तोहि समान कोउ नाहीं॥
लाजवंत तव सहज सुभाऊ। निज मुख निज गुन कहसि न काऊ॥

अंगद ने कहा - अरे रावण! तेरे समान लज्जावान जगत में कोई नहीं है। लज्जाशीलता तो तेरा सहज स्वभाव ही है। तू अपने मुँह से अपने गुण कभी नहीं कहता।

सिर अरु सैल कथा चित रही। ताते बार बीस तैं कहीं॥

सो भुजबल राखेहु उर घाली। जीतेहु सहसबाहु बलि बाली॥

सिर काटने और कैलास उठाने की कथा चित्त में चढ़ी हुई थी, इससे तूने उसे बीसों बार कहा। भुजाओं के उस बल को तूने हृदय में ही टाल (छिपा) रखा है, जिससे तूने सहस्रबाहु, बलि और बालि को जीता था।

सुनु मतिमंद देहि अब पूरा। काटें सीस कि होइअ सूरा॥
इंद्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा॥

अरे मंदबुद्धि! सुन, अब बस कर। सिर काटने से भी क्या कोई शूरवीर हो जाता है? इंद्रजाल रचनेवाले को वीर नहीं कहा जाता, यद्यपि वह अपने ही हाथों अपना सारा शरीर काट डालता है!

दो० - जरहिं पतंग मोह बस भार बहहिं खर बृंद।
ते नहिं सूर कहावहिं समुझि देखु मतिमंद॥ 29॥

अरे मंदबुद्धि! समझकर देख। पतंगे मोहवश आग में जल मरते हैं, गदहों के झुंड बोझ लादकर चलते हैं; पर इस कारण वे शूरवीर नहीं कहलाते॥ 29॥

अब जनि बतबढ़ाव खल करही। सुनु मम बचन मान परिहरही॥
दसमुख मैं न बसीठीं आयउँ। अस बिचारि रघुबीर पठायउँ॥

अरे दुष्ट! अब बतबढ़ाव मत कर; मेरा वचन सुन और अभिमान त्याग दे! हे दशमुख! मैं दूत की तरह (संधि करने) नहीं आया हूँ। रघुवीर ने ऐसा विचार कर मुझे भेजा है -

बार बार अस कहइ कृपाला। नहिं गजारि जसु बधें सृकाला॥
मन महुँ समुझि बचन प्रभु केरे। सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे॥

कृपालु राम बार-बार ऐसा कहते हैं कि सियार के मारने से सिंह को यश नहीं मिलता। अरे मूर्ख! प्रभु के (उन) वचनों को मन में समझकर (याद करके) ही मैंने तेरे कठोर वचन सहे हैं।

नाहिं त करि मुख भंजन तोरा। लै जातेउँ सीतहि बरजोरा॥
जानेउँ तव बल अधम सुरारी। सूनें हरि आनिहि परनारी॥

नहीं तो तेरे मुँह तोड़कर मैं सीता को जबरदस्ती ले जाता। अरे अधम! देवताओं के शत्रु! तेरा बल तो मैंने तभी जान लिया जब तू सूने में पराई स्त्री को हर (चुरा) लाया।

तैं निसिचर पति गर्ब बहूता। मैं रघुपति सेवक कर दूता॥
जौं न राम अपमानहिं डरऊँ। तोहि देखत अस कौतुक करउँ॥

तू राक्षसों का राजा और बड़ा अभिमानी है। परंतु मैं तो रघुनाथ के सेवक (सुग्रीव) का दूत (सेवक का भी सेवक) हूँ। यदि मैं राम के अपमान से न डरूँ तो तेरे देखते-देखते ऐसा तमाशा करूँ कि -

दो० - तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाउँ।
तव जुबतिन्ह समेत सठ जनकसुतहि लै जाउँ॥ 30॥

तुझे जमीन पर पटककर, तेरी सेना का संहार कर और तेरे गाँव को चौपट (नष्ट-भ्रष्ट) करके, अरे मूर्ख! तेरी युवती स्त्रियों सहित जानकी को ले जाऊँ॥ 30॥

जौं अस करौं तदपि न बड़ाई। मुएहि बधें नहिं कछु मनुसाई॥
कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा॥

यदि ऐसा करूँ, तो भी इसमें कोई बड़ाई नहीं है। मरे हुए को मारने में कुछ भी पुरुषत्व (बहादुरी) नहीं है। वाममार्गी, कामी, कंजूस, अत्यंत मूढ़, अति दरिद्र, बदनाम, बहुत बूढ़ा,

सदा रोगबस संतत क्रोधी। बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी॥
तनु पोषक निंदक अघ खानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी॥

नित्य का रोगी, निरंतर क्रोधयुक्त रहनेवाला, भगवान विष्णु से विमुख, वेद और संतों का विरोधी, अपने ही शरीर का पोषण करनेवाला, पराई निंदा करनेवाला और पाप की खान (महान पापी) - ये चौदह प्राणी जीते ही मुरदे के समान हैं।

अस बिचारि खल बधउँ न तोही। अब जनि रिस उपजावसि मोही॥
सुनि सकोप कह निसिचर नाथा। अधर दसन दसि मीजत हाथा॥

अरे दुष्ट! ऐसा विचार कर मैं तुझे नहीं मारता। अब तू मुझमें क्रोध न पैदा कर (मुझे गुस्सा न दिला)। अंगद के वचन सुनकर राक्षस राज रावण दाँतों से होठ काटकर, क्रोधित

होकर हाथ मलता हुआ बोला -

रे कपि अधम मरन अब चहसी। छोटे बदन बात बड़ि कहसी॥
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाकें। बल प्रताप बुधि तेज न ताकें॥

अरे नीच बंदर! अब तू मरना ही चाहता है! इसी से छोटे मुँह बड़ी बात कहता है। अरे मूर्ख बंदर! तू जिसके बल पर कड़ुए वचन बक रहा है, उसमें बल, प्रताप, बुद्धि अथवा तेज कुछ भी नहीं है।

दो॰ - अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनबास।
सो दुःख अरु जुबती बिरह पुनि निसि दिन मम त्रास॥ 31(क)॥

उसे गुणहीन और मानहीन समझकर ही तो पिता ने वनवास दे दिया। उसे एक तो वह (उसका) दुःख, उस पर युवती स्त्री का विरह और फिर रात-दिन मेरा डर बना रहता है॥ 31(क)॥

जिन्ह के बल कर गर्ब तोहि अइसे मनुज अनेक।
खाहिं निसाचर दिवस निसि मूढ़ समुझु तजि टेक॥ 31(ख)॥

जिनके बल का तुझे गर्व है, ऐसे अनेकों मनुष्यों को तो राक्षस रात-दिन खाया करते हैं। अरे मूढ़! जिद्द छोड़कर समझ (विचार कर)॥ 31(ख)॥

जब तेहिं कीन्हि राम कै निंदा। क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा॥
हरि हर निंदा सुनइ जो काना। होइ पाप गोघात समाना॥

जब उसने राम की निंदा की, तब तो कपिश्रेष्ठ अंगद अत्यंत क्रोधित हुए, क्योंकि (शास्त्र ऐसा कहते हैं कि) जो अपने कानों से भगवान विष्णु और शिव की निंदा सुनता है, उसे गो वध के समान पाप होता है।

कटकटान कपिकुंजर भारी। दुहु भुजदंड तमकि महि मारी॥
डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भय मारुत ग्रसे॥

वानर श्रेष्ठ अंगद बहुत जोर से कटकटाए (शब्द किया) और उन्होंने तमककर (जोर से) अपने दोनों भुजदंडों को पृथ्वी पर दे मारा। पृथ्वी हिलने लगी, (जिससे बैठे हुए) सभासद

गिर पड़े और भयरूपी पवन (भूत) से ग्रस्त होकर भाग चले।

गिरत सँभारि उठा दसकंधर। भूतल परे मुकुट अति सुंदर॥
कछु तेहिं लै निज सिरन्हि सँवारे। कछु अंगद प्रभु पास पबारे॥

रावण गिरते-गिरते सँभलकर उठा। उसके अत्यंत सुंदर मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ तो उसने उठाकर अपने सिरों पर सुधारकर रख लिए और कुछ अंगद ने उठाकर प्रभु राम के पास फेंक दिए।

आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहीं लूक परन बिधि लागे॥
की रावन करि कोप चलाए। कुलिस चारि आवत अति धाए॥

मुकुटों को आते देखकर वानर भागे। (सोचने लगे) विधाता! क्या दिन में ही उल्कापात होने लगा (तारे टूटकर गिरने लगे)? अथवा क्या रावण ने क्रोध करके चार वज्र चलाए हैं, जो बड़े धाए के साथ (वेग से) आ रहे हैं?

कह प्रभु हँसि जनि हृदयँ डेराहू। लूक न असनि केतु नहिं राहू॥
ए किरीट दसकंधर केरे। आवत बालितनय के प्रेरे॥

प्रभु ने (उनसे) हँसकर कहा - मन में डरो नहीं। ये न उल्का हैं, न वज्र हैं और न केतु या राहु ही हैं। अरे भाई! ये तो रावण के मुकुट हैं; जो बालिपुत्र अंगद के फेंके हुए आ रहे हैं।

दो॰ - तरकि पवनसुत कर गहे आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहिं भालु कपि दिनकर सरिस प्रकास॥ 32(क)॥

पवन पुत्र हनुमान ने उछलकर उनको हाथ से पकड़ लिया और लाकर प्रभु के पास रख दिया। रीछ और वानर तमाशा देखने लगे। उनका प्रकाश सूर्य के समान था॥ 32(क)॥

उहाँ सकोपि दसानन सब सन कहत रिसाइ।
धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ॥ 32(ख)॥

वहाँ (सभा में) क्रोधयुक्त रावण सबसे क्रोधित होकर कहने लगा कि - बंदर को पकड़ लो और पकड़कर मार डालो। अंगद यह सुनकर मुसकराने लगे॥ 32(ख)॥

एहि बधि बेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहँ जहँ पावहु॥

मर्कटहीन करहु महि जाई। जिअत धरहु तापस द्वौ भाई॥

(रावण फिर बोला -) इसे मारकर सब योद्धा तुरंत दौड़ो और जहाँ कहीं रीछ-वानरों को पाओ, वहीं खा डालो। पृथ्वी को बंदरों से रहित कर दो और जाकर दोनों तपस्वी भाइयों (राम-लक्ष्मण) को जीते-जी पकड़ लो।

पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा। गाल बजावत तोहि न लाजा॥
मरु गर काटि निलज कुलघाती। बल बिलोकि बिहरति नहिं छाती॥

(रावण के ये कोपभरे वचन सुनकर) तब युवराज अंगद क्रोधित होकर बोले - तुझे गाल बजाते लाज नहीं आती! अरे निर्लज्ज! अरे कुलनाशक! गला काटकर (आत्महत्या करके) मर जा! मेरा बल देखकर भी क्या तेरी छाती नहीं फटती!

रे त्रिय चोर कुमारग गामी। खल मल रासि मंदमति कामी॥
सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भएसि कालबस खल मनुजादा॥

अरे स्त्री के चोर! अरे कुमार्ग पर चलनेवाले! अरे दुष्ट, पाप की राशि, मंद बुद्धि और कामी! तू सन्निपात में क्या दुर्वचन बक रहा है? अरे दुष्ट राक्षस! तू काल के वश हो गया है!

याको फलु पावहिगो आगें। बानर भालु चपेटन्हि लागें॥
रामु मनुज बोलत असि बानी। गिरहिं न तव रसना अभिमानी॥

इसका फल तू आगे वानर और भालुओं के चपेटे लगने पर पावेगा। राम मनुष्य हैं, ऐसा वचन बोलते ही, अरे अभिमानी! तेरी जीभें नहीं गिर पड़तीं?

गिरिहहिं रसना संसय नाहीं। सिरन्हि समेत समर महि माहीं॥

इसमें संदेह नहीं है कि तेरी जीभें (अकेले नहीं वरन) सिरों के साथ रणभूमि में गिरेंगी।

सो० - सो नर क्यों दसकंध बालि बध्यो जेहिं एक सर।
बीसहुँ लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़॥ 33(क)॥

रे दशकंध! जिसने एक ही बाण से बालि को मार डाला, वह मनुष्य कैसे है? अरे कुजाति, अरे जड़! बीस आँखें होने पर भी तू अंधा है। तेरे जन्म को धिक्कार है॥ 33(क)॥

तव सोनित कीं प्यास तृषित राम सायक निकर।
तजउँ तोहि तेहि त्रास कटु जल्पक निसिचर अधम॥ 33(ख)॥

राम के बाण समूह तेरे रक्त की प्यास से प्यासे हैं। (वे प्यासे ही रह जाएँगे) इस डर से, अरे कड़वी बकवास करनेवाले नीच राक्षस! मैं तुझे छोड़ता हूँ॥ 33(ख)॥

मैं तव दसन तोरिबे लायक। आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक॥
असि रिस होति दसउ मुख तोरौं। लंका गहि समुद्र महँ बोरौं॥

मैं तेरे दाँत तोड़ने में समर्थ हूँ। पर क्या करूँ? रघुनाथ ने मुझे आज्ञा नहीं दी। ऐसा क्रोध आता है कि तेरे दसों मुँह तोड़ डालूँ और (तेरी) लंका को पकड़कर समुद्र में डुबो दूँ।

गूलरि फल समान तव लंका। बसहु मध्य तुम्ह जंतु असंका॥
मैं बानर फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा॥

तेरी लंका गूलर के फल के समान है। तुम सब कीड़े उसके भीतर (अज्ञानवश) निडर होकर बस रहे हो। मैं बंदर हूँ, मुझे इस फल को खाते क्या देर थी? पर उदार (कृपालु) राम ने वैसी आज्ञा नहीं दी।

जुगुति सुनत रावन मुसुकाई। मूढ़ सिखिहि कहँ बहुत झुठाई॥
बालि न कबहुँ गाल अस मारा। मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा॥

अंगद की युक्ति सुनकर रावण मुसकराया (और बोला -) अरे मूर्ख! बहुत झूठ बोलना तूने कहाँ से सीखा? बालि ने तो कभी ऐसा गाल नहीं मारा। जान पड़ता है तू तपस्वियों से मिलकर लबार हो गया है।

साँचेहुँ मैं लबार भुज बीहा। जौं न उपारिउँ तव दस जीहा॥
समुझि राम प्रताप कपि कोपा। सभा माझ पन करि पद रोपा॥

(अंगद ने कहा -) अरे बीस भुजावाले! यदि तेरी दसों जीभें मैंने नहीं उखाड़ लीं तो सचमुच मैं लबार ही हूँ। राम के प्रताप को समझकर (स्मरण करके) अंगद क्रोधित हो उठे और उन्होंने रावण की सभा में प्रण करके (दृढ़ता के साथ) पैर रोप दिया।

जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी॥

सुनहु सुभट सब कह दससीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा॥

(और कहा -) अरे मूर्ख! यदि तू मेरा चरण हटा सके तो राम लौट जाएँगे, मैं सीता को हार गया। रावण ने कहा - हे सब वीरो! सुनो, पैर पकड़कर बंदर को पृथ्वी पर पछाड़ दो।

इंद्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना॥
झपटहिं करि बल बिपुल उपाई। पद न टरइ बैठहिं सिरु नाई॥

इंद्रजीत (मेघनाद) आदि अनेकों बलवान योद्धा जहाँ-तहाँ से हर्षित होकर उठे। वे पूरे बल से बहुत-से उपाय करके झपटते हैं। पर पैर टलता नहीं, तब सिर नीचा करके फिर अपने-अपने स्थान पर जा बैठ जाते हैं।

पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरइ न कीस चरन एहि भाँती॥
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी॥

(काकभुशुंडि कहते हैं -) वे देवताओं के शत्रु (राक्षस) फिर उठकर झपटते हैं। परंतु हे सर्पों के शत्रु गरुड़! अंगद का चरण उनसे वैसे ही नहीं टलता जैसे कुयोगी (विषयी) पुरुष मोहरूपी वृक्ष को नहीं उखाड़ सकते।

दो० - कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाइ।
झपटहिं टरै न कपि चरन पुनि बैठहिं सिर नाइ॥ 34(क)॥

करोड़ों वीर योद्धा जो बल में मेघनाद के समान थे, हर्षित होकर उठे। वे बार-बार झपटते हैं, पर वानर का चरण नहीं उठता, तब लज्जा के मारे सिर नवाकर बैठ जाते हैं॥ 34(क)॥

भूमि न छाँड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग।
कोटि बिघ्न ते संत कर मन जिमि नीति न त्याग॥ 34(ख)॥

जैसे करोड़ों विघ्न आने पर भी संत का मन नीति को नहीं छोड़ता, वैसे ही वानर (अंगद) का चरण पृथ्वी को नहीं छोड़ता। यह देखकर शत्रु (रावण) का मद दूर हो गया!॥ 34(ख)॥

कपि बल देखि सकल हियँ हारे। उठा आपु कपि कें परचारे॥
गहत चरन कह बालिकुमारा। मम पद गहें न तोर उबारा॥

अंगद का बल देखकर सब हृदय में हार गए। तब अंगद के ललकारने पर रावण स्वयं

उठा। जब वह अंगद का चरण पकड़ने लगा, तब बालि कुमार अंगद ने कहा - मेरा चरण पकड़ने से तेरा बचाव नहीं होगा!

गहसि न राम चरन सठ जाई॥ सुनत फिरा मन अति सकुचाई॥
भयउ तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई॥

अरे मूर्ख - तू जाकर राम के चरण क्यों नहीं पकड़ता? यह सुनकर वह मन में बहुत ही सकुचाकर लौट गया। उसकी सारी श्री जाती रही। वह ऐसा तेजहीन हो गया जैसे मध्याह्न में चंद्रमा दिखाई देता है।

सिंघासन बैठेउ सिर नाई। मानहुँ संपति सकल गँवाई॥
जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा॥

वह सिर नीचा करके सिंहासन पर जा बैठा। मानो सारी संपत्ति गँवाकर बैठा हो। राम जगतभर के आत्मा और प्राणों के स्वामी हैं। उनसे विमुख रहनेवाला शांति कैसे पा सकता है?

उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा॥
तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई। तासु दूत पन कहु किमि टरई॥

(शिव कहते हैं -) हे उमा! जिन राम के भ्रूविलास (भौंह के इशारे) से विश्व उत्पन्न होता है और फिर नाश को प्राप्त होता है; जो तृण को वज्र और वज्र को तृण बना देते हैं (अत्यंत निर्बल को महान प्रबल और महान प्रबल को अत्यंत निर्बल कर देते हैं), उनके दूत का प्रण, कहो, कैसे टल सकता है?

पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न ताहि कालु निअराना॥
रिपु मद मथि प्रभु सुजसु सुनायो। यह कहि चल्यो बालि नृप जायो॥

फिर अंगद ने अनेकों प्रकार से नीति कही। पर रावण नहीं माना; क्योंकि उसका काल निकट आ गया था। शत्रु के गर्व को चूर करके अंगद ने उसको प्रभु राम का सुयश सुनाया और फिर वह राजा बालि का पुत्र यह कहकर चल दिया -

हतौं न खेत खेलाइ खेलाई। तोहि अबहिं का करौं बड़ाई॥
प्रथमहिं तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावन भयउ दुखारा॥

रणभूमि में तुझे खेला-खेलाकर न मारूँ तब तक अभी (पहले से) क्या बड़ाई करूँ। अंगद ने पहले ही (सभा में आने से पूर्व ही) उसके पुत्र को मार डाला था। वह संवाद सुनकर रावण दुःखी हो गया।

जातुधान अंगद पन देखी। भय ब्याकुल सब भए बिसेषी॥

अंगद का प्रण (सफल) देखकर सब राक्षस भय से अत्यंत ही व्याकुल हो गए।

दो० - रिपु बल धरषि हरषि कपि बालितनय बल पुंज।
पुलक सरीर नयन जल गहे राम पद कंज॥ 35(क)॥

शत्रु के बल का मर्दन कर, बल की राशि बालि पुत्र अंगद ने हर्षित होकर आकर राम के चरणकमल पकड़ लिए। उनका शरीर पुलकित है और नेत्रों में (आनंदाश्रुओं का) जल भरा है॥ 35(क)॥

साँझ जानि दसकंधर भवन गयउ बिलखाइ।
मंदोदरीं रावनहिं बहुरि कहा समुझाइ॥ 35(ख)॥

संध्या हो गई, जानकर दशग्रीव बिलखता हुआ (उदास होकर) महल में गया। मंदोदरी ने रावण को समझाकर फिर कहा - ॥ 35(ख)॥

कंत समुझि मन तजहु कुमतिही। सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही॥
रामानुज लघु रेख खचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई॥

हे कांत! मन में समझकर (विचारकर) कुबुद्धि को छोड़ दो। आप से और रघुनाथ से युद्ध शोभा नहीं देता। उनके छोटे भाई ने एक जरा-सी रेखा खींच दी थी, उसे भी आप नहीं लाँघ सके, ऐसा तो आपका पुरुषत्व है।

पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर यह कामा॥
कौतुक सिंधु नाघि तव लंका। आयउ कपि केहरी असंका॥

हे प्रियतम! आप उन्हें संग्राम में जीत पाएँगे, जिनके दूत का ऐसा काम है? खेल से ही समुद्र लाँघकर वह वानरों में सिंह (हनुमान) आपकी लंका में निर्भय चला आया!

रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहिं मारा॥

जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा। कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा॥

रखवालों को मारकर उसने अशोक वन उजाड़ डाला। आपके देखते-देखते उसने अक्षयकुमार को मार डाला और संपूर्ण नगर को जलाकर राख कर दिया। उस समय आपके बल का गर्व कहाँ चला गया था?

अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदयँ बिचारहु॥
पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अग जग नाथ अतुलबल जानहु॥

अब हे स्वामी! झूठ (व्यर्थ) गाल न मारिए (डींग न हाँकिए) मेरे कहने पर हृदय में कुछ विचार कीजिए। हे पति! आप रघुपति को (निरा) राजा मत समझिए, बल्कि अग-जगनाथ (चराचर के स्वामी) और अतुलनीय बलवान जानिए।

बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहि नीचा॥
जनक सभाँ अगनित भूपाला। रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला॥

राम के बाण का प्रताप तो नीच मारीच भी जानता था। परंतु आपने उसका कहना भी नहीं माना। जनक की सभा में अगणित राजागण थे। वहाँ विशाल और अतुलनीय बलवाले आप भी थे।

भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही॥
सुरपति सुत जानइ बल थोरा। राखा जिअत आँखि गहि फोरा॥

वहाँ शिव का धनुष तोड़कर राम ने जानकी को ब्याहा, तब आपने उनको संग्राम में क्यों नहीं जीता? इंद्रपुत्र जयंत उनके बल को कुछ-कुछ जानता है। राम ने पकड़कर, केवल उसकी एक आँख ही फोड़ दी और उसे जीवित ही छोड़ दिया।

सूपनखा कै गति तुम्ह देखी। तदपि हृदयँ नहिं लाज बिसेषी॥

शूर्पणखा की दशा तो आपने देख ही ली। तो भी आपके हृदय में (उनसे लड़ने की बात सोचते) विशेष (कुछ भी) लज्जा नहीं आती!

दो० - बधि बिराध खर दूषनहि लीलाँ हत्यो कबंध।
बालि एक सर मार्‌यो तेहि जानहु दसकंध॥ 36॥

जिन्होंने विराध और खर-दूषण को मारकर लीला से ही कबंध को भी मार डाला; और जिन्होंने बालि को एक ही बाण से मार दिया, हे दशकंध! आप उन्हें (उनके महत्त्व को) समझिए!॥ 36॥

जेहिं जलनाथ बँधायउ हेला। उतरे प्रभु दल सहित सुबेला॥
कारुनीक दिनकर कुल केतू। दूत पठायउ तव हित हेतू॥

जिन्होंने खेल से ही समुद्र को बँधा लिया और जो प्रभु सेना सहित सुबेल पर्वत पर उतर पड़े, उन सूर्यकुल के ध्वजास्वरूप (कीर्ति को बढ़ानेवाले) करुणामय भगवान ने आप ही के हित के लिए दूत भेजा।

सभा माझ जेहिं तव बल मथा। करि बरूथ महुँ मृगपति जथा॥
अंगद हनुमत अनुचर जाके। रन बाँकुरे बीर अति बाँके॥

जिसने बीच सभा में आकर आपके बल को उसी प्रकार मथ डाला जैसे हाथियों के झुंड में आकर सिंह (उसे छिन्न-भिन्न कर डालता है)। रण में बाँके अत्यंत विकट वीर अंगद और हनुमान जिनके सेवक हैं,

तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद बहहू॥
अहह कंत कृत राम बिरोधा। काल बिबस मन उपज न बोधा॥

हे पति! उन्हें आप बार-बार मनुष्य कहते हैं। आप व्यर्थ ही मान, ममता और मद का बोझ ढो रहे हैं! हा प्रियतम! आपने राम से विरोध कर लिया और काल के विशेष वश होने से आपके मन में अब भी ज्ञान नहीं उत्पन्न होता।

काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा॥
निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं॥

काल दंड (लाठी) लेकर किसी को नहीं मारता। वह धर्म, बल, बुद्धि और विचार को हर लेता है। हे स्वामी! जिसका काल (मरण-समय) निकट आ जाता है, उसे आप ही की तरह भ्रम हो जाता है।

दो० - दुइ सुत मरे दहेउ पुर अजहुँ पूर पिय देहु।
कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जसु लेहु॥ 37॥

आपके दो पुत्र मारे गए और नगर जल गया। (जो हुआ सो हुआ) हे प्रियतम! अब भी (इस भूल की) पूर्ति (समाप्ति) कर दीजिए (राम से वैर त्याग दीजिए); और हे नाथ! कृपा के समुद्र रघुनाथ को भजकर निर्मल यश लीजिए॥ 37॥

नारि बचन सुनि बिसिख समाना। सभाँ गयउ उठि होत बिहाना॥
बैठ जाइ सिंघासन फूली। अति अभिमान त्रास सब भूली॥

स्त्री के बाण के समान वचन सुनकर वह सबेरा होते ही उठकर सभा में चला गया और सारा भय भुलाकर अत्यंत अभिमान में फूलकर सिंहासन पर जा बैठा।

इहाँ राम अंगदहि बोलावा। आइ चरन पंकज सिरु नावा॥
अति आदर समीप बैठारी। बोले बिहँसि कृपाल खरारी॥

यहाँ (सुबेल पर्वत पर) राम ने अंगद को बुलाया। उन्होंने आकर चरणकमलों में सिर नवाया। बड़े आदर से उन्हें पास बैठाकर खर के शत्रु कृपालु राम हँसकर बोले -

बालितनय कौतुक अति मोही। तात सत्य कहुँ पूछउँ तोही॥
रावनु जातुधान कुल टीका। भुज बल अतुल जासु जग लीका॥

हे बालि के पुत्र! मुझे बड़ा कौतूहल है। हे तात! इसी से मैं तुमसे पूछता हूँ, सत्य कहना। जो रावण राक्षसों के कुल का तिलक है और जिसके अतुलनीय बाहुबल की जगतभर में धाक है,

तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए। कहहु तात कवनी बिधि पाए॥
सुनु सर्बग्य प्रनत सुखकारी। मुकुट न होहिं भूप गुन चारी॥

उसके चार मुकुट तुमने फेंके। हे तात! बताओ, तुमने उनको किस प्रकार से पाया! (अंगद ने कहा -) हे सर्वज्ञ! हे शरणागत को सुख देनेवाले! सुनिए। वे मुकुट नहीं हैं। वे तो राजा के चार गुण हैं।

साम दान अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा॥
नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जियँ जानि पहिं आए॥

हे नाथ! वेद कहते हैं कि साम, दान, दंड और भेद - ये चारों राजा के हृदय में बसते हैं। ये नीति-धर्म के चार सुंदर चरण हैं। (किंतु रावण में धर्म का अभाव है) ऐसा जी में जानकर

ये नाथ के पास आ गए हैं।

दो॰ - धर्महीन प्रभु पद बिमुख काल बिबस दससीस।
तेहि परिहरि गुन आए सुनहु कोसलाधीस॥ 38(क)॥

दशशीश रावण धर्महीन, प्रभु के पद से विमुख और काल के वश में है, इसलिए हे कोसलराज! सुनिए, वे गुण रावण को छोड़कर आपके पास आ गए हैं॥ 38(क)॥

परम चतुरता श्रवन सुनि बिहँसे रामु उदार।
समाचार पुनि सब कहे गढ़ के बालिकुमार॥ 38(ख)॥

अंगद की परम चतुरता (पूर्ण उक्ति) कानों से सुनकर उदार राम हँसने लगे। फिर बालि पुत्र ने किले के (लंका के) सब समाचार कहे॥ 38(ख)॥

रिपु के समाचार जब पाए। राम सचिव सब निकट बोलाए॥
लंका बाँके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिअ करहु बिचारा॥

जब शत्रु के समाचार प्राप्त हो गए, तब राम ने सब मंत्रियों को पास बुलाया (और कहा -) लंका के चार बड़े विकट दरवाजे हैं। उन पर किस तरह आक्रमण किया जाए, इस पर विचार करो।

तब कपीस रिच्छेस बिभीषन। सुमरि हृदयँ दिनकर कुल भूषन॥
करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपि कटकु बनावा॥

तब वानरराज सुग्रीव, ऋक्षपति जाम्बवान और विभीषण ने हृदय में सूर्य कुल के भूषण रघुनाथ का स्मरण किया और विचार करके उन्होंने कर्तव्य निश्चित किया। वानरों की सेना के चार दल बनाए।

जथाजोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे॥
प्रभु प्रताप कहि सब समुझाए। सुनि कपि सिंघनाद करि धाए॥

और उनके लिए यथायोग्य (जैसे चाहिए वैसे) सेनापति नियुक्त किए। फिर सब यूथपतियों को बुला लिया और प्रभु का प्रताप कहकर सबको समझाया, जिसे सुनकर वानर, सिंह के समान गर्जना करके दौड़े।

हरषित राम चरन सिर नावहिं। गहि गिरि सिखर बीर सब धावहिं॥
गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा॥

वे हर्षित होकर राम के चरणों में सिर नवाते हैं और पर्वतों के शिखर ले-लेकर सब वीर दौड़ते हैं। 'कोसलराज रघुवीर की जय हो' पुकारते हुए भालू और वानर गरजते और ललकारते हैं।

जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभु प्रताप कपि चले असंका॥
घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी॥ मुखहिं निसार बजावहिं भेरी॥

लंका को अत्यंत श्रेष्ठ (अजेय) किला जानते हुए भी वानर प्रभु राम के प्रताप से निडर होकर चले। चारों ओर से घिरी हुई बादलों की घटा की तरह लंका को चारों दिशाओं से घेरकर वे मुँह से डंके और भेरी बजाने लगे।

दो० - जयति राम जय लछिमन जय कपीस सुग्रीव।
गर्जहिं सिंहनाद कपि भालु महा बल सींव॥ 39॥

महान बल की सीमा वे वानर-भालू सिंह के समान ऊँचे स्वर से 'राम की जय', 'लक्ष्मण की जय', 'वानरराज सुग्रीव की जय' - ऐसी गर्जना करने लगे॥ 39॥

लंकाँ भयउ कोलाहल भारी। सुना दसानन अति अहँकारी॥
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहँसि निसाचर सेन बोलाई॥

लंका में बड़ा भारी कोलाहल (कोहराम) मच गया। अत्यंत अहंकारी रावण ने उसे सुनकर कहा - वानरों की ढिठाई तो देखो! यह कहते हुए हँसकर उसने राक्षसों की सेना बुलाई।

आए कीस काल के प्रेरे। छुधावंत सब निसिचर मेरे॥
बअस कहि अट्टहास सठ कीन्हा। गृह बैठें अहार बिधि दीन्हा॥

बंदर काल की प्रेरणा से चले आए हैं। मेरे राक्षस सभी भूखे हैं। विधाता ने इन्हें घर बैठे भोजन भेज दिया। ऐसा कहकर उस मूर्ख ने अट्टहास किया (वह बड़े जोर से ठहाका मारकर हँसा)।

सुभट सकल चारिहुँ दिसि जाहू। धरि धरि भालु कीस सब खाहू॥

उमा रावनहि अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना॥

(और बोला -) हे वीरो! सब लोग चारों दिशाओं में जाओ और रीछ-वानर सबको पकड़-पकड़कर खाओ। (शिव कहते हैं -) हे उमा! रावण को ऐसा अभिमान था जैसा टिटिहिरी पक्षी पैर ऊपर की ओर करके सोता है (मानो आकाश को थाम लेगा)।

चले निसाचर आयसु मागी। गहि कर भिंडिपाल बर साँगी॥
तोमर मुद्गर परसु प्रचंडा। सूल कृपान परिघ गिरिखंडा॥

आज्ञा माँगकर और हाथों में उत्तम भिंदिपाल, साँगी (बरछी), तोमर, मुद्गर, प्रचंड फरसे, शूल, दुधारी तलवार, परिघ और पहाड़ों के टुकड़े लेकर राक्षस चले।

जिमि अरुनोपल निकर निहारी। धावहिं सठ खग मांस अहारी॥
चोंच भंग दुःख तिन्हहि न सूझा। तिमि धाए मनुजाद अबूझा॥

जैसे मूर्ख मांसाहारी पक्षी लाल पत्थरों का समूह देखकर उस पर टूट पड़ते हैं, (पत्थरों पर लगने से) चोंच टूटने का दुःख उन्हें नहीं सूझता, वैसे ही ये बेसमझ राक्षस दौड़े।

दो० - नानायुध सर चाप धर जातुधान बल बीर।
कोट कँगूरन्हि चढ़ि गए कोटि कोटि रनधीर॥ 40॥

अनेकों प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और धनुष-बाण धारण किए करोड़ों बलवान और रणधीर राक्षस वीर परकोटे के कँगूरों पर चढ़ गए॥ 40॥

कोट कँगूरन्हि सोहहिं कैसे। मेरु के सृंगनि जनु घन बैसे॥
बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होइ भटन्हि मन चाऊ॥

वे परकोटे के कँगूरों पर कैसे शोभित हो रहे हैं, मानो सुमेरु के शिखरों पर बादल बैठे हों। जुझाऊ ढोल और डंके आदि बज रहे हैं, (जिनकी) ध्वनि सुनकर योद्धाओं के मन में (लड़ने का) चाव होता है।

बाजहिं भेरि नफीरि अपारा। सुनि कादर उर जाहिं दरारा॥
देखिन्ह जाइ कपिन्ह के ठट्टा। अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा॥

अगणित नफीरी और भेरी बज रही है, (जिन्हें) सुनकर कायरों के हृदय में दरारें पड़ जाती

हैं। उन्होंने जाकर अत्यंत विशाल शरीरवाले महान योद्धा वानर और भालुओं के ठट्ट (समूह) देखे।

धावहिं गनहिं न अवघट घाटा। पर्बत फोरि करहिं गहि बाटा॥
कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं। दसन ओठ काटहिं अति तर्जहिं॥

(देखा कि) वे रीछ-वानर दौड़ते हैं, औघट (ऊँची-नीची, विकट) घाटियों को कुछ नहीं गिनते। पकड़कर पहाड़ों को फोड़कर रास्ता बना लेते हैं। करोड़ों योद्धा कटकटाते और गरजते हैं। दाँतों से ओंठ काटते और खूब डपटते हैं।

उत रावन इत राम ई। जयति जयति जय परी लराई॥
निसिचर सिखर समूह ढहावहिं। कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं॥

उधर रावण की और इधर राम की दुहाई बोली जा रही है। 'जय' 'जय' 'जय' की ध्वनि होते ही लड़ाई छिड़ गई। राक्षस पहाड़ों के ढेर के ढेर शिखरों को फेंकते हैं। वानर कूदकर उन्हें पकड़ लेते हैं और वापस उन्हीं की ओर चलाते हैं।

छं० - धरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं।
झपटहिं चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि पचारहीं॥
अति तरल तरुन प्रताप तरपहिं तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गए।
कपि भालु चढ़ि मंदिरन्ह जहँ तहँ राम जसु गावत भए॥

प्रचंड वानर और भालू पर्वतों के टुकड़े ले-लेकर किले पर डालते हैं। वे झपटते हैं और राक्षसों के पैर पकड़कर उन्हें पृथ्वी पर पटककर भाग चलते हैं और फिर ललकारते हैं। बहुत ही चंचल और बड़े तेजस्वी वानर-भालू बड़ी फुर्ती से उछलकर किले पर चढ़-चढ़कर गए और जहाँ-तहाँ महलों में घुसकर राम का यश गाने लगे।

दो० - एकु एकु निसिचर गहि पुनि कपि चले पराइ।
ऊपर आपु हेठ भट गिरहिं धरनि पर आइ॥ 41॥

फिर एक-एक राक्षस को पकड़कर वे वानर भाग चले। ऊपर आप और नीचे (राक्षस) योद्धा - इस प्रकार वे (किले से) धरती पर आ गिरते हैं॥ 41॥

राम प्रताप प्रबल कपिजूथा। मर्दहिं निसिचर सुभट बरूथा॥

चढ़े दुर्ग पुनि जहँ तहँ बानर। जय रघुबीर प्रताप दिवाकर॥

राम के प्रताप से प्रबल वानरों के झुंड राक्षस योद्धाओं के समूह-के-समूह मसल रहे हैं। वानर फिर जहाँ-तहाँ किले पर चढ़ गए और प्रताप में सूर्य के समान रघुवीर की जय बोलने लगे।

चले निसाचर निकर पराई। प्रबल पवन जिमि घन समुदाई॥
हाहाकार भयउ पुर भारी। रोवहिं बालक आतुर नारी॥

राक्षसों के झुंड वैसे ही भाग चले जैसे जोर की हवा चलने पर बादलों के समूह तितर-बितर हो जाते हैं। लंका नगरी में बड़ा भारी हाहाकार मच गया। बालक, स्त्रियाँ और रोगी (असमर्थता के कारण) रोने लगे।

सब मिलि देहिं रावनहि गारी। राज करत एहिं मृत्यु हँकारी॥
निज दल बिचल सुनी तेहिं काना। फेरि सुभट लंकेस रिसाना॥

सब मिलकर रावण को गालियाँ देने लगे कि राज्य करते हुए इसने मृत्यु को बुला लिया। रावण ने जब अपनी सेना का विचलित होना कानों से सुना, तब (भागते हुए) योद्धाओं को लौटाकर वह क्रोधित होकर बोला -

जो रन बिमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना॥
सर्बसु खाइ भोग करि नाना। समर भूमि भए बल्लभ प्राना॥

मैं जिसे रण से पीठ देकर भागा हुआ अपने कानों सुनूँगा, उसे स्वयं भयानक दुधारी तलवार से मारूँगा। मेरा सब कुछ खाया, भाँति-भाँति के भोग किए और अब रणभूमि में प्राण प्यारे हो गए!

उग्र बचन सुनि सकल डेराने। चले क्रोध करि सुभट लजाने॥
सन्मुख मरन बीर कै सोभा। तब तिन्ह तजा प्रान कर लोभा॥

रावण के उग्र (कठोर) वचन सुनकर सब वीर डर गए और लज्जित होकर क्रोध करके युद्ध के लिए लौट चले। रण में (शत्रु के) सम्मुख (युद्ध करते हुए) मरने में ही वीर की शोभा है। (यह सोचकर) तब उन्होंने प्राणों का लोभ छोड़ दिया।

दो० - बहु आयुध धर सुभट सब भिरहिं पचारि पचारि।

ब्याकुल किए भालु कपि परिघ त्रिसूलन्हि मारि॥ 42॥

बहुत-से अस्त्र-शस्त्र धारण किए, सब वीर ललकार-ललकारकर भिड़ने लगे। उन्होंने परिघों और त्रिशूलों से मार-मारकर सब रीछ-वानरों को व्याकुल कर दिया॥ 42॥

भय आतुर कपि भागत लागे। जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे॥
कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता। कहँ नल नील दुबिद बलवंता॥

(शिव कहते हैं -) वानर भयातुर होकर (डर के मारे घबड़ाकर) भागने लगे, यद्यपि हे उमा! आगे चलकर (वे ही) जीतेंगे। कोई कहता है - अंगद-हनुमान कहाँ हैं? बलवान नल, नील और द्विविद कहाँ हैं?

निज दल बिकल सुना हनुमाना। पच्छिम द्वार रहा बलवाना॥
मेघनाद तहँ करइ लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई॥

हनुमान ने जब अपने दल को विकल (भयभीत) हुआ सुना, उस समय वे बलवान पश्चिम द्वार पर थे। वहाँ उनसे मेघनाद युद्ध कर रहा था। वह द्वार टूटता न था, बड़ी भारी कठिनाई हो रही थी।

पवनतनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा॥
कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा॥

तब पवनपुत्र हनुमान के मन में बड़ा भारी क्रोध हुआ। वे काल के समान योद्धा बड़े जोर से गरजे और कूदकर लंका के किले पर आ गए और पहाड़ लेकर मेघनाद की ओर दौड़े।

भंजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता॥
दुसरें सूत बिकल तेहि जाना। स्यंदन घालि तुरत गृह आना॥

रथ तोड़ डाला, सारथी को मार गिराया और मेघनाद की छाती में लात मारी। दूसरा सारथी मेघनाद को व्याकुल जानकर, उसे रथ में डालकर, तुरंत घर ले आया।

दो० - अंगद सुना पवनसुत गढ़ पर गयउ अकेल।
रन बाँकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपि खेल॥ 43॥

इधर अंगद ने सुना कि पवनपुत्र हनुमान किले पर अकेले ही गए हैं, तो रण में बाँके बालि

पुत्र वानर के खेल की तरह उछलकर किले पर चढ़ गए॥ 43॥

जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध द्वौ बंदर। राम प्रताप सुमिरि उर अंतर॥
रावन भवन चढ़े द्वौ धाई। करहिं कोसलाधीस ई॥

युद्ध में शत्रुओं के विरुद्ध दोनों वानर क्रुद्ध हो गए। हृदय में राम के प्रताप का स्मरण करके दोनों दौड़कर रावण के महल पर जा चढ़े और कोसलराज राम की दुहाई बोलने लगे।

कलस सहित गहि भवनु ढहावा। देखि निसाचरपति भय पावा॥
नारि बृंद कर पीटहिं छाती। अब दुइ कपि आए उतपाती॥

उन्होंने कलश सहित महल को पकड़कर ढहा दिया। यह देखकर राक्षसराज रावण डर गया। सब स्त्रियाँ हाथों से छाती पीटने लगीं (और कहने लगीं -) अब की बार दो उत्पाती वानर (एक साथ) आ गए हैं।

कपिलीला करि तिन्हहि डेरावहिं। रामचंद्र कर सुजसु सुनावहिं॥
पुनि कर गहि कंचन के खंभा। कहेन्हि करिअ उतपात अरंभा॥

वानरलीला करके (घुड़की देकर) दोनों उनको डराते हैं और रामचंद्र का सुंदर यश सुनाते हैं। फिर सोने के खंभों को हाथों से पकड़कर उन्होंने (परस्पर) कहा कि अब उत्पात आरंभ किया जाए।

गर्जि परे रिपु कटक मझारी। लागे मर्दै भुज बल भारी॥
काहुहि लात चपेटन्हि केहू। भजहु न रामहि सो फल लेहू॥

वे गरजकर शत्रु की सेना के बीच में कूद पड़े और अपने भारी भुजबल से उसका मर्दन करने लगे। किसी की लात से और किसी की थप्पड़ से खबर लेते हैं (और कहते हैं कि) तुम राम को नहीं भजते, उसका यह फल लो।

दो० - एक एक सों मर्दहिं तोरि चलावहिं मुंड।
रावन आगें परहिं ते जनु फूटहिं दधि कुंड॥ 44॥

एक को दूसरे से (रगड़कर) मसल डालते हैं और सिरों को तोड़कर फेंकते हैं। वे सिर

जाकर रावण के सामने गिरते हैं और ऐसे फूटते हैं, मानो दही के कुंड फूट रहे हों॥ 44॥

महा महा मुखिआ जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं॥
कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा। देहिं राम तिन्हहू निज धामा॥

जिन बड़े-बड़े मुखियों (प्रधान सेनापतियों) को पकड़ पाते हैं, उनके पैर पकड़कर उन्हें प्रभु के पास फेंक देते हैं। विभीषण उनके नाम बतलाते हैं और राम उन्हें भी अपना धाम (परम पद) दे देते हैं।

खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो जाचत जोगी॥
उमा राम मृदुचित करुनाकर। बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर॥

ब्राह्मणों का मांस खानेवाले वे नरभोजी दुष्ट राक्षस भी वह परम गति पाते हैं, जिसकी योगी भी याचना किया करते हैं (परंतु सहज में नहीं पाते)। (शिव कहते हैं -) हे उमा! राम बड़े ही कोमल हृदय और करुणा की खान हैं। (वे सोचते हैं कि) राक्षस मुझे वैरभाव से ही सही, स्मरण तो करते ही हैं।

देहिं परम गति सो जियँ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी॥
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी॥

ऐसा हृदय में जानकर वे उन्हें परमगति (मोक्ष) देते हैं। हे भवानी! कहो तो ऐसे कृपालु (और) कौन हैं? प्रभु का ऐसा स्वभाव सुनकर भी जो मनुष्य भ्रम त्याग कर उनका भजन नहीं करते, वे अत्यंत मंद बुद्धि और परम भाग्यहीन हैं।

अंगद अरु हनुमंत प्रबेसा। कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेसा॥
लंकाँ द्वौ कपि सोहहिं कैसें। मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसें॥

राम ने कहा कि अंगद और हनुमान किले में घुस गए हैं। दोनों वानर लंका में (विध्वंस करते) कैसे शोभा देते हैं, जैसे दो मंदराचल समुद्र को मथ रहे हों।

दो० - भुज बल रिपु दल दलमलि देखि दिवस कर अंत।
कूदे जुगल बिगत श्रम आए जहँ भगवंत॥ 45॥

भुजाओं के बल से शत्रु की सेना को कुचलकर और मसलकर, फिर दिन का अंत होता देखकर हनुमान और अंगद दोनों कूद पड़े और श्रम थकावट रहित होकर वहाँ आ गए,

जहाँ भगवान राम थे॥ 45॥

प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाए। देखि सुभट रघुपति मन भाए॥
राम कृपा करि जुगल निहारे। भए बिगतश्रम परम सुखारे॥

उन्होंने प्रभु के चरण कमलों में सिर नवाए। उत्तम योद्धाओं को देखकर रघुनाथ मन में बहुत प्रसन्न हुए। राम ने कृपा करके दोनों को देखा, जिससे वे श्रमरहित और परम सुखी हो गए।

गए जानि अंगद हनुमाना। फिरे भालु मर्कट भट नाना॥
जातुधान प्रदोष बल पाई। धाए करि दससीस ई॥

अंगद और हनुमान को गए जानकर सभी भालू और वानर वीर लौट पड़े। राक्षसों ने प्रदोष (सायं) काल का बल पाकर रावण की दुहाई देते हुए वानरों पर धावा किया।

निसिचर अनी देखि कपि फिरे। जहँ तहँ कटकटाइ भट भिरे॥
द्वौ दल प्रबल पचारि पचारी। लरत सुभट नहिं मानहिं हारी॥

राक्षसों की सेना आती देखकर वानर लौट पड़े और वे योद्धा जहाँ-तहाँ कटकटाकर भिड़ गए। दोनों ही दल बड़े बलवान हैं। योद्धा ललकार-ललकारकर ल़ड़ते हैं, कोई हार नहीं मानते।

महाबीर निसिचर सब कारे। नाना बरन बलीमुख भारे॥
सबल जुगल दल समबल जोधा। कौतुक करत लरत करि क्रोधा॥

सभी राक्षस महान वीर और अत्यंत काले हैं और वानर विशालकाय तथा अनेकों रंगों के हैं। दोनों ही दल बलवान हैं और समान बलवाले योद्धा हैं। वे क्रोध करके लड़ते हैं और खेल करते (वीरता दिखलाते) हैं।

प्राबिट सरद पयोद घनेरे। लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे॥
अनिप अकंपन अरु अतिकाया। बिचलत सेन कीन्हि इन्ह माया॥

(राक्षस और वानर युद्ध करते हुए ऐसे जान पड़ते हैं) मानो क्रमशः वर्षा और शरद ऋतु में बहुत-से बादल पवन से प्रेरित होकर लड़ रहे हों। अकंपन और अतिकाय इन सेनापतियों

ने अपनी सेना को विचलित होते देखकर माया की।

भयउ निमिष महँ अति अँधिआरा। बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा॥

पलभर में अत्यंत अंधकार हो गया। खून, पत्थर और राख की वर्षा होने लगी।

दो० - देखि निबिड़ तम दसहुँ दिसि कपिदल भयउ खभार।
एकहि एक न देखई जहँ तहँ करहिं पुकार॥ 46॥

दसों दिशाओं में अत्यंत घना अंधकार देखकर वानरों की सेना में खलबली पड़ गई। एक को एक (दूसरा) नहीं देख सकता और सब जहाँ-तहाँ पुकार रहे हैं॥ 46॥

सकल मरमु रघुनायक जाना। लिए बोलि अंगद हनुमाना॥
समाचार सब कहि समुझाए। सुनत कोपि कपिकुंजर धाए॥

रघुनाथ सब रहस्य जान गए। उन्होंने अंगद और हनुमान को बुला लिया और सब समाचार कहकर समझाया। सुनते ही वे दोनों कपिश्रेष्ठ क्रोध करके दौड़े।

पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा। पावक सायक सपदि चलावा॥
भयउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं। ग्यान उदयँ जिमि संसय जाहीं॥

फिर कृपालु राम ने हँसकर धनुष चढ़ाया और तुरंत ही अग्निबाण चलाया, जिससे प्रकाश हो गया, कहीं अँधेरा नहीं रह गया। जैसे ज्ञान के उदय होने पर (सब प्रकार के) संदेह दूर हो जाते हैं।

भालु बलीमुख पाई प्रकासा। धाए हरष बिगत श्रम त्रासा॥
हनूमान अंगद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे॥

भालू और वानर प्रकाश पाकर श्रम और भय से रहित तथा प्रसन्न होकर दौड़े। हनुमान और अंगद रण में गरज उठे। उनकी हाँक सुनते ही राक्षस भाग छूटे।

भागत भट पटकहिं धरि धरनी। करहिं भालु कपि अद्भुत करनी॥
गहि पद डारहिं सागर माहीं। मकर उरग झष धरि धरि खाहीं॥

भागते हुए राक्षस योद्धाओं को वानर और भालू पकड़कर पृथ्वी पर दे मारते हैं और अद्भुत

(आश्चर्यजनक) करनी करते हैं (युद्धकौशल दिखलाते हैं)। पैर पकड़कर उन्हें समुद्र में डाल देते हैं। वहाँ मगर, साँप और मच्छ उन्हें पकड़-पकड़कर खा डालते हैं।

दो॰ - कछु मारे कछु घायल कछु गढ़ चढ़े पराइ।
गर्जहिं भालु बलीमुख रिपु दल बल बिचलाइ॥ 47॥

कुछ मारे गए, कुछ घायल हुए, कुछ भागकर गढ़ पर चढ़ गए। अपने बल से शत्रुदल को विचलित करके रीछ और वानर (वीर) गरज रहे हैं॥ 47॥

निसा जानि कपि चारिउ अनी। आए जहाँ कोसला धनी॥
राम कृपा करि चितवा सबही। भए बिगतश्रम बानर तबही॥

रात हुई जानकर वानरों की चारों सेनाएँ (टुकड़ियाँ) वहाँ आईं जहाँ कोसलपति राम थे। राम ने ज्यों ही सबको कृपा करके देखा त्यों ही ये वानर श्रमरहित हो गए।

उहाँ दसानन सचिव हँकारे। सब सन कहेसि सुभट जे मारे॥
आधा कटकु कपिन्ह संघारा। कहहु बेगि का करिअ बिचारा॥

वहाँ (लंका में) रावण ने मंत्रियों को बुलाया और जो योद्धा मारे गए थे, उन सबको सबसे बताया। (उसने कहा -) वानरों ने आधी सेना का संहार कर दिया! अब शीघ्र बताओ, क्या विचार (उपाय) करना चाहिए?

माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन मातु पिता मंत्री बर॥
बोला बचन नीति अति पावन। सुनहु तात कछु मोर सिखावन॥

माल्यवंत (नाम का एक) अत्यंत बूढ़ा राक्षस था। वह रावण की माता का पिता (अर्थात उसका नाना) और श्रेष्ठ मंत्री था। वह अत्यंत पवित्र नीति के वचन बोला - हे तात! कुछ मेरी सीख भी सुनो -

जब ते तुम्ह सीता हरि आनी। असगुन होहिं न जाहिं बखानी॥
बेद पुरान जासु जसु गायो। राम बिमुख काहुँ न सुख पायो॥

जब से तुम सीता को हर लाए हो, तब से इतने अपशकुन हो रहे हैं कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। वेद-पुराणों ने जिनका यश गाया है, उन राम से विमुख होकर किसी ने

सुख नहीं पाया।

दो० - हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान।
जेहिं मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान॥ 48(क)॥

भाई हिरण्यकशिपु सहित हिरण्याक्ष को बलवान मधु-कैटभ को जिन्होंने मारा था, वे ही कृपा के समुद्र भगवान (रामरूप से) अवतरित हुए हैं॥ 48(क)॥

कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध॥ 48(ख)॥

जो कालस्वरूप हैं, दुष्टों के समूहरूपी वन के भस्म करनेवाले (अग्नि) हैं, गुणों के धाम और ज्ञानघन हैं एवं शिव और ब्रह्मा भी जिनकी सेवा करते हैं, उनसे वैर कैसा?॥ 48(ख)॥

परिहरि बयरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही॥
ताके बचन बान सम लागे। करिआ मुह करि जाहि अभागे॥

(अतः) वैर छोड़कर उन्हें जानकी को दे दो और कृपानिधान परम स्नेही राम का भजन करो। रावण को उसके वचन बाण के समान लगे। (वह बोला -) अरे अभागे! मुँह काला करके (यहाँ से) निकल जा।

बूढ़ भएसि न त मरतेउँ तोही। अब जनि नयन देखावसि मोही॥
तेहिं अपने मन अस अनुमाना। बध्यो चहत एहि कृपानिधाना॥

तू बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुझे मार ही डालता। अब मेरी आँखों को अपना मुँह न दिखला। रावण के ये वचन सुनकर उसने (माल्यवान ने) अपने मन में ऐसा अनुमान किया कि इसे कृपानिधान राम अब मारना ही चाहते हैं।

सो उठि गयउ कहत दुर्बादा। तब सकोप बोलेउ घननादा॥
कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहउँ बहुत कहौं का थोरा॥

वह रावण को दुर्वचन कहता हुआ उठकर चला गया। तब मेघनाद क्रोधपूर्वक बोला - सबेरे मेरी करामात देखना। मैं बहुत कुछ करूँगा; थोड़ा क्या कहूँ? (जो कुछ वर्णन करूँगा थोड़ा

ही होगा।)

सुनि सुत बचन भरोसा आवा। प्रीति समेत अंक बैठावा॥
करत बिचार भयउ भिनुसारा। लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा॥

पुत्र के वचन सुनकर रावण को भरोसा आ गया। उसने प्रेम के साथ उसे गोद में बैठा लिया। विचार करते-करते ही सबेरा हो गया। वानर फिर चारों दरवाजों पर जा लगे।

कोपि कपिन्ह दुर्घट गढ़ु घेरा। नगर कोलाहलु भयउ घनेरा॥
बिबिधायुध धर निसिचर धाए। गढ़ ते पर्बत सिखर ढहाए॥

वानरों ने क्रोध करके दुर्गम किले को घेर लिया। नगर में बहुत ही कोलाहल (शोर) मच गया। राक्षस बहुत तरह के अस्त्र-शस्त्र धारण करके दौड़े और उन्होंने किले पर पहाड़ों के शिखर ढहाए।

छं० - ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले॥
मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए।
गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहि जहँ सो तहँ निसिचर हए॥

उन्होंने पर्वतों के करोड़ों शिखर ढहाए, अनेक प्रकार से गोले चलने लगे। वे गोले ऐसा घहराते हैं जैसे वज्रपात हुआ हो (बिजली गिरी हो) और योद्धा ऐसे गरजते हैं, मानो प्रलयकाल के बादल हों। विकट वानर योद्धा भिड़ते हैं, कट जाते हैं (घायल हो जाते हैं), उनके शरीर जर्जर (चलनी) हो जाते हैं, तब भी वे लटते नहीं (हिम्मत नहीं हारते)। वे पहाड़ उठाकर उसे किले पर फेंकते हैं। राक्षस जहाँ के तहाँ (जो जहाँ होते हैं, वहीं) मारे जाते हैं।

दो० - मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ु पुनि छेंका आइ।
उतर्‌यो बीर दुर्ग तें सन्मुख चल्यो बजाइ॥ 49॥

मेघनाद ने कानों से ऐसा सुना कि वानरों ने आकर फिर किले को घेर लिया है। तब वह वीर किले से उतरा और डंका बजाकर उनके सामने चला॥ 49॥

कहँ कोसलाधीस द्वौ भ्राता। धन्वी सकल लोक बिख्याता॥

कहँ नल नील दुबिद सुग्रीवा। अंगद हनूमंत बल सींवा॥

(मेघनाद ने पुकारकर कहा -) समस्त लोकों में प्रसिद्ध धनुर्धर कोसलाधीश दोनों भाई कहाँ हैं? नल, नील, द्विविद, सुग्रीव और बल की सीमा अंगद और हनुमान कहाँ हैं?

कहाँ बिभीषनु भ्राताद्रोही। आजु सबहि हठि मारउँ ओही॥
अस कहि कठिन बान संधाने। अतिसय क्रोध श्रवन लगि ताने॥

भाई से द्रोह करनेवाला विभीषण कहाँ है? आज मैं सबको और उस दुष्ट को तो हठपूर्वक (अवश्य ही) मारूँगा। ऐसा कहकर उसने धनुष पर कठिन बाणों का संधान किया और अत्यंत क्रोध करके उसे कान तक खींचा।

सर समूह सो छाड़ै लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा॥
जहँ तहँ परत देखिअहिं बानर। सन्मुख होइ न सके तेहि अवसर॥

वह बाणों के समूह छोड़ने लगा। मानो बहुत-से पंखवाले साँप दौड़े जा रहे हों। जहाँ-तहाँ वानर गिरते दिखाई पड़ने लगे। उस समय कोई भी उसके सामने न हो सके।

जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा। बिसरी सबहि जुद्ध कै ईछा॥
सो कपि भालु न रन महँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा॥

रीछ-वानर जहाँ-तहाँ भाग चले। सबको युद्ध की इच्छा भूल गई। रणभूमि में ऐसा एक भी वानर या भालू नहीं दिखाई पड़ा, जिसको उसने प्राणमात्र अवशेष न कर दिया हो (अर्थात जिसके केवल प्राणमात्र ही न बचे हों; बल, पुरुषार्थ सारा जाता न रहा हो)।

दो॰ - दस दस सर सब मारेसि परे भूमि कपि बीर।
सिंहनाद करि गर्जा मेघनाद बल धीर॥ 50॥

फिर उसने सबको दस-दस बाण मारे, वानर वीर पृथ्वी पर गिर पड़े। बलवान और धीर मेघनाद सिंह के समान नाद करके गरजने लगा॥ 50॥

देखि पवनसुत कटक बिहाला। क्रोधवंत जनु धायउ काला॥
महासैल एक तुरत उपारा। अति रिस मेघनाद पर डारा॥

सारी सेना को बेहाल (व्याकुल) देखकर पवनसुत हनुमान क्रोध करके ऐसे दौड़े मानो स्वयं

काल दौड़ आता हो। उन्होंने तुरंत एक बड़ा भारी पहाड़ उखाड़ लिया और बड़े ही क्रोध के साथ उसे मेघनाद पर छोड़ा।

आवत देखि गयउ नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई॥
बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना॥

पहाड़ को अपनी ओर आते देखकर वह आकाश में उड़ गया। (उसके) रथ, सारथी और घोड़े सब नष्ट हो गए (चूर-चूर हो गए)। हनुमान उसे बार-बार ललकारते हैं। पर वह निकट नहीं आता, क्योंकि वह उनके बल का मर्म जानता था।

रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भाँति करेसि दुर्बादा॥
अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुकहीं प्रभु काटि निवारे॥

(तब) मेघनाद रघुनाथ के पास गया और उसने (उनके प्रति) अनेकों प्रकार के दुर्वचनों का प्रयोग किया। (फिर) उसने उन पर अस्त्र-शस्त्र तथा और सब हथियार चलाए। प्रभु ने खेल में ही सबको काटकर अलग कर दिया।

देखि प्रताप मूढ़ खिसिआना। करै लाग माया बिधि नाना॥
जिमि कोउ करै गरुड़ सैं खेला। डरपावै गहि स्वल्प सपेला॥

राम का प्रताप (सामर्थ्य) देखकर वह मूर्ख लज्जित हो गया और अनेकों प्रकार की माया करने लगा। जैसे कोई व्यक्ति छोटा-सा साँप का बच्चा हाथ में लेकर गरुड़ को डरावे और उससे खेल करे।

दो० - जासु प्रबल माया बस सिव बिरंचि बड़ छोट।
ताहि दिखावइ निसिचर निज माया मति खोट॥ 51॥

शिव और ब्रह्मा तक बड़े-छोटे (सभी) जिनकी अत्यंत बलवान माया के वश में हैं, नीच बुद्धि निशाचर उनको अपनी माया दिखलाता है॥ 51॥

नभ चढ़ि बरष बिपुल अंगारा। महि ते प्रगट होहिं जलधारा॥
नाना भाँति पिसाच पिसाची। मारु काटु धुनि बोलहिं नाची॥

आकाश में (ऊँचे) चढ़कर वह बहुत-से अंगारे बरसाने लगा। पृथ्वी से जल की धाराएँ प्रकट होने लगीं। अनेक प्रकार के पिशाच तथा पिशाचिनियाँ नाच-नाचकर 'मारो, काटो' की आवाज

करने लगीं।

बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा॥
बरषि धूरि कीन्हेसि अँधिआरा। सूझ न आपन हाथ पसारा॥

वह कभी तो विष्ठा, पीब, खून, बाल और हड्डियाँ बरसाता था और कभी बहुत-से पत्थर फेंक देता था। फिर उसने धूल बरसाकर ऐसा अँधेरा कर दिया कि अपना ही पसारा हुआ हाथ नहीं सूझता था।

कपि अकुलाने माया देखें। सब कर मरन बना ऐहि लेखें॥
कौतुक देखि राम मुसुकाने। भए सभीत सकल कपि जाने॥

माया देखकर वानर अकुला उठे। वे सोचने लगे कि इस हिसाब से (इसी तरह रहा) तो सबका मरण आ बना। यह कौतुक देखकर राम मुसकराए। उन्होंने जान लिया कि सब वानर भयभीत हो गए हैं।

एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया॥
कृपादृष्टि कपि भालु बिलोके। भए प्रबल रन रहहिं न रोके॥

तब राम ने एक ही बाण से सारी माया काट डाली, जैसे सूर्य अंधकार के समूह को हर लेता है। तदनंतर उन्होंने कृपाभरी दृष्टि से वानर-भालुओं की ओर देखा, (जिससे) वे ऐसे प्रबल हो गए कि रण में रोकने पर भी नहीं रुकते थे।

दो० - आयसु मागि राम पहिं अंगदादि कपि साथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ॥ 52॥

राम से आज्ञा माँगकर, अंगद आदि वानरों के साथ हाथों में धनुष-बाण लिए हुए लक्ष्मण क्रुद्ध होकर चले॥ 52॥

छतज नयन उर बाहु बिसाला। हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला॥
इहाँ दसानन सुभट पठाए। नाना अस्त्र सस्त्र गहि धाए॥

उनके लाल नेत्र हैं, चौड़ी छाती और विशाल भुजाएँ हैं। हिमाचल पर्वत के समान उज्ज्वल (गौरवर्ण) शरीर कुछ ललाई लिए हुए है। इधर रावण ने भी बड़े-बड़े योद्धा भेजे, जो अनेकों

अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़े।

भूधर नख बिटपायुध धारी। धाए कपि जय राम पुकारी॥
भिरे सकल जोरिहि सन जोरी। इत उत जय इच्छा नहिं थोरी॥

पर्वत, नख और वृक्षरूपी हथियार धारण किए हुए वानर 'राम की जय' पुकारकर दौड़े। वानर और राक्षस सब जोड़ी से जोड़ी भिड़ गए। इधर और उधर दोनों ओर जय की इच्छा कम न थी (अर्थात प्रबल थी)।

मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं। कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं॥
मारु मारु धरु धरु धरु मारू। सीस तोरि गहि भुजा उपारू॥

वानर उनको घूँसों और लातों से मारते हैं, दाँतों से काटते हैं। विजयशील वानर उन्हें मारकर फिर डाँटते भी हैं। 'मारो, मारो, पकड़ो, पकड़ो, पकड़कर मार दो, सिर तोड़ दो और भुजाएँ पकड़कर उखाड़ लो'।

असि रव पूरि रही नव खंडा। धावहिं जहँ तहँ रुंड प्रचंडा॥
देखहिं कौतुक नभ सुर बृंदा। कबहुँक बिसमय कबहुँ अनंदा॥

नवों खंडों में ऐसी आवाज भर रही है। प्रचंड रुंड (धड़) जहाँ-तहाँ दौड़ रहे हैं। आकाश में देवतागण यह कौतुक देख रहे हैं। उन्हें कभी खेद होता है और कभी आनंद।

दो॰ - रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ।
जनु अँगार रासिन्ह पर मृतक धूम रह्यो छाइ॥ 53॥

खून गड्ढों में भर-भरकर जम गया है और उस पर धूल उड़कर पड़ रही है (वह दृश्य ऐसा है) मानो अंगारों के ढेरों पर राख छा रही हो॥ 53॥

घायल बीर बिराजहिं कैसे। कुसुमति किंसुक के तरु जैसे॥
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा॥

घायल वीर कैसे शोभित हैं, जैसे फूले हुए पलाश के पेड़। लक्ष्मण और मेघनाद दोनों योद्धा अत्यंत क्रोध करके एक-दूसरे से भिड़ते हैं।

एकहि एक सकइ नहिं जीती। निसिचर छल बल करइ अनीती॥

क्रोधवंत तब भयउ अनंता। भंजेउ रथ सारथी तुरंता॥

एक-दूसरे को (कोई किसी को) जीत नहीं सकता। राक्षस छल-बल (माया) और अनीति (अधर्म) करता है, तब भगवान अनंत (लक्ष्मण) क्रोधित हुए और उन्होंने तुरंत उसके रथ को तोड़ डाला और सारथी को टुकड़े-टुकड़े कर दिए!

नाना बिधि प्रहार कर सेषा। राच्छस भयउ प्रान अवसेषा॥
रावन सुत निज मन अनुमाना। संकठ भयउ हरिहि मम प्राना॥

शेष (लक्ष्मण) उस पर अनेक प्रकार से प्रहार करने लगे। राक्षस के प्राणमात्र शेष रह गए। रावणपुत्र मेघनाद ने मन में अनुमान किया कि अब तो प्राण संकट आ बना, ये मेरे प्राण हर लेंगे।

बीरघातिनी छाड़िसि साँगी। तेजपुंज लछिमन उर लागी॥
मुरुछा भई सक्ति के लागें। तब चलि गयउ निकट भय त्यागें॥

तब उसने वीरघातिनी शक्ति चलाई। वह तेजपूर्ण शक्ति लक्ष्मण की छाती में लगी। शक्ति लगने से उन्हें मूर्च्छा आ गई। तब मेघनाद भय छोड़कर उनके पास चला गया।

दो० - मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार सेष किमि उठै चले खिसिआइ॥ 54॥

मेघनाद के समान सौ करोड़ (अगणित) योद्धा उन्हें उठा रहे हैं, परंतु जगत के आधार शेष (लक्ष्मण) उनसे कैसे उठते? तब वे लजाकर चले गए॥ 54॥

सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू। जारइ भुवन चारिदस आसू॥
सक संग्राम जीति को ताही। सेवहिं सुर नर अग जग जाही॥

(शिव कहते हैं -) हे गिरिजे! सुनो, (प्रलयकाल में) जिन (शेषनाग) के क्रोध की अग्नि चौदहों भुवनों को तुरंत ही जला डालती है और देवता, मनुष्य तथा समस्त चराचर (जीव) जिनकी सेवा करते हैं, उनको संग्राम में कौन जीत सकता है?

यह कौतूहल जानइ सोई। जा पर कृपा राम कै होई॥
संध्या भय फिरि द्वौ बाहनी। लगे सँभारन निज निज अनी॥

इस लीला को वही जान सकता है, जिस पर राम की कृपा हो। संध्या होने पर दोनों ओर की सेनाएँ लौट पड़ीं, सेनापति अपनी-अपनी सेनाएँ सँभालने लगे।

व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर। लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर॥
तब लगि लै आयउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुःख माना॥

व्यापक, ब्रह्म, अजेय, संपूर्ण ब्रह्मांड के ईश्वर और करुणा की खान राम ने पूछा - लक्ष्मण कहाँ है? तब तक हनुमान उन्हें ले आए। छोटे भाई को (इस दशा में) देखकर प्रभु ने बहुत ही दुःख माना।

जामवंत कह बैद सुषेना। लंकाँ रहइ को पठई लेना॥
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता॥

जाम्बवान ने कहा - लंका में सुषेण वैद्य रहता है, उसे लाने के लिए किसको भेजा जाए? हनुमान छोटा रूप धरकर गए और सुषेण को उसके घर समेत तुरंत ही उठा लाए।

दो० - राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन॥ 55॥

सुषेण ने आकर राम के चरणारविंदों में सिर नवाया। उसने पर्वत और औषध का नाम बताया, (और कहा कि) हे पवनपुत्र! औषधि लेने जाओ॥ 55॥

राम चरन सरसिज उर राखी। चला प्रभंजनसुत बल भाषी॥
उहाँ दूत एक मरमु जनावा। रावनु कालनेमि गृह आवा॥

राम के चरणकमलों को हृदय में रखकर पवनपुत्र हनुमान अपना बल बखानकर (अर्थात मैं अभी लिए आता हूँ, ऐसा कहकर) चले। उधर एक गुप्तचर ने रावण को इस रहस्य की खबर दी। तब रावण कालनेमि के घर आया।

दसमुख कहा मरमु तेहिं सुना। पुनि पुनि कालनेमि सिरु धुना॥
देखत तुम्हहि नगरु जेहिं जारा। तासु पंथ को रोकन पारा॥

रावण ने उसको सारा मर्म (हाल) बतलाया। कालनेमि ने सुना और बार-बार सिर पीटा (खेद प्रकट किया)। (उसने कहा -) तुम्हारे देखते-देखते जिसने नगर जला डाला, उसका

मार्ग कौन रोक सकता है?

भजि रघुपति करु हित आपना। छाँड़हु नाथ मृषा जल्पना॥
नील कंज तनु सुंदर स्यामा। हृदयँ राखु लोचनाभिरामा॥

रघुनाथ का भजन करके तुम अपना कल्याण करो! हे नाथ! झूठी बकवास छोड़ दो। नेत्रों को आनंद देनेवाले नीलकमल के समान सुंदर श्याम शरीर को अपने हृदय में रखो।

मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू। महा मोह निसि सूतत जागू॥
काल ब्याल कर भच्छक जोई। सपनेहुँ समर कि जीतिअ सोई॥

मैं-तू (भेद-भाव) और ममतारूपी मूढ़ता को त्याग दो। महामोह (अज्ञान)रूपी रात्रि में सो रहे हो, सो जाग उठो, जो कालरूपी सर्प का भी भक्षक है, कहीं स्वप्न में भी वह रण में जीता जा सकता है?

दो० - सुनि दसकंठ रिसान अति तेहिं मन कीन्ह बिचार।
राम दूत कर मरौं बरु यह खल रत मल भार॥ 56॥

उसकी ये बातें सुनकर रावण बहुत ही क्रोधित हुआ। तब कालनेमि ने मन में विचार किया कि (इसके हाथ से मरने की अपेक्षा) राम के दूत के हाथ से ही मरूँ तो अच्छा है। यह दुष्ट तो पाप समूह में रत है॥ 56॥

अस कहि चला रचिसि मग माया। सर मंदिर बर बाग बनाया॥
मारुतसुत देखा सुभ आश्रम। मुनिहि बूझि जल पियौं जाइ श्रम॥

वह मन-ही-मन ऐसा कहकर चला और उसने मार्ग में माया रची। तालाब, मंदिर और सुंदर बाग बनाया। हनुमान ने सुंदर आश्रम देखकर सोचा कि मुनि से पूछकर जल पी लूँ, जिससे थकावट दूर हो जाए।

राच्छस कपट बेष तहँ सोहा। मायापति दूतहि चह मोहा॥
जाइ पवनसुत नायउ माथा। लाग सो कहै राम गुन गाथा॥

राक्षस वहाँ कपट (से मुनि) का वेष बनाए विराजमान था। वह मूर्ख अपनी माया से मायापति के दूत को मोहित करना चाहता था। मारुति ने उसके पास जाकर मस्तक

नवाया। वह राम के गुणों की कथा कहने लगा।

होत महा रन रावन रामहिं। जितिहहिं राम न संसय या महिं॥
इहाँ भएँ मैं देखउँ भाई। ग्यानदृष्टि बल मोहि अधिकाई॥

(वह बोला -) रावण और राम में महान युद्ध हो रहा है। राम जीतेंगे, इसमें संदेह नहीं है। हे भाई! मैं यहाँ रहता हुआ ही सब देख रहा हूँ। मुझे ज्ञानदृष्टि का बहुत बड़ा बल है।

मागा जल तेहिं दीन्ह कमंडल। कह कपि नहिं अघाउँ थोरें जल॥
सर मज्जन करि आतुर आवहु। दिच्छा देउँ ग्यान जेहिं पावहु॥

हनुमान ने उससे जल माँगा, तो उसने कमंडलु दे दिया। हनुमान ने कहा - थोड़े जल से मैं तृप्त नहीं होने का। तब वह बोला - तालाब में स्नान करके तुरंत लौट आओ तो मैं तुम्हे दीक्षा दूँ, जिससे तुम ज्ञान प्राप्त करो।

दो॰ - सर पैठत कपि पद गहा मकरीं तब अकुलान।
मारी सो धरि दिब्य तनु चली गगन चढ़ि जान॥ 57॥

तालाब में प्रवेश करते ही एक मादा मगर ने अकुलाकर उसी समय हनुमान का पैर पकड़ लिया। हनुमान ने उसे मार डाला। तब वह दिव्य देह धारण करके विमान पर चढ़कर आकाश को चली॥ 57॥

कपि तव दरस भइउँ निष्पापा। मिटा तात मुनिबर कर सापा॥
मुनि न होइ यह निसिचर घोरा। मानहु सत्य बचन कपि मोरा॥

(उसने कहा -) हे वानर! मैं तुम्हारे दर्शन से पापरहित हो गई। हे तात! श्रेष्ठ मुनि का शाप मिट गया। हे कपि! यह मुनि नहीं है, घोर निशाचर है। मेरा वचन सत्य मानो।

अस कहि गई अपछरा जबहीं। निसिचर निकट गयउ कपि तबहीं॥
कह कपि मुनि गुरदछिना लेहू। पाछें हमहिं मंत्र तुम्ह देहू॥

ऐसा कहकर ज्यों ही वह अप्सरा गई, त्यों ही हनुमान निशाचर के पास गए। हनुमान ने कहा - हे मुनि! पहले गुरुदक्षिणा ले लीजिए। पीछे आप मुझे मंत्र दीजिएगा।

सिर लंगूर लपेटि पछारा। निज तनु प्रगटेसि मरती बारा॥

राम राम कहि छाड़ेसि प्राना। सुनि मन हरषि चलेउ हनुमाना॥

हनुमान ने उसके सिर को पूँछ में लपेटकर उसे पछाड़ दिया। मरते समय उसने अपना (राक्षसी) शरीर प्रकट किया। उसने राम-राम कहकर प्राण छोड़े। यह (उसके मुँह से राम-राम का उच्चारण) सुनकर हनुमान मन में हर्षित होकर चले।

देखा सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा॥
गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ। अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ॥

उन्होंने पर्वत को देखा, पर औषध न पहचान सके। तब हनुमान ने एकदम से पर्वत को ही उखाड़ लिया। पर्वत लेकर हनुमान रात ही में आकाश मार्ग से दौड़ चले और अयोध्यापुरी के ऊपर पहुँच गए।

दो० - देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि॥ 58॥

भरत ने आकाश में अत्यंत विशाल स्वरूप देखा, तब मन में अनुमान किया कि यह कोई राक्षस है। उन्होंने कान तक धनुष को खींचकर बिना फल का एक बाण मारा॥ 58॥

परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक॥
सुनि प्रिय बचन भरत तब धाए। कपि समीप अति आतुर आए॥

बाण लगते ही हनुमान 'राम, राम, रघुपति' का उच्चारण करते हुए मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। प्रिय वचन (रामनाम) सुनकर भरत उठकर दौड़े और बड़ी उतावली से हनुमान के पास आए।

बिकल बिलोकि कीस उर लावा। जागत नहिं बहु भाँति जगावा॥
मुख मलीन मन भए दुखारी। कहत बचन भरि लोचन बारी॥

हनुमान को व्याकुल देखकर उन्होंने हृदय से लगा लिया। बहुत तरह से जगाया, पर वे जागते न थे! तब भरत का मुख उदास हो गया। वे मन में बड़े दुःखी हुए और नेत्रों में (विषाद के आँसुओं का) जल भरकर ये वचन बोले -

जेहिं बिधि राम बिमुख मोहि कीन्हा। तेहिं पुनि यह दारुन दुःख दीन्हा॥

जौं मोरें मन बच अरु काया॥ प्रीति राम पद कमल अमाया॥

जिस विधाता ने मुझे राम से विमुख किया, उसी ने फिर यह भयानक दुःख भी दिया। यदि मन, वचन और शरीर से राम के चरणकमलों में मेरा निष्कपट प्रेम हो,

तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला। जौं मो पर रघुपति अनुकूला॥
सुनत बचन उठि बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा॥

और यदि रघुनाथ मुझ पर प्रसन्न हों तो यह वानर थकावट और पीड़ा से रहित हो जाए। यह वचन सुनते ही कपिराज हनुमान 'कोसलपति राम की जय हो, जय हो' कहते हुए उठ बैठे।

सो० - लीन्ह कपिहि उर लाइ पुलकित तनु लोचन सजल।
प्रीति न हृदय समाइ सुमिरि राम रघुकुल तिलक॥ 59॥

भरत ने वानर (हनुमान) को हृदय से लगा लिया, उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (आनंद तथा प्रेम के आँसुओं का) जल भर आया। रघुकुलतिलक राम का स्मरण करके भरत के हृदय में प्रीति समाती न थी॥ 59॥

तात कुसल कहु सुखनिधान की। सहित अनुज अरु मातु जानकी॥
लकपि सब चरित समास बखाने। भए दुखी मन महुँ पछिताने॥

(भरत बोले -) हे तात! छोटे भाई लक्ष्मण तथा माता जानकी सहित सुखनिधान राम की कुशल कहो। वानर (हनुमान) ने संक्षेप में सब कथा कही। सुनकर भरत दुःखी हुए और मन में पछताने लगे।

अहह दैव मैं कत जग जायउँ। प्रभु के एकहु काज न आयउँ॥
जानि कुअवसरु मन धरि धीरा। पुनि कपि सन बोले बलबीरा॥

हा दैव! मैं जगत में क्यों जन्मा? प्रभु के एक भी काम न आया। फिर कुअवसर (विपरीत समय) जानकर मन में धीरज धरकर बलवीर भरत हनुमान से बोले -

तात गहरु होइहि तोहि जाता। काजु नसाइहि होत प्रभाता॥
चढ़ु मम सायक सैल समेता। पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता॥

हे तात! तुमको जाने में देर होगी और सबेरा होते ही काम बिगड़ जाएगा। (अतः) तुम पर्वत सहित मेरे बाण पर चढ़ जाओ, मैं तुमको वहाँ भेज दूँ जहाँ कृपा के धाम राम हैं।

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरें भार चलिहि किमि बाना॥
राम प्रभाव बिचारि बहोरी। बंदि चरन कह कपि कर जोरी॥

भरत की यह बात सुनकर (एक बार तो) हनुमान के मन में अभिमान उत्पन्न हुआ कि मेरे बोझ से बाण कैसे चलेगा? (किंतु) फिर राम के प्रभाव का विचार करके वे भरत के चरणों की वंदना करके हाथ जोड़कर बोले -

दो० - तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरंत।
अस कहि आयसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत॥ 60(क)॥

हे नाथ! हे प्रभो! मैं आपका प्रताप हृदय में रखकर तुरंत चला जाऊँगा। ऐसा कहकर आज्ञा पाकर और भरत के चरणों की वंदना करके हनुमान चले॥ 60(क)॥

भरत बाहु बल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार।
मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवनकुमार॥ 60(ख)॥

भरत के बाहुबल, शील (सुंदर स्वभाव), गुण और प्रभु के चरणों में अपार प्रेम की मन-ही-मन बारंबार सराहना करते हुए मारुति हनुमान चले जा रहे हैं॥ 60(ख)॥

उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी॥
अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥

वहाँ लक्ष्मण को देखकर राम साधारण मनुष्यों के अनुसार (समान) वचन बोले - आधी रात बीत चुकी है, हनुमान नहीं आए। यह कहकर राम ने छोटे भाई लक्ष्मण को उठाकर हृदय से लगा लिया।

सकहु न दुखित देखि मोहि काउ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता॥

(और बोले -) हे भाई! तुम मुझे कभी दुःखी नहीं देख सकते थे। तुम्हारा स्वभाव सदा से ही कोमल था। मेरे हित के लिए तुमने माता-पिता को भी छोड़ दिया और वन में जाड़ा,

गरमी और हवा सब सहन किया।

सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई॥
जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥

हे भाई! वह प्रेम अब कहाँ है? मेरे व्याकुलतापूर्वक वचन सुनकर उठते क्यों नहीं? यदि मैं जानता कि वन में भाई का विछोह होगा तो मैं पिता का वचन (जिसका मानना मेरे लिए परम कर्तव्य था) उसे भी न मानता।

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥

पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार - ये जगत में बार-बार होते और जाते हैं, परंतु जगत में सहोदर भाई बार-बार नहीं मिलता। हृदय में ऐसा विचार कर हे तात! जागो।

जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना॥
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जिआवै मोही॥

जैसे पंख बिना पक्षी, मणि बिना सर्प और सूँड़ बिना श्रेष्ठ हाथी अत्यंत दीन हो जाते हैं, हे भाई! यदि कहीं जड़ दैव मुझे जीवित रखे तो तुम्हारे बिना मेरा जीवन भी ऐसा ही होगा।

जैहउँ अवध कौन मुहु लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई॥
बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं। नारि हानि बिसेष छति नाहीं॥

स्त्री के लिए प्यारे भाई को खोकर, मैं कौन-सा मुँह लेकर अवध जाऊँगा? मैं जगत में बदनामी भले ही सह लेता (कि राम में कुछ भी वीरता नहीं है जो स्त्री को खो बैठे)। स्त्री की हानि से (इस हानि को देखते) कोई विशेष क्षति नहीं थी।

अब अपलोकु सोकु सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा॥
निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा॥

अब तो हे पुत्र! मेरा निष्ठुर और कठोर हृदय यह अपयश और तुम्हारा शोक दोनों ही सहन करेगा। हे तात! तुम अपनी माता के एक ही पुत्र और उसके प्राणाधार हो।

सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी॥

उतरु काह दैहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥

सब प्रकार से सुख देनेवाला और परम हितकारी जानकर उन्होंने तुम्हें हाथ पकड़कर मुझे सौंपा था। मैं अब जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा? हे भाई! तुम उठकर मुझे सिखाते (समझाते) क्यों नहीं?

बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्रवत सलिल राजिव दल लोचन॥
उमा एक अखंड रघुराई। नर गति भगत कृपाल देखाई॥

सोच से छुड़ानेवाले राम बहुत प्रकार से सोच कर रहे हैं। उनके कमल की पंखुड़ी के समान नेत्रों से (विषाद के आँसुओं का) जल बह रहा है। (शिव कहते हैं -) हे उमा! रघुनाथ एक (अद्‌वितीय) और अखंड (वियोगरहित) हैं। भक्तों पर कृपा करनेवाले भगवान ने (लीला करके) मनुष्य की दशा दिखलाई है।

दो० - प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर।
आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महँ बीर रस॥ 61॥

प्रभु के (लीला के लिए किए गए) प्रलाप को कानों से सुनकर वानरों के समूह व्याकुल हो गए। (इतने में ही) हनुमान आ गए, जैसे करुण रस (के प्रसंग) में वीर रस (का प्रसंग) आ गया हो॥ 61॥

हरषि राम भेटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना॥
तुरत बैद तब कीन्ह उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई॥

राम हर्षित होकर हनुमान से गले लगकर मिले। प्रभु परम सुजान (चतुर) और अत्यंत ही कृतज्ञ हैं। तब वैद्‌य (सुषेण) ने तुरंत उपाय किया, (जिससे) लक्ष्मण हर्षित होकर उठ बैठे।

हृदयँ लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता। हरषे सकल भालु कपि ब्राता॥
कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा। जेहि बिधि तबहिं ताहि लइ आवा॥

प्रभु भाई को हृदय से लगाकर मिले। भालू और वानरों के समूह सब हर्षित हो गए। फिर हनुमान ने वैद्‌य को उसी प्रकार वहाँ पहुँचा दिया, जिस प्रकार वे उस बार (पहले) उसे ले आए थे।

यह बृत्तांत दसानन सुनेऊ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ॥

ब्याकुल कुंभकरन पहिं आवा। बिबिध जतन करि ताहि जगावा॥

यह समाचार जब रावण ने सुना, तब उसने अत्यंत विषाद से बार-बार सिर पीटा। वह व्याकुल होकर कुंभकर्ण के पास गया और बहुत-से उपाय करके उसने उसको जगाया।

जागा निसिचर देखिअ कैसा। मानहुँ कालु देह धरि बैसा॥
कुंभकरन बूझा कहु भाई। काहे तव मुख रहे सुखाई॥

कुंभकर्ण जगा (उठ बैठा)। वह कैसा दिखाई देता है मानो स्वयं काल ही शरीर धारण करके बैठा हो। कुंभकर्ण ने पूछा - हे भाई! कहो तो, तुम्हारे मुख सूख क्यों रहे हैं?

कथा कही सब तेहिं अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरि आनी॥
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महा महा जोधा संघारे॥

उस अभिमानी (रावण) ने उससे जिस प्रकार से वह सीता को हर लाया था (तब से अब तक की) सारी कथा कही। (फिर कहा -) हे तात! वानरों ने सब राक्षस मार डाले। बड़े-बड़े योद्धाओं का भी संहार कर डाला।

दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी। भट अतिकाय अकंपन भारी॥
अपर महोदर आदिक बीरा। परे समर महि सब रनधीरा॥

दुर्मुख, देवशत्रु (देवांतक), मनुष्य भक्षक (नरांतक), भारी योद्धा अतिकाय और अकंपन तथा महोदर आदि दूसरे सभी रणधीर वीर रणभूमि में मारे गए।

दो० - सुनि दसकंधर बचन तब कुंभकरन बिलखान।
जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान॥ 62॥

तब रावण के वचन सुनकर कुंभकर्ण बिलखकर (दुःखी होकर) बोला - अरे मूर्ख! जगज्जननी जानकी को हर लाकर अब कल्याण चाहता है?॥ 62॥

भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना॥

हे राक्षसराज! तूने अच्छा नहीं किया। अब आकर मुझे क्यों जगाया? हे तात! अब भी

अभिमान छोड़कर राम को भजो तो कल्याण होगा।

हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमान से पायक॥
अहह बंधु तैं कीन्हि खोटाई। प्रथमहिं मोहि न सुनाएहि आई॥

हे रावण! जिनके हनुमान-सरीखे सेवक हैं, वे रघुनाथ क्या मनुष्य हैं? हाय भाई! तूने बुरा किया, जो पहले ही आकर मुझे यह हाल नहीं सुनाया।

कीन्हेहु प्रभु बिरोध तेहि देवक। सिव बिरंचि सुर जाके सेवक॥
नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा। कहतेउँ तोहि समय निरबाहा॥

हे स्वामी! तुमने उस परम देवता का विरोध किया, जिसके शिव, ब्रह्मा आदि देवता सेवक हैं। नारद मुनि ने मुझे जो ज्ञान कहा था, वह मैं तुझसे कहता; पर अब तो समय जाता रहा।

अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई। लोचन सुफल करौं मैं जाई॥
स्याम गात सरसीरुह लोचन। देखौं जाइ ताप त्रय मोचन॥

हे भाई! अब तो (अंतिम बार) अँकवार भरकर मुझसे मिल ले। मैं जाकर अपने नेत्र सफल करूँ। तीनों तापों को छुड़ानेवाले श्याम शरीर, कमल नेत्र राम के जाकर दर्शन करूँ।

दो० - राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक।
रावन मागेउ कोटि घट मद अरु महिष अनेक॥ 63॥

राम के रूप और गुणों को स्मरण करके वह एक क्षण के लिए प्रेम में मग्न हो गया। फिर रावण से करोड़ों घड़े मदिरा और अनेकों भैंसे मँगवाए॥ 63॥

महिष खाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्राघात समाना॥
कुंभकरन दुर्मद रन रंगा। चला दुर्ग तजि सेन न संगा॥

भैंसे खाकर और मदिरा पीकर वह वज्रघात (बिजली गिरने) के समान गरजा। मद से चूर रण के उत्साह से पूर्ण कुंभकर्ण किला छोड़कर चला। सेना भी साथ नहीं ली।

देखि बिभीषनु आगें आयउ। परेउ चरन निज नाम सुनायउ॥

अनुज उठाइ हृदयँ तेहि लायो। रघुपति भक्त जानि मन भायो॥

उसे देखकर विभीषण आगे आए और उसके चरणों पर गिरकर अपना नाम सुनाया। छोटे भाई को उठाकर उसने हृदय से लगा लिया और रघुनाथ का भक्त जानकर वे उसके मन को प्रिय लगे।

तात लात रावन मोहि मारा। कहत परम हित मंत्र बिचारा॥
तेहिं गलानि रघुपति पहिं आयउँ। देखि दीन प्रभु के मन भायउँ॥

(विभीषण ने कहा -) हे तात! परम हितकर सलाह एवं विचार करने पर रावण ने मुझे लात मारी। उसी ग्लानि के मारे मैं रघुनाथ के पास चला आया। दीन देखकर प्रभु के मन को मैं (बहुत) प्रिय लगा।

सुनु भयउ कालबस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन॥
धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन। भयहु तात निसिचर कुल भूषन॥

(कुंभकर्ण ने कहा -) हे पुत्र! सुन, रावण तो काल के वश हो गया है (उसके सिर पर मृत्यु नाच रही है)। वह क्या अब उत्तम शिक्षा मान सकता है? हे विभीषण! तू धन्य है, धन्य है। हे तात! तू राक्षस कुल का भूषण हो गया।

बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुख सागर॥

हे भाई! तूने अपने कुल को देदीप्यमान कर दिया, जो शोभा और सुख के समुद्र राम को भजा।

दो० - बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि भयउँ कालबस बीर॥ 64॥

मन, वचन और कर्म से कपट छोड़कर रणधीर राम का भजन करना। हे भाई! मैं काल (मृत्यु) के वश हो गया हूँ, मुझे अपना-पराया नहीं सूझता; इसलिए अब तुम जाओ॥ 64॥

बंधु बचन सुनि चला बिभीषन। आयउ जहँ त्रैलोक बिभूषन॥
नाथ भूधराकार सरीरा। कुंभकरन आवत रनधीरा॥

भाई के वचन सुनकर विभीषण लौट गए और वहाँ आए जहाँ त्रिलोकी के भूषण राम थे।

(विभीषण ने कहा -) हे नाथ! पर्वत के समान (विशाल) देहवाला रणधीर कुंभकर्ण आ रहा है।

एतना कपिन्ह सुना जब काना। किलकिलाइ धाए बलवाना॥
लिए उठाइ बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहिं ता ऊपर॥

वानरों ने जब कानों से इतना सुना, तब वे बलवान किलकिलाकर (हर्षध्वनि करके) दौड़े। वृक्ष और पर्वत (उखाड़कर) उठा लिए और (क्रोध से) दाँत कटकटाकर उन्हें उसके ऊपर डालने लगे।

कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एक एक बारा॥
मुर्‌यो न मनु तनु टर्‌यो न टार्‌यो। जिमि गज अर्क फलनि को मार्‌यो॥

रीछ-वानर एक-एक बार में ही करोड़ों पहाड़ों के शिखरों से उस पर प्रहार करते हैं, परंतु इससे न तो उसका मन ही मुड़ा (विचलित हुआ) और न शरीर ही टाले टला, जैसे मदार के फलों की मार से हाथी पर कुछ भी असर नहीं होता!

तब मारुतसुत मुठिका हन्यो। परयो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो॥
पुनि उठि तेहिं मारेउ हनुमंता। घुर्मित भूतल परेउ तुरंता॥

तब हनुमान ने उसे एक घूँसा मारा; जिससे वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और सिर पीटने लगा। फिर उसने उठकर हनुमान को मारा। वे चक्कर खाकर तुरंत ही पृथ्वी पर गिर पड़े।

पुनि नल नीलहि अवनि पछारेसि। जहँ तहँ पटकि पटकि भट डारेसि॥
चली बलीमुख सेन पराई। अति भय त्रसित न कोउ समुहाई॥

फिर उसने नल-नील को पृथ्वी पर पछाड़ दिया और दूसरे योद्धाओं को भी जहाँ-तहाँ पटककर डाल दिया। वानर सेना भाग चली। सब अत्यंत भयभीत हो गए, कोई सामने नहीं आता।

दो॰ - अंगदादि कपि मुरुछित करि समेत सुग्रीव।
काँख दाबि कपिराज कहुँ चला अमित बल सींव॥ 65॥

सुग्रीव समेत अंगदादि वानरों को मूर्च्छित करके फिर वह अपरिमित बल की सीमा

कुंभकर्ण वानरराज सुग्रीव को काँख में दाबकर चला॥ 65॥

उमा करत रघुपति नरलीला। खेलत गरुड़ जिमि अहिगन मीला॥
भृकुटि भंग जो कालहि खाई। ताहि कि सोहइ ऐसि लराई॥

(शिव कहते हैं -) हे उमा! रघुनाथ वैसे ही नरलीला कर रहे हैं, जैसे गरुड़ सर्पों के समूह में मिलकर खेलता हो। जो भौंह के इशारे मात्र से (बिना परिश्रम के) काल को भी खा जाता है, उसे कहीं ऐसी लड़ाई शोभा देती है?

जग पावनि कीरति बिस्तरिहहिं। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं॥
मुरुछा गइ मारुतसुत जागा। सुग्रीवहि तब खोजन लागा॥

भगवान (इसके द्वारा) जगत को पवित्र करनेवाली वह कीर्ति फैलाएँगे जिसे गा-गाकर मनुष्य भवसागर से तर जाएँगे। मूर्च्छा जाती रही, तब मारुति हनुमान जागे और फिर वे सुग्रीव को खोजने लगे।

सुग्रीवहु कै मुरुछा बीती। निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती॥
काटेसि दसन नासिका काना। गरजि अकास चलेउ तेहिं जाना॥

सुग्रीव की भी मूर्च्छा दूर हुई, तब वे (मुर्दे-से होकर) खिसक गए (काँख से नीचे गिर पड़े)। कुंभकर्ण ने उनको मृतक जाना। उन्होंने कुंभकर्ण के नाक-कान दाँतों से काट लिए और फिर गरज कर आकाश की ओर चले, तब कुंभकर्ण ने जाना।

गहेउ चरन गहि भूमि पछारा। अति लाघवँ उठि पुनि तेहि मारा॥
पुनि आयउ प्रभु पहिं बलवाना। जयति जयति जय कृपानिधाना॥

उसने सुग्रीव का पैर पकड़कर उनको पृथ्वी पर पछाड़ दिया। फिर सुग्रीव ने बड़ी फुर्ती से उठकर उसको मारा और तब बलवान सुग्रीव प्रभु के पास आए और बोले - कृपानिधान प्रभु की जय हो, जय हो, जय हो।

नाक कान काटे जियँ जानी। फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी॥
सहज भीम पुनि बिनु श्रुति नासा। देखत कपि दल उपजी त्रासा॥

नाक-कान काटे गए, ऐसा मन में जानकर बड़ी ग्लानि हुई; और वह क्रोध करके लौटा। एक तो वह स्वभाव (आकृति) से ही भयंकर था और फिर बिना नाक-कान का होने से और भी

भयानक हो गया। उसे देखते ही वानरों की सेना में भय उत्पन्न हो गया।

दो॰ - जय जय जय रघुबंस मनि धाए कपि दै हूह।
एकहि बार तासु पर छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह॥ 66॥

'रघुवंशमणि की जय हो, जय हो' ऐसा पुकारकर वानर हूह करके दौड़े और सबने एक ही साथ उस पर पहाड़ और वृक्षों के समूह छोड़े॥ 66॥

कुंभकरन रन रंग बिरुद्धा। सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा॥
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टीड़ी गिरि गुहाँ समाई॥

रण के उत्साह में कुंभकर्ण विरुद्ध होकर (उनके) सामने ऐसा चला मानो क्रोधित होकर काल ही आ रहा हो। वह करोड़-करोड़ वानरों को एक साथ पकड़कर खाने लगा! (वे उसके मुँह में इस तरह घुसने लगे) मानो पर्वत की गुफा में टिड्डियाँ समा रही हों।

कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा॥
मुख नासा श्रवनन्हि कीं बाटा। निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा॥

करोड़ों (वानरों) को पकड़कर उसने शरीर से मसल डाला। करोड़ों को हाथों से मलकर पृथ्वी की धूल में मिला दिया। (पेट में गए हुए) भालू और वानरों के ठट्ट-के-ठट्ट उसके मुख, नाक और कानों की राह से निकल-निकलकर भाग रहे हैं।

रन मद मत्त निसाचर दर्पा। बिस्व ग्रसिहि जनु ऐहि बिधि अर्पा॥
मुरे सुभट सब फिरहिं न फेरे। सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे॥

रण के मद में मत्त राक्षस कुंभकर्ण इस प्रकार गर्वित हुआ, मानो विधाता ने उसको सारा विश्व अर्पण कर दिया हो, और उसे वह ग्रास कर जाएगा। सब योद्धा भाग खड़े हुए, वे लौटाए भी नहीं लौटते। आँखों से उन्हें सूझ नहीं पड़ता और पुकारने से सुनते नहीं!

कुंभकरन कपि फौज बिडारी। सुनि धाई रजनीचर धारी॥
देखी राम बिकल कटकाई। रिपु अनीक नाना बिधि आई॥

कुंभकर्ण ने वानर सेना को तितर-बितर कर दिया। यह सुनकर राक्षस सेना भी दौड़ी। राम ने देखा कि अपनी सेना व्याकुल है और शत्रु की नाना प्रकार की सेना आ गई है।

दो॰ - सुनु सुग्रीव बिभीषन अनुज सँभारेहु सैन।
मैं देखउँ खल बल दलहि बोले राजिवनैन॥ 67॥

तब कमलनयन राम बोले - हे सुग्रीव! हे विभीषण! और हे लक्ष्मण! सुनो, तुम सेना को सँभालना। मैं इस दुष्ट के बल और सेना को देखता हूँ॥ 67॥

कर सारंग साजि कटि भाथा। अरि दल दलन चले रघुनाथा॥
प्रथम कीन्हि प्रभु धनुष टंकोरा। रिपु दल बधिर भयउ सुनि सोरा॥

हाथ में शार्गंधनुष और कमर में तरकस सजाकर रघुनाथ शत्रु सेना को दलन करने चले। प्रभु ने पहले तो धनुष का टंकार किया, जिसकी भयानक आवाज सुनते ही शत्रु दल बहरा हो गया।

सत्यसंध छाँड़े सर लच्छा। कालसर्प जनु चले सपच्छा॥
जहँ तहँ चले बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा॥

फिर सत्यप्रतिज्ञ राम ने एक लाख बाण छोड़े। वे ऐसे चले मानो पंखवाले काल सर्प चले हों। जहाँ-तहाँ बहुत-से बाण चले, जिनसे भयंकर राक्षस योद्धा कटने लगे।

कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा। बहुतक बीर होहिं सत खंडा॥
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं। उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं॥

उनके चरण, छाती, सिर और भुजदंड कट रहे हैं। बहुत-से वीरों के सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं। घायल चक्कर खा-खाकर पृथ्वी पर पड़ रहे हैं। उत्तम योद्धा फिर सँभलकर उठते और लड़ते हैं।

लागत बान जलद जिमि गाजहिं। बहुतक देखि कठिन सर भाजहिं॥
रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहिं। धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिं॥

बाण लगते ही वे मेघ की तरह गरजते हैं। बहुत-से तो कठिन बाणों को देखकर ही भाग जाते हैं। बिना मुंड (सिर) के प्रचंड रुंड (धड़) दौड़ रहे हैं और 'पकड़ो, पकड़ो, मारो, मारो' का शब्द करते हुए गा (चिल्ला) रहे हैं।

दो॰ - छन महुँ प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच।

पुनि रघुबीर निषंग महुँ प्रबिसे सब नाराच॥ 68॥

प्रभु के बाणों ने क्षण मात्र में भयानक राक्षसों को काटकर रख दिया। फिर वे सब बाण लौटकर रघुनाथ के तरकस में घुस गए॥ 68॥

कुंभकरन मन दीख बिचारी। हति छन माझ निसाचर धारी॥
भा अति क्रुद्ध महाबल बीरा। कियो मृगनायक नाद गँभीरा॥

कुंभकर्ण ने मन में विचार कर देखा कि राम ने क्षण मात्र में राक्षसी सेना का संहार कर डाला। तब वह महाबली वीर अत्यंत क्रोधित हुआ और उसने गंभीर सिंहनाद किया।

कोपि महीधर लेइ उपारी। डारइ जहँ मर्कट भट भारी॥
आवत देखि सैल प्रभु भारे। सरन्हि काटि रज सम करि डारे॥

वह क्रोध करके पर्वत उखाड़ लेता है और जहाँ भारी-भारी वानर योद्धा होते हैं, वहाँ डाल देता है। बड़े-बड़े पर्वतों को आते देखकर प्रभु ने उनको बाणों से काटकर धूल के समान (चूर-चूर) कर डाला।

पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक। छाँड़े अति कराल बहु सायक॥
तनु महुँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं। जिमि दामिनि घन माझ समाहीं॥

फिर रघुनाथ ने क्रोध करके धनुष को तानकर बहुत-से अत्यंत भयानक बाण छोड़े। वे बाण कुंभकर्ण के शरीर में घुसकर (पीछे से इस प्रकार) निकल जाते हैं (कि उनका पता नहीं चलता), जैसे बिजलियाँ बादल में समा जाती हैं।

सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे॥
बिकल बिलोकि भालु कपि धाए। बिहँसा जबहिं निकट कपि आए॥

उसके काले शरीर से रुधिर बहता हुआ ऐसे शोभा देता है, मानो काजल के पर्वत से गेरु के पनाले बह रहे हों। उसे व्याकुल देखकर रीछ-वानर दौड़े। वे ज्यों ही निकट आए, त्यों ही वह हँसा,

दो० - महानाद करि गर्जा कोटि कोटि गहि कीस।
महि पटकइ गजराज इव सपथ करइ दससीस॥ 69॥

और बड़ा घोर शब्द करके गरजा तथा करोड़-करोड़ वानरों को पकड़कर वह गजराज की तरह उन्हें पृथ्वी पर पटकने लगा और रावण की दुहाई देने लगा॥ 69॥

भागे भालु बलीमुख जूथा। बृकु बिलोकि जिमि मेष बरूथा॥
चले भागि कपि भालु भवानी। बिकल पुकारत आरत बानी॥

यह देखकर रीछ-वानरों के झुंड ऐसे भागे जैसे भेड़िए को देखकर भेड़ों के झुंड! (शिव कहते हैं -) हे भवानी! वानर-भालू व्याकुल होकर आर्तवाणी से पुकारते हुए भाग चले।

यह निसिचर दुकाल सम अहई। कपिकुल देस परन अब चहई॥
कृपा बारिधर राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारति हारी॥

(वे कहने लगे -) यह राक्षस दुर्भिक्ष के समान है, जो अब वानर कुलरूपी देश में पड़ना चाहता है। हे कृपारूपी जल के धारण करनेवाले मेघ रूप राम! हे खर के शत्रु! हे शरणागत के दुःख हरनेवाले! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए!

सकरुन बचन सुनत भगवाना। चले सुधारि सरासन बाना॥
राम सेन निज पाछें घाली। चले सकोप महा बलसाली॥

करुणा भरे वचन सुनते ही भगवान धनुष-बाण सुधारकर चले। महाबलशाली राम ने सेना को अपने पीछे कर लिया और वे (अकेले) क्रोधपूर्वक चले (आगे बढ़े)।

खैंचि धनुष सर सत संधाने। छूटे तीर सरीर समाने॥
लागत सर धावा रिस भरा। कुधर डगमगत डोलति धरा॥

उन्होंने धनुष को खींचकर सौ बाण संधान किए। बाण छूटे और उसके शरीर में समा गए। बाणों के लगते ही वह क्रोध में भरकर दौड़ा। उसके दौड़ने से पर्वत डगमगाने लगे और पृथ्वी हिलने लगी।

लीन्ह एक तेंहि सैल उपाटी। रघुकुलतिलक भुजा सोइ काटी॥
धावा बाम बाहु गिरि धारी। प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी॥

उसने एक पर्वत उखाड़ लिया। रघुकुल तिलक राम ने उसकी वह भुजा ही काट दी। तब वह बाएँ हाथ में पर्वत को लेकर दौड़ा। प्रभु ने उसकी वह भुजा भी काटकर पृथ्वी पर

गिरा दी।

काटें भुजा सोह खल कैसा। पच्छहीन मंदर गिरि जैसा॥
उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। ग्रसन चहत मानहुँ त्रैलोका॥

भुजाओं के कट जाने पर वह दुष्ट कैसी शोभा पाने लगा, जैसे बिना पंख का मंदराचल पहाड़ हो। उसने उग्र दृष्टि से प्रभु को देखा। मानो तीनों लोकों को निगल जाना चाहता हो।

दो० - करि चिक्कार घोर अति धावा बदनु पसारि।
गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हा हेति पुकारि॥ 70॥

वह बड़े जोर से चिग्घाड़ करके मुँह फैलाकर दौड़ा। आकाश में सिद्ध और देवता डरकर हा! हा! हा! इस प्रकार पुकारने लगे॥ 70॥

सभय देव करुनानिधि जान्यो। श्रवन प्रजंत सरासुन तान्यो॥
बिसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ॥

करुणानिधान भगवान ने देवताओं को भयभीत जाना। तब उन्होंने धनुष को कान तक तानकर राक्षस के मुख को बाणों के समूह से भर दिया। तो भी वह महाबली पृथ्वी पर न गिरा।

सरन्हि भरा मुख सन्मुख धावा। काल त्रोन सजीव जनु आवा॥
तब प्रभु कोपि तीब्र सर लीन्हा। धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा॥

मुख में बाण भरे हुए वह (प्रभु के) सामने दौड़ा। मानो कालरूपी सजीव तरकस ही आ रहा हो। तब प्रभु ने क्रोध करके तीक्ष्ण बाण लिया और उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया।

सो सिर परेउ दसानन आगें। बिकल भयउ जिमि फनि मनि त्यागें॥
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा॥

वह सिर रावण के आगे जा गिरा। उसे देखकर रावण ऐसा व्याकुल हुआ जैसे मणि के छूट जाने पर सर्प। कुंभकर्ण का प्रचंड धड़ दौड़ा, जिससे पृथ्वी धँसी जाती थी। तब प्रभु ने

काटकर उसके दो टुकड़े कर दिए।

परे भूमि जिमि नभ तें भूधर। हेठ दाबि कपि भालु निसाचर॥
तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुर मुनि सबहिं अचंभव माना॥

वानर-भालू और निशाचरों को अपने नीचे दबाते हुए वे दोनों टुकड़े पृथ्वी पर ऐसे पड़े जैसे आकाश से दो पहाड़ गिरे हों। उसका तेज प्रभु राम के मुख में समा गया। (यह देखकर) देवता और मुनि सभी ने आश्चर्य माना।

सुर दुंदुभीं बजावहिं हरषहिं। अस्तुति करहिं सुमन बहु बरषहिं॥
करि बिनती सुर सकल सिधाए। तेही समय देवरिषि आए॥

देवता नगाड़े बजाते, हर्षित होते और स्तुति करते हुए बहुत-से फूल बरसा रहे हैं। विनती करके सब देवता चले गए। उसी समय देवर्षि नारद आए।

गगनोपरि हरि गुन गन गाए। रुचिर बीररस प्रभु मन भाए॥
बेगि हतहु खल कहि मुनि गए। राम समर महि सोभत भए॥

आकाश के ऊपर से उन्होंने हरि के सुंदर वीर रसयुक्त गुणसमूह का गान किया, जो प्रभु के मन को बहुत ही भाया। मुनि यह कहकर चले गए कि अब दुष्ट रावण को शीघ्र मारिए। (उस समय) राम रणभूमि में आकर (अत्यंत) सुशोभित हुए।

छं० - संग्राम भूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसल धनी।
श्रम बिंदु मुख राजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी॥
भुज जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहु दिसि बने।
कह दास तुलसी कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने॥

अतुलनीय बलवाले कोसलपति रघुनाथ रणभूमि में सुशोभित हैं। मुख पर पसीने की बूँदें हैं, कमल समान नेत्र कुछ लाल हो रहे हैं। शरीर पर रक्त के कण हैं, दोनों हाथों से धनुष-बाण फिरा रहे हैं। चारों ओर रीछ-वानर सुशोभित हैं। तुलसीदास कहते हैं कि प्रभु की इस छवि का वर्णन शेष भी नहीं कर सकते, जिनके बहुत-से (हजार) मुख हैं।

दो० - निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहिं श्रीराम॥ 71॥

(शिव कहते हैं -) हे गिरिजे! कुंभकर्ण, जो नीच राक्षस और पाप की खान था, उसे भी राम ने अपना परमधाम दे दिया। अतः वे मनुष्य (निश्चय ही) मंदबुद्धि हैं, जो उन श्री राम को नहीं भजते॥ 71॥

दिन के अंत फिरीं द्वौ अनी। समर भई सुभटन्ह श्रम घनी॥
राम कृपाँ कपि दल बल बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा॥

दिन का अंत होने पर दोनों सेनाएँ लौट पड़ीं। (आज के युद्ध में) योद्धाओं को बड़ी थकावट हुई। परंतु राम की कृपा से वानर सेना का बल उसी प्रकार बढ़ गया, जैसे घास पाकर अग्नि बहुत बढ़ जाती है।

छीजहिं निसिचर दिनु अरु राती। निज मुख कहें सुकृत जेहि भाँती॥
बहु बिलाप दसकंधर करई। बंधु सीस पुनि पुनि उर धरई॥

उधर राक्षस दिन-रात इस प्रकार घटते जा रहे हैं जिस प्रकार अपने ही मुख से कहने पर पुण्य घट जाते हैं। रावण बहुत विलाप कर रहा है। बार-बार भाई (कुंभकर्ण) का सिर कलेजे से लगाता है।

रोवहिं नारि हृदय हति पानी। तासु तेज बल बिपुल बखानी॥
मेघनाद तेहि अवसर आयउ। कहि बहु कथा पिता समुझायउ॥

स्त्रियाँ उसके बड़े भारी तेज और बल को बखान करके हाथों से छाती पीट-पीटकर रो रही हैं। उसी समय मेघनाद आया और उसने बहुत-सी कथाएँ कहकर पिता को समझाया।

देखेहु कालि मोरि मनुसाई। अबहिं बहुत का करौं बड़ाई॥
इष्टदेव सैं बल रथ पायउँ। सो बल तात न तोहि देखायउँ॥

(और कहा -) कल मेरा पुरुषार्थ देखिएगा। अभी बहुत बड़ाई क्या करूँ? हे तात! मैंने अपने इष्टदेव से जो बल और रथ पाया था, वह बल (और रथ) अब तक आपको नहीं दिखलाया था।

एहि बिधि जल्पत भयउ बिहाना। चहुँ दुआर लागे कपि नाना॥
इति कपि भालु काल सम बीरा। उत रजनीचर अति रनधीरा॥

इस प्रकार डींग मारते हुए सबेरा हो गया। लंका के चारों दरवाजों पर बहुत-से वानर आ

डटे। इधर काल के समान वीर वानर-भालू हैं और उधर अत्यंत रणधीर राक्षस।

लरहिं सुभट निज निज जय हेतू। बरनि न जाइ समर खगकेतू॥

दोनों ओर के योद्धा अपनी-अपनी जय के लिए लड़ रहे हैं। हे गरुड़! उनके युद्ध का वर्णन नहीं किया जा सकता।

दो० - मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गयउ अकास।
गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास॥ 72॥

मेघनाद उसी (पूर्वोक्त) मायामय रथ पर चढ़कर आकाश में चला गया और अट्टहास करके गरजा, जिससे वानरों की सेना में भय छा गया॥ 72॥

सक्ति सूल तरवारि कृपाना। अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना॥
डारइ परसु परिघ पाषाना। लागेउ बृष्टि करै बहु बाना॥

वह शक्ति, शूल, तलवार, कृपाण आदि अस्त्र, शस्त्र एवं वज्र आदि बहुत-से आयुध चलाने तथा फरसे, परिघ, पत्थर आदि डालने और बहुत-से बाणों की वृष्टि करने लगा।

दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहुँ मघा मेघ झरि लाई॥
धरु धरु मारु सुनिअ धुनि काना। जो मारइ तेहि कोउ न जाना॥

आकाश में दसों दिशाओं में बाण छा गए, मानो मघा नक्षत्र के बादलों ने झड़ी लगा दी हो। 'पकड़ो, पकड़ो, मारो' ये शब्द सुनाई पड़ते हैं। पर जो मार रहा है, उसे कोई नहीं जान पाता।

गहि गिरि तरु अकास कपि धावहिं। देखहिं तेहि न दुखित फिरि आवहिं॥
अवघट घाट बाट गिरि कंदर। माया बल कीन्हेसि सर पंजर॥

पर्वत और वृक्षों को लेकर वानर आकाश में दौड़कर जाते हैं। पर उसे देख नहीं पाते, इससे दुःखी होकर लौट आते हैं। मेघनाद ने माया के बल से अटपटी घाटियों, रास्तों और पर्वतों-कंदराओं को बाणों के पिंजरे बना दिए (बाणों से छा दिया)।

जाहिं कहाँ ब्याकुल भए बंदर। सुरपति बंदि परे जनु मंदर॥

मारुतसुत अंगद नल नीला। कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला॥

अब कहाँ जाएँ, यह सोचकर (रास्ता न पाकर) वानर व्याकुल हो गए। मानो पर्वत इंद्र की कैद में पड़े हों। मेघनाद ने मारुति हनुमान, अंगद, नल और नील आदि सभी बलवानों को व्याकुल कर दिया।

पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन। सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन॥
पुनि रघुपति सैं जूझै लागा। सर छाँड़इ होइ लागहिं नागा॥

फिर उसने लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण को बाणों से मारकर उनके शरीर को छलनी कर दिया। फिर वह रघुनाथ से लड़ने लगा। वह जो बाण छोड़ता है, वे साँप होकर लगते हैं।

ब्याल पास बस भए खरारी। स्वबस अनंत एक अबिकारी॥
नट इव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतंत्र एक भगवाना॥

जो स्वतंत्र, अनंत, एक (अखंड) और निर्विकार हैं, वे खर के शत्रु राम (लीला से) नागपाश के वश में हो गए (उससे बँध गए)। राम सदा स्वतंत्र, एक, (अद्‌वितीय) भगवान हैं। वे नट की तरह अनेकों प्रकार के दिखावटी चरित्र करते हैं।

रन सोभा लगि प्रभुहिं बँधायो। नागपास देवन्ह भय पायो॥

रण की शोभा के लिए प्रभु ने अपने को नागपाश में बाँध लिया, किंतु उससे देवताओं को बड़ा भय हुआ।

दो० - गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भव पास।
सो कि बंध तर आवइ ब्यापक बिस्व निवास॥ 73॥

(शिव कहते हैं -) हे गिरिजे! जिनका नाम जपकर मुनि भव (जन्म-मृत्यु) की फाँसी को काट डालते हैं, वे सर्वव्यापक और विश्वनिवास (विश्व के आधार) प्रभु कहीं बंधन में आ सकते हैं?॥ 73॥

चरित राम के सगुन भवानी। तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी॥
अस बिचारि जे तग्य बिरागी। रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी॥

हे भवानी! राम की इस सगुण लीलाओं के विषय में बुद्धि और वाणी के बल से तर्क

(निर्णय) नहीं किया जा सकता। ऐसा विचार कर जो तत्त्वज्ञानी और विरक्त पुरुष हैं, वे सब तर्क (शंका) छोड़कर राम का भजन ही करते हैं।

ब्याकुल कटकु कीन्ह घननादा। पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा॥
जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा। सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा॥

मेघनाद ने सेना को व्याकुल कर दिया। फिर वह प्रकट हो गया और दुर्वचन कहने लगा। इस पर जाम्बवान ने कहा - अरे दुष्ट! खड़ा रह। यह सुनकर उसे बड़ा क्रोध बढ़ा।

बूढ़ जानि सठ छाँड़ेउँ तोही। लागेसि अधम पचारै मोही॥
अस कहि तरल त्रिसूल चलायो। जामवंत कर गहि सोइ धायो॥

अरे मूर्ख! मैंने बूढ़ा जानकर तुझको छोड़ दिया था। अरे अधम! अब तू मुझे ही ललकारने लगा है? ऐसा कहकर उसने चमकता हुआ त्रिशूल चलाया। जाम्बवान उसी त्रिशूल को हाथ से पकड़कर दौड़ा।

मारिसि मेघनाद कै छाती। परा भूमि घुर्मित सुरघाती॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरायो। महि पछारि निज बल देखरायो॥

और उसे मेघनाद की छाती पर दे मारा। वह देवताओं का शत्रु चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। जाम्बवान ने फिर क्रोध में भरकर पैर पकड़कर उसको घुमाया और पृथ्वी पर पटककर उसे अपना बल दिखलाया।

बर प्रसाद सो मरइ न मारा। तब गहि पद लंका पर डारा॥
इहाँ देवरिषि गरुड़ पठायो। राम समीप सपदि सो आयो॥

(किंतु) वरदान के प्रताप से वह मारे नहीं मरता। तब जाम्बवान ने उसका पैर पकड़कर उसे लंका पर फेंक दिया। इधर देवर्षि नारद ने गरुड़ को भेजा। वे तुरंत ही राम के पास आ पहुँचे।

दो० - खगपति सब धरि खाए माया नाग बरुथ।
माया बिगत भए सब हरषे बानर जूथ॥ 74(क)॥

पक्षीराज गरुड़ सब माया-सर्पों के समूहों को पकड़कर खा गए। तब सब वानरों के झुंड

माया से रहित होकर हर्षित हुए॥ 74(क)॥

गहि गिरि पादप उपल नख धाए कीस रिसाइ।
चले तमीचर बिकलतर गढ़ पर चढ़े पराइ॥ 74(ख)॥

पर्वत, वृक्ष, पत्थर और नख धारण किए वानर क्रोधित होकर दौड़े। निशाचर विशेष व्याकुल होकर भाग चले और भागकर किले पर चढ़ गए॥ 74(ख)॥

मेघनाद कै मुरछा जागी। पितहि बिलोकि लाज अति लागी॥
तुरत गयउ गिरिबर कंदरा। करौं अजय मख अस मन धरा॥

मेघनाद की मूर्च्छा छूटी, (तब) पिता को देखकर उसे बड़ी शर्म लगी। मैं अजय (अजेय होने को) यज्ञ करूँ, ऐसा मन में निश्चय करके वह तुरंत श्रेष्ठ पर्वत की गुफा में चला गया।

इहाँ बिभीषन मंत्र बिचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा॥
मेघनाद मख करइ अपावन। खल मायावी देव सतावन॥

यहाँ विभीषण ने यह सलाह विचारी (और राम से कहा -) हे अतुलनीय बलवान उदार प्रभो! देवताओं को सतानेवाला दुष्ट, मायावी मेघनाद अपवित्र यज्ञ कर रहा है।

जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि॥
सुनि रघुपति अतिसय सुख माना। बोले अंगदादि कपि नाना॥

हे प्रभो! यदि वह यज्ञ सिद्ध हो पाएगा तो हे नाथ! फिर मेघनाद जल्दी जीता न जा सकेगा। यह सुनकर रघुनाथ ने बहुत सुख माना और अंगदादि बहुत-से वानरों को बुलाया (और कहा -)।

लछिमन संग जाहु सब भाई। करहु बिधंस जग्य कर जाई॥
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही। देखि सभय सुर दुःख अति मोही॥

हे भाइयो! सब लोग लक्ष्मण के साथ जाओ और जाकर यज्ञ को विध्वंस करो। हे लक्ष्मण! संग्राम में तुम उसे मारना। देवताओं को भयभीत देखकर मुझे बड़ा दुःख है।

मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई। जेहिं छीजै निसिचर सुनु भाई॥

जामवंत सुग्रीव बिभीषन। सेन समेत रहेहु तीनिउ जन॥

हे भाई! सुनो, उसको ऐसे बल और बुद्धि के उपाय से मारना, जिससे निशाचर का नाश हो। हे जाम्बवान, सुग्रीव और विभीषण! तुम तीनों जने सेना समेत (इनके) साथ रहना।

जब रघुबीर दीन्हि अनुसासन। कटि निषंग कसि साजि सरासन॥
प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा। बोले घन इव गिरा गँभीरा॥

(इस प्रकार) जब रघुवीर ने आज्ञा दी, तब कमर में तरकस कसकर और धनुष सजाकर (चढ़ाकर) रणधीर लक्ष्मण प्रभु के प्रताप को हृदय में धारण करके मेघ के समान गंभीर वाणी बोले -

जौं तेहि आजु बंधे बिनु आवौं। तौ रघुपति सेवक न कहावौं॥
जौं सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतउँ रघुबीर दुहाई॥

यदि मैं आज उसे बिना मारे आऊँ, तो रघुनाथ का सेवक न कहलाऊँ। यदि सैकड़ों शंकर भी उसकी सहायता करें तो भी रघुवीर की दुहाई है; आज मैं उसे मार ही डालूँगा।

दो० - रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरंत अनंत।
अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत॥ 75॥

रघुनाथ के चरणों में सिर नवाकर शेषावतार लक्ष्मण तुरंत चले। उनके साथ अंगद, नील, मयंद, नल और हनुमान आदि उत्तम योद्धा थे॥ 75॥

जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा॥
कीन्ह कपिन्ह सब जग्य बिधंसा। जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा॥

वानरों ने जाकर देखा कि वह बैठा हुआ खून और भैंसे की आहुति दे रहा है। वानरों ने सब यज्ञ विध्वंस कर दिया। फिर भी जब वह नहीं उठा, तब वे उसकी प्रशंसा करने लगे।

तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई। लातन्हि हति हति चले पराई॥
लै त्रिसूल धावा कपि भागे। आए जहँ रामानुज आगे॥

इतने पर भी वह न उठा, (तब) उन्होंने जाकर उसके बाल पकड़े और लातों से मार-मारकर वे भाग चले। वह त्रिशूल लेकर दौड़ा, तब वानर भागे और वहाँ आ गए, जहाँ आगे लक्ष्मण

खड़े थे।

आवा परम क्रोध कर मारा। गर्ज घोर रव बारहिं बारा॥
कोपि मरुतसुत अंगद धाए। हति त्रिसूल उर धरनि गिराए॥

वह अत्यंत क्रोध का मारा हुआ आया और बार-बार भयंकर शब्द करके2 नगरजने लगा। मारुति (हनुमान) और अंगद क्रोध करके दौड़े। उसने छाती में त्रिशूल मारकर दोनों को धरती पर गिरा दिया।

प्रभु कहँ छाँड़ेसि सूल प्रचंडा। सर हति कृत अनंत जुग खंडा॥
उठि बहोरि मारुति जुबराजा। हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा॥

फिर उसने प्रभु लक्ष्मण पर त्रिशूल छोड़ा। अनंत (लक्ष्मण) ने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिए। हनुमान और युवराज अंगद फिर उठकर क्रोध करके उसे मारने लगे, उसे चोट न लगी।

फिरे बीर रिपु मरइ न मारा। तब धावा करि घोर चिकारा॥
आवत देखि क्रुद्ध जनु काला। लछिमन छाड़े बिसिख कराला॥

शत्रु (मेघनाद) मारे नहीं मरता, यह देखकर जब वीर लौटे, तब वह घोर चिग्घाड़ करके दौड़ा। उसे क्रुद्ध काल की तरह आता देखकर लक्ष्मण ने भयानक बाण छोड़े।

देखेसि आवत पबि सम बाना। तुरत भयउ खल अंतरधाना॥
बिबिध बेष धरि करइ लराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई॥

वज्र के समान बाणों को आते देखकर वह दुष्ट तुरंत अंतर्धान हो गया और फिर भाँति-भाँति के रूप धारण करके युद्ध करने लगा। वह कभी प्रकट होता था और कभी छिप जाता था।

देखि अजय रिपु डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा॥
लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा। ऐहि पापिहि मैं बहुत खेलावा॥

शत्रु को पराजित न होता देखकर वानर डरे। तब सर्पराज शेष (लक्ष्मण) बहुत क्रोधित हुए। लक्ष्मण ने मन में यह विचार दृढ़ किया कि इस पापी को मैं बहुत खेला चुका (अब

और अधिक खेलाना अच्छा नहीं, अब तो इसे समाप्त ही कर देना चाहिए)।

सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। सर संधान कीन्ह करि दापा॥
छाड़ा बान माझ उर लागा। मरती बार कपटु सब त्यागा॥

कोसलपति राम के प्रताप का स्मरण करके लक्ष्मण ने वीरोचित दर्प करके बाण का संधान किया। बाण छोड़ते ही उसकी छाती के बीच में लगा। मरते समय उसने सब कपट त्याग दिया।

दो॰ - रामानुज कहँ रामु कहँ अस कहि छाँड़ेसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननी कह अंगद हनुमान॥ 76॥

राम के छोटे भाई लक्ष्मण कहाँ हैं? राम कहाँ हैं? ऐसा कहकर उसने प्राण छोड़ दिए। अंगद और हनुमान कहने लगे - तेरी माता धन्य है, धन्य है, (जो तू लक्ष्मण के हाथों मरा और मरते समय राम-लक्ष्मण को स्मरण करके तूने उनके नामों का उच्चारण किया)॥ 76॥

बिनु प्रयास हनुमान उठायो। लंका द्वार राखि पुनि आयो॥
तासु मरन सुनि सुर गंधर्बा। चढ़ि बिमान आए नभ सर्बा॥

हनुमान ने उसको बिना ही परिश्रम के उठा लिया और लंका के दरवाजे पर रखकर वे लौट आए। उसका मरना सुनकर देवता और गंधर्व आदि सब विमानों पर चढ़कर आकाश में आए।

बरषि सुमन दुंदुभीं बजावहिं। श्रीरघुनाथ बिमल जसु गावहिं॥
जय अनंत जय जगदाधारा। तुम्ह प्रभु सब देवन्हि निस्तारा॥

वे फूल बरसाकर नगाड़े बजाते हैं और श्री रघुनाथ का निर्मल यश गाते हैं। हे अनंत! आपकी जय हो, हे जगदाधार! आपकी जय हो। हे प्रभो! आपने सब देवताओं का (महान विपत्ति से) उद्धार किया।

अस्तुति करि सुर सिद्ध सिधाए। लछिमन कृपासिंधु पहिं आए॥
सुत बध सुना दसानन जबहीं। मुरुछित भयउ परेउ महि तबहीं॥

देवता और सिद्ध स्तुति करके चले गए, तब लक्ष्मण कृपा के समुद्र राम के पास आए। रावण ने ज्यों ही पुत्रवध का समाचार सुना, त्यों ही वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर

पड़ा।

मंदोदरी रुदन कर भारी। उर ताड़न बहु भाँति पुकारी॥
रनगर लोग सब ब्याकुल सोचा। सकल कहहिं दसकंधर पोचा॥

मंदोदरी छाती पीट-पीटकर और बहुत प्रकार से पुकार-पुकारकर बड़ा भारी विलाप करने लगी। नगर के सब लोग शोक से व्याकुल हो गए। सभी रावण को नीच कहने लगे।

दो० - तब दसकंठ बिबिधि बिधि समुझाईं सब नारि।
नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदयँ बिचारि॥ 77॥

तब रावण ने सब स्त्रियों को अनेकों प्रकार से समझाया कि समस्त जगत का यह (दृश्य) रूप नाशवान है, हृदय में विचारकर देखो॥ 77॥

तिन्हहि ग्यान उपदेसा रावन। आपुन मंद कथा सुभ पावन॥
पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

रावण ने उनको ज्ञान का उपदेश किया। वह स्वयं तो नीच है, पर उसकी कथा (बातें) शुभ और पवित्र हैं। दूसरों को उपदेश देने में तो बहुत लोग निपुण होते हैं। पर ऐसे लोग अधिक नहीं हैं, जो उपदेश के अनुसार आचरण भी करते हैं।

निसा सिरानि भयउ भिनुसारा। लगे भालु कपि चारिहुँ द्वारा॥
सुभट बोलाइ दसानन बोला। रन सन्मुख जाकर मन डोला॥

रात बीत गई, सबेरा हुआ। रीछ-वानर (फिर) चारों दरवाजों पर जा डटे। योद्धाओं को बुलाकर दशमुख रावण ने कहा - लड़ाई में शत्रु के सम्मुख जिसका मन डाँवाडोल हो,

सो अबहीं बरु जाउ पराई। संजुग बिमुख भएँ न भलाई॥
निज भुज बल मैं बयरु बढ़ावा। देहउँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा॥

अच्छा है वह अभी भाग जाए। युद्ध में जाकर विमुख होने (भागने) में भलाई नहीं है। मैंने अपनी भुजाओं के बल पर बैर बढ़ाया है। जो शत्रु चढ़ आया है, उसको मैं (अपने ही) उत्तर दे लूँगा।

अस कहि मरुत बेग रथ साजा। बाजे सकल जुझाऊ बाजा॥

चले बीर सब अतुलित बली। जनु कज्जल कै आँधी चली॥

ऐसा कहकर उसने पवन के समान तेज चलनेवाला रथ सजाया। सारे जुझाऊ (लड़ाई के) बाजे बजने लगे। सब अतुलनीय बलवान वीर ऐसे चले मानो काजल की आँधी चली हो।

असगुन अमित होहिं तेहि काला। गनइ न भुज बल गर्ब बिसाला॥

उस समय असंख्य अपशकुन होने लगे। पर अपनी भुजाओं के बल का बड़ा गर्व होने से रावण उन्हें गिनता नहीं है।

छं० - अति गर्ब गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते।
भट गिरत रथ ते बाजि गज चिक्करत भाजहिं साथ ते॥
गोमाय गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने।
जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने॥

अत्यंत गर्व के कारण वह शकुन-अपशकुन का विचार नहीं करता। हथियार हाथों से गिर रहे हैं। योद्धा रथ से गिर पड़ते हैं। घोड़े, हाथी साथ छोड़कर चिग्घाड़ते हुए भाग जाते हैं। सियार, गीध, कौए और गदहे शब्द कर रहे हैं। बहुत अधिक कुत्ते बोल रहे हैं। उल्लू ऐसे अत्यंत भयानक शब्द कर रहे हैं, मानो काल के दूत हों (मृत्यु का संदेसा सुना रहे हों)।

दो० - ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम॥ 78॥

जो जीवों के द्रोह में रत है, मोह के वश हो रहा है, रामविमुख है और कामासक्त है, उसको क्या कभी स्वप्न में भी संपत्ति, शुभ शकुन और चित्त की शांति हो सकती है?॥ 78॥

चलेउ निसाचर कटकु अपारा। चतुरंगिनी अनी बहु धारा॥
बिबिधि भाँति बाहन रथ जाना। बिपुल बरन पताक ध्वज नाना॥

राक्षसों की अपार सेना चली। चतुरंगिणी सेना की बहुत-सी टुकड़ियाँ हैं। अनेकों प्रकार के वाहन, रथ और सवारियाँ हैं तथा बहुत-से रंगों की अनेकों पताकाएँ और ध्वजाएँ हैं।

चले मत्त गज जूथ घनेरे। प्राबिट जलद मरुत जनु प्रेरे॥
बरन बरन बिरदैत निकाया। समर सूर जानहिं बहु माया॥

मतवाले हाथियों के बहुत-से झुंड चले। मानो पवन से प्रेरित हुए वर्षा ऋतु के बादल हों। रंग-बिरंगे बाना धारण करनेवाले वीरों के समूह हैं, जो युद्ध में बड़े शूरवीर हैं और बहुत प्रकार की माया जानते हैं।

अति बिचित्र बाहिनी बिराजी। बीर बसंत सेन जनु साजी॥
चलत कटक दिगसिंधुर डगहीं। छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं॥

अत्यंत विचित्र फौज शोभित है। मानो वीर वसंत ने सेना सजाई हो। सेना के चलने से दिशाओं के हाथी डिगने लगे, समुद्र क्षुभित हो गए और पर्वत डगमगाने लगे।

उठी रेनु रबि गयउ छपाई। मरुत थकित बसुधा अकुलाई॥
पनव निसान घोर रव बाजहिं। प्रलय समय के घन जनु गाजहिं॥

इतनी धूल उड़ी कि सूर्य छिप गए। (फिर सहसा) पवन रुक गया और पृथ्वी अकुला उठी। ढोल और नगाड़े भीषण ध्वनि से बज रहे हैं; जैसे प्रलयकाल के बादल गरज रहे हों।

भेरि नफीरि बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई॥
केहरि नाद बीर सब करहीं। निज निज बल पौरुष उच्चरहीं॥

भेरी, नफीरी (तुरही) और शहनाई में योद्धाओं को सुख देनेवाला मारू राग बज रहा है। सब वीर सिंहनाद करते हैं और अपने-अपने बल पौरुष का बखान कर रहे हैं।

कहइ दसानन सुनहू सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा॥
हौं मारिहउँ भूप द्वौ भाई। अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई॥

रावण ने कहा - हे उत्तम योद्धाओ! सुनो! तुम रीछ-वानरों के ठट्ट को मसल डालो। और मैं दोनों राजकुमार भाइयों को मारूँगा। ऐसा कहकर उसने अपनी सेना सामने चलाई।

यह सुधि सकल कपिन्ह जब पाई। धाए करि रघुबीर ई॥

जब सब वानरों ने यह खबर पाई, तब वे राम की दुहाई देते हुए दौड़े।

छं० - धाए बिसाल कराल मर्कट भालु काल समान ते।
मानहुँ सपच्छ उड़ाहिं भूधर बृंद नाना बान ते॥
नख दसन सैल महाद्रुमायुध सबल संक न मानहीं।

जय राम रावन मत्त गज मृगराज सुजसु बखानहीं॥

वे विशाल और काल के समान कराल वानर-भालू दौड़े। मानो पंखवाले पर्वतों के समूह उड़ रहे हों। वे अनेक वर्णों के हैं। नख, दाँत, पर्वत और बड़े-बड़े वृक्ष ही उनके हथियार हैं। वे बड़े बलवान हैं और किसी का भी डर नहीं मानते। रावणरूपी मतवाले हाथी के लिए सिंह रूप राम का जय-जयकार करके वे उनके सुंदर यश का बखान करते हैं।

दो० - दुहु दिसि जय जयकार करि निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रामहि उत रावनहि बखानि॥ 79॥

दोनों ओर के योद्धा जय-जयकार करके अपनी-अपनी जोड़ी जान (चुन) कर इधर रघुनाथ का और उधर रावण का बखान करके परस्पर भिड़ गए॥ 79॥

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा॥
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा॥

रावण को रथ पर और रघुवीर को बिना रथ के देखकर विभीषण अधीर हो गए। प्रेम अधिक होने से उनके मन में संदेह हो गया (कि वे बिना रथ के रावण को कैसे जीत सकेंगे)। राम के चरणों की वंदना करके वे स्नेहपूर्वक कहने लगे।

नाथ न रथ नहि तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥

हे नाथ! आपके न रथ है, न तन की रक्षा करनेवाला कवच है और न जूते ही हैं। वह बलवान वीर रावण किस प्रकार जीता जाएगा? कृपानिधान राम ने कहा - हे सखे! सुनो, जिससे जय होती है, वह रथ दूसरा ही है।

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥

शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिए हैं। सत्य और शील (सदाचार) उसकी मजबूत ध्वजा और पताका हैं। बल, विवेक, दम (इंद्रियों का वश में होना) और परोपकार - ये चार उसके घोड़े हैं, जो क्षमा, दया और समतारूपी डोरी से रथ में जोड़े हुए हैं।

ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥

दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥

ईश्वर का भजन ही (उस रथ को चलानेवाला) चतुर सारथी है। वैराग्य ढाल है और संतोष तलवार है। दान फरसा है, बुद्धि प्रचंड शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है।

अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥

निर्मल (पापरहित) और अचल (स्थिर) मन तरकस के समान है। शम (मन का वश में होना), (अहिंसादि) यम और (शौचादि) नियम - ये बहुत-से बाण हैं। ब्राह्मणों और गुरु का पूजन अभेद्य कवच है। इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है।

सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥

हे सखे! ऐसा धर्ममय रथ जिसके हो उसके लिए जीतने को कहीं शत्रु ही नहीं है।

दो॰ - महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर॥ 80(क)॥

हे धीरबुद्धिवाले सखा! सुनो, जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो, वह वीर संसार (जन्म-मृत्यु) रूपी महान दुर्जय शत्रु को भी जीत सकता है (रावण की तो बात ही क्या है)॥ 80(क)॥

सुनि प्रभु बचन बिभीषन हरषि गहे पद कंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपा सुख पुंज॥ 80(ख)॥

प्रभु के वचन सुनकर विभीषण ने हर्षित होकर उनके चरण कमल पकड़ लिए (और कहा -) हे कृपा और सुख के समूह राम! आपने इसी बहाने मुझे (महान) उपदेश दिया॥ 80(ख)॥

उत पचार दसकंधर इत अंगद हनुमान।
लरत निसाचर भालु कपि करि निज निज प्रभु आन॥ 80(ग)॥

उधर से रावण ललकार रहा है और इधर से अंगद और हनुमान। राक्षस और रीछ-वानर अपने-अपने स्वामी की दुहाई देकर लड़ रहे हैं॥ 80(ग)॥

सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढ़े बिमाना॥
हमहू उमा रहे तेहिं संगा। देखत राम चरित रन रंगा॥

ब्रह्मा आदि देवता और अनेकों सिद्ध तथा मुनि विमानों पर चढ़े हुए आकाश से युद्ध देख रहे हैं। (शिव कहते हैं -) हे उमा! मैं भी उस समाज में था और राम के रण-रंग (रणोत्साह) की लीला देख रहा था।

सुभट समर रस दुहु दिसि माते। कपि जयसील राम बल ताते॥
एक एक सन भिरहिं पचारहिं। एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं॥

दोनों ओर के योद्धा रण-रस में मतवाले हो रहे हैं। वानरों को राम का बल है, इससे वे जयशील हैं (जीत रहे हैं)। एक-दूसरे से भिड़ते और ललकारते हैं और एक-दूसरे को मसल-मसलकर पृथ्वी पर डाल देते हैं।

मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं॥
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं॥

वे मारते, काटते, पकड़ते और पछाड़ देते हैं और सिर तोड़कर उन्हीं सिरों से दूसरों को मारते हैं। पेट फाड़ते हैं, भुजाएँ उखाड़ते हैं और योद्धाओं को पैर पकड़कर पृथ्वी पर पटक देते हैं।

निसिचर भट महि गाड़हिं भालू। ऊपर ढारि देहिं बहु बालू॥
बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे। देखिअत बिपुल काल जनु क्रुद्धे॥

राक्षस योद्धाओं को भालू पृथ्वी में गाड़ देते हैं और ऊपर से बहुत-सी बालू डाल देते हैं। युद्ध में शत्रुओं से विरुद्ध हुए वीर वानर ऐसे दिखाई पड़ते हैं मानो बहुत-से क्रोधित काल हों।

छं० - क्रुद्धे कृतांत समान कपि तन स्रवत सोनित राजहीं।
मर्दहिं निसाचर कटक भट बलवंत घन जिमि गाजहीं॥
मारहिं चपेटन्हि डाटि दातन्ह काटि लातन्ह मीजहीं।
चिक्करहिं मर्कट भालु छल बल करहिं जेहिं खल छीजहीं॥

क्रोधित हुए काल के समान वे वानर खून बहते हुए शरीरों से शोभित हो रहे हैं। वे

बलवान वीर राक्षसों की सेना के योद्धाओं को मसलते और मेघ की तरह गरजते हैं। डाँटकर चपेटों से मारते, दाँतों से काटकर लातों से पीस डालते हैं। वानर-भालू चिग्घाड़ते और ऐसा छल-बल करते हैं, जिससे दुष्ट राक्षस नष्ट हो जाएँ।

धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलहीं।
प्रह्लादपति जनु बिबिध तनु धरि समर अंगन खेलहीं॥
धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही।
जय राम जो तृन ते कुलिस कर कुलिस ते कर तृन सही॥

वे राक्षसों के गाल पकड़कर फाड़ डालते हैं, छाती चीर डालते हैं और उनकी अँतड़ियाँ निकालकर गले में डाल लेते हैं। वे वानर ऐसे दिख पड़ते हैं मानो प्रह्लाद के स्वामी नृसिंह भगवान अनेकों शरीर धारण करके युद्ध के मैदान में क्रीड़ा कर रहे हों। पकड़ो, मारो, काटो, पछाड़ो आदि घोर शब्द आकाश और पृथ्वी में भर (छा) गए हैं। राम की जय हो, जो सचमुच तृण से वज्र और वज्र से तृण कर देते हैं (निर्बल को सबल और सबल को निर्बल कर देते हैं)।

दो० - निज दल बिचलत देखेसि बीस भुजाँ दस चाप।
रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप॥ 81॥

अपनी सेना को विचलित होते हुए देखा, तब बीस भुजाओं में दस धनुष लेकर रावण रथ पर चढ़कर गर्व करके 'लौटो, लौटो' कहता हुआ चला॥ 81॥

धायउ परम क्रुद्ध दसकंधर। सन्मुख चले हूह दै बंदर॥
गहि कर पादप उपल पहारा। डारेन्हि ता पर एकहिं बारा॥

रावण अत्यंत क्रोधित होकर दौड़ा। वानर हुँकार करते हुए (लड़ने के लिए) उसके सामने चले। उन्होंने हाथों में वृक्ष, पत्थर और पहाड़ लेकर रावण पर एक ही साथ डाले।

लागहिं सैल बज्र तन तासू। खंड खंड होइ फूटहिं आसू॥
चला न अचल रहा रथ रोपी। रन दुर्मद रावन अति कोपी॥

पर्वत उसके वज्रतुल्य शरीर में लगते ही तुरंत टुकड़े-टुकड़े होकर फूट जाते हैं। अत्यंत क्रोधी रणोन्मत्त रावण रथ रोककर अचल खड़ा रहा, (अपने स्थान से) जरा भी नहीं

हिला।

इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। मर्दै लाग भयउ अति क्रोधा॥
चले पराइ भालु कपि नाना। त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना॥

उसे बहुत ही क्रोध हुआ। वह इधर-उधर झपटकर और डपटकर वानर योद्धाओं को मसलने लगा। अनेकों वानर-भालू 'हे अंगद! हे हनुमान! रक्षा करो, रक्षा करो' (पुकारते हुए) भाग चले।

पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं। यह खल खाइ काल की नाईं॥
तेहिं देखे कपि सकल पराने। दसहुँ चाप सायक संधाने॥

हे रघुवीर! हे गोसाईं! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। यह दुष्ट काल की भाँति हमें खा रहा है। उसने देखा कि सब वानर भाग छूटे, तब (रावण ने) दसों धनुषों पर बाण संधान किए।

छं० - संधानि धनु सर निकर छाड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं।
रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहँ कपि भागहीं॥
भयो अति कोलाहल बिकल कपि दल भालु बोलहिं आतुरे।
रघुबीर करुना सिंधु आरत बंधु जन रच्छक हरे॥

उसने धनुष पर संधान करके बाणों के समूह छोड़े। वे बाण सर्प की तरह उड़कर जा लगते थे। पृथ्वी-आकाश और दिशा-विदिशा सर्वत्र बाण भर रहे हैं। वानर भागें तो कहाँ? अत्यंत कोलाहल मच गया। वानर-भालूओं की सेना व्याकुल होकर आर्त्त पुकार करने लगी - हे रघुवीर! हे करुणासागर! हे पीड़ितों के बंधु! हे सेवकों की रक्षा करके उनके दुःख हरनेवाले हरि!

दो० - निज दल बिकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ नाइ राम पद माथ॥ 82॥

अपनी सेना को व्याकुल देखकर कमर में तरकस कसकर और हाथ में धनुष लेकर रघुनाथ के चरणों पर मस्तक नवाकर लक्ष्मण क्रोधित होकर चले॥ 82॥

रे खल का मारसि कपि भालु। मोहि बिलोकु तोर मैं कालू॥
खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती। आजु निपाति जुड़ावउँ छाती॥

(लक्ष्मण ने पास जाकर कहा -) अरे दुष्ट! वानर भालूओं को क्या मार रहा है? मुझे देख, मैं तेरा काल हूँ। (रावण ने कहा -) अरे मेरे पुत्र के घातक! मैं तुझी को ढूँढ़ रहा था। आज तुझे मारकर (अपनी) छाती ठंडी करूँगा।

अस कहि छाड़ेसि बान प्रचंडा। लछिमन किए सकल सत खंडा॥
कोटिन्ह आयुध रावन डारे। तिल प्रवान करि काटि निवारे॥

ऐसा कहकर उसने प्रचंड बाण छोड़े। लक्ष्मण ने सबके सैकड़ों टुकड़े कर डाले। रावण ने करोड़ों अस्त्र-शस्त्र चलाए। लक्ष्मण ने उनको तिल के बराबर करके काटकर हटा दिया।

पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रहारा। स्यंदनु भंजि सारथी मारा॥
सत सत सर मारे दस भाला। गिरि सृंगन्ह जनु प्रबिसहिं ब्याला॥

फिर अपने बाणों से (उस पर) प्रहार किया और (उसके) रथ को तोड़कर सारथी को मार डाला। (रावण के) दसों मस्तकों में सौ-सौ बाण मारे। वे सिरों में ऐसे पैठ गए मानो पहाड़ के शिखरों में सर्प प्रवेश कर रहे हों।

पुनि सत सर मारा उर माहीं। परेउ धरनि तल सुधि कछु नाहीं॥
उठा प्रबल पुनि मुरुछा जागी। छाड़िसि ब्रह्म दीन्हि जो साँगी॥

फिर सौ बाण उसकी छाती में मारे। वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, उसे कुछ भी होश न रहा। फिर मूर्च्छा छूटने पर वह प्रबल रावण उठा और उसने वह शक्ति चलाई जो ब्रह्मा ने उसे दी थी।

छं० - सो ब्रह्म दत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही।
पर्‍यो बीर बिकल उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही॥
ब्रह्मांड भवन बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुअन धनी॥

वह ब्रह्मा की दी हुई प्रचंड शक्ति लक्ष्मण की ठीक छाती में लगी। वीर लक्ष्मण व्याकुल होकर गिर पड़े। तब रावण उन्हें उठाने लगा, पर उसके अतुलित बल की महिमा यों ही रह गई, (व्यर्थ हो गई, वह उन्हें उठा न सका)। जिनके एक ही सिर पर ब्रह्मांडरूपी भवन धूल के एक कण के समान विराजता है, उन्हें मूर्ख रावण उठाना चाहता है! वह तीनों भुवनों के

स्वामी लक्ष्मण को नहीं जानता।

दो॰ - देखि पवनसुत धायउ बोलत बचन कठोर।
आवत कपिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर॥ 83॥

यह देखकर पवनपुत्र हनुमान कठोर वचन बोलते हुए दौड़े। हनुमान के आते ही रावण ने उन पर अत्यंत भयंकर घूँसे का प्रहार किया॥ 83॥

जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भरा॥
मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥

हनुमान घुटने टेककर रह गए, पृथ्वी पर गिरे नहीं। और फिर क्रोध से भरे हुए सँभलकर उठे। हनुमान ने रावण को एक घूँसा मारा। वह ऐसा गिर पड़ा जैसे वज्र की मार से पर्वत गिरा हो।

मुरुछा गै बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा॥
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौं तैं जिअत रहेसि सुरद्रोही॥

मूर्च्छा भंग होने पर फिर वह जागा और हनुमान के बड़े भारी बल को सराहने लगा। (हनुमान ने कहा -) मेरे पौरुष को धिक्कार है, धिक्कार है और मुझे भी धिक्कार है, जो हे देवद्रोही! तू अब भी जीता रह गया।

अस कहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायो॥
कह रघुबीर समुझु जियँ भ्राता। तुम्ह कृतांत भच्छक सुर त्राता॥

ऐसा कहकर और लक्ष्मण को उठाकर हनुमान रघुनाथ के पास ले आए। यह देखकर रावण को आश्चर्य हुआ। रघुवीर ने (लक्ष्मण से) कहा - हे भाई! हृदय में समझो, तुम काल के भी भक्षक और देवताओं के रक्षक हो।

सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गई गगन सो सकति कराला॥
पुनि कोदंड बान गहि धाए। रिपु सन्मुख अति आतुर आए॥

ये वचन सुनते ही कृपालु लक्ष्मण उठ बैठे। वह कराल शक्ति आकाश को चली गई। लक्ष्मण फिर धनुष-बाण लेकर दौड़े और बड़ी शीघ्रता से शत्रु के सामने आ पहुँचे।

छं० - आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदन सूत हति ब्याकुल कियो।
गिर्‌यो धरनि दसकंधर बिकलतर बान सत बेध्यो हियो॥
सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो।
रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो॥

फिर उन्होंने बड़ी ही शीघ्रता से रावण के रथ को चूर-चूर कर और सारथी को मारकर उसे (रावण को) व्याकुल कर दिया। सौ बाणों से उसका हृदय बेध दिया, जिससे रावण अत्यंत व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब दूसरा सारथी उसे रथ में डालकर तुरंत ही लंका को ले गया। प्रताप के समूह रघुवीर के भाई लक्ष्मण ने फिर आकर प्रभु के चरणों में प्रणाम किया।

दो० - उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जग्य।
राम बिरोध बिजय चह सठ हठ बस अति अग्य॥ 84॥

वहाँ (लंका में) रावण मूर्च्छा से जागकर कुछ यज्ञ करने लगा। वह मूर्ख और अत्यंत अज्ञानी हठवश रघुनाथ से विरोध करके विजय चाहता है॥ 84॥

इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई॥
नाथ करइ रावन एक जागा। सिद्ध भएँ नहिं मरिहि अभागा॥

यहाँ विभीषण ने सब खबर पाई और तुरंत जाकर रघुनाथ को कह सुनाई कि हे नाथ! रावण एक यज्ञ कर रहा है। उसके सिद्ध होने पर वह अभागा सहज ही नहीं मरेगा।

पठवहु नाथ बेगि भट बंदर। करहिं बिधंस आव दसकंधर॥
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए। हनुमदादि अंगद सब धाए॥

हे नाथ! तुरंत वानर योद्धाओं को भेजिए; जो यज्ञ का विध्वंस करें, जिससे रावण युद्ध में आए। प्रातःकाल होते ही प्रभु ने वीर योद्धाओं को भेजा। हनुमान और अंगद आदि सब (प्रधान वीर) दौड़े।

कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका। पैठे रावन भवन असंका॥
जग्य करत जबहीं सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेषा॥

वानर खेल से ही कूदकर लंका पर जा चढ़े और निर्भय होकर रावण के महल में जा घुसे।

ज्यों ही उसको यज्ञ करते देखा, त्यों ही सब वानरों को बहुत क्रोध हुआ।

रन ते निलज भाजि गृह आवा। इहाँ आइ बक ध्यान लगावा॥
अस कहि अंगद मारा लाता। चितव न सठ स्वारथ मन राता॥

(उन्होंने कहा -) अरे ओ निर्लज्ज! रणभूमि से घर भाग आया और यहाँ आकर बगुले का-सा ध्यान लगाकर बैठा है? ऐसा कहकर अंगद ने लात मारी। पर उसने इनकी ओर देखा भी नहीं, उस दुष्ट का मन स्वार्थ में अनुरक्त था।

छं० - नहिं चितव जब करि कोप कपि गहि दसन लातन्ह मारहीं।
धरि केस नारि निकारि बाहेर तेऽतिदीन पुकारहीं॥
तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई।
एहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मन महुँ हारई॥

जब उसने नहीं देखा, तब वानर क्रोध करके उसे दाँतों से पकड़कर (काटने और) लातों से मारने लगे। स्त्रियों को बाल पकड़कर घर से बाहर घसीट लाए, वे अत्यंत ही दीन होकर पुकारने लगीं। तब रावण काल के समान क्रोधित होकर उठा और वानरों को पैर पकड़कर पटकने लगा। इसी बीच में वानरों ने यज्ञ विध्वंस कर डाला, यह देखकर वह मन में हारने लगा (निराश होने लगा)।

दो० - जग्य बिधंसि कुसल कपि आए रघुपति पास।
चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ त्यागि जिवन कै आस॥ 85॥

यज्ञ विध्वंस करके सब चतुर वानर रघुनाथ के पास आ गए। तब रावण जीने की आशा छोड़कर क्रोधित होकर चला॥ 85॥

चलत होहिं अति असुभ भयंकर। बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर॥
भयउ कालबस काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना॥

चलते समय अत्यंत भयंकर अमंगल (अपशकुन) होने लगे। गीध उड़-उड़कर उसके सिरों पर बैठने लगे। किंतु वह काल के वश था, इससे किसी भी अपशकुन को नहीं मानता था। उसने कहा - युद्ध का डंका बजाओ।

चली तमीचर अनी अपारा। बहु गज रथ पदाति असवारा॥

प्रभु सन्मुख धाए खल कैसें। सलभ समूह अनल कहँ जैसें॥

निशाचरों की अपार सेना चली। उसमें बहुत-से हाथी, रथ, घुड़सवार और पैदल हैं। वे दुष्ट प्रभु के सामने कैसे दौड़े, जैसे पतंगों के समूह अग्नि की ओर (जलने के लिए) दौड़ते हैं।

इहाँ देवतन्ह अस्तुति कीन्ही। दारुन बिपति हमहि एहिं दीन्ही॥
अब जनि राम खेलावहु एही। अतिसय दुखित होति बैदेही॥

इधर देवताओं ने स्तुति की कि हे राम! इसने हमको दारुण दुःख दिए हैं। अब आप इसे (अधिक) न खेलाइए। जानकी बहुत ही दुःखी हो रही हैं।

देव बचन सुनि प्रभु मुसुकाना। उठि रघुबीर सुधारे बाना॥
जटा जूट दृढ़ बाँधें माथे। सोहहिं सुमन बीच बिच गाथे॥

देवताओं के वचन सुनकर प्रभु मुसकराए। फिर रघुवीर ने उठकर बाण सुधारे। मस्तक पर जटाओं के जूड़े को कसकर बाँधे हुए हैं, उसके बीच-बीच में पुष्प गूँथे हुए शोभित हो रहे हैं।

अरुन नयन बारिद तनु स्यामा। अखिल लोक लोचनाभिरामा॥
कटितट परिकर कस्यो निषंगा। कर कोदंड कठिन सारंगा॥

लाल नेत्र और मेघ के समान श्याम शरीरवाले और संपूर्ण लोकों के नेत्रों को आनंद देनेवाले हैं। प्रभु ने कमर में फेंटा तथा तरकस कस लिया और हाथ में कठोर शार्गंधनुष ले लिया।

छं० - सारंग कर सुंदर निषंग सिलीमुखाकर कटि कस्यो।
भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो॥
कह दास तुलसी जबहिं प्रभु सर चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे॥

प्रभु ने हाथ में शार्गंधनुष लेकर कमर में बाणों की खान (अक्षय) सुंदर तरकस कस लिया। उनके भुजदंड पुष्ट हैं और मनोहर चौड़ी छाती पर ब्राह्मण (भृगु) के चरण का चिह्न शोभित है। तुलसीदास कहते हैं, ज्यों ही प्रभु धनुष-बाण हाथ में लेकर फिराने लगे, त्यों ही ब्रह्मांड, दिशाओं के हाथी, कच्छप, शेष, पृथ्वी, समुद्र और पर्वत सभी डगमगा उठे।

दो० - सोभा देखि हरषि सुर बरषहिं सुमन अपार।
जय जय जय करुनानिधि छबि बल गुन आगार॥ 86॥

(भगवान की) शोभा देखकर देवता हर्षित होकर फूलों की अपार वर्षा करने लगे और शोभा, शक्ति और गुणों के धाम करुणानिधान प्रभु की जय हो, जय हो, जय हो (ऐसा पुकारने लगे)॥ 86॥

एहीं बीच निसाचर अनी। कसमसात आई अति घनी॥
देखि चले सन्मुख कपि भट्टा। प्रलयकाल के जनु घन घट्टा॥

इसी बीच में निशाचरों की अत्यंत घनी सेना कसमसाती हुई (आपस में टकराती हुई) आई। उसे देखकर वानर योद्धा इस प्रकार (उसके) सामने चले जैसे प्रलयकाल के बादलों के समूह हों।

बहु कृपान तरवारि चमंकहिं। जनु दहँ दिसि दामिनीं दमंकहिं॥
गज रथ तुरग चिकार कठोरा। गर्जहिं मनहुँ बलाहक घोरा॥

बहुत-से कृपाल और तलवारें चमक रही हैं। मानो दसों दिशाओं में बिजलियाँ चमक रही हों। हाथी, रथ और घोड़ों का कठोर चिंग्घाड़ ऐसा लगता है मानो बादल भयंकर गर्जन कर रहे हों।

कपि लंगूर बिपुल नभ छाए। मनहुँ इंद्रधनु उए सुहाए॥
उठइ धूरि मानहुँ जलधारा। बान बुंद भै बृष्टि अपारा॥

वानरों की बहुत-सी पूँछें आकाश में छाई हुई हैं। (वे ऐसी शोभा दे रही हैं) मानो सुंदर इंद्रधनुष उदय हुए हों। धूल ऐसी उठ रही है मानो जल की धारा हो। बाणरूपी बूँदों की अपार वृष्टि हुई।

दुहुँ दिसि पर्बत करहिं प्रहारा। बज्रपात जनु बारहिं बारा॥
रघुपति कोपि बान झरि लाई। घायल भै निसिचर समुदाई॥

दोनों ओर से योद्धा पर्वतों का प्रहार करते हैं। मानो बारंबार वज्रपात हो रहा हो। रघुनाथ ने क्रोध करके बाणों की झड़ी लगा दी, (जिससे) राक्षसों की सेना घायल हो गई।

लागत बान बीर चिक्करहीं। घुर्मि घुर्मि जहँ तहँ महि परहीं॥

स्रवहिं सैल जनु निर्झर भारी। सोनित सरि कादर भयकारी॥

बाण लगते ही वीर चीत्कार कर उठते हैं और चक्कर खा-खाकर जहाँ-तहाँ पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। उनके शरीर से ऐसे खून बह रहा है मानो पर्वत के भारी झरनों से जल बह रहा हो। इस प्रकार डरपोकों को भय उत्पन्न करनेवाली रुधिर की नदी बह चली।

छं० - कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अबर्त बहति भयावनी॥
जलजंतु गज पदचर तुरग खर बिबिध बाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने॥

डरपोकों को भय उपजानेवाली अत्यंत अपवित्र रक्त की नदी बह चली। दोनों दल उसके दोनों किनारे हैं। रथ रेत है और पहिए भँवर हैं। वह नदी बहुत भयावनी बह रही है। हाथी, पैदल, घोड़े, गधे तथा अनेकों सवारियाँ हैं, जिनकी गिनती कौन करे, नदी के जल जंतु हैं। बाण, शक्ति और तोमर सर्प हैं, धनुष तरंगें हैं और ढाल बहुत-से कछुवे हैं।

दो० - बीर परहिं जनु तीर तरु मज्जा बहु बह फेन।
कादर देखि डरहिं तहँ सुभटन्ह के मन चेन॥ 87॥

वीर पृथ्वी पर इस तरह गिर रहे हैं, मानो नदी-किनारे के वृक्ष ढह रहे हों। बहुत-सी मज्जा बह रही है, वही फेन है। डरपोक जहाँ इसे देखकर डरते हैं, वहाँ उत्तम योद्धाओं के मन में सुख होता है॥ 87॥

मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला॥
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक लै खाहीं॥

भूत, पिशाच और बेताल, बड़े-बड़े झोंटोंवाले महान भयंकर झोटिंग और प्रमथ (शिवगण) उस नदी में स्नान करते हैं। कौए और चील भुजाएँ लेकर उड़ते हैं और एक-दूसरे से छीनकर खा जाते हैं।

एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई। सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई॥
कहँरत भट घायल तट गिरे। जहँ तहँ मनहुँ अर्धजल परे॥

एक (कोई) कहते हैं, अरे मूर्खो! ऐसी सस्ती (बहुतायत) है, फिर भी तुम्हारी दरिद्रता नहीं

जाती? घायल योद्धा तट पर पड़े कराह रहे हैं, मानो जहाँ-तहाँ अर्धजल (वे व्यक्ति जो मरने के समय आधे जल में रखे जाते हैं) पड़े हों।

खैचहिं गीध आँत तट भए। जनु बंसी खेलत चित दए॥
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं। जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं॥

गीध आँतें खींच रहे हैं, मानो मछली मार नदी तट पर से चित्त लगाए हुए (ध्यानस्थ होकर) बंसी खेल रहे हों (बंसी से मछली पकड़ रहे हों)। बहुत-से योद्धा बहे जा रहे हैं और पक्षी उन पर चढ़े चले जा रहे हैं। मानो वे नदी में नावरि (नौकाक्रीड़ा) खेल रहे हों।

जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं। भूति पिसाच बधू नभ नंचहिं॥
भट कपाल करताल बजावहिं। चामुंडा नाना बिधि गावहिं॥

योगिनियाँ खप्परों में भर-भरकर खून जमा कर रही हैं। भूत-पिशाचों की स्त्रियाँ आकाश में नाच रही हैं। चामुंडाएँ योद्धाओं की खोपड़ियों का करताल बजा रही हैं और नाना प्रकार से गा रही हैं।

जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं॥
कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोल्लहिं। सीस परे महि जय जय बोल्लहिं॥

गीदड़ों के समूह कट-कट शब्द करते हुए मुरदों को काटते, खाते, हुआँ-हुआँ करते और पेट भर जाने पर एक-दूसरे को डाँटते हैं। करोड़ों धड़ बिना सिर के घूम रहे हैं और सिर पृथ्वी पर पड़े जय-जय बोल रहे हैं।

छं० - बोल्लहिं जो जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावहीं।
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं॥
बानर निसाचर निकर मर्दहिं राम बल दर्पित भए।
संग्राम अंगन सुभट सोवहिं राम सर निकरन्हि हए॥

मुंड (कटे सिर) जय-जय बोल बोलते हैं और प्रचंड रुंड (धड़) बिना सिर के दौड़ते हैं। पक्षी खोपड़ियों में उलझ-उलझकर परस्पर लड़े मरते हैं; उत्तम योद्धा दूसरे योद्धाओं को ढहा रहे हैं। राम बल से दर्पित हुए वानर राक्षसों के झुंडों को मसले डालते हैं। राम के बाण समूहों से मरे हुए योद्धा लड़ाई के मैदान में सो रहे हैं।

दो॰ - रावन हृदयँ बिचारा भा निसिचर संघार।
मैं अकेल कपि भालु बहु माया करौं अपार॥ 88॥

रावण ने हृदय में विचारा कि राक्षसों का नाश हो गया है। मैं अकेला हूँ और वानर-भालू बहुत हैं, इसलिए मैं अब अपार माया रचूँ॥ 88॥

देवन्ह प्रभुहि पयादें देखा। उपजा उर अति छोभ बिसेषा॥
सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लै आवा॥

देवताओं ने प्रभु को पैदल (बिना सवारी के युद्ध करते) देखा, तो उनके हृदय में बड़ा भारी क्षोभ (दुःख) उत्पन्न हुआ। (फिर क्या था) इंद्र ने तुरंत अपना रथ भेज दिया। (उसका सारथी) मातलि हर्ष के साथ उसे ले आया।

तेज पुंज रथ दिब्य अनूपा। हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा॥
चंचल तुरग मनोहर चारी। अजर अमर मन सम गतिकारी॥

उस दिव्य अनुपम और तेज के पुंज (तेजोमय) रथ पर कोसलपुरी के राजा राम हर्षित होकर चढ़े। उसमें चार चंचल, मनोहर, अजर, अमर और मन की गति के समान शीघ्र चलनेवाले (देवलोक के) घोड़े जुते थे।

रथारूढ़ रघुनाथहि देखी। धाए कपि बलु पाइ बिसेषी॥
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी॥

रघुनाथ को रथ पर चढ़े देखकर वानर विशेष बल पाकर दौड़े। वानरों की मार सही नहीं जाती। तब रावण ने माया फैलाई।

सो माया रघुबीरहि बाँची। लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची॥
देखी कपिन्ह निसाचर अनी। अनुज सहित बहु कोसलधनी॥

एक रघुवीर के ही वह माया नहीं लगी। सब वानरों ने और लक्ष्मण ने भी उस माया को सच मान लिया। वानरों ने राक्षसी सेना में भाई लक्ष्मण सहित बहुत-से रामों को देखा।

छं॰ - बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।
जनु चित्र लिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे॥
निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसल धनी।

माया हरी हरि निमिष महुँ हरषी सकल मर्कट अनी॥

बहुत-से राम-लक्ष्मण देखकर वानर-भालू मन में मिथ्या डर से बहुत ही डर गए। लक्ष्मण सहित वे मानो चित्रलिखे-से जहाँ-के-तहाँ खड़े देखने लगे। अपनी सेना को आश्चर्यचकित देखकर कोसलपति भगवान हरि (दुःखों के हरनेवाले राम) ने हँसकर धनुष पर बाण चढ़ाकर, पल भर में सारी माया हर ली। वानरों की सारी सेना हर्षित हो गई।

दो॰ - बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गँभीर।
द्वंदजुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति बीर॥ 89॥

फिर राम सबकी ओर देखकर गंभीर वचन बोले - हे वीरो! तुम सब बहुत ही थक गए हो, इसलिए अब (मेरा और रावण का) द्वंद्व युद्ध देखो॥ 89॥

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। बिप्र चरन पंकज सिरु नावा॥
तब लंकेस क्रोध उर छावा। गर्जत तर्जत सम्मुख धावा॥

ऐसा कहकर रघुनाथ ने ब्राह्मणों के चरणकमलों में सिर नवाया और फिर रथ चलाया। तब रावण के हृदय में क्रोध छा गया और वह गरजता तथा ललकारता हुआ सामने दौड़ा।

जीतेहु जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं॥
रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाकें बंदीखाना॥

(उसने कहा -) अरे तपस्वी! सुनो, तुमने युद्ध में जिन योद्धाओं को जीता है, मैं उनके समान नहीं हूँ। मेरा नाम रावण है, मेरा यश सारा जगत जानता है, लोकपाल तक जिसके कैदखाने में पड़े हैं।

खर दूषन बिराध तुम्ह मारा। बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा॥
निसिचर निकर सुभट संघारेहु। कुंभकरन घननादहि मारेहु॥

तुमने खर, दूषण और विराध को मारा! बेचारे बालि का व्याध की तरह वध किया। बड़े-बड़े राक्षस योद्धाओं के समूह का संहार किया और कुंभकर्ण तथा मेघनाद को भी मारा।

आजु बयरु सबु लेउँ निबाही। जौं रन भूप भाजि नहिं जाही॥
आजु करउँ खलु काल हवाले। परेहु कठिन रावन के पाले॥

अरे राजा! यदि तुम रण से भाग न गए तो आज मैं (वह) सारा वैर निकाल लूँगा। आज मैं तुम्हें निश्चय ही काल के हवाले कर दूँगा। तुम कठिन रावण के पाले पड़े हो।

सुनि दुर्बचन कालबस जाना। बिहँसि बचन कह कृपानिधाना॥
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई॥

रावण के दुर्वचन सुनकर और उसे कालवश जान कृपानिधान राम ने हँसकर यह वचन कहा - तुम्हारी सारी प्रभुता, जैसा तुम कहते हो, बिल्कुल सच है। पर अब व्यर्थ बकवास न करो, अपना पुरुषार्थ दिखलाओ।

छं० - जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥

व्यर्थ बकवास करके अपने सुंदर यश का नाश न करो। क्षमा करना, तुम्हें नीति सुनाता हूँ, सुनो! संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं - पाटल (गुलाब), आम और कटहल के समान। एक (पाटल) फूल देते हैं, एक (आम) फूल और फल दोनों देते हैं एक (कटहल) में केवल फल ही लगते हैं। इसी प्रकार (पुरुषों में) एक कहते हैं (करते नहीं), दूसरे कहते और करते भी हैं और एक (तीसरे) केवल करते हैं, पर वाणी से कहते नहीं।

दो० - राम बचन सुनि बिहँसा मोहि सिखावत ग्यान।
बयरु करत नहिं तब डरे अब लागे प्रिय प्रान॥ 90॥

राम के वचन सुनकर वह खूब हँसा (और बोला -) मुझे ज्ञान सिखाते हो? उस समय वैर करते तो नहीं डरे, अब प्राण प्यारे लग रहे हैं॥ 90॥

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छाँड़ै सर॥
नानाकार सिलीमुख धाए। दिसि अरु बिदिसि गगन महि छाए॥

दुर्वचन कहकर रावण क्रुद्ध होकर वज्र के समान बाण छोड़ने लगा। अनेकों आकार के बाण दौड़े और दिशा, विदिशा तथा आकाश और पृथ्वी में, सब जगह छा गए।

पावक सर छाँड़ेउ रघुबीरा। छन महुँ जरे निसाचर तीरा॥

छाड़िसि तीब्र सक्ति खिसिआई। बान संग प्रभु फेरि चलाई॥

रघुवीर ने अग्निबाण छोड़ा, (जिससे) रावण के सब बाण क्षणभर में भस्म हो गए। तब उसने खिसियाकर तीक्ष्ण शक्ति छोड़ी, (किंतु) राम ने उसको बाण के साथ वापस भेज दिया।

कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारै। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारै॥
निफल होहिं रावन सर कैसें। खल के सकल मनोरथ जैसें॥

वह करोड़ों चक्र और त्रिशूल चलाता है, परंतु प्रभु उन्हें बिना ही परिश्रम काटकर हटा देते हैं। रावण के बाण किस प्रकार निष्फल होते हैं, जैसे दुष्ट मनुष्य के सब मनोरथ!

तब सत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि॥
राम कृपा करि सूत उठावा। तब प्रभु परम क्रोध कहुँ पावा॥

तब उसने राम के सारथी को सौ बाण मारे। वह राम की जय पुकारकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। राम ने कृपा करके सारथी को उठाया। तब प्रभु अत्यंत क्रोध को प्राप्त हुए।

छं० - भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे॥
मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

युद्ध में शत्रु के विरुद्ध रघुनाथ क्रोधित हुए, तब तरकस में बाण कसमसाने लगे (बाहर निकलने को आतुर होने लगे)। उनके धनुष का अत्यंत प्रचंड शब्द (टंकार) सुनकर मनुष्यभक्षी सब राक्षस वातग्रस्त हो गए (अत्यंत भयभीत हो गए)। मंदोदरी का हृदय काँप उठा, समुद्र, कच्छप, पृथ्वी और पर्वत डर गए। दिशाओं के हाथी पृथ्वी को दाँतों से पकड़कर चिग्घाड़ने लगे। यह कौतुक देखकर देवता हँसे।

दो० - तानेउ चाप श्रवन लगि छाँड़े बिसिख कराल।
राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल॥ 91॥

धनुष को कान तक तानकर राम ने भयानक बाण छोड़े। राम के बाण समूह ऐसे चले मानो सर्प लहलहाते (लहराते) हुए जा रहे हों॥ 91॥

चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा॥
रथ बिभंजि हति केतु पताका। गर्जा अति अंतर बल थाका॥

बाण ऐसे चले मानो पंखवाले सर्प उड़ रहे हों। उन्होंने पहले सारथी और घोड़ों को मार डाला। फिर रथ को चूर-चूर करके ध्वजा और पताकाओं को गिरा दिया। तब रावण बड़े जोर से गरजा, पर भीतर से उसका बल थक गया था।

तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना। अस्त्र सस्त्र छाँड़ेसि बिधि नाना॥
बिफल होहिं सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसा के॥

तुरंत दूसरे रथ पर चढ़कर खिसियाकर उसने नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र छोड़े। उसके सब उद्योग वैसे ही निष्फल हो गए, जैसे परद्रोह में लगे हुए चित्तवाले मनुष्य के होते हैं।

तब रावन दस सूल चलावा। बाजि चारि महि मारि गिरावा॥
तुरग उठाइ कोपि रघुनायक। खैंचि सरासन छाँड़े सायक॥

तब रावण ने दस त्रिशूल चलाए और राम के चारों घोड़ों को मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया। घोड़ों को उठाकर रघुनाथ ने क्रोध करके धनुष खींचकर बाण छोड़े।

रावन सिर सरोज बनचारी। चलि रघुबीर सिलीमुख धारी॥
दस दस बान भाल दस मारे। निसरि गए चले रुधिर पनारे॥

रावण के सिररूपी कमल वन में विचरण करनेवाले रघुवीर के बाणरूपी भ्रमरों की पंक्ति चली। राम ने उसके दसों सिरों में दस-दस बाण मारे, जो आर-पार हो गए और सिरों से रक्त के पनाले बह चले।

स्रवत रुधिर धायउ बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु सर संधाना॥
तीस तीर रघुबीर पबारे। भुजन्हि समेत सीस महि पारे॥

रुधिर बहते हुए ही बलवान रावण दौड़ा। प्रभु ने फिर धनुष पर बाण संधान किया। रघुवीर ने तीस बाण मारे और बीसों भुजाओं समेत दसों सिर काटकर पृथ्वी पर गिरा दिए।

काटतहीं पुनि भए नबीने। राम बहोरि भुजा सिर छीने॥
प्रभु बहु बार बाहु सिर हए। कटत झटिति पुनि नूतन भए॥

(सिर और हाथ) काटते ही फिर नए हो गए। राम ने फिर भुजाओं और सिरों को काट गिराया। इस तरह प्रभु ने बहुत बार भुजाएँ और सिर काटे, परंतु काटते ही वे तुरंत फिर नए हो गए।

पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा। अति कौतुकी कोसलाधीसा॥
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहुँ अमित केतु अरु राहू॥

प्रभु बार-बार उसकी भुजा और सिरों को काट रहे हैं, क्योंकि कोसलपति राम बड़े कौतुकी हैं। आकाश में सिर और बाहु ऐसे छा गए हैं, मानो असंख्य केतु और राहु हों।

छं० - जनु राहु केतु अनेक नभ पथ स्रवत सोनित धावहीं।
रघुबीर तीर प्रचंड लागहिं भूमि गिरत न पावहीं॥
एक एक सर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुंतुद पोहहीं॥

मानो अनेकों राहु और केतु रुधिर बहाते हुए आकाश मार्ग से दौड़ रहे हों। रघुवीर के प्रचंड बाणों के (बार-बार) लगने से वे पृथ्वी पर गिरने नहीं पाते। एक-एक बाण से समूह-के-समूह सिर छिदे हुए आकाश में उड़ते ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो सूर्य की किरणें क्रोध करके जहाँ-तहाँ राहुओं को पिरो रही हों।

दो० - जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि होहिं अपार।
सेवत बिषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार॥ 92॥

जैसे-जैसे प्रभु उसके सिरों को काटते हैं, वैसे-ही-वैसे वे अपार होते जाते हैं। जैसे विषयों का सेवन करने से काम (उन्हें भोगने की इच्छा) दिन-प्रतिदिन नया-नया बढ़ता जाता है॥ 92॥

दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी। बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी॥
गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी। धायउ दसहु सरासन तानी॥

सिरों की बाढ़ देखकर रावण को अपना मरण भूल गया और बड़ा गहरा क्रोध हुआ। वह महान अभिमानी मूर्ख गरजा और दसों धनुषों को तानकर दौड़ा।

समर भूमि दसकंधर कोप्यो। बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो॥

दंड एक रथ देखि न परेउ। जनु निहार महुँ दिनकर दुरेऊ॥

रणभूमि में रावण ने क्रोध किया और बाण बरसाकर रघुनाथ के रथ को ढँक दिया। एक दंड (घड़ी) तक रथ दिखलाई न पड़ा, मानो कुहरे में सूर्य छिप गया हो।

हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा। तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा॥
सर निवारि रिपु के सिर काटे। ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे॥

जब देवताओं ने हाहाकार किया, तब प्रभु ने क्रोध करके धनुष उठाया और शत्रु के बाणों को हटाकर उन्होंने शत्रु के सिर काटे और उनसे दिशा, विदिशा, आकाश और पृथ्वी सबको पाट दिया।

काटे सिर नभ मारग धावहिं। जय जय धुनि करि भय उपजावहिं॥
कहँ लछिमन सुग्रीव कपीसा। कहँ रघुबीर कोसलाधीसा॥

काटे हुए सिर आकाश मार्ग से दौड़ते हैं और जय-जय की ध्वनि करके भय उत्पन्न करते हैं। 'लक्ष्मण और वानरराज सुग्रीव कहाँ हैं? कोसलपति रघुवीर कहाँ हैं?'

छं॰ - कहँ रामु कहि सिर निकर धाए देखि मर्कट भजि चले।
संधानि धनु रघुबंसमनि हँसि सरन्हि सिर बेधे भले॥
सिर मालिका कर कालिका गहि बृंद बृंदन्हि बहु मिलीं।
करि रुधिर सरि मज्जनु मनहुँ संग्राम बट पूजन चलीं॥

'राम कहाँ हैं?' यह कहकर सिरों के समूह दौड़े, उन्हें देखकर वानर भाग चले। तब धनुष संधान करके रघुकुलमणि राम ने हँसकर बाणों से उन सिरों को भलीभाँति बेध डाला। हाथों में मुंडों की मालाएँ लेकर बहुत-सी कालिकाएँ झुंड-की-झुंड मिलकर इकट्ठी हुईं और वे रुधिर की नदी में स्नान करके चलीं। मानो संग्रामरूपी वटवृक्ष की पूजा करने जा रही हों।

दो॰ - पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ छाँड़ी सक्ति प्रचंड।
चली बिभीषन सन्मुख मनहुँ काल कर दंड॥ 93॥

फिर रावण ने क्रोधित होकर प्रचंड शक्ति छोड़ी। वह विभीषण के सामने ऐसी चली जैसे काल (यमराज) का दंड हो॥ 93॥

आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा॥

तुरत बिभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला॥

अत्यंत भयानक शक्ति को आती देख और यह विचार कर कि मेरा प्रण शरणागत के दुःख का नाश करना है, राम ने तुरंत ही विभीषण को पीछे कर लिया और सामने होकर वह शक्ति स्वयं सह ली।

लागि सक्ति मुरुछा कछु भई। प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई॥
देखि बिभीषन प्रभु श्रम पायो। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो॥

शक्ति लगने से उन्हें कुछ मूर्च्छा हो गई। प्रभु ने तो यह लीला की, पर देवताओं को व्याकुलता हुई। प्रभु को श्रम (शारीरिक कष्ट) प्राप्त हुआ देखकर विभीषण क्रोधित हो हाथ में गदा लेकर दौड़े।

रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे। तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे॥
सादर सिव कहुँ सीस चढ़ाए। एक एक के कोटिन्ह पाए॥

(और बोले -) अरे अभागे! मूर्ख, नीच दुर्बुद्धि! तूने देवता, मनुष्य, मुनि, नाग सभी से विरोध किया। तूने आदर सहित शिव को सिर चढ़ाए। इसी से एक-एक के बदले में करोड़ों पाए।

तेहि कारन खल अब लगि बाँच्यो। अब तव कालु सीस पर नाच्यो॥
राम बिमुख सठ चहसि संपदा। अस कहि हनेसि माझ उर गदा॥

उसी कारण से अरे दुष्ट! तू अब तक बचा है, (किंतु) अब काल तेरे सिर पर नाच रहा है। अरे मूर्ख! तू राम विमुख होकर संपत्ति (सुख) चाहता है? ऐसा कहकर विभीषण ने रावण की छाती के बीचों-बीच गदा मारी।

छं० - उर माझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि पर्‌यो।
दस बदन सोनित स्रवत पुनि संभारि धायो रिस भर्‌यो॥
द्वौ भिरे अतिबल मल्लजुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै।
रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु घालि नहिं ता कहुँ गनै॥

बीच छाती में कठोर गदा की घोर और कठिन चोट लगते ही वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके दसों मुखों से रुधिर बहने लगा; वह अपने को फिर संभालकर क्रोध में भरा हुआ दौड़ा। दोनों अत्यंत बलवान योद्धा भिड़ गए और मल्लयुद्ध में एक-दूसरे के विरुद्ध होकर

मारने लगे। रघुवीर के बल से गर्वित विभीषण उसको (रावण-जैसे जगद्विजयी योद्धा को) पासंग के बराबर भी नहीं समझते।

दो० - उमा बिभीषनु रावनहि सन्मुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यों श्री रघुबीर प्रभाउ॥ 94॥

(शिव कहते हैं -) हे उमा! विभीषण क्या कभी रावण के सामने आँख उठाकर भी देख सकता था? परंतु अब वही काल के समान उससे भिड़ रहा है। यह श्री रघुवीर का ही प्रभाव है॥ 94॥

देखा श्रमित बिभीषनु भारी। धायउ हनूमान गिरि धारी॥
रथ तुरंग सारथी निपाता। हृदय माझ तेहि मारेसि लाता॥

विभीषण को बहुत ही थका हुआ देखकर हनुमान पर्वत धारण किए हुए दौड़े। उन्होंने उस पर्वत से रावण के रथ, घोड़े और सारथी का संहार कर डाला और उसके सीने पर लात मारी।

ठाढ़ रहा अति कंपित गाता। गयउ बिभीषनु जहँ जनत्राता॥
पुनि रावन कपि हतेउ पचारी। चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी॥

रावण खड़ा रहा, पर उसका शरीर अत्यंत काँपने लगा। विभीषण वहाँ गए, जहाँ सेवकों के रक्षक राम थे। फिर रावण ने ललकारकर हनुमान को मारा। वे पूँछ फैलाकर आकाश में चले गए।

गहिसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना॥
लरत अकास जुगल सम जोधा। एकहि एकु हनत करि क्रोधा॥

रावण ने पूँछ पकड़ ली, हनुमान उसको साथ लिए ऊपर उड़े। फिर लौटकर महाबलवान हनुमान उससे भिड़ गए। दोनों समान योद्धा आकाश में लड़ते हुए एक-दूसरे को क्रोध करके मारने लगे।

सोहहिं नभ छल बल बहु करहीं। कज्जलगिरि सुमेरु जनु लरहीं॥
बुधि बल निसिचर परइ न पारयो। तब मारुतसुत प्रभु संभार्‌यो॥

दोनों बहुत-से छल-बल करते हुए आकाश में ऐसे शोभित हो रहे हैं मानो कज्जलगिरि

और सुमेरु पर्वत लड़ रहे हों। जब बुद्धि और बल से राक्षस गिराए न गिरा तब मारुति हनुमान ने प्रभु को स्मरण किया।

छं॰ - संभारि श्रीरघुबीर धीर पचारि कपि रावनु हन्यो।
महि परत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहुँ जय जय भन्यो॥
हनुमंत संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले।
रन मत्त रावन सकल सुभट प्रचंड भुज बल दलमले॥

श्री रघुवीर का स्मरण करके धीर हनुमान ने ललकारकर रावण को मारा। वे दोनों पृथ्वी पर गिरते और फिर उठकर लड़ते हैं; देवताओं ने दोनों की 'जय-जय' पुकारी। हनुमान पर संकट देखकर वानर-भालू क्रोधातुर होकर दौड़े, किंतु रण-मद-माते रावण ने सब योद्धाओं को अपनी प्रचंड भुजाओं के बल से कुचल और मसल डाला।

दो॰ - तब रघुबीर पचारे धाए कीस प्रचंड।
कपि बल प्रबल देखि तेहिं कीन्ह प्रगट पाषंड॥ 95॥

तब रघुवीर के ललकारने पर प्रचंड वीर वानर दौड़े। वानरों के प्रबल दल को देखकर रावण ने माया प्रकट की॥ 95॥

अंतरधान भयउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका॥
रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते॥

क्षणभर के लिए वह अदृश्य हो गया। फिर उस दुष्ट ने अनेकों रूप प्रकट किए। रघुनाथ की सेना में जितने रीछ-वानर थे, उतने ही रावण जहाँ-तहाँ (चारों ओर) प्रकट हो गए।

देखे कपिन्ह अमित दससीसा। जहँ तहँ भजे भालु अरु कीसा॥
भागे बानर धरहिं न धीरा। त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा॥

वानरों ने अपरिमित रावण देखे। भालू और वानर सब जहाँ-तहाँ (इधर-उधर) भाग चले। वानर धीरज नहीं धरते। हे लक्ष्मण! हे रघुवीर! बचाइए, बचाइए, यों पुकारते हुए वे भागे जा रहे हैं।

दहँ दिसि धावहिं कोटिन्ह रावन। गर्जहिं घोर कठोर भयावन॥
डरे सकल सुर चले पराई। जय कै आस तजहु अब भाई॥

दसों दिशाओं में करोड़ों रावण दौड़ते हैं और घोर, कठोर भयानक गर्जन कर रहे हैं। सब देवता डर गए और ऐसा कहते हुए भाग चले कि हे भाई! अब जय की आशा छोड़ दो!

सब सुर जिते एक दसकंधर। अब बहु भए तकहु गिरि कंदर॥
रहे बिरंचि संभु मुनि ग्यानी। जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी॥

एक ही रावण ने सब देवताओं को जीत लिया था, अब तो बहुत-से रावण हो गए हैं। इससे अब पहाड़ की गुफाओं का आश्रय लो (अर्थात उनमें छिप रहो)। वहाँ ब्रह्मा, शंभु और ज्ञानी मुनि ही डटे रहे, जिन्होंने प्रभु की कुछ महिमा जानी थी।

छं॰ - जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन्ह रिपु माने फुरे।
चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे॥
हनुमंत अंगद नील नल अतिबल लरत रन बाँकुरे।
मर्दहिं दसानन कोटि कोटिन्ह कपट भू भट अंकुरे॥

जो प्रभु का प्रताप जानते थे, वे निर्भय डटे रहे। वानरों ने शत्रुओं (बहुत-से रावणों) को सच्चा ही मान लिया। (इससे) सब वानर-भालू विचलित होकर 'हे कृपालु! रक्षा कीजिए' (यों पुकारते हुए) भय से व्याकुल होकर भाग चले। अत्यंत बलवान रणबाँकुरे हनुमान, अंगद, नील और नल लड़ते हैं और कपटरूपी भूमि से अंकुर की भाँति उपजे हुए कोटि-कोटि योद्धा रावणों को मसलते हैं।

दो॰ - सुर बानर देखे बिकल हँस्यो कोसलाधीस।
सजि सारंग एक सर हते सकल दससीस॥ 96॥

देवताओं और वानरों को विकल देखकर कोसलपति राम हँसे और शार्गंधनुष पर एक बाण चढ़ाकर (माया के बने हुए) सब रावणों को मार डाला॥ 96॥

प्रभु छन महुँ माया सब काटी। जिमि रबि उएँ जाहिं तम फाटी॥
रावनु एकु देखि सुर हरषे। फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरषे॥

प्रभु ने क्षणभर में सब माया काट डाली। जैसे सूर्य के उदय होते ही अंधकार की राशि फट जाती है (नष्ट हो जाती है)। अब एक ही रावण को देखकर देवता हर्षित हुए और उन्होंने लौटकर प्रभु पर बहुत-से पुष्प बरसाए।

भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे। फिरे एक एकन्ह तब टेरे॥
प्रभु बलु पाइ भालु कपि धाए। तरल तमकि संजुग महि आए॥

रघुनाथ ने भुजा उठाकर सब वानरों को लौटाया। तब वे एक-दूसरे को पुकार-पुकार कर लौट आए। प्रभु का बल पाकर रीछ-वानर दौड़ पड़े। जल्दी से कूदकर वे रणभूमि में आ गए।

अस्तुति करत देवतन्हि देखें। भयउँ एक मैं इन्ह के लेखें॥
सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। अस कहि कोपि गगन पर धायल॥

देवताओं को राम की स्तुति करते देख कर रावण ने सोचा, मैं इनकी समझ में एक हो गया। (परंतु इन्हें यह पता नहीं कि इनके लिए मैं एक ही बहुत हूँ) और कहा - अरे मूर्खो! तुम तो सदा के ही मेरे मरैल (मेरी मार खानेवाले) हो। ऐसा कहकर वह क्रोध करके आकाश पर (देवताओं की ओर) दौड़ा।

हाहाकार करत सुर भागे। खलहु जाहु कहँ मोरें आगे॥
देखि बिकल सुर अंगद धायो। कूदि चरन गहि भूमि गिरायो॥

देवता हाहाकार करते हुए भागे। (रावण ने कहा -) दुष्टो! मेरे आगे से कहाँ जा सकोगे? देवताओं को व्याकुल देखकर अंगद दौड़े और उछलकर रावण का पैर पकड़कर (उन्होंने) उसको पृथ्वी पर गिरा दिया।

छं॰ - गहि भूमि पार्‌यो लात मार्‌यो बालिसुत प्रभु पहिं गयो।
संभारि उठि दसकंठ घोर कठोर रव गर्जत भयो॥
करि दाप चाप चढ़ाइ दस संधानि सर बहु बरषई।
किए सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरषई॥

उसे पकड़कर पृथ्वी पर गिराकर लात मारकर बालिपुत्र अंगद प्रभु के पास चले गए। रावण सँभलकर उठा और बड़े भंयकर कठोर शब्द से गरजने लगा। वह दर्प करके दसों धनुष चढ़ाकर उन पर बहुत-से बाण संधान करके बरसाने लगा। उसने सब योद्धाओं को घायल और भय से व्याकुल कर दिया और अपना बल देखकर वह हर्षित होने लगा।

दो॰ - तब रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप।

काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप॥ 97॥

तब रघुनाथ ने रावण के सिर, भुजाएँ, बाण और धनुष काट डाले। पर वे फिर बहुत बढ़ गए, जैसे तीर्थ में किए हुए पाप बढ़ जाते हैं (कई गुना अधिक भयानक फल उत्पन्न करते हैं)!॥ 97॥

सिर भुज बाढ़ि देखि रिपु केरी। भालु कपिन्ह रिस भई घनेरी॥
मरत न मूढ़ कटेहुँ भुज सीसा। धाए कोपि भालु भट कीसा॥

शत्रु के सिर और भुजाओं की बढ़ती देखकर रीछ-वानरों को बहुत ही क्रोध हुआ। यह मूर्ख भुजाओं के और सिरों के कटने पर भी नहीं मरता, (ऐसा कहते हुए) भालू और वानर योद्धा क्रोध करके दौड़े।

बालितनय मारुति नल नीला। बानरराज दुबिद बलसीला॥
बिटप महीधर करहिं प्रहारा। सोइ गिरि तरु गहि कपिन्ह सो मारा॥

बालिपुत्र अंगद, मारुति हनुमान, नल, नील, वानरराज सुग्रीव और द्विविद आदि बलवान उस पर वृक्ष और पर्वतों का प्रहार करते हैं। वह उन्हीं पर्वतों और वृक्षों को पकड़कर वानरों को मारता है।

एक नखन्हि रिपु बपुष बिदारी। भागि चलहिं एक लातन्ह मारी।
तब नल नील सिरन्हि चढ़ि गयऊ। नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ॥

कोई एक वानर नखों से शत्रु के शरीर को फाड़कर भाग जाते हैं, तो कोई उसे लातों से मारकर। तब नल और नील रावण के सिरों पर चढ़ गए और नखों से उसके ललाट को फाड़ने लगे।

रुधिर देखि बिषाद उर भारी। तिन्हहि धरन कहुँ भुजा पसारी॥
गहे न जाहिं करन्हि पर फिरहीं। जनु जुग मधुप कमल बन चरहीं॥

खून देखकर उसे हृदय में बड़ा दुःख हुआ। उसने उनको पकड़ने के लिए हाथ फैलाए, पर वे पकड़ में नहीं आते, हाथों के ऊपर-ऊपर ही फिरते हैं मानो दो भौंरे कमलों के वन में विचरण कर रहे हों।

कोपि कूदि द्वौ धरेसि बहोरी। महि पटकत भजे भुजा मरोरी॥

पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हे। सरन्हि मारि घायल कपि कीन्हे॥

तब उसने क्रोध करके उछलकर दोनों को पकड़ लिया। पृथ्वी पर पटकते समय वे उसकी भुजाओं को मरोड़कर भाग छूटे। फिर उसने क्रोध करके हाथों में दसों धनुष लिए और वानरों को बाणों से मारकर घायल कर दिया।

हनुमदादि मुरुछित करि बंदर। पाइ प्रदोष हरष दसकंधर॥
मुरुछित देखि सकल कपि बीरा। जामवंत धायउ रनधीरा॥

हनुमान आदि सब वानरों को मूर्च्छित करके और संध्या का समय पाकर रावण हर्षित हुआ। समस्त वानर-वीरों को मूर्च्छित देखकर रणधीर जाम्बवान दौड़े।

संग भालु भूधर तरु धारी। मारन लगे पचारि पचारी॥
भयउ क्रुद्ध रावन बलवाना। गहि पद महि पटकइ भट नाना॥

जाम्बवान के साथ जो भालू थे, वे पर्वत और वृक्ष धारण किए रावण को ललकार-ललकार कर मारने लगे। बलवान रावण क्रोधित हुआ और पैर पकड़-पकड़कर वह अनेकों योद्धाओं को पृथ्वी पर पटकने लगा।

देखि भालुपति निज दल घाता। कोपि माझ उर मारेसि लाता॥

जाम्बवान ने अपने दल का विध्वंस देखकर क्रोध करके रावण की छाती में लात मारी।

छं० - उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ ते महि परा।
गहि भालु बीसहुँ कर मनहुँ कमलन्हि बसे निसि मधुकरा॥
मुरुछित बिलोकि बहोरि पद हति भालुपति प्रभु पहिं गयो॥
निसि जानि स्यंदन घालि तेहि तब सूत जतनु करय भयो॥

छाती में लात का प्रचंड आघात लगते ही रावण व्याकुल होकर रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसने बीसों हाथों में भालूओं को पकड़ रखा था। (ऐसा जान पड़ता था) मानो रात्रि के समय भौंरे कमलों में बसे हुए हों। उसे मूर्च्छित देखकर, फिर लात मारकर ऋक्षराज जाम्बवान प्रभु के पास चले। रात्रि जानकर सारथी रावण को रथ में डालकर उसे होश में लाने का उपाय करने लगा।

दो० - मुरुछा बिगत भालु कपि सब आए प्रभु पास।

निसिचर सकल रावनहि घेरि रहे अति त्रास॥ 98॥

मूर्च्छा दूर होने पर सब रीछ-वानर प्रभु के पास आए। उधर सब राक्षसों ने बहुत ही भयभीत होकर रावण को घेर लिया॥ 98॥

तेही निसि सीता पहिं जाई। त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई॥
सिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी। सीता उर भइ त्रास घनेरी॥

उसी रात त्रिजटा ने सीता के पास जाकर उन्हें सब कथा कह सुनाई। शत्रु के सिर और भुजाओं की बढ़ती का संवाद सुनकर सीता के हृदय में बड़ा भय हुआ।

मुख मलीन उपजी मन चिंता। त्रिजटा सन बोली तब सीता॥
होइहि कहा कहसि किन माता। केहि बिधि मरिहि बिस्व दुःखदाता॥

(उनका) मुख उदास हो गया, मन में चिंता उत्पन्न हो गई। तब सीता त्रिजटा से बोलीं - हे माता! बताती क्यों नहीं? क्या होगा? संपूर्ण विश्व को दुःख देनेवाला यह किस प्रकार मरेगा?

रघुपति सर सिर कटेहुँ न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई॥
मोर अभाग्य जिआवत ओही। जेहिं हौं हरि पद कमल बिछोही॥

रघुनाथ के बाणों से सिर कटने पर भी नहीं मरता। विधाता सारे चरित्र विपरीत (उलटे) ही कर रहा है। (सच बात तो यह है कि) मेरा दुर्भाग्य ही उसे जिला रहा है, जिसने मुझे भगवान के चरणकमलों से अलग कर दिया है।

जेहिं कृत कपट कनक मृग झूठा। अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा॥
जेहिं बिधि मोहि दुःख दुसह सहाए। लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए॥

जिसने कपट का झूठा स्वर्ण मृग बनाया था, वही दैव अब भी मुझ पर रूठा हुआ है, जिस विधाता ने मुझसे दुःसह दुःख सहन कराए और लक्ष्मण को कड़वे वचन कहलाए,

रघुपति बिरह सबिष सर भारी। तकि तकि मार बार बहु मारी॥
ऐसेहुँ दुःख जो राख मम प्राना। सोइ बिधि ताहि जिआव न आना॥

जो रघुनाथ के विरहरूपी बड़े विषैले बाणों से तक-तककर मुझे बहुत बार मारकर, अब भी

मार रहा है; और ऐसे दुःख में भी जो मेरे प्राणों को रख रहा है, वही विधाता उस (रावण) को जिला रहा है, दूसरा कोई नहीं।

बहु बिधि कर बिलाप जानकी। करि करि सुरति कृपानिधान की॥
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर सर लागत मरइ सुरारी॥

कृपानिधान राम की याद कर-करके जानकी बहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं। त्रिजटा ने कहा - हे राजकुमारी! सुनो, देवताओं का शत्रु रावण हृदय में बाण लगते ही मर जाएगा।

प्रभु ताते उर हतइ न तेही। एहि के हृदयँ बसति बैदेही॥

परंतु प्रभु उसके हृदय में बाण इसलिए नहीं मारते कि इसके हृदय में जानकी (आप) बसती हैं।

छं० - एहि के हृदयँ बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है॥
सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटाँ कहा।
अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहि सुंदरि तजहि संसय महा॥

(वे यही सोचकर रह जाते हैं कि) इसके हृदय में जानकी का निवास है, जानकी के हृदय में मेरा निवास है और मेरे उदर में अनेकों भुवन हैं। अतः रावण के हृदय में बाण लगते ही सब भुवनों का नाश हो जाएगा। यह वचन सुनकर सीता के मन में अत्यंत हर्ष और विषाद हुआ देखकर त्रिजटा ने फिर कहा - हे सुंदरी! महान संदेह का त्याग कर दो; अब सुनो, शत्रु इस प्रकार मरेगा -

दो० - काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान।
तब रावनहि हृदय महुँ मरिहहिं रामु सुजान॥ 99॥

सिरों के बार-बार काटे जाने से जब वह व्याकुल हो जाएगा और उसके हृदय से तुम्हारा ध्यान छूट जाएगा, तब सुजान (अंतर्यामी) राम रावण के हृदय में बाण मारेंगे॥ 99॥

अस कहि बहुत भाँति समुझाई। पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई॥
राम सुभाउ सुमिरि बैदेही। उपजी बिरह बिथा अति तेही॥

ऐसा कहकर और सीता को बहुत प्रकार से समझाकर फिर त्रिजटा अपने घर चली गई।

राम के स्वभाव का स्मरण करके जानकी को अत्यंत विरह व्यथा उत्पन्न हुई।

निसिहि ससिहि निंदति बहु भाँति। जुग सम भई सिराति न राती॥
करति बिलाप मनहिं मन भारी। राम बिरहँ जानकी दुखारी॥

वे रात्रि की और चंद्रमा की बहुत प्रकार से निंदा कर रही हैं (और कह रही हैं -) रात युग के समान बड़ी हो गई, वह बीतती ही नहीं। जानकी राम के विरह में दुःखी होकर मन ही मन भारी विलाप कर रही हैं।

जब अति भयउ बिरह उर दाहू। फरकेउ बाम नयन अरु बाहू॥
सगुन बिचारि धरी मन धीरा। अब मिलिहहिं कृपाल रघुबीरा॥

जब विरह के मारे हृदय में दारुण दाह हो गया, तब उनका बायाँ नेत्र और बाहु फड़क उठे। शकुन समझकर उन्होंने मन में धैर्य धारण किया कि अब कृपालु रघुवीर अवश्य मिलेंगे।

इहाँ अर्धनिसि रावनु जागा। निज सारथि सन खीझन लागा।
सठ रनभूमि छड़ाइसि मोही। धिग धिग अधम मंदमति तोही॥

यहाँ आधी रात को रावण (मूर्च्छा से) जगा और अपने सारथी पर रुष्ट होकर कहने लगा - अरे मूर्ख! तूने मुझे रणभूमि से अलग कर दिया। अरे अधम! अरे मंदबुद्धि! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है!

तेहिं पद गहि बहु बिधि समुझावा। भोरु भएँ रथ चढ़ि पुनि धावा॥
सुनि आगवनु दसानन केरा। कपि दल खरभर भयउ घनेरा॥

सारथी ने चरण पकड़कर रावण को बहुत प्रकार से समझाया। सबेरा होते ही वह रथ पर चढ़कर फिर दौड़ा। रावण का आना सुनकर वानरों की सेना में बड़ी खलबली मच गई।

जहँ तहँ भूधर बिटप उपारी। धाए कटकटाइ भट भारी॥

वे भारी योद्धा जहाँ-तहाँ से पर्वत और वृक्ष उखाड़कर (क्रोध से) दाँत कटकटाकर दौड़े।

छं० - धाए जो मर्कट बिकट भालु कराल कर भूधर धरा।
अति कोप करहिं प्रहार मारत भजि चले रजनीचरा॥
बिचलाइ दल बलवंत कीसन्ह घेरि पुनि रावनु लियो।

चहुँ दिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिदारि तन ब्याकुल कियो॥

विकट और विकराल वानर-भालू हाथों में पर्वत लिए दौड़े। वे अत्यंत क्रोध करके प्रहार करते हैं। उनके मारने से राक्षस भाग चले। बलवान वानरों ने शत्रु की सेना को विचलित करके फिर रावण को घेर लिया। चारों ओर से चपेटे मारकर और नखों से शरीर विदीर्ण कर वानरों ने उसको व्याकुल कर दिया॥

दो० - देखि महा मर्कट प्रबल रावन कीन्ह बिचार।
अंतरहित होइ निमिष महुँ कृत माया बिस्तार॥ 100॥

वानरों को बड़ा ही प्रबल देखकर रावण ने विचार किया और अंतर्धान होकर क्षणभर में उसने माया फैलाई॥ 100॥

छं० - जब कीन्ह तेहिं पाषंड। भए प्रगट जंतु प्रचंड॥
बेताल भूत पिसाच। कर धरें धनु नाराच॥

जब उसने पाखंड (माया) रचा, तब भयंकर जीव प्रकट हो गए। बेताल, भूत और पिशाच हाथों में धनुष-बाण लिए प्रकट हुए!

जोगिनि गहें करबाल। एक हाथ मनुज कपाल॥
करि सद्य सोनित पान। नाचहिं करहिं बहु गान॥

योगिनियाँ एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में मनुष्य की खोपड़ी लिए ताजा खून पीकर नाचने और बहुत तरह के गीत गाने लगीं।

धरु मारु बोलहिं घोर। रहि पूरि धुनि चहुँ ओर॥
मुख बाइ धावहिं खान। तब लगे कीस परान॥

वे 'पकड़ो, मारो' आदि घोर शब्द बोल रही हैं। चारों ओर (सब दिशाओं में) यह ध्वनि भर गई। वे मुख फैलाकर खाने दौड़ती हैं। तब वानर भागने लगे।

जहँ जाहिं मर्कट भागि। तहँ बरत देखहिं आगि॥
भए बिकल बानर भालु। पुनि लाग बरषै बालु॥

वानर भागकर जहाँ भी जाते हैं, वहीं आग जलती देखते हैं। वानर-भालू व्याकुल हो गए।

फिर रावण बालू बरसाने लगा।

जहँ तहँ थकित करि कीस। गर्जेउ बहुरि दससीस॥
लछिमन कपीस समेत। भए सकल बीर अचेत॥

वानरों को जहाँ-तहाँ थकित (शिथिल) कर रावण फिर गरजा। लक्ष्मण और सुग्रीव सहित सभी वीर अचेत हो गए।

हा राम हा रघुनाथ। कहि सुभट मीजहिं हाथ॥
ऐहि बिधि सकल बल तोरि। तेहिं कीन्ह कपट बहोरि॥

हा राम! हा रघुनाथ! पुकारते हुए श्रेष्ठ योद्धा अपने हाथ मलते (पछताते) हैं। इस प्रकार सब का बल तोड़कर रावण ने फिर दूसरी माया रची।

प्रगटेसि बिपुल हनुमान। धाए गहे पाषान॥
तिन्ह रामु घेरे जाइ। चहुँ दिसि बरूथ बनाइ॥

उसने बहुत-से हनुमान प्रकट किए, जो पत्थर लिए दौड़े। उन्होंने चारों ओर दल बनाकर राम को जा घेरा।

मारहु धरहु जनि जाइ। कटकटहिं पूँछ उठाइ॥
दहँ दिसि लँगूर बिराज। तेहिं मध्य कोसलराज॥

वे पूँछ उठाकर कटकटाते हुए पुकारने लगे, 'मारो, पकड़ो, जाने न पावे'। उनके लंगूर (पूँछ) दसों दिशाओं में शोभा दे रहे हैं और उनके बीच में कोसलराज राम हैं।

छं० - तेहिं मध्य कोसलराज सुंदर स्याम तन सोभा लही।
जनु इंद्रधनुष अनेक की बर बारि तुंग तमालही॥
प्रभु देखि हरष बिषाद उर सुर बदत जय जय जय करी।
रघुबीर एकहिं तीर कोपि निमेष महुँ माया हरी॥

उनके बीच में कोसलराज का सुंदर श्याम शरीर ऐसी शोभा पा रहा है, मानो ऊँचे तमाल वृक्ष के लिए अनेक इंद्रधनुषों की श्रेष्ठ बाड़ (घेरा) बनाई गई हो। प्रभु को देखकर देवता हर्ष और विषादयुक्त हृदय से 'जय, जय, जय' ऐसा बोलने लगे। तब रघुवीर ने क्रोध करके

एक ही बाण में निमेषमात्र में रावण की सारी माया हर ली।

माया बिगत कपि भालु हरषे बिटप गिरि गहि सब फिरे।
सर निकर छाड़े राम रावन बाहु सिर पुनि महि गिरे॥
श्रीराम रावन समर चरित अनेक कल्प जो गावहीं।
सत सेष सारद निगम कबि तेउ तदपि पार न पावहीं॥

माया दूर हो जाने पर वानर-भालू हर्षित हुए और वृक्ष तथा पर्वत ले-लेकर सब लौट पड़े। राम ने बाणों के समूह छोड़े, जिनसे रावण के हाथ और सिर फिर कट-कटकर पृथ्वी पर गिर पड़े। श्री राम और रावण के युद्ध का चरित्र यदि सैकड़ों शेष, सरस्वती, वेद और कवि अनेक कल्पों तक गाते रहें, तो भी उसका पार नहीं पा सकते।

दो० - ताके गुन गन कछु कहे जड़मति तुलसीदास।
जिमि निज बल अनुरूप ते माछी उड़इ अकास॥ 101(क)॥

उसी चरित्र के कुछ गुणगण मंद बुद्धि तुलसीदास ने कहे हैं, जैसे मक्खी भी अपने पुरुषार्थ के अनुसार आकाश में उड़ती है॥ 101(क)॥

काटे सिर भुज बार बहु मरत न भट लंकेस।
प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध मुनि ब्याकुल देखि कलेस॥ 101(ख)॥

सिर और भुजाएँ बहुत बार काटी गईं। फिर भी वीर रावण मरता नहीं। प्रभु तो खेल कर रहे हैं; परंतु मुनि, सिद्ध और देवता उस क्लेश को देखकर (प्रभु को क्लेश पाते समझकर) व्याकुल हैं॥ 101(ख)॥

काटत बढ़हिं सीस समुदाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥
मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेषा। राम बिभीषन तन तब देखा॥

काटते ही सिरों का समूह बढ़ जाता है, जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ता है। शत्रु मरता नहीं और परिश्रम बहुत हुआ। तब राम ने विभीषण की ओर देखा।

उमा काल मर जाकीं ईछा। सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा॥
सुनु सरबग्य चराचर नायक। प्रनतपाल सुर मुनि सुखदायक॥

(शिव कहते हैं -) हे उमा! जिसकी इच्छा मात्र से काल भी मर जाता है, वही प्रभु सेवक

की प्रीति की परीक्षा ले रहे हैं। (विभीषण ने कहा -) हे सर्वज्ञ! हे चराचर के स्वामी! हे शरणागत के पालन करनेवाले! हे देवता और मुनियों को सुख देनेवाले! सुनिए -

नाभिकुंड पियूष बस याकें। नाथ जिअत रावनु बल ताकें॥
सुनत बिभीषन बचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला॥

इसके नाभिकुंड में अमृत का निवास है। हे नाथ! रावण उसी के बल पर जीता है। विभीषण के वचन सुनते ही कृपालु रघुनाथ ने हर्षित होकर हाथ में विकराल बाण लिए।

असुभ होन लागे तब नाना। रोवहिं खर सृकाल बहु स्वाना॥
बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतू॥

उस समय नाना प्रकार के अपशकुन होने लगे। बहुत-से गदहे, सियार और कुत्ते रोने लगे। जगत के दुःख (अशुभ) को सूचित करने के लिए पक्षी बोलने लगे। आकाश में जहाँ-तहाँ केतु (पुच्छल तारे) प्रकट हो गए।

दस दिसि दाह होन अति लागा। भयउ परब बिनु रबि उपरागा॥
मंदोदरि उर कंपति भारी। प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी॥

दसों दिशाओं में अत्यंत दाह होने लगा (आग लगने लगी)। बिना ही पर्व (योग) के सूर्यग्रहण होने लगा। मंदोदरी का हृदय बहुत काँपने लगा। मूर्तियाँ नेत्र-मार्ग से जल बहाने लगीं।

छं० - प्रतिमा रुदहिं पबिपात नभ अति बात बह डोलति मही।
बरषहिं बलाहक रुधिर कच रज असुभ अति सक को कही॥
उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जए।
सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भए॥

मूर्तियाँ रोने लगीं, आकाश से वज्रपात होने लगे, अत्यंत प्रचंड वायु बहने लगी, पृथ्वी हिलने लगी, बादल रक्त, बाल और धूल की वर्षा करने लगे। इस प्रकार इतने अधिक अमंगल होने लगे कि उनको कौन कह सकता है? अपरिमित उत्पात देखकर आकाश में देवता व्याकुल होकर जय-जय पुकार उठे। देवताओं को भयभीत जानकर कृपालु रघुनाथ धनुष पर बाण संधान करने लगे।

दो० - खैंचि सरासन श्रवन लगि छाड़े सर एकतीस।
रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस॥ 102॥

कानों तक धनुष को खींचकर रघुनाथ ने इकतीस बाण छोड़े। वे राम के बाण ऐसे चले मानो कालसर्प हों॥ 102॥

सायक एक नाभि सर सोषा। अपर लगे भुज सिर करि रोषा॥
लै सिर बाहु चले नाराचा। सिर भुज हीन रुंड महि नाचा॥

एक बाण ने नाभि के अमृत कुंड को सोख लिया। दूसरे तीस बाण कोप करके उसके सिरों और भुजाओं में लगे। बाण सिरों और भुजाओं को लेकर चले। सिरों और भुजाओं से रहित रुंड (धड़) पृथ्वी पर नाचने लगा।

धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब सर हति प्रभु कृत दुइ खंडा॥
गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ रामु रन हतौं पचारी॥

धड़ प्रचंड वेग से दौड़ता है, जिससे धरती धँसने लगी। तब प्रभु ने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिए। मरते समय रावण बड़े घोर शब्द से गरजकर बोला - राम कहाँ हैं? मैं ललकारकर उनको युद्ध में मारूँ!

डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर॥
धरनि परेउ द्वौ खंड बढ़ाई। चापि भालु मर्कट समुदाई॥

रावण के गिरते ही पृथ्वी हिल गई। समुद्र, नदियाँ, दिशाओं के हाथी और पर्वत क्षुब्ध हो उठे। रावण धड़ के दोनों टुकड़ों को फैलाकर भालू और वानरों के समुदाय को दबाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा।

मंदोदरि आगें भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा॥
प्रबिसे सब निषंग महुँ जाई। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाई॥

रावण की भुजाओं और सिरों को मंदोदरी के सामने रखकर रामबाण वहाँ चले, जहाँ जगदीश्वर राम थे। सब बाण जाकर तरकस में प्रवेश कर गए। यह देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाए।

तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन॥

जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा॥

रावण का तेज प्रभु के मुख में समा गया। यह देखकर शिव और ब्रह्मा हर्षित हुए। ब्रह्मांड भर में जय-जय की ध्वनि भर गई। प्रबल भुजदंडोंवाले रघुवीर की जय हो।

बरषहिं सुमन देव मुनि बृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा॥

देवता और मुनियों के समूह फूल बरसाते हैं और कहते हैं - कृपालु की जय हो, मुकुंद की जय हो, जय हो!

छं० - जय कृपा कंद मुकुंद द्वंद हरन सरन सुखप्रद प्रभो।
खल दल बिदारन परम कारन कारुनीक सदा बिभो॥
सुर सुमन बरषहिं हरष संकुल बाज दुंदुभि गहगही।
संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु सोभा लही॥

हे कृपा के कंद! हे मोक्षदाता मुकुंद! हे (राग-द्वेष, हर्ष-शोक, जन्म-मृत्यु आदि) द्वंद्वों के हरनेवाले! हे शरणागत को सुख देनेवाले प्रभो! हे दुष्ट दल को विदीर्ण करनेवाले! हे कारणों के भी परम कारण! हे सदा करुणा करनेवाले! हे सर्वव्यापक विभो! आपकी जय हो। देवता हर्ष में भरे हुए पुष्प बरसाते हैं, घमाघम नगाड़े बज रहे हैं। रणभूमि में राम के अंगों ने बहुत-से कामदेवों की शोभा प्राप्त की।

सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं॥
भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु रायमुनीं तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने॥

सिर पर जटाओं का मुकुट है, जिसके बीच-बीच में अत्यंत मनोहर पुष्प शोभा दे रहे हैं। मानो नीले पर्वत पर बिजली के समूह सहित नक्षत्र सुशोभित हो रहे हैं। राम अपने भुजदंडों से बाण और धनुष फिरा रहे हैं। शरीर पर रुधिर के कण अत्यंत सुंदर लगते हैं। मानो तमाल के वृक्ष पर बहुत-सी ललमुनियाँ चिड़ियाँ अपने महान सुख में मग्न हुई निश्चल बैठी हों।

दो० - कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु अभय किए सुर बृंद।

भालु कीस सब हरषे जय सुख धाम मुकुंद॥ 103॥

प्रभु राम ने कृपादृष्टि की वर्षा करके देव समूह को निर्भय कर दिया। वानर-भालू सब हर्षित हुए और सुखधाम मुकुंद की जय हो, ऐसा पुकारने लगे॥ 103॥

पति सिर देखत मंदोदरी। मुरुछित बिकल धरनि खसि परी॥
जुबति बृंद रोवत उठि धाईं। तेहि उठाइ रावन पहिं आईं॥

पति के सिर देखते ही मंदोदरी व्याकुल और मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ी। स्त्रियाँ रोती हुई उठ दौड़ीं और उस (मंदोदरी) को उठाकर रावण के पास आईं।

पति गति देखि ते करहिं पुकारा। छूटे कच नहिं बपुष सँभारा॥
उर ताड़ना करहिं बिधि नाना। रोवत करहिं प्रताप बखाना॥

पति की दशा देखकर वे पुकार-पुकारकर रोने लगीं। उनके बाल खुल गए, देह की संभाल नहीं रही। वे अनेकों प्रकार से छाती पीटती हैं और रोती हुई रावण के प्रताप का बखान करती हैं।

तव बल नाथ डोल नित धरनी। तेज हीन पावक ससि तरनी॥
सेष कमठ सहि सकहिं न भारा। सो तनु भूमि परेउ भरि छारा॥

(वे कहती हैं -) हे नाथ! तुम्हारे बल से पृथ्वी सदा काँपती रहती थी। अग्नि, चंद्रमा और सूर्य तुम्हारे सामने तेजहीन थे। शेष और कच्छप भी जिसका भार नहीं सह सकते थे, वही तुम्हारा शरीर आज धूल में भरा हुआ पृथ्वी पर पड़ा है!

बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सन्मुख धरि काहुँ न धीरा॥
भुजबल जितेहु काल जम साईं। आजु परेहु अनाथ की नाईं॥

वरुण, कुबेर, इंद्र और वायु, इनमें से किसी ने भी रण में तुम्हारे सामने धैर्य धारण नहीं किया। हे स्वामी! तुमने अपने भुजबल से काल और यमराज को भी जीत लिया था। वही तुम आज अनाथ की तरह पड़े हो।

जगत बिदित तुम्हारि प्रभुताई। सुत परिजन बल बरनि न जाई॥
राम बिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा॥

तुम्हारी प्रभुता जगत भर में प्रसिद्ध है। तुम्हारे पुत्रों और कुटुंबियों के बल का हाय! वर्णन ही नहीं हो सकता। राम के विमुख होने से तुम्हारी ऐसी दुर्दशा हुई कि आज कुल में कोई रोनेवाला भी न रह गया।

तव बस बिधि प्रचंड सब नाथा। सभय दिसिप नित नावहिं माथा॥
अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं। राम बिमुख यह अनुचित नाहीं॥

हे नाथ! विधाता की सारी सृष्टि तुम्हारे वश में थी। लोकपाल सदा भयभीत होकर तुमको मस्तक नवाते थे, किंतु हाय! अब तुम्हारे सिर और भुजाओं को गीदड़ खा रहे हैं। राम विमुख के लिए ऐसा होना अनुचित भी नहीं है (अर्थात उचित ही है)।

काल बिबस पति कहा न माना। अग जग नाथु मनुज करि जाना॥

हे पति! काल के पूर्ण वश में होने से तुमने (किसी का) कहना नहीं माना और चराचर के नाथ परमात्मा को मनुष्य करके जाना।

छं० - जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं।
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करुनामयं॥
आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।
तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥

दैत्यरूपी वन को जलाने के लिए अग्निस्वरूप साक्षात हरि को तुमने मनुष्य करके जाना। शिव और ब्रह्मा आदि देवता जिनको नमस्कार करते हैं, उन करुणामय भगवान को हे प्रियतम! तुमने नहीं भजा। तुम्हारा यह शरीर जन्म से ही दूसरों से द्रोह करने में तत्पर तथा पाप समूहमय रहा! इतने पर भी जिन निर्विकार ब्रह्म राम ने तुमको अपना धाम दिया, उनको मैं नमस्कार करती हूँ।

दो० - अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन।
जोगि बृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान॥ 104॥

अहह! नाथ! रघुनाथ के समान कृपा का समुद्र दूसरा कोई नहीं है, जिन भगवान ने तुमको वह गति दी, जो योगिसमाज को भी दुर्लभ है॥ 104॥

मंदोदरी बचन सुनि काना। सुर मुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना॥

अज महेस नारद सनकादी। जे मुनिबर परमारथबादी॥

मंदोदरी के वचन कानों में सुनकर देवता, मुनि और सिद्ध सभी ने सुख माना। ब्रह्मा, महादेव, नारद और सनकादि तथा और भी जो परमार्थवादी (परमात्मा के तत्त्व को जानने और कहनेवाले) श्रेष्ठ मुनि थे।

भरि लोचन रघुपतिहि निहारी। प्रेम मगन सब भए सुखारी॥
रुदन करत देखीं सब नारी। गयउ बिभीषनु मनु दुःख भारी॥

वे सभी रघुनाथ को नेत्र भरकर निरखकर प्रेममग्न हो गए और अत्यंत सुखी हुए। अपने घर की सब स्त्रियों को रोती हुई देखकर विभीषण के मन में बड़ा भारी दुःख हुआ और वे उनके पास गए।

बंधु दसा बिलोकि दुःख कीन्हा। तब प्रभु अनुजहि आयसु दीन्हा॥
लछिमन तेहि बहु बिधि समुझायो। बहुरि बिभीषन प्रभु पहिं आयो॥

उन्होंने भाई की दशा देखकर दुःख किया। तब प्रभु राम ने छोटे भाई को आज्ञा दी (कि जाकर विभीषण को धैर्य बँधाओ)। लक्ष्मण ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया। तब विभीषण प्रभु के पास लौट आए।

कृपादृष्टि प्रभु ताहि बिलोका। करहु क्रिया परिहरि सब सोका॥
कीन्हि क्रिया प्रभु आयसु मानी। बिधिवत देस काल जियँ जानी॥

प्रभु ने उनको कृपापूर्ण दृष्टि से देखा (और कहा -) सब शोक त्यागकर रावण की अंत्येष्टि क्रिया करो। प्रभु की आज्ञा मानकर और हृदय में देश और काल का विचार करके विभीषण ने विधिपूर्वक सब क्रिया की।

दो० - मंदोदरी आदि सब देह तिलांजलि ताहि।
भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माहि॥ 105॥

मंदोदरी आदि सब स्त्रियाँ उसे (रावण को) तिलांजलि देकर मन में रघुनाथ के गुणसमूहों का वर्णन करती हुई महल को गईं॥ 105॥

आइ बिभीषन पुनि सिरु नायो। कृपासिंधु तब अनुज बोलायो॥
तुम्ह कपीस अंगद नल नीला। जामवंत मारुति नयसीला॥

सब मिलि जाहु बिभीषन साथा। सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा॥
पिता बचन मैं नगर न आवउँ। आपु सरिस कपि अनुज पठावउँ॥

सब क्रिया-कर्म करने के बाद विभीषण ने आकर पुनः सिर नवाया। तब कृपा के समुद्र राम ने छोटे भाई लक्ष्मण को बुलाया। रघुनाथ ने कहा कि तुम, वानरराज सुग्रीव, अंगद, नल, नील जाम्बवान और मारुति सब नीतिनिपुण लोग मिलकर विभीषण के साथ जाओ और उन्हें राजतिलक कर दो। पिता के वचनों के कारण मैं नगर में नहीं आ सकता। पर अपने ही समान वानर और छोटे भाई को भेजता हूँ।

तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना। कीन्ही जाइ तिलक की रचना॥
सादर सिंहासन बैठारी। तिलक सारि अस्तुति अनुसारी॥

प्रभु के वचन सुनकर वानर तुरंत चले और उन्होंने जाकर राजतिलक की सारी व्यवस्था की। आदर के साथ विभीषण को सिंहासन पर बैठाकर राजतिलक किया और स्तुति की।

जोरि पानि सबहीं सिर नाए। सहित बिभीषन प्रभु पहिं आए॥
तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हे। कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हे॥

सभी ने हाथ जोड़कर उनको सिर नवाए। तदनंतर विभीषण सहित सब प्रभु के पास आए। तब रघुवीर ने वानरों को बुला लिया और प्रिय वचन कहकर सबको सुखी किया।

छं० - किए सुखी कहि बानी सुधा सम बल तुम्हारें रिपु हयो।
पायो बिभीषन राज तिहुँ पुर जसु तुम्हारो नित नयो॥
मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहैं।
संसार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥

भगवान ने अमृत के समान यह वाणी कहकर सबको सुखी किया कि तुम्हारे ही बल से यह प्रबल शत्रु मारा गया और विभीषण ने राज्य पाया। इसके कारण तुम्हारा यश तीनों लोकों में नित्य नया बना रहेगा। जो लोग मेरे सहित तुम्हारी शुभ कीर्ति को परम प्रेम के साथ गाएँगे, वे बिना ही परिश्रम इस अपार संसार का पार पा जाएँगे।

दो० - प्रभु के बचन श्रवन सुनि नहिं अघाहिं कपि पुंज।
बार बार सिर नावहिं गहहिं सकल पद कंज॥ 106॥

प्रभु के वचन कानों से सुनकर वानर-समूह तृप्त नहीं होते। वे सब बार-बार सिर नवाते हैं और चरण कमलों को पकड़ते हैं॥ 106॥

पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना। लंका जाहु कहेउ भगवाना॥
समाचार जानकिहि सुनावहु। तासु कुसल लै तुम्ह चलि आवहु॥

फिर प्रभु ने हनुमान को बुला लिया। भगवान ने कहा – तुम लंका जाओ। जानकी को सब समाचार सुनाओ और उसका कुशल-समाचार लेकर तुम चले आओ।

तब हनुमंत नगर महुँ आए। सुनि निसिचरीं निसाचर धाए॥
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही। जनकसुता देखाइ पुनि दीन्ही॥

तब हनुमान नगर में आए। यह सुनकर राक्षस दौड़े। उन्होंने बहुत प्रकार से हनुमान की पूजा की और फिर जानकी को दिखला दिया।

दूरिहि ते प्रनाम कपि कीन्हा। रघुपति दूत जानकीं चीन्हा॥
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता। कुसल अनुज कपि सेन समेता॥

हनुमान ने (सीता को) दूर से ही प्रणाम किया। जानकी ने पहचान लिया कि यह वही रघुनाथ का दूत है (और पूछा -) हे तात! कहो, कृपा के धाम मेरे प्रभु छोटे भाई और वानरों की सेना सहित कुशल से तो हैं?

सब बिधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीत्यो दससीसा॥
अबिचल राजु बिभीषन पायो। सुनि कपि बचन हरष उर छायो॥

(हनुमान ने कहा -) हे माता! कोसलपति राम सब प्रकार से सकुशल हैं। उन्होंने संग्राम में दस सिरवाले रावण को जीत लिया है और विभीषण ने अचल राज्य प्राप्त किया है। हनुमान के वचन सुनकर सीता के हृदय में हर्ष छा गया।

छं॰ - अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा॥
सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं।

रन जीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं॥

जानकी के हृदय में अत्यंत हर्ष हुआ। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (आनंदाश्रुओं का) जल छा गया। वे बार-बार कहती हैं – हे हनुमान! मैं तुझे क्या दूँ? इस वाणी (समाचार) के समान तीनों लोकों में और कुछ भी नहीं है! (हनुमान ने कहा -) हे माता! सुनिए, मैंने आज निःसंदेह सारे जगत का राज्य पा लिया, जो मैं रण में शत्रु को जीतकर भाई सहित निर्विकार राम को देख रहा हूँ।

दो० - सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहुँ हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत॥ 107॥

(जानकी ने कहा -) हे पुत्र! सुन, समस्त सद्‌गुण तेरे हृदय में बसें और हे हनुमान! शेष (लक्ष्मण) सहित कोसलपति प्रभु सदा तुझ पर प्रसन्न रहें॥ 107॥

अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता। देखौं नयन स्याम मृदु गाता॥
तब हनुमान राम पहिं जाई। जनकसुता कै कुसल सुनाई॥

हे तात! अब तुम वही उपाय करो, जिससे मैं इन नेत्रों से प्रभु के कोमल श्याम शरीर के दर्शन करूँ। तब राम के पास जाकर हनुमान ने जानकी का कुशल समाचार सुनाया।

सुनि संदेसु भानुकुलभूषन। बोलि लिए जुबराज बिभीषन॥
मारुतसुत के संग सिधावहु। सादर जनकसुतहि लै आवहु॥

सूर्य कुलभूषण राम ने संदेश सुनकर युवराज अंगद और विभीषण को बुला लिया (और कहा -) पवनपुत्र हनुमान के साथ जाओ और जानकी को आदर के साथ ले आओ।

तुरतहिं सकल गए जहँ सीता। सेवहिं सब निसिचरीं बिनीता॥
बेगि बिभीषन तिन्हहि सिखायो। तिन्ह बहु बिधि मज्जन करवायो॥

वे सब तुरंत ही वहाँ गए, जहाँ सीता थीं। सब-की-सब राक्षसियाँ नम्रतापूर्वक उनकी सेवा कर रही थीं। विभीषण ने शीघ्र ही उन लोगों को समझा दिया। उन्होंने बहुत प्रकार से सीता को स्नान कराया,

बहु प्रकार भूषन पहिराए। सिबिका रुचिर साजि पुनि ल्याए॥
ता पर हरषि चढ़ी बैदेही। सुमिरि राम सुखधाम सनेही॥

बहुत प्रकार के गहने पहनाए और फिर वे एक सुंदर पालकी सजाकर ले आए। सीता

प्रसन्न होकर सुख के धाम प्रियतम राम का स्मरण करके उस पर हर्ष के साथ चढ़ीं।

बेतपानि रच्छक चहु पासा। चले सकल मन परम हुलासा॥
देखन भालु कीस सब आए। रच्छक कोपि निवारन धाए॥

चारों ओर हाथों में छड़ी लिए रक्षक चले। सबके मनों में परम उल्लास (उमंग) है। रीछ-वानर सब दर्शन करने के लिए आए, तब रक्षक क्रोध करके उनको रोकने दौड़े।

कह रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहि सखा पयादें आनहु॥
देखहुँ कपि जननी की नाईं। बिहसि कहा रघुनाथ गोसाईं॥

रघुवीर ने कहा – हे मित्र! मेरा कहना मानो और सीता को पैदल ले आओ, जिससे वानर उसको माता की तरह देखें। गोसाईं राम ने हँसकर ऐसा कहा।

सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे। नभ ते सुरन्ह सुमन बहु बरषे॥
सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी॥

प्रभु के वचन सुनकर रीछ-वानर हर्षित हो गए। आकाश से देवताओं ने बहुत-से फूल बरसाए। सीता (के असली स्वरूप) को पहले अग्नि में रखा था। अब भीतर के साक्षी भगवान उनको प्रकट करना चाहते हैं।

दो० - तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानीं सब लागीं करै बिषाद॥ 108॥

इसी कारण करुणा के भंडार राम ने लीला से कुछ कड़े वचन कहे, जिन्हे सुनकर सब राक्षसियाँ विषाद करने लगीं॥ 108॥

प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम बचन पुनीता॥
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी॥

प्रभु के वचनों को सिर चढ़ाकर मन, वचन और कर्म से पवित्र सीता बोलीं - हे लक्ष्मण! तुम मेरे धर्म के नेगी (धर्माचरण में सहायक) बनो और तुरंत आग तैयार करो।

सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिबेक धरम निति सानी॥

लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ॥

सीता की विरह, विवेक, धर्म और नीति से सनी हुई वाणी सुनकर लक्ष्मण के नेत्रों में जल भर आया। वे दोनों हाथ जोड़े खड़े रहे। वे भी प्रभु से कुछ कह नहीं सकते।

देखि राम रुख लछिमन धाए। पावक प्रगटि काठ बहु लाए॥
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदयँ हरष नहिं भय कछु तेही॥

फिर राम का रुख देखकर लक्ष्मण दौड़े और आग तैयार करके बहुत-सी लकड़ी ले आए। अग्नि को खूब बढ़ी हुई देखकर जानकी के हृदय में हर्ष हुआ। उन्हें भय कुछ भी नहीं हुआ।

जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना॥

(सीता ने लीला से कहा -) यदि मन, वचन और कर्म से मेरे हृदय में रघुवीर को छोड़कर दूसरी गति (अन्य किसी का आश्रय) नहीं है, तो अग्निदेव जो सबके मन की गति जानते हैं, (मेरे भी मन की गति जानकर) मेरे लिए चंदन के समान शीतल हो जाएँ।

छं० - श्रीखंड सम पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस बंदित चरन रति अति निर्मली॥
प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे।
प्रभु चरित काहुँ न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे॥

प्रभु राम का स्मरण करके और जिनके चरण महादेव के द्वारा वंदित हैं तथा जिनमें सीता की अत्यंत विशुद्ध प्रीति है, उन कोसलपति की जय बोलकर जानकी ने चंदन के समान शीतल हुई अग्नि में प्रवेश किया। प्रतिबिंब (सीता की छायामूर्ति) और उनका लौकिक कलंक प्रचंद अग्नि में जल गए। प्रभु के इन चरित्रों को किसी ने नहीं जाना। देवता, सिद्ध और मुनि सब आकाश में खड़े देखते हैं।

धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग बिदित जो।
जिमि छीरसागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो॥
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।

नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली॥

तब अग्नि ने शरीर धारण करके वेदों में और जगत में प्रसिद्ध वास्तविक श्री (सीता) का हाथ पकड़ उन्हें राम को वैसे ही समर्पित किया जैसे क्षीरसागर ने विष्णु भगवान को लक्ष्मी समर्पित की थी। वे सीता राम के वाम भाग में विराजित हुईं। उनकी उत्तम शोभा अत्यंत ही सुंदर है। मानो नए खिले हुए नीले कमल के पास सोने के कमल की कली सुशोभित हो।

दो० - बरषहिं सुमन हरषि सुर बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किंनर सुरबधू नाचहिं चढ़ीं बिमान॥ 109(क)॥

देवता हर्षित होकर फूल बरसाने लगे। आकाश में डंके बजने लगे। किन्नर गाने लगे। विमानों पर चढ़ी अप्सराएँ नाचने लगीं॥ 109(क)॥

जनकसुता समेत प्रभु सोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हरषे जय रघुपति सुख सार॥ 109(ख)॥

जानकी सहित प्रभु राम की अपरिमित और अपार शोभा देखकर रीछ-वानर हर्षित हो गए और सुख के सार रघुनाथ की जय बोलने लगे॥ 109(ख)॥

तब रघुपति अनुसासन पाई। मातलि चलेउ चरन सिरु नाई॥
आए देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु परमारथी॥

तब रघुनाथ की आज्ञा पाकर इंद्र का सारथी मातलि चरणों में सिर नवाकर (रथ लेकर) चला गया। तदनंतर सदा के स्वार्थी देवता आए। वे ऐसे वचन कह रहे हैं मानो बड़े परमार्थी हों।

दीन बंधु दयाल रघुराया। देव कीन्हि देवन्ह पर दाया॥
बिस्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अघ गयउ कुमारगगामी॥

हे दीनबंधु! हे दयालु रघुराज! हे परमदेव! आपने देवताओं पर बड़ी दया की। विश्व के द्रोह में तत्पर यह दुष्ट, कामी और कुमार्ग पर चलनेवाला रावण अपने ही पाप से नष्ट हो गया।

तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एकरस सहज उदासी॥

अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघसक्ति करुनामय॥

आप समरूप, ब्रह्म, अविनाशी, नित्य, एकरस, स्वभाव से ही उदासीन (शत्रु-मित्र-भावरहित), अखंड, निर्गुण (मायिक गुणों से रहित), अजन्मे, निष्पाप, निर्विकार, अजेय, अमोघशक्ति (जिनकी शक्ति कभी व्यर्थ नहीं जाती) और दयामय हैं।

मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपु धरी॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो। नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो॥

आपने ही मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन और परशुराम के शरीर धारण किए। हे नाथ! जब-जब देवताओं ने दुःख पाया, तब-तब अनेकों शरीर धारण करके आपने ही उनका दुःख नाश किया।

यह खल मलिन सदा सुरद्रोही। काम लोभ मद रत अति कोही॥
अधम सिरोमनि तव पद पावा। यह हमरें मन बिसमय आवा॥

यह दुष्ट मलिन हृदय, देवताओं का नित्य शत्रु, काम, लोभ और मद के परायण तथा अत्यंत क्रोधी था। ऐसे अधमों के शिरोमणि ने भी आपका परम पद पा लिया। इस बात का हमारे मन में आश्चर्य हुआ।

हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ रत प्रभु भगति बिसारी॥
भव प्रबाहँ संतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे॥

हम देवता श्रेष्ठ अधिकारी होकर भी स्वार्थपरायण हो आपकी भक्ति को भुलाकर निरंतर भवसागर के प्रवाह (जन्म-मृत्यु के चक्र) में पड़े हैं। अब हे प्रभो! हम आपकी शरण में आ गए हैं, हमारी रक्षा कीजिए।

दो० - करि बिनती सुर सिद्ध सब रहे जहँ तहँ कर जोरि।
अति सप्रेम तन पुलकि बिधि अस्तुति करत बहोरि॥ 110॥

विनती करके देवता और सिद्ध सब जहाँ-के-तहाँ हाथ जोड़े खड़े रहे। तब अत्यंत प्रेम से पुलकित शरीर होकर ब्रह्मा स्तुति करने लगे - ॥ 110॥

छं० - जय राम सदा सुखधाम हरे। रघुनायक सायक चाप धरे॥

भव बारन दारन सिंह प्रभो। गुन सागर नागर नाथ बिभो॥

हे नित्य सुखधाम और (दुखों को हरनेवाले) हरि! हे धनुष-बाण धारण किए हुए रघुनाथ! आपकी जय हो। हे प्रभो! आप भव (जन्म-मरण) रूपी हाथी को विदीर्ण करने के लिए सिंह के समान हैं। हे नाथ! हे सर्वव्यापक! आप गुणों के समुद्र और परम चतुर हैं।

तन काम अनेक अनूप छबी। गुन गावत सिद्ध मुनींद्र कबी॥
जसु पावन रावन नाग महा। खगनाथ जथा करि कोप गहा॥

आपके शरीर की अनेकों कामदेवों के समान, परंतु अनुपम छवि है। सिद्ध, मुनीश्वर और कवि आपके गुण गाते रहते हैं। आपका यश पवित्र है। आपने रावणरूपी महासर्प को गरुड़ की तरह क्रोध करके पकड़ लिया।

जन रंजन भंजन सोक भयं। गतक्रोध सदा प्रभु बोधमयं॥
अवतार उदार अपार गुनं। महि भार बिभंजन ग्यानघनं॥

हे प्रभो! आप सेवकों को आनंद देनेवाले, शोक और भय का नाश करनेवाले, सदा क्रोधरहित और नित्य ज्ञान स्वरूप हैं। आपका अवतार श्रेष्ठ, अपार दिव्य गुणोंवाला, पृथ्वी का भार उतारनेवाला और ज्ञान का समूह है।

अज ब्यापकमेकमनादि सदा। करुनाकर राम नमामि मुदा॥
रघुबंस बिभूषन दूषन हा। कृत भूप बिभीषन दीन रहा॥

(किंतु अवतार लेने पर भी) आप नित्य, अजन्मा, व्यापक, एक (अद्‌वितीय) और अनादि हैं। हे करुणा की खान राम! मैं आपको बड़े ही हर्ष के साथ नमस्कार करता हूँ। हे रघुकुल के आभूषण! हे दूषण राक्षस को मारनेवाले तथा समस्त दोषों को हरनेवाले! विभिषण दीन था, उसे आपने (लंका का) राजा बना दिया।

गुन ध्यान निधान अमान अजं। नित राम नमामि बिभुं बिरजं॥
भुजदंड प्रचंड प्रताप बलं। खल बृंद निकंद महा कुसलं॥

हे गुण और ज्ञान के भंडार! हे मानरहित! हे अजन्मा, व्यापक और मायिक विकारों से रहित राम! मैं आपको नित्य नमस्कार करता हूँ। आपके भुजदंडों का प्रताप और बल प्रचंड है। दुष्ट समूह के नाश करने में आप परम निपुण हैं।

बिनु कारन दीन दयाल हितं। छबि धाम नमामि रमा सहितं॥
भव तारन कारन काज परं। मन संभव दारुन दोष हरं॥

हे बिना ही कारण दीनों पर दया तथा उनका हित करनेवाले और शोभा के धाम! मैं जानकी सहित आपको नमस्कार करता हूँ। आप भवसागर से तारनेवाले हैं, कारणरूपा प्रकृति और कार्यरूप जगत दोनों से परे हैं और मन से उत्पन्न होनेवाले कठिन दोषों को हरनेवाले हैं।

सर चाप मनोहर त्रोन धरं। जलजारुन लोचन भूपबरं॥
सुख मंदिर सुंदर श्रीरमनं। मद मार मुधा ममता समनं॥

आप मनोहर बाण, धनुष और तरकस धारण करनेवाले हैं। (लाल) कमल के समान रक्तवर्ण आपके नेत्र हैं। आप राजाओं में श्रेष्ठ, सुख के मंदिर, सुंदर, (लक्ष्मी) के वल्लभ तथा मद (अहंकार), काम और झूठी ममता के नाश करनेवाले हैं।

अनवद्य अखंड न गोचर गो। सब रूप सदा सब होइ न गो॥
इति बेद बदंति न दंतकथा। रबि आतप भिन्नमभिन्न जथा॥

आप अनिंद्य या दोषरहित हैं, अखंड हैं, इंद्रियों के विषय नहीं हैं। सदा सर्वरूप होते हुए भी आप वह सब कभी हुए ही नहीं, ऐसा वेद कहते हैं। यह (कोई) दंतकथा (कोरी कल्पना) नहीं है। जैसे सूर्य और सूर्य का प्रकाश अलग-अलग हैं और अलग नहीं भी हैं, वैसे ही आप भी संसार से भिन्न तथा अभिन्न दोनों ही हैं।

कृतकृत्य बिभो सब बानर ए। निरखंति तवानन सादर ए॥
धिग जीवन देव सरीर हरे। तव भक्ति बिना भव भूलि परे॥

हे व्यापक प्रभो! ये सब वानर कृतार्थ रूप हैं, जो आदरपूर्वक ये आपका मुख देख रहे हैं। (और) हे हरे! हमारे (अमर) जीवन और देव (दिव्य) शरीर को धिक्कार है, जो हम आपकी भक्ति से रहित हुए संसार में (सांसारिक विषयों में) भूले पड़े हैं।

अब दीनदयाल दया करिऐ। मति मोरि बिभेदकरी हरिऐ॥
जेहि ते बिपरीत क्रिया करिऐ। दुःख सो सुख मानि सुखी चरिऐ॥

हे दीनदयालु! अब दया कीजिए और मेरी उस विभेद उत्पन्न करनेवाली बुद्धि को हर

लीजिए, जिससे मैं विपरीत कर्म करता हूँ और जो दुःख है, उसे सुख मानकर आनंद से विचरता हूँ।

खल खंडन मंडन रम्य छमा। पद पंकज सेवित संभु उमा॥
नृप नायक दे बरदानमिदं। चरनांबुज प्रेमु सदा सुभदं॥

आप दुष्टों का खंडन करनेवाले और पृथ्वी के रमणीय आभूषण हैं। आपके चरण-कमल शिव-पार्वती द्वारा सेवित हैं। हे राजाओं के महाराज! मुझे यह वरदान दीजिए कि आपके चरण कमलों में सदा मेरा कल्याणदायक (अनन्य) प्रेम हो।

दो० - बिनय कीन्ह चतुरानन प्रेम पुलक अति गात।
सोभासिंधु बिलोकत लोचन नहीं अघात॥ 111॥

इस प्रकार ब्रह्मा ने अत्यंत प्रेम-पुलकित शरीर से विनती की। शोभा के समुद्र राम के दर्शन करते-करते उनके नेत्र तृप्त ही नहीं होते थे॥ 111॥

तेहि अवसर दसरथ तहँ आए। तनय बिलोकि नयन जल छाए॥
अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा। आसिरबाद पिताँ तब दीन्हा॥

उसी समय दशरथ वहाँ आए। पुत्र (राम) को देखकर उनके नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल छा गया। छोटे भाई लक्ष्मण सहित प्रभु ने उनकी वंदना की और तब पिता ने उनको आशीर्वाद दिया।

तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ। जीत्यों अजय निसाचर राऊ॥
सुनि सुत बचन प्रीति अति बाढ़ी। नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी॥

(राम ने कहा -) हे तात! यह सब आपके पुण्यों का प्रभाव है, जो मैंने अजेय राक्षसराज को जीत लिया। पुत्र के वचन सुनकर उनकी प्रीति अत्यंत बढ़ गई। नेत्रों में जल छा गया और रोमावली खड़ी हो गई।

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना॥
ताते उमा मोच्छ नहिं पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो॥

रघुनाथ ने पहले के (जीवित काल के) प्रेम को विचारकर, पिता की ओर देखकर ही उन्हें अपने स्वरूप का दृढ़ ज्ञान करा दिया। हे उमा! दशरथ ने भेद-भक्ति में अपना मन

लगाया था, इसी से उन्होंने (कैवल्य) मोक्ष नहीं पाया।

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥
बार बार करि प्रभुहि प्रनामा। दसरथ हरषि गए सुरधामा॥

सगुण स्वरूप की उपासना करनेवाले भक्त इस प्रकार मोक्ष लेते भी नहीं। उनको राम अपनी भक्ति देते हैं। प्रभु को (इष्टबुद्धि से) बार-बार प्रणाम करके दशरथ हर्षित होकर देवलोक को चले गए।

दो० - अनुज जानकी सहित प्रभु कुसल कोसलाधीस।
सोभा देखि हरषि मन अस्तुति कर सुर ईस॥ 112॥

छोटे भाई लक्ष्मण और जानकी सहित परम कुशल प्रभु कोसलाधीश की शोभा देखकर देवराज इंद्र मन में हर्षित होकर स्तुति करने लगे - ॥ 112॥

छं० - जय राम सोभा धाम। दायक प्रनत बिश्राम॥
धृत त्रोन बर सर चाप। भुजदंड प्रबल प्रताप॥

शोभा के धाम, शरणागत को विश्राम देनेवाले, श्रेष्ठ तरकस, धनुष और बाण धारण किए हुए, प्रबल प्रतापी भुजदंडोंवाले राम की जय हो!

जय दूषनारि खरारि। मर्दन निसाचर धारि॥
यह दुष्ट मारेउ नाथ। भए देव सकल नाथ॥

हे खरदूषण के शत्रु और राक्षसों की सेना के मर्दन करनेवाले! आपकी जय हो! हे नाथ! आपने इस दुष्ट को मारा, जिससे सब देवता सनाथ (सुरक्षित) हो गए।

जय हरन धरनी भार। महिमा उदार अपार॥
जय रावनारि कृपाल। किए जातुधान बिहाल॥

हे भूमि का भार हरनेवाले! हे अपार श्रेष्ठ महिमावाले! आपकी जय हो। हे रावण के शत्रु! हे कृपालु! आपकी जय हो। आपने राक्षसों को बेहाल (तहस-नहस) कर दिया।

लंकेस अति बल गर्ब। किए बस्य सुर गंधर्ब॥

मुनि सिद्ध नर खग नाग। हठि पंथ सब कें लाग॥

लंकापति रावण को अपने बल का बहुत घमंड था। उसने देवता और गंधर्व सभी को अपने वश में कर लिया था और वह मुनि, सिद्ध, मनुष्य, पक्षी और नाग आदि सभी के हठपूर्वक (हाथ धोकर) पीछे पड़ गया था।

परद्रोह रत अति दुष्ट। पायो सो फलु पापिष्ट॥
अब सुनहु दीन दयाल। राजीव नयन बिसाल॥

वह दूसरों से द्रोह करने में तत्पर और अत्यंत दुष्ट था। उस पापी ने वैसा ही फल पाया। अब हे दीनों पर दया करनेवाले! हे कमल के समान विशाल नेत्रोंवाले! सुनिए।

मोहि रहा अति अभिमान। नहिं कोउ मोहि समान॥
अब देखि प्रभु पद कंज। गत मान प्रद दुःख पुंज॥

मुझे अत्यंत अभिमान था कि मेरे समान कोई नहीं है, पर अब प्रभु (आप) के चरण कमलों के दर्शन करने से दुःख-समूह का देनेवाला मेरा वह अभिमान जाता रहा।

कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अब्यक्त जेहि श्रुति गाव॥
मोहि भाव कोसल भूप। श्रीराम सगुन सरूप॥

कोई उन निर्गुन ब्रह्म का ध्यान करते हैं जिन्हें वेद अव्यक्त (निराकार) कहते हैं। परंतु हे श्री राम! मुझे तो आपका यह सगुण कोसलराज-स्वरूप ही प्रिय लगता है।

बैदेहि अनुज समेत। मम हृदयँ करहु निकेत॥
मोहि जानिऐ निज दास। दे भक्ति रमानिवास॥

जानकी और छोटे भाई लक्ष्मण सहित मेरे हृदय में अपना घर बनाइए। हे रमानिवास! मुझे अपना दास समझिए और अपनी भक्ति दीजिए।

छं० - दे भक्ति रमानिवास त्रास हरन सरन सुखदायकं।
सुख धाम राम नमामि काम अनेक छबि रघुनायकं॥
सुर बृंद रंजन द्वंद भंजन मनुजतनु अतुलितबलं।
ब्रह्मादि संकर सेब्य राम नमामि करुना कोमलं॥

हे रमानिवास! हे शरणागत के भय को हरनेवाले और उसे सब प्रकार का सुख देनेवाले! मुझे अपनी भक्ति दीजिए। हे सुख के धाम! हे अनेकों कामदेवों की छविवाले रघुकुल के स्वामी राम! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे देवसमूह को आनंद देनेवाले, (जन्म-मृत्यु, हर्ष-विषाद, सुख-दुःख आदि) द्वंद्वों के नाश करनेवाले, मनुष्य शरीरधारी, अतुलनीय बलवाले, ब्रह्मा और शिव आदि से सेवनीय, करुणा से कोमल राम! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

दो० - अब करि कृपा बिलोकि मोहि आयसु देहु कृपाल।
काह करौं सुनि प्रिय बचन बोले दीनदयाल॥ 113॥

हे कृपालु! अब मेरी ओर कृपा करके (कृपा दृष्टि से) देखकर आज्ञा दीजिए कि मैं क्या (सेवा) करूँ! इंद्र के ये प्रिय वचन सुनकर दीनदयालु राम बोले॥ 113॥

सुन सुरपति कपि भालु हमारे। परे भूमि निसिचरन्हि जे मारे॥
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना। सकल जिआउ सुरेस सुजाना॥

हे देवराज! सुनो, हमारे वानर-भालू, जिन्हें निशाचरों ने मार डाला है, पृथ्वी पर पड़े हैं। इन्होंने मेरे हित के लिए अपने प्राण त्याग दिए। हे सुजान देवराज! इन सबको जिला दो।

सुनु खगेस प्रभु कै यह बानी। अति अगाध जानहिं मुनि ग्यानी॥
प्रभु सक त्रिभुअन मारि जिआई। केवल सक्रहि दीन्हि बड़ाई॥

(काकभुशुंडि कहते हैं -) हे गरुड़! सुनिए प्रभु के ये वचन अत्यंत गहन (गूढ़) हैं। ज्ञानी मुनि ही इन्हें जान सकते हैं। प्रभु राम त्रिलोकी को मारकर जिला सकते हैं। यहाँ तो उन्होंने केवल इंद्र को बड़ाई दी है।

सुधा बरषि कपि भालु जियाए। हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए॥
सुधाबृष्टि भै दुहु दल ऊपर। जिए भालु कपि नहिं रजनीचर॥

इंद्र ने अमृत बरसाकर वानर-भालूओं को जिला दिया। सब हर्षित होकर उठे और प्रभु के पास आए। अमृत की वर्षा दोनों ही दलों पर हुई। पर रीछ-वानर ही जीवित हुए, राक्षस नहीं।

रामाकार भए तिन्ह के मन। मुक्त भए छूट भव बंधन॥

सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा। जिए सकल रघुपति कीं ईछा॥

क्योंकि राक्षस के मन तो मरते समय रामाकार हो गए थे। अत वे मुक्त हो गए, उनके भव-बंधन छूट गए। किंतु वानर और भालू तो सब देवांश (भगवान की लीला के परिकर) थे। इसलिए वे सब रघुनाथ की इच्छा से जीवित हो गए।

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुकुत निसाचर झारी॥
खल मल धाम काम रत रावन। गति पाई जो मुनिबर पाव न॥

राम के समान दीनों का हित करनेवाला कौन है? जिन्होंने सारे राक्षसों को मुक्त कर दिया! दुष्ट, पापों के घर और कामी रावण ने भी वह गति पाई जिसे श्रेष्ठ मुनि भी नहीं पाते।

दो० - सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर प्रभु पहिं आयउ संभु सुजान॥ 114(क)॥

फूलों की वर्षा करके सब देवता सुंदर विमानों पर चढ़-चढ़कर चले। तब सुअवसर जानकर सुजान शिव प्रभु राम के पास आए - ॥ 114(क)॥

परम प्रीति कर जोरि जुग नलिन नयन भरि बारि।
पुलकित तन गदगद गिराँ बिनय करत त्रिपुरारि॥ 114(ख)॥

और परम प्रेम से दोनों हाथ जोड़कर, कमल के समान नेत्रों में जल भरकर, पुलकित शरीर और गद्‌गद्‌ वाणी से त्रिपुरारी शिव विनती करने लगे - ॥ 114(ख)॥

छं० - मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक॥
मोह महा घन पटल प्रभंजन। संसय बिपिन अनल सुर रंजन॥

हे रघुकुल के स्वामी! सुंदर हाथों में श्रेष्ठ धनुष और सुंदर बाण धारण किए हुए आप मेरी रक्षा कीजिए। आप महामोहरूपी मेघसमूह के (उड़ाने के) लिए प्रचंड पवन हैं, संशयरूपी वन के (भस्म करने के) लिए अग्नि हैं और देवताओं को आनंद देनेवाले हैं।

अगुन सगुन गुन मंदिर सुंदर। भ्रम तम प्रबल प्रताप दिवाकर॥
काम क्रोध मद गज पंचानन। बसहु निरंतर जन मन कानन॥

आप निर्गुण, सगुण, दिव्य गुणों के धाम और परम सुंदर हैं। भ्रमरूपी अंधकार के (नाश के) लिए प्रबल प्रतापी सूर्य हैं। काम, क्रोध और मदरूपी हाथियों के (वध के) लिए सिंह के समान आप इस सेवक के मनरूपी वन में निरंतर वास कीजिए।

बिषय मनोरथ पुंज कंज बन। प्रबल तुषार उदार पार मन॥
भव बारिधि मंदर परमं दर। बारय तारय संसृति दुस्तर॥

विषयकामनाओं के समूहरूपी कमलवन के (नाश के) लिए आप प्रबल पाला हैं, आप उदार और मन से परे हैं। भवसागर (को मथने) के लिए आप मंदराचल पर्वत हैं। आप हमारे परम भय को दूर कीजिए और हमें दुस्तर संसार सागर से पार कीजिए।

स्याम गात राजीव बिलोचन। दीन बंधु प्रनतारति मोचन॥
अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अंतर॥
मुनि रंजन महि मंडल मंडन। तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन॥

हे श्यामसुंदर-शरीर! हे कमलनयन! हे दीनबंधु! हे शरणागत को दुःख से छुड़ानेवाले! हे राजा राम! आप छोटे भाई लक्ष्मण और जानकी सहित निरंतर मेरे हृदय के अंदर निवास कीजिए। आप मुनियों को आनंद देनेवाले, पृथ्वीमंडल के भूषण, तुलसीदास के प्रभु और भय का नाश करनेवाले हैं।

दो० - नाथ जबहिं कोसलपुरीं होइहि तिलक तुम्हार।
कृपासिंधु मैं आउब देखन चरित उदार॥ 115॥

हे नाथ! जब अयोध्यापुरी में आपका राजतिलक होगा, तब हे कृपासागर! मैं आपकी उदार लीला देखने आऊँगा॥ 115॥

करि बिनती जब संभु सिधाए। तब प्रभु निकट बिभीषनु आए॥
नाइ चरन सिरु कह मृदु बानी। बिनय सुनहु प्रभु सारँगपानी॥

जब शिव विनती करके चले गए, तब विभीषण प्रभु के पास आए और चरणों में सिर नवाकर कोमल वाणी से बोले - हे शार्ंगधनुष के धारण करनेवाले प्रभो! मेरी विनती सुनिए -

सकुल सदल प्रभु रावन मार्‌यो। पावन जस त्रिभुवन विस्तार्‌यो॥

दीन मलीन हीन मति जाती। मो पर कृपा कीन्हि बहु भाँती॥

आपने कुल और सेना सहित रावण का वध किया, त्रिभुवन में अपना पवित्र यश फैलाया और मुझ दीन, पापी, बुद्धिहीन और जातिहीन पर बहुत प्रकार से कृपा की।

अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे। मज्जनु करिअ समर श्रम छीजे॥
देखि कोस मंदिर संपदा। देहु कृपाल कपिन्ह कहुँ मुदा॥

अब हे प्रभु! इस दास के घर को पवित्र कीजिए और वहाँ चलकर स्नान कीजिए, जिससे युद्ध की थकावट दूर हो जाए। हे कृपालु! खजाना, महल और संपत्ति का निरीक्षण कर प्रसन्नतापूर्वक वानरों को दीजिए।

सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ। पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइअ॥
सुनत बचन मृदु दीनदयाला। सजल भए द्वौ नयन बिसाला॥

हे नाथ! मुझे सब प्रकार से अपना लीजिए और फिर हे प्रभो! मुझे साथ लेकर अयोध्यापुरी को पधारिए। विभीषण के कोमल वचन सुनते ही दीनदयालु प्रभु के दोनों विशाल नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया।

दो० - तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात॥ 116(क)॥

(राम ने कहा -) हे भाई! सुनो, तुम्हारा खजाना और घर सब मेरा ही है, यह सच बात है। पर भरत की दशा याद करके मुझे एक-एक पल कल्प के समान बीत रहा है॥ 116(क)॥

तापस बेष गात कृस जपत निरंतर मोहि।
देखौं बेगि सो जतनु करु सखा निहोरउँ तोहि॥ 116(ख)॥

तपस्वी के वेष में कृश (दुबले) शरीर से निरंतर मेरा नाम जप कर रहे हैं। हे सखा! वही उपाय करो जिससे मैं जल्दी-से-जल्दी उन्हें देख सकूँ। मैं तुमसे निहोरा (अनुरोध) करता हूँ॥ 116(ख)॥

बीतें अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर॥ 116(ग)॥

यदि अवधि बीत जाने पर जाता हूँ तो भाई को जीता न पाऊँगा। छोटे भाई भरत की प्रीति का स्मरण करके प्रभु का शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है॥ 166(ग)॥

करेहु कल्प भरि राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं।
पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं॥ 116(घ)॥

(राम ने फिर कहा -) हे विभीषण! तुम कल्पभर राज्य करना, मन में मेरा निरंतर स्मरण करते रहना। फिर तुम मेरे उस धाम को पा जाओगे, जहाँ सब संत जाते हैं॥ 116(घ)॥

सुनत बिभीषन बचन राम के। हरषि गहे पद कृपाधाम के॥
बानर भालु सकल हरषाने। गहि प्रभु पद गुन बिमल बखाने॥

राम के वचन सुनते ही विभीषण ने हर्षित होकर कृपा के धाम राम के चरण पकड़ लिए। सभी वानर-भालू हर्षित हो गए और प्रभु के चरण पकड़कर उनके निर्मल गुणों का बखान करने लगे।

बहुरि विभीषन भवन सिधायो। मनि गन बसन बिमान भरायो॥
लै पुष्पक प्रभु आगें राखा। हँसि करि कृपासिंधु तब भाषा॥

फिर विभीषण महल को गए और उन्होंने मणियों के समूहों (रत्नों) से और वस्त्रों से विमान को भर लिया। फिर उस पुष्पक विमान को लाकर प्रभु के सामने रखा। तब कृपासागर राम ने हँसकर कहा -

चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन। गगन जाइ बरषहु पट भूषन॥
नभ पर जाइ बिभीषन तबही। बरषि दिए मनि अंबर सबही॥

हे सखा विभीषण! सुनो, विमान पर चढ़कर, आकाश में जाकर वस्त्रों और गहनों को बरसा दो। तब (आज्ञा सुनते) ही विभीषण ने आकाश में जाकर सब मणियों और वस्त्रों को बरसा दिया।

जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं। मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं॥
हँसे रामु श्री अनुज समेता। परम कौतुकी कृपा निकेता॥

जिसके मन को जो अच्छा लगता है, वह वही ले लेता है। मणियों को मुँह में लेकर वानर फिर उन्हें खाने की चीज न समझकर उगल देते हैं। यह तमाशा देखकर परम विनोदी

और कृपा के धाम राम, श्री (सीता) और लक्ष्मण सहित हँसने लगे।

दो॰ - मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह बेद।
कृपासिंधु सोइ कपिन्ह सन करत अनेक बिनोद॥ 117(क)॥

जिनको मुनि ध्यान में भी नहीं पाते, जिन्हें वेद नेति-नेति कहते हैं, वे ही कृपा के समुद्र राम वानरों के साथ अनेकों प्रकार के विनोद कर रहे हैं॥ 117(क)॥

उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम॥ 117(ख)॥

(शिव कहते हैं -) हे उमा! अनेकों प्रकार के योग, जप, दान, तप, यज्ञ, व्रत और नियम करने पर भी राम वैसी कृपा नहीं करते जैसी अनन्य प्रेम होने पर करते हैं॥ 117(ख)॥

भालु कपिन्ह पट भूषन पाए। पहिरि पहिरि रघुपति पहिं आए॥
नाना जिनस देखि सब कीसा। पुनि पुनि हँसत कोसलाधीसा॥

भालूओं और वानरों ने कपड़े-गहने पाए और उन्हें पहन-पहनकर वे रघुनाथ के पास आए। अनेकों जातियों के वानरों को देखकर कोसलपति राम बार-बार हँस रहे हैं।

चितइ सबन्हि पर कीन्ही दाया। बोले मृदुल बचन रघुराया॥
तुम्हरें बल मैं रावनु मार्‌यो। तिलक बिभीषन कहँ पुनि सार्‌यो॥

रघुनाथ ने कृपा दृष्टि से देखकर सब पर दया की। फिर वे कोमल वचन बोले - हे भाइयो! तुम्हारे ही बल से मैंने रावण को मारा और फिर विभीषण का राजतिलक किया।

निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू। सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू॥
सुनत बचन प्रेमाकुल बानर। जोरि पानि बोले सब सादर॥

अब तुम सब अपने-अपने घर जाओ। मेरा स्मरण करते रहना और किसी से डरना नहीं। ये वचन सुनते ही सब वानर प्रेम में विह्वल होकर हाथ जोड़कर आदरपूर्वक बोले -

प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा। हमरें होत बचन सुनि मोहा॥
दीन जानि कपि किए सनाथा। तुम्ह त्रैलोक ईस रघुनाथा॥

प्रभो! आप जो कुछ भी कहें, आपको सब सोहता है। पर आपके वचन सुनकर हमको मोह होता है। हे रघुनाथ! आप तीनों लोकों के ईश्वर हैं। हम वानरों को दीन जानकर ही आपने सनाथ (कृतार्थ) किया है।

सुनि प्रभु बचन लाज हम मरहीं। मसक कहूँ खगपति हित करहीं॥
देखि राम रुख बानर रीछा। प्रेम मगन नहिं गृह कै ईछा॥

प्रभु के (ऐसे) वचन सुनकर हम लाज के मारे मरे जा रहे हैं। कहीं मच्छर भी गरुड़ का हित कर सकते हैं? राम का रुख देखकर रीछ-वानर प्रेम में मग्न हो गए। उनकी घर जाने की इच्छा नहीं है।

दो० - प्रभु प्रेरित कपि भालु सब राम रूप उर राखि।
हरष बिषाद सहित चले बिनय बिबिध बिधि भाषि॥ 118(क)॥

परंतु प्रभु की प्रेरणा (आज्ञा) से सब वानर-भालू राम के रूप को हृदय में रखकर और अनेकों प्रकार से विनती करके हर्ष और विषाद सहित घर को चले॥ 118(क)॥

कपिपति नील रीछपति अंगद नल हनुमान।
सहित बिभीषन अपर जे जूथप कपि बलवान॥ 118(ख)॥

वानरराज सुग्रीव, नील, ऋक्षराज जाम्बवान, अंगद, नल और हनुमान तथा विभीषण सहित और जो बलवान वानर सेनापति हैं,॥ 118(ख)॥

कहि न सकहिं कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि॥
सन्मुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निवारि॥ 118(ग)॥

वे कुछ कह नहीं सकते; प्रेमवश नेत्रों में जल भर-भरकर, नेत्रों का पलक मारना छोड़कर (टकटकी लगाए) सम्मुख होकर राम की ओर देख रहे हैं॥ 118(ग)॥

अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई॥
मन महुँ बिप्र चरन सिरु नायो। उत्तर दिसिहि बिमान चलायो॥

रघुनाथ ने उनका अतिशय प्रेम देखकर सबको विमान पर चढ़ा लिया। तदनंतर मन-ही-मन विप्रचरणों में सिर नवाकर उत्तर दिशा की ओर विमान चलाया।

चलत बिमान कोलाहल होई। जय रघुबीर कहइ सबु कोई॥
सिंहासन अति उच्च मनोहर। श्री समेत प्रभु बैठे ता पर॥

विमान के चलते समय बड़ा शोर हो रहा है। सब कोई रघुवीर की जय कह रहे हैं। विमान में एक अत्यंत ऊँचा मनोहर सिंहासन है। उस पर श्री (सीता) सहित प्रभु राम विराजमान हो गए।

राजत रामु सहित भामिनी। मेरु सृंग जनु घन दामिनी॥
रुचिर बिमानु चलेउ अति आतुर। कीन्ही सुमन बृष्टि हरषे सुर॥

पत्नी सहित राम ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो सुमेरु के शिखर पर बिजली सहित श्याम मेघ हो। सुंदर विमान बड़ी शीघ्रता से चला। देवता हर्षित हुए और उन्होंने फूलों की वर्षा की।

परम सुखद चलि त्रिबिध बयारी। सागर सर सरि निर्मल बारी॥
सगुन होहिं सुंदर चहुँ पासा। मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा॥

अत्यंत सुख देनेवाली तीन प्रकार की (शीतल, मंद, सुगंधित) वायु चलने लगी। समुद्र, तालाब और नदियों का जल निर्मल हो गया। चारों ओर सुंदर शकुन होने लगे। सबके मन प्रसन्न हैं, आकाश और दिशाएँ निर्मल हैं।

कह रघुबीर देखु रन सीता। लछिमन इहाँ हत्यो इँद्रजीता॥
हनूमान अंगद के मारे। रन महि परे निसाचर भारे॥

रघुवीर ने कहा - हे सीते! रणभूमि देखो। लक्ष्मण ने यहाँ इंद्र को जीतनेवाले मेघनाद को मारा था। हनुमान और अंगद के मारे हुए ये भारी-भारी निशाचर रणभूमि में पड़े हैं।

कुंभकरन रावन द्वौ भाई। इहाँ हते सुर मुनि दुःखदाई॥

देवताओं और मुनियों को दुःख देनेवाले कुंभकर्ण और रावण दोनों भाई यहाँ मारे गए।

दो० - इहाँ सेतु बाँध्यों अरु थापेउँ सिव सुख धाम।
सीता सहित कृपानिधि संभुहि कीन्ह प्रनाम॥ 119(क)॥

मैंने यहाँ पुल बाँधा (बँधवाया) और सुखधाम शिव की स्थापना की। तदनंतर कृपानिधान

राम ने सीता सहित रामेश्वर महादेव को प्रणाम किया॥ 119(क)॥

जहँ जहँ कृपासिंधु बन कीन्ह बास बिश्राम।
सकल देखाए जानकिहि कहे सबन्हि के नाम॥ 119(ख)॥

वन में जहाँ-तहाँ करुणा सागर राम ने निवास और विश्राम किया था, वे सब स्थान प्रभु ने जानकी को दिखलाए और सबके नाम बतलाए॥ 119(ख)॥

तुरत बिमान तहाँ चलि आवा। दंडक बन जहँ परम सुहावा॥
कुंभजादि मुनिनायक नाना। गए रामु सब कें अस्थाना॥

विमान शीघ्र ही वहाँ चला आया, जहाँ परम सुंदर दंडकवन था और अगस्त्य आदि बहुत-से मुनिराज रहते थे। राम इन सबके स्थानों में गए।

सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा। चित्रकूट आए जगदीसा॥
तहँ करि मुनिन्ह केर संतोषा। चला बिमानु तहाँ ते चोखा॥

संपूर्ण ऋषियों से आशीर्वाद पाकर जगदीश्वर राम चित्रकूट आए। वहाँ मुनियों को संतुष्ट किया। (फिर) विमान वहाँ से आगे तेजी के साथ चला।

बहुरि राम जानकिहि देखाई। जमुना कलि मल हरनि सुहाई॥
पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रनाम करु सीता॥

फिर राम ने जानकी को कलियुग के पापों का हरण करनेवाली सुहावनी यमुना के दर्शन कराए। फिर पवित्र गंगा के दर्शन किए। राम ने कहा - हे सीते! इन्हें प्रणाम करो।

तीरथपति पुनि देखु प्रयागा। निरखत जन्म कोटि अघ भागा॥
देखु परम पावनि पुनि बेनी। हरनि सोक हरि लोक निसेनी॥
पुनि देखु अवधपुरि अति पावनि। त्रिबिध ताप भव रोग नसावनि॥

फिर तीर्थराज प्रयाग को देखो, जिसके दर्शन से ही करोड़ों जन्मों के पाप भाग जाते हैं। फिर परम पवित्र त्रिवेणी के दर्शन करो, जो शोकों को हरनेवाली और हरि के परम धाम (पहुँचने) के लिए सीढ़ी के समान है। फिर अत्यंत पवित्र अयोध्यापुरी के दर्शन करो, जो तीनों प्रकार के तापों और भव (आवागमनरूपी) रोग का नाश करनेवाली है।

दो० - सीता सहित अवध कहुँ कीन्ह कृपाल प्रनाम।
सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम॥ 120(क)॥

यों कहकर कृपालु राम ने सीता सहित अवधपुरी को प्रणाम किया। सजल नेत्र और पुलकित शरीर होकर राम बार-बार हर्षित हो रहे हैं॥ 120(क)॥

पुनि प्रभु आइ त्रिबेनीं हरषित मज्जनु कीन्ह।
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुँ दान बिबिध बिधि दीन्ह॥ 120(ख)॥

फिर त्रिवेणी में आकर प्रभु ने हर्षित होकर स्नान किया और वानरों सहित ब्राह्मणों को अनेकों प्रकार के दान दिए॥ 120(ख)॥

प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई। धरि बटु रूप अवधपुर जाई॥
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु। समाचार लै तुम्ह चलि आएहु॥

तदनंतर प्रभु ने हनुमान को समझाकर कहा - तुम ब्रह्मचारी का रूप धरकर अवधपुरी को जाओ। भरत को हमारी कुशल सुनाना और उनका समाचार लेकर चले आना।

तुरत पवनसुत गवनत भयऊ। तब प्रभु भरद्वाज पहिं गयऊ॥
नाना बिधि मुनि पूजा कीन्ही। अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही॥

पवनपुत्र हनुमान तुरंत ही चल दिए। तब प्रभु भरद्वाज के पास गए। मुनि ने (इष्ट बुद्धि से) उनकी अनेकों प्रकार से पूजा की और स्तुति की और फिर (लीला की दृष्टि से) आशीर्वाद दिया।

मुनि पद बंदि जुगल कर जोरी। चढ़ि बिमान प्रभु चले बहोरी॥
इहाँ निषाद सुना प्रभु आए। नाव नाव कहँ लोग बोलाए॥

दोनों हाथ जोड़कर तथा मुनि के चरणों की वंदना करके प्रभु विमान पर चढ़कर फिर (आगे) चले। यहाँ जब निषादराज ने सुना कि प्रभु आ गए, तब उसने 'नाव कहाँ है? नाव कहाँ है?' पुकारते हुए लोगों को बुलाया।

सुरसरि नाघि जान तब आयो। उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो॥
तब सीताँ पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी॥

इतने में ही विमान गंगा को लाँघकर (इस पार) आ गया और प्रभु की आज्ञा पाकर वह किनारे पर उतरा। तब सीता बहुत प्रकार से गंगा की पूजा करके फिर उनके चरणों पर गिरीं।

दीन्हि असीस हरषि मन गंगा। सुंदरि तव अहिवात अभंगा॥
सुनत गुहा धायउ प्रेमाकुल। आयउ निकट परम सुख संकुल॥

गंगा ने मन में हर्षित होकर आशीर्वाद दिया - हे सुंदरी! तुम्हारा सुहाग अखंड हो। भगवान के तट पर उतरने की बात सुनते ही निषादराज गुह प्रेम में विह्वल होकर दौड़ा। परम सुख से परिपूर्ण होकर वह प्रभु के समीप आया,

प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही। परेउ अवनि तन सुधि नहिं तेही॥
प्रीति परम बिलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियो उर लाई॥

और जानकी सहित प्रभु को देखकर वह (आनंद-समाधि में मग्न होकर) पृथ्वी पर गिर पड़ा, उसे शरीर की सुधि न रही। रघुनाथ ने उसका परम प्रेम देखकर उसे उठाकर हर्ष के साथ हृदय से लगा लिया।

छं॰ - लियो हृदयँ लाइ कृपा निधान सुजान रायँ रमापति।
बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर बीनती॥
अब कुसल पद पंकज बिलोकि बिरंचि संकर सेब्य जे।
सुख धाम पूरनकाम राम नमामि राम नमामि ते॥

सुजानों के राजा (शिरोमणि), लक्ष्मीकांत, कृपानिधान भगवान ने उसको हृदय से लगा लिया और अत्यंत निकट बैठकर कुशल पूछी। वह विनती करने लगा - आपके जो चरणकमल ब्रह्मा और शंकर से सेवित हैं, उनके दर्शन करके मैं अब सकुशल हूँ। हे सुखधाम! हे पूर्णकाम राम! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ।

सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो।
मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोह बस बिसराइयो॥
यह रावनारि चरित्र पावन राम पद रतिप्रद सदा।
कामादिहर बिग्यानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा॥

सब प्रकार से नीच उस निषाद को भगवान ने भरत की भाँति हृदय से लगा लिया।

तुलसीदास कहते हैं - इस मंदबुद्धि ने (मैंने) मोहवश उस प्रभु को भुला दिया। रावण के शत्रु का यह पवित्र करनेवाला चरित्र सदा ही राम के चरणों में प्रीति उत्पन्न करनेवाला है। यह कामादि विकारों को हरनेवाला और (भगवान के स्वरूप का) विशेष ज्ञान उत्पन्न करनेवाला है। देवता, सिद्ध और मुनि आनंदित होकर इसे गाते हैं।

दो॰ - समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहि देहिं भगवान॥ 121(क)॥

जो सुजान लोग रघुवीर की समर विजय संबंधी लीला को सुनते हैं, उनको भगवान नित्य विजय, विवेक और विभूति (ऐश्वर्य) देते हैं॥ 121(क)॥

यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार।
श्री रघुनाथ नाम तजि नाहिन आन अधार॥ 121(ख)॥

अरे मन! विचार करके देख! यह कलिकाल पापों का घर है। इसमें श्री रघुनाथ के नाम को छोड़कर (पापों से बचने के लिए) दूसरा कोई आधार नहीं है॥ 121(ख)॥

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने षष्ठः सोपानः समाप्तः।
कलियुग के समस्त पापों का नाश करनेवाले श्री रामचरितमानस का यह छठा सोपान समाप्त हुआ।

(लंकाकांड समाप्त)

अध्याय -७ उत्तरकाण्ड [1045-1215]

भगवान शंकर जी के मन द्वारा रचित श्रीराम जी के परमपवित्र चरित्र

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम्॥ 1॥

मोर के कंठ की आभा के समान (हरिताभ) नीलवर्ण, देवताओं में श्रेष्ठ, ब्राह्मण (भृगु) के चरणकमल के चिह्न से सुशोभित, शोभा से पूर्ण, पीतांबरधारी, कमल नेत्र, सदा परम प्रसन्न, हाथों में बाण और धनुष धारण किए हुए, वानर समूह से युक्त भाई लक्ष्मण से सेवित, स्तुति किए जाने योग्य, जानकी के पति, रघुकुल श्रेष्ठ, पुष्पक विमान पर सवार राम को मैं निरंतर नमस्कार करता हूँ॥ 1॥

कोसलेन्द्रपदकन्जमंजुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृंगसंगिनौ॥ 2॥

कोसलपुरी के स्वामी राम के सुंदर और कोमल दोनों चरणकमल ब्रह्मा और शिव द्वारा वंदित हैं, जानकी के करकमलों से दुलराए हुए हैं और चिंतन करनेवाले के मनरूपी भौंरे के नित्य संगी हैं अर्थात चिंतन करने वालों का मनरूपी भ्रमर सदा उन चरणकमलों में बसा रहता है॥ 2॥

कुंदइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम्।
कारुणीककलकन्जलोचनं नौमि शंकरमनंगमोचनम्॥ 3॥

कुंद के फूल, चंद्रमा और शंख के समान सुंदर गौरवर्ण, जगज्जननी पार्वती के पति, वांछित फल के देनेवाले, (दुखियों पर सदा), दया करनेवाले, सुंदर कमल के समान नेत्रवाले, कामदेव से छुड़ानेवाले (कल्याणकारी) शंकर को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 3॥

दो० - रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृस तन राम बियोग॥

राम के लौटने की अवधि का एक ही दिन बाकी रह गया, नगर के लोग बहुत आर्त हैं। राम के वियोग में दुबले हुए स्त्री-पुरुष जहाँ-तहाँ सोच (विचार) कर रहे हैं (कि क्या बात

है राम क्यों नहीं आए)।

सगुन होहिं सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगवन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर॥

इतने में सब सुंदर शकुन होने लगे और सबके मन प्रसन्न हो गए। नगर भी चारों ओर से रमणीक हो गया। मानो ये सब के सब चिह्न प्रभु के आगमन को जना रहे हैं।

कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ।
आयउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोइ॥

कौसल्या आदि सब माताओं के मन में ऐसा आनंद हो रहा है जैसे अभी कोई कहना ही चाहता है कि सीता और लक्ष्मण सहित प्रभु राम आ गए।

भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार॥

भरत की दाहिनी आँख और दाहिनी भुजा बार-बार फड़क रही है। इसे शुभ शकुन जानकर उनके मन में अत्यंत हर्ष हुआ और वे विचार करने लगे -

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥
कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥

प्राणों की आधाररूप अवधि का एक ही दिन शेष रह गया। यह सोचते ही भरत के मन में अपार दुःख हुआ। क्या कारण हुआ कि नाथ नहीं आए? प्रभु ने कुटिल जानकर मुझे कहीं भुला तो नहीं दिया?

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥

अहा हा! लक्ष्मण बड़े धन्य एवं बड़भागी हैं, जो राम के चरणारविंद के प्रेमी हैं (अर्थात उनसे अलग नहीं हुए)। मुझे तो प्रभु ने कपटी और कुटिल पहचान लिया, इसी से नाथ ने मुझे साथ नहीं लिया।

जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥

(बात भी ठीक ही है, क्योंकि) यदि प्रभु मेरी करनी पर ध्यान दें तो सौ करोड़ (असंख्य) कल्पों तक भी मेरा निस्तार (छुटकारा) नहीं हो सकता। (परंतु आशा इतनी ही है कि) प्रभु सेवक का अवगुण कभी नहीं मानते। वे दीनबंधु हैं और अत्यंत ही कोमल स्वभाव के हैं।

मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

अतएव मेरे हृदय में ऐसा पक्का भरोसा है कि राम अवश्य मिलेंगे, (क्योंकि) मुझे शकुन बड़े शुभ हो रहे हैं। किंतु अवधि बीत जाने पर यदि मेरे प्राण रह गए तो जगत में मेरे समान नीच कौन होगा?

दो० - राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥ 1(क)॥

राम के विरह समुद्र में भरत का मन डूब रहा था, उसी समय पवनपुत्र हनुमान ब्राह्मण का रूप धरकर इस प्रकार आ गए, मानो (उन्हें डूबने से बचाने के लिए) नाव आ गई हो॥ 1(क)॥

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात॥
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात॥ 1(ख)॥

हनुमान ने दुर्बल शरीर भरत को जटाओं का मुकुट बनाए, राम! राम! रघुपति! जपते और कमल के समान नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं) का जल बहाते कुश के आसन पर बैठे देखा॥ 1(ख)॥

देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जल बरषेउ॥
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ श्रवन सुधा सम बानी॥

उन्हें देखते ही हनुमान अत्यंत हर्षित हुए। उनका शरीर पुलकित हो गया, नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बरसने लगा। मन में बहुत प्रकार से सुख मानकर वे कानों के लिए अमृत के समान वाणी बोले -

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती॥

रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥

जिनके विरह में आप दिन-रात सोच करते (घुलते) रहते हैं और जिनके गुणसमूहों की पंक्तियों को आप निरंतर रटते रहते हैं, वे ही रघुकुल के तिलक, सज्जनों को सुख देनेवाले और देवताओं तथा मुनियों के रक्षक राम सकुशल आ गए।

रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत॥
सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूषा॥

शत्रु को रण में जीतकर सीता और लक्ष्मण सहित प्रभु आ रहे हैं; देवता उनका सुंदर यश गा रहे हैं। ये वचन सुनते ही भरत सारे दुःख भूल गए। जैसे प्यासा आदमी अमृत पाकर प्यास के दुःख को भूल जाए।

को तुम्ह तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए॥
मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना॥

(भरत ने पूछा -) हे तात! तुम कौन हो? और कहाँ से आए हो? (जो) तुमने मुझको (ये) परम प्रिय (अत्यंत आनंद देनेवाले) वचन सुनाए। (हनुमान ने कहा) हे कृपानिधान! सुनिए, मैं पवन का पुत्र और जाति का वानर हूँ, मेरा नाम हनुमान है।

दीनबंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर॥
मिलत प्रेम नहिं हृदयँ समाता। नयन स्रवतजल पुलकित गाता॥

मैं दीनों के बंधु रघुनाथ का दास हूँ। यह सुनते ही भरत उठकर आदरपूर्वक हनुमान से गले लगकर मिले। मिलते समय प्रेम हृदय में नहीं समाता। नेत्रों से (आनंद और प्रेम के आँसुओं का) जल बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया।

कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजुमोहि राम पिरीते॥
बार बार बूझी कुसलाता। तो कहुँ देउँ काह सुन भ्राता॥

(भरत ने कहा -) हे हनुमान! तुम्हारे दर्शन से मेरे समस्त दुःख समाप्त हो गए (दुःखों का अंत हो गया)। (तुम्हारे रूप में) आज मुझे प्यारे राम ही मिल गए। भरत ने बार-बार कुशल पूछी (और कहा -) हे भाई! सुनो, (इस शुभ संवाद के बदले में) तुम्हें क्या दूँ?

एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं॥

नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही॥

इस संदेश के समान (इसके बदले में देने लायक पदार्थ) जगत में कुछ भी नहीं है, मैंने यह विचार कर देख लिया है। (इसलिए) हे तात! मैं तुमसे किसी प्रकार भी उऋण नहीं हो सकता। अब मुझे प्रभु का चरित्र (हाल) सुनाओ।

तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा॥
कहु कपि कबहुँ कृपाल गोसाईं। सुमिरहिं मोहि दास की नाईं॥

तब हनुमान ने भरत के चरणों में मस्तक नवाकर रघुनाथ की सारी गुणगाथा कही। (भरत ने पूछा -) हे हनुमान! कहो, कृपालु स्वामी राम कभी मुझ जैसे दास की याद भी करते हैं?

छं॰ - निज दास ज्यों रघुबंसभूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्‌यो।
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलकि तन चरनन्हि पर्‌यो॥
रघुबीर निज मुख जासु गुन गन कहत अग जग नाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन सिंधु सो॥

रघुवंश के भूषण राम क्या कभी अपने दास की भाँति मेरा स्मरण करते रहे हैं? भरत के अत्यंत नम्र वचन सुनकर हनुमान पुलकित शरीर होकर उनके चरणों पर गिर पड़े (और मन में विचारने लगे कि) जो चराचर के स्वामी हैं, वे रघुवीर अपने मुख से जिनके गुणसमूहों का वर्णन करते हैं, वे भरत ऐसे विनम्र, परम पवित्र और सद्‌गुणों के समुद्र क्यों न हों?

दो॰ - राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि हरष न हृदयँ समात॥ 2(क)॥

(हनुमान ने कहा -) हे नाथ! आप राम को प्राणों के समान प्रिय हैं, हे तात! मेरा वचन सत्य है। यह सुनकर भरत बार-बार मिलते हैं, हृदय में हर्ष समाता नहीं है॥ 2(क)॥

सो॰ - भरत चरन सिरु नाइ तुरित गयउ कपि राम पहिं।
कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि॥ 2(ख)॥

फिर भरत के चरणों में सिर नवाकर हनुमान तुरंत ही राम के पास (लौट) गए और

जाकर उन्होंने सब कुशल कही। तब प्रभु हर्षित होकर विमान पर चढ़कर चले॥ 2(ख)॥

हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहि सुनाए॥
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई॥

इधर भरत भी हर्षित होकर अयोध्यापुरी में आए और उन्होंने गुरु को सब समाचार सुनाया। फिर राजमहल में खबर जनाई कि रघुनाथ कुशलपूर्वक नगर को आ रहे हैं।

सुनत सकल जननीं उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं॥
समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए॥

खबर सुनते ही सब माताएँ उठ दौड़ीं। भरत ने प्रभु की कुशल कहकर सबको समझाया। नगर निवासियों ने यह समाचार पाया, तो स्त्री-पुरुष सभी हर्षित होकर दौड़े।

दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगल मूला॥
भरि भरि हेम थार भामिनी। गावत चलिं सिंधुरगामिनी॥

(राम के स्वागत के लिए) दही, दूब, गोरोचन, फल, फूल और मंगल के मूल नवीन तुलसीदल आदि वस्तुएँ सोने की थालों में भर-भरकर हथिनी की-सी चालवाली सौभाग्यवती स्त्रियाँ (उन्हें लेकर) गाती हुई चलीं।

जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं॥
एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई॥

जो जैसे हैं (जहाँ जिस दशा में हैं) वे वैसे ही (वहीं से उसी दशा में) उठ दौड़ते हैं। (देर हो जाने के डर से) बालकों और बूढ़ों को कोई साथ नहीं लाते। एक-दूसरे से पूछते हैं - भाई! तुमने दयालु रघुनाथ को देखा है?

अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी॥
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा॥

प्रभु को आते जानकर अवधपुरी संपूर्ण शोभाओं की खान हो गई। तीनों प्रकार की सुंदर वायु बहने लगी। सरयू अति निर्मल जलवाली हो गईं (अर्थात सरयू का जल अत्यंत निर्मल हो गया)।

दो० - हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपानिकेत॥ 3(क)॥

गुरु वशिष्ठ, कुटुंबी, छोटे भाई शत्रुघ्न तथा ब्राह्मणों के समूह के साथ हर्षित होकर भरत अत्यंत प्रेमपूर्ण मन से कृपाधाम राम के सामने अर्थात उनकी अगवानी के लिए चले॥ 3(क)॥

बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान॥ 3(ख)॥

बहुत-सी स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़ीं आकाश में विमान देख रही हैं और उसे देखकर हर्षित होकर मीठे स्वर से सुंदर मंगल गीत गा रही हैं॥ 3(ख)॥

राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान।
बढ़्यो कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान॥ 3(ग)॥

रघुनाथ पूर्णिमा के चंद्रमा हैं तथा अवधपुर समुद्र है, जो उस पूर्णचंद्र को देखकर हर्षित हो रहा है और शोर करता हुआ बढ़ रहा है (इधर-उधर दौड़ती हुई) स्त्रियाँ उसकी तरंगों के समान लगती हैं॥ 3(ग)॥

इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर॥
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा॥

यहाँ (विमान पर से) सूर्य कुलरूपी कमल को प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य राम वानरों को मनोहर नगर दिखला रहे हैं। (वे कहते हैं -) हे सुग्रीव! हे अंगद! हे लंकापति विभीषण! सुनो। यह पुरी पवित्र है और यह देश सुंदर है।

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद पुरान बिदित जगु जाना॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥

यद्यपि सबने बैकुंठ की बड़ाई की है - यह वेद-पुराणों में प्रसिद्ध है और जगत जानता है, परंतु अवधपुरी के समान मुझे वह भी प्रिय नहीं है। यह बात (भेद) कई-कोई (बिरले ही) जानते हैं।

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि॥

जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥

यह सुहावनी पुरी मेरी जन्मभूमि है। इसके उत्तर दिशा में जीवों को पवित्र करनेवाली सरयू नदी बहती है, जिसमें स्नान करने से मनुष्य बिना परिश्रम के ही मेरे समीप निवास (सामीप्य मुक्ति) पा जाते हैं।

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुख रासी॥
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी। धन्य अवध जो राम बखानी॥

यहाँ के निवासी मुझे बहुत ही प्रिय हैं। यह पुरी सुख की राशि और मेरे परमधाम को देनेवाली है। प्रभु की वाणी सुनकर सब वानर हर्षित हुए (और कहने लगे कि) जिस अवध की स्वयं राम ने बड़ाई की, वह (अवश्य ही) धन्य है।

दो० - आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान॥ 4(क)॥

कृपा सागर भगवान राम ने सब लोगों को आते देखा, तो प्रभु ने विमान को नगर के समीप उतरने की प्रेरणा की। तब वह पृथ्वी पर उतरा॥ 4(क)॥

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु॥ 4(ख)॥

विमान से उतरकर प्रभु ने पुष्पक विमान से कहा कि तुम अब कुबेर के पास जाओ। राम की प्रेरणा से वह चला; उसे (अपने स्वामी के पास जाने का) हर्ष है और प्रभु राम से अलग होने का अत्यंत दुःख भी॥ 4(ख)॥

आए भरत संग सब लोगा। कृस तन श्रीरघुबीर बियोगा॥
बामदेव बसिष्ट मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक॥

भरत के साथ सब लोग आए। श्री रघुवीर के वियोग से सबके शरीर दुबले हो रहे हैं। प्रभु ने वामदेव, वशिष्ठ आदि मुनिश्रेष्ठों को देखा, तो उन्होंने धनुष-बाण पृथ्वी पर रखकर -

धाइ धरे गुर चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह॥
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरें कुसल तुम्हारिहिं दाया॥

छोटे भाई लक्ष्मण सहित दौड़कर गुरु के चरणकमल पकड़ लिए; उनके रोम-रोम अत्यंत पुलकित हो रहे हैं। मुनिराज वशिष्ठ ने (उठाकर) उन्हें गले लगाकर कुशल पूछी। (प्रभु ने कहा -) आप ही की दया में हमारी कुशल है।

सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा॥
गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज॥

धर्म की धुरी धारण करनेवाले रघुकुल के स्वामी राम ने सब ब्राह्मणों से मिलकर उन्हें मस्तक नवाया। फिर भरत ने प्रभु के वे चरणकमल पकड़े जिन्हें देवता, मुनि, शंकर और ब्रह्मा (भी) नमस्कार करते हैं।

परे भूमि नहिं उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए॥
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े॥

भरत पृथ्वी पर पड़े हैं, उठाए उठते नहीं। तब कृपासिंधु राम ने उन्हें जबर्दस्ती उठाकर हृदय से लगा लिया। (उनके) साँवले शरीर पर रोएँ खड़े हो गए। नवीन कमल के समान नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं के) जल की बाढ़ आ गई।

छं० - राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुअन धनी॥
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही॥

कमल के समान नेत्रों से जल बह रहा है। सुंदर शरीर में पुलकावली (अत्यंत) शोभा दे रही है। त्रिलोकी के स्वामी प्रभु राम छोटे भाई भरत को अत्यंत प्रेम से हृदय से लगाकर मिले। भाई से मिलते समय प्रभु जैसे शोभित हो रहे हैं, उसकी उपमा मुझसे कही नहीं जाती। मानो प्रेम और श्रृंगार शरीर धारण करके मिले और श्रेष्ठ शोभा को प्राप्त हुए।

बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई॥
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई॥
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो॥

कृपानिधान राम भरत से कुशल पूछते हैं; परंतु आनंदवश भरत के मुख से वचन शीघ्र

नहीं निकलते। (शिव ने कहा -) हे पार्वती! सुनो, वह सुख (जो उस समय भरत को मिल रहा था) वचन और मन से परे है, उसे वही जानता है जो उसे पाता है। (भरत ने कहा -) हे कोसलनाथ! आपने आर्त्त (दुःखी) जानकर दास को दर्शन दिए, इससे अब कुशल है। विरह समुद्र में डूबते हुए मुझको कृपानिधान ने हाथ पकड़कर बचा लिया!

दो० - पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदयँ लगाइ।
लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ॥ 5॥

फिर प्रभु हर्षित होकर शत्रुघ्न को हृदय से लगाकर उनसे मिले। तब लक्ष्मण और भरत दोनों भाई परम प्रेम से मिले॥ 5॥

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे। दुसह बिरह संभव दुख मेटे॥
सीता चरन भरत सिरु नावा। अनुज समेत परम सुख पावा॥

फिर लक्ष्मण शत्रुघ्न से गले लगकर मिले और इस प्रकार विरह से उत्पन्न दुःसह दुःख का नाश किया। फिर भाई शत्रुघ्न सहित भरत ने सीता के चरणों में सिर नवाया और परम सुख प्राप्त किया।

प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी॥
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥

प्रभु को देखकर सब अयोध्यावासी हर्षित हुए। वियोग से उत्पन्न सब दुःख नष्ट हो गए। सब लोगों को प्रेम विह्वल (और मिलने के लिए अत्यंत आतुर) देखकर खर के शत्रु कृपालु राम ने एक चमत्कार किया।

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला॥
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नर नारि बिसोकी॥

उसी समय कृपालु राम असंख्य रूपों में प्रकट हो गए और सबसे (एक ही साथ) यथायोग्य मिले। रघुवीर ने कृपा की दृष्टि से देखकर सब नर-नारियों को शोक से रहित कर दिया।

छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना॥
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा। आगें चले सील गुन धामा॥

भगवान क्षण मात्र में सबसे मिल लिए। हे उमा! यह रहस्य किसी ने नहीं जाना। इस प्रकार शील और गुणों के धाम राम सबको सुखी करके आगे बढ़े।

कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई॥

कौसल्या आदि माताएँ ऐसे दौड़ीं मानो नई ब्यायी हुई गौएँ अपने बछड़ों को देखकर दौड़ी हों।

छं० - जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं।
दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहुबिधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोगभव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे॥

मानो नई ब्यायी हुई गौएँ अपने छोटे बछड़ों को घर पर छोड़ परवश होकर वन में चरने गई हों और दिन का अंत होने पर (बछड़ों से मिलने के लिए) हुंकार करके थन से दूध गिराती हुईं नगर की ओर दौड़ी हों। प्रभु ने अत्यंत प्रेम से सब माताओं से मिलकर उनसे बहुत प्रकार के कोमल वचन कहे। वियोग से उत्पन्न भयानक विपत्ति दूर हो गई और सबने (भगवान से मिलकर और उनके वचन सुनकर) अगणित सुख और हर्ष प्राप्त किए।

दो० - भेंटेउ तनय सुमित्राँ राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कैकई हृदयँ बहुत सकुचानि॥ 6(क)॥

सुमित्रा अपने पुत्र लक्ष्मण की राम के चरणों में प्रीति जानकर उनसे मिलीं। राम से मिलते समय कैकेयी हृदय में बहुत सकुचाईं॥ 6(क)॥

लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ॥ 6(ख)॥

लक्ष्मण भी सब माताओं से मिलकर और आशीर्वाद पाकर हर्षित हुए। वे कैकेयी से बार-बार मिले, परंतु उनके मन का क्षोभ (रोष) नहीं जाता॥ 6(ख)॥

सासुन्ह सबनि मिली बैदेही । चरनन्हि लाग हरषु अति तेही॥
देहिं असीस बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता॥

जानकी सब सासुओं से मिलीं और उनके चरणों में लगकर उन्हें अत्यंत हर्ष हुआ। सासुएँ

कुशल पूछकर आशीष दे रही हैं कि तुम्हारा सुहाग अचल हो।

सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं। मंगल जानि नयन जल रोकहिं॥
कनक थार आरती उतारहिं। बार बार प्रभु गात निहारहिं॥

सब माताएँ रघुनाथ का कमल-सा मुखड़ा देख रही हैं। (नेत्रों से प्रेम के आँसू उमड़े आते हैं, परंतु) मंगल का समय जानकर वे आँसुओं के जल को नेत्रों में ही रोक रखती हैं। सोने के थाल से आरती उतारती हैं और बार-बार प्रभु के अंगों की ओर देखती हैं।

नाना भाँति निछावरि करहीं। परमानंद हरष उर भरहीं॥
कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि। चितवति कृपासिंधु रनधीरहि॥

अनेकों प्रकार से निछावरें करती हैं और हृदय में परमानंद तथा हर्ष भर रही हैं। कौसल्या बार-बार कृपा के समुद्र और रणधीर रघुवीर को देख रही हैं।

हृदयँ बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा॥
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे॥

वे बार-बार हृदय में विचारती हैं कि इन्होंने लंकापति रावण को कैसे मारा? मेरे ये दोनों बच्चे बड़े ही सुकुमार हैं और राक्षस तो ब़ड़े भारी योद्धा और महान बली थे।

दो० - लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकति मातु।
परमानंद मगन मन पुनि पुनि पुलकित गातु॥ 7॥

लक्ष्मण और सीता सहित प्रभु राम को माता देख रही हैं। उनका मन परमानंद में मग्न है और शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है॥ 7॥

लंकापति कपीस नल नीला। जामवंत अंगद सुभसीला॥
हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा॥

लंकापति विभीषण, वानरराज सुग्रीव, नल, नील, जाम्बवान और अंगद तथा हनुमान आदि सभी उत्तम स्वभाववाले वीर वानरों ने मनुष्यों के मनोहर शरीर धारण कर लिए।

भरत सनेह सील ब्रत नेमा। सादर सब बरनहिं अति प्रेमा॥

देखि नगरबासिन्ह कै रीती। सकल सराहहिं प्रभु पद प्रीती॥

वे सब भरत के प्रेम, सुंदर, स्वभाव (त्याग के) व्रत और नियमों की अत्यंत प्रेम से आदरपूर्वक बड़ाई कर रहे हैं। और नगरवासियों की (प्रेम, शील और विनय से पूर्ण) रीति देखकर वे सब प्रभु के चरणों में उनके प्रेम की सराहना कर रहे हैं।

पुनि रघुपति सब सखा बोलाए। मुनि पद लागहु सकल सिखाए॥
गुर बसिष्ट कुलपूज्य हमारे। इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे॥

फिर रघुनाथ ने सब सखाओं को बुलाया और सबको सिखाया कि मुनि के चरणों में लगो। ये गुरु वशिष्ठ हमारे कुलभर के पूज्य हैं। इन्हीं की कृपा से रण में राक्षस मारे गए हैं।

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥

(फिर गुरु से कहा -) हे मुनि! सुनिए। ये सब मेरे सखा हैं। ये संग्रामरूपी समुद्र में मेरे लिए बेड़े (जहाज) के समान हुए। मेरे हित के लिए इन्होंने अपने जन्म तक हार दिए (अपने प्राणों तक को होम दिया)। ये मुझे भरत से भी अधिक प्रिय हैं।

सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। निमिष निमिष उपजत सुख नए॥

प्रभु के वचन सुनकर सब प्रेम और आनंद में मग्न हो गए। इस प्रकार पल-पल में उन्हें नए-नए सुख उत्पन्न हो रहे हैं।

दो० - कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नायउ माथ।
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ॥ 8(क)॥

फिर उन लोगों ने कौसल्या के चरणों में मस्तक नवाए। कौसल्या ने हर्षित होकर आशीषें दीं (और कहा -) तुम मुझे रघुनाथ के समान प्यारे हो॥ 8(क)॥

सुमन बृष्टि नभ संकुल भवन चले सुखकंद।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नगर नारि नर बृंद॥ 8(ख)॥

आनंदकंद राम अपने महल को चले, आकाश फूलों की वृष्टि से छा गया। नगर के स्त्री-

पुरुषों के समूह अटारियों पर चढ़कर उनके दर्शन कर रहे हैं॥ 8(ख)॥

कंचन कलस बिचित्र सँवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे॥
बंदनवार पताका केतू। सबन्हि बनाए मंगल हेतू॥

सोने के कलशों को विचित्र रीति से (मणि-रत्नादि से) अलंकृत कर और सजाकर सब लोगों ने अपने-अपने दरवाजों पर रख लिया। सब लोगों ने मंगल के लिए बंदनवार, ध्वजा और पताकाएँ लगाईं।

बीथीं सकल सुगंध सिंचाई। गजमनि रचि बहु चौक पुराईं।
नाना भाँति सुमंगल साजे। हरषि नगर निसान बहु बाजे॥

सारी गलियाँ सुगंधित द्रवों से सिंचाई गईं। गजमुक्ताओं से रचकर बहुत-सी चौकें पुराई गईं। अनेकों प्रकार के सुंदर मंगल साज सजाए गए और हर्षपूर्वक नगर में बहुत-से डंके बजने लगे।

जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं। देहिं असीस हरष उर भरहीं॥
कंचन थार आरतीं नाना। जुबतीं सजें करहिं सुभ गाना॥

स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ निछावर कर रही हैं, और हृदय में हर्षित होकर आशीर्वाद देती हैं। बहुत-सी युवती (सौभाग्यवती) स्त्रियाँ सोने के थालों में अनेकों प्रकार की आरती सजाकर मंगलगान कर रही हैं।

करहिं आरती आरतिहर कें। रघुकुल कमल बिपिन दिनकर कें॥
पुर सोभा संपति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना॥

वे आर्तिहर (दुःखों को हरनेवाले) और सूर्यकुलरूपी कमलवन को प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य राम की आरती कर रही हैं। नगर की शोभा, संपत्ति और कल्याण का वेद, शेष और सरस्वती वर्णन करते हैं -

तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं। उमा तासु गुन नर किमि कहहीं॥

परंतु वे भी यह चरित्र देखकर ठगे-से रह जाते हैं (स्तंभित हो रहते हैं)। (शिव कहते हैं -) हे उमा! तब भला मनुष्य उनके गुणों को कैसे कह सकते हैं।

दो० - नारि कुमुदिनीं अवध सर रघुपति बिरह दिनेस।
अस्त भएँ बिगसत भईं निरखि राम राकेस॥ 9(क)॥

स्त्रियाँ कुमुदनी हैं, अयोध्या सरोवर है और रघुनाथ का विरह सूर्य है (इस विरह-सूर्य के ताप से वे मुरझा गई थीं)। अब उस विरहरूपी सूर्य के अस्त होने पर रामरूपी पूर्णचंद्र को निरखकर वे खिल उठीं॥ 9(क)॥

होहिं सगुन सुभ बिबिधि बिधि बाजहिं गगन निसान।
पुर नर नारि सनाथ करि भवन चले भगवान॥ 9(ख)॥

अनेक प्रकार के शुभ शकुन हो रहे हैं, आकाश में नगाड़े बज रहे हैं। नगर के पुरुषों और स्त्रियों को सनाथ (दर्शन द्वारा कृतार्थ) करके भगवान राम महल को चले॥ 9(ख)॥

प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी॥
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा॥

(शिव कहते हैं -) हे भवानी! प्रभु ने जान लिया कि माता कैकेयी लज्जित हो गई हैं। (इसलिए), वे पहले उन्हीं के महल को गए और उन्हें समझा-बुझाकर बहुत सुख दिया। फिर हरि ने अपने महल को गमन किया।

कृपासिंधु जब मंदिर गए। पुर नर नारि सुखी सब भए॥
गुर बसिष्ट द्विज लिए बुलाई। आजु सुघरी सुदिन समुदाई॥

कृपा के समुद्र राम जब अपने महल को गए, तब नगर के स्त्री-पुरुष सब सुखी हुए। गुरु वशिष्ठ ने ब्राह्मणों को बुला लिया (और कहा -) आज शुभ घड़ी, सुंदर दिन आदि सभी शुभ योग हैं।

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचंद्र बैठहिं सिंघासन॥
मुनि बसिष्ट के बचन सुहाए। सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए॥

आप सब ब्राह्मण हर्षित होकर आज्ञा दीजिए, जिसमें रामचंद्र सिंहासन पर विराजमान हों। वशिष्ठ मुनि के सुहावने वचन सुनते ही सब ब्राह्मणों को बहुत ही अच्छे लगे।

कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका। जग अभिराम राम अभिषेका॥

अब मुनिबर बिलंब नहिं कीजै। महाराज कहँ तिलक करीजै॥

वे सब अनेकों ब्राह्मण कोमल वचन कहने लगे कि राम का राज्याभिषेक संपूर्ण जगत को आनंद देनेवाला है। हे मुनिश्रेष्ठ! अब विलंब न कीजिए और महाराज का तिलक शीघ्र कीजिए।

दो० - तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ हरषाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ॥ 10(क)॥

तब मुनि ने सुमंत्र से कहा, वे सुनते ही हर्षित होकर चले। उन्होंने तुरंत ही जाकर अनेकों रथ, घोड़े और हाथी सजाए,॥ 10(क)॥

जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रब्य मगाइ।
हरष समेत बसिष्ट पद पुनि सिरु नायउ आइ॥ 10(ख)॥

और जहाँ-तहाँ (सूचना देनेवाले) दूतों को भेजकर मांगलिक वस्तुएँ मँगाकर फिर हर्ष के साथ आकर वशिष्ठ के चरणों में सिर नवाया॥ 10(ख)॥

अवधपुरी अति रुचिर बनाई। देवन्ह सुमन बृष्टि झरि लाई॥
राम कहा सेवकन्ह बुलाई। प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई॥

अवधपुरी बहुत ही सुंदर सजाई गई। देवताओं ने पुष्पों की वर्षा की झड़ी लगा दी। राम ने सेवकों को बुलाकर कहा कि तुम लोग जाकर पहले मेरे सखाओं को स्नान कराओ।

सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए। सुग्रीवादि तुरत अन्हवाए॥
पुनि करुनानिधि भरतु हँकारे। निज कर राम जटा निरुआरे॥

भगवान के वचन सुनते ही सेवक जहाँ-तहाँ दौड़े और तुरंत ही उन्होंने सुग्रीवादि को स्नान कराया। फिर करुणानिधान राम ने भरत को बुलाया और उनकी जटाओं को अपने हाथों से सुलझाया।

अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई। भगत बछल कृपाल रघुराई॥
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। सेष कोटि सत सकहिं न गाई॥

तदनंतर भक्तवत्सल कृपालु प्रभु रघुनाथ ने तीनों भाइयों को स्नान कराया। भरत का

भाग्य और प्रभु की कोमलता का वर्णन अरबों शेष भी नहीं कर सकते।

पुनि निज जटा राम बिबराए। गुर अनुसासन मागि नहाए॥
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे। अंग अनंग देखि सत लाजे॥

फिर राम ने अपनी जटाएँ खोलीं और गुरु की आज्ञा माँगकर स्नान किया। स्नान करके प्रभु ने आभूषण धारण किए। उनके (सुशोभित) अंगों को देखकर सैकड़ों (असंख्य) कामदेव लजा गए।

दो० - सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जन तुरत कराइ।
दिब्य बसन बर भूषन अँग अँग सजे बनाइ॥ 11(क)॥

(इधर) सासुओं ने जानकी को आदर के साथ तुरंत ही स्नान कराके उनके अंग-अंग में दिव्य वस्त्र और श्रेष्ठ आभूषण भली-भाँति सजा दिए (पहना दिए)॥ 11(क)॥

राम बाम दिसि सोभति रमा रूप गुन खानि।
देखि मातु सब हरषीं जन्म सुफल निज जानि॥ 11(ख)॥

राम के बायीं ओर रूप और गुणों की खान रमा (जानकी) शोभित हो रही हैं। उन्हें देखकर सब माताएँ अपना जन्म (जीवन) सफल समझकर हर्षित हुईं॥ 11(ख)॥

सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रहमा सिव मुनि बृंद।
चढ़ि बिमान आए सब सुर देखन सुखकंद॥ 11(ग)॥

(काकभुशुंडि कहते हैं -) हे पक्षीराज गरुड़! सुनिए, उस समय ब्रहमा, शिव और मुनियों के समूह तथा विमानों पर चढ़कर सब देवता आनंदकंद भगवान के दर्शन करने के लिए आए॥ 11(ग)॥

प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिब्य सिंघासन मागा॥
रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई॥

प्रभु को देखकर मुनि वशिष्ठ के मन में प्रेम भर आया। उन्होंने तुरंत ही दिव्य सिंहासन मँगवाया, जिसका तेज सूर्य के समान था। उसका सौंदर्य वर्णन नहीं किया जा सकता। ब्राहमणों को सिर नवाकर राम उस पर विराज गए।

जनकसुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई॥
बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे॥

जानकी सहित रघुनाथ को देखकर मुनियों का समुदाय अत्यंत ही हर्षित हुआ। तब ब्राह्मणों ने वेदमंत्रों का उच्चारण किया। आकाश में देवता और मुनि 'जय हो, जय हो' ऐसी पुकार करने लगे।

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा॥
सुत बिलोकि हरषीं महतारी। बार बार आरती उतारी॥

(सबसे) पहले मुनि वशिष्ठ ने तिलक किया। फिर उन्होंने सब ब्राह्मणों को (तिलक करने की) आज्ञा दी। पुत्र को राजसिंहासन पर देखकर माताएँ हर्षित हुईं और उन्होंने बार-बार आरती उतारी।

बिप्रन्ह दान बिबिधि बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥
सिंघासन पर त्रिभुअन साईं। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं॥

उन्होंने ब्राह्मणों को अनेकों प्रकार के दान दिए और संपूर्ण याचकों को अयाचक बना दिया (मालामाल कर दिया)। त्रिभुवन के स्वामी राम को (अयोध्या के) सिंहासन पर (विराजित) देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाए।

छं० - नभ दुंदुभीं बाजहिं बिपुल गंधर्ब किंनर गावहीं।
नाचहिं अपछरा बृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं॥
भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते।
गहें छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते॥

आकाश में बहुत-से नगाड़े बज रहे हैं। गंधर्व और किन्नर गा रहे हैं। अप्सराओं के झुंड-के-झुंड नाच रही हैं। देवता और मुनि परमानंद प्राप्त कर रहे हैं। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न, विभीषण, अंगद, हनुमान और सुग्रीव आदि सहित क्रमशः छत्र, चँवर, पंखा, धनुष, तलवार, ढाल और शक्ति लिए हुए सुशोभित हैं।

श्री सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई।
नव अंबुधर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई॥
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे।

अंभोज नयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे॥

सीता सहित सूर्यवंश के विभूषण राम के शरीर में अनेकों कामदेवों की छवि शोभा दे रही है। नवीन जलयुक्त मेघों के समान सुंदर श्याम शरीर पर पीतांबर देवताओं के मन को भी मोहित कर रहा है। मुकुट, बाजूबंद आदि विचित्र आभूषण अंग-अंग में सजे हुए हैं। कमल के समान नेत्र हैं, चौड़ी छाती है और लंबी भुजाएँ हैं; जो उनके दर्शन करते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं।

दो॰ - वह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस।
बरनहिं सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस॥ 12(क)॥

हे पक्षीराज गरुड़ ! वह शोभा, वह समाज और वह सुख मुझसे कहते नहीं बनता। सरस्वती, शेष और वेद निरंतर उसका वर्णन करते हैं, और उसका रस (आनंद) महादेव ही जानते हैं॥ 12(क)॥

भिन्न भिन्न अस्तुति करि गए सुर निज निज धाम।
बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्रीराम॥ 12(ख)॥

सब देवता अलग-अलग स्तुति करके अपने-अपने लोक को चले गए। तब भाटों का रूप धारण करके चारों वेद वहाँ आए जहाँ श्रीराम थे॥ 12(ख)॥

प्रभु सर्बग्य कीन्ह अति आदर कृपानिधान।
लखेउ न काहूँ मरम कछु लगे करन गुन गान॥ 12(ग)॥

कृपानिधान सर्वज्ञ प्रभु ने (उन्हें पहचानकर) उनका बहुत ही आदर किया। इसका भेद किसी ने कुछ भी नहीं जाना। वेद गुणगान करने लगे॥ 12(ग)॥

छं॰ - जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुज बल हने॥
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे॥

सगुण और निर्गुण रूप! हे अनुपम रूप-लावण्ययुक्त! हे राजाओं के शिरोमणि! आपकी जय हो। आपने रावण आदि प्रचंड, प्रबल और दुष्ट निशाचरों को अपनी भुजाओं के बल से मार

डाला। आपने मनुष्य अवतार लेकर संसार के भार को नष्ट करके अत्यंत कठोर दुःखों को भस्म कर दिया। हे दयालु! हे शरणागत की रक्षा करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। मैं शक्ति (सीता) सहित शक्तिमान आपको नमस्कार करता हूँ।

तव बिषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे॥
जे नाथ करि करुना बिलोकि त्रिबिधि दुख ते निर्बहे।
भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे॥

हे हरे! आपकी दुस्तर माया के वशीभूत होने के कारण देवता, राक्षस, नाग, मनुष्य और चर, अचर सभी काल कर्म और गुणों से भरे हुए (उनके वशीभूत हुए) दिन-रात अनंत भव (आवागमन) के मार्ग में भटक रहे हैं। हे नाथ! इनमें से जिनको आपने कृपा करके (कृपादृष्टि से) देख लिया, वे (माया-जनित) तीनों प्रकार के दुःखों से छूट गए। हे जन्म-मरण के श्रम को काटने में कुशल राम! हमारी रक्षा कीजिए। हम आपको नमस्कार करते हैं।

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे॥

जिन्होंने मिथ्या ज्ञान के अभिमान में विशेष रूप से मतवाले होकर जन्म-मृत्यु (के भय) को हरनेवाली आपकी भक्ति का आदर नहीं किया, हे हरि! उन्हें देव-दुर्लभ (देवताओं को भी बड़ी कठिनता से प्राप्त होनेवाले, ब्रहमा आदि के) पद को पाकर भी हम उस पद से नीचे गिरते देखते हैं। (परंतु) जो सब आशाओं को छोड़कर आप पर विश्वास करके आपके दास हो रहते हैं, वे केवल आपका नाम ही जपकर बिना ही परिश्रम भवसागर से तर जाते हैं। हे नाथ! ऐसे आपका हम स्मरण करते हैं।

जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी।
नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी॥
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे॥

जो चरण शिव और ब्रह्मा के द्वारा पूज्य हैं, तथा जिन चरणों की कल्याणमयी रज का स्पर्श पाकर (शिला बनी हुई) गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या तर गई; जिन चरणों के नख से मुनियों द्वारा वंदित, त्रैलोक्य को पवित्र करनेवाली देवनदी गंगा निकलीं और ध्वजा, वज्र अंकुश और कमल, इन चिह्नों से युक्त जिन चरणों में वन में फिरते समय काँटे चुभ जाने से घट्ठे पड़ गए हैं; हे मुकुंद! हे राम! हे रमापति! हम आपके उन्हीं दोनों चरणकमलों को नित्य भजते रहते हैं।

अब्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे॥

वेद-शास्त्रों ने कहा है कि जिसका मूल अव्यक्त (प्रकृति) है; जो (प्रवाह रूप से) अनादि है, जिसके चार त्वचाएँ, छह तने, पचीस शाखाएँ और अनेकों पत्ते और बहुत-से फूल हैं; जिसमें कड़वे और मीठे दो प्रकार के फल लगे हैं; जिस पर एक ही बेल है, जो उसी के आश्रित रहती है; जिसमें नित्य नए पत्ते और फूल निकलते रहते हैं; ऐसे संसार वृक्ष स्वरूप (विश्व रूप में प्रकट) आपको हम नमस्कार करते हैं।

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं॥
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मागहीं।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं॥

ब्रह्म अजन्मा है, अद्वैत है, केवल अनुभव से ही जाना जाता है और मन से परे है - (जो इस प्रकार कहकर उस) ब्रह्म का ध्यान करते हैं, वे ऐसा कहा करें और जाना करें, किंतु हे नाथ! हम तो नित्य आपका सगुण यश ही गाते हैं। हे करुणा के धाम प्रभो! हे सद्गुणों की खान! हे देव! हम यह वर माँगते हैं कि मन, वचन और कर्म से विकारों को त्यागकर आपके चरणों में ही प्रेम करें।

दो० - सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार।
अंतर्धान भए पुनि गए ब्रह्म आगार॥ 13(क)॥

वेदों ने सबके देखते यह श्रेष्ठ विनती की। फिर वे अंतर्धान हो गए और ब्रह्मलोक को

चले गए॥ 13(क)॥

बैनतेय सुनु संभु तब आए जहँ रघुबीर।
बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर॥ 13(ख)॥

(काकभुशुंडि कहते हैं -) हे गरुड़ ! सुनिए, तब शिव वहाँ आए जहाँ रघुवीर थे और गद्गद् वाणी से स्तुति करने लगे। उनका शरीर पुलकावली से पूर्ण हो गया - ॥ 13(ख)॥

छं० - जय राम रमारमनं समनं। भवताप भयाकुल पाहि जनं॥
अवधेस सुरेस रमेस बिभो। सरनागत मागत पाहि प्रभो॥

हे राम! हे रमारमण (लक्ष्मीकांत)! हे जन्म-मरण के संताप का नाश करनेवाले! आपकी जय हो; आवागमन के भय से व्याकुल इस सेवक की रक्षा कीजिए। हे अवधपति! हे देवताओं के स्वामी! हे रमापति! हे विभो! मैं शरणागत आपसे यही माँगता हूँ कि हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिए।

दससीस बिनासन बीस भुजा। कृत दूरि महा महि भूरि रुजा॥
रजनीचर बृंद पतंग रहे। सर पावक तेज प्रचंड दहे॥

हे दस सिर और बीस भुजाओंवाले रावण का विनाश करके पृथ्वी के सब महान रोगों (कष्टों) को दूर करनेवाले राम! राक्षस समूहरूपी जो पतंगे थे, वे सब आपके बाणरूपी अग्नि के प्रचंड तेज से भस्म हो गए।

महि मंडल मंडन चारुतरं। धृत सायक चाप निषंग बरं।
मद मोह महा ममता रजनी। तम पुंज दिवाकर तेज अनी॥

आप पृथ्वी मंडल के अत्यंत सुंदर आभूषण हैं; आप श्रेष्ठ बाण, धनुष और तरकस धारण किए हुए हैं। महान मद, मोह और ममतारूपी रात्रि के अंधकार समूह के नाश करने के लिए आप सूर्य के तेजोमय किरण समूह हैं।

मनजात किरात निपात किए। मृग लोग कुभोग सरेन हिए॥
हति नाथ अनाथनि पाहि हरे। बिषया बन पावँर भूलि परे॥

कामदेवरूपी भील ने मनुष्यरूपी हिरनों के हृदय में कुभोगरूपी बाण मारकर उन्हें गिरा दिया है। हे नाथ! हे (पाप-ताप का हरण करनेवाले) हरे ! उसे मारकर विषयरूपी वन में

भूल पड़े हुए इन पामर अनाथ जीवों की रक्षा कीजिए।

बहु रोग बियोगन्हि लोग हए। भवदंघ्रि निरादर के फल ए॥
भव सिंधु अगाध परे नर ते। पद पंकज प्रेम न जे करते॥

लोग बहुत-से रोगों और वियोगों (दुःखों) से मारे हुए हैं। ये सब आपके चरणों के निरादर के फल हैं। जो मनुष्य आपके चरणकमलों में प्रेम नहीं करते, वे अथाह भवसागर में पड़े हैं।

अति दीन मलीन दुखी नितहीं। जिन्ह कें पद पंकज प्रीति नहीं॥
अवलंब भवंत कथा जिन्ह कें। प्रिय संत अनंत सदा तिन्ह कें॥

जिन्हें आपके चरणकमलों में प्रीति नहीं है वे नित्य ही अत्यंत दीन, मलिन (उदास) और दुःखी रहते हैं। और जिन्हें आपकी लीला-कथा का आधार है, उनको संत और भगवान सदा प्रिय लगने लगते हैं।

नहिं राग न लोभ न मान मदा। तिन्ह कें सम बैभव वा बिपदा॥
एहि ते तव सेवक होत मुदा। मुनि त्यागत जोग भरोस सदा॥

उनमें न राग (आसक्ति) है, न लोभ; न मान है, न मद। उनको संपत्ति सुख और विपत्ति (दुःख) समान है। इसी से मुनि लोग योग (साधन) का भरोसा सदा के लिए त्याग देते हैं और प्रसन्नता के साथ आपके सेवक बन जाते हैं।

करि प्रेम निरंतर नेम लिएँ। पद पंकज सेवत सुद्ध हिएँ॥
सम मानि निरादर आदरही। सब संतु सुखी बिचरंति मही॥

वे प्रेमपूर्वक नियम लेकर निरंतर शुद्ध हृदय से आपके चरणकमलों की सेवा करते रहते हैं और निरादर और आदर को समान मानकर वे सब संत सुखी होकर पृथ्वी पर विचरते हैं।

मुनि मानस पंकज भृंग भजे। रघुबीर महा रनधीर अजे॥
तव नाम जपामि नमामि हरी। भव रोग महागद मान अरी॥

हे मुनियों के मनरूपी कमल के भ्रमर! हे महान रणधीर एवं अजेय रघुवीर! मैं आपको भजता हूँ (आपकी शरण ग्रहण करता हूँ) हे हरि! आपका नाम जपता हूँ और आपको

नमस्कार करता हूँ। आप जन्म-मरणरूपी रोग की महान औषध और अभिमान के शत्रु हैं।

गुन सील कृपा परमायतनं। प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं॥
रघुनंद निकंदय द्वंद्वघनं। महिपाल बिलोकय दीनजनं॥

आप गुण, शील और कृपा के परम स्थान हैं। आप लक्ष्मीपति हैं, मैं आपको निरंतर प्रणाम करता हूँ। हे रघुनंदन! (आप जन्म-मरण, सुख-दुःख, राग-द्वेषादि) द्वंद्व समूहों का नाश कीजिए। हे पृथ्वी का पालन करनेवाले राजन। इस दीन जन की ओर भी दृष्टि डालिए।

दो० - बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥ 14(क॥

मैं आपसे बार-बार यही वरदान माँगता हूँ कि मुझे आपके चरणकमलों की अचल भक्ति और आपके भक्तों का सत्संग सदा प्राप्त हो। हे लक्ष्मीपते! हर्षित होकर मुझे यही दीजिए॥ 14(क)॥

बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास॥ 14(ख)॥

राम के गुणों का वर्णन करके उमापति महादेव हर्षित होकर कैलास को चले गए। तब प्रभु ने वानरों को सब प्रकार से सुख देनेवाले डेरे दिलवाए॥ 14(ख)॥

सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिबिध ताप भव भय दावनी॥
महाराज कर सुभ अभिषेका। सुनत लहहिं नर बिरति बिबेका॥

हे गरुड़! सुनिए, यह कथा (सबको) पवित्र करनेवाली है, (दैहिक, दैविक, भौतिक) तीनों प्रकार के तापों का और जन्म-मृत्यु के भय का नाश करनेवाली है। महाराज राम के कल्याणमय राज्याभिषेक का चरित्र (निष्कामभाव से) सुनकर मनुष्य वैराग्य और ज्ञान प्राप्त करते हैं।

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना बिधि पावहिं॥
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अंतकाल रघुपति पुर जाहीं॥

और जो मनुष्य सकामभाव से सुनते और जो गाते हैं, वे अनेकों प्रकार के सुख और संपत्ति पाते हैं। वे जगत में देवदुर्लभ सुखों को भोगकर अंतकाल में रघुनाथ के परमधाम

को जाते हैं।

सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई। लहहिं भगति गति संपति नई॥
खगपति राम कथा मैं बरनी। स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी॥

इसे जो जीवन्मुक्त, विरक्त और विषयी सुनते हैं, वे (क्रमशः) भक्ति, मुक्ति और नवीन संपत्ति (नित्य नए भोग) पाते हैं। हे पक्षीराज गरुड़! मैंने अपनी बुद्धि की पहुँच के अनुसार रामकथा वर्णन की है, जो (जन्म-मरण) भय और दुःख को हरनेवाली है।

बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी। मोह नदी कहँ सुंदर तरनी॥
नित नव मंगल कौसलपुरी। हरषित रहहिं लोग सब कुरी॥

यह वैराग्य, विवेक और भक्ति को दृढ़ करनेवाली है तथा मोहरूपी नदी (को पार करने) के लिए सुंदर नाव है। अवधपुरी में नित-नए मंगलोत्सव होते हैं। सभी वर्गों के लोग हर्षित रहते हैं।

नित नइ प्रीति राम पद पंकज। सब कें जिन्हहि नमत सिव मुनि अज॥
मंगल बहु प्रकार पहिराए। द्विजन्ह दान नाना बिधि पाए॥

राम के चरणकमलों में - जिन्हें शिव, मुनिगण और ब्रह्मा भी नमस्कार करते हैं - सबकी नित्य नवीन प्रीति है। भिक्षुकों को बहुत प्रकार के वस्त्राभूषण पहनाए गए और ब्राह्मणों ने नाना प्रकार के दान पाए।

दो० - ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति।
जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास षट बीति॥ 15॥

वानर सब ब्रह्मानंद में मग्न हैं। प्रभु के चरणों में सबका प्रेम है। उन्होंने दिन जाते जाने ही नहीं और (बात-की-बात में) छह महीने बीत गए॥ 15॥

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं। जिमि परद्रोह संत मन माहीं॥
तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिरु नाए॥

उन लोगों को अपने घर भूल ही गए। (जाग्रत की तो बात ही क्या) उन्हें स्वप्न में भी घर की सुध (याद) नहीं आती, जैसे संतों के मन में दूसरों से द्रोह करने की बात कभी नहीं आती। तब रघुनाथ ने सब सखाओं को बुलाया। सबने आकर आदर सहित सिर

नवाया।

परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे॥
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई॥

बड़े ही प्रेम से राम ने उनको अपने पास बैठाया और भक्तों को सुख देनेवाले कोमल वचन कहे - तुम लोगों ने मेरी बड़ी सेवा की है। मुँह पर किस प्रकार तुम्हारी बड़ाई करूँ?

ताते मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे॥
अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही॥

मेरे हित के लिए तुम लोगों ने घरों को तथा सब प्रकार के सुखों को त्याग दिया। इससे तुम मुझे अत्यंत ही प्रिय लग रहे हो। छोटे भाई, राज्य, संपत्ति, जानकी, अपना शरीर, घर, कुटुंब और मित्र -

सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना॥
सब कें प्रिय सेवक यह नीती। मोरें अधिक दास पर प्रीती॥

ये सभी मुझे प्रिय हैं, परंतु तुम्हारे समान नहीं। मैं झूठ नहीं कहता, यह मेरा स्वभाव है। सेवक सभी को प्यारे लगते हैं, यह नीति (नियम) है। (पर) मेरा तो दास पर (स्वाभाविक ही) विशेष प्रेम है।

दो० - अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम॥ 16॥

हे सखागण! अब सब लोग घर जाओ; वहाँ दृढ़ नियम से मुझे भजते रहना। मुझे सदा सर्वव्यापक और सबका हित करनेवाला जानकर अत्यंत प्रेम करना॥ 16॥

सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। को हम कहाँ बिसरि तन गए॥
एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे॥

प्रभु के वचन सुनकर सब-के-सब प्रेममग्न हो गए। हम कौन हैं और कहाँ हैं? यह देह की सुध भी भूल गई। वे प्रभु के सामने हाथ जोड़कर टकटकी लगाए देखते ही रह गए। अत्यंत प्रेम के कारण कुछ कह नहीं सकते।

परम प्रेम तिन्ह कर प्रभु देखा। कहा बिबिधि बिधि ग्यान बिसेषा॥
प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहिं। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं॥

प्रभु ने उनका अत्यंत प्रेम देखा, (तब) उन्हें अनेकों प्रकार से विशेष ज्ञान का उपदेश दिया। प्रभु के सम्मुख वे कुछ कह नहीं सकते। बार-बार प्रभु के चरणकमलों को देखते हैं।

तब प्रभु भूषन बसन मगाए। नाना रंग अनूप सुहाए॥
सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए॥

तब प्रभु ने अनेक रंगों के अनुपम और सुंदर गहने-कपड़े मँगवाए। सबसे पहले भरत ने अपने हाथ से सँवारकर सुग्रीव को वस्त्राभूषण पहनाए।

प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए। लंकापति रघुपति मन भाए॥
अंगद बैठ रहा नहिं डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला॥

फिर प्रभु की प्रेरणा से लक्ष्मण ने विभीषण को गहने-कपड़े पहनाए, जो रघुनाथ के मन को बहुत ही अच्छे लगे। अंगद बैठे ही रहे, वे अपनी जगह से हिले तक नहीं। उनका उत्कट प्रेम देखकर प्रभु ने उनको नहीं बुलाया।

दो० - जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ।
हियँ धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ॥ 17(क)॥

जाम्बवान और नील आदि सबको रघुनाथ ने स्वयं भूषण-वस्त्र पहनाए। वे सब अपने हृदयों में राम के रूप को धारण करके उनके चरणों में मस्तक नवाकर चले॥ 17(क)॥

तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत बोलेउ बचन मनहुँ प्रेम रसबोरि॥ 17(ख)॥

तब अंगद उठकर सिर नवाकर, नेत्रों में जल भरकर और हाथ जोड़कर अत्यंत विनम्र तथा मानो प्रेम के रस में डुबोए हुए (मधुर) वचन बोले - ॥ 17(ख)॥

सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो॥
मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोंछें घाली॥

हे सर्वज्ञ! हे कृपा और सुख के समुद्र! हे दीनों पर दया करनेवाले! हे आर्तों के बंधु!

सुनिए! हे नाथ! मरते समय मेरा पिता बालि मुझे आपकी ही गोद में डाल गया था।

असरन सरन बिरदु संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी॥
मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥

अतः हे भक्तों के हितकारी! अपना अशरण-शरण विरद (बाना) याद करके मुझे त्यागिए नहीं। मेरे तो स्वामी, गुरु, पिता और माता सब कुछ आप ही हैं। आपके चरणकमलों को छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ?

तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा॥
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना॥

हे महाराज! आप ही विचारकर कहिए, प्रभु (आप) को छोड़कर घर में मेरा क्या काम है? हे नाथ! इस ज्ञान, बुद्धि और बल से हीन बालक तथा दीन सेवक को शरण में रखिए।

नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ॥
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही॥

मैं घर की सब नीची-से-नीची सेवा करूँगा और आपके चरणकमलों को देख-देखकर भवसागर से तर जाऊँगा। ऐसा कहकर वे राम के चरणों में गिर पड़े (और बोले -) हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिए। हे नाथ! अब यह न कहिए कि तू घर जा।

दो॰ - अंगद बचन बिनीत सुनि रघुपति करुना सींव।
प्रभु उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव॥ 18(क)॥

अंगद के विनम्र वचन सुनकर करुणा की सीमा प्रभु रघुनाथ ने उनको उठाकर हृदय से लगा लिया। प्रभु के नेत्र कमलों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया॥ 18(क)॥

निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ॥ 18(ख)॥

तब भगवान ने अपने हृदय की माला, वस्त्र और मणि (रत्नों के आभूषण) बालि पुत्र अंगद को पहनाकर और बहुत प्रकार से समझाकर उनकी विदाई की॥ 18(ख)॥

भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता॥

अंगद हृदयँ प्रेम नहिं थोरा। फिरि फिरि चितव राम कीं ओरा॥

भक्त की करनी को याद करके भरत छोटे भाई शत्रुघ्न और लक्ष्मण सहित उनको पहुँचाने चले। अंगद के हृदय में थोड़ा प्रेम नहीं है (अर्थात बहुत अधिक प्रेम है)। वे फिर-फिरकर राम की ओर देखते हैं।

बार बार कर दंड प्रनामा। मन अस रहन कहहिं मोहि रामा॥
राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी॥

और बार-बार दंडवत-प्रणाम करते हैं। मन में ऐसा आता है कि राम मुझे रहने को कह दें। वे राम के देखने की, बोलने की, चलने की तथा हँसकर मिलने की रीति को याद कर-करके सोचते हैं (दुःखी होते हैं)।

प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाषी। चलेउ हृदयँ पद पंकज राखी॥
अति आदर सब कपि पहुँचाए। भाइन्ह सहित भरत पुनि आए॥

किंतु प्रभु का रुख देखकर, बहुत-से विनय वचन कहकर तथा हृदय में चरणकमलों को रखकर वे चले। अत्यंत आदर के साथ सब वानरों को पहुँचाकर भाइयों सहित भरत लौट आए।

तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भाँति बिनय कीन्हे हनुमाना॥
दिन दस करि रघुपति पद सेवा। पुनि तव चरन देखिहउँ देवा॥

तब हनुमान ने सुग्रीव के चरण पकड़कर अनेक प्रकार से विनती की और कहा - हे देव! दस (कुछ) दिन रघुनाथ की चरणसेवा करके फिर मैं आकर आपके चरणों के दर्शन करूँगा।

पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा॥
अस कहि कपि सब चले तुरंता। अंगद कहइ सुनहु हनुमंता॥

(सुग्रीव ने कहा -) हे पवनकुमार! तुम पुण्य की राशि हो (जो भगवान ने तुमको अपनी सेवा में रख लिया)। जाकर कृपाधाम राम की सेवा करो। सब वानर ऐसा कहकर तुरंत चल पड़े। अंगद ने कहा - हे हनुमान! सुनो -

दो॰ - कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि।

बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि॥ 19(क)॥

मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ, प्रभु से मेरी दंडवत कहना और रघुनाथ को बार-बार मेरी याद कराते रहना॥ 19(क)॥

अस कहि चलेउ बालिसुत फिरि आयउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत॥ 19(ख)॥

ऐसा कहकर बालिपुत्र अंगद चले, तब हनुमान लौट आए और आकर प्रभु से उनका प्रेम वर्णन किया। उसे सुनकर भगवान प्रेममग्न हो गए॥ 19(ख)॥

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि॥ 19(ग)॥

(काकभुशुंडि कहते हैं -) हे गरुड़! राम का चित्त वज्र से भी अत्यंत कठोर और फूल से भी अत्यंत कोमल है। तब कहिए, वह किसकी समझ में आ सकता है?॥ 19(ग)॥

पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा॥
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू॥

फिर कृपालु राम ने निषादराज को बुला लिया और उसे भूषण, वस्त्र प्रसाद में दिए। (फिर कहा -) अब तुम भी घर जाओ, वहाँ मेरा स्मरण करते रहना और मन, वचन तथा कर्म से धर्म के अनुसार चलना।

तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता॥
बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी॥

तुम मेरे मित्र हो और भरत के समान भाई हो। अयोध्या में सदा आते-जाते रहना। यह वचन सुनते ही उसको भारी सुख उत्पन्न हुआ। नेत्रों में (आनंद और प्रेम के आँसुओं का) जल भरकर वह चरणों में गिर पड़ा।

चरन नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा॥
रघुपति चरित देखि पुरबासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी॥

फिर भगवान के चरणकमलों को हृदय में रखकर वह घर आया और आकर अपने

कुटुंबियों को उसने प्रभु का स्वभाव सुनाया। रघुनाथ का यह चरित्र देखकर अवधपुरवासी बार-बार कहते हैं कि सुख की राशि राम धन्य हैं।

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥

राम के राज्य पर प्रतिष्ठित होने पर तीनों लोक हर्षित हो गए, उनके सारे शोक जाते रहे। कोई किसी से वैर नहीं करता। राम के प्रताप से सबकी विषमता (आंतरिक भेदभाव) मिट गई।

दो० - बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥ 20॥

सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर हुए सदा वेद मार्ग पर चलते हैं और सुख पाते हैं। उन्हें न किसी बात का भय है, न शोक है और न कोई रोग ही सताता है॥ 20॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥

राम-राज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बताई हुई नीति (मर्यादा) में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं।

चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥

धर्म अपने चारों चरणों (सत्य, शौच, दया और दान) से जगत में परिपूर्ण हो रहा है; स्वप्न में भी कहीं पाप नहीं है। पुरुष और स्त्री सभी रामभक्ति के परायण हैं और सभी परम गति (मोक्ष) के अधिकारी हैं।

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥

छोटी अवस्था में मृत्यु नहीं होती, न किसी को कोई पीड़ा होती है। सभी के शरीर सुंदर

और नीरोग हैं। न कोई दरिद्र है, न दुःखी है और न दीन ही है। न कोई मूर्ख है और न शुभ लक्षणों से हीन ही है।

सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥

सभी दंभरहित हैं, धर्मपरायण हैं और पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री सभी चतुर और गुणवान हैं। सभी गुणों का आदर करनेवाले और पंडित हैं तथा सभी ज्ञानी हैं। सभी कृतज्ञ (दूसरे के किए हुए उपकार को माननेवाले) हैं, कपट-चतुराई (धूर्तता) किसी में नहीं है।

दो० - राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं॥ 21॥

(काकभुशुंडि कहते हैं -) हे पक्षीराज गुरुड़! सुनिए। राम के राज्य में जड़, चेतन सारे जगत में काल, कर्म स्वभाव और गुणों से उत्पन्न हुए दुःख किसी को भी नहीं होते (अर्थात इनके बंधन में कोई नहीं है)॥ 21॥

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू॥

अयोध्या में रघुनाथ सात समुद्रों की मेखला (करधनी) वाली पृथ्वी के एक मात्र राजा हैं। जिनके एक-एक रोम में अनेकों ब्रह्मांड हैं, उनके लिए सात द्वीपों की यह प्रभुता कुछ अधिक नहीं है।

सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी॥
सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी॥ फिरि एहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी॥

बल्कि प्रभु की उस महिमा को समझ लेने पर तो यह कहने में (कि वे सात समुद्रों से घिरी हुई सप्त द्वीपमयी पृथ्वी के एकछत्र सम्राट हैं) उनकी बड़ी हीनता होती है, परंतु हे गरुड़! जिन्होंने वह महिमा जान भी ली है, वे भी फिर इस लीला में बड़ा प्रेम मानते हैं।

सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिबर दमसीला॥
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा॥

क्योंकि उस महिमा को भी जानने का फल यह लीला (इस लीला का अनुभव) ही है, इंद्रियों का दमन करनेवाले श्रेष्ठ महामुनि ऐसा कहते हैं। रामराज्य की सुख संपत्ति का वर्णन शेष और सरस्वती भी नहीं कर सकते।

सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी॥
एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

सभी नर-नारी उदार हैं, सभी परोपकारी हैं और ब्राह्मणों के चरणों के सेवक हैं। सभी पुरुष मात्र एक पत्नीव्रती हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी मन, वचन और कर्म से पति का हित करनेवाली हैं।

दो० - दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें राज॥ 22॥

रामचंद्र के राज्य में दंड केवल संन्यासियों के हाथों में है और भेद नाचने वालों के नृत्य समाज में है और 'जीतो' शब्द केवल मन के जीतने के लिए ही सुनाई पड़ता है (अर्थात राजनीति में शत्रुओं को जीतने तथा चोर-डाकुओं आदि को दमन करने के लिए साम, दान, दंड और भेद - ये चार उपाय किए जाते हैं। रामराज्य में कोई शत्रु है ही नहीं, इसलिए 'जीतो' शब्द केवल मन के जीतने के लिए कहा जाता है। कोई अपराध करता ही नहीं, इसलिए दंड किसी को नहीं होता, दंड शब्द केवल संन्यासियों के हाथ में रहनेवाले दंड के लिए ही रह गया है तथा सभी अनुकूल होने के कारण भेदनीति की आवश्यकता ही नहीं रह गई। भेद, शब्द केवल सुर-ताल के भेद के लिए ही कामों में आता है)॥ 22॥

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥

वनों में वृक्ष सदा फूलते और फलते हैं। हाथी और सिंह (वैर भूलकर) एक साथ रहते हैं। पक्षी और पशु सभी ने स्वाभाविक वैर भुलाकर आपस में प्रेम बढ़ा लिया है।

कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा॥
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा॥

पक्षी कूजते (मीठी बोली बोलते) हैं, भाँति-भाँति के पशुओं के समूह वन में निर्भय विचरते और आनंद करते हैं। शीतल, मंद, सुगंधित पवन चलता रहता है। भौंरे पुष्पों का रस लेकर

चलते हुए गुंजार करते जाते हैं।

लता बिटप मागें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी॥

बेलें और वृक्ष माँगने से ही मधु (मकरंद) टपका देते हैं। गौएँ मनचाहा दूध देती हैं। धरती सदा खेती से भरी रहती है। त्रेता में सत्ययुग की करनी (स्थिति) हो गई।

प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी॥
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी॥

समस्त जगत के आत्मा भगवान को जगत का राजा जानकर पर्वतों ने अनेक प्रकार की मणियों की खानें प्रकट कर दीं। सब नदियाँ श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल और सुखप्रद स्वादिष्ट जल बहाने लगीं।

सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥

समुद्र अपनी मर्यादा में रहते हैं। वे लहरों द्वारा किनारों पर रत्न डाल देते हैं, जिन्हें मनुष्य पा जाते हैं। सब तालाब कमलों से परिपूर्ण हैं। दसों दिशाओं के विभाग (अर्थात सभी प्रदेश) अत्यंत प्रसन्न हैं।

दो० - बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज॥ 23॥

रामचंद्र के राज्य में चंद्रमा अपनी (अमृतमयी) किरणों से पृथ्वी को पूर्ण कर देते हैं। सूर्य उतना ही तपते हैं, जितने की आवश्यकता होती है और मेघ माँगने से (जब जहाँ जितना चाहिए उतना ही) जल देते हैं॥ 23॥

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे॥
श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर॥

प्रभु राम ने करोड़ों अश्वमेध यज्ञ किए और ब्राह्मणों को अनेकों दान दिए। राम वेदमार्ग के पालनेवाले, धर्म की धुरी को धारण करनेवाले, (प्रकृतिजन्य सत्त्व, रज और तम) तीनों

गुणों से अतीत और भोगों (ऐश्वर्य) में इंद्र के समान हैं।

पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील बिनीता॥
जानति कृपासिंधु प्रभुताई॥ सेवति चरन कमल मन लाई॥

शोभा की खान, सुशील और विनम्र सीता सदा पति के अनुकूल रहती हैं। वे कृपासागर राम की प्रभुता (महिमा) को जानती हैं और मन लगाकर उनके चरणकमलों की सेवा करती हैं।

जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी॥
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई॥

यद्यपि घर में बहुत-से (अपार) दास और दासियाँ हैं और वे सभी सेवा की विधि में कुशल हैं, तथापि (स्वामी की सेवा का महत्त्व जाननेवाली) सीता घर की सब सेवा अपने ही हाथों से करती हैं और रामचंद्र की आज्ञा का अनुसरण करती हैं।

जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ॥
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं॥

कृपासागर राम जिस प्रकार से सुख मानते हैं, श्री (सीता) वही करती हैं; क्योंकि वे सेवा की विधि को जाननेवाली हैं। घर में कौसल्या आदि सभी सासुओं की सीता सेवा करती हैं, उन्हें किसी बात का अभिमान और मद नहीं है।

उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता। जगदंबा संततमनिंदिता॥

(शिव कहते हैं -) हे उमा! जगज्जननी रमा (सीता) ब्रह्मा आदि देवताओं से वंदित और सदा अनिंदित (सर्वगुण संपन्न) हैं।

दो० - जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ॥ 24॥

देवता जिनका कृपाकटाक्ष चाहते हैं, परंतु वे उनकी ओर देखती भी नहीं, वे ही लक्ष्मी (जानकी) अपने (महामहिम) स्वभाव को छोड़कर राम के चरणारविंद में प्रीति करती हैं॥ 24॥

सेवहिं सानकूल सब भाई। राम चरन रति अति अधिकाई॥
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहहीं॥

सब भाई अनुकूल रहकर उनकी सेवा करते हैं। राम के चरणों में उनकी अत्यंत अधिक प्रीति है। वे सदा प्रभु का मुखारविंद ही देखते रहते हैं कि कृपालु राम कभी हमें कुछ सेवा करने को कहें।

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती॥
हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा॥

राम भी भाइयों पर प्रेम करते हैं और उन्हें नाना प्रकार की नीतियाँ सिखलाते हैं। नगर के लोग हर्षित रहते हैं और सब प्रकार के देवदुर्लभ (देवताओं को भी कठिनता से प्राप्त होने योग्य) भोग भोगते हैं।

अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। श्री रघुबीर चरन रति चहहीं॥
दुइ सुत सुंदर सीताँ जाए। लव कुस बेद पुरानन्ह गाए॥

वे दिन-रात ब्रह्मा को मनाते रहते हैं और (उनसे) श्री रघुवीर के चरणों में प्रीति चाहते हैं। सीता के लव और कुश - ये दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनका वेद-पुराणों ने वर्णन किया है।

दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर। हरि प्रतिबिंब मनहुँ अति सुंदर॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील घनेरे॥

वे दोनों ही विजयी (विख्यात योद्धा), नम्र और गुणों के धाम हैं और अत्यंत सुंदर हैं, मानो हरि के प्रतिबिंब ही हों। दो-दो पुत्र सभी भाइयों के हुए, जो बड़े ही सुंदर, गुणवान और सुशील थे।

दो० - ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानंद घन कर नर चरित उदार॥ 25॥

जो (बौद्धिक) ज्ञान, वाणी और इंद्रियों से परे और अजन्मा है तथा माया, मन और गुणों के परे है, वही सच्चिदानंदघन भगवान श्रेष्ठ नरलीला करते हैं॥ 25॥

प्रातकाल सरऊ करि मज्जन। बैठहिं सभाँ संग द्विज सज्जन॥

बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥

प्रातःकाल सरयू में स्नान करके ब्राह्मणों और सज्जनों के साथ सभा में बैठते हैं। वशिष्ठ वेद और पुराणों की कथाएँ वर्णन करते हैं और राम सुनते हैं, यद्यपि वे सब जानते हैं।

अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं। देखि सकल जननीं सुख भरहीं॥
भरत सत्रुहन दोनउ भाई। सहित पवनसुत उपबन जाई॥

वे भाइयों को साथ लेकर भोजन करते हैं। उन्हें देखकर सभी माताएँ आनंद से भर जाती हैं। भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई हनुमान सहित उपवनों में जाकर,

बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा॥
सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं॥

वहाँ बैठकर राम के गुणों की कथाएँ पूछते हैं और हनुमान अपनी सुंदर बुद्धि से उन गुणों में गोता लगाकर उनका वर्णन करते हैं। राम के निर्मल गुणों को सुनकर दोनों भाई अत्यंत सुख पाते हैं और विनय करके बार-बार कहलवाते हैं।

सब कें गृह गृह होहिं पुराना। राम चरित पावन बिधि नाना॥
नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवस निसि जात न जानहिं॥

सबके यहाँ घर-घर में पुराणों और अनेक प्रकार के पवित्र रामचरित्रों की कथा होती है। पुरुष और स्त्री सभी राम का गुणगान करते हैं और इस आनंद में दिन-रात का बीतना भी नहीं जान पाते।

दो० - अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज॥ 26॥

जहाँ भगवान राम स्वयं राजा होकर विराजमान हैं, उस अवधपुरी के निवासियों के सुख-संपत्ति के समुदाय का वर्णन हजारों शेष भी नहीं कर सकते॥ 26॥

नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा॥
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं॥

नारद आदि और सनक आदि मुनीश्वर सब कोसलराज राम के दर्शन के लिए प्रतिदिन

अयोध्या आते हैं और उस (दिव्य) नगर को देखकर वैराग्य भुला देते हैं।

जातरूप मनि रचित अटारीं। नाना रंग रुचिर गच ढारीं॥
पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर। रचे कँगूरा रंग रंग बर॥

(दिव्य) स्वर्ण और रत्नों से बनी हुई अटारियाँ हैं। उनमें (मणि-रत्नों की) अनेक रंगों की सुंदर ढली हुई फर्शें हैं। नगर के चारों ओर अत्यंत सुंदर परकोटा बना है, जिस पर सुंदर रंग-बिरंगे कँगूरे बने हैं।

नव ग्रह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई॥
लमहि बहु रंग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिबर मन नाचा॥

मानो नवग्रहों ने बड़ी भारी सेना बनाकर अमरावती को आकर घेर लिया हो। पृथ्वी (सड़कों) पर अनेकों रंगों के (दिव्य) काँचों (रत्नों) की गच बनाई (ढाली) गई है, जिसे देखकर श्रेष्ठ मुनियों के भी मन नाच उठते हैं।

धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत॥
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं॥

उज्ज्वल महल ऊपर आकाश को चूम (छू) रहे हैं। महलों पर के कलश (अपने दिव्य प्रकाश से) मानो सूर्य, चंद्रमा के प्रकाश की भी निंदा (तिरस्कार) करते हैं। (महलों में) बहुत-सी मणियों से रचे हुए झरोखे सुशोभित हैं और घर-घर में मणियों के दीपक शोभा पा रहे हैं।

छं॰ - मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची॥
सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे॥

घरों में मणियों के दीपक शोभा दे रहे हैं। मूँगों की बनी हुई देहलियाँ चमक रही हैं। मणियों (रत्नों) के खंभे हैं। मरकतमणियों (पन्नों) से जड़ी हुई सोने की दीवारें ऐसी सुंदर हैं मानो ब्रह्मा ने खास तौर से बनाई हों। महल सुंदर, मनोहर और विशाल हैं। उनमें सुंदर स्फटिक के आँगन बने हैं। प्रत्येक द्वार पर बहुत-से खरादे हुए हीरों से जड़े हुए सोने के

किंवाड़ हैं।

दो॰ - चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ।
राम चरित जे निरख मुनि ते मन लेहिं चोराइ॥ 27॥

घर-घर में सुंदर चित्रशालाएँ हैं, जिनमें राम के चरित्र बड़ी सुंदरता के साथ सँवारकर अंकित किए हुए हैं। जिन्हें मुनि देखते हैं, तो वे उनके भी चित्त को चुरा लेते हैं॥ 27॥

सुमन बाटिका सबहिं लगाईं। बिबिध भाँति करि जतन बनाईं॥
लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसंत कि नाईं॥

सभी लोगों ने भिन्न-भिन्न प्रकार की पुष्पों की वाटिकाएँ यत्न करके लगा रखी हैं, जिनमें बहुत जातियों की सुंदर और ललित लताएँ सदा वसंत की तरह फूलती रहती हैं।

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिबिधि सदा बह सुंदर।
नाना खग बालकन्हि जिआए। बोलत मधुर उड़ात सुहाए॥

भौंरे मनोहर स्वर से गुंजार करते हैं। सदा तीनों प्रकार की सुंदर वायु बहती रहती है। बालकों ने बहुत-से पक्षी पाल रखे हैं, जो मधुर बोली बोलते हैं और उड़ने में सुंदर लगते हैं।

मोर हंस सारस पारावत। भवननि पर सोभा अति पावत॥
जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं॥

मोर, हंस, सारस और कबूतर घरों के ऊपर बड़ी ही शोभा पाते हैं। वे पक्षी (मणियों की दीवारों में और छत में) जहाँ-तहाँ अपनी परछाईं देखकर (वहाँ दूसरे पक्षी समझकर) बहुत प्रकार से मधुर बोली बोलते और नृत्य करते हैं।

सुक सारिका पढ़ावहिं बालक। कहहु राम रघुपति जनपालक॥
राज दुआर सकल बिधि चारू। बीथीं चौहट रुचिर बजारू॥

बालक तोता-मैना को पढ़ाते हैं कि कहो - 'राम' 'रघुपति' 'जनपालक'। राजद्वार सब प्रकार से सुंदर है। गलियाँ, चौराहे और बाजार सभी सुंदर हैं।

छं॰ - बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।

जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए॥
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरि सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे॥

सुंदर बाजार है, जो वर्णन करते नहीं बनता; वहाँ वस्तुएँ बिना ही मूल्य मिलती हैं। जहाँ स्वयं लक्ष्मीपति राजा हों, वहाँ की संपत्ति का वर्णन कैसे किया जाए? बजाज (कपड़े का व्यापार करनेवाले), सराफ (रुपए-पैसे का लेन-देन करनेवाले) आदि वणिक (व्यापारी) बैठे हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो अनेक कुबेर हों। स्त्री, पुरुष बच्चे और बूढ़े जो भी हैं, सभी सुखी, सदाचारी और सुंदर हैं।

दो॰ - उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर॥ 28॥

नगर के उत्तर दिशा में सरयू बह रही है, जिनका जल निर्मल और गहरा है। मनोहर घाट बँधे हुए हैं, किनारे पर जरा भी कीचड़ नहीं है॥ 28॥

दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा॥
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना॥

अलग कुछ दूरी पर वह सुंदर घाट है, जहाँ घोड़ों और हाथियों के ठट्ट-के-ठट्ट जल पिया करते हैं। पानी भरने के लिए बहुत-से (जनाने) घाट हैं, जो बड़े ही मनोहर हैं। वहाँ पुरुष स्नान नहीं करते।

राजघाट सब बिधि सुंदर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर॥
तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुँ दिसि तिन्ह के उपबन सुंदर॥

राजघाट सब प्रकार से सुंदर और श्रेष्ठ है, जहाँ चारों वर्णों के पुरुष स्नान करते हैं। सरयू के किनारे-किनारे देवताओं के मंदिर हैं, जिनके चारों ओर सुंदर उपवन (बगीचे) हैं।

कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहिं ग्यान रत मुनि संन्यासी॥
तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई॥

नदी के किनारे कहीं-कहीं विरक्त और ज्ञानपरायण मुनि और संन्यासी निवास करते हैं। सरयू के किनारे-किनारे सुंदर तुलसी के झुंड-के-झुंड बहुत-से पेड़ मुनियों ने लगा रखे हैं।

पुर सोभा कछु बरनि न जाई। बाहेर नगर परम रुचिराई॥
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपबन बापिका तड़ागा॥

नगर की शोभा तो कुछ कही नहीं जाती। नगर के बाहर भी परम सुंदरता है। अयोध्यापुरी के दर्शन करते ही संपूर्ण पाप भाग जाते हैं। (वहाँ) वन, उपवन, बावलियाँ और तालाब सुशोभित हैं।

छं॰ - बापीं तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं॥
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं॥

अनुपम बावलियाँ, तालाब और मनोहर तथा विशाल कुएँ शोभा दे रहे हैं, जिनकी सुंदर (रत्नों की) सीढ़ियाँ और निर्मल जल देखकर देवता और मुनि तक मोहित हो जाते हैं। (तालाबों में) अनेक रंगों के कमल खिल रहे हैं, अनेकों पक्षी कूज रहे हैं और भौंरे गुंजार कर रहे हैं। (परम) रमणीय बगीचे कोयल आदि पक्षियों की (सुंदर बोली से) मानो राह चलने वालों को बुला रहे हैं।

दो॰ - रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ॥ 29॥

स्वयं लक्ष्मीपति भगवान जहाँ राजा हों, उस नगर का कहीं वर्णन किया जा सकता है? अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ और समस्त सुख-संपत्तियाँ अयोध्या में छा रही हैं॥ 29॥

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहइ सिखावहिं॥
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि। सोभा सील रूप गुन धामहि॥

लोग जहाँ-तहाँ रघुनाथ के गुण गाते हैं और बैठकर एक-दूसरे को यही सीख देते हैं कि शरणागत का पालन करनेवाले राम को भजो; शोभा, शील, रूप और गुणों के धाम रघुनाथ को भजो।

जलज बिलोचन स्यामल गातहि। पलक नयन इव सेवक त्रातहि॥
धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। संत कंज बन रबि रनधीरहि॥

कमलनयन और साँवले शरीरवाले को भजो। पलक जिस प्रकार नेत्रों की रक्षा करती हैं उसी प्रकार अपने सेवकों की रक्षा करनेवाले को भजो। सुंदर बाण, धनुष और तरकस धारण करनेवाले को भजो। संतरूपी कमलवन के (खिलाने के) सूर्य रूप रणधीर राम को भजो।

काल कराल ब्याल खगराजहि। नमत राम अकाम ममता जहि॥
लोभ मोह मृगजूथ किरातहि। मनसिज करि हरि जन सुखदातहि॥

कालरूपी भयानक सर्प के भक्षण करनेवाले राम रूप गरुड़ को भजो। निष्कामभाव से प्रणाम करते ही ममता का नाश कर देनेवाले राम को भजो। लोभ-मोहरूपी हरिनों के समूह के नाश करनेवाले राम किरात को भजो। कामदेवरूपी हाथी के लिए सिंह रूप तथा सेवकों को सुख देनेवाले राम को भजो।

संसय सोक निबिड़ तम भानुहि। दनुज गहन घन दहन कृसानुहि॥
जनकसुता समेत रघुबीरहि। कस न भजहु भंजन भव भीरहि॥

संशय और शोकरूपी घने अंधकार का नाश करनेवाले राम रूप सूर्य को भजो। राक्षसरूपी घने वन को जलानेवाले राम रूप अग्नि को भजो। जन्म-मृत्यु के भय को नाश करनेवाले जानकी समेत रघुवीर को क्यों नहीं भजते?

बहु बासना मसक हिम रासिहि। सदा एकरस अज अबिनासिहि॥
मुनि रंजन भंजन महि भारहि। तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि॥

बहुत-सी वासनाओंरूपी मच्छरों को नाश करनेवाले राम रूप हिमराशि (बर्फ के ढेर) को भजो। नित्य एकरस, अजन्मा और अविनाशी रघुनाथ को भजो। मुनियों को आनंद देनेवाले, पृथ्वी का भार उतारनेवाले और तुलसीदास के उदार (दयालु) स्वामी राम को भजो।

दो॰ - एहि बिधि नगर नारि नर करहिं राम गुन गान।
सानुकूल सब पर रहहिं संतत कृपानिधान॥ 30॥

इस प्रकार नगर के स्त्री-पुरुष राम का गुण-गान करते हैं और कृपानिधान राम सदा सब पर अत्यंत प्रसन्न रहते हैं॥ 30॥

जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका॥

(काकभुशुंडि कहते हैं -) हे पक्षीराज गरुड़! जब से रामप्रतापरूपी अत्यंत प्रचंड सूर्य उदित हुआ, तब से तीनों लोकों में पूर्ण प्रकाश भर गया है। इससे बहुतों को सुख और बहुतों के मन में शोक हुआ।

जिन्हहि सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अबिद्या निसा नसानी॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने॥

जिन-जिन को शोक हुआ, उन्हें मैं बखानकर कहता हूँ (सर्वत्र प्रकाश छा जाने से) पहले तो अविद्यारूपी रात्रि नष्ट हो गई। पापरूपी उल्लू जहाँ-तहाँ छिप गए और काम-क्रोधरूपी कुमुद मुँद गए।

बिबिध कर्म गुन काल सुभाउ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा॥

भाँति-भाँति के (बंधनकारक) कर्म, गुण, काल और स्वभाव - ये चकोर हैं, जो (रामप्रतापरूपी सूर्य के प्रकाश में) कभी सुख नहीं पाते। मत्सर (डाह), मान, मोह और मदरूपी जो चोर हैं, उनका हुनर (कला) भी किसी ओर नहीं चल पाता।

धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना। ए पंकज बिकसे बिधि नाना॥
सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ए कोक अनेका॥

धर्मरूपी तालाब में ज्ञान, विज्ञान - ये अनेकों प्रकार के कमल खिल उठे। सुख, संतोष, वैराग्य और विवेक - ये अनेकों चकवे शोकरहित हो गए।

दो० - यह प्रताप रबि जाकें उर जब करइ प्रकास।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास॥ 31॥

यह रामप्रतापरूपी सूर्य जिसके हृदय में जब प्रकाश करता है, तब जिनका वर्णन पीछे से किया गया है, वे (धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सुख, संतोष, वैराग्य और विवेक) बढ़ जाते हैं और जिनका वर्णन पहले किया गया है, वे (अविद्या, पाप, काम, क्रोध, कर्म, काल, गुण, स्वभाव आदि) नाश को प्राप्त होते (नष्ट हो जाते) हैं॥ 31॥

भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमारा॥
सुंदर उपबन देखन गए। सब तरु कुसुमित पल्लव नए॥

एक बार भाइयों सहित राम परम प्रिय हनुमान को साथ लेकर सुंदर उपवन देखने गए। वहाँ के सब वृक्ष फूले हुए और नए पत्तों से युक्त थे।

जानि समय सनकादिक आए। तेज पुंज गुन सील सुहाए॥
ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना॥

सुअवसर जानकर सनकादि मुनि आए, जो तेज के पुंज, सुंदर गुण और शील से युक्त तथा सदा ब्रह्मानंद में लवलीन रहते हैं। देखने में तो वे बालक लगते हैं, परंतु हैं बहुत समय के।

रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा॥
आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं॥

मानो चारों वेद ही बालक रूप धारण किए हों। वे मुनि समदर्शी और भेदरहित हैं। दिशाएँ ही उनके वस्त्र हैं। उनके एक ही व्यसन है कि जहाँ रघुनाथ की चरित्र कथा होती है वहाँ जाकर वे उसे अवश्य सुनते हैं।

तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घटसंभव मुनिबर ग्यानी॥
राम कथा मुनिबर बहु बरनी। ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी॥

(शिव कहते हैं -) हे भवानी! सनकादि मुनि वहाँ गए थे (वहीं से चले आ रहे थे) जहाँ ज्ञानी मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य रहते थे। श्रेष्ठ मुनि ने राम की बहुत-सी कथाएँ वर्णन की थीं, जो ज्ञान उत्पन्न करने में उसी प्रकार समर्थ हैं, जैसे अरणि लकड़ी से अग्नि उत्पन्न होती है।

दो॰ - देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह।
स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह॥ 32॥

सनकादि मुनियों को आते देखकर राम ने हर्षित होकर दंडवत किया और स्वागत (कुशल) पूछकर प्रभु ने (उनके) बैठने के लिए अपना पीतांबर बिछा दिया॥ 32॥

कीन्ह दंडवत तीनिउँ भाई। सहित पवनसुत सुख अधिकाई॥

मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी॥

फिर हनुमान सहित तीनों भाइयों ने दंडवत की, सबको बड़ा सुख हुआ। मुनि रघुनाथ की अतुलनीय छवि देखकर उसी में मग्न हो गए। वे मन को रोक न सके।

स्यामल गात सरोरुह लोचन। सुंदरता मंदिर भव मोचन॥
एकटक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं॥

वे जन्म-मृत्यु (के चक्र) से छुड़ानेवाले, श्याम शरीर, कमलनयन, सुंदरता के धाम राम को टकटकी लगाए देखते ही रह गए, पलक नहीं मारते और प्रभु हाथ जोड़े सिर नवा रहे हैं।

तिन्ह कै दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक सरीरा॥
कर गहि प्रभु मुनिबर बैठारे। परम मनोहर बचन उचारे॥

उनकी (प्रेमविह्वल) दशा देखकर (उन्हीं की भाँति) रघुनाथ के नेत्रों से भी (प्रेमाश्रुओं का) जल बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया। तदनंतर प्रभु ने हाथ पकड़कर श्रेष्ठ मुनियों को बैठाया और परम मनोहर वचन कहे-

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हरें दरस जाहिं अघ खीसा॥
बड़े भाग पाइब सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा॥

हे मुनीश्वरो! सुनिए, आज मैं धन्य हूँ। आपके दर्शनों ही से (सारे) पाप नष्ट हो जाते हैं। बड़े ही भाग्य से सत्संग की प्राप्ति होती है, जिससे बिना ही परिश्रम जन्म-मृत्यु का चक्र नष्ट हो जाता है।

दो० - संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ॥ 33॥

संत का संग मोक्ष (भव-बंधन से छूटने) का और कामी का संग जन्म-मृत्यु के बंधन में पड़ने का मार्ग है। संत, कवि और पंडित तथा वेद, पुराण (आदि) सभी सद्‌ग्रंथ ऐसा कहते हैं॥ 33॥

सुनि प्रभु बचन हरषि मुनि चारी। पुलकित तन अस्तुति अनुसारी॥
जय भगवंत अनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय॥

प्रभु के वचन सुनकर चारों मुनि हर्षित होकर, पुलकित शरीर से स्तुति करने लगे - हे भगवन! आपकी जय हो। आप अंतरहित, विकाररहित, पापरहित, अनेक (सब रूपों में प्रकट), एक (अद्वितीय) और करुणामय हैं।

जय निर्गुन जय जय गुन सागर। सुख मंदिर सुंदर अति नागर॥
जय इंदिरा रमन जय भूधर। अनुपम अज अनादि सोभाकर॥

हे निर्गुण! आपकी जय हो। हे गुण के समुद्र! आपकी जय हो, जय हो। आप सुख के धाम, (अत्यंत) सुंदर और अति चतुर हैं। हे लक्ष्मीपति! आपकी जय हो। हे पृथ्वी के धारण करनेवाले! आपकी जय हो। आप उपमारहित, अजन्मे, अनादि और शोभा की खान हैं।

ग्यान निधान अमान मानप्रद। पावन सुजस पुरान बेद बद॥
तग्य कृतग्य अग्यता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन॥

आप ज्ञान के भंडार, (स्वयं) मानरहित और (दूसरों को) मान देनेवाले हैं। वेद और पुराण आपका पावन सुंदर यश गाते हैं। आप तत्त्व के जाननेवाले, की हुई सेवा को माननेवाले और अज्ञान का नाश करनेवाले हैं। हे निरंजन (मायारहित)! आपके अनेकों (अनंत) नाम हैं और कोई नाम नहीं है (अर्थात आप सब नामों के परे हैं)।

सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय। बससि सदा हम कहुँ परिपालय
द्वंद बिपति भव फंद बिभंजय। हृदि बसि राम काम मद गंजय॥

आप सर्वरूप हैं, सब में व्याप्त हैं और सबके हृदयरूपी घर में सदा निवास करते हैं; (अतः) आप हमारा परिपालन कीजिए। (राग-द्वेष, अनुकूलता-प्रतिकूलता, जन्म-मृत्यु आदि) द्वंद्व, विपत्ति और जन्म-मत्यु के जाल को काट दीजिए। हे राम! आप हमारे हृदय में बसकर काम और मद का नाश कर दीजिए।

दो॰ - परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम॥ 34॥

आप परमानंद स्वरूप, कृपा के धाम और मन की कामनाओं को परिपूर्ण करनेवाले हैं। हे श्री राम! हमको अपनी अविचल प्रेमा-भक्ति दीजिए॥ 34॥

देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिबिधि ताप भव दाप नसावनि॥

प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु। होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु॥

हे रघुनाथ! आप हमें अपनी अत्यंत पवित्र करनेवाली और तीनों प्रकार के तापों और जन्म-मरण के क्लेशों का नाश करनेवाली भक्ति दीजिए। हे शरणागतों की कामना पूर्ण करने के लिए कामधेनु और कल्पवृक्ष रूप प्रभो! प्रसन्न होकर हमें यही वर दीजिए।

भव बारिधि कुंभज रघुनायक। सेवत सुलभ सकल सुख दायक॥
मन संभव दारुन दुख दारय। दीनबंधु समता बिस्तारय॥

हे रघुनाथ! आप जन्म-मृत्यु रूप समुद्र को सोखने के लिए अगस्त्य मुनि के समान हैं। आप सेवा करने में सुलभ हैं तथा सब सुखों के देनेवाले हैं। हे दीनबंधो! मन से उत्पन्न दारुण दुःखों का नाश कीजिए और (हममें) समदृष्टि का विस्तार कीजिए।

आस त्रास इरिषादि निवारक। बिनय बिबेक बिरति बिस्तारक॥
भूप मौलि मनि मंडन धरनी। देहि भगति संसृति सरि तरनी॥

आप (विषयों की) आशा, भय और ईर्ष्या आदि के निवारण करनेवाले हैं तथा विनय, विवेक और वैराग्य के विस्तार करनेवाले हैं। हे राजाओं के शिरोमणि एवं पृथ्वी के भूषण राम! संसृति (जन्म-मृत्यु के प्रवाह) रूपी नदी के लिए नौकारूप अपनी भक्ति प्रदान कीजिए।

मुनि मन मानस हंस निरंतर। चरन कमल बंदित अज संकर॥
रघुकुल केतु सेतु श्रुति रच्छक। काल करम सुभाउ गुन भच्छक॥

हे मुनियों के मनरूपी मानसरोवर में निरंतर निवास करनेवाले हंस! आपके चरणकमल ब्रह्मा और शिव के द्वारा वंदित हैं। आप रघुकुल के केतु, वेदमर्यादा के रक्षक और काल, कर्म, स्वभाव तथा गुण (रूप बंधनों) के भक्षक (नाशक) हैं।

तारन तरन हरन सब दूषन। तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन॥

आप तरन-तारन (स्वयं तरे हुए और दूसरों को तारनेवाले) तथा सब दोषों को हरनेवाले हैं। तीनों लोकों के विभूषण आप ही तुलसीदास के स्वामी हैं।

दो० - बार-बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिरु नाइ।
ब्रह्म भवन सनकादि गे अति अभीष्ट बर पाइ॥ 35॥

प्रेम सहित बार-बार स्तुति करके और सिर नवाकर तथा अपना अत्यंत मनचाहा वर पाकर सनकादि मुनि ब्रह्मलोक को गए॥ 35॥

सनकादिक बिधि लोक सिधाए। भ्रातन्ह राम चरन सिर नाए॥
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं। चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं॥

सनकादि मुनि ब्रह्मलोक को चले गए। तब भाइयों ने राम के चरणों में सिर नवाया। सब भाई प्रभु से पूछते सकुचाते हैं। (इसलिए) सब हनुमान की ओर देख रहे हैं।

सुनी चहहिं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी॥
अंतरजामी प्रभु सभ जाना। बूझत कहहु काह हनुमाना॥

वे प्रभु केमुख की वाणी सुनना चाहते हैं, जिसे सुनकर सारे भ्रमों का नाश हो जाता है। अंतर्यामी प्रभु सब जान गए और पूछने लगे - कहो हनुमान! क्या बात है?

जोरि पानि कह तब हनुमंता। सुनहु दीनदयाल भगवंता॥
नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं। प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं॥

तब हनुमान हाथ जोड़कर बोले - हे दीनदयालु भगवान! सुनिए। हे नाथ! भरत कुछ पूछना चाहते हैं, पर प्रश्न करते मन में सकुचा रहे हैं।

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ॥
सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना। सुनहु नाथ प्रनतारति हरना॥

(भगवान ने कहा -) हनुमान! तुम तो मेरा स्वभाव जानते ही हो। भरत के और मेरे बीच में कभी भी कोई अंतर (भेद) है? प्रभु के वचन सुनकर भरत ने उनके चरण पकड़ लिए (और कहा -) हे नाथ! हे शरणागत के दुःखों को हरनेवाले! सुनिए।

दो० - नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहुँ सोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारिहि कृपानंद संदोह॥ 36॥

हे नाथ! न तो मुझे कुछ संदेह है और न स्वप्न में भी शोक और मोह है। हे कृपा और आनंद के समूह! यह केवल आपकी ही कृपा का फल है॥ 36॥

करउँ कृपानिधि एक ढिठाई। मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई॥

संतन्ह कै महिमा रघुराई। बहु बिधि बेद पुरानन्ह गाई॥

तथापि हे कृपानिधान! मैं आप से एक धृष्टता करता हूँ। मैं सेवक हूँ और आप सेवक को सुख देनेवाले हैं (इससे मेरी धृष्टता को क्षमा कीजिए और मेरे प्रश्न का उत्तर देकर सुख दीजिए)। हे रघुनाथ! वेद-पुराणों ने संतों की महिमा बहुत प्रकार से गाई है।

श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि बड़ाई। तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई॥
सुना चहउँ प्रभु तिन्ह कर लच्छन। कृपासिंधु गुन ग्यान बिचच्छन॥

आपने भी श्रीमुख से उनकी बड़ाई की है और उन पर प्रभु (आप) का प्रेम भी बहुत है। हे प्रभो! मैं उनके लक्षण सुनना चाहता हूँ। आप कृपा के समुद्र हैं और गुण तथा ज्ञान में अत्यंत निपुण हैं।

संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई॥
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित श्रुति पुरान बिख्याता॥

हे शरणागत का पालन करनेवाले! संत और असंत के भेद अलग-अलग करके मुझको समझाकर कहिए। (राम ने कहा -) हे भाई! संतों के लक्षण (गुण) असंख्य हैं, जो वेद और पुराणों में प्रसिद्ध हैं।

संत असंतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई॥

संत और असंतों की करनी ऐसी है जैसे कुल्हाड़ी और चंदन का आचरण होता है। हे भाई! सुनो, कुल्हाड़ी चंदन को काटती है (क्योंकि उसका स्वभाव या काम ही वृक्षों को काटना है); किंतु चंदन अपने स्वभाववश अपना गुण देकर उसे (काटनेवाली कुल्हाड़ी को) सुगंध से सुवासित कर देता है।

दो० - ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड॥ 37॥

इसी गुण के कारण चंदन देवताओं के सिरों पर चढ़ता है और जगत का प्रिय हो रहा है और कुल्हाड़ी के मुख को यह दंड मिलता है कि उसको आग में जलाकर फिर घन से पीटते हैं॥ 37॥

बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी॥

संत विषयों में लंपट (लिप्त) नहीं होते, शील और सद्‌गुणों की खान होते हैं। उन्हें पराया दुःख देखकर दुःख और सुख देखकर सुख होता है। वे (सबमें, सर्वत्र, सब समय) समता रखते हैं, उनके मन कोई उनका शत्रु नहीं है, वे मद से रहित और वैराग्यवान होते हैं तथा लोभ, क्रोध, हर्ष और भय का त्याग किए हुए रहते हैं।

कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी॥

उनका चित्त बड़ा कोमल होता है। वे दीनों पर दया करते हैं तथा मन, वचन और कर्म से मेरी निष्कपट (विशुद्ध) भक्ति करते हैं। सबको सम्मान देते हैं, पर स्वयं मानरहित होते हैं। हे भरत! वे प्राणी (संतजन) मेरे प्राणों के समान हैं।

बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन॥
सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री॥

उनको कोई कामना नहीं होती। वे मेरे नाम के परायण होते हैं। शांति, वैराग्य, विनय और प्रसन्नता के घर होते हैं। उनमें शीलता, सरलता, सबके प्रति मित्र भाव और ब्राह्मण के चरणों में प्रीति होती है, जो धर्मों को उत्पन्न करनेवाली है।

ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं॥

हे तात! ये सब लक्षण जिसके हृदय में बसते हों, उसको सदा सच्चा संत जानना। जो शम (मन के निग्रह), दम (इंद्रियों के निग्रह), नियम और नीति से कभी विचलित नहीं होते और मुख से कभी कठोर वचन नहीं बोलते,

दो० - निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज॥ 38॥

जिन्हें निंदा और स्तुति (बड़ाई) दोनों समान हैं और मेरे चरणकमलों में जिनकी ममता है, वे गुणों के धाम और सुख की राशि संतजन मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं॥ 38॥

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई॥

अब असंतों (दुष्टों) का स्वभाव सुनो; कभी भूलकर भी उनकी संगति नहीं करनी चाहिए। उनका संग सदा दुःख देनेवाला होता है। जैसे हरहाई (बुरी जाति की) गाय कपिला (सीधी और दुधार) गाय को अपने संग से नष्ट कर डालती है।

खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई॥

दुष्टों के हृदय में बहुत अधिक संताप रहता है। वे पराई संपत्ति (सुख) देखकर सदा जलते रहते हैं। वे जहाँ कहीं दूसरे की निंदा सुन पाते हैं, वहाँ ऐसे हर्षित होते हैं मानो रास्ते में पड़ी निधि (खजाना) पा ली हो।

काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों॥

वे काम, क्रोध, मद और लोभ के परायण तथा निर्दयी, कपटी, कुटिल और पापों के घर होते हैं। वे बिना ही कारण सब किसी से वैर किया करते हैं। जो भलाई करता है उसके साथ बुराई भी करते हैं।

झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना।
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा॥

उनका झूठा ही लेना और झूठा ही देना होता है। झूठा ही भोजन होता है और झूठा ही चबेना होता है (अर्थात वे लेने-देने के व्यवहार में झूठ का आश्रय लेकर दूसरों का हक मार लेते हैं अथवा झूठी डींग हाँका करते हैं कि हमने लाखों रुपए ले लिए, करोड़ों का दान कर दिया। इसी प्रकार खाते हैं चने की रोटी और कहते हैं कि आज खूब माल खाकर आए। अथवा चबेना चबाकर रह जाते हैं और कहते हैं हमें बढ़िया भोजन से वैराग्य है, इत्यादि। मतलब यह कि वे सभी बातों में झूठ ही बोला करते हैं)। जैसे मोर (बहुत मीठा बोलता है, परंतु उस) का हृदय ऐसा कठोर होता है कि वह महान विषैले साँपों को भी खा जाता है। वैसे ही वे भी ऊपर से मीठे वचन बोलते हैं (परंतु हृदय के बड़े ही निर्दयी होते हैं)।

दो॰ - पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥ 39॥

वे दूसरों से द्रोह करते हैं और पराई स्त्री, पराए धन तथा पराई निंदा में आसक्त रहते हैं। वे पामर और पापमय मनुष्य नर-शरीर धारण किए हुए राक्षस ही हैं॥ 39॥

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न॥
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥

लोभ ही उनका ओढ़ना और लोभ ही बिछौना होता है (अर्थात लोभ ही से वे सदा घिरे हुए रहते हैं)। वे पशुओं के समान आहार और मैथुन के ही परायण होते हैं, उन्हें यमपुर का भय नहीं लगता। यदि किसी की बड़ाई सुन पाते हैं, तो वे ऐसी (दुःखभरी) साँस लेते हैं मानों उन्हें जूड़ी आ गई हो।

जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भए मानहुँ जग नृपती॥
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥

और जब किसी की विपत्ति देखते हैं, तब ऐसे सुखी होते हैं मानो जगतभर के राजा हो गए हों। वे स्वार्थपरायण, परिवारवालों के विरोधी, काम और लोभ के कारण लंपट और अत्यंत क्रोधी होते हैं।

मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं॥
करहिं मोह बस द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा॥

वे माता, पिता, गुरु और ब्राह्मण किसी को नहीं मानते। आप तो नष्ट हुए ही रहते हैं, (साथ ही अपने संग से) दूसरों को भी नष्ट करते हैं। मोहवश दूसरों से द्रोह करते हैं। उन्हें न संतों का संग अच्छा लगता है, न भगवान की कथा ही सुहाती है।

अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी॥
बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा॥

वे अवगुणों के समुद्र, मंद बुद्धि, कामी (रागयुक्त), वेदों के निंदक और जबर्दस्ती पराए धन के स्वामी (लूटनेवाले) होते हैं। वे दूसरों से द्रोह तो करते ही हैं; परंतु ब्राह्मण से विशेष रूप से करते हैं। उनके हृदय में दंभ और कपट भरा रहता है, परंतु वे ऊपर से सुंदर वेष

धारण किए रहते हैं।

दो० - ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेताँ नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं॥ 40॥

ऐसे नीच और दुष्ट मनुष्य सत्ययुग और त्रेता में नहीं होते। द्वापर में थोड़े से होंगे और कलियुग में तो इनके झुंड-के-झुंड होंगे॥ 40॥

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥
निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर॥

हे भाई! दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दुःख पहुँचाने के समान कोई नीचता (पाप) नहीं है। हे तात! समस्त पुराणों और वेदों का यह निर्णय (निश्चित सिद्धांत) मैंने तुमसे कहा है, इस बात को पंडित लोग जानते हैं।

नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा॥
लकरहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना॥

मनुष्य का शरीर धारण करके जो लोग दूसरों को दुःख पहुँचाते हैं, उनको जन्म-मृत्यु के महान संकट सहने पड़ते हैं। मनुष्य मोहवश स्वार्थपरायण होकर अनेकों पाप करते हैं, इसी से उनका परलोक नष्ट हुआ रहता है।

कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फलदाता॥
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि संसृत दुख जाने॥

हे भाई! मैं उनके लिए कालरूप (भयंकर) हूँ और उनके अच्छे और बुरे कर्मों का (यथायोग्य) फल देनेवाला हूँ! ऐसा विचार कर जो लोग परम चतुर हैं वे संसार (के प्रवाह) को दुःख रूप जानकर मुझे ही भजते हैं।

त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक॥
संत असंतन्ह के गुन भाषे। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे॥

इसी से वे शुभ और अशुभ फल देनेवाले कर्मों को त्यागकर देवता, मनुष्य और मुनियों के नायक मुझको भजते हैं। (इस प्रकार) मैंने संतों और असंतों के गुण कहे। जिन लोगों ने

इन गुणों को समझ रखा है, वे जन्म-मरण के चक्कर में नहीं पड़ते।

दो॰ - सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक॥ 41॥

हे तात! सुनो, माया से रचे हुए ही अनेक (सब) गुण और दोष हैं (इनकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है)। गुण (विवेक) इसी में है कि दोनों ही न देखे जाएँ, इन्हें देखना ही अविवेक है॥ 41॥

श्रीमुख बचन सुनत सब भाई। हरषे प्रेम न हृदयँ समाई॥
करहिं बिनय अति बारहिं बारा। हनूमान हियँ हरष अपारा॥

भगवान के श्रीमुख से ये वचन सुनकर सब भाई हर्षित हो गए। प्रेम उनके हृदयों में समाता नहीं। वे बार-बार बड़ी विनती करते हैं। विशेषकर हनुमान के हृदय में अपार हर्ष है।

पुनि रघुपति निज मंदिर गए। एहि बिधि चरित करत नित नए॥
बार बार नारद मुनि आवहिं। चरित पुनीत राम के गावहिं॥

तदनंतर राम अपने महल को गए। इस प्रकार वे नित्य नई लीला करते हैं। नारद मुनि अयोध्या में बार-बार आते हैं और आकर राम के पवित्र चरित्र गाते हैं।

नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं॥
सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं॥

मुनि यहाँ से नित्य नए-नए चरित्र देखकर जाते हैं और ब्रह्मलोक में जाकर सब कथा कहते हैं। ब्रह्मा सुनकर अत्यंत सुख मानते हैं (और कहते हैं -) हे तात! बार-बार राम के गुणों का गान करो।

सनकादिक नारदहि सराहहिं। जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं॥
सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी॥

सनकादि मुनि नारद की सराहना करते हैं। यद्यपि वे (सनकादि) मुनि ब्रह्मनिष्ठ हैं, परंतु राम का गुणगान सुनकर वे भी अपनी ब्रह्मसमाधि को भूल जाते हैं और आदरपूर्वक उसे

सुनते हैं। वे (रामकथा सुनने के) श्रेष्ठ अधिकारी हैं।

दो॰ - जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरि कथाँ न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान॥ 42॥

सनकादि मुनि जैसे जीवन्मुक्त और ब्रह्मनिष्ठ पुरुष भी ध्यान (ब्रह्म-समाधि) छोड़कर राम के चरित्र सुनते हैं। यह जानकर भी जो हरि की कथा से प्रेम नहीं करते, उनके हृदय (सचमुच ही) पत्थर (के समान) हैं॥ 42॥

एक बार रघुनाथ बोलाए। गुर द्विज पुरबासी सब आए॥
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन॥

एक बार रघुनाथ के बुलाए हुए गुरु वशिष्ठ, ब्राह्मण और अन्य सब नगरनिवासी सभा में आए। जब गुरु, मुनि, ब्राह्मण तथा अन्य सब सज्जन यथायोग्य बैठ गए, तब भक्तों के जन्म-मरण को मिटानेवाले राम वचन बोले -

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥

हे समस्त नगरनिवासियो! मेरी बात सुनिए। यह बात मैं हृदय में कुछ ममता लाकर नहीं कहता हूँ। न अनीति की बात कहता हूँ और न इसमें कुछ प्रभुता ही है। इसलिए (संकोच और भय छोड़कर, ध्यान देकर) मेरी बातों को सुन लें और (फिर) यदि आप को अच्छी लगे, तो उसके अनुसार करें!

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥

वही मेरा सेवक है और वही प्रियतम है, जो मेरी आज्ञा माने। हे भाई! यदि मैं कुछ अनीति की बात कहूँ तो भय भुलाकर (बेखटके) मुझे रोक देना।

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥

बड़े भाग्य से यह मनुष्य शरीर मिला है। सब ग्रंथों ने यही कहा है कि यह शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है (कठिनता से मिलता है)। यह साधन का धाम और मोक्ष का दरवाजा है।

इसे पाकर भी जिसने परलोक न बना लिया,

दो० - सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताई।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥ 43॥

वह परलोक में दुःख पाता है, सिर पीट-पीटकर पछताता है तथा (अपना दोष न समझकर) काल पर, कर्म पर और ईश्वर पर मिथ्या दोष लगाता है॥ 43॥

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

हे भाई! इस शरीर के प्राप्त होने का फल विषयभोग नहीं है। (इस जगत के भोगों की तो बात ही क्या) स्वर्ग का भोग भी बहुत थोड़ा है और अंत में दुःख देनेवाला है। अतः जो लोग मनुष्य शरीर पाकर विषयों में मन लगा देते हैं, वे मूर्ख अमृत को बदलकर विष ले लेते हैं।

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥
आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥

जो पारसमणि को खोकर बदले में घुँघची ले लेता है, उसको कभी कोई भला (बुद्धिमान) नहीं कहता। यह अविनाशी जीव (अंडज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज्ज) चार खानों और चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाता रहता है।

फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

माया की प्रेरणा से काल, कर्म, स्वभाव और गुण से घिरा हुआ (इनके वश में हुआ) यह सदा भटकता रहता है। बिना ही कारण स्नेह करनेवाले ईश्वर कभी विरले ही दया करके इसे मनुष्य का शरीर देते हैं।

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥

यह मनुष्य का शरीर भवसागर (से तारने) के लिए बेड़ा (जहाज) है। मेरी कृपा ही अनुकूल वायु है। सद्गुरु इस मजबूत जहाज के कर्णधार (खेनेवाले) हैं। इस प्रकार दुर्लभ (कठिनता

से मिलनेवाले) साधन सुलभ होकर (भगवत्कृपा से सहज ही) उसे प्राप्त हो गए हैं,

दो० - जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥ 44॥

जो मनुष्य ऐसे साधन पाकर भी भवसागर से न तरे, वह कृतघ्न और मंद बुद्धि है और आत्महत्या करनेवाले की गति को प्राप्त होता है॥ 44॥

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥

यदि परलोक में और यहाँ दोनों जगह सुख चाहते हो, तो मेरे वचन सुनकर उन्हें हृदय में दृढ़ता से पकड़ रखो। हे भाई! यह मेरी भक्ति का मार्ग सुलभ और सुखदायक है, पुराणों और वेदों ने इसे गाया है।

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥

ज्ञान अगम (दुर्गम) है, (और) उसकी प्राप्ति में अनेकों विघ्न हैं। उसका साधन कठिन है और उसमें मन के लिए कोई आधार नहीं है। बहुत कष्ट करने पर कोई उसे पा भी लेता है, तो वह भी भक्तिरहित होने से मुझको प्रिय नहीं होता।

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥

भक्ति स्वतंत्र है और सब सुखों की खान है। परंतु सत्संग (संतों के संग) के बिना प्राणी इसे नहीं पा सकते। और पुण्यसमूह के बिना संत नहीं मिलते। सत्संगति ही संसृति (जन्म-मरण के चक्र) का अंत करती है।

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा॥

जगत में पुण्य एक ही है, (उसके समान) दूसरा नहीं। वह है - मन, कर्म और वचन से ब्राह्मणों के चरणों की पूजा करना। जो कपट का त्याग करके ब्राह्मणों की सेवा करता है,

उस पर मुनि और देवता प्रसन्न रहते हैं।

दो॰ - औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥ 45॥

और भी एक गुप्त मत है, मैं उसे सबसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि शंकर के भजन बिना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं पाता॥ 45॥

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा।
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥

कहो तो, भक्ति मार्ग में कौन-सा परिश्रम है? इसमें न योग की आवश्यकता है, न यज्ञ, जप, तप और उपवास की! (यहाँ इतना ही आवश्यक है कि) सरल स्वभाव हो, मन में कुटिलता न हो और जो कुछ मिले उसी में सदा संतोष रखे।

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई॥

मेरा दास कहलाकर यदि कोई मनुष्यों की आशा करता है, तो तुम्हीं कहो, उसका क्या विश्वास है? (अर्थात उसकी मुझ पर आस्था बहुत ही निर्बल है।) बहुत बात बढ़ाकर क्या हूँ? हे भाइयो! मैं तो इसी आचरण के वश में हूँ।

बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी॥

न किसी से वैर करे, न लड़ाई-झगड़ा करे, न आशा रखे, न भय ही करे। उसके लिए सभी दिशाएँ सदा सुखमयी हैं। जो कोई भी आरंभ (फल की इच्छा से कर्म) नहीं करता, जिसका कोई अपना घर नहीं है (जिसकी घर में ममता नहीं है), जो मानहीन, पापहीन और क्रोधहीन है, जो (भक्ति करने में) निपुण और विज्ञानवान है।

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा॥
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई॥

संतजनों के संसर्ग (सत्संग) से जिसे सदा प्रेम है, जिसके मन में सब विषय यहाँ तक कि स्वर्ग और मुक्ति तक (भक्ति के सामने) तृण के समान हैं, जो भक्ति के पक्ष में हठ

करता है, पर (दूसरे के मत का खंडन करने की) मूर्खता नहीं करता तथा जिसने सब कुतर्कों को दूर बहा दिया है,

दो० - मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह।
ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह॥ 46॥

जो मेरे गुणसमूहों के और मेरे नाम के परायण है, एवं ममता, मद और मोह से रहित है, उसका सुख वही जानता है, जो (परमात्मारूप) परमानंदराशि को प्राप्त है॥ 46॥

सुनत सुधा सम बचन राम के । गहे सबनि पद कृपाधाम के॥
जननि जनक गुर बंधु हमारे। कृपा निधान प्रान ते प्यारे॥

राम के अमृत के समान वचन सुनकर सबने कृपाधाम के चरण पकड़ लिए (और कहा -) हे कृपानिधान! आप हमारे माता, पिता, गुरु, भाई सब कुछ हैं और प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं।

तनु धनु धाम राम हितकारी। सब बिधि तुम्ह प्रनतारति हारी॥
असि सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ। मातु पिता स्वारथ रत ओऊ॥

और हे शरणागत के दुःख हरनेवाले राम! आप ही हमारे शरीर, धन, घर-द्वार और सभी प्रकार से हित करनेवाले हैं। ऐसी शिक्षा आपके अतिरिक्त कोई नहीं दे सकता। माता-पिता (हितैषी हैं और शिक्षा भी देते हैं) परंतु वे भी स्वार्थपरायण हैं (इसलिए ऐसी परम हितकारी शिक्षा नहीं देते)।

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥

हे असुरों के शत्रु! जगत में बिना हेतु के (निःस्वार्थ) उपकार करनेवाले तो दो ही हैं - एक आप, दूसरे आपके सेवक। जगत में (शेष) सभी स्वार्थ के मित्र हैं। हे प्रभो! उनमें स्वप्न में भी परमार्थ का भाव नहीं है।

सब के बचन प्रेम रस साने। सुनि रघुनाथ हृदयँ हरषाने॥
निज निज गृह गए आयसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई॥

सबके प्रेम रस में सने हुए वचन सुनकर रघुनाथ हृदय में हर्षित हुए। फिर आज्ञा पाकर

सब प्रभु की सुंदर बातचीत का वर्णन करते हुए अपने-अपने घर गए।

दो० - उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन रघुनायक जहँ भूप॥ 47॥

(शिव कहते हैं -) हे उमा! अयोध्या में रहनेवाले पुरुष और स्त्री सभी कृतार्थस्वरूप हैं; जहाँ स्वयं सच्चिदानंदघन ब्रह्म रघुनाथ राजा हैं॥ 47॥

एक बार बसिष्ट मुनि आए। जहाँ राम सुखधाम सुहाए॥
अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि पादोदक लीन्हा॥

एक बार मुनि वशिष्ठ वहाँ आए जहाँ सुंदर सुख के धाम राम थे। रघुनाथ ने उनका बहुत ही आदर-सत्कार किया और उनके चरण धोकर चरणामृत लिया।

राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपासिंधु बिनती कछु मोरी॥
देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हृदयँ अपारा॥

मुनि ने हाथ जोड़कर कहा - हे कृपासागर राम! मेरी कुछ विनती सुनिए! आपके आचरणों (मनुष्योचित चरित्रों) को देख-देखकर मेरे हृदय में अपार मोह (भ्रम) होता है।

महिमा अमिति बेद नहिं जाना। मैं केहि भाँति कहउँ भगवाना॥
उपरोहित्य कर्म अति मंदा। बेद पुरान सुमृति कर निंदा॥

हे भगवन! आपकी महिमा की सीमा नहीं है, उसे वेद भी नहीं जानते। फिर मैं किस प्रकार कह सकता हूँ? पुरोहिती का कर्म (पेशा) बहुत ही नीचा है। वेद, पुराण और स्मृति सभी इसकी निंदा करते हैं।

जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही। कहा लाभ आगें सुत तोही॥
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषन भूपा॥

जब मैं उसे (सूर्यवंश की पुरोहिती का काम) नहीं लेता था, तब ब्रह्मा ने मुझे कहा था - हे पुत्र! इससे तुमको आगे चलकर बहुत लाभ होगा। स्वयं ब्रह्म परमात्मा मनुष्य रूप धारण कर रघुकुल के भूषण राजा होंगे।

दो० - तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रत दान।

जा कुहँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन॥ 48॥

तब मैंने हृदय में विचार किया कि जिसके लिए योग, यज्ञ, व्रत और दान किए जाते हैं उसे मैं इसी कर्म से पा जाऊँगा; तब तो इसके समान दूसरा कोई धर्म ही नहीं है॥ 48॥

जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा॥
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥

जप, तप, नियम, योग, अपने-अपने (वर्णाश्रम के) धर्म, श्रुतियों से उत्पन्न (वेदविहित) बहुत-से शुभ कर्म, ज्ञान, दया, दम (इंद्रियनिग्रह), तीर्थस्नान आदि जहाँ तक वेद और संतजनों ने धर्म कहे हैं (उनके करने का) -

आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर॥

(तथा) हे प्रभो! अनेक तंत्र, वेद और पुराणों के पढ़ने और सुनने का सर्वोत्तम फल एक ही है और सब साधनों का भी यही एक सुंदर फल है कि आपके चरणकमलों में सदा-सर्वदा प्रेम हो।

छूटइ मल कि मलहि के धोएँ। घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ॥
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥

मैल से धोने से क्या मैल छूटता है? जल के मथने से क्या कोई घी पा सकता है? (उसी प्रकार) हे रघुनाथ! प्रेमभक्तिरूपी (निर्मल) जल के बिना अंतःकरण का मल कभी नहीं जाता।

सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित। सोइ गुन गृह बिग्यान अखंडित॥
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई॥

वही सर्वज्ञ है, वही तत्त्वज्ञ और पंडित है, वही गुणों का घर और अखंड विज्ञानवान है; वही चतुर और सब सुलक्षणों से युक्त है, जिसका आपके चरण कमलों में प्रेम है।

दो० - नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥ 49॥

हे नाथ! हे राम! मैं आपसे एक वर माँगता हूँ, कृपा करके दीजिए। प्रभु (आप) के चरणकमलों में मेरा प्रेम जन्म-जन्मांतर में भी कभी न घटे॥ 49॥

अस कहि मुनि बसिष्ट गृह आए। कृपासिंधु के मन अति भाए॥
हनूमान भरतादिक भ्राता। संग लिए सेवक सुखदाता॥

ऐसा कहकर मुनि वशिष्ठ घर आए। वे कृपासागर राम के मन को बहुत ही अच्छे लगे। तदनंतर सेवकों को सुख देनेवाले राम ने हनुमान तथा भरत आदि भाइयों को साथ लिया,

पुनि कृपाल पुर बाहेर गए। गज रथ तुरग मगावत भए॥
देखि कृपा करि सकल सराहे। दिए उचित जिन्ह जिन्ह तेइ चाहे॥

और फिर कृपालु राम नगर के बाहर गए और वहाँ उन्होंने हाथी, रथ और घोड़े मँगवाए। उन्हें देखकर कृपा करके प्रभु ने सबकी सराहना की और उनको जिस-जिसने चाहा, उस-उसको उचित जानकर दिया।

हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई। गए जहाँ सीतल अवँराई॥
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई॥

संसार के सभी श्रमों को हरनेवाले प्रभु ने (हाथी, घोड़े आदि बाँटने में) श्रम का अनुभव किया और (श्रम मिटाने को) वहाँ गए जहाँ शीतल अमराई (आमों का बगीचा) थी। वहाँ भरत ने अपना वस्त्र बिछा दिया। प्रभु उस पर बैठ गए और सब भाई उनकी सेवा करने लगे।

मारुतसुत तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल भरई॥
हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥

उस समय पवनपुत्र हनुमान पवन (पंखा) करने लगे। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया। (शिव कहने लगे -) हे गिरिजे! हनुमान के समान न तो कोई बड़भागी है और न कोई राम के चरणों का प्रेमी ही है, जिनके प्रेम और सेवा की (स्वयं) प्रभु ने अपनेमुख से बार-बार बड़ाई की है।

दो॰ - तेहिं अवसर मुनि नारद आए करतल बीन।

गावन लगे राम कल कीरति सदा नबीन॥ 50॥

उसी अवसर पर नारदमुनि हाथ में वीणा लिए हुए आए। वे राम की सुंदर और नित्य नवीन रहनेवाली कीर्ति गाने लगे॥ 50॥

मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन॥
नील तामरस स्याम काम अरि। हृदय कंज मकरंद मधुप हरि॥

कृपापूर्वक देख लेने मात्र से शोक के छुड़ानेवाले हे कमलनयन! मेरी ओर देखिए (मुझ पर भी कृपादृष्टि कीजिए) हे हरि! आप नीलकमल के समान श्यामवर्ण और कामदेव के शत्रु महादेव के हृदय कमल के मकरंद (प्रेम रस) के पान करनेवाले भ्रमर हैं।

जातुधान बरूथ बल भंजन। मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन॥
भूसुर ससि नव बृंद बलाहक। असरन सरन दीन जन गाहक॥

आप राक्षसों की सेना के बल को तोड़नेवाले हैं। मुनियों और संतजनों को आनंद देनेवाले और पापों का नाश करनेवाले हैं। ब्राह्मणरूपी खेती के लिए आप नए मेघसमूह हैं और शरणहीनों को शरण देनेवाले तथा दीन जनों को अपने आश्रय में ग्रहण करनेवाले हैं।

भुज बल बिपुल भार महि खंडित। खर दूषन बिराध बध पंडित॥
रावनारि सुखरूप भूपबर। जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर॥

अपने बाहुबल से पृथ्वी के बड़े भारी बोझ को नष्ट करनेवाले, खर-दूषण और विराध के वध करने में कुशल, रावण के शत्रु, आनंदस्वरूप, राजाओं में श्रेष्ठ और दशरथ के कुलरूपी कुमुदिनी के चंद्रमा राम! आपकी जय हो।

सुजस पुरान बिदित निगमागम। गावत सुर मुनि संत समागम॥
कारुनीक ब्यलीक मद खंडन। सब बिधि कुसल कोसला मंडन॥

आपका सुंदर यश पुराणों, वेदों में और तंत्रादि शास्त्रों में प्रकट है। देवता, मुनि और संतों के समुदाय उसे गाते हैं। आप करुणा करनेवाले और झूठे मद का नाश करनेवाले, सब प्रकार से कुशल (निपुण) अयोध्या के भूषण ही हैं।

कलि मल मथन नाम ममताहन। तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन॥

आपका नाम कलियुग के पापों को मथ डालनेवाला और ममता को मारनेवाला है। हे तुलसीदास के प्रभु! शरणागत की रक्षा कीजिए।

दो० - प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम।
सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम॥ 51॥

राम के गुणसमूहों का प्रेमपूवक वर्णन करके मुनि नारद शोभा के समुद्र प्रभु को हृदय में धरकर जहाँ ब्रह्मलोक है वहाँ चले गए॥ 51॥

गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा। मैं सब कही मोरि मति जथा॥
राम चरित सत कोटि अपारा। श्रुति सारदा न बरनै पारा॥

(शिव कहते हैं -) हे गिरिजे! सुनो, मैंने यह उज्ज्वल कथा, जैसी मेरी बुद्धि थी, वैसी पूरी कह डाली। राम के चरित्र सौ करोड़ (अथवा) अपार हैं। श्रुति और शारदा भी उनका वर्णन नहीं कर सकते।

राम अनंत अनंत गुनानी। जन्म कर्म अनंत नामानी॥
जल सीकर महि रज गनि जाहीं। रघुपति चरित न बरनि सिराहीं॥

भगवान राम अनंत हैं; उनके गुण अनंत हैं; जन्म, कर्म और नाम भी अनंत हैं। जल की बूँदें और पृथ्वी के रजकण चाहे गिने जा सकते हों, पर रघुनाथ के चरित्र वर्णन करने से नहीं चूकते।

बिमल कथा हरि पद दायनी। भगति होइ सुनि अनपायनी॥
उमा कहिउँ सब कथा सुहाई। जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई॥

यह पवित्र कथा भगवान के परम पद को देनेवाली है। इसके सुनने से अविचल भक्ति प्राप्त होती है। हे उमा! मैंने वह सब सुंदर कथा कही जो काकभुशुंडि ने गरुड़ को सुनाई थी।

कछुक राम गुन कहेउँ बखानी। अब का कहौं सो कहहु भवानी॥
सुनि सुभ कथा उमा हरषानी। बोली अति बिनीत मृदु बानी॥

मैंने राम के कुछ थोड़े-से गुण बखान कर कहे हैं। हे भवानी! सो कहो, अब और क्या कहूँ? राम की मंगलमयी कथा सुनकर पार्वती हर्षित हुईं और अत्यंत विनम्र तथा कोमल वाणी

बोलीं -

धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी। सुनेउँ राम गुन भव भय हारी॥

हे त्रिपुरारि। मैं धन्य हूँ, धन्य-धन्य हूँ जो मैंने जन्म-मृत्यु के भय को हरण करनेवाले राम के गुण (चरित्र) सुने।

दो० - तुम्हरी कृपाँ कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह।
जानेउँ राम प्रताप प्रभु चिदानंद संदोह॥ 52(क)॥

हे कृपाधाम! अब आपकी कृपा से मैं कृतकृत्य हो गई। अब मुझे मोह नहीं रह गया। हे प्रभु! मैं सच्चिदानंदघन प्रभु राम के प्रताप को जान गई॥ 52(क)॥

नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर।
श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मतिधीर॥ 52(ख)॥

हे नाथ! आपका मुखरूपी चंद्रमा रघुवीर की कथारूपी अमृत बरसाता है। हे मतिधीर! मेरा मन कर्णपुटों से उसे पीकर तृप्त नहीं होता॥ 52(ख)॥

राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥
जीवनमुक्त महामुनि जेऊ। हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ॥

राम के चरित्र सुनते-सुनते जो तृप्त हो जाते हैं (बस कर देते हैं), उन्होंने तो उसका विशेष रस जाना ही नहीं। जो जीवन्मुक्त महामुनि हैं, वे भी भगवान के गुण निरंतर सुनते रहते हैं।

भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा॥
बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा। श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा॥

जो संसाररूपी सागर का पार पाना चाहता है, उसके लिए तो राम की कथा दृढ़ नौका के समान है। हरि के गुणसमूह तो विषयी लोगों के लिए भी कानों को सुख देनेवाले और मन को आनंद देनेवाले हैं।

श्रवनवंत अस को जग माहीं। जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं॥

ते जड़ जीव निजात्मक घाती। जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती॥

जगत में कानवाला ऐसा कौन है जिसे रघुनाथ के चरित्र न सुहाते हों। जिन्हें रघुनाथ की कथा नहीं सुहाती, वे मूर्ख जीव तो अपनी आत्मा की हत्या करनेवाले हैं।

हरिचरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ अमिति सुख पावा॥
तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई। कागभसुंडि गरुड़ प्रति गाई॥

हे नाथ! आपने रामचरित्र मानस का गान किया, उसे सुनकर मैंने अपार सुख पाया। आपने जो यह कहा कि यह सुंदर कथा काकभुशुंडि ने गरुड़ से कही थी -

दो० - बिरति ग्यान बिग्यान दृढ़ राम चरन अति नेह।
बायस तन रघुपति भगति मोहि परम संदेह॥ 53॥

सो कौए का शरीर पाकर भी काकभुशुंडि वैराग्य, ज्ञान और विज्ञान में दृढ़ हैं, उनका राम के चरणों में अत्यंत प्रेम है और उन्हें रघुनाथ की भक्ति भी प्राप्त है, इस बात का मुझे परम संदेह हो रहा है॥ 53॥

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होई धर्म ब्रतधारी॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई॥

हे त्रिपुरारि! सुनिए, हजारों मनुष्यों में कोई एक धर्म के व्रत का धारण करनेवाला होता है और करोड़ों धर्मात्माओं में कोई एक विषय से विमुख (विषयों का त्यागी) और वैराग्य परायण होता है।

कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई॥
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ॥

श्रुति कहती है कि करोड़ों विरक्तों में कोई एक ही सम्यक (यथार्थ) ज्ञान को प्राप्त करता है। और करोड़ों ज्ञानियों में कोई एक ही जीवन मुक्त होता है। जगत में कोई विरला ही ऐसा (जीवन मुक्त) होगा।

तिन्ह सहस्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिग्यानी॥
धर्मसील बिरक्त अरु ग्यानी। जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी॥

हजारों जीवनमुक्तों में भी सब सुखों की खान, ब्रह्म में लीन विज्ञानवान पुरुष और भी दुर्लभ है। धर्मात्मा, वैराग्यवान, ज्ञानी, जीवन मुक्त और ब्रह्मलीन -

सत ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया॥
सो हरिभगति काग किमि पाई। बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई॥

इन सबमें भी हे देवाधिदेव महादेव! वह प्राणी अत्यंत दुर्लभ है जो मद और माया से रहित होकर राम की भक्ति के परायण हो। हे विश्वनाथ! ऐसी दुर्लभ हरि भक्ति को कौआ कैसे पा गया, मुझे समझाकर कहिए।

दो० - राम परायन ग्यान रत गुनागार मति धीर।
नाथ कहहु केहि कारन पायउ काक सरीर॥ 54॥

हे नाथ! कहिए, (ऐसे) रामपरायण, ज्ञाननिरत, गुणधाम और धीरबुद्धि भुशुंडि ने कौए का शरीर किस कारण पाया?॥ 54॥

यह प्रभु चरित पवित्र सुहावा। कहहु कृपाल काग कहँ पावा॥
तुम्ह केहि भाँति सुना मदनारी। कहहु मोहि अति कौतुक भारी॥

हे कृपालु! बताइए, उस कौए ने प्रभु का यह पवित्र और सुंदर चरित्र कहाँ पाया? और हे कामदेव के शत्रु! यह भी बताइए, आपने इसे किस प्रकार सुना? मुझे बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है।

गरुड़ महाग्यानी गुन रासी। हरि सेवक अति निकट निवासी।
तेहिं केहि हेतु काग सन जाई। सुनी कथा मुनि निकर बिहाई॥

गरुड़ तो महान ज्ञानी, सद्गुणों की राशि, हरि के सेवक और उनके अत्यंत निकट रहनेवाले (उनके वाहन ही) हैं। उन्होंने मुनियों के समूह को छोड़कर, कौए से जाकर हरिकथा किस कारण सुनी?

कहहु कवन बिधि भा संबादा। दोउ हरिभगत काग उरगादा॥
गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई। बोले सिव सादर सुख पाई॥

कहिए, काकभुशुंडि और गरुड़ इन दोनों हरिभक्तों की बातचीत किस प्रकार हुई? पार्वती की

सरल, सुंदर वाणी सुनकर शिव सुख पाकर आदर के साथ बोले -

धन्य सती पावन मति तोरी। रघुपति चरन प्रीति नहिं थोरी॥
सुनहु परम पुनीत इतिहासा। जो सुनि सकल लोक भ्रम नासा॥

हे सती! तुम धन्य हो; तुम्हारी बुद्धि अत्यंत पवित्र है। रघुनाथ के चरणों में तुम्हारा कम प्रेम नहीं है (अत्यधिक प्रेम है)। अब वह परम पवित्र इतिहास सुनो, जिसे सुनने से सारे लोक के भ्रम का नाश हो जाता है।

उपजइ राम चरन बिस्वासा। भव निधि तर नर बिनहिं प्रयासा॥

तथा राम के चरणों में विश्वास उत्पन्न होता है और मनुष्य बिना ही परिश्रम संसाररूपी समुद्र से तर जाता है।

दो० - ऐसिअ प्रस्न बिहंगपति कीन्हि काग सन जाइ।
सो सब सादर कहिहउँ सुनहु उमा मन लाई॥ 55॥

पक्षीराज गरुड़ ने भी जाकर काकभुशुंडि से प्रायः ऐसे ही प्रश्न किए थे। हे उमा! मैं वह सब आदरसहित कहूँगा, तुम मन लगाकर सुनो॥ 55॥

मैं जिमि कथा सुनी भव मोचनि। सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि॥
प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा। सती नाम तब रहा तुम्हारा॥

मैंने जिस प्रकार वह भव (जन्म-मृत्यु) से छुड़ानेवाली कथा सुनी, हे सुमुखी! हे सुलोचनी! वह प्रसंग सुनो। पहले तुम्हारा अवतार दक्ष के घर हुआ था। तब तुम्हारा नाम सती था।

दच्छ जग्य तव भा अपमाना। तुम्ह अति क्रोध तजे तब प्राना॥
मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा। जानहु तुम्ह सो सकल प्रसंगा॥

दक्ष के यज्ञ में तुम्हारा अपमान हुआ। तब तुमने अत्यंत क्रोध करके प्राण त्याग दिए थे; और फिर मेरे सेवकों ने यज्ञ विध्वंस कर दिया था। वह सारा प्रसंग तुम जानती ही हो।

तब अति सोच भयउ मन मोरें। दुखी भयउँ बियोग प्रिय तोरें॥
सुंदर बन गिरि सरित तड़ागा। कौतुक देखत फिरउँ बेरागा॥

तब मेरे मन में बड़ा सोच हुआ और हे प्रिये! मैं तुम्हारे वियोग से दुःखी हो गया। मैं विरक्त भाव से सुंदर वन, पर्वत, नदी और तालाबों का कौतुक (दृश्य) देखता फिरता था।

गिरि सुमेर उत्तर दिसि दूरी। नील सैल एक सुंदर भूरी॥
तासु कनकमय सिखर सुहाए। चारि चारु मोरे मन भाए॥

सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में, और भी दूर, एक बहुत ही सुंदर नील पर्वत है। उसके सुंदर स्वर्णमय शिखर हैं, (उनमें से) चार सुंदर शिखर मेरे मन को बहुत ही अच्छे लगे।

तिन्ह पर एक एक बिटप बिसाला। बट पीपर पाकरी रसाला॥
सैलोपरि सर सुंदर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा॥

उन शिखरों में एक-एक पर बरगद, पीपल, पाकर और आम का एक-एक विशाल वृक्ष है। पर्वत के ऊपर एक सुंदर तालाब शोभित है; जिसकी मणियों की सीढ़ियाँ देखकर मन मोहित हो जाता है।

दो० - सीतल अमल मधुर जल जलज बिपुल बहुरंग।
कूजत कल रव हंस गन गुंजत मंजुल भृंग॥ 56॥

उसका जल शीतल, निर्मल और मीठा है; उसमें रंग-बिरंगे बहुत-से कमल खिले हुए हैं, हंसगण मधुर स्वर से बोल रहे हैं और भौंरे सुंदर गुंजार कर रहे हैं॥ 56॥

तेहिं गिरि रुचिर बसइ खग सोई। तासु नास कल्पांत न होई॥
माया कृत गुन दोष अनेका। मोह मनोज आदि अबिबेका॥

उस सुंदर पर्वत पर वही पक्षी (काकभुशुंडि) बसता है। उसका नाश कल्प के अंत में भी नहीं होता। मायारचित अनेकों गुण-दोष, मोह, काम आदि अविवेक,

रहे ब्यापि समस्त जग माहीं। तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं॥
तहँ बसि हरिहि भजइ जिमि कागा। सो सुनु उमा सहित अनुरागा॥

जो सारे जगत में छा रहे हैं, उस पर्वत के पास भी कभी नहीं फटकते। वहाँ बसकर जिस प्रकार वह काग हरि को भजता है, हे उमा! उसे प्रेम सहित सुनो।

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जग्य पाकरि तर करई॥

आँब छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजनु काजु नहिं दूजा॥

वह पीपल के वृक्ष के नीछे ध्यान धरता है। पाकर के नीचे जपयज्ञ करता है। आम की छाया में मानसिक पूजा करता है। हरि के भजन को छोड़कर उसे दूसरा कोई काम नहीं है।

बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा॥
राम चरित बिचित्र बिधि नाना। प्रेम सहित कर सादर गाना॥

बरगद के नीचे वह हरि की कथाओं के प्रसंग कहता है। वहाँ अनेकों पक्षी आते और कथा सुनते हैं। वह विचित्र रामचरित्र को अनेकों प्रकार से प्रेम सहित आदरपूर्वक गान करता है।

सुनहिं सकल मति बिमल मराला। बसहिं निरंतर जे तेहिं ताला॥
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनंद बिसेषा॥

सब निर्मल बुद्धिवाले हंस, जो सदा उस तालाब पर बसते हैं, उसे सुनते हैं। जब मैंने वहाँ जाकर यह कौतुक (दृश्य) देखा, तब मेरे हृदय में विशेष आनंद उत्पन्न हुआ।

दो० - तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास॥ 57॥

तब मैंने हंस का शरीर धारण कर कुछ समय वहाँ निवास किया और रघुनाथ के गुणों को आदर सहित सुनकर फिर कैलास को लौट आया॥ 57॥

गिरिजा कहेउँ सो सब इतिहासा। मैं जेहि समय गयउँ खग पासा॥
अब सो कथा सुनहु जेहि हेतू। गयउ काग पहिं खग कुल केतू॥

हे गिरिजे! मैंने वह सब इतिहास कहा कि जिस समय मैं काकभुशुंडि के पास गया था। अब वह कथा सुनो जिस कारण से पक्षी कुल की ध्वजा गरुड़ उस काग के पास गए थे।

जब रघुनाथ कीन्हि रन क्रीड़ा। समुझत चरित होति मोहि ब्रीड़ा॥
इंद्रजीत कर आपु बँधायो। तब नारद मुनि गरुड़ पठायो॥

जब रघुनाथ ने ऐसी रणलीला की जिस लीला का स्मरण करने से मुझे लज्जा होती है -

मेघनाद के हाथों अपने को बँधा लिया - तब नारद मुनि ने गरुड़ को भेजा।

बंधन काटि गयो उरगादा। उपजा हृदयँ प्रचंड बिषादा॥
प्रभु बंधन समुझत बहु भाँती। करत बिचार उरग आराती॥

सर्पों के भक्षक गरुड़ बंधन काटकर गए, तब उनके हृदय में बड़ा भारी विषाद उत्पन्न हुआ। प्रभु के बंधन को स्मरण करके सर्पों के शत्रु गरुड़ बहुत प्रकार से विचार करने लगे -

ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा॥
सो अवतार सुनेउँ जग माहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं॥

जो व्यापक, विकाररहित, वाणी के पति और माया-मोह से परे ब्रह्म परमेश्वर हैं, मैंने सुना था कि जगत में उन्हीं का अवतार है। पर मैंने उस (अवतार) का प्रभाव कुछ भी नहीं देखा।

दो० - भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥ 58॥

जिनका नाम जपकर मनुष्य संसार के बंधन से छूट जाते हैं, उन्हीं राम को एक तुच्छ राक्षस ने नागपाश से बाँध लिया॥ 58॥

नाना भाँति मनहिं समुझावा। प्रगट न ग्यान हृदयँ भ्रम छावा॥
खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई। भयउ मोहबस तुम्हरिहिं नाई॥

गरुड़ ने अनेकों प्रकार से अपने मन को समझाया। पर उन्हें ज्ञान नहीं हुआ, हृदय में भ्रम और भी अधिक छा गया। (संदेहजनित) दुःख से दुःखी होकर, मन में कुतर्क बढ़ाकर वे तुम्हारी ही भाँति मोहवश हो गए।

ब्याकुल गयउ देवरिषि पाहीं। कहेसि जो संसय निज मन माहीं॥
सुनि नारदहि लागि अति दाया। सुनु खग प्रबल राम कै माया॥

व्याकुल होकर वे देवर्षि नारद के पास गए और मन में जो संदेह था, वह उनसे कहा। उसे सुनकर नारद को अत्यंत दया आई। (उन्होंने कहा -) हे गरुड़! सुनिए! राम की माया बड़ी

ही बलवती है।

जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह मन करई॥
जेहिं बहु बार नचावा मोही। सोइ ब्यापी बिहंगपति तोही॥

जो ज्ञानियों के चित्त को भी भली-भाँति हरण कर लेती है और उनके मन में जबर्दस्ती बड़ा भारी मोह उत्पन्न कर देती है, तथा जिसने मुझको भी बहुत बार नचाया है, हे पक्षीराज! वही माया आपको भी व्याप गई है।

महामोह उपजा उर तोरें। मिटिहि न बेगि कहें खग मोरें॥
चतुरानन पहिं जाहु खगेसा। सोइ करेहु जेहि होई निदेसा॥

हे गरुड़! आपके हृदय में बड़ा भारी मोह उत्पन्न हो गया है। यह मेरे समझाने से तुरंत नहीं मिटेगा। अतः हे पक्षीराज! आप ब्रह्मा के पास जाइए और वहाँ जिस काम के लिए आदेश मिले, वही कीजिएगा।

दो० - अस कहि चले देवरिषि करत राम गुन गान।
हरि माया बल बरनत पुनि पुनि परम सुजान॥ 59॥

ऐसा कहकर परम सुजान देवर्षि नारद राम का गुणगान करते हुए और बारंबार हरि की माया का बल वर्णन करते हुए चले॥ 59॥

तब खगपति बिरंचि पहिं गयऊ। निज संदेह सुनावत भयऊ॥
सुनि बिरंचि रामहि सिरु नावा। समुझि प्रताप प्रेम अति छावा॥

तब पक्षीराज गरुड़ ब्रह्मा के पास गए और अपना संदेह उन्हें कह सुनाया। उसे सुनकर ब्रह्मा ने राम को सिर नवाया और उनके प्रताप को समझकर उनके मन में अत्यंत प्रेम छा गया।

मन महूँ करइ बिचार बिधाता। माया बस कबि कोबिद ग्याता॥

हरि माया कर अमिति प्रभावा। बिपुल बार जेहिं मोहि नचावा॥

ब्रह्मा मन में विचार करने लगे कि कवि, कोविद और ज्ञानी सभी माया के वश हैं।

भगवान की माया का प्रभाव असीम है, जिसने मुझ तक को अनेकों बार नचाया है।

अग जगमय जग मम उपराजा। नहिं आचरज मोह खगराजा॥
तब बोले बिधि गिरा सुहाई। जान महेस राम प्रभुताई॥

यह सारा चराचर जगत तो मेरा रचा हुआ है। जब मैं ही मायावश नाचने लगता हूँ, तब गरुड़ को मोह होना कोई आश्चर्य (की बात) नहीं है। तदनंतर ब्रह्मा सुंदर वाणी बोले - राम की महिमा को महादेव जानते हैं।

बैनतेय संकर पहिं जाहू। तात अनत पूछहु जनि काहू॥
तहँ होइहि तव संसय हानी। चलेउ बिहंग सुनत बिधि बानी॥

हे गरुड़! तुम शंकर के पास जाओ। हे तात! और कहीं किसी से न पूछना। तुम्हारे संदेह का नाश वहीं होगा। ब्रह्मा का वचन सुनते ही गरुड़ चल दिए।

दो॰ - परमातुर बिहंगपति आयउ तब मो पास।
जात रहेउँ कुबेर गृह रहिहु उमा कैलास॥ 60॥

तब बड़ी आतुरता (उतावली) से पक्षीराज गरुड़ मेरे पास आए। हे उमा! उस समय मैं कुबेर के घर जा रहा था और तुम कैलास पर थीं॥ 60॥

तेहिं मम पद सादर सिरु नावा। पुनि आपन संदेह सुनावा॥
सुनि ता करि बिनती मृदु बानी। प्रेम सहित मैं कहेउँ भवानी॥

गरुड़ ने आदरपूर्वक मेरे चरणों में सिर नवाया और फिर मुझको अपना संदेह सुनाया। हे भवानी! उनकी विनती और कोमल वाणी सुनकर मैंने प्रेमसहित उनसे कहा -

मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही। कवन भाँति समुझावौं तोही॥
तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा॥

हे गरुड़! तुम मुझे रास्ते में मिले हो। राह चलते मैं तुम्हे किस प्रकार समझाऊँ? सब संदेहों का तो तभी नाश हो जब दीर्घ काल तक सत्संग किया जाए।

सुनिअ तहाँ हरिकथा सुहाई। नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई॥

जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥

और वहाँ (सत्संग में) सुंदर हरिकथा सुनी जाए जिसे मुनियों ने अनेकों प्रकार से गाया है और जिसके आदि, मध्य और अंत में भगवान राम ही प्रतिपाद्य प्रभु हैं।

नित हरि कथा होत जहँ भाई। पठवउँ तहाँ सुनहु तुम्ह जाई॥
जाइहि सुनत सकल संदेहा। राम चरन होइहि अति नेहा॥

हे भाई! जहाँ प्रतिदिन हरिकथा होती है, तुमको मैं वहीं भेजता हूँ, तुम जाकर उसे सुनो। उसे सुनते ही तुम्हारा सब संदेह दूर हो जाएगा और तुम्हें राम के चरणों में अत्यंत प्रेम होगा।

दो० - बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥ 61॥

सत्संग के बिना हरि की कथा सुनने को नहीं मिलती, उसके बिना मोह नहीं भागता और मोह के गए बिना राम के चरणों में दृढ़ (अचल) प्रेम नहीं होता॥ 61॥

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किएँ जोग तप ग्यान बिरागा॥
उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला। तहँ रह काकभुसुंडि सुसीला॥

बिना प्रेम के केवल योग, तप, ज्ञान और वैराग्यादि के करने से रघुनाथ नहीं मिलते। (अतएव तुम सत्संग के लिए वहाँ जाओ जहाँ) उत्तर दिशा में एक सुंदर नील पर्वत है। वहाँ परम सुशील काकभुशुंडि रहते हैं।

राम भगति पथ परम प्रबीना। ग्यानी गुन गृह बहु कालीना॥
राम कथा सो कहइ निरंतर। सादर सुनहिं बिबिध बिहंगबर॥

वे रामभक्ति के मार्ग में परम प्रवीण हैं, ज्ञानी हैं, गुणों के धाम हैं और बहुत काल के हैं। वे निरंतर राम की कथा कहते रहते हैं, जिसे भाँति-भाँति के श्रेष्ठ पक्षी आदर सहित सुनते हैं।

जाइ सुनहु तहँ हरि गुन भूरी। होइहि मोह जनित दुख दूरी॥
मैं जब तेहि सब कहा बुझाई। चलेउ हरषि मम पद सिरु नाई॥

वहाँ जाकर हरि के गुणसमूहों को सुनो। उनके सुनने से मोह से उत्पन्न तुम्हारा दुःख दूर हो जाएगा। मैंने उसे जब सब समझाकर कहा, तब वह मेरे चरणों में सिर नवाकर हर्षित होकर चला गया।

ताते उमा न मैं समुझावा। रघुपति कृपाँ मरमु मैं पावा॥
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना॥

हे उमा! मैंने उसको इसीलिए नहीं समझाया कि मैं रघुनाथ की कृपा से उसका मर्म (भेद) पा गया था। उसने कभी अभिमान किया होगा, जिसको कृपानिधान राम नष्ट करना चाहते हैं।

कछु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा। समुझइ खग खगही कै भाषा॥
प्रभु माया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन अस ग्यानी॥

फिर कुछ इस कारण भी मैंने उसको अपने पास नहीं रखा कि पक्षी पक्षी की ही बोली समझते हैं। हे भवानी! प्रभु की माया (बड़ी ही) बलवती है, ऐसा कौन ज्ञानी है, जिसे वह न मोह ले?

दो० - ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवनपति कर जान।
ताहि मोह माया नर पावँर करहिं गुमान॥ 62(क)॥

जो ज्ञानियों में और भक्तों में शिरोमणि हैं एवं त्रिभुवनपति भगवान के वाहन हैं, उन गरुड़ को भी माया ने मोह लिया। फिर भी नीच मनुष्य मूर्खतावश घमंड किया करते हैं॥ 62(क)॥

सिव बिरंचि कहुँ मोहइ को है बपुरा आन।
अस जियँ जानि भजहिं मुनि माया पति भगवान॥ 62(ख)॥

यह माया जब शिव और ब्रह्मा को भी मोह लेती है, तब दूसरा बेचारा क्या चीज है? जी में ऐसा जानकर ही मुनि लोग उस माया के स्वामी भगवान का भजन करते हैं॥ 62(ख)॥

गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुंडा। मति अकुंठ हरि भगति अखंडा॥
देखि सैल प्रसन्न मन भयउ। माया मोह सोच सब गयऊ॥

गरुड़ वहाँ गए जहाँ निर्बाध बुद्धि और पूर्ण भक्तिवाले काकभुशुंडि बसते थे। उस पर्वत को

देखकर उनका मन प्रसन्न हो गया और (उसके दर्शन से ही) सब माया, मोह तथा सोच जाता रहा।

करि तड़ाग मज्जन जलपाना। बट तर गयउ हृदयँ हरषाना॥
बृद्ध बृद्ध बिहंग तहँ आए। सुनै राम के चरित सुहाए॥

तालाब में स्नान और जलपान करके वे प्रसन्नचित्त से वटवृक्ष के नीचे गए। वहाँ राम के सुंदर चरित्र सुनने के लिए बूढ़े-बूढ़े पक्षी आए हुए थे।

कथा अरंभ करै सोइ चाहा। तेही समय गयउ खगनाहा॥
आवत देखि सकल खगराजा। हरषेउ बायस सहित समाजा॥

भुशुंडि कथा आरंभ करना ही चाहते थे कि उसी समय पक्षीराज गरुड़ वहाँ जा पहुँचे। पक्षियों के राजा गरुड़ को आते देखकर काकभुशुंडि सहित सारा पक्षी समाज हर्षित हुआ।

अति आदर खगपति कर कीन्हा। स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा॥
करि पूजा समेत अनुरागा। मधुर बचन तब बोलेउ कागा॥

उन्होंने पक्षीराज गरुड़ का बहुत ही आदर-सत्कार किया और स्वागत (कुशल) पूछकर बैठने के लिए सुंदर आसन दिया। फिर प्रेम सहित पूजा कर के कागभुशुंडि मधुर वचन बोले -

दो० - नाथ कृतारथ भयउँ मैं तव दरसन खगराज।
आयसु देहु सो करौं अब प्रभु आयहु केहि काज॥ 63(क)॥

हे नाथ ! हे पक्षीराज ! आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया। आप जो आज्ञा दें मैं अब वही करूँ। हे प्रभो ! आप किस कार्य के लिए आए हैं?॥ 63(क)॥

सदा कृतारथ रूप तुम्ह कह मृदु बचन खगेस।
जेहि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्ह महेस॥ 63(ख)॥

पक्षीराज गरुड़ ने कोमल वचन कहे - आप तो सदा ही कृतार्थरूप हैं, जिनकी बड़ाई स्वयं महादेव ने आदरपूर्वक अपने मुख से की है॥ 63(ख)॥

सुनहु तात जेहि कारन आयउँ। सो सब भयउ दरस तव पायउँ॥

देखि परम पावन तव आश्रम। गयउ मोह संसय नाना भ्रम॥

हे तात! सुनिए, मैं जिस कारण से आया था, वह सब कार्य तो यहाँ आते ही पूरा हो गया। फिर आपके दर्शन भी प्राप्त हो गए। आपका परम पवित्र आश्रम देखकर ही मेरा मोह संदेह और अनेक प्रकार के भ्रम सब जाते रहे।

अब श्रीराम कथा अति पावनि। सदा सुखद दुख पुंज नसावनि॥
सादर तात सुनावहु मोही। बार बार बिनवउँ प्रभु तोही॥

अब हे तात! आप मुझे श्री राम की अत्यंत पवित्र करनेवाली, सदा सुख देनेवाली और दुःखसमूह का नाश करनेवाली कथा सादरसहित सुनाइए। हे प्रभो! मैं बार-बार आप से यही विनती करता हूँ।

सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता। सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता॥
भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहै रघुपति गुन गाहा॥

गरुड़ की विनम्र, सरल, सुंदर प्रेमयुक्त, सुप्रद और अत्यंत पवित्र वाणी सुनते ही भुशुंडि के मन में परम उत्साह हुआ और वे रघुनाथ के गुणों की कथा कहने लगे।

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। रामचरित सर कहेसि बखानी॥
पुनि नारद कर मोह अपारा। कहेसि बहुरि रावन अवतारा॥

हे भवानी! पहले तो उन्होंने बड़े ही प्रेम से रामचरित मानस सरोवर का रूपक समझाकर कहा। फिर नारद का अपार मोह और फिर रावण का अवतार कहा।

प्रभु अवतार कथा पुनि गाई। तब सिसु चरित कहेसि मन लाई॥

फिर प्रभु के अवतार की कथा वर्णन की। तदनंतर मन लगाकर राम की बाल लीलाएँ कहीं।

दो० - बालचरित कहि बिबिधि बिधि मन महँ परम उछाह।
रिषि आगवन कहेसि पुनि श्रीरघुबीर बिबाह॥ 64॥

मन में परम उत्साह भरकर अनेकों प्रकार की बाल लीलाएँ कहकर, फिर ऋषि विश्वामित्र

का अयोध्या आना और श्री रघुवीर का विवाह वर्णन किया॥ 64॥

बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा। पुनि नृप बचन राज रस भंगा॥
पुरबासिन्ह कर बिरह बिषादा। कहेसि राम लछिमन संबादा॥

फिर राम के राज्याभिषेक का प्रसंग फिर राजा दशरथ के वचन से राजरस (राज्याभिषेक के आनंद) में भंग पड़ना, फिर नगर निवासियों का विरह, विषाद और राम-लक्ष्मण का संवाद (बातचीत) कहा।

बिपिन गवन केवट अनुरागा। सुरसरि उतरि निवास प्रयागा॥
बालमीक प्रभु मिलन बखाना। चित्रकूट जिमि बसे भगवाना॥

राम का वन गमन, केवट का प्रेम, गंगा से पार उतरकर प्रयाग में निवास, वाल्मीकि और प्रभु राम का मिलन और जैसे भगवान चित्रकूट में बसे, वह सब कहा।

सचिवागवन नगर नृप मरना। भरतागवन प्रेम बहु बरना॥
करि नृप क्रिया संग पुरबासी। भरत गए जहँ प्रभु सुख रासी॥

फिर मंत्री सुमंत्र का नगर में लौटना, राजा दशरथ का मरण, भरत का (ननिहाल से) अयोध्या में आना और उनके प्रेम का बहुत वर्णन किया। राजा की अंत्येष्टि क्रिया करके नगर निवासियों को साथ लेकर भरत वहाँ गए जहाँ सुख की राशि प्रभु राम थे।

पुनि रघुपति बहु बिधि समुझाए। लै पादुका अवधपुर आए॥
भरत रहनि सुरपति सुत करनी। प्रभु अरु अत्रि भेंट पुनि बरनी॥

फिर रघुनाथ ने उनको बहुत प्रकार से समझाया, जिससे वे खड़ाऊँ लेकर अयोध्यापुरी लौट आए, यह सब कथा कही। भरत की नंदीग्राम में रहने की रीति, इंद्रपुत्र जयंत की नीच करनी और फिर प्रभु राम और अत्रि का मिलाप वर्णन किया।

दो० - कहि बिराध बध जेहि बिधि देह तजी सरभंग।
बरनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभ अगस्ति सतसंग॥ 65॥

जिस प्रकार विराध का वध हुआ और शरभंग ने शरीर त्याग किया, वह प्रसंग कहकर, फिर सुतीक्ष्ण का प्रेम वर्णन करके प्रभु और अगस्त्य का सत्संग वृत्तांत कहा॥ 65॥

कहि दंडक बन पावनताई। गीध मइत्री पुनि तेहिं गाई॥
पुनि प्रभु पंचबटीं कृत बासा। भंजी सकल मुनिन्ह की त्रासा॥

दंडक वन का पवित्र करना कहकर फिर भुशुंडि ने गृध्रराज के साथ मित्रता का वर्णन किया। फिर जिस प्रकार प्रभु ने पंचवटी में निवास किया और सब मुनियों के भय का नाश किया,

पुनि लछिमन उपदेस अनूपा। सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा॥
खर दूषन बध बहुरि बखाना। जिमि सब मरमु दसानन जाना॥

और फिर जैसे लक्ष्मण को अनुपम उपदेश दिया और शूर्पणखा को कुरूप किया, वह सब वर्णन किया। फिर खर-दूषण वध और जिस प्रकार रावण ने सब समाचार जाना, वह बखानकर कहा,

दसकंधर मारीच बतकही। जेहि बिधि भई सो सब तेहिं कही॥
पुनि माया सीता कर हरना। श्रीरघुबीर बिरह कछु बरना॥

तथा जिस प्रकार रावण और मारीच की बातचीत हुई, वह सब उन्होंने कही। फिर माया सीता का हरण और श्री रघुवीर के विरह का कुछ वर्णन किया।

पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्हीं। बधि कबंध सबरिहि गति दीन्ही॥
बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गए सरोबर तीरा॥

फिर प्रभु ने गिद्ध जटायु की जिस प्रकार क्रिया की, कबंध का वध करके शबरी को परमगति दी और फिर जिस प्रकार विरह-वर्णन करते हुए रघुवीर पंपासर के तीर पर गए, वह सब कहा।

दो० - प्रभु नारद संबाद कहि मारुति मिलन प्रसंग।
पुनि सुग्रीव मिताई बालि प्रान कर भंग॥ 66(क)॥

प्रभु और नारद का संवाद और मारुति के मिलने का प्रसंग कहकर फिर सुग्रीव से मित्रता और बालि के प्राणनाश का वर्णन किया॥ 66(क)॥

कपिहि तिलक करि प्रभु कृत सैल प्रबरषन बास।

बरनन बर्षा सरद अरु राम रोष कपि त्रास॥ 66(ख)॥

सुग्रीव का राजतिलक करके प्रभु ने प्रवर्षण पर्वत पर निवास किया, वह तथा वर्षा और शरद का वर्णन, राम का सुग्रीव पर रोष और सुग्रीव का भय आदि प्रसंग कहे॥ 66(ख)॥

जेहि बिधि कपिपति कीस पठाए। सीता खोज सकल दिदि धाए॥
बिबर प्रबेस कीन्ह जेहि भाँति। कपिन्ह बहोरि मिला संपाती॥

जिस प्रकार वानरराज सुग्रीव ने वानरों को भेजा और वे सीता की खोज में जिस प्रकार सब दिशाओं में गए, जिस प्रकार उन्होंने बिल में प्रवेश किया और फिर जैसे वानरों को संपाती मिला, वह कथा कही।

सुनि सब कथा समीरकुमारा। नाघत भयउ पयोधि अपारा॥
लंकाँ कपि प्रबेस जिमि कीन्हा। पुनि सीतहि धीरजु जिमि दीन्हा॥

संपाती से सब कथा सुनकर पवनपुत्र हनुमान जिस तरह अपार समुद्र को लाँघ गए, फिर हनुमान ने जैसे लंका में प्रवेश किया और फिर जैसे सीता को धीरज दिया, सो सब कहा।

बन उजारि रावनहि प्रबोधी। पुर दहि नाघेउ बहुरि पयोधी॥
आए कपि सब जहँ रघुराई। बैदेही की कुसल सुनाई॥

अशोक वन को उजाड़कर, रावण को समझाकर, लंकापुरी को जलाकर फिर जैसे उन्होंने समुद्र को लाँघा और जिस प्रकार सब वानर वहाँ आए जहाँ रघुनाथ थे और आकर जानकी की कुशल सुनाई,

सेन समेति जथा रघुबीरा। उतरे जाइ बारिनिधि तीरा॥
मिला बिभीषन जेहि बिधि आई। सागर निग्रह कथा सुनाई॥

फिर जिस प्रकार सेना सहित रघुवीर जाकर समुद्र के तट पर उतरे और जिस प्रकार विभीषण आकर उनसे मिले, वह सब और समुद्र के बाँधने की कथा उसने सुनाई।

दो० - सेतु बाँधि कपि सेन जिमि उतरी सागर पार।
गयउ बसीठी बीरबर जेहि बिधि बालिकुमार॥ 67(क)॥

पुल बाँधकर जिस प्रकार वानरों की सेना समुद्र के पार उतरी और जिस प्रकार वीर श्रेष्ठ

बालिपुत्र अंगद दूत बनकर गए वह सब कहा॥ 67(क)॥

निसिचर कीस लराई बरनिसि बिबिध प्रकार।
कुंभकरन घननाद कर बल पौरुष संघार॥ 67(ख)॥

फिर राक्षसों और वानरों के युद्ध का अनेकों प्रकार से वर्णन किया। फिर कुंभकर्ण और मेघनाद के बल, पुरुषार्थ और संहार की कथा कही॥ 67(ख)॥

निसिचर निकर मरन बिधि नाना। रघुपति रावन समर बखाना॥
रावन बध मंदोदरि सोका। राज बिभीषन देव असोका॥

नाना प्रकार के राक्षस समूहों के मरण तथा रघुनाथ और रावण के अनेक प्रकार के युद्ध का वर्णन किया। रावण वध, मंदोदरी का शोक, विभीषण का राज्याभिषेक और देवताओं का शोकरहित होना कहकर,

सीता रघुपति मिलन बहोरी। सुरन्ह कीन्हि अस्तुति कर जोरी॥
पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता। अवध चले प्रभु कृपा निकेता॥

फिर सीता और रघुनाथ का मिलाप कहा। जिस प्रकार देवताओं ने हाथ जोड़कर स्तुति की और फिर जैसे वानरों समेत पुष्पक विमान पर चढ़कर कृपाधाम प्रभु अवधपुरी को चले, वह कहा।

जेहि बिधि राम नगर निज आए। बायस बिसद चरित सब गाए॥
कहेसि बहोरि राम अभिषेका। पुर बरनत नृपनीति अनेका॥

जिस प्रकार राम अपने नगर (अयोध्या) में आए, वे सब उज्ज्वल चरित्र काकभुशुंडि ने विस्तारपूर्वक वर्णन किए। फिर उन्होंने राम का राज्याभिषेक कहा। (शिव कहते हैं -) अयोध्यापुरी का और अनेक प्रकार की राजनीति का वर्णन करते हुए -

कथा समस्त भुसुंड बखानी। जो मैं तुम्ह सन कही भवानी॥
सुनि सब राम कथा खगनाहा। कहत बचन मन परम उछाहा॥

भुशुंडि ने वह सब कथा कही जो हे भवानी! मैंने तुमसे कही। सारी रामकथा सुनकर गरुड़ मन में बहुत उत्साहित (आनंदित) होकर वचन कहने लगे -

दो० - गयउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित।
भयउ राम पद नेह तव प्रसाद बायस तिलक॥ 68(क)॥

रघुनाथ के सब चरित्र मैंने सुने, जिससे मेरा संदेह जाता रहा। हे काकशिरोमणि! आपके अनुग्रह से राम के चरणों में मेरा प्रेम हो गया॥ 68(क)॥

मोहि भयउ अति मोह प्रभु बंधन रन महुँ निरखि।
चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन॥ 68(ख)॥

युद्ध में प्रभु का नागपाश से बंधन देखकर मुझे अत्यंत मोह हो गया था कि राम तो सच्चिदानंदघन हैं, वे किस कारण व्याकुल हैं॥ 68(ख)॥

देखि चरित अति नर अनुसारी। भयउ हृदयँ मम संसय भारी॥
सोई भ्रम अब हित करि मैं माना। कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना॥

बिलकुल ही लौकिक मनुष्यों का-सा चरित्र देखकर मेरे हृदय में भारी संदेह हो गया। मैं अब उस भ्रम (संदेह) को अपने लिए हित करके समझता हूँ। कृपानिधान ने मुझ पर यह बड़ा अनुग्रह किया।

जो अति आतप ब्याकुल होई। तरु छाया सुख जानइ सोई॥
जौं नहिं होत मोह अति मोही। मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही॥

जो धूप से अत्यंत व्याकुल होता है, वही वृक्ष की छाया का सुख जानता है। हे तात! यदि मुझे अत्यंत मोह न होता तो मैं आपसे किस प्रकार मिलता?

सुनतेउँ किमि हरि कथा सुहाई। अति बिचित्र बहु बिधि तुम्ह गाई॥
निगमागम पुरान मत एहा। कहहिं सिद्ध मुनि नहिं संदेहा॥

और कैसे अत्यंत विचित्र यह सुंदर हरिकथा सुनता; जो आपने बहुत प्रकार से गाई है? वेद, शास्त्र और पुराणों का यही मत है; सिद्ध और मुनि भी यही कहते हैं, इसमें संदेह नहीं कि -

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥
राम कृपाँ तव दरसन भयऊ। तव प्रसाद सब संसय गयऊ॥

शुद्ध (सच्चे) संत उसी को मिलते हैं, जिसे राम कृपा करके देखते हैं। राम की कृपा से मुझे आपके दर्शन हुए और आपकी कृपा से मेरा संदेह चला गया।

दो॰ - सुनि बिहंगपति बानी सहित बिनय अनुराग।
पुलक गात लोचन सजल मन हरषेउ अति काग॥ 69(क)॥

पक्षीराज गरुड़ की विनय और प्रेमयुक्त वाणी सुनकर काकभुशुंडि का शरीर पुलकित हो गया, उनके नेत्रों में जल भर आया और वे मन में अत्यंत हर्षित हुए॥ 69(क)॥

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरि दास।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास॥ 69(ख॥

हे उमा! सुंदर बुद्धिवाले सुशील, पवित्र कथा के प्रेमी और हरि के सेवक श्रोता को पाकर सज्जन अत्यंत गोपनीय (सबके सामने प्रकट न करने योग्य) रहस्य को भी प्रकट कर देते हैं॥ 69(ख)॥

बोलेउ काकभुसुंड बहोरी। नभग नाथ पर प्रीति न थोरी॥
सब बिधि नाथ पूज्य तुम्ह मेरे। कृपापात्र रघुनायक केरे॥

काकभुशुंडि ने फिर कहा - पक्षीराज पर उनका प्रेम कम न था (अर्थात बहुत था) - हे नाथ! आप सब प्रकार से मेरे पूज्य हैं और रघुनाथ के कृपापात्र हैं।

तुम्हहि न संसय मोह न माया। मो पर नाथ कीन्हि तुम्ह दाया॥
पठइ मोह मिस खगपति तोही। रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही॥

आपको न संदेह है और न मोह अथवा माया ही है। हे नाथ! आपने तो मुझ पर दया की है। हे पक्षीराज! मोह के बहाने रघुनाथ ने आपको यहाँ भेजकर मुझे बड़ाई दी है।

तुम्ह निज मोह कही खग साईं। सो नहिं कछु आचरज गोसाईं॥
नारद भव बिरंचि सनकादी। जे मुनिनायक आतमबादी॥

हे पक्षियों के स्वामी! आपने अपना मोह कहा, सो हे गोसाईं! यह कुछ आश्चर्य नहीं है। नारद, शिव, ब्रह्मा और सनकादि जो आत्मतत्त्व के मर्मज्ञ और उसका उपदेश करनेवाले श्रेष्ठ मुनि हैं।

मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव नजेही॥
तृस्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा॥

उनमें से भी किस-किस को मोह ने अंधा (विवेकशून्य) नहीं किया? जगत में ऐसा कौन है जिसे काम ने न नचाया हो? तृष्णा ने किसको मतवाला नहीं बनाया? क्रोध ने किसका हृदय नहीं जलाया?

दो॰ - ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार॥ 70(क)॥

इस संसार में ऐसा कौन ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, कवि, विद्वान और गुणों का धाम है, जिसकी लोभ ने विडंबना (मिट्टी पलीद) न की हो॥ 70(क)॥

श्री मद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि॥ 70(ख)॥

लक्ष्मी के मद ने किसको टेढ़ा और प्रभुता ने किसको बहरा नहीं कर दिया? ऐसा कौन है जिसे मृगनयनी (युवती स्त्री) के नेत्र बाण न लगे हों॥ 70(ख)॥

गुन कृत सन्यपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही॥
जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जस न नसावा॥

(रज, तम आदि) गुणों का किया हुआ सन्निपात किसे नहीं हुआ? ऐसा कोई नहीं है जिसे मान और मद ने अछूता छोड़ा हो। यौवन के ज्वर ने किसे आपे से बाहर नहीं किया? ममता ने किस के यश का नाश नहीं किया?

मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा॥
चिंता साँपिनि को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया॥

मत्सर (डाह) ने किसको कलंक नहीं लगाया? शोकरूपी पवन ने किसे नहीं हिला दिया? चिंतारूपी साँपिन ने किसे नहीं खा लिया? जगत में ऐसा कौन है, जिसे माया न व्यापी हो?

कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा॥
सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी॥

मनोरथ क्रीड़ा है, शरीर लकड़ी है। ऐसा धैर्यवान कौन है, जिसके शरीर में यह कीड़ा न लगा हो? पुत्र की, धन की और लोक प्रतिष्ठा की - इन तीन प्रबल इच्छाओं ने किसकी बुद्धि को मलिन नहीं कर दिया (बिगाड़ नहीं दिया)?

यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमिति को बरनै पारा॥
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं॥

यह सब माया का बड़ा बलवान परिवार है। यह अपार है, इसका वर्णन कौन कर सकता है? शिव और ब्रह्मा भी जिससे डरते हैं, तब दूसरे जीव तो किस गिनती में हैं?

दो॰ - ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड॥ 71(क)॥

माया की प्रचंड सेना संसार भर में छाई हुई है। कामादि (काम, क्रोध और लोभ) उसके सेनापति हैं और दंभ, कपट और पाखंड योद्धा हैं॥ 71(क)॥

सो दासी रघुबीर कै समुझें मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि॥ 71(ख)॥

वह माया रघुवीर की दासी है। यद्यपि समझ लेने पर वह मिथ्या ही है, किंतु वह राम की कृपा के बिना छूटती नहीं। हे नाथ! यह मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ॥ 71(ख)॥

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहुँ न पावा॥
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा॥

जो माया सारे जगत को नचाती है और जिसका चरित्र (करनी) किसी ने नहीं लख पाया, हे खगराज गरुड़! वही माया प्रभु राम की भृकुटी के इशारे पर अपने समाज (परिवार) सहित नटी की तरह नाचती है।

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिग्यान रूप बल धामा॥
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अकिल अमोघसक्ति भगवंता॥

राम वही सच्चिदानंदघन हैं जो अजन्मे, विज्ञानस्वरूप, रूप और बल के धाम, सर्वव्यापक एवं व्याप्य (सर्वरूप), अखंड, अनंत, संपूर्ण, अमोघशक्ति (जिसकी शक्ति कभी व्यर्थ नहीं

होती) और छह ऐश्वर्यों से युक्त भगवान हैं।

अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता॥
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा॥

वे निर्गुण (माया के गुणों से रहित), महान, वाणी और इंद्रियों से परे, सब कुछ देखनेवाले, निर्दोष, अजेय, ममतारहित, निराकार, मोहरहित, नित्य, मायारहित, सुख की राशि,

प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी॥
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं॥

प्रकृति से परे, प्रभु (सर्वसमर्थ), सदा सबके हृदय में बसनेवाले, इच्छारहित विकाररहित, अविनाशी ब्रह्म हैं। यहाँ (राम में) मोह का कारण ही नहीं है। क्या अंधकार का समूह कभी सूर्य के सामने जा सकता है?

दो० - भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥ 72(क)॥

भगवान प्रभु राम ने भक्तों के लिए राजा का शरीर धारण किया और साधारण मनुष्यों के-से अनेकों परम पावन चरित्र किए॥ 72(क)॥

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ॥ 72(ख)॥

जैसे कोई नट (खेल करनेवाला) अनेक वेष धारण करके नृत्य करता है, और वही-वही (जैसा वेष होता है, उसी के अनुकूल) भाव दिखलाता है, पर स्वयं वह उनमें से कोई हो नहीं जाता,॥ 72(ख)॥

असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी॥
जे मति मलिन बिषय बस कामी। प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी॥

हे गरुड़! ऐसी ही रघुनाथ की यह लीला है, जो राक्षसों को विशेष मोहित करनेवाली और भक्तों को सुख देनेवाली है। हे स्वामी! जो मनुष्य मलिन बुद्धि, विषयों के वश और कामी हैं, वे ही प्रभु पर इस प्रकार मोह का आरोप करते हैं।

नयन दोष जा कहँ जब होई। पीत बरन ससि कहुँ कह सोई॥
जब जेहि दिसि भ्रम होई खगेसा। सो कह पच्छिम उयउ दिनेसा॥

जब किसी को नेत्र-दोष होता है, तब वह चंद्रमा को पीले रंग का कहता है। हे पक्षीराज! जब जिसे दिशाभ्रम होता है, तब वह कहता है कि सूर्य पश्चिम में उदय हुआ है।

नौकारूढ़ चलत जग देखा। अचल मोह बस आपुहि लेखा॥
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी। कहहिं परस्पर मिथ्याबादी॥

नौका पर चढ़ा हुआ मनुष्य जगत को चलता हुआ देखता है और मोहवश अपने को अचल समझता है। बालक घूमते (चक्राकार दौड़ते) हैं, घर आदि नहीं घूमते। पर वे आपस में एक-दूसरे को झूठा कहते हैं।

हरि बिषइक अस मोह बिहंगा। सपनेहुँ नहिं अग्यान प्रसंगा॥
माया बस मतिमंद अभागी। हृदयँ जमनिका बहुबिधि लागी॥

हे गरुड़! हरि के विषय में मोह की कल्पना भी ऐसी ही है, भगवान में तो स्वप्न में भी अज्ञान का प्रसंग (अवसर) नहीं है, किंतु जो माया के वश, मंद बुद्धि और भाग्यहीन हैं और जिनके हृदय पर अनेकों प्रकार के परदे पड़े हैं।

ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अग्यान राम पर धरहीं॥

वे मूर्ख हठ के वश होकर संदेह करते हैं और अपना अज्ञान राम पर आरोपित करते हैं।

दो० - काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप॥ 73(क)॥

जो काम, क्रोध, मद और लोभ में रत हैं और दुःख रूप घर में आसक्त हैं, वे रघुनाथ को कैसे जान सकते हैं? वे मूर्ख तो अंधकाररूपी कुएँ में पड़े हुए हैं॥ 73(क)॥

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोई।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होई॥ 73(ख)॥

निर्गुण रूप अत्यंत सुलभ (सहज ही समझ में आ जानेवाला) है, परंतु (गुणातीत दिव्य) सगुण रूप को कोई नहीं जानता। इसलिए उन सगुण भगवान के अनेक प्रकार के सुगम

और अगम चरित्रों को सुनकर मुनियों के भी मन को भ्रम हो जाता है॥ 73(ख)॥

सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई। कहउँ जथामति कथा सुहाई॥
जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोही। सोउ सब कथा सुनावउँ तोही॥

हे पक्षीराज गरुड़! रघुनाथ की प्रभुता सुनिए। मैं अपनी बुद्धि के अनुसार वह सुहावनी कथा कहता हूँ। हे प्रभो! मुझे जिस प्रकार मोह हुआ, वह सब कथा भी आपको सुनाता हूँ।

राम कृपा भाजन तुम्ह ताता। हरि गुन प्रीति मोहि सुखदाता॥
ताते नहिं कछु तुम्हहि दुरावउँ। परम रहस्य मनोहर गावउँ॥

हे तात! आप राम के कृपा पात्र हैं। हरि के गुणों में आपकी प्रीति है, इसीलिए आप मुझे सुख देनेवाले हैं। इसी से मैं आप से कुछ भी नहीं छिपाता और अत्यंत रहस्य की बातें आपको गाकर सुनाता हूँ।

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ॥
संसृत मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥

राम का सहज स्वभाव सुनिए। वे भक्त में अभिमान कभी नहीं रहने देते। क्योंकि अभिमान जन्म-मरण रूप संसार का मूल है और अनेक प्रकार के क्लेशों तथा समस्त शोकों का देनेवाला है।

ताते करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अति भूरी॥
जिमि सिसु तन ब्रन होई गोसाईं। मातु चिराव कठिन की नाईं॥

इसीलिए कृपानिधि उसे दूर कर देते हैं; क्योंकि सेवक पर उनकी बहुत ही अधिक ममता है। हे गोसाईं! जैसे बच्चे के शरीर में फोड़ा हो जाता है, तो माता उसे कठोर हृदय की भाँति चिरा डालती है।

दो० - जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर।
ब्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर॥ 74(क)॥

यद्यपि बच्चा पहले (फोड़ा चिराते समय) दुःख पाता है और अधीर होकर रोता है, तो भी रोग के नाश के लिए माता बच्चे की उस पीड़ा को कुछ भी नहीं गिनती (उसकी परवाह

नहीं करती और फोड़े को चिरवा ही डालती है)॥ 74(क)॥

तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि॥ 74(ख)॥

उसी प्रकार रघुनाथ अपने दास का अभिमान उसके हित के लिए हर लेते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे प्रभु को भ्रम त्यागकर क्यों नहीं भजते॥ 74(ख)॥

राम कृपा आपनि जड़ताई। कहउँ खगेस सुनहु मन लाई॥
जब जब राम मनुज तनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं॥

हे पक्षीराज गरुड़! राम की कृपा और अपनी जड़ता (मूर्खता) की बात कहता हूँ, मन लगाकर सुनिए। जब-जब राम मनुष्य शरीर धारण करते हैं और भक्तों के लिए बहुत-सी लीलाएँ करते हैं।

तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ। बालचरित बिलोकि हरषाऊँ॥
जन्म महोत्सव देखउँ जाई। बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई॥

तब-तब मैं अयोध्यापुरी जाता हूँ और उनकी बाल लीला देखकर हर्षित होता हूँ। वहाँ जाकर मैं जन्म महोत्सव देखता हूँ और (भगवान की शिशु लीला में) लुभाकर पाँच वर्ष तक वहीं रहता हूँ।

इष्टदेव मम बालक रामा। सोभा बपुष कोटि सत कामा॥
निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करउँ उरगारी॥

बालक रूप राम मेरे इष्टदेव हैं, जिनके शरीर में अरबों कामदेवों की शोभा है। हे गरुड़! अपने प्रभु का मुख देख-देखकर मैं नेत्रों को सफल करता हूँ।

लघु बायस बपु धरि हरि संगा। देखउँ बालचरित बहु रंगा॥

छोटे-से कौए का शरीर धरकर और भगवान के साथ-साथ फिरकर मैं उनके भाँति-भाँति के बाल चरित्रों को देखा करता हूँ।

दो० - लरिकाईं जहँ जहँ फिरहिं तहँ तहँ संग उड़ाउँ।

जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाई करि खाउँ॥ 75(क)॥

लड़कपन में वे जहाँ-जहाँ फिरते हैं, वहाँ-वहाँ मैं साथ-साथ उड़ता हूँ और आँगन में उनकी जो जूठन पड़ती है, वही उठाकर खाता हूँ॥ 75(क)॥

एक बार अतिसय सब चरित किए रघुबीर।
सुमिरत प्रभु लीला सोइ पुलकित भयउ सरीर॥ 75(ख)॥

एक बार रघुवीर ने सब चरित्र बहुत अधिकता से किए। प्रभु की उस लीला का स्मरण करते ही काकभुशुंडि का शरीर (प्रेमानंदवश) पुलकित हो गया॥ 75(ख)॥

कहइ भसुंड सुनहु खगनायक। राम चरित सेवक सुखदायक॥
नृप मंदिर सुंदर सब भाँती। खचित कनक मनि नाना जाती॥

भुशुंडि कहने लगे - हे पक्षीराज! सुनिए, राम का चरित्र सेवकों को सुख देनेवाला है। (अयोध्या का) राजमहल सब प्रकार से सुंदर है। सोने के महल में नाना प्रकार के रत्न जड़े हुए हैं।

बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई। जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई॥
बाल बिनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर जननि सुखदाई॥

सुंदर आँगन का वर्णन नहीं किया जा सकता, जहाँ चारों भाई नित्य खेलते हैं। माता को सुख देनेवाले बालविनोद करते हुए रघुनाथ आँगन में विचर रहे हैं।

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना॥

मरकत मणि के समान हरिताभ श्याम और कोमल शरीर है। अंग-अंग में बहुत-से कामदेवों की शोभा छाई हुई है। नवीन (लाल) कमल के समान लाल-लाल कोमल चरण हैं। सुंदर अँगुलियाँ हैं और नख अपनी ज्योति से चंद्रमा की कांति को हरनेवाले हैं।

ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रवकारी॥
चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई॥

(तलवे में) वज्रादि (वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल) के चार सुंदर चिह्न हैं, चरणों में मधुर

शब्द करनेवाले सुंदर नूपुर हैं, मणियों, रत्नों से जड़ी हुई सोने की बनी हुई सुंदर करधनी का शब्द सुहावना लग रहा है।

दो० - रेखा त्रय सुंदर उदर नाभी रुचिर गँभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिधि बाल बिभूषन चीर॥ 76॥

उदर पर सुंदर तीन रेखाएँ (त्रिवली) हैं, नाभि सुंदर और गहरी है। विशाल वक्षस्थल पर अनेकों प्रकार के बच्चों के आभूषण और वस्त्र सुशोभित हैं॥ 76॥

अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥
कंध बाल केहरि दर ग्रीवा। चारु चिबुक आनन छबि सींवा॥

लाल-लाल हथेलियाँ, नख और अँगुलियाँ मन को हरनेवाले हैं और विशाल भुजाओं पर सुंदर आभूषण हैं। बालसिंह (सिंह के बच्चे) के-से कंधे और शंख के समान (तीन रेखाओं से युक्त) गला है। सुंदर ठुड्डी है और मुख तो छवि की सीमा ही है।

कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दसन बिसद बर बारे॥
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा॥

कलबल (तोतले) वचन हैं, लाल-लाल ओंठ हैं। उज्ज्वल, सुंदर और छोटी-छोटी (ऊपर और नीचे) दो-दो दंतुलियाँ हैं। सुंदर गाल, मनोहर नासिका और सब सुखों को देनेवाली चंद्रमा की (अथवा सुख देनेवाली समस्त कलाओं से पूर्ण चंद्रमा की) किरणों के समान मधुर मुसकान है।

नील कंज लोचन भव मोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन॥
बिकट भृकुटि सम श्रवन सुहाए। कुंचित कच मेचक छबि छाए॥

नीले कमल के समान नेत्र जन्म-मृत्यु (के बंधन) से छुड़ानेवाले हैं। ललाट पर गोरोचन का तिलक सुशोभित है। भौंहें टेढ़ी हैं, कान सम और सुंदर हैं, काले और घुँघराले केशों की छवि छा रही है।

पीत झीनि झगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही॥
रूप रासि नृप अजिर बिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी॥

पीली और महीन झँगुली शरीर पर शोभा दे रही है। उनकी किलकारी और चितवन मुझे

बहुत ही प्रिय लगती है। राजा दशरथ के आँगन में विहार करनेवाले रूप की राशि राम अपनी परछाहीं देखकर नाचते हैं,

मोहि सन करहिं बिबिधि बिधि क्रीड़ा। बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा॥
किलकत मोहि धरन जब धावहिं। चलउँ भागि तब पूप देखावहिं॥

और मुझसे बहुत प्रकार के खेल करते हैं, जिन चरित्रों का वर्णन करते मुझे लज्जा आती है! किलकारी मारते हुए जब वे मुझे पकड़ने दौड़ते और मैं भाग चलता, तब मुझे पूआ दिखलाते थे।

दो॰ - आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं।
जाऊँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं॥ 77(क)॥

मेरे निकट आने पर प्रभु हँसते हैं और भाग जाने पर रोते हैं और जब मैं उनका चरण स्पर्श करने के लिए पास जाता हूँ, तब वे पीछे फिर-फिरकर मेरी ओर देखते हुए भाग जाते हैं॥ 77(क)॥

प्राकृत सिसु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद संदोह॥ 77(ख)॥

साधारण बच्चों-जैसी लीला देखकर मुझे मोह (शंका) हुआ कि सच्चिदानंदघन प्रभु यह कौन (महत्त्व का) चरित्र (लीला) कर रहे हैं॥ 77(ख)॥

एतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित ब्यापी माया॥
सो माया न दुखद मोहि काहीं। आन जीव इव संसृत नाहीं॥

हे पक्षीराज! मन में इतनी (शंका) लाते ही रघुनाथ के द्वारा प्रेरित माया मुझ पर छा गई। परंतु वह माया न तो मुझे दुःख देनेवाली हुई और न दूसरे जीवों की भाँति संसार में डालनेवाली हुई।

नाथ इहाँ कछु कारन आना। सुनहु सो सावधान हरिजाना॥
ग्यान अखंड एक सीताबर। माया बस्य जीव सचराचर॥

हे नाथ! यहाँ कुछ दूसरा ही कारण है। हे भगवान के वाहन गरुड़! उसे सावधान होकर सुनिए। एक सीतापति राम ही अखंड ज्ञानस्वरूप हैं और जड़-चेतन सभी जीव माया के

वश हैं।

जौं सब कें रह ग्यान एकरस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस॥
माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी॥

यदि जीवों को एकरस (अखंड) ज्ञान रहे, तो कहिए, फिर ईश्वर और जीव में भेद ही कैसा? अभिमानी जीव माया के वश है और वह (सत्त्व, रज, तम - इन) तीनों गुणों की खान माया ईश्वर के वश में है।

परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता॥
मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥

जीव परतंत्र है, भगवान स्वतंत्र हैं; जीव अनेक हैं, श्रीपति भगवान एक हैं। यद्यपि माया का किया हुआ यह भेद असत् है तथापि वह भगवान के भजन बिना करोड़ों उपाय करने पर भी नहीं जा सकता।

दो० - रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान॥ 78(क)॥

रामचंद्र के भजन बिना जो मोक्ष पद चाहता है, वह मनुष्य ज्ञानवान होने पर भी बिना पूँछ और सींग का पशु है॥ 78(क)॥

राकापति षोड़स उअहिं तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ॥ 78(ख)॥

सभी तारागणों के साथ सोलह कलाओं से पूर्ण चंद्रमा उदय हो और जितने पर्वत हैं उन सब में दावाग्नि लगा दी जाए, तो भी सूर्य के उदय हुए बिना रात्रि नहीं जा सकती॥ 78(ख)॥

ऐसेहिं हरि बिनु भजन खगेसा। मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा॥
हरि सेवकहि न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या॥

हे पक्षीराज! इसी प्रकार हरि के भजन बिना जीवों का क्लेश नहीं मिटता। हरि के सेवक को अविद्या नहीं व्यापती। प्रभु की प्रेरणा से उसे विद्या व्यापती है।

तातें नास न होइ दास कर। भेद भगति बाढ़इ बिहंगबर॥
भ्रम तें चकित राम मोहि देखा। बिहँसे सो सुनु चरित बिसेषा॥

हे पक्षीश्रेष्ठ! इससे दास का नाश नहीं होता और भेद-भक्ति बढ़ती है। राम ने मुझे जब भ्रम से चकित देखा, तब वे हँसे। वह विशेष चरित्र सुनिए।

तेहि कौतुक कर मरमु न काहूँ। जाना अनुज न मातु पिताहूँ॥
जानु पानि धाए मोहि धरना। स्यामल गात अरुन कर चरना॥

उस खेल का मर्म किसी ने नहीं जाना, न छोटे भाइयों ने और न माता-पिता ने ही। वे श्याम शरीर और लाल-लाल हथेली और चरणतलवाले बाल रूप राम घुटने और हाथों के बल मुझे पकड़ने को दौड़े।

तब मैं भागि चलेउँ उरगारी। राम गहन कहँ भुजा पसारी॥
जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा। तहँ भुज हरि देखउँ निज पासा॥

हे सर्पों के शत्रु गरुड़! तब मैं भाग चला। राम ने मुझे पकड़ने के लिए भुजा फैलाई। मैं जैसे-जैसे आकाश में दूर उड़ता, वैसे-वैसे ही वहाँ हरि की भुजा को अपने पास देखता था।

दो० - ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात॥ 79(क)॥

मैं ब्रह्मलोक तक गया और जब उड़ते हुए मैंने पीछे की ओर देखा, तो हे तात! राम की भुजा में और मुझमें केवल दो ही अंगुल की दूरी थी॥ 79(क)॥

सप्ताबरन भेद करि जहाँ लगें गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि॥ 79(ख)॥

सातों आवरणों को भेदकर जहाँ तक मेरी गति थी वहाँ तक मैं गया। पर वहाँ भी प्रभु की भुजा को (अपने पीछे) देखकर मैं व्याकुल हो गया॥ 79(ख)॥111

मूदेउँ नयन त्रसित जब भयउँ। पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ॥
मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं। बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं॥

जब मैं भयभीत हो गया, तब मैंने आँखें मूँद लीं। फिर आँखें खोलकर देखते ही अवधपुरी

में पहुँच गया। मुझे देखकर राम मुसकराने लगे। उनके हँसते ही मैं तुरंत उनके मुख में चला गया।

उदर माझ सुनु अंडज राया। देखउँ बहु ब्रह्मांड निकाया॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका॥

हे पक्षीराज! सुनिए, मैंने उनके पेट में बहुत-से ब्रह्मांडों के समूह देखे। वहाँ (उन ब्रह्मांडों में) अनेकों विचित्र लोक थे, जिनकी रचना एक-से-एक की बढ़कर थी।

कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रबि रजनीसा॥
अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला॥

करोड़ों ब्रह्मा और शिव, अनगिनत तारागण, सूर्य और चंद्रमा, अनगिनत लोकपाल, यम और काल, अनगिनत विशाल पर्वत और भूमि,

सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर। चारि प्रकार जीव सचराचर॥

असंख्य समुद्र, नदी, तालाब और वन तथा और भी नाना प्रकार की सृष्टि का विस्तार देखा। देवता, मुनि, सिद्ध, नाग, मनुष्य, किन्नर तथा चारों प्रकार के जड़ और चेतन जीव देखे।

दो० - जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ॥ 80(क)॥

जो कभी न देखा था, न सुना था और जो मन में भी नहीं समा सकता था (अर्थात जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी), वही सब अद्भुत सृष्टि मैंने देखी। तब उसका किस प्रकार वर्णन किया जाए!॥ 80(क)॥

एक एक ब्रह्मांड महुँ रहउँ बरष सत एक।
एहि बिधि देखत फिरउँ मैं अंड कटाह अनेक॥ 80(ख)॥

मैं एक-एक ब्रह्मांड में एक-एक सौ वर्ष तक रहता। इस प्रकार मैं अनेकों ब्रह्मांड देखता फिरा॥ 80(ख)॥

लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसित्राता॥
नर गंधर्ब भूत बेताला। किंनर निसिचर पसु खग ब्याला॥

प्रत्येक लोक में भिन्न-भिन्न ब्रह्मा, भिन्न-भिन्न विष्णु, शिव, मनु, दिक्पाल, मनुष्य, गंधर्व, भूत, वैताल, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, सर्प,

देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहि भाँती॥
महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपंच तहँ आनइ आना॥

तथा नाना जाति के देवता एवं दैत्यगण थे। सभी जीव वहाँ दूसरे ही प्रकार के थे। अनेक पृथ्वी, नदी, समुद्र, तालाब, पर्वत तथा सब सृष्टि वहाँ दूसरी-ही-दूसरी प्रकार की थी।

अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा। दाखेउँ जिनस अनेक अनूपा॥
अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी॥

प्रत्येक ब्रह्मांड में मैंने अपना रूप देखा तथा अनेकों अनुपम वस्तुएँ देखीं। प्रत्येक भुवन में न्यारी ही अवधपुरी, भिन्न ही सरयू और भिन्न प्रकार के ही नर-नारी थे।

दसरथ कौसल्या सुनु ताता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता॥
प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखउँ बालबिनोद अपारा॥

हे तात! सुनिए, दशरथ, कौसल्या और भरत आदि भाई भी भिन्न-भिन्न रूपों के थे। मैं प्रत्येक ब्रह्मांड में रामावतार और उनकी अपार बाल लीलाएँ देखता फिरता।

दो० - भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति बिचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन॥ 81(क)॥

हे हरिवाहन! मैंने सभी कुछ भिन्न-भिन्न और अत्यंत विचित्र देखा। मैं अनगिनत ब्रह्मांडों में फिरा, पर प्रभु राम को मैंने दूसरी तरह का नहीं देखा॥ 81(क)॥

सोइ सिसुपन सोइ सोभा सोइ कृपाल रघुबीर।
भुवन भुवन देखत फिरउँ प्रेरित मोह समीर॥ 81(ख)॥

सर्वत्र वही शिशुपन, वही शोभा और वही कृपालु रघुवीर! इस प्रकार मोहरूपी पवन की

प्रेरणा से मैं भुवन-भुवन में देखता-फिरता था॥ 81(ख)॥

भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका। बीते मनहुँ कल्प सत एका॥
फिरत फिरत निज आश्रम आयउँ। तहँ पुनि रहि कछु काल गवाँयउँ॥

अनेक ब्रह्मांडों में भटकते मुझे मानो एक सौ कल्प बीत गए। फिरता-फिरता मैं अपने आश्रम में आया और कुछ काल वहाँ रहकर बिताया।

निज प्रभु जन्म अवध सुनि पायउँ। निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउँ॥
देखउँ जन्म महोत्सव जाई। जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई॥

फिर जब अपने प्रभु का अवधपुरी में जन्म (अवतार) सुन पाया, तब प्रेम से परिपूर्ण होकर मैं हर्षपूर्वक उठ दौड़ा। जाकर मैंने जन्म महोत्सव देखा, जिस प्रकार मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ।

राम उदर देखेउँ जग नाना। देखत बनइ न जाइ बखाना॥
तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना। माया पति कृपाल भगवाना॥

राम के पेट में मैंने बहुत-से जगत देखे, जो देखते ही बनते थे, वर्णन नहीं किए जा सकते। वहाँ फिर मैंने सुजान माया के स्वामी कृपालु भगवान राम को देखा।

करउँ बिचार बहोरि बहोरी। मोह कलिल ब्यापित मति मोरी॥
उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह बिसेषा॥

मैं बार-बार विचार करता था। मेरी बुद्धि मोहरूपी कीचड़ से व्याप्त थी। यह सब मैंने दो ही घड़ी में देखा। मन में विशेष मोह होने से मैं थक गया।

दो॰ - देखि कृपाल बिकल मोहि बिहँसे तब रघुबीर।
बिहँसतहीं मुख बाहेर आयउँ सुनु मतिधीर॥ 82(क)॥

मुझे व्याकुल देखकर तब कृपालु रघुवीर हँस दिए। हे धीर-बुद्धि गरुड़! सुनिए, उनके हँसते ही मैं मुँह से बाहर आ गया॥ 82(क)॥

सोइ लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम।

कोटि भाँति समुझावउँ मनु न लहइ बिश्राम॥ 82(ख)॥

राम मेरे साथ फिर वही लड़कपन करने लगे। मैं करोड़ों (असंख्य) प्रकार से मन को समझाता था, पर वह शांति नहीं पाता था॥ 82(ख)॥

देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई॥
धरनि परेउँ मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता॥

यह (बाल) चरित्र देखकर और पेट के अंदर (देखी हुई) उस प्रभुता का स्मरण कर मैं शरीर की सुध भूल गया और 'हे आर्तजनों के रक्षक! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए' पुकारता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। मुख से बात नहीं निकलती थी।

प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी॥
कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीनदयाल सकल दुख हरेऊ॥

तदनंतर प्रभु ने मुझे प्रेमविह्वल देखकर अपनी माया की प्रभुता (प्रभाव) को रोक लिया। प्रभु ने अपना करकमल मेरे सिर पर रखा। दीनदयालु ने मेरे संपूर्ण दुःख हर लिए।

कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा। सेवक सुखद कृपा संदोहा॥
प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी। मन महँ होइ हरष अति भारी॥

सेवकों को सुख देनेवाले, कृपा के समूह (कृपामय) राम ने मुझे मोह से सर्वथा रहित कर दिया। उनकी पहलेवाली प्रभुता को विचार-विचारकर (याद कर-करके) मेरे मन में बड़ा भारी हर्ष हुआ।

भगत बछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिसेषी॥
सजल नयन पुलकित कर जोरी। कीन्हिउँ बहु बिधि बिनय बहोरी॥

प्रभु की भक्तवत्सलता देखकर मेरे हृदय में बहुत ही प्रेम उत्पन्न हुआ। फिर मैंने (आनंद से) नेत्रों में जल भरकर, पुलकित होकर और हाथ जोड़कर बहुत प्रकार से विनती की।

दो० - सुनि सप्रेम मम बानी देखि दीन निज दास।
बचन सुखद गंभीर मृदु बोले रमानिवास॥ 83(क)॥

मेरी प्रेमयुक्त वाणी सुनकर और अपने दास को दीन देखकर रमानिवास राम सुखदायक,

गंभीर और कोमल वचन बोले - ॥ 83(क)॥

काकभसुंडि मागु बर अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि॥ 83(ख)॥

हे काकभुशुंडि! तू मुझे अत्यंत प्रसन्न जानकर वर माँग। अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ, दूसरी ऋद्धियाँ तथा संपूर्ण सुखों की खान मोक्ष,॥ 83(ख)॥

ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना। मुनि दुर्लभ गुन जे जग नाना॥
आजु देउँ सब संसय नाहीं। मागु जो तोहि भाव मन माहीं॥

ज्ञान, विवेक, वैराग्य, विज्ञान, (तत्त्वज्ञान) और वे अनेकों गुण जो जगत में मुनियों के लिए भी दुर्लभ हैं, ये सब मैं आज तुझे दूँगा, इसमें संदेह नहीं। जो तेरे मन भाए, सो माँग ले।

सुनि प्रभु बचन अधिक अनुरागेउँ। मन अनुमान करन तब लागेउँ॥
प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही॥

प्रभु के वचन सुनकर मैं बहुत ही प्रेम में भर गया। तब मन में अनुमान करने लगा कि प्रभु ने सब सुखों के देने की बात कही, यह तो सत्य है; पर अपनी भक्ति देने की बात नहीं कही।

भगति हीन गुन सब सुख ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे॥
भजन हीन सुख कवने काजा। अस बिचारि बोलेउँ खगराजा॥

भक्ति से रहित सब गुण और सब सुख वैसे ही (फीके) हैं जैसे नमक के बिना बहुत प्रकार के भोजन के पदार्थ। भजन से रहित सुख किस काम के? हे पक्षीराज! ऐसा विचार कर मैं बोला -

जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू। मो पर करहु कृपा अरु नेहू॥
मन भावत बर मागउँ स्वामी। तुम्ह उदार उर अंतरजामी॥

हे प्रभो! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देते हैं और मुझ पर कृपा और स्नेह करते हैं, तो हे स्वामी! मैं अपना मन-भाया वर माँगता हूँ। आप उदार हैं और हृदय के भीतर की जाननेवाले हैं।

दो॰ - अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव॥ 84(क)॥

आपकी जिस अविरल (प्रगाढ़) एवं विशुद्ध (अनन्य निष्काम) भक्ति को श्रुति और पुराण गाते हैं, जिसे योगीश्वर मुनि खोजते हैं और प्रभु की कृपा से कोई विरला ही जिसे पाता है॥ 84(क)॥

भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपा सिंधु सुखधाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम॥ 84(ख)॥

हे भक्तों के (मन-इच्छित फल देनेवाले) कल्पवृक्ष! हे शरणागत के हितकारी! हे कृपासागर! हे सुखधान राम! दया करके मुझे अपनी वही भक्ति दीजिए॥ 84(ख)॥

एवमस्तु कहि रघुकुलनायक। बोले बचन परम सुखदायक॥
सुनु बायस तैं सहज सयाना। काहे न मागसि अस बरदाना॥

'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर रघुवंश के स्वामी परम सुख देनेवाले वचन बोले - हे काक! सुन, तू स्वभाव से ही बुद्धिमान है। ऐसा वरदान कैसे न माँगता?

सब सुख खानि भगति तैं मागी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी॥
जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं। जे जप जोग अनल तन दहहीं॥

तूने सब सुखों की खान भक्ति माँग ली, जगत में तेरे समान बड़भागी कोई नहीं है। वे मुनि जो जप और योग की अग्नि से शरीर जलाते रहते हैं, करोड़ों यत्न करके भी जिसको (जिस भक्ति को) नहीं पाते।

रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। मागेहु भगति मोहि अति भाई॥
सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरें। सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरें॥

वही भक्ति तूने माँगी। तेरी चतुराई देखकर मैं रीझ गया। यह चतुराई मुझे बहुत ही अच्छी लगी। हे पक्षी! सुन, मेरी कृपा से अब समस्त शुभ गुण तेरे हृदय में बसेंगे।

भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा॥
जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा॥

भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग, मेरी लीलाएँ और उनके रहस्य तथा विभाग - इन सबके भेद को तू मेरी कृपा से ही जान जाएगा। तुझे साधन का कष्ट नहीं होगा।

दो० - माया संभव भ्रम सब अब न ब्यापिहहिं तोहि।
जानेसु ब्रहम अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि॥ 85(क)॥

माया से उत्पन्न सब भ्रम अब तुझको नहीं व्यापेंगे। मुझे अनादि, अजन्मा, अगुण (प्रकृति के गुणों से रहित) और (गुणातीत दिव्य) गुणों की खान ब्रहम जानना॥ 85(क)॥

मोहि भगत प्रिय संतत अस बिचारि सुनु काग।
कायँ बचन मन मम पद करेसु अचल अनुराग॥ 85(ख)॥

हे काक! सुन, मुझे भक्त निरंतर प्रिय हैं, ऐसा विचार कर शरीर, वचन और मन से मेरे चरणों में अटल प्रेम करना॥ 85(ख)॥

अब सुनु परम बिमल मम बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानी॥
निज सिद्धांत सुनावउँ तोही। सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही॥

अब मेरी सत्य, सुगम, वेदादि के द्वारा वर्णित परम निर्मल वाणी सुन। मैं तुझको यह 'निज सिद्धांत' सुनाता हूँ। सुनकर मन में धारण कर और सब तजकर मेरा भजन कर।

....

मम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिधि प्रकारा॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब ते अधिक मनुज मोहि भाए॥

यह सारा संसार मेरी माया से उत्पन्न है। (इसमें) अनेकों प्रकार के चराचर जीव हैं। वे सभी मुझे प्रिय हैं; क्योंकि सभी मेरे उत्पन्न किए हुए हैं। (किंतु) मनुष्य मुझको सबसे अधिक अच्छे लगते हैं।

तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी। तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी॥
तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी। ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी॥

उन मनुष्यों में द्विज, द्विजों में भी वेदों को (कंठ में) धारण करनेवाले, उनमें भी वेदोक्त धर्म पर चलनेवाले, उनमें भी विरक्त (वैराग्यवान) मुझे प्रिय हैं। वैराग्यवानों में फिर ज्ञानी

और ज्ञानियों से भी अत्यंत प्रिय विज्ञानी हैं।

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥

विज्ञानियों से भी प्रिय मुझे अपना दास है, जिसे मेरी ही गति (आश्रय) है, कोई दूसरी आशा नहीं है। मैं तुझसे बार-बार सत्य ('निज सिद्धांत') कहता हूँ कि मुझे अपने सेवक के समान प्रिय कोई भी नहीं है।

भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥

भक्तिहीन ब्रह्मा ही क्यों न हो, वह मुझे सब जीवों के समान ही प्रिय है। परंतु भक्तिमान अत्यंत नीच भी प्राणी मुझे प्राणों के समान प्रिय है, यह मेरी घोषणा है।

दो॰ - सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग।
श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग॥ 86॥

पवित्र, सुशील और सुंदर बुद्धिवाला सेवक, बता, किसको प्यारा नहीं लगता? वेद और पुराण ऐसी ही नीति कहते हैं। हे काक! सावधान होकर सुन॥ 86॥

एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा॥
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता॥

एक पिता के बहुत-से पुत्र पृथक-पृथक गुण, स्वभाव और आचरणवाले होते हैं। कोई पंडित होता है, कोई तपस्वी, कोई ज्ञानी, कोई धनी, कोई शूरवीर, कोई दानी,

कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई॥
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा॥

कोई सर्वज्ञ और कोई धर्मपरायण होता है। पिता का प्रेम इन सभी पर समान होता है। परंतु इनमें से यदि कोई मन, वचन और कर्म से पिता का ही भक्त होता है, स्वप्न में भी दूसरा धर्म नहीं जानता,

सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना॥

एहि बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते॥

वह पुत्र पिता को प्राणों के समान प्रिय होता है, यद्‌यपि (चाहे) वह सब प्रकार से अज्ञान (मूर्ख) ही हो। इस प्रकार तिर्यक (पशु-पक्षी), देव, मनुष्य और असुरों समेत जितने भी चेतन और जड़ जीव हैं,

अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया॥
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया। भजै मोहि मन बच अरु काया॥

(उनसे भरा हुआ) यह संपूर्ण विश्व मेरा ही पैदा किया हुआ है। अतः सब पर मेरी बराबर दया है, परंतु इनमें से जो मद और माया छोड़कर मन, वचन और शरीर से मुझको भजता है,

दो० - पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥ 87(क)॥

वह पुरुष हो, नपुंसक हो, स्त्री हो अथवा चर-अचर कोई भी जीव हो, कपट छोड़कर जो भी सर्वभाव से मुझे भजता है वही मुझे परम प्रिय है॥ 87(क)॥

सो० - सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय।
अस बिचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब॥ 87(ख)॥

हे पक्षी! मैं तुझसे सत्य कहता हूँ, पवित्र (अनन्य एवं निष्काम) सेवक मुझे प्राणों के समान प्यारा है। ऐसा विचारकर सब आशा-भरोसा छोड़कर मुझी को भज॥ 87(ख)॥

कबहूँ काल न ब्यापिहि तोही। सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही॥
प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ। तनु पुलकित मन अति हरषाऊँ॥

तुझे काल कभी नहीं व्यापेगा। निरंतर मेरा स्मरण और भजन करते रहना। प्रभे के वचनामृत सुनकर मैं तृप्त नहीं होता था। मेरा शरीर पुलकित था और मन में मैं अत्यंत ही हर्षित हो रहा था।

सो सुख जानइ मन अरु काना। नहिं रसना पहिं जाइ बखाना॥
प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना। कहि किम सकहिं तिन्हहि नहिं बयना॥

वह सुख मन और कान ही जानते हैं। जीभ से उसका बखान नहीं किया जा सकता। प्रभु की शोभा का वह सुख नेत्र ही जानते हैं। पर वे कह कैसे सकते हैं? उनके वाणी तो है नहीं।

बहु बिधि मोहि प्रबोधि सुख देई। लगे करन सिसु कौतुक तेई॥
सजल नयन कछु मुख करि रूखा। चितई मातु लागी अति भूखा॥

मुझे बहुत प्रकार से भली-भाँति समझकर और सुख देकर प्रभु फिर वही बालकों के खेल करने लगे। नेत्रों में जल भरकर और मुख को कुछ रूखा (-सा) बनाकर उन्होंने माता की ओर देखा - (और मुखाकृति तथा चितवन से माता को समझा दिया कि) बहुत भूख लगी है।

देखि मातु आतुर उठि धाई। कहि मृदु बचन लिए उर लाई॥
गोद राखि कराव पय पाना। रघुपति चरित ललित कर गाना॥

यह देखकर माता तुरंत उठ दौड़ीं और कोमल वचन कहकर उन्होंने राम को छाती से लगा लिया। वे गोद में लेकर उन्हें दूध पिलाने लगीं और रघुनाथ (उन्हीं) की ललित लीलाएँ गाने लगीं।

सो॰ - जेहि सुख लाग पुरारि असुभ बेष कृत सिव सुखद।
अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन॥ 88(क)॥

जिस सुख के लिए (सबको) सुख देनेवाले कल्याणरूप त्रिपुरारि शिव ने अशुभ वेष धारण किया, उस सुख में अवधपुरी के नर-नारी निरंतर निमग्न रहते हैं॥ 88(क)॥

सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ।
ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहि सज्जन सुमति॥ 88(ख)॥

उस सुख का लवलेशमात्र जिन्होंने एक बार स्वप्न में भी प्राप्त कर लिया, हे पक्षीराज! वे सुंदर बुद्धिवाले सज्जन पुरुष उसके सामने ब्रह्मसुख को भी कुछ नहीं गिनते॥ 88(ख)॥

मैं पुनि अवध रहेउँ कछु काला। देखेउँ बालबिनोद रसाला॥
राम प्रसाद भगति बर पायउँ। प्रभु पद बंदि निजाश्रम आयउँ॥

मैं और कुछ समय तक अवधपुरी में रहा और मैंने राम की रसीली बाल लीलाएँ देखीं।

राम की कृपा से मैंने भक्ति का वरदान पाया। तदनंतर प्रभु के चरणों की वंदना करके मैं अपने आश्रम पर लौट आया।

तब ते मोहि न ब्यापी माया। जब ते रघुनायक अपनाया॥
यह सब गुप्त चरित मैं गावा। हरि मायाँ जिमि मोहि नचावा॥

इस प्रकार जब से रघुनाथ ने मुझको अपनाया, तब से मुझे माया कभी नहीं व्यापी। हरि की माया ने मुझे जैसे नचाया, वह सब गुप्त चरित्र मैंने कहा।

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा। बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा॥
राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई॥

हे पक्षीराज गरुड़! अब मैं आपसे अपना निजी अनुभव कहता हूँ। (वह यह है कि) भगवान के भजन बिना क्लेश दूर नहीं होते। हे पक्षीराज! सुनिए, राम की कृपा बिना राम की प्रभुता नहीं जानी जाती,

जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥

जाने बिना उन पर विश्वास नहीं जमता, विश्वास के बिना प्रीति नहीं होती और प्रीति बिना भक्ति वैसे ही दृढ़ नहीं होती जैसे हे पक्षीराज! जल की चिकनाई ठहरती नहीं।

सो॰ - बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु॥ 89(क)॥

गुरु के बिना कहीं ज्ञान हो सकता है? अथवा वैराग्य के बिना कहीं ज्ञान हो सकता है? इसी तरह वेद और पुराण कहते हैं कि हरि की भक्ति के बिना क्या सुख मिल सकता है?॥ 89(क)॥

कोउ बिश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ॥ 89(ख)॥

हे तात! स्वाभाविक संतोष के बिना क्या कोई शांति पा सकता है? (चाहे) करोड़ों उपाय करके पच-पच मारिए; (फिर भी) क्या कभी जल के बिना नाव चल सकती है?॥ 89(ख)॥

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा। थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा॥

संतोष के बिना कामना का नाश नहीं होता और कामनाओं के रहते स्वप्न में भी सुख नहीं हो सकता। और राम के भजन बिना कामनाएँ कहीं मिट सकती हैं? बिना धरती के भी कहीं पेड़ उग सकता है?

बिनु बिग्यान कि समता आवइ। कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ॥
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ कोई॥

विज्ञान (तत्त्वज्ञान) के बिना क्या समभाव आ सकता है? आकाश के बिना क्या कोई अवकाश पा सकता है? श्रद्धा के बिना धर्म (का आचरण) नहीं होता। क्या पृथ्वी तत्त्व के बिना कोई गंध पा सकता है?

बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा॥
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गोसाँई॥

तप के बिना क्या तेज फैल सकता है? जल-तत्त्व के बिना संसार में क्या रस हो सकता है? पंडितजनों की सेवा बिना क्या शील (सदाचार) प्राप्त हो सकता है? हे गोसाईं! जैसे बिना तेज (अग्नि-तत्त्व) के रूप नहीं मिलता।

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। परस कि होइ बिहीन समीरा॥
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनु हरि भजन न भव भय नासा॥

निज-सुख (आत्मानंद) के बिना क्या मन स्थिर हो सकता है? वायु-तत्त्व के बिना क्या स्पर्श हो सकता है? क्या विश्वास के बिना कोई भी सिद्धि हो सकती है? इसी प्रकार हरि के भजन बिना जन्म-मृत्यु के भय का नाश नहीं होता।

दो॰ - बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु॥ 90(क)॥

बिना विश्वास के भक्ति नहीं होती, भक्ति के बिना राम पिघलते (ढरते) नहीं और राम की कृपा के बिना जीव स्वप्न में भी शांति नहीं पाता॥ 90(क)॥

सो॰ - अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल।

भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद॥ 90(ख)॥

हे धीरबुद्धि! ऐसा विचारकर संपूर्ण कुतर्कों और संदेहों को छोड़कर करुणा की खान सुंदर और सुख देनेवाले रघुवीर का भजन कीजिए॥ 90(ख)॥

निज मति सरिस नाथ मैं गाई। प्रभु प्रताप महिमा खगराई॥
कहेउँ न कछु करि जुगुति बिसेषी। यह सब मैं निज नयनन्हि देखी॥

हे पक्षीराज! हे नाथ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार प्रभु के प्रताप और महिमा का गान किया। मैंने इसमें कोई बात युक्ति से बढ़ाकर नहीं कही है। यह सब अपनी आँखों देखी कही है।

महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा॥
निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं। निगम सेष सिव पार न पावहिं॥

रघुनाथ की महिमा, नाम, रूप और गुणों की कथा सभी अपार एवं अनंत हैं तथा रघुनाथ स्वयं भी अनंत हैं। मुनिगण अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार हरि के गुण गाते हैं। वेद, शेष और शिव भी उनका पार नहीं पाते।

तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता॥
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा॥

आप से लेकर मच्छर पर्यंत सभी छोटे-बड़े जीव आकाश में उड़ते हैं, किंतु आकाश का अंत कोई नहीं पाता। इसी प्रकार हे तात! रघुनाथ की महिमा भी अथाह है। क्या कभी कोई उसकी थाह पा सकता है?

रामु काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन॥
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सत कोटि अमित अवकासा॥

राम का अरबों कामदेवों के समान सुंदर शरीर है। वे अनंत कोटि दुर्गाओं के समान शत्रुनाशक हैं। अरबों इंद्रों के समान उनका विलास (ऐश्वर्य) है। अरबों आकाशों के समान उनमें अनंत अवकाश (स्थान) है।

दो० - मरुत कोटि सत बिपुल बल रबि सत कोटि प्रकास।

ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास॥ 91(क)॥

अरबों पवन के समान उनमें महान बल है और अरबों सूर्यों के समान प्रकाश है। अरबों चंद्रमाओं के समान वे शीतल और संसार के समस्त भयों का नाश करनेवाले हैं॥ 91(क)॥

काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत।
धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत॥ 91(ख)॥

अरबों कालों के समान वे अत्यंत दुस्तर, दुर्गम और दुरंत हैं। वे भगवान अरबों धूमकेतुओं (पुच्छल तारों) के समान अत्यंत प्रबल हैं॥ 91(ख)॥

प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला॥
तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन॥

अरबों पातालों के समान प्रभु अथाह हैं। अरबों यमराजों के समान भयानक हैं। अनंतकोटि तीर्थों के समान वे पवित्र करनेवाले हैं। उनका नाम संपूर्ण पापसमूह का नाश करनेवाला है।

हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा॥
कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना॥

रघुवीर करोड़ों हिमालयों के समान अचल (स्थिर) हैं और अरबों समुद्रों के समान गहरे हैं। भगवान अरबों कामधेनुओं के समान सब कामनाओं (इच्छित पदार्थों) के देनेवाले हैं।

सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई॥
बिष्नु कोटि सम पालन कर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता॥

उनमें अनंतकोटि सरस्वतियों के समान चतुराई है। अरबों ब्रह्माओं के समान सृष्टि रचना की निपुणता है। वे करोड़ों विष्णुओं के समान पालन करनेवाले और अरबों रुद्रों के समान संहार करनेवाले हैं।

धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना॥
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा॥

वे अरबों कुबेरों के समान धनवान और करोड़ों मायाओं के समान सृष्टि के खजाने हैं।

बोझ उठाने में वे अरबों शेषों के समान हैं। (अधिक क्या) जगदीश्वर प्रभु राम (सभी बातों में) सीमारहित और उपमारहित हैं।

छं० - निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै॥
एहि भाँति निज निज मति बिलास मुनीस हरिहि बखानहीं।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं॥

राम उपमारहित हैं, उनकी कोई दूसरी उपमा है ही नहीं। राम के समान राम ही हैं, ऐसा वेद कहते हैं। जैसे अरबों जुगनुओं के समान कहने से सूर्य (प्रशंसा को नहीं वरन) अत्यंत लघुता को ही प्राप्त होता है (सूर्य की निंदा ही होती है)। इसी प्रकार अपनी-अपनी बुद्धि के विकास के अनुसार मुनीश्वर हरि का वर्णन करते हैं, किंतु प्रभु भक्तों के भावमात्र को ग्रहण करनेवाले और अत्यंत कपालु हैं। वे उस वर्णन को प्रेमसहित सुनकर सुख मानते हैं।

दो० - रामु अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ।
संतन्ह सन जस किछु सुनेउँ तुम्हहि सुनायउँ सोइ॥ 92(क)॥

राम अपार गुणों के समुद्र हैं, क्या उनकी कोई थाह पा सकता है? संतों से मैंने जैसा कुछ सुना था, वही आपको सुनाया॥ 92(क)॥

सो० - भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन॥ 92(ख)॥

सुख के भंडार, करुणाधाम भगवान भाव (प्रेम) के वश हैं। (अतएव) ममता, मद और मान को छोड़कर सदा जानकीनाथ का ही भजन करना चाहिए॥ 92(ख)॥

सुनि भुसुंडि के बचन सुहाए। हरषित खगपति पंख फुलाए॥
नयन नीर मन अति हरषाना। श्रीरघुपति प्रताप उर आना॥

भुशुंडि के सुंदर वचन सुनकर पक्षीराज ने हर्षित होकर अपने पंख फुला लिए। उनके नेत्रों में (प्रेमानंद के आँसुओं का) जल आ गया और मन अत्यंत हर्षित हो गया। उन्होंने श्री रघुनाथ का प्रताप हृदय में धारण किया।

पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि माना॥
पुनि पुनि काग चरन सिरु नावा। जानि राम सम प्रेम बढ़ावा॥

वे अपने पिछले मोह को समझकर (याद करके) पछताने लगे कि मैंने अनादि ब्रह्म को मनुष्य करके माना। गरुड़ ने बार-बार काकभुशुंडि के चरणों पर सिर नवाया और उन्हें राम के ही समान जानकर प्रेम बढ़ाया।

गुर बिनु भव निध तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई॥
संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता॥

गुरु के बिना कोई भवसागर नहीं तर सकता, चाहे वह ब्रह्मा और शंकर के समान ही क्यों न हो। (गरुड़ ने कहा -) हे तात! मुझे संदेहरूपी सर्प ने डस लिया था और (साँप के डँसने पर जैसे विष चढ़ने से लहरें आती हैं वैसे ही) बहुत-सी कुतर्करूपी दुःख देनेवाली लहरें आ रही थीं।

तव सरूप गारुड़ि रघुनायक। मोहि जिआयउ जन सुखदायक॥
तव प्रसाद मम मोह नसाना। राम रहस्य अनूपम जाना॥

आपके स्वरूपरूपी गारुड़ी (साँप का विष उतारनेवाले) के द्वारा भक्तों को सुख देनेवाले रघुनाथ ने मुझे जिला लिया। आपकी कृपा से मेरा मोह नाश हो गया और मैंने राम का अनुपम रहस्य जाना।

दो० - ताहि प्रसंसि बिबिधि बिधि सीस नाइ कर जोरि।
बचन बिनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गरुड़ बहोरि॥ 93(क)॥

उनकी (भुशुंडि की) बहुत प्रकार से प्रशंसा करके, सिर नवाकर और हाथ जोड़कर फिर गरुड़ प्रेमपूर्वक विनम्र और कोमल वचन बोले - ॥ 93(क)॥

प्रभु अपने अबिबेक ते बूझउँ स्वामी तोहि।
कृपासिंधु सादर कहहु जानि दास निज मोहि॥ 93(ख)॥

हे प्रभो! हे स्वामी! मैं अपने अविवेक के कारण आपसे पूछता हूँ। हे कृपा के समुद्र! मुझे अपना 'निज दास' जानकर आदरपूर्वक (विचारपूर्वक) मेरे प्रश्न का उत्तर कहिए॥ 93(ख)॥

तुम्ह सर्बग्य तग्य तम पारा। सुमति सुसील सरल आचारा॥

ग्यान बिरति बिग्यान निवासा। रघुनायक के तुम्ह प्रिय दासा॥

आप सब कुछ जाननेवाले हैं, तत्त्व के ज्ञाता हैं, अंधकार (माया) से परे, उत्तम बुद्धि से युक्त, सुशील, सरल आचरणवाले, ज्ञान, वैराग्य और विज्ञान के धाम और रघुनाथ के प्रिय दास हैं।

कारन कवन देह यह पाई। तात सकल मोहि कहहु बुझाई॥
राम चरित सुर सुंदर स्वामी। पायहु कहाँ कहहु नभगामी॥

आपने यह काक शरीर किस कारण से पाया? हे तात! सब समझाकर मुझसे कहिए। हे स्वामी! हे आकाशगामी! यह सुंदर रामचरित मानस आपने कहाँ पाया, सो कहिए।

नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं। महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं॥
मुधा बचन नहिं ईस्वर कहई। सोउ मोरें मन संसय अहई॥

हे नाथ! मैंने शिव से ऐसा सुना है कि महाप्रलय में भी आपका नाश नहीं होता और ईश्वर (शिव) कभी मिथ्या वचन कहते नहीं। वह भी मेरे मन में संदेह है।

अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जगु काल कलेवा॥
अंड कटाह अमित लय कारी। कालु सदा दुरतिक्रम भारी॥

(क्योंकि) हे नाथ! नाग, मनुष्य, देवता आदि चर-अचर जीव तथा यह सारा जगत काल का कलेवा है। असंख्य ब्रह्मांडों का नाश करनेवाला काल सदा बड़ा ही अनिवार्य है।

सो० - तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन।
मोहि सो कहहु कृपाल ग्यान प्रभाव कि जोग बल॥ 94(क)॥

(ऐसा वह) अत्यंत भयंकर काल आपको नहीं व्यापता (आप पर प्रभाव नहीं दिखलाता), इसका क्या कारण है? हे कृपालु मुझे कहिए, यह ज्ञान का प्रभाव है या योग का बल है?॥ 94(क)॥

दो० - प्रभु तव आश्रम आएँ मोर मोह भ्रम भाग।
कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग॥ 94(ख)॥

हे प्रभो! आपके आश्रम में आते ही मेरा मोह और भ्रम भाग गया। इसका क्या कारण है?

हे नाथ! यह सब प्रेम सहित कहिए॥ 94(ख)॥

गरुड़ गिरा सुनि हरषेउ कागा। बोलेउ उमा परम अनुरागा॥
धन्य धन्य तव मति उरगारी। प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी॥

हे उमा! गरुड़ की वाणी सुनकर काकभुशुंडि हर्षित हुए और परम प्रेम से बोले - हे सर्पों के शत्रु! आपकी बुद्धि धन्य है! धन्य है! आपके प्रश्न मुझे बहुत ही प्यारे लगे।

सुनि तव प्रश्न सप्रेम सुहाई। बहुत जनम कै सुधि मोहि आई॥
सब निज कथा कहउँ मैं गाई। तात सुनहु सादर मन लाई॥

आपके प्रेमयुक्त सुंदर प्रश्न सुनकर मुझे अपने बहुत जन्मों की याद आ गई। मैं अपनी सब कथा विस्तार से कहता हूँ। हे तात! आदर सहित मन लगाकर सुनिए।

जप तप मख सम दम ब्रत दाना। बिरति बिबेक जोग बिग्याना॥
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा॥

अनेक जप, तप, यज्ञ, शम (मन को रोकना), दम (इंद्रियों को रोकना), व्रत, दान, वैराग्य, विवेक, योग, विज्ञान आदि सबका फल रघुनाथ के चरणों में प्रेम होना है। इसके बिना कोई कल्याण नहीं पा सकता।

एहिं तन राम भगति मैं पाई। ताते मोहि ममता अधिकाई॥
जेहि तें कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई॥

मैंने इसी शरीर से राम की भक्ति प्राप्त की है। इसी से इस पर मेरी ममता अधिक है। जिससे अपना कुछ स्वार्थ होता है, उस पर सभी कोई प्रेम करते हैं।

सो० - पन्नगारि असि नीति श्रुति संमत सज्जन कहहिं।
अति नीचहु सन प्रीति करिअ जानि निज परम हित॥ 95(क)॥

हे गरुड़! वेदों में मानी हुई ऐसी नीति है और सज्जन भी कहते हैं कि अपना परम हित जानकर अत्यंत नीच से भी प्रेम करना चाहिए॥ 95(क)॥

पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर।

कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम॥ 95(ख)॥

रेशम कीड़े से होता है, उससे सुंदर रेशमी वस्त्र बनते हैं। इसी से उस परम अपवित्र कीड़े को भी सब कोई प्राणों के समान पालते हैं॥ 95(ख)॥

स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा॥
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा॥

जीव के लिए सच्चा स्वार्थ यही है कि मन, वचन और कर्म से राम के चरणों में प्रेम हो। वही शरीर पवित्र और सुंदर है जिस शरीर को पाकर रघुवीर का भजन किया जाए।

राम बिमुख लहि बिधि सम देही। कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही॥
राम भगति एहिं तन उर जामी। ताते मोहि परम प्रिय स्वामी॥

जो राम के विमुख है वह यदि ब्रह्मा के समान शरीर पा जाए तो भी कवि और पंडित उसकी प्रशंसा नहीं करते। इसी शरीर से मेरे हृदय में रामभक्ति उत्पन्न हुई। इसी से हे स्वामी! यह मुझे परम प्रिय है।

तजउँ न तन निज इच्छा मरना। तन बिनु बेद भजन नहिं बरना॥
प्रथम मोहँ मोहि बहुत बिगोवा। राम बिमुख सुख कबहुँ न सोवा॥

मेरा मरण अपनी इच्छा पर है, परंतु फिर भी मैं यह शरीर नहीं छोड़ता; क्योंकि वेदों ने वर्णन किया है कि शरीर के बिना भजन नहीं होता। पहले मोह ने मेरी बड़ी दुर्दशा की। राम के विमुख होकर मैं कभी सुख से नहीं सोया।

नाना जनम कर्म पुनि नाना। किए जोग जप तप मख दाना॥
कवन जोनि जनमेउँ जहँ नाहीं। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं॥

अनेकों जन्मों में मैंने अनेकों प्रकार के योग, जप, तप, यज्ञ और दान आदि कर्म किए। हे गरुड़! जगत में ऐसी कौन योनि है, जिसमें मैंने (बार-बार) घूम-फिरकर जन्म न लिया हो।

देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं॥
सुधि मोहि नाथ जन्म बहु केरी। सिव प्रसाद मति मोहँ न घेरी॥

हे गुसाईं! मैंने सब कर्म करके देख लिए, पर अब (इस जन्म) की तरह मैं कभी सुखी नहीं

हुआ। हे नाथ! मुझे बहुत-से जन्मों की याद है। (क्योंकि) शिव की कृपा से मेरी बुद्धि को मोह ने नहीं घेरा।

दो॰ - प्रथम जन्म के चरित अब कहउँ सुनहु बिहगेस।
सुनि प्रभु पद रति उपजइ जातें मिटहिं कलेस॥ 96(क)॥

हे पक्षीराज! सुनिए, अब मैं अपने प्रथम जन्म के चरित्र कहता हूँ, जिन्हें सुनकर प्रभु के चरणों में प्रीति उत्पन्न होती है, जिससे सब क्लेश मिट जाते हैं॥ 96(क)॥

पूरुब कल्प एक प्रभु जुग कलिजुग मल मूल।
नर अरु नारि अधर्म रत सकल निगम प्रतिकूल॥ 96(ख)॥

हे प्रभो! पूर्व के एक कल्प में पापों का मूल युग कलियुग था, जिसमें पुरुष और स्त्री सभी अधर्मपरायण और वेद के विरोधी थे॥ 96(ख)॥

तेहिं कलिजुग कोसलपुर जाई। जन्मत भयउँ सूद्र तनु पाई॥
सिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निंदक अभिमानी॥

उस कलियुग में मैं अयोध्यापुरी में जाकर शूद्र का शरीर पाकर जन्मा। मैं मन, वचन और कर्म से शिव का सेवक और दूसरे देवताओं की निंदा करनेवाला अभिमानी था।

धन मद मत्त परम बाचाला। उग्रबुद्धि उर दंभ बिसाला॥
जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी॥

मैं धन के मद से मतवाला, बहुत ही बकवादी और उग्रबुद्धिवाला था; मेरे हृदय में बड़ा भारी दंभ था। यद्यपि मैं रघुनाथ की राजधानी में रहता था, तथापि मैंने उस समय उसकी महिमा कुछ भी नहीं जानी।

अब जाना मैं अवध प्रभावा। निगमागम पुरान अस गावा॥
कवनेहुँ जन्म अवध बस जोई। राम परायन सो परि होई॥

अब मैंने अवध का प्रभाव जाना। वेद, शास्त्र और पुराणों ने ऐसा गाया है कि किसी भी जन्म में जो कोई भी अयोध्या में बस जाता है, वह अवश्य ही राम-परायण हो जाएगा।

अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं रामु धनुपानी॥

सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी॥

अवध का प्रभाव जीव तभी जानता है, जब हाथ में धनुष धारण करनेवाले राम उसके हृदय में निवास करते हैं। हे गरुड़! वह कलिकाल बड़ा कठिन था। उसमें सभी नर-नारी पापपरायण (पापों में लिप्त) थे।

दो० - कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ॥ 97(क)॥

कलियुग के पापों ने सब धर्मों को ग्रस लिया, सद्ग्रंथ लुप्त हो गए, दंभियों ने अपनी बुद्धि से कल्पना कर-करके बहुत-से पंथ प्रकट कर दिए॥ 97(क)॥

भए लोग सब मोहबस लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरिजान ग्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म॥ 97(ख)॥

सभी लोग मोह के वश हो गए, शुभ कर्मों को लोभ ने हड़प लिया। हे ज्ञान के भंडार! हे हरि के वाहन! सुनिए, अब मैं कलि के कुछ धर्म कहता हूँ॥ 97(ख)॥

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी।
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥

कलियुग में न वर्णधर्म रहता है, न चारों आश्रम रहते हैं। सब पुरुष-स्त्री वेद के विरोध में लगे रहते हैं। ब्राह्मण वेदों के बेचनेवाले और राजा प्रजा को खा डालनेवाले होते हैं। वेद की आज्ञा कोई नहीं मानता।

मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई॥

जिसको जो अच्छा लग जाए, वही मार्ग है। जो डींग मारता है, वही पंडित है। जो मिथ्या आरंभ करता (आडंबर रचता) है और जो दंभ में रत है, उसी को सब कोई संत कहते हैं।

सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना॥

जो (जिस किसी प्रकार से) दूसरे का धन हरण कर ले, वही बुद्धिमान है। जो दंभ करता है,

वही बड़ा आचारी है। जो झूठ बोलता है और हँसी-दिल्लगी करना जानता है, कलियुग में वही गुणवान कहा जाता है।

निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी॥
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

जो आचारहीन है और वेदमार्ग को छोड़े हुए है, कलियुग में वही ज्ञानी और वही वैराग्यवान है। जिसके बड़े-बड़े नख और लंबी-लंबी जटाएँ हैं, वही कलियुग में प्रसिद्ध तपस्वी है।

दो० - असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं॥ 98(क)॥

जो अमंगल वेष और अमंगल भूषण धारण करते हैं और भक्ष्य-अभक्ष्य (खाने योग्य और न खाने योग्य) सब कुछ खा लेते हैं, वे ही योगी हैं, वे ही सिद्ध हैं और वे ही मनुष्य कलियुग में पूज्य हैं॥ 98(क)॥

सो० - जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ॥ 98(ख)॥

जिनके आचरण दूसरों का अपकार (अहित) करनेवाले हैं, उन्हीं का बड़ा गौरव होता है और वे ही सम्मान के योग्य होते हैं। जो मन, वचन और कर्म से लबार (झूठ बकनेवाले) हैं, वे ही कलियुग में वक्ता माने जाते हैं॥ 98(ख)॥

नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना॥

हे गोसाईं! सभी मनुष्य स्त्रियों के विशेष वश में हैं और बाजीगर के बंदर की तरह (उनके नचाए) नाचते हैं। ब्राह्मणों को शूद्र ज्ञानोपदेश करते हैं और गले में जनेऊ डालकर कुत्सित दान लेते हैं।

सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी॥
गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी॥

सभी पुरुष काम और लोभ में तत्पर और क्रोधी होते हैं। देवता, ब्राह्मण, वेद और संतों के

विरोधी होते हैं। अभागिनी स्त्रियाँ गुणों के धाम सुंदर पति को छोड़कर पर पुरुष का सेवन करती हैं।

सौभागिनीं बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नबीना॥
गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा॥

सुहागिनी स्त्रियाँ तो आभूषणों से रहित होती हैं, पर विधवाओं के नित्य नए श्रृंगार होते हैं। शिष्य और गुरु में बहरे और अंधे का-सा हिसाब होता है। एक (शिष्य) गुरु के उपदेश को सुनता नहीं, एक (गुरु) देखता नहीं (उसे ज्ञानदृष्टि प्राप्त नहीं है)।

हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई॥
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं॥

जो गुरु शिष्य का धन हरण करता है, पर शोक नहीं हरण करता, वह घोर नरक में पड़ता है। माता-पिता बालकों को बुलाकर वही धर्म सिखलाते हैं, जिससे पेट भरे।

दो० - ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात॥ 99(क)॥

स्त्री-पुरुष ब्रह्मज्ञान के सिवा दूसरी बात नहीं करते, पर वे लोभवश कौड़ियों (बहुत थोड़े लाभ) के लिए ब्राह्मण और गुरु की हत्या कर डालते हैं॥ 99(क)॥

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाटि॥ 99(ख)॥

शूद्र ब्राह्मणों से विवाद करते हैं (और कहते हैं) कि हम क्या तुमसे कुछ कम हैं? जो ब्रह्म को जानता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है। (ऐसा कहकर) वे उन्हें डाँटकर आँखें दिखलाते हैं॥ 99(ख)॥

पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने॥
तेइ अभेदबादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर॥

जो पराई स्त्री में आसक्त, कपट करने में चतुर और मोह, द्रोह और ममता में लिपटे हुए हैं, वे ही मनुष्य अभेदवादी (ब्रह्म और जीव को एक बतानेवाले) ज्ञानी हैं। मैंने उस

कलियुग का यह चरित्र देखा।

आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं। जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं॥
कल्प कल्प भरि एक एक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका॥

वे स्वयं तो नष्ट हुए ही रहते हैं; जो कहीं सन्मार्ग का प्रतिपालन करते हैं, उनको भी वे नष्ट कर देते हैं। जो तर्क करके वेद की निंदा करते हैं, वे लोग कल्प-कल्पभर एक-एक नरक में पड़े रहते हैं।

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।
नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी॥

तेली, कुम्हार, चांडाल, भील, कोल और कलवार आदि जो वर्ण में नीचे हैं, स्त्री के मरने पर अथवा घर की संपत्ति नष्ट हो जाने पर सिर मुँड़ाकर संन्यासी हो जाते हैं।

ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी॥

वे अपने को ब्राह्मणों से पुजवाते हैं और अपने ही हाथों दोनों लोक नष्ट करते हैं। ब्राह्मण अपढ़, लोभी, कामी, आचारहीन, मूर्ख और नीची जाति की व्यभिचारिणी स्त्रियों के स्वामी होते हैं।

सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा॥

शूद्र नाना प्रकार के जप, तप और व्रत करते हैं तथा ऊँचे आसन (व्यास गद्दी) पर बैठकर पुराण कहते हैं। सब मनुष्य मनमाना आचरण करते हैं। अपार अनीति का वर्णन नहीं किया जा सकता।

दो० - भए बरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग॥ 100(क)॥

कलियुग में सब लोग वर्णसंकर और मर्यादा से च्युत हो गए। वे पाप करते हैं और (उनके फलस्वरूप) दुःख, भय, रोग, शोक और (प्रिय वस्तु का) वियोग पाते हैं॥ 100(क)॥

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक॥ 100(ख)॥

वेद सम्मत तथा वैराग्य और ज्ञान से युक्त जो हरिभक्ति का मार्ग है, मोहवश मनुष्य उस पर नहीं चलते और अनेकों नए-नए पंथों की कल्पना करते हैं॥ 100(ख)॥

छं॰ - बहु दाम सँवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्हि न रहि बिरती॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही॥

संन्यासी बहुत धन लगाकर घर सजाते हैं। उनमें वैराग्य नहीं रहा, उसे विषयों ने हर लिया। तपस्वी धनवान हो गए और गृहस्थ दरिद्र। हे तात! कलियुग की लीला कुछ कही नहीं जाती।

कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती॥
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं॥

कुलवती और सती स्त्री को पुरुष घर से निकाल देते हैं और अच्छी चाल को छोड़कर घर में दासी को ला रखते हैं। पुत्र अपने माता-पिता को तभी तक मानते हैं, जब तक स्त्री का मुँह नहीं दिखाई पड़ता।

ससुरारि पिआरि लगी जब तें। रिपुरूप कुटुंब भए तब तें॥
नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं॥

जब से ससुराल प्यारी लगने लगी, तब से कुटुंबी शत्रुरूप हो गए। राजा लोग पापपरायण हो गए, उनमें धर्म नहीं रहा। वे प्रजा को नित्य ही (बिना अपराध) दंड देकर उसकी विडंबना (दुर्दशा) किया करते हैं।

धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी॥
नहिं मान पुरान न बेदहि जो। हरि सेवक संत सही कलि सो॥

धनी लोग मलिन (नीच जाति के) होने पर भी कुलीन माने जाते हैं। द्विज का चिह्न जनेऊ मात्र रह गया और नंगे बदन रहना तपस्वी का। जो वेदों और पुराणों को नहीं मानते, कलियुग में वे ही हरिभक्त और सच्चे संत कहलाते हैं।

कबि बृंद उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी॥

कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै॥

कवियों के तो झुंड हो गए, पर दुनिया में उदार (कवियों का आश्रयदाता) सुनाई नहीं पड़ता। गुण में दोष लगानेवाले बहुत हैं, पर गुणी कोई भी नहीं। कलियुग में बार-बार अकाल पड़ते हैं। अन्न के बिना सब लोग दुःखी होकर मरते हैं।

दो० - सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड।
मान मोह मारादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मंड॥ 101(क)॥

हे पक्षीराज गरुड़! सुनिए कलियुग में कपट, हठ (दुराग्रह), दंभ, द्वेष, पाखंड, मान, मोह और काम आदि (अर्थात काम, क्रोध और लोभ) और मद ब्रह्मांडभर में व्याप्त हो गए (छा गए)॥ 101(क)॥

तामस धर्म करिहिं नर जप तप ब्रत मख दान।
देव न बरषहिं धरनी बए न जामहिं धान॥ 101(ख)॥

मनुष्य जप, तप, यज्ञ, व्रत और दान आदि धर्म तामसी भाव से करने लगे। देवता (इंद्र) पृथ्वी पर जल नहीं बरसाते और बोया हुआ अन्न उगता नहीं॥ 101(ख)॥

छं० - अबला कच भूषन भूरि छुधा। धनहीन दुखी ममता बहुधा॥
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता। मति थोरि कठोरि न कोमलता॥

स्त्रियों के बाल ही भूषण हैं (उनके शरीर पर कोई आभूषण नहीं रह गया) और उनको भूख बहुत लगती है (अर्थात वे सदा अतृप्त ही रहती हैं)। वे धनहीन और बहुत प्रकार की ममता होने के कारण दुःखी रहती हैं। वे मूर्ख सुख चाहती हैं, पर धर्म में उनका प्रेम नहीं है। बुद्धि थोड़ी है और कठोर है, उनमें कोमलता नहीं है।

नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान बिरोध अकारन हीं॥
लघु जीवन संबदु पंच दसा। कलपांत न नास गुमानु असा॥

मनुष्य रोगों से पीड़ित हैं, भोग (सुख) कहीं नहीं है। बिना ही कारण अभिमान और विरोध करते हैं। दस-पाँच वर्ष का थोड़ा-सा जीवन है, परंतु घमंड ऐसा है मानो कल्पांत (प्रलय) होने पर भी उनका नाश नहीं होगा।

कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा॥

नहिं तोष बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भए मगता॥

कलिकाल ने मनुष्य को बेहाल (अस्त-व्यस्त) कर डाला। कोई बहिन-बेटी का भी विचार नहीं करता। (लोगों में) न संतोष है, न विवेक है और न शीतलता है। जाति, कुजाति सभी लोग भीख माँगनेवाले हो गए।

इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता॥
सब लोग बियोग बिसोक हए। बरनाश्रम धर्म अचार गए॥

ईर्ष्या (डाह), कड़वे वचन और लालच भरपूर हो रहे हैं, समता चली गई। सब लोग वियोग और विशेष शोक से मरे पड़े हैं। वर्णाश्रम धर्म के आचरण नष्ट हो गए।

दम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता परबंचनताति घनी॥
तनु पोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक जे जग मो बगरे॥

इंद्रियों का दमन, दान, दया और समझदारी किसी में नहीं रही। मूर्खता और दूसरों को ठगना यह बहुत अधिक बढ़ गया। स्त्री-पुरुष सभी शरीर के ही पालन-पोषण में लगे रहते हैं। जो पराई निंदा करनेवाले हैं, जगत में वे ही फैले हैं।

दो० - सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार।
गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार॥ 102(क)॥

हे सर्पों के शत्रु गरुड़! सुनिए, कलिकाल पाप और अवगुणों का घर है। किंतु कलियुग में एक गुण भी बड़ा है कि उसमें बिना ही परिश्रम भवबंधन से छुटकारा मिल जाता है॥ 102(क)॥

कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग॥ 102(ख)॥

सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में जो गति पूजा, यज्ञ और योग से प्राप्त होती है, वही गति कलियुग में लोग केवल भगवान के नाम से पा जाते हैं॥ 102(ख)॥

कृतजुग सब जोगी बिग्यानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी॥
त्रेताँ बिबिध जग्य नर करहीं। प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं॥

सत्ययुग में सब योगी और विज्ञानी होते हैं। हरि का ध्यान करके सब प्राणी भवसागर से तर जाते हैं। त्रेता में मनुष्य अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं और सब कर्मों को प्रभु को समर्पण करके भवसागर से पार हो जाते हैं।

द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा॥
कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥

द्वापर में रघुनाथ के चरणों की पूजा करके मनुष्य संसार से तर जाते हैं, दूसरा कोई उपाय नहीं है और कलियुग में तो केवल हरि की गुणगाथाओं का गान करने से ही मनुष्य भवसागर की थाह पा जाते हैं।

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि॥

कलियुग में न तो योग और यज्ञ है और न ज्ञान ही है। राम का गुणगान ही एकमात्र आधार है। अतएव सारे भरोसे त्यागकर जो राम को भजता है और प्रेमसहित उनके गुणसमूहों को गाता है,

सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं॥
कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहिं पापा॥

वही भवसागर से तर जाता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। नाम का प्रताप कलियुग में प्रत्यक्ष है। कलियुग का एक पवित्र प्रताप (महिमा) है कि मानसिक पुण्य तो होते हैं, पर (मानसिक) पाप नहीं होते।

दो॰ - कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥ 103(क)॥

यदि मनुष्य विश्वास करे, तो कलियुग के समान दूसरा युग नहीं है। (क्योंकि) इस युग में राम के निर्मल गुणसमूहों को गा-गाकर मनुष्य बिना ही परिश्रम संसार (रूपी समुद्र) से तर जाता है॥ 103(क)॥

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥ 103(ख)॥

धर्म के चार चरण (सत्य, दया, तप और दान) प्रसिद्ध हैं, जिनमें से कलि में एक (दानरूपी) चरण ही प्रधान है। जिस किसी प्रकार से भी दिए जाने पर दान कल्याण ही करता है॥ 103(ख)॥

नित जुग धर्म होहिं सब केरे। हृदयँ राम माया के प्रेरे॥
सुद्ध सत्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥

राम की माया से प्रेरित होकर सबके हृदयों में सभी युगों के धर्म नित्य होते रहते हैं। शुद्ध सत्त्वगुण, समता, विज्ञान और मन का प्रसन्न होना, इसे सत्ययुग का प्रभाव जानें।

सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा॥
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस॥

सत्त्वगुण अधिक हो, कुछ रजोगुण हो, कर्मों में प्रीति हो, सब प्रकार से सुख हो, यह त्रेता का धर्म है। रजोगुण बहुत हो, सत्त्वगुण बहुत ही थोड़ा हो, कुछ तमोगुण हो, मन में हर्ष और भय हो, यह द्वापर का धर्म है।

तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा॥
बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं॥

तमोगुण बहुत हो, रजोगुण थोड़ा हो, चारों ओर वैर-विरोध हो, यह कलियुग का प्रभाव है। पंडित लोग युगों के धर्म को मन में जान (पहचान) कर, अधर्म छोड़कर धर्म में प्रीति करते हैं।

काल धर्म नहिं ब्यापहिं ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही॥
नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापइ माया॥

जिसका रघुनाथ के चरणों में अत्यंत प्रेम है, उसको कालधर्म (युगधर्म) नहीं व्यापते। हे पक्षीराज! नट (बाजीगर) का किया हुआ कपट चरित्र (इंद्रजाल) देखने वालों के लिए बड़ा विकट (दुर्गम) होता है, पर नट के सेवक (जँभूरे) को उसकी माया नहीं व्यापती।

दो० - हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं॥ 104(क)॥

हरि की माया के द्वारा रचे हुए दोष और गुण हरि के भजन बिना नहीं जाते। मन में

ऐसा विचार कर, सब कामनाओं को छोड़कर (निष्काम भाव से) राम का भजन करना चाहिए॥ 104(क)॥

तेहिं कलिकाल बरष बहु बसेउँ अवध बिहगेस।
परेउ दुकाल बिपति बस तब मैं गयउँ बिदेस॥ 104(ख)॥

हे पक्षीराज! उस कलिकाल में मैं बहुत वर्षों तक अयोध्या में रहा। एक बार वहाँ अकाल पड़ा, तब मैं विपत्ति का मारा विदेश चला गया॥ 104(ख)॥

गयउँ उजेनी सुनु उरगारी। दीन मलीन दरिद्र दुखारी॥
गएँ काल कछु संपति पाई। तहँ पुनि करउँ संभु सेवकाई॥

हे सर्पों के शत्रु गरुड़! सुनिए, मैं दीन, मलिन (उदास), दरिद्र और दुःखी होकर उज्जैन गया। कुछ काल बीतने पर कुछ संपत्ति पाकर फिर मैं वहीं भगवान शंकर की आराधना करने लगा।

बिप्र एक बैदिक सिव पूजा। करइ सदा तेहि काजु न दूजा॥
परम साधु परमारथ बिंदक। संभु उपासक नहिं हरि निंदक॥

एक ब्राह्मण वेदविधि से सदा शिव की पूजा करते, उन्हें दूसरा कोई काम न था। वे परम साधु और परमार्थ के ज्ञाता थे, वे शंभु के उपासक थे, पर हरि की निंदा करनेवाले न थे।

तेहि सेवउँ मैं कपट समेता। द्विज दयाल अति नीति निकेता॥
बाहिज नम्र देखि मोहि साईं। बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं॥

मैं कपटपूर्वक उनकी सेवा करता। ब्राह्मण बड़े ही दयालु और नीति के घर थे। हे स्वामी! बाहर से नम्र देखकर ब्राह्मण मुझे पुत्र की भाँति मानकर पढ़ाते थे।

संभु मंत्र मोहि द्विजबर दीन्हा। सुभ उपदेस बिबिधि बिधि कीन्हा॥
जपउँ मंत्र सिव मंदिर जाई। हृदयँ दंभ अहमिति अधिकाई॥

उन ब्राह्मण श्रेष्ठ ने मुझको शिव का मंत्र दिया और अनेकों प्रकार के शुभ उपदेश किए। मैं शिव के मंदिर में जाकर मंत्र जपता। मेरे हृदय में दंभ और अहंकार बढ़ गया।

दो० - मैं खल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह।

हरि जन द्विज देखें जरउँ करउँ बिष्नु कर द्रोह॥ 105(क)॥

मैं दुष्ट, नीच जाति और पापमयी मलिन बुद्धिवाला मोहवश हरि के भक्तों और द्विजों को देखते ही जल उठता और विष्णु भगवान से द्रोह करता था॥ 105(क)॥

सो॰ - गुर नित मोहि प्रबोध दुखित देखि आचरन मम।
मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति कि भावई॥ 105(ख)॥

गुरु मेरे आचरण देखकर दुखित थे। वे मुझे नित्य ही भली-भाँति समझाते, पर (मैं कुछ भी नहीं समझता), उलटे मुझे अत्यंत क्रोध उत्पन्न होता। दंभी को कभी नीति अच्छी लगती है?॥ 105(ख)॥

एक बार गुर लीन्ह बोलाई। मोहि नीति बहु भाँति सिखाई॥
सिव सेवा कर फल सुत सोई। अबिरल भगति राम पद होई॥

एक बार गुरु ने मुझे बुला लिया और बहुत प्रकार से (परमार्थ) नीति की शिक्षा दी कि हे पुत्र! शिव की सेवा का फल यही है कि राम के चरणों में प्रगाढ़ भक्ति हो।

रामहि भजहिं तात सिव धाता। नर पावँर कै केतिक बाता॥
जासु चरन अज सिव अनुरागी। तासु द्रोहँ सुख चहसि अभागी॥

हे तात! शिव और ब्रह्मा भी राम को भजते हैं (फिर) नीच मनुष्य की तो बात ही कितनी है? ब्रह्मा और शिव जिनके चरणों के प्रेमी हैं, अरे अभागे! उनसे द्रोह करके तू सुख चाहता है?

हर कहुँ हरि सेवक गुर कहेऊ। सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ॥
अधम जाति मैं बिद्या पाएँ। भयउँ जथा अहि दूध पिआएँ॥

गुरु ने शिव को हरि का सेवक कहा। यह सुनकर हे पक्षीराज! मेरा हृदय जल उठा। नीच जाति का मैं विद्या पाकर ऐसा हो गया जैसे दूध पिलाने से साँप।

मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती। गुर कर द्रोह करउँ दिनु राती॥
अति दयाल गुर स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा॥

अभिमानी, कुटिल, दुर्भाग्य और कुजाति मैं दिन-रात गुरु से द्रोह करता। गुरु अत्यंत दयालु

थे, उनको थोड़ा-सा भी क्रोध नहीं आता। (मेरे द्रोह करने पर भी) वे बार-बार मुझे उत्तम ज्ञान की ही शिक्षा देते थे।

जेहि ते नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहिं हति ताहि नसावा॥
धूम अनल संभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई॥

नीच मनुष्य जिससे बड़ाई पाता है, वह सबसे पहले उसी को मारकर उसी का नाश करता है। हे भाई! सुनिए, आग से उत्पन्न हुआ धुआँ मेघ की पदवी पाकर उसी अग्नि को बुझा देता है।

रज मग परी निरादर रहई। सब कर पद प्रहार नित सहई॥
मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई। पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई॥

धूल रास्ते में निरादर से पड़ी रहती है और सदा सब (राह चलने वालों) की लातों की मार सहती है। पर जब पवन उसे उड़ाता (ऊँचा उठाता) है, तो सबसे पहले वह उसी (पवन) को भर देती है और फिर राजाओं के नेत्रों और किरीटों (मुकुटों) पर पड़ती है।

सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा। बुध नहिं करहिं अधम कर संगा॥
कबि कोबिद गावहिं असि नीति। खल सन कलह न भल नहिं प्रीति॥

हे पक्षीराज गरुड़! सुनिए, ऐसी बात समझकर बुद्धिमान लोग अधम (नीच) का संग नहीं करते। कवि और पंडित ऐसी नीति कहते हैं कि दुष्ट से न कलह ही अच्छा है, न प्रेम ही।

उदासीन नित रहिअ गोसाईं। खल परिहरिअ स्वान की नाईं॥
मैं खल हृदयँ कपट कुटिलाई। गुर हित कहइ न मोहि सोहाई॥

हे गोसाईं! उससे तो सदा उदासीन ही रहना चाहिए। दुष्ट को कुत्ते की तरह दूर से ही त्याग देना चाहिए। मैं दुष्ट था, हृदय में कपट और कुटिलता भरी थी। (इसलिए यद्यपि) गुरु हित की बात कहते थे, पर मुझे वह सुहाती न थी।

दो॰ - एक बार हर मंदिर जपत रहेउँ सिव नाम।
गुर आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम॥ 106(क)॥

एक दिन मैं शिव के मंदिर में शिवनाम जप रहा था। उसी समय गुरु वहाँ आए, पर

अभिमान के मारे मैंने उठकर उनको प्रणाम नहीं किया॥ 106(क)॥

सो दयाल नहिं कहेउ कछु उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस॥ 106(ख)॥

गुरु दयालु थे, (मेरा दोष देखकर भी) उन्होंने कुछ नहीं कहा; उनके हृदय में लेशमात्र भी क्रोध नहीं हुआ। पर गुरु का अपमान बहुत बड़ा पाप है; अतः महादेव उसे नहीं सह सके॥ 106(ख)॥

मंदिर माझ भई नभबानी। रे हतभाग्य अग्य अभिमानी॥
जद्यपि तव गुर के नहिं क्रोधा। अति कृपाल चित सम्यक बोधा॥

मंदिर में आकाशवाणी हुई कि अरे हतभाग्य! मूर्ख! अभिमानी! यद्यपि तेरे गुरु को क्रोध नहीं है, वे अत्यंत कृपालु चित्त के हैं और उन्हें (पूर्ण तथा) यथार्थ ज्ञान है,

तदपि साप सठ दैहउँ तोही। नीति बिरोध सोहाइ न मोही॥
जौं नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा॥

तो भी हे मूर्ख! तुझको मैं शाप दूँगा; (क्योंकि) नीति का विरोध मुझे अच्छा नहीं लगता। अरे दुष्ट! यदि मैं तुझे दंड न दूँ, तो मेरा वेदमार्ग ही भ्रष्ट हो जाए।

जे सठ गुर सन इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं॥
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा॥

जो मूर्ख गुरु से ईर्ष्या करते हैं, वे करोड़ों युगों तक रौरव नरक में पड़े रहते हैं। फिर (वहाँ से निकलकर) वे तिर्यक (पशु, पक्षी आदि) योनियों में शरीर धारण करते हैं और दस हजार जन्मों तक दुःख पाते रहते हैं।

बैठि रहेसि अजगर इव पापी। सर्प होहि खल मल मति ब्यापी॥
महा बिटप कोटर महुँ जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई॥

अरे पापी! तू गुरु के सामने अजगर की भाँति बैठा रहा। रे दुष्ट! तेरी बुद्धि पाप से ढँक गई है, (अतः) तू सर्प हो जा और अरे अधम से भी अधम! इस अधोगति (सर्प की नीची योनि) को पाकर किसी बड़े भारी पेड़ के खोखले में जाकर रह।

दो० - हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप।
कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप॥ 107(क)॥

शिव का भयानक शाप सुनकर गुरु ने हाहाकार किया। मुझे काँपता हुआ देखकर उनके हृदय में बड़ा संताप उत्पन्न हुआ॥ 107(क)॥

करि दंडवत सप्रेम द्विज सिव सन्मुख कर जोरि।
बिनय करत गदगद स्वर समुझि घोर गति मोरि॥ 107(ख)॥

प्रेम सहित दंडवत करके वे ब्राह्मण शिव के सामने हाथ जोड़कर मेरी भयंकर गति (दंड) का विचार कर गदगद वाणी से विनती करने लगे - ॥ 107(ख)॥

छं० - नमामीशमीशान निर्वाणरूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं॥
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं॥

हे मोक्षस्वरूप, विभु, व्यापक, ब्रह्म और वेदस्वरूप, ईशान दिशा के ईश्वर तथा सबके स्वामी शिव! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निजस्वरूप में स्थित (अर्थात मायादिरहित), (मायिक) गुणों से रहित, भेदरहित, इच्छारहित, चेतन आकाश रूप एवं आकाश को ही वस्त्र रूप में धारण करनेवाले दिगंबर (अथवा आकाश को भी आच्छादित करनेवाले) आपको मैं भजता हूँ।

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं। गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं॥
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं॥

निराकार, ओंकार के मूल, तुरीय (तीनों गुणों से अतीत), वाणी, ज्ञान और इंद्रियों से परे, कैलासपति, विकराल, महाकाल के भी काल, कृपालु, गुणों के धाम, संसार से परे आप परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ।

तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। मनोभूत कोटि प्रभा श्रीशरीरं॥
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा। लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा॥

जो हिमाचल के समान गौरवर्ण तथा गंभीर हैं, जिनके शरीर में करोड़ों कामदेवों की ज्योति एवं शोभा है, जिनके सिर पर सुंदर नदी गंगा विराजमान हैं, जिनके ललाट पर द्वितीया का चंद्रमा और गले में सर्प सुशोभित है।

चलत्कुण्डलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं॥
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं । प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि॥

जिनके कानों में कुंडल हिल रहे हैं, सुंदर भ्रुकुटी और विशाल नेत्र हैं; जो प्रसन्नमुख, नीलकंठ और दयालु हैं; सिंह चर्म का वस्त्र धारण किए और मुंडमाला पहने हैं; उन सबके प्यारे और सबके नाथ (कल्याण करनेवाले) शंकर को मैं भजता हूँ।

प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं॥
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं। भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं॥

प्रचंड (रुद्ररूप), श्रेष्ठ, तेजस्वी, परमेश्वर, अखंड, अजन्मे, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशवाले, तीनों प्रकार के शूलों (दुःखों) को निर्मूल करनेवाले, हाथ में त्रिशूल धारण किए, भाव (प्रेम) के द्वारा प्राप्त होनेवाले भवानी के पति शंकर को मैं भजता हूँ।

कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी। सदा सज्जनानंददाता पुरारी॥
चिदानंद संदोह मोहापहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥

कलाओं से परे, कल्याणस्वरूप, कल्प का अंत (प्रलय) करनेवाले, सज्जनों को सदा आनंद देनेवाले, त्रिपुर के शत्रु, सच्चिदानंदघन, मोह को हरनेवाले, मन को मथ डालनेवाले कामदेव के शत्रु, हे प्रभो! प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए।

न यावद् उमानाथ पादारविंदं। भजंतीह लोके परे वा नराणां॥
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं। प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं॥

जब तक पार्वती के पति आपके चरणकमलों को मनुष्य नहीं भजते, तब तक उन्हें न तो इहलोक और परलोक में सुख-शांति मिलती है और न उनके तापों का नाश होता है। अतः हे समस्त जीवों के अंदर (हृदय में) निवास करनेवाले हे प्रभो! प्रसन्न होइए।

न जानामि योगं जपं नैव पूजां। नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं॥
जरा जन्म दुःखोद्य तातप्यमानं॥ प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो॥

मैं न तो योग जानता हूँ, न जप और न पूजा ही। हे शंभो! मैं तो सदा-सर्वदा आपको ही नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो! बुढ़ापा तथा जन्म (मृत्यु) के दुःखसमूहों से जलते हुए मुझ दुःखी की दुःख से रक्षा कीजिए। हे ईश्वर! हे शंभो! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

श्लोक - रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति॥

भगवान रुद्र की स्तुति का यह अष्टक उन शंकर की तुष्टि (प्रसन्नता) के लिए ब्राह्मण द्वारा कहा गया। जो मनुष्य इसे भक्तिपूर्वक पढ़ते हैं, उन पर भगवान शंभु प्रसन्न होते हैं।

दो॰ - सुनि बिनती सर्बग्य सिव देखि बिप्र अनुरागु।
पुनि मंदिर नभबानी भइ द्विजबर बर मागु॥ 108(क)॥

सर्वज्ञ शिव ने विनती सुनी और ब्राह्मण का प्रेम देखा। तब मंदिर में आकाशवाणी हुई कि हे द्विजश्रेष्ठ! वर माँगो॥ 108(क)॥

जौं प्रसन्न प्रभो मो पर नाथ दीन पर नेहु।
निज पद भगति देइ प्रभु पुनि दूसर बर देहु॥ 108(ख)॥

(ब्राह्मण ने कहा -) हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और हे नाथ! यदि इस दीन पर आपका स्नेह है, तो पहले अपने चरणों की भक्ति देकर फिर दूसरा वर दीजिए॥ 108(ख)॥

तव माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान।
तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपासिंधु भगवान॥ 108(ग)॥

हे प्रभो! यह अज्ञानी जीव आपकी माया के वश होकर निरंतर भूला फिरता है। हे कृपा के समुद्र भगवान! उस पर क्रोध न कीजिए॥ 108(ग)॥

संकर दीनदयाल अब एहि पर होहु कृपाल।
साप अनुग्रह होइ जेहिं नाथ थोरेहीं काल॥ 108(घ)॥

हे दीनों पर दया करनेवाले (कल्याणकारी) शंकर! अब इस पर कृपालु होइए (कृपा कीजिए), जिससे हे नाथ! थोड़े ही समय में इस पर शाप के बाद अनुग्रह (शाप से मुक्ति) हो जाए॥ 108(घ)॥

एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना॥
बिप्र गिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु इति भइ नभबानी॥

हे कृपानिधान! अब वही कीजिए, जिससे इसका परम कल्याण हो। दूसरे के हित से सनी हुई ब्राह्मण की वाणी सुनकर फिर आकाशवाणी हुई - 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो)।

जदपि कीन्ह एहिं दारुन पापा। मैं पुनि दीन्हि कोप करि सापा॥
तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहउँ एहि पर कृपा बिसेषी॥

यद्यपि इसने भयानक पाप किया है और मैंने भी इसे क्रोध करके शाप दिया है, तो भी तुम्हारी साधुता देखकर मैं इस पर विशेष कृपा करूँगा।

छमासील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी॥
मोर श्राप द्विज ब्यर्थ न जाइहि। जन्म सहस अवस्य यह पाइहि॥

हे द्विज! जो क्षमाशील एवं परोपकारी होते हैं, वे मुझे वैसे ही प्रिय हैं जैसे खरारि राम। हे द्विज! मेरा शाप व्यर्थ नहीं जाएगा। यह हजार जन्म अवश्य पाएगा।

जनमत मरत दुसह दुख होई। एहि स्वल्पउ नहिं ब्यापिहि सोई॥
कवनेउँ जन्म मिटिहि नहिं ग्याना। सुनहि सूद्र मम बचन प्रवाना॥

परंतु जन्मने और मरने में जो दुःसह दुःख होता है, इसको वह दुःख जरा भी न व्यापेगा और किसी भी जन्म में इसका ज्ञान नहीं मिटेगा। हे शूद्र! मेरा प्रामाणिक (सत्य) वचन सुन।

रघुपति पुरीं जन्म तव भयऊ। पुनि मैं मम सेवाँ मन दयऊ॥
पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरें। राम भगति उपजिहि उर तोरें॥

(प्रथम तो) तेरा जन्म रघुनाथ की पुरी में हुआ। फिर तूने मेरी सेवा में मन लगाया। पुरी के प्रभाव और मेरी कृपा से तेरे हृदय में रामभक्ति उत्पन्न होगी।

सुनु मम बचन सत्य अब भाई। हरितोषन ब्रत द्विज सेवकाई॥
अब जनि करहि बिप्र अपमाना। जानेसु संत अनंत समाना॥

हे भाई! अब मेरा सत्य वचन सुन। द्विजों की सेवा ही भगवान को प्रसन्न करनेवाला व्रत है। अब कभी ब्राह्मण का अपमान न करना। संतों को अनंत भगवान ही के समान जानना।

इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरि चक्र कराला॥
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई। बिप्र द्रोह पावक सो जरई॥

इंद्र के वज्र, मेरे विशाल त्रिशूल, काल के दंड और हरि के विकराल चक्र के मारे भी जो नहीं मरता, वह भी विप्रद्रोहरूपी अग्नि से भस्म हो जाता है।

अस बिबेक राखेहु मन माहीं। तुम्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥
औरउ एक आसिषा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी॥

ऐसा विवेक मन में रखना। फिर तुम्हारे लिए जगत में कुछ भी दुर्लभ न होगा। मेरा एक और भी आशीर्वाद है कि तुम्हारी सर्वत्र अबाध गति होगी (अर्थात तुम जहाँ जाना चाहोगे, वहीं बिना रोक-टोक के जा सकोगे)।

दो० - सुनि सिव बचन हरषि गुर एवमस्तु इति भाषि।
मोहि प्रबोधि गयउ गृह संभु चरन उर राखि॥ 109(क)॥

(आकाशवाणी के द्वारा) शिव के वचन सुनकर गुरु हर्षित होकर 'ऐसा ही हो' यह कहकर मुझे बहुत समझाकर और शिव के चरणों को हृदय में रखकर अपने घर गए॥ 109(क)॥

प्रेरित काल बिंधि गिरि जाइ भयउँ मैं ब्याल।
पुनि प्रयास बिनु सो तनु तजेउँ गएँ कछु काल॥ 109(ख)॥

काल की प्रेरणा से मैं विंध्याचल में जाकर सर्प हुआ। फिर कुछ काल बीतने पर बिना ही परिश्रम (कष्ट) के मैंने वह शरीर त्याग दिया॥ 109(ख)॥

जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरिजान।
जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान॥ 109(ग)॥

हे हरिवाहन! मैं जो भी शरीर धारण करता, उसे बिना ही परिश्रम वैसे ही सुखपूर्वक त्याग देता था, जैसे मनुष्य पुराना वस्त्र त्याग देता है और नया पहिन लेता है॥ 109(ग)॥

सिवँ राखी श्रुति नीति अरु मैं नहिं पावा क्लेस।
एहि बिधि धरेउँ बिबिधि तनु ग्यान न गयउ खगेस॥ 109(घ)॥

शिव ने वेद की मर्यादा की रक्षा की और मैंने क्लेश भी नहीं पाया। इस प्रकार हे

पक्षीराज! मैंने बहुत-से शरीर धारण किए, पर मेरा ज्ञान नहीं गया॥ 109(घ)॥

त्रिजग देव नर जोइ तनु धरउँ। तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ॥
एक सूल मोहि बिसर न काऊ। गुर कर कोमल सील सुभाऊ॥

तिर्यक योनि (पशु-पक्षी), देवता या मनुष्य का, जो भी शरीर धारण करता, वहाँ-वहाँ (उस-उस शरीर में) मैं राम का भजन जारी रखता। (इस प्रकार मैं सुखी हो गया) परंतु एक शूल मुझे बना रहा। गुरु का कोमल, सुशील स्वभाव मुझे कभी नहीं भूलता (अर्थात मैंने ऐसे कोमल स्वभाव दयालु गुरु का अपमान किया, यह दुःख मुझे सदा बना रहा)।

चरम देह द्विज कै मैं पाई। सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई॥
खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला। करउँ सकल रघुनायक लीला॥

मैंने अंतिम शरीर ब्राह्मण का पाया, जिसे पुराण और वेद देवताओं को भी दुर्लभ बताते हैं। मैं वहाँ (ब्राह्मण शरीर में) भी बालकों में मिलकर खेलता तो रघुनाथ की ही सब लीलाएँ किया करता।

प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा। समझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा॥
मन ते सकल बासना भागी। केवल राम चरन लय लागी॥

सयाना होने पर पिता मुझे पढ़ाने लगे। मैं समझता, सुनता और विचारता, पर मुझे पढ़ना अच्छा नहीं लगता था। मेरे मन से सारी वासनाएँ भाग गईं। केवल राम के चरणों में लव लग गई।

कहु खगेस अस कवन अभागी। खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी॥
प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई। हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई॥

हे गरुड़! कहिए, ऐसा कौन अभागा होगा जो कामधेनु को छोड़कर गधी की सेवा करेगा? प्रेम में मग्न रहने के कारण मुझे कुछ भी नहीं सुहाता। पिता पढ़ा-पढ़ाकर हार गए।

भए कालबस जब पितु माता। मैं बन गयउँ भजन जनत्राता॥
जहँ जहँ बिपिन मुनीस्वर पावउँ। आश्रम जाइ जाइ सिरु नावउँ॥

जब पिता-माता कालवश हो गए (मर गए), तब मैं भक्तों की रक्षा करनेवाले राम का भजन करने के लिए वन में चला गया। वन में जहाँ-जहाँ मुनीश्वरों के आश्रम पाता, वहाँ-

वहाँ जा-जाकर उन्हें सिर नवाता।

बूझउँ तिन्हहि राम गुन गाहा। कहहिं सुनउँ हरषित खगनाहा॥
सुनत फिरउँ हरि गुन अनुबादा। अब्याहत गति संभु प्रसादा॥

हे गरुड़! उनसे मैं राम के गुणों की कथाएँ पूछता। वे कहते और मैं हर्षित होकर सुनता। इस प्रकार मैं सदा-सर्वदा हरि के गुणानुवाद सुनता फिरता। शिव की कृपा से मेरी सर्वत्र अबाधित गति थी (अर्थात मैं जहाँ चाहता वहीं जा सकता था)।

छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी॥
राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं॥

मेरी तीनों प्रकार की (पुत्र की, धन की और मान की) गहरी प्रबल वासनाएँ छूट गईं और हृदय में एक यही लालसा अत्यंत बढ़ गई कि जब राम के चरणकमलों के दर्शन करूँ तब अपना जन्म सफल हुआ समझूँ।

जेहि पूँछउँ सोइ मुनि अस कहई। ईस्वर सर्ब भूतमय अहई॥
निर्गुन मत नहिं मोहि सोहाई। सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई॥

जिनसे मैं पूछता, वे ही मुनि ऐसा कहते कि ईश्वर सर्वभूतमय है। यह निर्गुण मत मुझे नहीं सुहाता था। हृदय में सगुण ब्रह्म पर प्रीति बढ़ रही थी।

दो० - गुर के बचन सुरति करि राम चरन मनु लाग।
रघुपति जस गावत फिरउँ छन छन नव अनुराग॥ 110(क)॥

गुरु के वचनों का स्मरण करके मेरा मन राम के चरणों में लग गया। मैं क्षण-क्षण नया-नया प्रेम प्राप्त करता हुआ रघुनाथ का यश गाता फिरता था॥ 110(क)॥

मेरु सिखर बट छायाँ मुनि लोमस आसीन।
देखि चरन सिरु नायउँ बचन कहेउँ अति दीन॥ 110(ख)॥

सुमेरु पर्वत के शिखर पर बड़ की छाया में लोमश मुनि बैठे थे। उन्हें देखकर मैंने उनके चरणों में सिर नवाया और अत्यंत दीन वचन कहे॥ 110(ख)॥

सुनि मम बचन बिनीत मृदु मुनि कृपाल खगराज।

मोहि सादर पूँछत भए द्विज आयहु केहि काज॥ 110(ग)॥

हे पक्षीराज! मेरे अत्यंत नम्र और कोमल वचन सुनकर कृपालु मुनि मुझसे आदर के साथ पूछने लगे - हे ब्राह्मण! आप किस कार्य से यहाँ आए हैं?॥ 110(ग)॥

तब मैं कहा कृपानिधि तुम्ह सर्बग्य सुजान।
सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान॥ 110(घ)॥

तब मैंने कहा - हे कृपानिधि! आप सर्वज्ञ हैं और सुजान हैं। हे भगवन! मुझे सगुण ब्रह्म की आराधना (की प्रक्रिया) कहिए॥ 110(घ)॥

तब मुनीस रघुपति गुन गाथा। कहे कछुक सादर खगनाथा॥
ब्रह्मग्यान रत मुनि बिग्यानी। मोहि परम अधिकारी जानी॥

तब हे पक्षीराज! मुनीश्वर ने रघुनाथ के गुणों की कुछ कथाएँ आदर सहित कहीं। फिर वे ब्रह्मज्ञानपरायण विज्ञानवान मुनि मुझे परम अधिकारी जानकर -

लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा॥
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा॥

ब्रह्म का उपदेश करने लगे कि वह अजन्मा है, अद्वैत है, निर्गुण है और हृदय का स्वामी (अंतर्यामी) है। उसे कोई बुद्धि के द्वारा माप नहीं सकता, वह इच्छारहित, नामरहित, रूपरहित, अनुभव से जानने योग्य, अखंड और उपमारहित है।

मन गोतीत अमल अबिनासी। निर्बिकार निरवधि सुख रासी॥
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। बारि बीचि इव गावहिं बेदा॥

वह मन और इंद्रियों से परे, निर्मल, विनाशरहित, निर्विकार, सीमारहित और सुख की राशि है। वेद ऐसा गाते हैं कि वही तू है, (तत्त्वमसि), जल और जल की लहर की भाँति उसमें और तुझमें कोई भेद नहीं है।

बिबिधि भाँति मोहि मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदयँ न आवा॥
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा। सगुन उपासन कहहु मुनीसा॥

मुनि ने मुझे अनेकों प्रकार से समझाया, पर निर्गुण मत मेरे हृदय में नहीं बैठा। मैंने फिर

मुनि के चरणों में सिर नवाकर कहा - हे मुनीश्वर! मुझे सगुण ब्रह्म की उपासना कहिए।

राम भगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना॥
सोइ उपदेस कहहु करि दाया। निज नयनन्हि देखौं रघुराया॥

मेरा मन रामभक्तिरूपी जल में मछली हो रहा है (उसी में रम रहा है)। हे चतुर मुनीश्वर! ऐसी दशा में वह उससे अलग कैसे हो सकता है? आप दया करके मुझे वही उपदेश (उपाय) कहिए जिससे मैं रघुनाथ को अपनी आँखों से देख सकूँ।

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा॥
मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा। खंडि सगुन मत अगुन निरूपा॥

(पहले) नेत्र भरकर अयोध्यानाथ को देखकर, तब निर्गुण का उपदेश सुनूँगा। मुनि ने फिर अनुपम हरिकथा कहकर, सगुण मत का खंडन करके निर्गुण का निरूपण किया।

तब मैं निर्गुन मत कर दूरी। सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी॥
उत्तर प्रतिउत्तर मैं कीन्हा। मुनि तन भए क्रोध के चीन्हा॥

तब मैं निर्गुण मत को हटाकर (काटकर) बहुत हठ करके सगुण का निरूपण करने लगा। मैंने उत्तर-प्रत्युत्तर किया, इससे मुनि के शरीर में क्रोध के चिह्न उत्पन्न हो गए।

सुनु प्रभु बहुत अवग्या किएँ। उपज क्रोध ग्यानिन्ह के हिएँ॥
अति संघरषन जौं कर कोई। अनल प्रगट चंदन ते होई॥

हे प्रभो! सुनिए, बहुत अपमान करने पर ज्ञानी के भी हृदय में क्रोध उत्पन्न हो जाता है। यदि कोई चंदन की लकड़ी को बहुत अधिक रगड़े, तो उससे भी अग्नि प्रकट हो जाएगी।

दो० - बारंबार सकोप मुनि करइ निरूपन ग्यान।
मैं अपनें मन बैठ तब करउँ बिबिधि अनुमान॥ 111(क)॥

मुनि बार-बार क्रोध सहित ज्ञान का निरूपण करने लगे। तब मैं बैठा-बैठा अपने मन में अनेकों प्रकार के अनुमान करने लगा॥ 111(क)॥

क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान।

मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान॥ 111(ख)॥

बिना द्वैतबुद्धि के क्रोध कैसा और बिना अज्ञान के क्या द्वैतबुद्धि हो सकती है? माया के वश रहनेवाला परिच्छिन्न जड़ जीव क्या ईश्वर के समान हो सकता है?॥ 111(ख)॥

कबहुँ कि दुःख सब कर हित ताकें। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाकें॥
परद्रोही की होहिं निसंका। कामी पुनि कि रहहिं अकलंका॥

सबका हित चाहने से क्या कभी दुःख हो सकता है? जिसके पास पारसमणि है, उसके पास क्या दरिद्रता रह सकती है? दूसरे से द्रोह करनेवाले क्या निर्भय हो सकते हैं और कामी क्या कलंकरहित (बेदाग) रह सकते हैं?

बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हें। कर्म की होहिं स्वरूपहि चीन्हें॥
काहू सुमति कि खल सँग जामी। सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी॥

ब्राह्मण का बुरा करने से क्या वंश रह सकता है? स्वरूप की पहिचान (आत्मज्ञान) होने पर क्या (आसक्तिपूर्वक) कर्म हो सकते हैं? दुष्टों के संग से क्या किसी के सुबुद्धि उत्पन्न हुई है? परस्त्रीगामी क्या उत्तम गति पा सकता है?

भव कि परहिं परमात्मा बिंदक। सुखी कि होहिं कबहुँ हरि निंदक॥
राजु कि रहइ नीति बिनु जानें। अघ कि रहहिं हरिचरित बखानें॥

परमात्मा को जाननेवाले कहीं जन्म-मरण (के चक्कर) में पड़ सकते हैं? भगवान की निंदा करनेवाले कभी सुखी हो सकते हैं? नीति बिना जाने क्या राज्य रह सकता है? हरि के चरित्र वर्णन करने पर क्या पाप रह सकते हैं?

पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावइ कोई॥
लाभु कि किछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना॥

बिना पुण्य के क्या पवित्र यश (प्राप्त) हो सकता है? बिना पाप के भी क्या कोई अपयश पा सकता है? जिसकी महिमा वेद, संत और पुराण गाते हैं और उस हरि-भक्ति के समान क्या कोई दूसरा लाभ भी है?

हानि कि जग एहि सम किछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई॥

अघ कि पिसुनता सम कछु आना। धर्म कि दया सरिस हरिजाना॥

हे भाई! जगत में क्या इसके समान दूसरी भी कोई हानि है कि मनुष्य का शरीर पाकर भी राम का भजन न किया जाए? चुगलखोरी के समान क्या कोई दूसरा पाप है? और हे गरुड़! दया के समान क्या कोई दूसरा धर्म है?

एहि बिधि अमिति जुगुति मन गुनऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनउँ॥
पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा। तब मुनि बोलेउ बचन सकोपा॥

इस प्रकार मैं अनगिनत युक्तियाँ मन में विचारता था और आदर के साथ मुनि का उपदेश नहीं सुनता था। जब मैंने बार-बार सगुण का पक्ष स्थापित किया, तब मुनि क्रोधयुक्त वचन बोले -

मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि॥
सत्य बचन बिस्वास न करही। बायस इव सबही ते डरही॥

अरे मूढ़! मैं तुझे सर्वोत्तम शिक्षा देता हूँ, तो भी तू उसे नहीं मानता और बहुत-से उत्तर-प्रत्युत्तर (दलीलें) लाकर रखता है। मेरे सत्य वचन पर विश्वास नहीं करता। कौए की भाँति सभी से डरता है।

सठ स्वपच्छ तव हृदयँ बिसाला। सपदि होहि पच्छी चंडाला॥
लीन्ह श्राप मैं सीस चढ़ाई। नहिं कछु भय न दीनता आई॥

अरे मूर्ख! तेरे हृदय में अपने पक्ष का बड़ा भारी हठ है, अतः तू शीघ्र चांडाल पक्षी (कौवा) हो जा। मैंने आनंद के साथ मुनि के शाप को सिर पर चढ़ा लिया। उससे मुझे न कुछ भय हुआ, न दीनता ही आई।

दो० - तुरत भयउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ।
सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ॥ 112(क)॥

तब मैं तुरंत ही कौवा हो गया। फिर मुनि के चरणों में सिर नवाकर और रघुकुल शिरोमणि राम का स्मरण करके मैं हर्षित होकर उड़ चला॥ 112(क)॥

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।

निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥ 112(ख)॥

(शिव कहते हैं -) हे उमा! जो राम के चरणों के प्रेमी हैं और काम, अभिमान तथा क्रोध से रहित हैं, वे जगत को अपने प्रभु से भरा हुआ देखते हैं, फिर वे किससे वैर करें॥ 112(ख)॥

सुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन। उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन॥
कृपासिंधु मुनि मति करि भोरी। लीन्ही प्रेम परिच्छा मोरी॥

(काकभुशुंडि ने कहा -) हे पक्षीराज गरुड़! सुनिए, इसमें ऋषि का कुछ भी दोष नहीं था। रघुवंश के विभूषण राम ही सबके हृदय में प्रेरणा करनेवाले हैं। कृपा-सागर प्रभु ने मुनि की बुद्धि को भोली करके (भुलावा देकर) मेरे प्रेम की परीक्षा ली।

मन बच क्रम मोहि निज जन जाना। मुनि मति पुनि फेरी भगवाना॥
रिषि मम महत सीलता देखी। राम चरन बिस्वास बिसेषी॥

मन, वचन और कर्म से जब प्रभु ने मुझे अपना दास जान लिया, तब भगवान ने मुनि की बुद्धि फिर पलट दी। ऋषि ने मेरा महान पुरुषों का-सा स्वभाव (धैर्य, अक्रोध, विनय आदि) और राम के चरणों में विशेष विश्वास देखा,

अति बिसमय पुनि पुनि पछिताई। सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई॥
मम परितोष बिबिधि बिधि कीन्हा। हरषित राममंत्र तब दीन्हा॥

तब मुनि ने बहुत दुःख के साथ बार-बार पछताकर मुझे आदरपूर्वक बुला लिया। उन्होंने अनेकों प्रकार से मेरा संतोष किया और तब हर्षित होकर मुझे राममंत्र दिया।

बालकरूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना॥
सुंदर सुखद मोहि अति भावा। सो प्रथमहिं मैं तुम्हहि सुनावा॥

कृपानिधान मुनि ने मुझे बालक रूप राम का ध्यान (ध्यान की विधि) बतलाया। सुंदर और सुख देनेवाला यह ध्यान मुझे बहुत ही अच्छा लगा। वह ध्यान मैं आपको पहले ही सुना चुका हूँ।

मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरितमानस तब भाषा॥
सादर मोहि यह कथा सुनाई। पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई॥

मुनि ने कुछ समय तक मुझको वहाँ (अपने पास) रखा। तब उन्होंने रामचरितमानस सुनाया। आदरपूर्वक मुझे यह कथा सुनाकर फिर मुनि मुझसे सुंदर वाणी बोले -

रामचरित सर गुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा॥
तोहि निज भगत राम कर जानी। ताते मैं सब कहेउँ बखानी॥

हे तात! यह सुंदर और गुप्त रामचरितमानस मैंने शिव की कृपा से पाया था। तुम्हें राम का 'निज भक्त' जाना, इसी से मैंने तुमसे सब चरित्र विस्तार के साथ कहा।

राम भगति जिन्ह कें उर नाहीं। कबहुँ न तात कहिअ तिन्ह पाहीं॥
मुनि मोहि बिबिधि भाँति समुझावा। मैं सप्रेम मुनि पद सिरु नावा॥

हे तात! जिनके हृदय में राम की भक्ति नहीं है, उनके सामने इसे कभी भी नहीं कहना चाहिए। मुनि ने मुझे बहुत प्रकार से समझाया। तब मैंने प्रेम के साथ मुनि के चरणों में सिर नवाया।

निज कर कमल परसि मम सीसा। हरषित आसिष दीन्ह मुनीसा॥
राम भगति अबिरल उर तोरें। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरें॥

मुनीश्वर ने अपने करकमलों से मेरा सिर स्पर्श करके हर्षित होकर आशीर्वाद दिया कि अब मेरी कृपा से तेरे हृदय में सदा प्रगाढ़ राम भक्ति बसेगी।

दो॰ - सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान।
कामरूप इच्छामरन ग्यान बिराग निधान॥ 113(क)॥

तुम सदा राम को प्रिय होओ और कल्याण रूप गुणों के धाम, मानरहित, इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ, इच्छा मृत्यु (जिसकी शरीर छोड़ने की इच्छा करने पर ही मृत्यु हो, बिना इच्छा के मृत्यु न हो), एवं ज्ञान और वैराग्य के भंडार होओ॥ 113(क)॥

जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवंत।
ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत॥ 113(ख)॥

इतना ही नहीं, श्री भगवान को स्मरण करते हुए तुम जिस आश्रम में निवास करोगे वहाँ एक योजन (चार कोस) तक अविद्या (माया-मोह) नहीं व्यापेगी॥ 113(ख)॥

काल कर्म गुन दोष सुभाऊ। कछु दुख तुम्हहि न ब्यापिहि काऊ॥
राम रहस्य ललित बिधि नाना। गुप्त प्रगट इतिहास पुराना॥

काल, कर्म, गुण, दोष और स्वभाव से उत्पन्न कुछ भी दुःख तुमको कभी नहीं व्यापेगा। अनेकों प्रकार के सुंदर राम के रहस्य (गुप्त मर्म के चरित्र और गुण), जो इतिहास और पुराणों में गुप्त और प्रकट हैं (वर्णित और लक्षित हैं)।

बिनु श्रम तुम्ह जानब सब सोऊ। नित नव नेह राम पद होऊ॥
जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥

तुम उन सबको भी बिना ही परिश्रम जान जाओगे। राम के चरणों में तुम्हारा नित्य नया प्रेम हो। अपने मन में तुम जो कुछ इच्छा करोगे, हरि की कृपा से उसकी पूर्ति कुछ भी दुर्लभ नहीं होगी।

सुनि मुनि आसिष सुनु मतिधीरा। ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा॥
एवमस्तु तव बच मुनि ग्यानी। यह मम भगत कर्म मन बानी॥

हे धीरबुद्धि गरुड़! सुनिए, मुनि का आशीर्वाद सुनकर आकाश में गंभीर ब्रह्मवाणी हुई कि हे ज्ञानी मुनि! तुम्हारा वचन ऐसा ही (सत्य) हो। यह कर्म, मन और वचन से मेरा भक्त है।

सुनि नभगिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेम मगन सब संसय गयऊ॥
करि बिनती मुनि आयसु पाई। पद सरोज पुनि पुनि सिरु नाई॥

आकाशवाणी सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। मैं प्रेम में मग्न हो गया और मेरा सब संदेह जाता रहा। तदनंतर मुनि की विनती करके, आज्ञा पाकर और उनके चरणकमलों में बार-बार सिर नवाकर -

हरष सहित एहिं आश्रम आयउँ। प्रभु प्रसाद दुर्लभ बर पायउँ॥
इहाँ बसत मोहि सुनु खग ईसा। बीते कलप सात अरु बीसा॥

मैं हर्ष सहित इस आश्रम में आया। प्रभु राम की कृपा से मैंने दुर्लभ वर पा लिया। हे पक्षीराज! मुझे यहाँ निवास करते सत्ताईस कल्प बीत गए।

करउँ सदा रघुपति गुन गाना। सादर सुनहिं बिहंग सुजाना॥

जब जब अवधपुरीं रघुबीरा। धरहिं भगत हित मनुज सरीरा॥

मैं यहाँ सदा रघुनाथ के गुणों का गान किया करता हूँ और चतुर पक्षी उसे आदरपूर्वक सुनते हैं। अयोध्यापुरी में जब-जब रघुवीर भक्तों के (हित के) लिए मनुष्य शरीर धारण करते हैं,

तब तब जाइ राम पुर रहऊँ। सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ॥
पुनि उर राखि राम सिसुरूपा। निज आश्रम आवउँ खगभूपा॥

तब-तब मैं जाकर राम की नगरी में रहता हूँ और प्रभु की शिशुलीला देखकर सुख प्राप्त करता हूँ। फिर हे पक्षीराज! राम के शिशु रूप को हृदय में रखकर मैं अपने आश्रम में आ जाता हूँ।

कथा सकल मैं तुम्हहि सुनाई। काग देहि जेहिं कारन पाई॥
कहिउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। राम भगति महिमा अति भारी॥

जिस कारण से मैंने कौवे की देह पाई, वह सारी कथा आपको सुना दी। हे तात! मैंने आपके सब प्रश्नों के उत्तर कहे। अहा! रामभक्ति की बड़ी भारी महिमा है।

दो॰ - ताते यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेह।
निज प्रभु दरसन पायउँ गए सकल संदेह॥ 114(क)॥

मुझे अपना यह काक शरीर इसीलिए प्रिय है कि इसमें मुझे राम के चरणों का प्रेम प्राप्त हुआ। इसी शरीर से मैंने अपने प्रभु के दर्शन पाए और मेरे सब संदेह जाते रहे (दूर हुए)॥ 114(क)॥

भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषि साप।
मुनि दुर्लभ बर पायउँ देखहु भजन प्रताप॥ 114(ख)॥

मैं हठ करके भक्ति पक्ष पर अड़ा रहा, जिससे महर्षि लोमश ने मुझे शाप दिया; परंतु उसका फल यह हुआ कि जो मुनियों को भी दुर्लभ है, वह वरदान मैंने पाया। भजन का प्रताप तो देखिए!॥ 114(ख)॥

जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं॥

ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी॥

जो भक्ति की ऐसी महिमा जानकर भी उसे छोड़ देते हैं और केवल ज्ञान के लिए श्रम (साधन) करते हैं, वे मूर्ख घर पर खड़ी हुई कामधेनु को छोड़कर दूध के लिए मदार के पेड़ को खोजते फिरते हैं।

सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई॥
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिं जड़ करनी॥

हे पक्षीराज! सुनिए, जो लोग हरि की भक्ति को छोड़कर दूसरे उपायों से सुख चाहते हैं, वे मूर्ख और जड़ करनीवाले (अभागे) बिना ही जहाज के तैरकर महासमुद्र के पार जाना चाहते हैं।

सुनि भसुंडि के बचन भवानी। बोलेउ गरुड़ हरषि मृदु बानी॥
तव प्रसाद प्रभु मम उर माहीं। संसय सोक मोह भ्रम नाहीं॥

(शिव कहते हैं -) हे भवानी! भुशुंडि के वचन सुनकर गरुड़ हर्षित होकर कोमल वाणी से बोले - हे प्रभो! आपके प्रसाद से मेरे हृदय में अब संदेह, शोक, मोह और कुछ भी नहीं रह गया।

सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा। तुम्हरी कृपाँ लहेउँ बिश्रामा॥
एक बात प्रभु पूँछउँ तोही। कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही॥

मैंने आपकी कृपा से राम के पवित्र गुणसमूहों को सुना और शांति प्राप्त की। हे प्रभो! अब मैं आपसे एक बात और पूछता हूँ। हे कृपासागर! मुझे समझाकर कहिए।

कहहिं संत मुनि बेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ग्यान समाना॥
सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं। नहिं आदरेहु भगति की नाईं॥

संत, मुनि, वेद और पुराण यह कहते हैं कि ज्ञान के समान दुर्लभ कुछ भी नहीं है। हे गोसाईं! वही ज्ञान मुनि ने आपसे कहा, परंतु आपने भक्ति के समान उसका आदर नहीं किया।

ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता॥

सुनि उरगारि बचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना॥

हे कृपा के धाम! हे प्रभो! ज्ञान और भक्ति में कितना अंतर है? यह सब मुझसे कहिए। गरुड़ के वचन सुनकर सुजान काकभुशुंडि ने सुख माना और आदर के साथ कहा -

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा॥
नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु बिहंगबर॥

भक्ति और ज्ञान में कुछ भी भेद नहीं है। दोनों ही संसार से उत्पन्न क्लेशों को हर लेते हैं। हे नाथ! मुनीश्वर इनमें कुछ अंतर बतलाते हैं। हे पक्षीश्रेष्ठ! उसे सावधान होकर सुनिए।

ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती॥

हे हरि वाहन! सुनिए; ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान - ये सब पुरुष हैं; पुरुष का प्रताप सब प्रकार से प्रबल होता है। अबला (माया) स्वाभाविक ही निर्बल और जाति (जन्म) से ही जड़ (मूर्ख) होती है।

दो० - पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर।
न तु कामी बिषयाबस बिमुख जो पद रघुबीर॥ 115(क)॥

परंतु जो वैराग्यवान और धीरबुद्धि पुरुष हैं वही स्त्री को त्याग सकते हैं, न कि वे कामी पुरुष, जो विषयों के वश में हैं (उनके गुलाम हैं) और रघुवीर के चरणों से विमुख हैं॥ 115(क)॥

सो० - सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिबस होइ हरिजान नारि बिष्नु माया प्रगट॥ 115(ख)॥

वे ज्ञान के भंडार मुनि भी मृगनयनी (युवती स्त्री) के चंद्रमुख को देखकर विवश (उसके अधीन) हो जाते हैं। हे गरुड़! साक्षात भगवान विष्णु की माया ही स्त्री रूप से प्रकट है॥ 115(ख)॥

इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ। बेद पुरान संत मत भाषउँ॥

मोह न नारि नारि कें रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥

यहाँ मैं कुछ पक्षपात नहीं रखता। वेद, पुराण और संतों का मत (सिद्धांत) ही कहता हूँ। हे गरुड़! यह अनुपम (विलक्षण) रीति है कि एक स्त्री के रूप पर दूसरी स्त्री मोहित नहीं होती।

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि बर्ग जानइ सब कोऊ॥
पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥

आप सुनिए, माया और भक्ति - ये दोनों ही स्त्री वर्ग की हैं, यह सब कोई जानते हैं। फिर रघुवीर को भक्ति प्यारी है। माया बेचारी तो निश्चय ही नाचनेवाली (नटिनी मात्र) है।

भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥
राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी॥

रघुनाथ भक्ति के विशेष अनुकूल रहते हैं। इसी से माया उससे अत्यंत डरती रहती है। जिसके हृदय में उपमारहित और उपाधिरहित (विशुद्ध) रामभक्ति सदा बिना किसी बाधा (रोक-टोक) के बसती है;

तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई॥
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुख खानी॥

उसे देखकर माया सकुचा जाती है। उस पर वह अपनी प्रभुता कुछ भी नहीं कर (चला) सकती। ऐसा विचार कर ही जो विज्ञानी मुनि हैं, वे भी सब सुखों की खानि भक्ति की ही याचना करते हैं।

दो॰ - यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपति कृपाँ सपनेहुँ मोह न होइ॥ 116(क)॥

रघुनाथ का यह रहस्य (गुप्त मर्म) जल्दी कोई भी नहीं जान पाता। रघुनाथ की कृपा से जो इसे जान जाता है, उसे स्वप्न में भी मोह नहीं होता॥ 116(क)॥

औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन।
जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अबिछीन॥ 116(ख)॥

हे सुचतुर गरुड़! ज्ञान और भक्ति का और भी भेद सुनिए, जिसके सुनने से राम के चरणों में सदा अविच्छिन्न (एकतार) प्रेम हो जाता है॥ 116(ख)॥

सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी॥
ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥

हे तात! यह अकथनीय कहानी (वार्ता) सुनिए। यह समझते ही बनती है, कही नहीं जा सकती। जीव ईश्वर का अंश है। (अतएव) वह अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभाव से ही सुख की राशि है।

सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥

हे गोसाईं ! वह माया के वशीभूत होकर तोते और वानर की भाँति अपने-आप ही बँध गया। इस प्रकार जड़ और चेतन में ग्रंथि (गाँठ) पड़ गई। यद्यपि वह ग्रंथि मिथ्या ही है, तथापि उसके छूटने में कठिनता है।

तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी॥
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥

तभी से जीव संसारी (जन्मने-मरनेवाला) हो गया। अब न तो गाँठ छूटती है और न वह सुखी होता है। वेदों और पुराणों ने बहुत-से उपाय बतलाए हैं, पर वह (ग्रंथि) छूटती नहीं वरन अधिकाधिक उलझती ही जाती है।

जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी। ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी॥
अस संजोग ईस जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुअरई॥

जीव के हृदय में अज्ञानरूपी अंधकार विशेष रूप से छा रहा है, इससे गाँठ देख ही नहीं पड़ती, छूटे तो कैसे? जब कभी ईश्वर ऐसा संयोग (जैसा आगे कहा जाता है) उपस्थित कर देते हैं तब भी कदाचित ही वह (ग्रंथि) छूट पाती है।

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरि कृपाँ हृदयँ बस आई॥
जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा॥

हरि की कृपा से यदि सात्त्विकी श्रद्धारूपी सुंदर गौ हृदयरूपी घर में आकर बस जाए;

असंख्य जप, तप व्रत यम और नियमादि शुभ धर्म और आचार (आचरण), जो श्रुतियों ने कहे हैं,

तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई॥
नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा॥

उन्हीं (धर्माचाररूपी) हरे तृणों (घास) को जब वह गौ चरे और आस्तिक भावरूपी छोटे बछड़े को पाकर वह पेन्हावे। निवृत्ति (सांसारिक विषयों से और प्रपंच से हटना) नोई (गौ के दुहते समय पिछले पैर बाँधने की रस्सी) है, विश्वास (दूध दुहने का) बरतन है, निर्मल (निष्पाप) मन जो स्वयं अपना दास है। (अपने वश में है), दुहनेवाला अहीर है।

परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई॥
तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै। धृति सम जावनु देइ जमावै॥

हे भाई, इस प्रकार (धर्माचार में प्रवृत्त सात्त्विकी श्रद्धारूपी गौ से भाव, निवृत्ति और वश में किए हुए निर्मल मन की सहायता से) परम धर्ममय दूध दुहकर उसे निष्काम भावरूपी अग्नि पर भली-भाँति औटाए। फिर क्षमा और संतोषरूपी हवा से उसे ठंडा करे और धैर्य तथा शम (मन का निग्रह) रूपी जामन देकर उसे जमावे।

मुदिताँ मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥

तब मुदिता (प्रसन्नता) रूपी कमोरी में तत्त्व विचाररूपी मथानी से दम (इंद्रिय-दमन) के आधार पर (दमरूपी खंभे आदि के सहारे) सत्य और सुंदर वाणीरूपी रस्सी लगाकर उसे मथे और मथकर तब उसमें से निर्मल, सुंदर और अत्यंत पवित्र वैराग्यरूपी मक्खन निकाल ले।

दो० - जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ॥ 117(क)॥

तब योगरूपी अग्नि प्रकट करके उसमें समस्त शुभाशुभ कर्मरूपी ईंधन लगा दे (सब कर्मों को योगरूपी अग्नि में भस्म कर दे)। जब (वैराग्यरूपी मक्खन का) ममतारूपी मल जल जाए, तब (बचे हुए) ज्ञानरूपी घी को (निश्चयात्मिका) बुद्धि से ठंडा करे॥ 117(क)॥

तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ॥ 117(ख)॥

तब विज्ञानरूपिणी बुद्धि उस (ज्ञानरूपी) निर्मल घी को पाकर उससे चित्तरूपी दीए को भरकर, समता की दीवट बनाकर, उस पर उसे दृढ़तापूर्वक (जमाकर) रखे॥ 117(ख)॥

तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि॥ 117(ग)॥

(जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति) तीनों अवस्थाएँ और (सत्त्व, रज और तम) तीनों गुणरूपी कपास से तुरीयावस्थारूपी रूई को निकालकर और फिर उसे सँवारकर उसकी सुंदर कड़ी बत्ती बनाएँ॥ 117(ग)॥

सो॰ - एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥ 117(घ)॥

इस प्रकार तेज की राशि विज्ञानमय दीपक को जलावे, जिसके समीप जाते ही मद आदि सब पतंगे जल जाएँ॥ 117(घ)॥

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥

'सोऽहमस्मि' (वह ब्रह्म मैं हूँ) - यह जो अखंड (तैलधारावत कभी न टूटनेवाली) वृत्ति है, वही (उस ज्ञानदीपक की) परम प्रचंड दीपशिखा (लौ) है। (इस प्रकार) जब आत्मानुभव के सुख का सुंदर प्रकाश फैलता है, तब संसार के मूल भेदरूपी भ्रम का नाश हो जाता है,

प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा। उर गृहँ बैठि ग्रंथि निरुआरा॥

और महान बलवती अविद्या के परिवार मोह आदि का अपार अंधकार मिट जाता है। तब वही (विज्ञानरूपिणी) बुद्धि (आत्मानुभवरूप) प्रकाश को पाकर हृदयरूपी घर में बैठकर उस जड़-चेतन की गाँठ को खोलती है।

छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। तब यह जीव कृतारथ होई॥

छोरत ग्रंथ जानि खगराया। बिघ्न नेक करइ तब माया॥

यदि वह (विज्ञानरूपिणी बुद्धि) उस गाँठ को खोलने पावे, तब यह जीव कृतार्थ हो। परंतु हे पक्षीराज गरुड़! गाँठ खोलते हुए जानकर माया फिर अनेकों विघ्न करती है।

रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई॥
कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा॥

हे भाई! वह बहुत-सी ऋद्धि-सिद्धियों को भेजती है, जो आकर बुद्धि को लोभ दिखाती हैं और वे ऋद्धि-सिद्धियाँ कल (कला), बल और छल करके समीप जाती और आँचल की वायु से उस ज्ञानरूपी दीपक को बुझा देती हैं।

होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी॥
जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥

यदि बुद्धि बहुत ही सयानी हुई, तो वह उन (ऋद्धि-सिद्धियों) को अहितकर (हानिकर) समझकर उनकी ओर ताकती नहीं। इस प्रकार यदि माया के विघ्नों से बुद्धि को बाधा न हुई, तो फिर देवता उपाधि (विघ्न) करते हैं।

इंद्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी॥

इंद्रियों के द्वार हृदयरूपी घर के अनेकों झरोखे हैं। वहाँ-वहाँ (प्रत्येक झरोखे पर) देवता थाना किए (अड्डा जमाकर) बैठे हैं। ज्यों ही वे विषयरूपी हवा को आते देखते हैं, त्यों ही हठपूर्वक किवाड़ खोल देते हैं।

जब सो प्रभंजन उर गृहँ जाई। तबहिं दीप बिग्यान बुझाई॥
ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा॥

ज्यों ही वह तेज हवा हृदयरूपी घर में जाती है, त्यों ही वह विज्ञानरूपी दीपक बुझ जाता है। गाँठ भी नहीं छूटी और वह (आत्मानुभवरूप) प्रकाश भी मिट गया। विषयरूपी हवा से बुद्धि व्याकुल हो गई (सारा किया-कराया चौपट हो गया)।

इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई। बिषय भोग पर प्रीति सदाई॥

बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी॥

इंद्रियों और उनके देवताओं को ज्ञान (स्वाभाविक ही) नहीं सुहाता; क्योंकि उनकी विषय-भोगों में सदा ही प्रीति रहती है। और बुद्धि को भी विषयरूपी हवा ने बावली बना दिया। तब फिर (दुबारा) उस ज्ञान दीप को उसी प्रकार से कौन जलाए?

दो० - तब फिरि जीव बिबिधि बिधि पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस॥ 118(क)॥

(इस प्रकार ज्ञान दीपक के बुझ जाने पर) तब फिर जीव अनेकों प्रकार से संसृति (जन्म-मरणादि) के क्लेश पाता है। हे पक्षीराज! हरि की माया अत्यंत दुस्तर है, वह सहज ही में तरी नहीं जा सकती॥ 118(क)॥

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक॥ 118(ख)॥

ज्ञान कहने (समझाने) में कठिन, समझने में कठिन और साधने में भी कठिन है। यदि घुणाक्षर न्याय से (संयोगवश) कदाचित यह ज्ञान हो भी जाए, तो फिर (उसे बचाए रखने में) अनेकों विघ्न हैं॥ 118(ख)॥

ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥
जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥

ज्ञान का मार्ग कृपाण (दुधारी तलवार) की धार के समान है। हे पक्षीराज! इस मार्ग से गिरते देर नहीं लगती। जो इस मार्ग को निर्विघ्न निबाह ले जाता है, वही कैवल्य (मोक्ष) रूप परमपद को प्राप्त करता है।

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥

संत, पुराण, वेद और (तंत्र आदि) शास्त्र (सब) यह कहते हैं कि कैवल्यरूप परमपद अत्यंत दुर्लभ है; किंतु हे गोसाईं! वही (अत्यंत दुर्लभ) मुक्ति राम को भजने से बिना इच्छा किए भी जबरदस्ती आ जाती है।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥

तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥

जैसे स्थल के बिना जल नहीं रह सकता, चाहे कोई करोड़ों प्रकार के उपाय क्यों न करे। वैसे ही, हे पक्षीराज! सुनिए, मोक्षसुख भी हरि की भक्ति को छोड़कर नहीं रह सकता।

अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥

ऐसा विचार कर बुद्धिमान हरि भक्त भक्ति पर लुभाए रहकर मुक्ति का तिरस्कार कर देते हैं। भक्ति करने से संसृति (जन्म-मृत्यु रूप संसार) की जड़ अविद्या बिना ही यंत्र और परिश्रम के (अपने आप) वैसे ही नष्ट हो जाती है,

भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी॥
असि हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई॥

जैसे भोजन किया तो जाता है तृप्ति के लिए और उस भोजन को जठराग्नि अपने-आप (बिना हमारी चेष्टा के) पचा डालती है, ऐसी सुगम और परम सुख देनेवाली हरि भक्ति जिसे न सुहावे, ऐसा मूढ़ कौन होगा?

दो० - सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि॥ 119(क)॥

हे सर्पों के शत्रु गरुड़! मैं सेवक हूँ और भगवान मेरे सेव्य (स्वामी) हैं, इस भाव के बिना संसाररूपी समुद्र से तरना नहीं हो सकता। ऐसा सिद्धांत विचारकर राम के चरण कमलों का भजन कीजिए॥ 119(क)॥

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य॥ 119(ख)॥

जो चेतन को जड़ कर देता है और जड़ को चेतन कर देता है, ऐसे समर्थ रघुनाथ को जो जीव भजते हैं, वे धन्य हैं॥ 119(ख)॥

कहेउँ ग्यान सिद्धांत बुझाई। सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई॥
राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥

मैंने ज्ञान का सिद्धांत समझाकर कहा। अब भक्तिरूपी मणि की प्रभुता (महिमा) सुनिए। राम की भक्ति सुंदर चिंतामणि है। हे गरुड़! यह जिसके हृदय के अंदर बसती है,

परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥

वह दिन-रात (अपने-आप ही) परम प्रकाश रूप रहता है। उसको दीपक, घी और बत्ती कुछ भी नहीं चाहिए। (इस प्रकार मणि का एक तो स्वाभाविक प्रकाश रहता है) फिर मोहरूपी दरिद्रता समीप नहीं आती (क्योंकि मणि स्वयं धनरूप है); और (तीसरे) लोभरूपी हवा उस मणिमय दीप को बुझा नहीं सकती (क्योंकि मणि स्वयं प्रकाश रूप है, वह किसी दूसरे की सहायता से प्रकाश नहीं करती)।

प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥

(उसके प्रकाश से) अविद्या का प्रबल अंधकार मिट जाता है। मदादि पतंगों का सारा समूह हार जाता है। जिसके हृदय में भक्ति बसती है, काम, क्रोध और लोभ आदि दुष्ट तो उसके पास भी नहीं जाते।

गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥
ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥

उसके लिए विष अमृत के समान और शत्रु मित्र हो जाता है। उस मणि के बिना कोई सुख नहीं पाता। बड़े-बड़े मानस-रोग, जिनके वश होकर सब जीव दुःखी हो रहे हैं, उसको नहीं व्यापते।

राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥

रामभक्तिरूपी मणि जिसके हृदय में बसती है, उसे स्वप्न में भी लेशमात्र दुःख नहीं होता। जगत में वे ही मनुष्य चतुरों के शिरोमणि हैं जो उस भक्तिरूपी मणि के लिए भली-भाँति यत्न करते हैं।

सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥

सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिं भटभेरे॥

यद्यपि वह मणि जगत में प्रकट (प्रत्यक्ष) है, पर बिना राम की कृपा के उसे कोई पा नहीं सकता। उसके पाने के उपाय भी सुगम ही हैं, पर अभागे मनुष्य उन्हें ठुकरा देते हैं।

पावन पर्बत बेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी॥

वेद-पुराण पवित्र पर्वत हैं। राम की नाना प्रकार की कथाएँ उन पर्वतों में सुंदर खानें हैं। संत पुरुष (उनकी इन खानों के रहस्य को जाननेवाले) मर्मी हैं और सुंदर बुद्धि (खोदनेवाली) कुदाल है। हे गरुड़! ज्ञान और वैराग्य ये दो उनके नेत्र हैं।

भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी॥
मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥

जो प्राणी उसे प्रेम के साथ खोजता है, वह सब सुखों की खान इस भक्तिरूपी मणि को पा जाता है। हे प्रभो! मेरे मन में तो ऐसा विश्वास है कि राम के दास राम से भी बढ़कर हैं।

राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा॥
सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई॥

राम समुद्र हैं तो धीर संत पुरुष मेघ हैं। हरि चंदन के वृक्ष हैं तो संत पवन हैं। सब साधनों का फल सुंदर हरि भक्ति ही है। उसे संत के बिना किसी ने नहीं पाया।

अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा॥

ऐसा विचार कर जो भी संतों का संग करता है, हे गरुड़! उसके लिए राम की भक्ति सुलभ हो जाती है।

दो॰ - ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं॥ 120(क)॥

ब्रह्म (वेद) समुद्र है, ज्ञान मंदराचल है और संत देवता हैं, जो उस समुद्र को मथकर कथारूपी अमृत निकालते हैं, जिसमें भक्तिरूपी मधुरता बसी रहती है॥ 120(क)॥

बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि॥ 120(ख)॥

वैराग्यरूपी ढाल से अपने को बचाते हुए और ज्ञानरूपी तलवार से मद, लोभ और मोहरूपी वैरियों को मारकर जो विजय प्राप्त करती है, वह हरि भक्ति ही है; हे पक्षीराज! इसे विचार कर देखिए॥ 120(ख)॥

पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। जौं कृपाल मोहि ऊपर भाऊ॥
नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी॥

पक्षीराज गरुड़ फिर प्रेम सहित बोले - हे कृपालु! यदि मुझ पर आपका प्रेम है, तो हे नाथ! मुझे अपना सेवक जानकर मेरे सात प्रश्नों के उत्तर बखान कर कहिए।

प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा। सब ते दुर्लभ कवन सरीरा॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी॥

हे नाथ! हे धीर-बुद्धि! पहले तो यह बताइए कि सबसे दुर्लभ कौन-सा शरीर है? फिर सबसे बड़ा दुःख कौन है और सबसे बड़ा सुख कौन है, यह भी विचार कर संक्षेप में ही कहिए?

संत असंत मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु॥
कवन पुन्य श्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला॥

संत और असंत का मर्म (भेद) आप जानते हैं, उनके सहज स्वभाव का वर्णन कीजिए। फिर कहिए कि श्रुतियों में प्रसिद्ध सबसे महान पुण्य कौन-सा है और सबसे महान भयंकर पाप कौन है?

मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई॥
तात सुनहु सादर अति प्रीती। मैं संछेप कहउँ यह नीती॥

फिर मानस-रोगों को समझाकर कहिए। आप सर्वज्ञ हैं और मुझ पर आपकी कृपा भी बहुत है। (काकभुशुंडि ने कहा -) हे तात! अत्यंत आदर और प्रेम के साथ सुनिए। मैं यह नीति संक्षेप से कहता हूँ।

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥

नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥

मनुष्य-शरीर के समान कोई शरीर नहीं है। चर-अचर सभी जीव उसकी याचना करते हैं। वह मनुष्य-शरीर नरक, स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी है तथा कल्याणकारी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को देनेवाला है।

सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं बिषय रत मंद मंद तर॥
काँच किरिच बदलें ते लेहीं। कर ते डारि परस मनि देहीं॥

ऐसे मनुष्य शरीर को धारण (प्राप्त) करके भी जो लोग हरि का भजन नहीं करते और नीच से भी नीच विषयों में अनुरक्त रहते हैं, वे पारसमणि को हाथ से फेंक देते हैं और बदले में काँच के टुकड़े ले लेते हैं।

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं॥
पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया॥

जगत में दरिद्रता के समान दुःख नहीं है तथा संतों के मिलने के समान जगत में सुख नहीं है। और हे पक्षीराज! मन, वचन और शरीर से परोपकार करना, यह संतों का सहज स्वभाव है।

संत सहहिं दुख पर हित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी॥
भूर्ज तरू सम संत कृपाला। पर हित निति सह बिपति बिसाला॥

संत दूसरों की भलाई के लिए दुःख सहते हैं और अभागे असंत दूसरों को दुःख पहुँचाने के लिए। कृपालु संत भोज के वृक्ष के समान दूसरों के हित के लिए भारी विपत्ति सहते हैं (अपनी खाल तक उधड़वा लेते हैं)।

सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढ़ाई बिपति सहि मरई॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी॥

किंतु दुष्ट लोग सन की भाँति दूसरों को बाँधते हैं और (उन्हें बाँधने के लिए) अपनी खाल खिंचवाकर विपत्ति सहकर मर जाते हैं। हे सर्पों के शत्रु गरुड़! सुनिए, दुष्ट बिना किसी स्वार्थ के साँप और चूहे के समान अकारण ही दूसरों का अपकार करते हैं।

पर संपदा बिनासि नसाहीं। जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं॥

दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥

वे पराई संपत्ति का नाश करके स्वयं नष्ट हो जाते हैं, जैसे खेती का नाश करके ओले नष्ट हो जाते हैं। दुष्ट का अभ्युदय (उन्नति) प्रसिद्ध अधम ग्रह केतु के उदय की भाँति जगत के दुःख के लिए ही होता है।

संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी॥
परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गरीसा॥

और संतों का अभ्युदय सदा ही सुखकर होता है, जैसे चंद्रमा और सूर्य का उदय विश्व भर के लिए सुखदायक है। वेदों में अहिंसा को परम धर्म माना है और परनिंदा के समान भारी पाप नहीं है।

हर गुर निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तन सोई॥
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमइ बायस सरीर धरि॥

शंकर और गुरु की निंदा करनेवाला मनुष्य (अगले जन्म में) मेढ़क होता है और वह हजार जन्म तक वही मेढ़क का शरीर पाता है। ब्राह्मणों की निंदा करनेवाला व्यक्ति बहुत-से नरक भोगकर फिर जगत में कौवे का शरीर धारण करके जन्म लेता है।

सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी॥
होहिं उलूक संत निंदा रत। मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत॥

जो अभिमानी जीव देवताओं और वेदों की निंदा करते हैं, वे रौरव नरक में पड़ते हैं। संतों की निंदा में लगे हुए लोग उल्लू होते हैं, जिन्हें मोहरूपी रात्रि प्रिय होती है और ज्ञानरूपी सूर्य जिनके लिए बीत गया (अस्त हो गया) रहता है।

सब कै निंदा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं॥
सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा॥

जो मूर्ख मनुष्य सब की निंदा करते हैं, वे चमगादड़ होकर जन्म लेते हैं। हे तात! अब मानस-रोग सुनिए, जिनसे सब लोग दुःख पाया करते हैं।

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥

काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥

सब रोगों की जड़ मोह (अज्ञान) है। उन व्याधियों से फिर और बहुत-से शूल उत्पन्न होते हैं। काम वात है, लोभ अपार (बढ़ा हुआ) कफ है और क्रोध पित्त है जो सदा छाती जलाता रहता है।

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना॥

यदि कहीं ये तीनों भाई (वात, पित्त और कफ) प्रीति कर लें (मिल जाएँ), तो दुःखदायक सन्निपात रोग उत्पन्न होता है। कठिनता से प्राप्त (पूर्ण) होनेवाले जो विषयों के मनोरथ हैं, वे ही सब शूल (कष्टदायक रोग) हैं; उनके नाम कौन जानता है (अर्थात वे अपार हैं)।

ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई॥

ममता दाद है, ईर्ष्या (डाह) खुजली है, हर्ष-विषाद गले के रोगों की अधिकता है (गलगंड, कंठमाला या घेघा आदि रोग हैं), पराए सुख को देखकर जो जलन होती है, वही क्षयी है। दुष्टता और मन की कुटिलता ही कोढ़ है।

अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ॥
तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी। त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी॥

अहंकार अत्यंत दुःख देनेवाला डमरू (गाँठ का) रोग है। दंभ, कपट, मद और मान नहरुआ (नसों का) रोग है। तृष्णा बड़ा भारी उदर वृद्धि (जलोदर) रोग है। तीन प्रकार (पुत्र, धन और मान) की प्रबल इच्छाएँ प्रबल तिजारी हैं।

जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका॥

मत्सर और अविवेक दो प्रकार के ज्वर हैं। इस प्रकार अनेकों बुरे रोग हैं, जिन्हें कहाँ तक कहूँ।

दो० - एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि॥ 121(क)॥

एक ही रोग के वश होकर मनुष्य मर जाते हैं, फिर ये तो बहुत-से असाध्य रोग हैं। ये जीव को निरंतर कष्ट देते रहते हैं, ऐसी दशा में वह समाधि (शांति) को कैसे प्राप्त करे?॥ 121(क)॥

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान॥ 121(ख)॥

नियम, धर्म, आचार (उत्तम आचरण), तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान तथा और भी करोड़ों औषधियाँ हैं, परंतु हे गरुड़! उनसे ये रोग नहीं जाते॥ 121(ख)॥

एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। सोक हरष भय प्रीति बियोगी॥
मानस रोग कछुक मैं गाए। हहिं सब कें लखि बिरलेन्ह पाए॥

इस प्रकार जगत में समस्त जीव रोगी हैं, जो शोक, हर्ष, भय, प्रीति और वियोग के दुःख से और भी दुःखी हो रहे हैं। मैंने ये थोड़े-से मानस-रोग कहे हैं। ये हैं तो सबको, परंतु इन्हें जान पाए हैं कोई विरले ही।

जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी॥
बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे॥

प्राणियों को जलानेवाले ये पापी (रोग) जान लिए जाने से कुछ क्षीण अवश्य हो जाते हैं, परंतु नाश को नहीं प्राप्त होते। विषयरूप कुपथ्य पाकर ये मुनियों के हृदय में भी अंकुरित हो उठते हैं, तब बेचारे साधारण मनुष्य तो क्या चीज हैं।

राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संजोगा॥
सदगुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा॥

यदि राम की कृपा से इस प्रकार का संयोग बन जाए तो ये सब रोग नष्ट हो जाएँ। सद्गुरुरूपी वैद्य के वचन में विश्वास हो। विषयों की आशा न करे, यही संयम (परहेज) हो।

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥

रघुनाथ की भक्ति संजीवनी जड़ी है। श्रद्धा से पूर्ण बुद्धि ही अनुपान (दवा के साथ लिया

जानेवाला मधु आदि) है। इस प्रकार का संयोग हो तो वे रोग भले ही नष्ट हो जाएँ, नहीं तो करोड़ों प्रयत्नों से भी नहीं जाते।

जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई॥
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई॥

हे गोसाईं! मन को नीरोग हुआ तब जानना चाहिए, जब हृदय में वैराग्य का बल बढ़ जाए, उत्तम बुद्धिरूपी भूख नित नई बढ़ती रहे और विषयों की आशारूपी दुर्बलता मिट जाए।

बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई॥
सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥

(इस प्रकार सब रोगों से छूटकर) जब मनुष्य निर्मल ज्ञानरूपी जल में स्नान कर लेता है, तब उसके हृदय में राम भक्ति छा रहती है। शिव, ब्रह्मा, शुकदेव, सनकादि और नारद आदि ब्रह्मविचार में परम निपुण जो मुनि हैं,

सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥
श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥

हे पक्षीराज! उन सबका मत यही है कि राम के चरणकमलों में प्रेम करना चाहिए। श्रुति, पुराण और सभी ग्रंथ कहते हैं कि रघुनाथ की भक्ति के बिना सुख नहीं है।

कमठ पीठ जामहिं बरु बारा। बंध्या सुत बरु काहुहि मारा॥
फूलहिं नभ बरु बहुबिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला॥

कछुए की पीठ पर भले ही बाल उग आएँ, बाँझ का पुत्र भले ही किसी को मार डाले, आकाश में भले ही अनेकों प्रकार के फूल खिल उठें; परंतु हरि से विमुख होकर जीव सुख नहीं प्राप्त कर सकता।

तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहिं सस सीस बिषाना॥
अंधकारु बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै॥

मृगतृष्णा के जल को पीने से भले ही प्यास बुझ जाए, खरगोश के सिर पर भले ही सींग निकल आए, अंधकार भले ही सूर्य का नाश कर दे; परंतु राम से विमुख होकर जीव सुख

नहीं पा सकता।

हिम ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई॥

बर्फ से भले ही अग्नि प्रकट हो जाए (ये सब अनहोनी बातें चाहे हो जाएँ), परंतु राम से विमुख होकर कोई भी सुख नहीं पा सकता।

दो० - बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न तव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥ 122(क)॥

जल को मथने से भले ही घी उत्पन्न हो जाए और बालू (को पेरने) से भले ही तेल निकल आए; परंतु हरि के भजन बिना संसाररूपी समुद्र से नहीं तरा जा सकता, यह सिद्धांत अटल है॥ 122(क)॥

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।
अस बिचारि तजि संसय रामहि भजहिं प्रबीन॥ 122(ख)॥

प्रभु मच्छर को ब्रह्मा कर सकते हैं और ब्रह्मा को मच्छर से भी तुच्छ बना सकते हैं। ऐसा विचार कर चतुर पुरुष सब संदेह त्यागकर राम को ही भजते हैं॥ 122(ख)॥

श्लोक - विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते॥ 122(ग)॥

मैं आपसे भली-भाँति निश्चित किया हुआ सिद्धांत कहता हूँ - मेरे वचन अन्यथा (मिथ्या) नहीं हैं कि जो मनुष्य हरि का भजन करते हैं, वे अत्यंत दुस्तर संसार सागर को (सहज ही) पार कर जाते हैं॥ 122(ग)॥

कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा। ब्यास समास स्वमति अनुरूपा॥
श्रुति सिद्धांत इहइ उरगारी। राम भजिअ सब काज बिसारी॥

हे नाथ! मैंने हरि का अनुपम चरित्र अपनी बुद्धि के अनुसार कहीं विस्तार से और कहीं संक्षेप से कहा। हे सर्पों के शत्रु गरुड़! श्रुतियों का यही सिद्धांत है कि सब काम भुलाकर (छोड़कर) राम का भजन करना चाहिए।

प्रभु रघुपति तजि सेइअ काही। मोहि से सठ पर ममता जाही॥

तुम्ह बिग्यानरूप नहिं मोहा। नाथ कीन्हि मो पर अति छोहा॥

प्रभु रघुनाथ को छोड़कर और किसका सेवन (भजन) किया जाए, जिनका मुझ-जैसे मूर्ख पर भी ममत्व (स्नेह) है। हे नाथ! आप विज्ञानरूप हैं, आपको मोह नहीं है। आपने तो मुझ पर बड़ी कृपा की है।

पूँछिहु राम कथा अति पावनि। सुक सनकादि संभु मन भावनि॥
सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा॥

जो आपने मुझ से शुकदेव, सनकादि और शिव के मन को प्रिय लगनेवाली अति पवित्र रामकथा पूछी। संसार में घड़ी भर का अथवा पल भर का एक बार का भी सत्संग दुर्लभ है।

देखु गरुड़ निज हृदयँ बिचारी। मैं रघुबीर भजन अधिकारी॥
सकुनाधम सब भाँति अपावन। प्रभु मोहि कीन्ह बिदित जग पावन॥

हे गरुड़! अपने हृदय में विचार कर देखिए, क्या मैं भी राम के भजन का अधिकारी हूँ? पक्षियों में सबसे नीच और सब प्रकार से अपवित्र हूँ, परंतु ऐसा होने पर भी प्रभु ने मुझको सारे जगत को पवित्र करनेवाला प्रसिद्ध कर दिया (अथवा प्रभु ने मुझको जगत्प्रसिद्ध पावन कर दिया)।

दो० - आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब बिधि हीन।
निज जन जानि राम मोहि संत समागम दीन॥ 123(क)॥

यद्यपि मैं सब प्रकार से हीन (नीच) हूँ, तो भी आज मैं धन्य हूँ, अत्यंत धन्य हूँ, जो राम ने मुझे अपना 'निज जन' जानकर संत-समागम दिया (आपसे मेरी भेंट कराई)॥ 123(क)॥

नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ।
चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावइ कोइ॥ 123(ख)॥

हे नाथ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार कहा, कुछ भी छिपा नहीं रखा। (फिर भी) रघुवीर के चरित्र समुद्र के समान हैं, क्या उनकी कोई थाह पा सकता है?॥ 123(ख)॥

सुमिरि राम के गुन गन नाना। पुनि पुनि हरष भुसुंडि सुजाना॥

महिमा निगम नेत करि गाई। अतुलित बल प्रताप प्रभुताई॥

राम के बहुत-से गुणसमूहों का स्मरण कर-करके सुजान भुशुंडि बार-बार हर्षित हो रहे हैं। जिनकी महिमा वेदों ने 'नेति-नेति' कहकर गाई है, जिनका बल, प्रताप और प्रभुत्व (सामर्थ्य) अतुलनीय है,

सिव अज पूज्य चरन रघुराई। मो पर कृपा परम मृदुलाई॥
अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥

जिन रघुनाथ के चरण शिव और ब्रह्मा के द्वारा पूज्य हैं, उनकी मुझ पर कृपा होनी उनकी परम कोमलता है। किसी का ऐसा स्वभाव कहीं न सुनता हूँ, न देखता हूँ। अतः हे पक्षीराज गरुड़! मैं रघुनाथ के समान किसे गिनूँ (समझूँ)?

साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतग्य संन्यासी॥
जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित बिग्यानी॥

साधक, सिद्ध, जीवनमुक्त, उदासीन (विरक्त), कवि, विद्वान, कर्म (रहस्य) के ज्ञाता, संन्यासी, योगी, शूरवीर, बड़े तपस्वी, ज्ञानी, धर्मपरायण, पंडित और विज्ञानी -

तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥
सरन गएँ मो से अघ रासी। होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी॥

ये कोई भी मेरे स्वामी राम का सेवन (भजन) किए बिना नहीं तर सकते। मैं उन्हीं राम को बार-बार नमस्कार करता हूँ जिनकी शरण जाने पर मुझ जैसे पापराशि भी शुद्ध (पापरहित) हो जाते हैं, उन अविनाशी राम को मैं नमस्कार करता हूँ।

दो॰ - जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल
सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल॥ 124(क)॥

जिनका नाम जन्म-मरणरूपी रोग की (अव्यर्थ) औषध और तीनों भयंकर पीड़ाओं (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःखों) को हरनेवाला है, वे कृपालु राम मुझ पर और आप पर सदा प्रसन्न रहें॥ 124(क)॥

सुनि भुसुंडि के बचन सुभ देखि राम पद नेह।

बोलेउ प्रेम सहित गिरा गरुड़ बिगत संदेह॥ 124(ख)॥

भुशुंडि के मंगलमय वचन सुनकर और राम के चरणों में उनका अतिशय प्रेम देखकर संदेह से भली-भाँति छूटे हुए गरुड़ प्रेमसहित वचन बोले॥ 124(ख)॥

मैं कृतकृत्य भयउँ तव बानी। सुनि रघुबीर भगति रस सानी॥
राम चरन नूतन रति भई। माया जनित बिपति सब गई॥

रघुवीर के भक्ति-रस में सनी हुई आपकी वाणी सुनकर मैं कृतकृत्य हो गया। राम के चरणों में मेरी नवीन प्रीति हो गई और माया से उत्पन्न सारी विपत्ति चली गई।

मोह जलधि बोहित तुम्ह भए। मो कहँ नाथ बिबिध सुख दए॥
मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। बंदउँ तव पद बारहिं बारा॥

मोहरूपी समुद्र में डूबते हुए मेरे लिए आप जहाज हुए। हे नाथ! आपने मुझे बहुत प्रकार के सुख दिए (परम सुखी कर दिया)। मुझसे इसका प्रत्युपकार (उपकार के बदले में उपकार) नहीं हो सकता। मैं तो आपके चरणों की बार-बार वंदना ही करता हूँ।

पूरन काम राम अनुरागी। तुम्ह सम तात न कोउ बड़भागी॥
संत बिटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै करनी॥

आप पूर्णकाम हैं और राम के प्रेमी हैं। हे तात! आपके समान कोई बड़भागी नहीं है। संत, वृक्ष, नदी, पर्वत और पृथ्वी - इन सबकी क्रिया पराए हित के लिए ही होती है।

संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर सुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

संतों का हृदय मक्खन के समान होता है, ऐसा कवियों ने कहा है; परंतु उन्होंने (असली बात) कहना नहीं जाना; क्योंकि मक्खन तो अपने को ताप मिलने से पिघलता है और परम पवित्र संत दूसरों के दुःख से पिघल जाते हैं।

जीवन जन्म सफल मम भयऊ। तव प्रसाद संसय सब गयऊ॥
जानेहु सदा मोहि निज किंकर। पुनि पुनि उमा कहइ बिहंगबर॥

मेरा जीवन और जन्म सफल हो गया। आपकी कृपा से सब संदेह चला गया। मुझे सदा

अपना दास ही जानिएगा। (शिव कहते हैं -) हे उमा! पक्षी श्रेष्ठ गरुड़ बार-बार ऐसा कह रहे हैं।

दो० - तासु चरन सिरु नाइ करि प्रेम सहित मतिधीर।
गयउ गरुड़ बैकुंठ तब हृदयँ राखि रघुबीर॥ 125(क)॥

उन (भुशुंडि) के चरणों में प्रेमसहित सिर नवाकर और हृदय में रघुवीर को धारण करके धीरबुद्धि गरुड़ तब बैकुंठ को चले गए॥ 125(क)॥

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान॥ 125(ख)॥

हे गिरिजे! संत-समागम के समान दूसरा कोई लाभ नहीं है। पर वह (संत-समागम) हरि की कृपा के बिना नहीं हो सकता, ऐसा वेद और पुराण गाते हैं॥ 125(ख)॥

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा॥
प्रनत कल्पतरु करुना पुंजा। उपजइ प्रीति राम पद कंजा॥

मैंने यह परम पवित्र इतिहास कहा, जिसे कानों से सुनते ही भवपाश (संसार के बंधन) छूट जाते हैं और शरणागतों को (उनके इच्छानुसार फल देनेवाले) कल्पवृक्ष तथा दया के समूह राम के चरणकमलों में प्रेम उत्पन्न होता है।

मन क्रम बचन जनित अघ जाई। सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई॥
तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई॥

जो कान और मन लगाकर इस कथा को सुनते हैं, उनके मन, वचन और कर्म (शरीर) से उत्पन्न सब पाप नष्ट हो जाते हैं। तीर्थ यात्रा आदि बहुत-से साधन, योग, वैराग्य और ज्ञान में निपुणता,

नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना॥
भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई॥

अनेकों प्रकार के कर्म, धर्म, व्रत और दान, अनेकों संयम, दम, जप, तप और यज्ञ, प्राणियों पर दया, ब्राह्मण और गुरु की सेवा; विद्या, विनय और विवेक की बड़ाई (आदि) -

जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी॥
सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई। राम कृपाँ काहूँ एक पाई॥

जहाँ तक वेदों ने साधन बतलाए हैं, हे भवानी! उन सबका फल हरि की भक्ति ही है। किंतु श्रुतियों में गाई हुई वह रघुनाथ की भक्ति राम की कृपा से किसी एक (विरले) ने ही पाई है।

दो॰ - मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास॥ 126॥

किंतु जो मनुष्य विश्वास मानकर यह कथा निरंतर सुनते हैं, वे बिना परिश्रम के ही उस मुनि दुर्लभ हरि भक्ति को प्राप्त कर लेते हैं॥ 126॥

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता॥
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता॥

जिसका मन राम के चरणों में अनुरक्त है, वही सर्वज्ञ (सब कुछ जाननेवाला) है, वही गुणी है, वही ज्ञानी है। वही पृथ्वी का भूषण, पंडित और दानी है। वही धर्मपरायण है और वही कुल का रक्षक है।

नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना॥
सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा॥

जो छल छोड़कर रघुवीर का भजन करता है, वही नीति में निपुण है, वही परम बुद्धिमान है। उसी ने वेदों के सिद्धांत को भली-भाँति जाना है। वही कवि, वही विद्वान तथा वही रणधीर है।

धन्य देस सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी॥
धन्य सो भूपु नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई॥

वह देश धन्य है, जहाँ गंगा हैं, वह स्त्री धन्य है जो पातिव्रत-धर्म का पालन करती है। वह राजा धन्य है जो न्याय करता है और वह ब्राह्मण धन्य है जो अपने धर्म से नहीं डिगता है।

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी॥

धन्य घरी सोइ जब सतसंगा। धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा॥

वह धन धन्य है जिसकी पहली गति होती है (जो दान देने में व्यय होता है)। वही बुद्धि धन्य और परिपक्व है जो पुण्य में लगी हुई है। वही घड़ी धन्य है जब सत्संग हो और वही जन्म धन्य है जिसमें ब्राह्मण की अखंड भक्ति हो।
(धन की तीन गतियाँ होती हैं - दान, भोग और नाश। दान उत्तम है, भोग मध्यम है और नाश नीच गति है। जो पुरुष न देता है, न भोगता है, उसके धन की तीसरी गति होती है।)

दो० - सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥ 127॥

हे उमा! सुनो वह कुल धन्य है, संसारभर के लिए पूज्य है और परम पवित्र है, जिसमें श्री रघुवीर परायण (अनन्य रामभक्त) विनम्र पुरुष उत्पन्न हो॥ 127॥

मति अनुरूप कथा मैं भाषी। जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी॥
तव मन प्रीति देखि अधिकाई। तब मैं रघुपति कथा सुनाई॥

मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार यह कथा कही, यद्यपि पहले इसको छिपाकर रखा था। जब तुम्हारे मन में प्रेम की अधिकता देखी तब मैंने रघुनाथ की यह कथा तुमको सुनाई।

यह न कहिअ सठही हठसीलहि। जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि॥
कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि। जो न भजइ सचराचर स्वामिहि॥

यह कथा उनसे न कहनी चाहिए जो शठ (धूर्त) हों, हठी स्वभाव के हों और हरि की लीला को मन लगाकर न सुनते हों। लोभी, क्रोधी और कामी को, जो चराचर के स्वामी राम को नहीं भजते, यह कथा नहीं कहनी चाहिए।

द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ॥
रामकथा के तेइ अधिकारी। जिन्ह कें सत संगति अति प्यारी॥

ब्राह्मणों के द्रोही को, यदि वह देवराज (इंद्र) के समान ऐश्वर्यवान राजा भी हो, तब भी यह कथा न सुनानी चाहिए। रामकथा के अधिकारी वे ही हैं जिनको सत्संगति अत्यंत प्रिय है।

गुर पद प्रीति नीति रत जेई। द्विज सेवक अधिकारी तेई॥

ता कहँ यह बिसेष सुखदाई। जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई॥

जिनकी गुरु के चरणों में प्रीति है, जो नीतिपरायण हैं और ब्राह्मणों के सेवक हैं, वे ही इसके अधिकारी हैं और उसको तो यह कथा बहुत ही सुख देनेवाली है, जिसको श्री रघुनाथ प्राण के समान प्यारे हैं।

दो० - राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्बान।
भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान॥ 128॥

जो राम के चरणों में प्रेम चाहता हो या मोक्षपद चाहता हो, वह इस कथारूपी अमृत को प्रेमपूर्वक अपने कानरूपी दोने से पिए॥ 128॥

राम कथा गिरिजा मैं बरनी। कलि मल समनि मनोमल हरनी॥
संसृति रोग सजीवन मूरी। राम कथा गावहिं श्रुति सूरी॥

हे गिरिजे! मैंने कलियुग के पापों का नाश करनेवाली और मन के मल को दूर करनेवाली रामकथा का वर्णन किया। यह रामकथा संसृति (जन्म-मरण) रूपी रोग के (नाश के) लिए संजीवनी जड़ी है, वेद और विद्वान पुरुष ऐसा कहते हैं।

एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना॥
अति हरि कृपा जाहि पर होई। पाउँ देइ एहिं मारग सोई॥

इसमें सात सुंदर सीढ़ियाँ हैं, जो रघुनाथ की भक्ति को प्राप्त करने के मार्ग हैं। जिस पर हरि की अत्यंत कृपा होती है, वही इस मार्ग पर पैर रखता है।

मन कामना सिद्धि नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा॥
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं॥

जो कपट छोड़कर यह कथा गाते हैं, वे मनुष्य अपनी मनःकामना की सिद्धि पा लेते हैं, जो इसे कहते-सुनते और अनुमोदन (प्रशंसा) करते हैं, वे संसाररूपी समुद्र को गौ के खुर से बने हुए गड्ढे की भाँति पार कर जाते हैं।

सुनि सब कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोली गिरा सुहाई॥
नाथ कृपाँ मम गत संदेहा। राम चरन उपजेउ नव नेहा॥

(याज्ञवल्क्य कहते हैं -) सब कथा सुनकर पार्वती के हृदय को बहुत ही प्रिय लगी और वे सुंदर वाणी बोलीं - स्वामी की कृपा से मेरा संदेह जाता रहा और राम के चरणों में नवीन प्रेम उत्पन्न हो गया।

दो॰ - मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस॥ 129॥

हे विश्वनाथ! आपकी कृपा से अब मैं कृतार्थ हो गई। मुझमें दृढ़ राम भक्ति उत्पन्न हो गई और मेरे संपूर्ण क्लेश बीत गए (नष्ट हो गए)॥ 129॥

यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा॥
भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा॥

शंभु-उमा का यह कल्याणकारी संवाद सुख उत्पन्न करनेवाला और शोक का नाश करनेवाला है। जन्म-मरण का अंत करनेवाला, संदेहों का नाश करनेवाला, भक्तों को आनंद देनेवाला और संत पुरुषों को प्रिय है।

राम उपासक जे जग माहीं। एहि सम प्रिय तिन्ह कें कछु नाहीं॥
रघुपति कृपाँ जथामति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा॥

जगत में जो (जितने भी) रामोपासक हैं, उनको तो इस रामकथा के समान कुछ भी प्रिय नहीं है। रघुनाथ की कृपा से मैंने यह सुंदर और पवित्र करनेवाला चरित्र अपनी बुद्धि के अनुसार गाया है।

एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥

(तुलसीदास कहते हैं -) इस कलिकाल में योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत और पूजन आदि कोई दूसरा साधन नहीं है। बस, राम का ही स्मरण करना, राम का ही गुण गाना और निरंतर राम के ही गुणसमूहों को सुनना चाहिए।

जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कबि श्रुति संत पुराना॥
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजें गति केहिं नहिं पाई॥

पतितों को पवित्र करना जिनका महान (प्रसिद्ध) बाना है - ऐसा कवि, वेद, संत और पुराण

गाते हैं – रे मन! कुटिलता त्याग कर उन्हीं को भज। राम को भजने से किसने परम गति नहीं पाई?

छं० - पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥

अरे मूर्ख मन! सुन, पतितों को भी पावन करनेवाले राम को भजकर किसने परमगति नहीं पाई? गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गज आदि बहुत-से दुष्टों को उन्होंने तार दिया। आभीर, यवन, किरात, खस, श्‍वपच (चांडाल) आदि जो अत्यंत पाप रूप ही हैं, वे भी केवल एक बार जिनका नाम लेकर पवित्र हो जाते हैं, उन राम को मैं नमस्कार करता हूँ।

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलि मल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं॥
सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्री रघुबर हरै॥

जो मनुष्य रघुवंश के भूषण राम का यह चरित्र कहते हैं, सुनते हैं और गाते हैं, वे कलियुग के पाप और मन के मल को धोकर बिना परिश्रम के ही राम के परम धाम को चले जाते हैं। (अधिक क्या) जो मनुष्य पाँच-सात चौपाइयों को भी मनोहर जानकर (अथवा रामायण की चौपाइयों को श्रेष्ठ पंच (कर्तव्याकर्तव्य का सच्चा निर्णायक) जानकर उनको हृदय में धारण कर लेता है, उसके भी पाँच प्रकार की अविद्याओं से उत्पन्न विकारों को राम हरण कर लेते हैं, (अर्थात सारे रामचरित्र की तो बात ही क्या है, जो पाँच-सात चौपाइयों को भी समझकर उनका अर्थ हृदय में धारण कर लेते हैं, उनके भी अविद्याजनित सारे क्लेश श्री रघुवीर हर लेते हैं)।

सुंदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को॥
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥

सुंदर, सुजान और कृपानिधान तथा जो अनाथों पर प्रेम करते हैं, ऐसे एक राम ही हैं।

इनके समान निष्काम (निःस्वार्थ) हित करनेवाला (सुहृद) और मोक्ष देनेवाला दूसरा कौन है? जिनकी लेशमात्र कृपा से मंद-बुद्धि तुलसीदास ने भी परम शांति प्राप्त कर ली, उन राम के समान प्रभु कहीं भी नहीं हैं।

दो॰ - मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर॥ 130(क)॥

हे रघुवीर! मेरे समान कोई दीन नहीं है और आपके समान कोई दीनों का हित करनेवाला नहीं है। ऐसा विचार कर हे रघुवंशमणि! मेरे जन्म-मरण के भयानक दुःख का हरण कर लीजिए॥ 130(क)॥

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥ 130(ख)॥

जैसे कामी को स्त्री प्रिय लगती है और लोभी को जैसे धन प्यारा लगता है, वैसे ही हे रघुनाथ। हे राम! आप निरंतर मुझे प्रिय लगिए॥ 130(ख)॥

श्लोक - यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशंभुना दुर्गमं
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्तयै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये।
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥ 1॥

श्रेष्ठ कवि भगवान श्री शंकर ने पहले जिस दुर्गम मानस-रामायण की, श्री राम के चरणकमलों में नित्य-निरंतर (अनन्य) भक्ति प्राप्त होने के लिए रचना की थी, उस मानस-रामायण को रघुनाथ के नाम में निरत मानकर अपने अंतःकरण के अंधकार को मिटाने के लिए तुलसीदास ने इस मानस के रूप में भाषाबद्ध किया॥ 1॥

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥ 2॥

यह श्री रामचरितमानस पुण्य रूप, पापों का हरण करनेवाला, सदा कल्याणकारी, विज्ञान और भक्ति को देनेवाला, माया मोह और मल का नाश करनेवाला, परम निर्मल प्रेमरूपी

जल से परिपूर्ण तथा मंगलमय है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस मानसरोवर में गोता लगाते हैं, वे संसाररूपी सूर्य की अति प्रचंड किरणों से नहीं जलते॥ 2॥

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने सप्तमः सोपानः समाप्तः।

कलियुग के समस्त पापों का नाश करनेवाले श्री रामचरितमानस का यह सातवाँ सोपान समाप्त हुआ।

(उत्तरकांड समाप्त)

श्री रामचरितमानस जी की आरती

आरति श्रीरामायनजी की। कीरति कलित ललित सिय पी की॥
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद। बालमीक बिग्यान बिसारद॥
सुक सनकादि सेष अरु सारद। बरनि पवनसुत कीरति नीकी॥
गावत बेद पुरान अष्टदस। छओ सास्त्र सब ग्रंथन को रस॥
मुनि जन धन संतन को सरबस। सार अंस संमत सबही की॥
गावत संतत संभु भवानी। अरु घटसंभव मुनि बिग्यानी॥
ब्यास आदि कबिबर्ज बखानी। कागभुसुंडि गरुड के ही की॥
कलिमल हरनि बिषय रस फीकी। सुभग सिंगार मुक्ति जुबती की॥
दलन रोग भव मूरि अमी की। तात मात सब बिधि तुलसी की॥

-- रामचरितमानस समाप्त –

विश्व के परम कल्याण हेतु

डॉ. स्वामी ज्ञान प्रकाश
पीएचडी (औषधि जैव रासायन) काशी हिंदू विश्वविद्यालय
मुख्य दार्शनिक,
सनातन धर्म रक्षा मंच, लुधियाना
दार्शनिक (श्री राम चरित मानस)
राम विश्व सत्य एवं शांति केंद्र, धनही, बेलवन, मीरजापुर
अध्यक्ष और निदेशक
विश्व स्वास्थ्य धर्म एवं शांति केंद्र, शेषकेपुरा, बेलवन, मीरजापुर, उ.प्र.
विलक्षण वैज्ञानिक,
महिमा रिसर्च फाउंडेशन एंड सोशल वेलफेयर, वाराणसी
विशेष तत्व दर्शन (आनुवंशिक रोग)
आईवा स्टेट यूनिवर्सिटी, अमेरिका
विशेष तत्व दर्शन (लीवर कैंसर)
यूनिवर्सिटी ऑफ मिसूरी, कोलंबिया
www.epernicus.com/rsp7, www.facebook.com/rspspindia

[डॉ स्वामी ज्ञान प्रकाश] **[डॉ. रवि शंकर पाण्डेय-सांसारिक नाम]**

(संक्षिप्त जीवनी और उद्देश्य)

प्रियजनों,

सादर अभिनन्दन !

विदित हों कि मेरा जन्म माता सावित्री के परम पवित्र भाव के द्वारा परम पवित्र ब्राह्मण श्री शिव बली पाण्डेय जी (काशी के निकट मीरजापुर में) के घर में रविवार, 10 नवम्बर 1974 को हुआ। मैं, पिता के स्वर्गवाश (15 अगस्त 1991) के बाद ही, मंगलवार 03 सितंबर, 1991 से प्रकृति की प्रयोगशाला में सत्य की खोज में लगा रहा। स्वाधीन अवस्था में रहते हुए, एमएससी-जैव रसायन की उपाधि देवी अहिल्या विश्व विद्यालय इंदौर से 1999 में अर्जित किया। तत्पश्चात मेरे द्वारा लखनऊ के भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान (सी.एस.आई.आर.-आई.आई.टी.आर.) में मस्तिष्क की चोट के विशिष्ट बायोमार्कर की पहचान और सत्यापन की परियोजना में शोध कार्य कर अल्प समय में ही कैडमियम का विशिष्ट बायोमार्कर 'बेंजोडाइजेपाइन' नामक संकेतक को सिद्ध किया गया। वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सीएसआईआर), नई दिल्ली राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा (नेट) और भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर द्वारा संचालित-ग्रेजुएट एप्टीट्यूड टेस्ट इन इंजीनियरिंग (गेट फैलोशिप) की परीक्षा में सफलता प्राप्त कर कशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पीएचडी-औषधि जैव रसायन के लिए 2001 पंजीकृत हुआ। शोध के दौरान हृदयाघात से निजाद के लिए औषधि का अविष्कार हुआ। पीएचडी की शोध-ग्रन्थ जमा-कर 'उम्र बढ़ने के आणविक कारण' पर विशेष शोध कार्य करने के लिए 2004 में जीव विज्ञान प्रतिष्ठान, भुवनेश्वर पहुँचा। शोध के दौरान कुछ जीन्स की पहचान हुई, क्लोनिंग कर रेकॉम्बिनेंट-प्रोटीन उत्पन्न किया गया। उत्तम शोध पत्र अमेरिका, जर्मनी और जापान से एक साथ प्रकाशित हुआ। शोध पत्र से प्रेरणा प्राप्त कर आइवा स्टेट यूनिवर्सिटी के द्वारा मुझे 'स्पाइनल मस्कुलर एट्रोफी' नामक बच्चो की वीमारी की औषधि के खोज के लिए 2007 में अमेरिका बुला लिया गया। एक वर्ष के अन्दर ही औषधि के खोज में अपना कार्य कर मै 2008 में यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिसौरी चला गया। दो वर्ष के शोध के दौरान मनुष्य में पाये जाने वाले समस्त अड़तालीस हजार आठ सौ तीन जीन्स का विश्लेषण कर मात्र अल्कोहल द्वारा प्रभावित एक लीवर कैंसर का प्रमुख जीन 'एसएलसी44 ए2' का अविष्कार किआ गया। अप्रैल 2010 को संसारिक जीवन में प्रवेश करने व विशेष शोध करने हेतु मै वापस अपनी भारत माता के भूभाग पर लौटा। वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सीएसआईआर), नई दिल्ली ने पूल वैज्ञानिक के लिए एक नंबर पर स्थान देकर स्वागत की। जीव विज्ञान प्रतिष्ठान, भुवनेश्वर में शोध के दौरान अल्कोहल से प्रभावित स्तन कैंसर का विशिष्ट अणु 'इ2एफ1' का अविष्कार हुआ। स्वाधीन अवस्था में विचरण करते हुए अनुभव हुआ कि पृथ्वी के प्रत्येक प्राणी प्रचण्ड मानसिक रोगों से ग्रसित हैं, अतः सांसारिक विज्ञान को विराम देकर एक महान साधक श्री लल्लन दुबे जी के द्वारा श्री राम चरित मानस का श्रवण किया।

विशेष प्रेरणा प्राप्त हुई और मै कुछ काल तक तुरिआ अवस्था में चला गया। इसमें शोध करने पर पाया कि संसार जगत के लोग मुख्य धारा से भटक चुके हैं, अतः सभी के परमकल्याणार्थ अमेरिका में एक शोध पत्र 'अध्यात्म, आदर्श मानव धर्म, आयुर्वेद, आधुनिक योग

एवं विज्ञान के द्वारा स्वास्थ्य एवं शांति", प्रकशित करने लिए पेश किया, जिसको नोबल स्कॉलरों के द्वारा पुनरौलोकन कराकर 15 मई 2014 को सम्मान के साथ अमेरिकन जर्नल ऑफ़ बायोमेडिकल रिसर्च में प्रकाशित किया गया। शोधपत्र की लोकप्रियता से प्रभावित होकर, अमेरिकन साइंस एण्ड एजुकेशन पब्लिकेशन की ओर से मुझे चीफ गेस्ट एडिटर का प्रस्ताव आता है। जिसको सम्मान के साथ स्वीकार कर परम कल्याण "मानसिक रोगों का जड़ से उन्मूलन एवं सतयुग की स्थापना" हेतु, संसार जगत के समस्त विद्वानों, वैज्ञानिकों, ऋषियों, मुनियों, संतों, साधकों, सिद्धों, धर्म गुरुओं, समाधिष्ठों, धर्म परायण पंडितों (विद्वानो) आदि लोगों से अपने-अपने शोधपत्र जमा करने के लिए विनम्र निवेदन करता हूँ किन्तु सम्पूर्ण विश्व से एक भी प्राणी सन्मुख नहीं हुआ। अतः सर्वत्याग कर जीवन्मुक्त की अवस्था में चला आया। मनुष्य जीवन की सर्वोच्च अवस्था 'ब्रह्मलीन' के लिए मै हिमालय पहुँचा। वहाँ से प्रेरणा मिली कि परमकल्याण हेतु मुझे संसार जगत में विचरण करना चाहिए। अतः मै वापस लौटकर बुद्धवर्गीय लोगों से ग्यान-उपदेस की चर्चा करता रहा। अन्तोगत्वा, सर्वोदय इंडियन टाइम्स के प्रधान संपादक श्री सुनील पुरी शम्मी जी एवं हिन्दू मोर्चा पंजाब के प्रमुख सेवक श्री वरुण मेहता जी ने गहराई से अवलोकन कर जन परम-कल्याण हेतु लुधियाना जैसी पवित्र धरती पर ठहरने के लिए निवेदन किये और आज मै आपलोगों के मध्य हूँ।

विदित हों, कि मुख्य रूप से मानसिक रोगों के कारण संसार जगत पाप कर्म में पारंगत हो चूका है। धरती माता रसातल तक पहुँच चुकी हैं, और प्रलय पर हैं। जिसे परम चेतना के द्वारा रोका जा सकता है। अतः वर्तमान समय में मै जन-जन के मानसिक पटल में परम चेतना संचालित करने के लिए कार्य कर हूँ। आज परम कल्याण (शांति) स्थापित करने के लिए की एक परम पवित्र क्रांति (शान्ति-क्रान्ति) की आवश्यकता है। संसार के परम हित के लिए तीन परम पुनीत उद्देश्य निम्नलिखित हैं

१. धरती से मानसिक बीमारियों का जड़ से उन्मूलन।
२. आदर्श मानव धर्म की स्थापना।
३. गोहत्या निषेध एवं धरती मां को प्रलय से बचाना।

अतः आप सभी लोगों से विनम्र निवेदन करता हूँ कि परम पवित्र उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए पवित्र भाव (निर्मल मन, विमल विवेक, वाणी और कर्म) से आगे आएं और सहयोग कर अपने-अपने जीवन का परम लाभ उठाएं।

डॉ. स्वामी ज्ञान प्रकाश

[Dr. Swami Gyan Prakash]

(Brief-Biography for a specific Purpose)

Dear All,

Greetings and Best wishes!

I have been born by pious spirit & love of Mother Savitri at holy Brahmin Sri Shiv Bali Pandey (near Kashi-modern-Varanasi in Mirzapur district) house on Sunday, November 10th, 1974. In age of 16, when my father passed away (August 15, 1991), I spurned House and Ancestral property on Tuesday, September 3rd, 1991 and engaged myself in the search for truth in the laboratory of nature. In independent state, I have completed M.Sc.-Biochemistry in 1999 from earned Devi Ahilya University, Indore. Subsequently, I joined Indian Institute of Toxicology Research, Lucknow (CSIR-affiliated) for research on "Identification and Validation of Specific Biomarkers of Brain Injury". In a very short time, a specific biomarkers 'Benzodiazepine' as a indicator of Cadmium toxicity has been proven in brain and platelets.

I qualified two National exams 1.) Council of Scientific and Industrial Research (CSIR),New Delhi-National Eligibility Test (NET) for Professorship and 2.) Graduate Aptitude Test in Engineering (GATE-Fellowship) powered by Indian Institute of Technology, Kanpur and registered for PhD in Banaras Hindu University in 2001. The research led to the invention of the drug to rid of a heart attack. Immediate after submission of my PhD thesis, I moved to Institute of Life Sciences, Bhubaneswar as a Senior Research Fellow for research in area of 'Molecular Biology of Aging' in 2004. During my stay from 2004-2007, few age-associated genes were identified, cloning and generation of recombinant- protein was carried out. The best quality of Research was published from USA, Germany and Japan together in a reputed journal 'Gene Expression'. Iowa State University, USA inspired by reviewing the paper and I was called by ISU for discovery of a remedy for a genetic and neuromuscular disease of child known as 'Spinal Muscular Atrophy'. I contributed significantly and finally within a year remedy in form of ASOs developed that hold the promise for prevention & cure of SMA.

I moved to School of Medicine-University of Missouri, USA as I was awarded Postdoctoral Fellowship of National Institute of Health (NIH), USA in 2008. Where, I worked in team as an independent researcher. I was involved in searching the mechanism of cellular and sub-cellular effect of alcohol is in liver cancer. During two years of my research I was able to analyze all the forty-eight thousand eight hundred and three genes and invented a very single 'SLC 44 A2' gene affected by alcohol in liver cancer. I returned to my mother land India in April 2010. CSIR, New Delhi, welcome me as a Pool Scientist on rank no.1 for research in breast cancer. During my research at Institute of Life Sciences, Bhubaneswar, a specific molecule 'E_2F_1' of breast cancer was invented. While in the variance experienced of independent state, I realized that every creature on earth are suffering from intense mental disorders. Thus, keeping the worldly science (Nescience) aside, keeping myself aloof from worldly attachment, I listen and understood each word of Shri Ram Charit Manasa by a great striver Mr. Lalan Dubey.

My mind got special motivation, and for few months I went to the transcendent state (Turia state). I did a lot of research on man kind and found that the world has already deviated from the mainstream, so for ultimate world welfare, I submitted my research to American Science & Education publishing group. After peer review by several noble US scholars the paper entitled, 'Health, *Piety and Peace by Spirit, Ayurveda, Modern Yoga & Science'* was published on May 15, 2014 in *American Journal of Biomedical Research,* http://pubs.sciepub.com/ajbr/2/2/2. Because of the popularity of paper, I received an humble request from American Science and Education Publication for publishing a special issue as a chief guest editor that I accepted with respect for ultimate welfare of the world, especially for " eradication of disease of mind and foundation of age of truth and peace (Satya-Yuga)" <http://www.sciepub.com/journal/ajbr/specialissuecallforpapers#6 >and politely welcomed and invited, the entire noble scientists, scholars, saints, sages, seekers, adepts, religious leaders etc for submitting of their papers. But not a single creature move in forward direction. Thus, spurning all, I moved to liberated state. I reached the Himalayas, for the real worth of the (highest stage) human life "'Salvation". Upon eternal inspiration for ultimate world welfare, I returned into the visible world, keeping myself away from Money, Touch and Fire till the last breath. I have been discussed the things with the men of intellects and finally interacted with Mr. Sunil Puri Shammi, the chief editor of Sarvodaya Indian Times & Mr. Varun Mehta, who understood my vision and mission to some extent and requested me for an stay at Ludhiana. Now, I am among you pious people.

Please let you all know that because of mental illness, people of the world are full of sins. Mother Earth has reached bottom, and on the Holocaust. It can be prevented by the supreme consciousness. Therefore, at the present time I am working for super consciousness to operate the mental disorder for ultimate welfare (peace).

Today, there is a great need of holy revolution (peace-revolution). There are three main objectives for the ultimate benefit of the world;

1. Elimination of ground root of mental illnesses.
2. Establishment of Ideal Human Doctrine
3. Cow slaughter ban and protect the earth from the Holocaust.

I, therefore, kindly request you all for holy purpose to complete with the holy spirit (pure mind, super conscience, speech and deed) to come forward and cooperate and find the ultimate benefit of your human life that is Peace.

Thanks & Regards

You own Reverence & Faith

Dr. Swami Gyan Prakash

Dr. Swami Gyan Prakash

Chief Philosopher
Sanatan Dharma Raksha Manch
198-A Tagore Nagar, Civil Lines, Ludhiana-
Mobile : + 91-965-325-2170
Email : dr.rspandey@yahoo.com
Web site: www.epernicus.com/rsp7
FB-ID : www.facebook.com/rspspindia

Objective

Eradication of Diseases of Mind and Foundation of Ideal Human Doctrine

Educational Qualification

Doctor of Philosophy in Medicinal Biochemistry* : November 2004
Institute of Medical Sciences Banaras Hindu University, India.

Master of Science in Biochemistry 74.94% : May 1999
School of Biochemistry, Devi Ahilya University, India.

Bachelor of Science in Botany and Chemistry 56.61% : June 1996
Udai Pratap College, Purvanchal University, India.

CSIR-National Eligibility Test (NET)-Lectureship : July 2001
Council of Scientific & Industrial Research, New Delhi. India.

Graduate Aptitude Test in Engineering GATE-Fellowship : March 2001
Indian Institute of Technology, Kanpur, India

***Thesis Title:** *Biochemical study of macrophage function in terms of atherosclerosis and inflammation with reference to dietary components and medicinal plants*

Employment Experience/ Postdoctoral Affiliation

Chief Philosopher : Feb 2015- Continue
Sanatan Dharma Raksha Manch Sarvoday Indian Times, Ludhiana Panjab

Philosopher (Novel Supreme Elements) : May 2014- Continue
RAMA Prema Sadan Belvan Padari Mirzapur UP

Philosopher (Novel Supreme Elements) : May 2014- Continue
Satya Dham 'RAMA 'World Center of Truth & Peace Mirzapur UP

President & Director : April 2013- Continue
World Health Piety & Peace Center Mirzapur UP India

Distinguished Scientist : September 2013- Continue
Mahima Reasearch Foundation & Social Welfare, Karoundi, BHU Varanasi

Pool Scientist : May 2010- March 2012
Cancer Research Lab, Institute of Life Sciences, India

Postdoctoral fellow : September 2008- March 2010
School of Medicine-University of Missouri, USA

Postdoctoral Associate : November 2007-August 2008
Department of Biomedical Sciences, Iowa State University, USA

Senior Research Fellow/ Research Associate : November 2004-October 2007
Gene Function & Regulation, Institute of Life Sciences, India

Technical experience

- Cell culture, transfection of siRNA, anti-sense oligos, isolation of RNA, DNA and proteins
- DNA microarray analysis, real-time PCR, western and northern blot analysis
- Differential display-PCR, sequencing, gene cloning, recombinant protein expression, purification and functional analysis by in-gel enzyme assay
- Molecular characterization of gene-promoters by DNase I footprinting, transient transfection and luciferase assay of promoter-reporter constructs, and DNA-protein interactions (EMSA and super shift assay).
- **Animal model experience-** Versed with mice, rats and rabbits for in vivo study.

Memberships in Scientific organizations

♣ American Society of Biochemistry & Molecular Biology	:	October 2008- present
♣ American Society for Pharmacology & Experimental Therapeutics	:	October 2008- present
♣ The Science Advisory Board	:	March 2007- present
♣ International Atherosclerosis Society	:	September 2002- present
♣ Indian Society for Atherosclerosis Research	:	September 2002- present
♣ Indian Society of Cell Biology	:	February 2006- present

Honors and awards

♣ Senior Research Fellowship/Research Associateship Department of Biotechnology (DBT) India November 2004- October 2007

♣ Postdoctoral Fellowship Muscular dystrophy Assosiation (MDA) USA November 2007- August 2008

♣ Postdoctoral Fellowship National Institute of Health (NIH) USA September 2008- March 2010

♣ Pool Scientist Council of Scientific & Industrial Research (CSIR) India December 2010- March 2012

Personal profile

Worldly Name	:	**Dr. Ravi Shankar Pandey**
Father's Name	:	Late Shiv Bali Pandey
Mother's Name	:	Late Savitri. Pandey
Date of Birth	:	22.05.1975
Nationality	:	Indian
Permanent Resident	:	Plot No. 111, Kushahan, Adalpura-Chunar, Mirzapur-231304 UP, INDIA

Publications

Pandey RS: **Discovery of novel ayurvedic formulation for the treatment of vitiligo.** Asian Journal of Medical Sciences. 2015; 6 : 132-133

Pandey RS: **Health, piety and peace by spirit, ayurveda, modern yoga & science.** American Journal of Biomedical Research. 2014; 2: 19-28

Pandey RS: **Gene network and canonical pathways analysis in human hepatoma cell VA-13 to study alcohol metabolism and signaling pathways: a microarray study.** Scope of Translational Researches in Ayurvedic Medicine.. 2013; 1: 01-16

Pandey RS, Chaurasia JK, Rao RK: **Identification of e2f1 transcription factor and maximally acetylated protein in alcohol induced breast cancer.** IJART, 2013; 1: 41-45.

Choudhury M, Pandey RS, Clemens DL, Davis JW, Lim RW, Shukla SD: **Knockdown of gcn5 histone acetyltransferase diminishes ethanol induced histone acetylation and affects differential expression of genes in human hepatoma cells.** Alcohol, 2011; 45: 311-324.

Rath B, Pandey RS, Debata PR, Maruyama N, Supakar PC: **Molecular characterization of senescence marker protein-30 gene promoter: Identification of repressor elements and functional nuclear factor binding sites.** BMC Mol Biol. 2008; 9:43.

Panda H, Pandey RS, Debata PR, Supakar PC: **Cloning, expression, functional analysis of rat liver cytosolic inorganic pyrophosphatase gene and characterization of its functional promoter.** Gene Expr. 2007, 14: 13-22.

Panda H, Pandey RS, Debata PR, Supakar PC: **Age-dependent differential expression and activity of rat liver cytosolic inorganic pyrophosphatase gene. Biogerontology** 2007; 8: 517-525.

Pandey SK, Sahay A, Pandey RS, Tripathi YB: Effect of **Asparagus racemosus rhizome (Shatavari) on mammary gland and genital organs of pregnant rat**. Phytother. Res., 2005; 19: 721-724.

Pandey RS, Singh BK, Tripathi YB: **Extract of gum resins of Boswellia serrata L. inhibits lypopolysaccharide induced nitric oxide production in rat macrophages along with hypolipidemic property**. Indian J Exp. Biol., 2005; 43: 509-516.

Tripathi YB, Singh BK, Pandey RS, Kumar M: **BHUx: a patent polyherbal formulation to prevent atherosclerosis.** Evid. Based Complement. Alternat. Med., 2005; 2: 217- 221.

Tripathi YB, Reddy MM, Pandey RS, Tiwari OP, Singh BK, and Reddanna P: **Anti-inflammatory property of BHUx: a polyherbal formulation to prevent atherosclerosis.** Inflammopharmacology, 2004; 12: 131-152.

Tripathi YB, Pandey RS: **Semecarpus anacardium L, nuts inhibit lipopolysaccharide induced NO Production in rat macrophages along with its hypolipidemic property**. Indian J. Exp. Biol., 2004; 42: 432-436.

Pattanaik N, Singh AV, Pandey RS, Singh BK, Kumar M, Dixit SK, Tripathi YB: **Toxicology And Free Radicals Scavenging Property Of Tamra Bhasma.** Indian J Clin. Biochem., 2003;18:181-189.

Book Chapter

Pandey RS: **Gene network and canonical pathways analysis in human hepatoma cell VA-13 to study alcohol metabolism and signaling pathways: a microarray study.** Scope of translational researches in ayurvedic medicine. 2013: 01-16

Nucleic Acid Sequence

Panda H, Pandey RS, Debata PR, Supakar PC**: Rattus norvegicus cytosolic inorganic pyrophosphatase gene, promoter region and exon 1.** 2006: GenBank accession number DQ978330.

Presentation

Pandey RS: **Molecular Biology of aging, alternative splicing in SMA and chromatin remodeling in cancer.** STRAM October 19-20, 2013 Varanasi: Abstract book pp.3

Choudhury M, Pandey RS, Clemens DL, Davis JW, Lim RW, Shukla SD: **Silencing of histone acetyltransferase GCN5 affects gene expression in human hepatoma cells: A gene array analysis** (Poster). Experimental Biology Meeting FASEB J.; 2009; 23: 585.8.

Aroor AR, Pandey RS and Shukla SD: **Histone acetylation, expression of histone acetyltransferases and histone deacetylases by ethanol binge after chronic ethanol intake** (poster). ISBRA World Congress, Paris, France Alcohol. Clin. Exp. Res., 2010; 34:

Farrell DJ, Pandey RS, Singh NN, Singh RN: **In vivo selections to antisense technology: A powerful approach to understand and correct aberrant pre-mRNA splicing** (Poster). Center for Integrated Animal Genomics, Faculty Meeting, April 24, 2008 at Iowa State University, Ames, USA .

Debata PR, Panda H, Pandey RS Supakar PC: **Gene expression profiling of rat liver and kidney during aging.** 29^{Th} All india cell biology conference (AICBC), January 18-20, 2006, ITRC, Lucknow: Abstract book pp. 83.

Pandey RS, Tripathi YB: **Evaluation of antiatherogenic mechanism of commiphora mukul and Terminalia arjuna.** 2^{nd} International conference of the international society for ayurveda & health (ISAH), November 20-22, 2005, BHU, Varanasi: Abstract book pp. 44.

Pandey RS, Tripathi YB: **Role of saturated fat rich diet on stress induced changes in antioxidant parameters in rats.** 16^{th} Annual conference of Indian society for atherosclerosis research (ISAR) December 1-3, 2003 BHU, Varanasi: Abstract book pp. 57-58.

Tripathi YB, Pandey RS, Singh BK, Kumar M, Reddy M, Reddana P: **Anti-inflammatory action of BHUx: a patented polyherbal formulation to prevent atherosclerosis.** (ISAR) December 1-3, 2003, BHU, Varanasi: Abstract book pp. 57.

Tripathi YB, Singh BK, Gadam P, Pandey RS, Upadhyay AK, Aprajita, Kumar M: **The response of BHUx on smoking induced atherosclerosis in cholesterol fed rabbits.** 2^{nd} WATCH September 29- October 3, 2002 New Delhi: Abstract book pp. 40.

Dr. Swami Gyan Prakash

अंतःकरण की शुद्धि (पवित्र वैचारिक परिवर्तन) वास्तविक विज्ञान के लिए परमावश्यकः डॉ. स्वामी ज्ञान प्रकाश

विश्व के परम कल्याण हेतु

डॉ. स्वामी ज्ञान प्रकाश
पीएचडी (औषधि जैव रासायन)
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
मुख्य दार्शनिक,
सनातन धर्म रक्षा मंच, लुधियाना
दार्शनिक (श्री राम चरित मानस)
राम विश्व सत्य एवं शांति केंद्र,
धनही, बेलवन, मीरजापुर
अध्यक्ष और निदेशक
विश्व स्वास्थ्य धर्म एवं शांति केंद्र, शेषकेपुरा, बेलवन,
मीरजापुर, उ.प्र.
विलक्षण वैज्ञानिक,
महिमा रिसर्च फाउंडेशन एंड सोशल वेलफेयर, वाराणसी
विशेष तत्व दर्शन (आनुवंशिक रोग)
आईवा स्टेट यूनिवर्सिटी, अमेरिका
विशेष तत्व दर्शन (लीवर कैंसर)
यूनिवर्सिटी ऑफ मिसूरी, कोलंबिया

www.epernicus.com/rsp7
www.facebook.com/rspspindia

विश्व के समस्त निवासियों, आप सभी का सादर अभिनन्दन ! ईश्वर की आसीम अनुकम्पा से मुझे जीवनमुक्त की अवस्था प्राप्त हुई है। यदपि परम शांति 'समाधी ' की सर्वोच्च अवस्था अवश्य प्राप्त है किन्तु इसमें भी निष्ठुर स्वार्थ का अनुभव हुआ अतएव सांसारिक विज्ञान के बाद अब पूर्ण भाव (मन, कर्म और वाणी) से परमकल्याण के कार्य में प्रयासरत हूँ। तुरयास्थ विश्लेषण से अनुभव हुआ कि अंतःकरण की शुद्धि (पवित्र वैचारिक परिवर्तन) वास्तविक विज्ञान के लिए परमावश्यक है। विदित हों कि सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर अब तक मात्र नश्वर वस्तुओं के विकाश को ही लोग विकाश का नाम देते रहे, जबकि तुरिया अवस्था (ब्रह्म अवस्था) में विश्लेषण से पता चला कि मनुष्य जीवन का वास्तविक विकाश अंतःकरण की शुद्धि है। विश्व के समस्त जीव आज भी अजेय मानसिक रोगों की चपेट में हैं, जिनका उन्मूलन आध्यात्मिक विज्ञान द्वारा संभव है, परन्तु संसार जगत का एक प्राणी तक मन की पवित्री के लिए तैयार नहीं है। वर्तमान समयचक्र में मानसिक रोगों के कारण बुद्धि विकल हो चुकी है जिससे मानव कर्म पूर्ण रूप से अनीतिपूर्ण होचुका है। परिणामस्वरूप मानवीय गुणों (धैर्य, क्षमा, शम (मन निग्रह), दम (इन्द्रिय निग्रह), यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह), नियम (शुद्धता, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान), आहार (सात्विक आहार- कंद, मूल और फल), विहार (सत संगत या एकांतवास), ध्यान (ईश्वर ही सत्य है और मैं उनका ही अंश हूं) एवं धारणा (स्वयं के अंतः करण में ईश्वर की अनुभूति और सभी को ब्रह्ममय की चित्तवृत्ति), सत्य बोलना, क्रोध न करना, परोपकार का भाव, सत कर्म करना और चरित्रवान होना) लगभग समाप्त हो चुका है और इसके विपरित चोरी, कपट, हठ, द्वेष, दंभ (असत्य मानव धर्म), पाखंड, मिथ्या अभिमान, मोह (अज्ञान), जुआ, शराबी प्रवृत्ति, नास्तिकता आदि में भरपूर बृद्धि हो चुकी है।

आदि शक्ति, प्रकृति या वातावरण न्यूटन के तीसरे नियम के तहत प्राकृतिक आपदाओं की उत्पत्ति कर मानव समाज को सुधरने का संकेत देना प्रारम्भ कर चुकी है, और धीरे-धीरे ब्रह्मांड प्रलय की ओर अग्रसर हो चुका है। परमेश्वर के विशेष कृपा से इन सभी अनुभवों से अवगत हुआ, और बिना विलम्ब के सांसारिक विज्ञान को नश्वर शरीर का विज्ञान अर्थात अज्ञान (NeScience) पहले बताया, जिसको अमेरिका के वैज्ञानिकों द्वारा सहर्ष स्वीकृत <http://pubs.sciepub.com/ajbr/2/2/2> किया गया। विदित हों कि ऐसे विज्ञान में अंतःकरण के शुद्धिकरण की आवश्यकता नहीं होती। इसमें लोभ रूपी मानसिक बीमारी के कारण लोग लोकप्रतिष्ठा या नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने के लिए लोग कूटनीति का प्रयोग आदि बहुत से कुकर्म कर रहे हैं, यहां तक कि एक दूसरे की प्रयोगशाला भी नष्ट करा देते हैं। प्रमाण प्रमाण के लिए- डॉ. डुग्लास पराशर के वास्तविक अविष्कार में तीन अन्य तथाकथित महापुरुषों को नोबेल पुरस्कार प्राप्त होता है <http://scienceblogs.com/terrasig/2008/10/09/nobel-prize-heartbreak> जबकि मुख्य अविष्कारक को शटल बस का चालक बनना पड़ा। चूँकि सांसारिक विज्ञान वास्तविक ज्ञान की प्राथमिक सीढ़ी है, जो परहित के लिए जीव को प्रेरित करती है, इसलिए यह अवश्य ही सम्मान के योग्य है। जबकि वास्तविक विज्ञान (Real Science) के लिए अंतःकरण का शुद्धिकरण (Conscience) परमावश्यक होता है। विदित हों कि लार्ड मैकोले द्वारा 1858 में आदर्श मानव शिक्षा को असंवैधानिक घोषित करने के बाद हम सभी आज तक इन्द्रियों की दासता करने को ही विकास समझ बैठे हैं जो मात्र इन्द्रियों की दासता है और कुछ नहीं।

आज शोक, मोह, भ्रम और डर से मुक्त होकर परमकल्याण हेतु अति दुर्लभ मनुष्य शरीर से प्राप्त होने वाले लक्ष जैसे स्वर्ग/जन्नत, वैराग, योग, अखंड ज्ञान, विज्ञान, भक्ति, मुक्ति/मोक्ष के सभी रास्ते इस शरीर के पास उपलब्ध हैं जिनकी मैं घोषणा करता हूँ। सभी बुद्धवर्गीय लोगों से विनम्र निवेदन है कि चित्त को स्थिर कर संशय से मुक्त रहें, क्योंकि इसमें मेरी अपनी कोई निजी प्रभुता नहीं है और ना ही किसी लोकप्रतिष्ठा की लालसा है इसमें कोई शुल्क नहीं, ग्रहण करने के लिए मात्र श्रद्धा की आवश्यकता होगी। यदि विश्व सन्मुख हो तो आप सभी को विश्वास देता हूँ कि स्वर्णिम संसार की रूपरेखा 2025 तक अवश्य स्थापित हो जाएगा। संसार के परम हित के लिए चार परम पुनीत उद्देश्य निम्नलिखित हैं; 1. पाखंडियों के जाल से छुड़ाकर जन-जन के मानसिक पटल में परम चेतना का संचालन। 2. धरती से मानसिक बीमारियों का जड़ से उन्मूलन। 3. आदर्श मानव धर्म की स्थापना। 4. गोहत्या निषेध एवं धरती मां को प्रलय से बचाना। इन पवित्र वैचारिक परिवर्तन से ही वास्तविक विकाश होगा, दूसरा कोई उपाय संसार जगत में है ही नही। विश्व के परम कल्याण के लिए मेरी सभी विचार धारा और उद्देश्य हाल ही में प्रकाशित हो चुकी हैं, सभी लोगों (जैसे-धर्मगुरु, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, दार्शनिक, नोबेल वैज्ञानिक, साधु, साधक, विमुक्त, सिद्ध, उदासीन, संत, महंत, शंकराचार्य, कवि, कोविद, योगी, वैरागी, ज्ञानी, ऋषि, मुनि एवं धर्म परायाण पंडितों, मीडिया) से विनम्र निवेदन है कि इन सबकी समीक्षा अवश्य करें। विश्व के वैज्ञानिकों को यही प्रेरणा देना चाहूंगा कि आध्यात्मिक विज्ञान द्वारा अंतःकरण की शुद्धि (पवित्र वैचारिक परिवर्तन) कर वास्तविक विज्ञान की ओर अग्रसर हों और शांति स्थापित करने में महत्वपूर्ण पवित्र सहयोग देकर अपने-अपने मनुष्य जन्म का परमलाभ उठाएं।

-डॉ. स्वामी ज्ञान प्रकाश
डॉ. रवि शंकर पाण्डेय-सांसारिक नाम
मुख्य दार्शनिक, सनातन धर्म रक्षा मंच
198-ए, टैगोर नगर, लुधियाना पंजाब

View publication stats